देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

Impact Factor
3.811

22 जून 2021

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श वेबिनार विशेषांक

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. पंडित बन्ने
डी.लिट्

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग
एडवोकेट

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 13 ISSUE-6 (22 जून 2021 वेबीनार-विशेषांक) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :
चौ. एम. सिहाग

विशेषांक सम्पादक :
डॉ. पंडित बन्ने
एम.ए. (हिन्दी), एम. फिल,
पीएच.डी. डी.लिट्
हिन्दी विभागाध्यक्ष
भारत महाविद्यालय, जेऊर
(म. रेल) सोलापुर (महाराष्ट्र)

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल–एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर–335001 (राज.)

परामर्श मण्डल :
डॉ. इरेश स्वामी (महाराष्ट्र)
डॉ. अर्जुन चव्हाण (महाराष्ट्र)
डॉ. अनंत शिंगाडे (महाराष्ट्र)

सम्पादक मण्डल :
डॉ. नवनाथ गाडेकर,
प्रा. रमेश पाटील

सह सम्पादक :
डॉ. शिवाजी चवरे
डॉ. भाऊसाहेब नवले
डॉ. गंगाधर बिराजदार
डॉ. मनोहर भंडारे
डॉ. संघप्रकाश दुड्डे

प्रकाशक :
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुद्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
हिन्दी विभाग,कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. राजपाल
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय
हिसार, हरियाणा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पार्वती गोंसाई
सरदार पटेल वि.वि.,
गुजरात।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र
बिहार।

डॉ. विनोद कुमार शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्होत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

***सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।**

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

☐ शोध पत्र 2000–2500 शब्दों (4–6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

☐ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

☐ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

☐ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/– रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/– रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	**पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)**
खाता धारक का नाम	:	**गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी**
बैंक खाता संख्या	:	**1182000109078119**
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. पंडित बन्ने	11–12
2.	शुभकामना संदेश	डॉ. इरेश स्वामी	13–13
3.	शुभकामना संदेश	डॉ. अनंत शिंगाडे	14–14
4.	आदिवासी जनजीवन और वर्तमान समय	डॉ. अनंत शिंगाडे	15–17
5.	कैलाश बनवासी के साहित्य में विविध विमर्श	प्रा. डॉ. बी. आर. नळे, सौ. अमृता अनिल तौर	18–21
6.	साहित्य में प्रचलित विविध विमर्श	अनुराधा कुमारी, डॉ० राजिन्द्र पाल सिंह जोश	22–25
7.	समकालीन हिन्दी साहित्य में वृद्धावस्था विमर्श	अनुराग चौधरी	26–29
8.	समकालीन हिंदी साहित्य : किसान विमर्श	निंघोट अर्चना महादेवराय	30–34
9.	समकालीन कविता में जल से जुड़ी समस्याएँ	Aswani S	35–41
10.	हिंदी साहित्य में 21वीं सदी का दलित जीवन	डॉ० बबलू कुमार भट्ट	42–44
11.	साहित्य की दलित दृष्टि; अतीत और वर्तमान के सन्दर्भ में	भगवती	45–48
12.	SIGNIFICANT ACHIEVEMENTS OF WOMEN SCULPTOR IN INDIAN	Binoy Paul	49-53
13.	दलित विमर्श	दासरथी जांगड़े	54–58
14.	मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में चित्रित स्त्री विमर्श	डॉ. मनिषा साळुंखे	59–62
15.	समकालीन हिंदी किन्नर उपन्यास साहित्य की भाषा	प्रा. दादासाहेब खांडेकर	63–65
16.	नारी विमर्श के परिप्रेक्ष्य में 'दोहरा अभिशाप'	डॉ. जी. डी. बिराजदार	66–69
17.	रोज केरकेट्टा की कहानियों में स्त्री चेतना	गुलांचो कुमारी	70–72
18.	समकालीन हिंदी कविता में ट्रांसजेंडर विमर्श	काव्या नायर बी.	73–78
19.	आदिवासी विमर्श के सन्दर्भ में हिंदी कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन	ललिता स्वामी	79–84
20.	आदिवासी साहित्य में स्त्री-विमर्श ('अल्मा कबूतरी' के विशेष संदर्भ में)	डॉ. मधुबाला सांखला	85–88
21.	अल्मा कबूतरी उपन्यास में व्यक्त आदिवासी जनचेतना का सामाजिक विमर्श	ममता चौहान	89–94
22.	विनोद कुमार शुक्ल कृत 'खिलेगा तो देखेंगे' उपन्यास में चित्रित मध्यवर्गीय जीवन विमर्श	एम.एन.एस. जयंती	95–98
23.	दलित साहित्य की अवधारणा और दलित विमर्श	कु. मोनिका पोपट कांबळे	99–101
24.	सूर्यबाला की कहानियों में वृद्ध विमर्श	पंचमी. आर	102–104
25.	आदिवासी साहित्य विमर्श और जनजीवन	डॉ. पंडित बन्ने	105–120
26.	हिंदी के प्रमुख समकालीन कवियों से अरूण कमल के काव्य का किसान विमर्श में तुलनात्मक अध्ययन	परमानंद पाटीदार	121–125
27.	हिन्दी दलित कविताओं में दलित चेतना	डॉ. पारूल सिंह	126–130
28.	कविता-विकास-मानवाधिकार	डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत	131–134
29.	दो पीढ़ियों का विमर्श	डॉ. प्रीतिबहन हसमुखभाई पटेल	135–138
30.	असगर वजाहत के साहित्य में नारी विमर्श	पो. राघवेंद्र मिस्कीन, डॉ. जेड.ए.गुळगुंडी	139–141

31.	वृद्धा अवस्था विमर्श	राजेश कुमार	142–146
32.	FEMALE ALIENATION AND OPPRESSION IN KAMALA MARKANDAYA'S 'A SILENCE OF DESIRE'	Prof. Ramesh V. Patil	147-149
33.	आदिवासी साहित्य विमर्श की संभावनाएं और चुनौतियाँ	डॉ. रमेश यादव	150–154
34.	समकालीन हिंदी साहित्य में मुस्लिम पात्र छौंक की तरह आते है	प्रा. डॉ. शेख साबेर शेख कदीर	155–158
35.	तिरस्कृत वर्ग की व्यथा : गाथा –पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा	डॉ. संजीव कुमार. के	159–161
36.	रूपजीवाओं की अभिशप्त जिन्दगी : 'फूलरानी' कहानी के विशेष संदर्भ में	विजय लक्ष्मी. एल	162–163
37.	मन्नू भंडारी के उपन्यासों में नारी–विमर्श : एक अनुशीलन	डॉ. संतोष कुमार अहिरवार	164–168
38.	दलित–स्वर्ण कामकाजी संबंध : जूठन भाग दो	सरिता कुमारी	169–172
39.	आदिवासी समाज का बदलता स्वरूप और स्त्री	शैलेश यादव	173–177
40.	नारी विमर्श के विशेष संदर्भ में 'अपने–अपने कोणार्क' उपन्यास में प्रतिबिम्बित समस्याओं का निरूपण	षमीना.टी	178–181
41.	साहित्य में स्त्री विमर्श	डॉ. स्मिता जे. मकवाणा	182–184
42.	समकालीन हिंदी आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' में दलित विमर्श	प्रा. डॉ. सुचिता जगन्नाथ गायकवाड	185–188
43.	इतिहास के पन्नों से बेदखल आदिवासी संघर्ष की कहानी 'धूणी तपे तीर'	सुमा अजीथ	189–192
44.	असमीया लेखिका निरूपमा बरगोहाई के उपन्यासों में नारीवाद	सुमि शर्मा	193–197
45.	हिन्दी साहित्य में दलित संवेदना	उमेश कुमार	198–200
46.	'तीसरी ताली' उपन्यास में अभिव्यक्त किन्नर विमर्श	वाघमारे विजयकुमार प्रल्हाद	201–204
47.	वर्तमान परिदृश्य में पर्यावरण प्रदूषण और भारत	डॉक्टर सुनैना, विकास बेरवाल	205–210
48.	दलित विमर्श	Dr.Y. Kasturi Bai	211-215
49.	राजस्थान एवं हरियाणा राज्य में मेव जाति के बालकों के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन के कारणों का अध्ययन	डॉ. इस्पाक अली, देशराज यादव	216–219
50.	An Analytical Study Of Women's Empowerment	Mr. Aghav Tukaram Haribhau	220-223
51.	ताण – व्यवस्थापन	प्रा. मुंगूसकर अनिल मधुकर	224–227
52.	आदिवासी विमर्श	चन्द्रसैन राहुल	228–231
53.	हिन्दी कविता में पर्यावरण चेतना	डॉ. प्रभा शर्मा	232–236
54.	नारी शाक्तीकरण और अनामिका की कविता	डॉ. जस्टी इम्मानुएल	237–240
55.	कठगुलाब उपन्यास में – नारी की विभिन्न छवियाँ	KRISHNAPRIYA J K	241–243
56.	केदारनाथ अग्रवाल का काव्य और किसान जीवन	पप्पू यादव, डॉ. मनप्रीत कौर	244–248
57.	राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गाँव' में नारी की स्थिति	श्रीमती रीता कुमारी देवरा	249–252
58.	कफ़न कहानी में सामाजिक दृष्टिकोण	संयोगिता मौर्या	253–256
59.	महिलाओं के नाटको में नारी विमर्श	डॉ. शंकर दळवी	257–260
60.	आदिवासी विमर्श और निर्मला पुतुल का काव्य	शशिबाला देशमुख	261–265
61.	'वृद्धजन' विमर्श : समकालीन परिदृश्य	डॉ. भाऊसाहेब नवनाथ नवले	266–272
62.	घुमंतू जनजाति की सामाजिक उपेक्षा, इतिहास लेखन के सन्दर्भ में	डॉ. भारत भूषण	273–275

63.	कोरोनाकाल में लॉकडाउन के दौरान पर्यावरण में हुए परिवर्तन का विश्लेषणात्मक अध्ययन	अमृता हल्दकार	276–280
64.	हिंदी साहित्य में दलित विमर्श	मा. जाधव अनिल मनोहर	281–283
65.	हिंदी महिला कथा लेखन परंपरा और महुआ माजी का कथा साहित्य	डॉ. भावना ठक्कर	284–289
66.	विवाह संस्था में पिसती नारी जीवन का यथार्थ	दीपांजली देवदास	290–296
67.	'निर्मला' उपन्यास नारी जीवन की करूण गाथा	डॉ. लावणे विजय भास्कर	297–299
68.	संजीव की कहानियों में नारी विमर्श	डॉ. बाळासाहेब पगारे	300–303
69.	मलयालम फिल्मों में अभिव्यक्त तृतीय लिंगी विमर्श ज्ञान मेरिक्कुट्टी एवं ओडुम राजा आडुम रानी के विशेष सन्दर्भ में	डॉ. इन्दू के वी	304–307
70.	हिंदी साहित्य में दलितवाद का उदय और उसकी प्रासंगिकता	डॉ. ममता	308–318
71.	भीमा नदीखोंयातील जल प्रदूषण एक पर्यावरणीय समस्या	डॉ. अरविंद दळवी	319–322
72.	आदिवासी नारी के बदलते आयाम	किर्ती काशिनाथ होसुरकर	323–326
73.	हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श	क्षत्रिय दीपिका जे.	327–330
74.	किन्नर समुदाय और उनकी समस्याएँ	प्रा.डॉ. नंदादेवी बोरसे	331–334
75.	हिन्दी समकालीन साहित्य में स्त्री-विमर्श	प्रा. पूर्णिमा उमेश झेंडे	335–338
76.	समकालीन हिंदी उपन्यास में वृद्ध विमर्श	सौ. रोहिणी गुरूलिंग खंदारे	339–341
77.	'वसीयत' उपन्यास में अभिव्यक्त वृद्ध जीवन की विसंगतियाँ	डॉ. संध्या.एस	342–344
78.	वामनदादा कर्डक के गीतों में आंबेडकरवादी विचारधारा	संघमित्र अनंतराव गायकवाड़	345–346
79.	'रमा मराठी कविता में' का भाषा सौंदर्य एक विश्लेषण	डॉ. संघप्रकाश दुड्डे	347–348
80.	आदिवासी साहित्य की अवधारणा	डॉ. संजय नाईनवाड प्रा. डॉ. संध्या ठाकुर	349–354
81.	सूर्यनाथ सिंह के साहित्य में चित्रित आदिवासी जीवन	डॉ. सतीश कृष्णात पाटील-कोले	355–360
82.	ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सलामी' कहानी में युवा पीढ़ी का विद्रोह	आस्था कच्छप	361–363
83.	शमी वृक्ष का धार्मिक अनुशीलन	श्रवण कुमार उपाध्याय	364–368
84.	कृष्ण बलदेव वैद के नाटकों में चित्रित वृद्ध समस्या	डॉ. कार्तिका.एस.के	369–370
85.	स्त्री अस्मिता के नए पहलू (सन्दर्भ- 'क्वीन')	डॉ. मनीषा अरोड़ा	371–378
86.	शारीरिक अक्षमता से अभिक्षिप्त-किन्नर समुदाय : एक अध्ययन	डॉ. समता जैन	379–383
87.	आंबेडरवादाचा मराठी दलित कवितेवरील प्रभाव	डॉ. संजय पांडुरंग चौधरी	384–389
88.	आदिवासी विमर्श	Nisha Sahani	390-393
89.	गिरिराज शरण अग्रवाल की कहानियों में "दलित जीवन"	कल्पना गौतम	394–397
90.	मराठी साहित्यातील देवदासीचे चित्रण	प्रा. डॉ. सुनिता श्रीपती कांबळे	398–402
91.	वर्तमान परिप्रेक्ष में नारी विमर्श	डॉ. खरटमोल मदन नामदेव	403–407
92.	हिंदी तथा मराठी कवयित्रियों की इक्कीसवीं सदी की कविता में विधवा एवं अकेली स्त्री का चित्रण	भाईदास रघुनाथ पाटील	408–412
93.	किन्नर विमर्श	सरोज शर्मा	413–417
94.	'मैकलुस्कीगंज' में चित्रित एंग्लो-इंडियन जीवन गाथा	डॉ.श्रीजिना पी पी	418–422
95.	स्त्री विमर्श	डॉ. सुनीता राठौर	423–427

96.	सूरज किरण की छाँव– उपन्यास में आदिवासी विमर्श	डॉ. बाबासाहेब शेख	428–430
97.	श्लील–अश्लील विषयक साहित्यिक धारणाएँ और आठवाँ सर्ग	मीनू भाटी, डॉ० बीना शर्मा	431–439
98.	मन्नू भंडारी और शिवानी की कहानियों में परिवेशबोध	सुनील कुमार	440–443
99.	हिंदी कहानी और वृद्धजीवन की समस्याएं	अंजना.एम	444–447
100.	विनोद कुमार शुक्ल की कविताओं में अभिव्यक्त किसान एवं आदिवासी जीवन	अर्चना गायतोंडे	448–453
101.	मार्कण्डेय के कथा साहित्य में हाशिए का समाज	बुशरा खान	454–458
102.	हिंदी कहानियों में चित्रित नौकरीपेशा नारी की संवेदना	डॉ. श्रीराम हनुमंत वैद्य	459–462
103.	किन्नरों की दर्दभरी जिंदगी : जिंदगी 50–50	प्रा. अंजली सिद्राम जाधव	463–466
104.	'पाँव तले की दूब' उपन्यास में आदिवासी विमर्श	डॉ. नवनाथ गाड़ेकर	467–469
105.	मराठी संत कवयित्रियों में नारी वेदना	डॉ. वैशाली सुनील शिंदे	470–473
106.	जनजातीय महिला विकास की रणनीतियाँ	डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप, रामसेवक राम भगत	474–480
107.	बिनु पानी सब सून.....	सौम्या. पी	481–484
108.	विवेकी राय के निबंधों में शिक्षा का बदलता स्वरूप	डॉ. दिव्या वी.एल.	485–488
109.	'अन्या से अनन्या' में चित्रित स्त्री जीवन का यथार्थ	डॉ. निशा मुरलीधरन	489–493
110.	भारतीय लोक जीवन में स्त्री विमर्श	डॉ. जयश्री किनारीवाल–कुमावत	494–496
111.	हिन्दी कविताओं में पर्यावरण विमर्श	डॉ. सलीम बाणदार	497–500
112.	समकालीन रचनाकार मोहनदास नैमिशराय की कहानियों में दलित विमर्श	DARSANA S	501-503
113.	समकालीन साहित्य मोरी की ईंट में दलित विमर्श की संघर्ष गाथा	डॉ. अल्पेशभाई एच. गामीत	504–507
114.	भारतीय समाज में अनुसूचित जाति की महिला उत्पीड़न का प्रभाव	गामीत विपुलकुमार सीमाभाई	508–511
115.	मनोरंजन के क्षेत्र में हिंदी भाषा के माध्यम से रोजगार के अवसर	संयोगिता मौर्या	512–516
116.	किन्नर विमर्श : एक परिचय	डॉ. संजय मुजमुले	517–520
117.	हिंदी उपन्यास साहित्य में नारी विषमता का चित्रण	प्रा. डॉ. शिवाजी उत्तम चवरे	521–525
118.	भारतीय समाज में नारी का स्थान : एक परिशीलन	डॉ. श्रीमती धनेश्वरी दुबे	526–528
119.	कागज की नाव में संत्रास की भावना–नासिरा शर्मा	डॉ. भवानी दास	529–534
120.	वृद्ध विमर्श के परिप्रेक्ष्य में 21वीं सदी के हिंदी कहानी	डॉ. अशोक मरळे	535–537
121.	प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री स्वावलंबन की तलाश	सुरेखा टी वी	538–542
122.	स्त्री अस्मिता के संदर्भ में 'महुआ चरित'	डॉ. प्रीति के	543–547
123.	'माई' : स्त्री को विशिष्ट नहीं, सामान्य रहने दो	राजलक्ष्मी आर.	548–552
124.	विकास के आईने में आदिवासी	डॉ. राजु एस. बागलकोट	553–557
125.	हिन्दी साहित्य धारा में दलित चेतना	दीपाली डी.मिरेकर	558–559
126.	नागार्जुन की कविता में दाम्पत्य एवं वात्सल्य प्रेम	डॉ. कमलेश सरीन	560–564

सम्पादकीय-

भारत महाविद्यालय जेऊर (म. रेल) सोलापुर (महाराष्ट्र) आईक्यूएसी हिंदी विभाग, इण्डो–यूरोपियन लिटरेरी डिस्कोर्स (यूक्रेन) व बोहल शोध मंजूषा, भिवानी (हरियाणा) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय वेबिनार 'समकालीन हिंदी साहित्यः विविध विमर्श' इस विषय पर 22 जून 2021 में संपन्न हुआ।

'समकालीन हिंदी साहित्य : विविध विमर्श' इस विषय पर आयोजित एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय – संगोष्ठी के उपलक्ष्य में आयोजित की गई 'वेबिनार विशेषांक' आपके हाथों में देते हुए हमें अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। दलित विमर्श, वृद्धावस्था विमर्श, पर्यावरण विमर्श, किन्नर विमर्श, किसान विमर्श, आदिवासी विमर्श, नारी विमर्श आदि से जुड़े अनेक विभिन्न विषयों पर शोध–आलेख प्राप्त हुए। मेरे महाविद्यालय के प्रधानाचार्य डॉ. अनंत शिंगाडे जी का हिंदी विभाग की ओर से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिनकी अनुमति के बिना में अंतर्राष्ट्रीय वेबिनार और 'वेबिनार विशेषांक' प्रकाशित करने का कार्य पूर्ण नहीं हो सकता था। इसके साथ ही आईक्यूएसी समन्वयक प्रा. रमेश पाटील और मेरे सहयोगी डॉ. नवनाथ गाडेकर का अनमोल सहयोग प्राप्त हुआ। मेरे मित्र डॉ. नरेश सिहाग का विशेष धन्यवाद देता हूँ इनके बिना यह कार्य संभव नहीं था। मेरे महाविद्यालय के प्राध्यापक एवं शिक्षकोत्तर कर्मचारी आदि ने योगदान दिया।

अंतर्राष्ट्रीय वेबिनार का आयोजन इसीलिए किया गया तकि विभिन्न विमर्शों पर देश–विदेश के विषय–विशेषज्ञ विद्वानों से कुछ नया सीखने व जानने को मिले और वेबिनार में शोधार्थियों, प्राध्यापकों द्वारा प्रस्तुत शोध–आलेखों का प्रकाशन हम 'बोहल शोध–मंजूषा' पत्रिका में वेबिनार विशेषांक के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं ताकि भविष्य में इसका सदुपयोग किया जा सके।

आदरणीय मा. नारायण (आबा) पाटील, (पूर्व विधायक), डॉ. इरेश स्वामी (प्रथम कुलपति), पुण्यश्लोक अहिल्यादेवी होलकर सोलापुर विश्वविद्यालय सोलापुर (महाराष्ट्र), प्रो. डॉ. अर्जुन चव्हाण, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापूर (महाराष्ट्र), राकेश भारती (युक्रेन), मंजूलाल (लंदन), डॉ. सुरैया शेख (सोलापुर), डॉ. मनोहर भंडारे (महाराष्ट्र), डॉ. शिवाजी चवरे (सातारा), डॉ. भाऊसाहेब नवले (अ. नगर), डॉ. विनोद तनेजा (पंजाब), डॉ. राजेंद्र गोदारा (राजस्थान), डॉ. नरेश सिहाग (संपादक–बोहल शोध मंजूषा), राकेश मलिक, प्रो. नरेन्द्र सोनी आदि विद्वानों को तहेदिल से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। विद्वानों ने प्रतिभागिओं का मार्गदर्शन किया। वेबिनार में उपस्थित शोधार्थियों, प्राध्यापकों का भी हार्दिक धन्यवाद करता हूँ वेबिनार में सहभामिकता कर हमें अनुगृहीत किया।

आदिवासी, दलित, किन्नर, नारी, किसान, पर्यावरण, विमर्श ने साहित्य को समझने की केवल नई दृष्टि प्रदान नहीं की, बल्कि उसमें नए जीवन आदर्श भी प्रस्थापित किए। भूतकालीन एवं वर्तमानकालीन साहित्य को देखकर भविष्य का हिंदी साहित्य कौनसी करवट ले सकता है इसको पकड़ने की हमारी

कोशिश है। झुग्गी झोपड़ियाँ टूटी, घर बने, गाँव टूटकर बिखर रहे, नगर–शहर–महानगर बनते जा रहे हैं। रोज नवीन विकास यात्राएँ, और उसके साथ नव–नवीन मुश्किलें। आदमी की कठिनाइयाँ साहित्य में उतरना लाजमी। हिंदी साहित्य के (दलित, नारी और आदिवासी) में समाज इन वंचित वर्गों ने कहानी, कविता, उपन्यास, आत्मकथा और अन्य विधाओं के माध्यम से साहित्य जगत में मुख्य धारा का ध्यान अपनी ओर खींचा है। इस विमर्शों में शोषित समाज के लिए हक के लिए लेखन कार्य किया जा रहा है।

आदिवासियों को विकास के नाम पर जल, जंगल और जमीन से बेदखल किया। आदिवासियों के सामने सबसे बड़ी समस्या विस्थापन की है। सामाजिक और आर्थिक बदलावों के बाद वृद्धावस्था जो इस संसार में अकेले हैं। दलित साहित्य डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर से विचारों से प्रभावित साहित्य है। दलित विमर्श जाति आधारित अस्मिता मूलक विमर्श है। मानव जीवन एवं पर्यावरण एक दूसरे के पर्याय है। जहाँ मानव का अस्तित्व पर्यावरण से ही वही मानव द्वारा निरंतर किए जा रहे पर्यावरण के विनाश से है वही मानव द्वारा निरंतर किये जा रहे पर्यावरण के विनाश से हमें भविष्य की चिंता सताने लगी है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समानता के लिए नारी संघर्ष ने अथक प्रयास किया, किन्नर भी अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा है। वर्तमान साहित्यकारों ने किन्नर के जीवन को साहित्य से समाज के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हाशिए पर धकेला गया वर्ग अपने अस्तित्व, अस्मिता और अधिकारों को लेकर निरंतर संघर्षरत है।

धन्यवाद!

–डॉ. पंडित बन्ने, डी.लिट्.
शोध–निर्देशक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)
तह – करमाला, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)
मोबाईल नं. 9657240554 / 9834582128
ईमेल : drpanditbanne@gmail.com

संस्थापक कुलपति
सोलापुर विश्वविद्यालय, सोलापुर

पूर्व पेट्रन
भारत विकास परिषद, पश्चिम महाराष्ट्र प्रांत

अध्यक्ष
हिंदी विकास मंच, सोलापुर

अध्यक्ष
श्री संत वचनपूर्ति शक्तिपीठ, सोलापुर

कार्याध्यक्ष
दक्षिण भारत हिंदी परिषद

उपाध्यक्ष
ज्ञान प्रबोधिनी, पुणे, सोलापुर

उपाध्यक्ष
संगमेश्वर शिक्षण संस्था, सोलापुर

पूर्व-सदस्य
महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी

प्रा. डॉ. इरेश सदाशिव स्वामी
email- swamiiresh@gmail.com
निवास : 'विद्या', 12, ब्रह्मचैतन्य, नगर,
विजयपुर रस्ता, आर.टी.ओ. के निकट,
सोलापुर - 413004.
✆ 9371099500

दिनांक : 12 जुलाई 2021

डॉ. पंडित बन्नेजी, शुभाशीष,

आपका भारत महाविद्यालय, जेकर, इण्डो यूरोपियन लिटररी डिस्कोर्स (युक्रेन) एवं बोहल शोध मंजूषा के संयुक्त तत्वावधान में 22 जून 2021 में संपन्न आन्तरराष्ट्रीय वेबिनार में प्रस्तुत सभी शोध आलेख हरियाणा के बोहल शोध मंजुषा में प्रकाशित होने जा रहे हैं सुनकर बड़ा आनंद हुआ. समकालीन हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श (आदिवासी, पर्यावरण, स्त्री-विमर्श, किन्नर, दलित वृद्धावस्था विमर्श) पर अभ्यासपूर्ण आलेखों का संकलन, संपादन अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा. मैंने वेबिनार का उद्घाटन किया था. मैंने उसे देखा और सुना. वेबिनार सभी दृष्टि से सफल रहा. आयोजक के रूप में आप रहे. मैं आपका अभिनंदन करता हूँ. भविष्य में भी भी आपसे ऐसे ही सफल आयोजनों की अपेक्षा रखता हूँ.

शुभैषी,

इरेश स्वामी

प्रधानाचार्य की कलम से .....

भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल) सोलापूर (महाराष्ट्र) आईक्यूएसी हिंदी विभाग, इण्डो–युरोपियन लिटरेरी डिस्कोस (यूक्रेन) एवं बोहल शोध मंजूषा, भिवानी (हरियाणा) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय वेबिनार दिनांक 22 जून 2021 को 'समकालीन हिंदी साहित्य : विविध विमर्श' इस विषय पर संपन्न हुआ। 'न हिं ज्ञानेने सदृश्यं पवित्रमिह विद्यते', इस उद्देश्य को लेकर 'भारत शिक्षण प्रसारक मंडल' की स्थापना 1952 में जेऊर में हुई। 'भारत शिक्षण प्रसारक मंडल' ग्रामीण विभाग में कार्यरत किसान, मजदूर और अध्ययन से वंचित लोगों के लिए हमेशा कार्य करता आया है। आज सोलापुर जिले में उच्च शिक्षा क्षेत्र में अपनी विशेष भूमिका के लिए पहचाना जाता है। पूर्व प्राथमिक से लेकर उच्च माध्यमिक और उच्च शिक्षा के साथ–साथ तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था भी इस संस्था के माध्यम से प्राप्त होती है। करीब पिछले सात दशक से भारत शिक्षण प्रसारक मंडल ने आर्थिक दृष्टि से गरीब और पिछडे वर्गों के छात्रों को शिक्षा व्यवस्था के प्रवाह में लाने का सफल प्रयास किया है। हमारे संस्था के अध्यक्ष पूर्व विधायक मा. नारायण (आबा) पाटील और सभी संस्था सदस्यों का मार्गदर्शक तथा प्रेरणा हमें मिलती है।

भारत शिक्षण प्रसारक मंडल ने भारत महाविद्यालय जेऊर सोलापुर (महाराष्ट्र) की स्थापना 1995 में की गई। पुण्य लोक अहिल्यादेवी होलकर सोलापुर विश्वविद्यालय सोलापुर अंतर्गत भारत महाविद्यालय ने अपनी अलग छाप छोड़ दी है, अपनी अलग पहचान बनाई है। अध्ययन–अध्यापन के अतिरिक्त शोध कार्य में भी महाविद्यालय आगे बढ़ रहा है। महाविद्यालय शैक्षणिक कार्य के साथ–साथ सामाजिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया है। महाविद्यालय को नैक पुनर्मुल्यांकन में बी–ग्रेड प्राप्त हुआ है।

हिंदी विभाग में कार्यरत हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. पंडित बन्ने तथा डॉ. नवनाथ गाडेकर हिंदी विभाग में योगदान दे रहे हैं। मेरे महाविद्यालय के हिंदी विभाग को मैं बधाई देता हूँ कि इन्होंने 22 जून 2021 को 'समकालीन हिंदी साहित्य : विविध विमर्श' विषय पर सफलता से अंतर्राष्ट्रीय वेबिनार का आयोजन किया। अंतर्राष्ट्रीय वेबिनार के उपलक्ष्य में प्रतिभागी प्राध्यापक एवं शोध छात्रों से शोध–आलेख मंगवाएँ, प्राप्त शोध आलेख अंतर्राष्ट्रीय बहुभाषिक पत्रिका 'बोहल शोध–मंजूषा' भिवानी (हरियाणा) में प्रकाशित कर अच्छे उपक्रम के लिए हिंदी विभाग का हार्दिक अभिनंदन देता हूँ तथा उन्हें शुभेच्छा देता हूँ।

धन्यवाद!

–डॉ. अनंत शिंगाडे
प्रधानाचार्य एवं शोध–निर्देशक,
भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)
तह–करमाळा, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)
मो. 9604885353

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021–वेबिनार विशेषांक Page No. : 15-17

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी जनजीवन और वर्तमान समय

–डॉ. अनंत शिंगाडे

प्रधानाचार्य एवं शोध–निर्देशक, भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल) तह–करमाळा, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)

आदिवासी समाज में उनकी अपनी भाषाओं, संस्कृति और लोक साहित्य, मिथक तथा सृष्टि–कथाओं का एक उद्‌भुत एवं विशाल भण्डार है। आदिवासी एक सामान्य प्रकार का समूह है, जिनके सदस्य एक सामान्य बोली का प्रयोग करते हैं और युद्ध जैसे सामान्य उद्‌देश्यों के लिए या शत्रु का सामना करने के लिए साथ लेकर काम करते हैं। इनकी अपनी एक विशिष्ट भाषा, संस्कृति, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था और परंपराएँ होती हैं।

आदिवासी निवासी हो, विशिष्ट बोली, संस्कृति, अविकसित, मूलनिवासी, आदिवासी है। जंगल और जमीन उनकी संपत्ति हे। अज्ञान, अंधश्रद्धा, प्रगति से दूर आदिवासी है। आदिवासी समाज छोटी बस्ती में, झोपड़ी में रहने वाला अज्ञानी, अर्धनग्न, शोषित, जंगलों पर निर्भर, अप्रगत व्यवसाय करने वाला है। जंगल का राजा अदिवासी है। प्रकृति का गोद में पलने वाला वनपुत्र है। आज सरकारी विकास योजना के कारण जंगल कटाई, खानदान, तालाब निर्माण के कारण आदिवासियों को जंग से हटाया जा रहा है। आजादी के आंदोलन में देश के विभिन्न अंचलों में सशस्त्र आंदोलन आदिवासिों ने किया है।

आदिवासी समाज की सामूहिकता प्रधान प्रवृत्ति है। लोकगीत, लोककथा आदिवासी मन का दस्तावेज है। आदिवासियों का अज्ञान के कारण, जमींदार, धार्मिक व्यक्ति, पुलिस, सरकारी अफसरों द्वारा शोषण हो रहा है। कोयला खदान, औद्‌योगीकरण, जंगल कटाई, बाँध निर्माण के कारण विस्थपितों के पुनर्वास की ओर ध्यान देने से अलग राज्य, नक्सलवादी आंदोलन जैसी नई सूमस्याएँ बन रही हैं। आदिवासी मूलतः वनों में रहने वाले एवं वनों पर ही अपनी उपजीविका चलाते हैं। आदवासियों में अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता की अधिनता दिखाई देती है। आदिवासी हमेशा नशा करते हुए दिखाई देते हैं। जमींदार, पुलिस, समाज एवं शासन के द्वारा इनका शोषण होता है। भारत में संथाल, थार, नागा, करनट, नट, बंजारा, चेंचु, बँगा, खारिया, भुइया, गोंड, हो भील, भोकसा आदि प्रमुख आदिवासी जनजातियाँ है। आदिवासी समाज अज्ञानी, अंधश्रद्धा शोषित, प्रगत समाज से दूर, प्रकृति की गोद में पलने वाला, भारतमाता का सपूत है। जन संस्कृति विरासत भारतीयता की आत्मा है। यह विश्वबंधुत्व, विश्व संस्कृति का रक्षक है।

आदिवासी समाज जाति–प्रथा पर श्रद्धा रखता है। आदिवासियों की समाज व्यवस्था वनों, जंगलों पर निर्भर है। देवी–देवता, हिंदू देवता के समान तथा जंगल से संबंधित है। बलि प्रथा का व्यापक प्रभाव है। अंचल के अनुसार उत्सव–पर्व रहे हैं। पुनर्जन्म पर विश्वास होने का प्रमाण मृतक संस्कार है। जंगल पुत्र, वनवासी,

जंगल के दावेदार आदिवासी भारत का सपूत है। लोकगीत, लोककथा, उत्सव–पर्व, रूढ़ि–परंपरा, संस्कार में भी धीरे–धीरे परिवर्तन हो रहा है। रूढि–परंपरा से शोषित आदिवासी समाज है। भारतीय संस्कृति मूल स्त्रोत आदिवासी संस्कृति में दिखाई देता है। आदिवासी जनसंस्कृति की रक्षा करना, सामाजिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। आदिवासी जीवन की राजनीति जमींदार–पूँजीपातियों के हाथ का खिलौंना है। पुलिस के बढ़ते हुए अत्याचार से भी पिछड़ी जनजातियों का जीवन भय भी हुआ दिखाई देता है। जिसका चित्रण 'अल्मा कबूतरी', 'जंगल के आस पास', 'वंनतरी', 'पिंजरे के पन्ना' आदि उपन्यासों में होने वाले नैतक मूल्यों के हास की तरफ ध्यान दिया गया है। आज आदिवासी समाज राजनीति के चक्रव्यूह में फँस गया।

आदिवासी अपनी जातीयता, संस्कृति, समाज व्यवस्था की रक्षा करना धर्म माना जाता है। अपने धार्मिक क्रिया धर्म के प्रति आदिवासी जीवन में गहरी आस्था होती है। आदिवासी जीवन में धर्म ढोंगी और स्वार्थी पंडित – पुरोहित, ओझा और पूँजीपति वर्ग के हाथ की कठपुतली बना पाया जाता है। आदिवासी धार्मिक जीवन में देवी – देवताओं के प्रति श्रद्धा भाव 'शैलूष', 'सोनामाटी', 'अल्मा आदिवासियो का उनके जंगला से भा बंदखले किया जा रहा है।

हरिराम मीणा कहते हैं – ''आदिवासी इलाकों में बाहरी तत्वों की घुसपैठ सनसे बड़ी समस्या रही है। यहीं से आदिवासी जीवन की पवित्रता में प्रदूषण शुरू होता है और अंत में आदिवासी अस्तित्व का संकट।''

रमणिका गुप्ता के अनुसार – ''आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है। वह प्रकृति का सहयोगी, सह–अतित्व का अभ्यस्त, ऊँच–नीच, भेद–भाव व छल कपट से दूर हैं। वह जमाखोरी या संपत्ति जुटाने की भावना से मुक्त है। वह अन्याय के विरोधी और सामजिक न्याय का पक्षधर है।''

निर्मला पुतुल के अनुसार – ''वैश्वीकरण का प्रतिरोध आदिवासी भाषाओं में लिखे साहित्य में ही संभव है। वैश्वीकरण के जन विरोधी रूप के विरूद्ध प्रतिरोध के स्वर की अनुगुंज आदिवासी साहित्य में सुनाई दे रही है।''

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट के अनुसार – ''जब से आधुनिकता की घुसपैट आदिवासियों के जीवन में हुई है तब से आदिवासी साहित्य, जीवन, भाषा को बहुत नुकसान हो रहा है।''

आज आदिवासियों की मुख्य समस्या विस्थापन और पलायन है। आदिवासी अपने तीन मूल अधिकारों के प्रति अति संवेदनशील है। जल, जंगल और जमीन। जंगल पर ही उसकी जीवन होती है, रोजी–रोटी चलती है। जंगल के बिना आदिवासी का अस्तित्व ही नहीं होता।

निष्कर्ष :-

श्री प्रकाश मिश्र–'जहां फूलते हैं', मनोहर पाठक–'गगन घटा गहरानी', तेजिंदर–'काला पादरी', मैत्रेयी पुष्पा–'अल्मा कबुतरी', भगवानदास मोरवाल–काला पहाड, मणि मधुकर–पिंजरे में पन्ना, राकेश वत्स–'जंगल के आस–पास', सुरेंद्र सिंह श्रीवास्तव–'वनतरी', डॉ. एन. रामन नायर–'सागर की गलियाँ', शिवप्रसाद सिंह– 'शैलूष',

संजीव–'धार', वीरेंद्र जैन–'पार', संजीव–'जंगल जहाँ शुरू होता है' आदि उपन्यासों में आदिवासी जन–जीवन का चित्रण हुआ है।

परंपरा और आधुनिकता का, विकास और विनाश मुख्यधारा की संस्कृति और आदिवासी मूल्यबोध का, अस्तित्व, पहचान और विकास का जो द्वंद्व है, इन सबके बीच 'आदिवासी राजनीति, साहित्य, संस्कृति' की एक नई अवधारणा के निर्माण का यह दौर है।

आज आदिवासियों में चेतना जगी है। वह नई–नई विचारधाराओं और क्रांतियों से परिचित हुआ है। अपनी संस्कृति, भाषा और अपनी अपनी उदात्त जीवन–शैली की अभिव्यक्ति से हिंदी को समृद्ध कर रहा है। आदिवासी समाज शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद कर रहा है। समस्याओं से जूझने के लिए वह संघर्षरत है। आदिवासी समाज की वर्तमान की वर्तमान स्थिति में निरंतर परिवर्तन आ रहा है। अब वहाँ शिक्षा केंद्र खोले जा रहे हैं। ताकि अधिक से अधिक लोग शिक्षित होकर अपनी स्लिति सुधार सकें। आज भी आदिवासी समाज अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए हुए हैं। भारत प्रमुख आदिवासी समुदायों मेंथी लाला, धानका, गोंड, मुण्डा, खडिया, हो, बोडो, कोल, भील, कोली, फनात, सहरिया, संथाल, कुडमी, महतो, मीणा, उरांव, लोहारा, परधान, बिरहोर, पारधी, आंध, टाकणकार आदि है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. आदिवासी साहित्य विमर्श–सं. गंगा सहाय मीणा, अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, सं. 2014
2. समकालीन हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आदिवासी जनजीवन – डॉ. पंडित बन्ने, अभिषेक प्रकाशन, दिल्ली सं. 2017
3. हिंदी में आदिवासी जीवन केंद्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन – डॉ. बी.के. कलासवा, शांति प्रकाशन, रोहतक (हरियाणा)
4. युद्धरत आम आदमी – सं. रमणिका गुप्ता, नवंबर, 2015, नई दिल्ली।
5. बोहल शोध मंजूषा– सं. डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट, भिवानी, हरियाणा।

मो. 9604885353

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021–वेबिनार विशेषांक Page No. : 18-21

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कैलाश बनवासी के साहित्य में विविध विमर्श

–प्रा. डॉ. बी. आर. नळे, शोध निर्देशक
–सौ. अमृता अनिल तौर, शोधार्थी
हिंदी विभाग, सुंदरराव सोळंके महाविद्यालय, माजलगाव।

मानव जीवन की प्रगति, उन्नति और विकास की धरोहर में साहित्य का विशेष योगदान रहा है। जिसमें साहित्यकार पहले अपने विवेक और संवेदना के धरातल पर मानव जीवन को प्रभावित करने वाली सभी समस्या, घटना, प्रवृत्ति, परिस्थिति और परिवेश का समग्रता के साथ आकलन करता है। उसी आकलन के अधार पर मानव समाज के सामने अपनी तर्कबुद्धि के सहारे निरंतर 'नए–नए विकल्प' रखता है। वही विकल्प व्यक्ति तथा समाज जीवन में व्याप्त समस्याओं को निष्कासित करते हुए परिवर्तन की राह दिखाते आएं हैं। वही विकल्प व्यक्ति तथा समाज जीवन में संवैधानिक मूल्यों का बीजारोपण करते हुए स्वातंत्र्य, समता, बंधुता, न्याय और धर्मनिरपेक्षता से प्रेरित समाज व्यवस्था के निर्माण में अपना योगदान देते हुए आज के मुकाम तक पहुंचे है।

आज विज्ञान–प्रौद्योगिकी के प्रभाव से प्रेरित भूमंडलीकरण ने सब किए कराएं पर पानी फेरना शुरू किया है। आज उसके मूल में बाजारवादी व्यवस्था काम करने लगी है। इस प्रकार की व्यवस्था ने व्यक्ति को इच्छा, आकांक्षा, महत्वकांक्षा और सपनों की ऐसी घुट्टी पिलाई है कि, आज हर कोई अपना विवेक खोकर उसकी धुन पर नाचने लगा है। इसी के चलते शोषण, अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न, उपेक्षा और प्रताड़ना की व्यवस्था अधिक मजबूत होने लगी है। आज बाजारू मानसिकता के चलते दिल, दिमाग, कर्म और खून के रिश्तों पर पैसा हावी हो जाने के कारण आदमी और उसके रिश्तों की कीमत दो कौड़ी की हो गई है। जिसके चलते घर–परिवार और समाज में आए दिन नयीं–नयीं समस्याएं जन्म लेने लगी है। जिसका चित्रण साहित्यकार बड़े संवेदनशीलता के साथ करते हुए नए विकल्प व्यक्ति तथा समाज के सामने अपनी रचनाओं के माध्यम से रखने लगे है। वही विकल्प विश्व समाज को समस्या के दल–दल में से बाहर निकालकर नई राह दिखा सकते है। उसी राह को ढूंढने के लिए विश्व समाज में प्रचलित परम्परा और समस्याओं पर विमर्श करने की आवश्यकता ने जोर पकड़ा। जिसके चलते विश्व साहित्य में विमर्श की चर्चा शुरू हो गई। इसी के चलते भारतीय साहित्य के केंद्र में विमर्श आ गया। उस विमर्श को लेकर हिंदी साहित्य के अंतर्गत सन १९६० के बाद चर्चा आरंभ हुई। इसका कारण यह है कि, आजादी के बाद भी स्त्री, दलित, आदिवासी, किन्नर, किसान, वृद्ध जैसे लोगों पर अन्याय अत्याचार हो रहे है। उनका मानसिक एवं शारीरिक शोषण हो रहा है। दलित, आदिवासी, किन्नर जैसे लोग समाज की मुख्य धारा से वंचित रहने लगे है।

आज दलित, आदिवासी, किन्नर तथा स्त्री पढ़ने लिखने और सोचने लगी। उन्हें अपनी गुलामी, लाचारी, बेबसी, गरीबी आदि के कारणों का एहसास होने लगा। वे इन सभी से मुक्ति पाने तथा समाज की मुख्य धारा

में आने के लिए न्याय की गुहार लगाने लगे। अपने जीवन में जो भोगा, सहा और अनुभूत किया, उसको अभिव्यक्त करने लगे। अपनी पीड़ा, दुःख, दर्द, तकलीफ तथा शोषण को विश्व के संन्मुख रखने लगे है। आज अभिव्यक्ति की इस छटपटाहट ने शोषितों को एक ओर लिखने के लिए मजबूर किया है, तो दुसरी ओर उनकी आवाज़ को पैना और तीखा बना दिया है। उसकी छटाएं हमें हिंदी साहित्य के अंतर्गत दलित, आदिवासी, किन्नर, किसान, वृद्ध, स्त्री शोषण की अभिव्यक्ति में देखने के लिए मिलती है। इस परम्परा में हिंदी साहित्य के युवा कथाकार कैलाश बनवासी का नाम प्रमुख रूप से सामने आ जाता है। जिन्होंने स्री, किसान, दलित और वृद्धों की समस्याओं को केंद्र में रखकर अपने साहित्य का सृजन किया है। प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से इन सबके बारें में कैलाश बनवासी की विचार धारा को उनके साहित्य के अधार पर रेखांकित किया जा रहा है।

स्त्री विमर्श :-

कैलाश बनवासी का २०१४ में आया 'लौटना नहीं है' यह उपन्यास स्त्री विमर्श पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका 'गौरी' है। गौरी को शादी के बाद अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता है। उसे अपने ससुरालवालों सहित अपने पति की उचित अनुचित सभी बातें माननी पड़ती है। गौरी का पति दिन–रात शराब पिता है और शराब पीकर रोज गौरी को मारता है। वह गौरी को शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित करता है। गौरी रीति–रिवाज और माता–पिता के संस्कार की वजह से पति धर्म का निर्वाह करती है। पति के प्रत्येक जुल्म और शोषण को चुपचाप बिना विरोध करते हुए सहती है। लेकिन दिनों–दिन यह अन्याय–अत्याचार बढ़ते ही जा रहे थे। वह मारपीट गाली–गलौज और झगड़े से थक जाती है। वो यह सब नहीं सह पा रही थी।

एक दिन वह अपने पिताजी को चिट्ठी लिखती है कि, 'बाबूजी : अब मैं इस आदमी के साथ नहीं रह सकती। आपने जिस आदमी को मेरा हाथ पकड़ाया है। वह शराबी तो है ही रोज–रोज मुझसे मारपीट करता है। मुझे जान से मारने की बात करता है। अब मैं इसके साथ नहीं रह सकती। अगर आप लोग मुझे जरा भी चाहते है तो। मुझे इस नरक से निकाल लो नही तो मैं कुछ भी कर लूंगी। मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि, बाकी जीवन मैं आप लोगों पर बोझ नहीं बनूंगी। मैं आपसे हाथ जोड़कर अनुरोध करती हूं कि, मुझे इस दलदल से निकाल लीजिए।'[१] गौरी इस अन्याय अत्याचार से मुक्ति पाना चाहती है। वह अपने माता–पिता को विश्वास दिलाती है कि, मैं बाकी जीवन आप पर बोझ नहीं बनूंगी। माता–पिता को उस पर विश्वास रखना चाहिए था। जब गौरी अपने मायके में रहती है तभी गौरी के पति की मृत्यु हो जाती है। तलाक ना होने के कारण समाज उसे राजकुमार की विधवा का जीवन जीने के लिए मजबूर करता है। उसे विधवा की सारी रस्में रीति–रिवाजों को न चाहते हुए भी निभाने पड़ते है।

''इसी का चित्रण लेखक ने इस उपन्यास में किया है। लेखक ने इस उपन्यास के अंत में संकेत दिया है कि, अगर स्त्री पढ़ी लिखी हो और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो तो पुरुषसत्ता व्यवस्था को भी चुनौती दे सकती है।

किसान विमर्श :-

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत में ७५ प्रतिशत से भी अधिक लोग खेती पर अपने जीवन का उदाहरण करते है। पहले वर्षा, जमीन, खाद सब अच्छा होने के कारण खेती में अच्छी फसल होती थी। धान के भी अच्छे दाम मिलते थे। इसी कारण हर किसान खेती करके बहुत खुश था। 'जय जवान जय किसान' इस

उक्ति के कारण किसान एक प्रतिष्ठा का विषय बन गया।

लेकिन आज इक्कीसवीं सदी में किसान प्रतिष्ठा का विषय न रहकर 'किसान आत्महत्या' का विषय बन गया है। इस समस्या ने पुरे विश्व को विचलित कर दिया है। कृषि प्रधान देश अब कृषक आत्महत्या प्रधान देश बन गया है और यह सबसे बड़ा चिंता और चिंतन का विषय बन गया है। आज हमारे देश में ही नहीं सारी दुनिया में सबसे अधिक दुर्दशा किसानों की ही है। किसान सबके लिए तो अन्न उगा रहे है। लेकिन खुद भुखा मरने के लिए विवश है। इस समस्या के अनेक कारण है। इसी का चित्रण लेखक कैलाश बनवासी ने अपने कहानी संग्रह 'प्रकोप' तथा अन्य कहानियां में किया है।

'प्रकोप' कहानी में लेखक ने अकाल का चित्रण किया है। इस कहानी का प्रमुख पात्र 'इतवारी' है। इतवारी ईमानदार, सीधा, नरमदिल आदमी है। उसे भगवान पर पुरा भरोसा है। इसी कारण वह अपने खेत में पुरी ईनामदारी, सच्ची लगन और मेहनत से फ़सल उगाता है। लेकिन बार–बार अकाल पड़ने के कारण फसल की मात्रा कम हो जाती है। इसी कारण इतवारी कर्ज में डूब जाता है। यहां तक कि, उसे अपने बैल तक बेचने पड़ते है। बार–बार निराशा के कारण इतवारी पागल हो जाता है और इसी पागलपन में एक दिन वह आत्महत्या करता है। इतवारी के मरने के बाद घर की पुरी जिम्मेदारी छोटे बेटे आजू पर आ जाती है। घर में जो थोड़ा सा धान बचा था। उसी को बेचकर ही लकड़ी, तेल, नमक लाया जाता था। एक दिन जब जानकी थोड़ा सा धान निकाल रही थी कि, तभी गीता ने रास्ता रोक लिया और भोलेपन से पूछा – 'माँ, सब धान बेच देंगे तो हम किसको खाएंगे?'[२] जो किसान पुरे विश्व के लिए अन्न उगाता है। आज वहीं किसान और उसका परिवार भुखा मरने के लिए विवश है। कितनी भयावह स्थिति है। इसी का चित्रण लेखक ने अपनी कहानियों में किया है।

दलित विमर्श :–

भारतीय संस्कृति का मूल ढाँचा वर्ण व्यवस्था, जातिवाद एवं ऊँच–नीचता के भेदभाव पर आधारित है। इसी कारण समाज का बहुत बड़ा वर्ग सदियों से उपेक्षित रहा है। मनुष्य होने के बावजूद समाज व्यवस्था ने उसे पशुतुल्य जीवन जीने के लिए विवश कर दिया है। इसी का चित्रण कैलाश बनवासी ने 'बाजार में रामधन' इस कहानी संग्रह में किया है। 'गुरुजी और लोकेश की कहानी' इस कहानी में लोकेश हरिजन है। अनुसूचित जाति का है। इसी संदर्भ में लेखक लिखते हैं –'गांव में और कुछ पता चले न चले, जात सबसे पहले पता चलती है।'[३] लोगों के उपनाम से कौन स्वर्ण है और कौन हरिजन है। इसका पता चलता है। लोकेश दलित होने के कारण उसका घर गांव के बाहर है। एक तो गरीबी और परिवार में तीन–चार छोटी–छोटी बहने। इसी कारण लोकेश अपने परिवार का पेट भरने के लिए अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता है। कभी–कभी तो लोकेश को भुखा ही रहना पड़ता है। अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए सुबह चार बजे से उठना पड़ता है। सुबह चार बजे ही उसे खेतों में सीला बीनने (दूसरों के खेत में फसल काटते समय जो धान गिरता है उसे उठाने के लिए) जाना पड़ता है और उसी धान से अपने परिवार का पेट भरना पड़ता है। इसी का चित्रण लेखक किया है।

वृद्ध विमर्श :–

'हम दो हमारे दो' संकल्पना ने संयुक्त परिवार को विभक्त कर दिया है। परिवार और रिश्ते बिखरते हुए

दिखाई दे रहे है। इसी कारण वृद्ध विमर्श आज के युग की आवश्यकता बन गया है। क्योंकि आज वृद्ध को बोझ मानकर वृद्धाश्रम में छोड़ दिया जाता है। आज हम इतने व्यस्त हो गए है कि, हमारे पास बुजुर्गों को समझने का समय ही नहीं है। इसका मुख्य कारण संयुक्त परिवारों का टूटना है। इसी कारण हम बुजुर्गों की तरफ ना ही ध्यान दे पा रहे हैं और ना ही उनके अनुभव और ज्ञान का लाभ उठा पा रहे है। परिणाम स्वरूप हमारी पीढियाँ एक दूसरे के नजदीक आने की अपेक्षा दूर होती जा रही है। यह खाई हमें अपनी सभ्यता और संस्कृति से दूर ले जा रही है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि, अपने बुजुर्गों के ज्ञान तथा अनुभव को दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित नहीं कर पा रहे है। इसी का चित्रण कैलाश बनवासी की कहानी 'प्रतिक्षा' में देखने के लिए मिलता है।

कहानी में बूढ़ा आदमी रेलवे से सफर करता है। उसकी पहचान मण्डावी से हो जाती है। बुढ़े के साथ एक छोटी बेटी है। इसीलिए मण्डावी बूढ़े से पूछते हैं कि, आपको बेटे है या नहीं। तभी बुढ़ा कहता है। 'दो–दो बेटे हैं। बहुएं है। पर इनका होना नइ होना मेरे लिए एक बराबर है। कुछ संयत होकर बोला एक बेटा रायपुर में है और एक बिलासपुर में। दोनों खा कमा रहे हैं, भगवान की दया से। मगर जब उनको अपने बुढ़ा रहे बाप की सुध नही तो क्या मतलब? बहुत जरूरी काम रहा तभी जाता हूं और दरवाजे से उसी पॉव वापस खैर'[४] नौकरी के कारण युवा पीढ़ी शहरों में जाकर रहने लगी है। लेकिन अपने मां–बाप को गांव में अकेला छोड़ दिया जाता है। इसी कारण परिवार का विभाजन हो रहा है। रिश्तो में दरार पड़ने लगी है। इसी का चित्रण अपनी कहानी में किया है।

निष्कर्ष :–

कैलाश बनवासी ने अपने साहित्य के माध्यम से स्त्री, दलित, आदिवासी, किन्नर, किसान, वृद्ध जैसे लोगों को न्याय देने का काम किया है। समाज में स्री पर अनेक अन्याय अत्याचार हो रहे है। किसान जो सारे विश्व के लिए अन्न उगाता है, वही किसान आज भूखा रहने के लिए विवश है। बार बार अकाल के कारण किसानों को आत्महत्या करनी पड़ती है। किन्नर, आदिवासी, दलित लोग समाज की मुख्यधारा से वंचित है। इसी कारण आदिवासी, किन्नर, किसान, वृद्ध, दलित जैसे लोगों को न्याय देने के उद्देश्य से साहित्य का सृजन किया है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. कैलाश बनवासी, लौटना नहीं है, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०१४, पृष्ठ १४६
२. कैलाश बनवासी, प्रकोप तथा अन्य कहानियां, साहित्य भंडार इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, २०१५ पृष्ठ ३४
३. कैलाश बनवासी, बाजार में रामधन, भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण २००४, पृष्ठ १३१
४. कैलाश बनवासी, बाजार में रामधन, भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण २००४, पृष्ठ २६

मो. ६४२१६४२८८५

Email : tauramruta@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 22-25

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य में प्रचलित विविध विमर्श

–अनुराधा कुमारी (शोधार्थी)
–डॉ० राजिन्द्र पाल सिंह जोश
हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ 160014

वर्तमान हिंदी साहित्य अपने भीतर अनेक संकल्पनाओं और संभावनाओं को समाहित किये हुए है। इसने असंख्य मूक चीत्कारों को स्वर प्रदान कर उनमें आत्मसम्मान तथा मनोबल फूंक दिया। साहित्य मात्र अतीत का गवाह बन कर नहीं रहता अपितु नए जीवन का सृजन भी करता है। पीड़ित शोषित उपेक्षित निसहाय जन की पीड़ा अपने अंतस में समाये उसे समाज में अपनी सटीक जगह बनाये रखने के लिए साहस और वाणी प्रदान करता है। समाज में ऐसे अनेक वर्ग हैं जिनकी दशा अत्यंत निम्न है और उन्हें हीन तथा उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता है। आधुनिक काल में इस विशिष्ट वर्ग के प्रति गहन चिंतन मनन किया जा रहा है, परिणामस्वरूप साहित्य में विविध विमर्श प्रचलित हो गए हैं जैसे दलित–विमर्श, आदिवासी–विमर्श, नारी–विमर्श, वृद्ध–विमर्श, किन्नर–विमर्श, प्रवासी–विमर्श आदि। जिनका कार्य इस विमर्श के अधीन विभिन्न लोगों की दशा व दिशा सुधारने के साथ ही समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाना भी है।

जब किसी विषय पर गंभीर चिंतन किया जाये तथा किसी एक दृष्टिकोण से स्थिति या समस्या पर विचार अथवा बहस की जाती है तब वह विमर्श बन जाता है। रोहिणी अग्रवाल के अनुसार– "विमर्श यानी वाद–विवाद, संवाद। यानि किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट पलट कर देखना, इसे समग्रता से समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय सन्दर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना।" इस प्रकार जब दलित, नारी, आदिवासी तथा वृद्ध, किन्नर, प्रवासी को केंद्र में उपस्थित कर उनकी दशा, निम्न स्थिति पर विचार मनन, वाद–विवाद या बहस कर अवस्था सुधारने का प्रयास किया तो वह विभिन्न विमर्श के रूप में साहित्य में प्रचलित हो गया। जिनमें से कुछ प्रमुख विमर्श इस प्रकार हैं।

दलित–विमर्श पर बात करने से पूर्व इसके अर्थ से परिचित होना अति आवश्यक है। दलित शब्द का अर्थ है– रौंदा गया, कुचला गया, जो लम्बे समय से शोषित है। जब दलित तथा शोषित वर्ग से जुड़ी विभिन्न समस्याओं पर गहन चिंतन किया गया तो वह दलित–विमर्श कहलाया। कँवल भारती के अनुसार– "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया हो। जिसे शिक्षा ग्रहण करने की कोई स्वतंत्रता न हो। जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की छाप लगा दी हो वही दलित है और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।" जिसे समाज में दबाया तथा कुचला गया है वह दलित की श्रेणी

में शामिल है, पिछड़े वर्ग की जाति या अनुसूचित जाति तथा जनजाति, कई बार असहाय तथा लाचार स्त्रियों को भी दलित मान लिया जाता है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में आज दलित–विमर्श पर लिखा तथा बोला जा रहा है चाहे वह कहानी हो, उपन्यास हो आत्मकथा हो, किसी की जीवनी हो अथवा कविता। कहानी विधा में मुंशी प्रेमचंद के समय से ही दलितों के बारे में लिखा जा रहा है परन्तु समकालीन साहित्य में इसका अधिक विस्तार देखने को मिलता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि तथा मोहन दस नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, रूपनारायण सोनकर, श्योराजसिंह बेचौन, सुशीला टॉकभौर, तुलसीराम का नाम विशेष रूप से उलेखनीय है। दलितों की स्थिति को उजागर करती हुई सूरजपाल सिंह की कहानी से एक – "ओ भंगानिया, नेक पीछे हट के पानी पी, यह शहर ना है, मारे लठिया के कमर तोड़ दी जाएगी। साले भंगिया चमार के शहर में जाके नए–नए लत्ता (कपड़े) पहन के गाँव में आ जात है। कुछ पत्तो न चलतु कि जो भंगिया– चमार के हैं कि नाय (नहीं)।" इस कहानी के माध्यम से बताने का प्रयास किया गया है कि दलित व्यक्ति यदि शहर जा कर पढ़ लिखने के बाद नौकरी करने भी लगे तो गाँव वापिस आ कर स्वर्ण जाति के हृदय में उनके प्रति वही घृणा के भाव ही विद्यमान है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' को दलित साहित्य का दस्तावेज मन जाता है। आत्मकथा पढ़ते हुए मानों दिमाग की नसें तन कर फटने को हो जाती है कि किस प्रकार एक बालक के साथ बचपन से ही इतना अमानवीय व्यवहार जाति के कारण किया गया। जिस शिक्षक का आदर्श रूप सर्व प्रचलित है वही एक अनुसूचित जाति के बच्चे के लिए भय का कारण बन गया। अपने आत्मकथ्य में वे लिखते हैं– "चूहड़े के, तू द्रोणाचार्य से अपनी बराबरी करे है ... ले तेरे ऊपर मैं महाकाव्य लिखूंगा... उसने मेरी पीठ पर सटक सटक छड़ी से महाकाव्य रच दिया। वह महाकाव्य आज भी मेरी पीठ पर अंकित है....मेरे मस्तिष्क के रेशे–रेशे पर अंकित है।" कक्षा में मात्र एक प्रश्न करने की सजा इतनी बड़ी भी हो सकती है यह अस्वीकार्य है, परन्तु दलित वर्ग के साथ अत्यंत बदसलूकी भरा व्यवहार किया जाता रहा है तभी आज उनकी दशा सुधारने और पीड़ा को स्वर प्रदान करने के लिए साहित्य में दलित विमर्श की आवश्यकता पड़ी।

नारी–विमर्श सदियों से शोषित होती हुई आई स्त्री से सम्बंधित है। यूँ तो समाज में उसे पुरुष का आधा अंग और समाज का अभिन्न हिस्सा समझा गया, किन्तु पितृसत्तात्मक समाज ने उसे सदैव दोयम दर्जा ही प्रदान किया है। एक तरफ तो उसे महिमा मंडित किया गया और दूसरी तरफ उसे डायन कुलटा छिनाल जैसे अपशब्दों द्वारा भी संबोधित किया गया। पुरुष प्रधान समाज ने उसे अपने हाथों की कठपुतली बना कर अपने अनुसार नाचना चाह है लेकिन आज नारी में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा है। यह नारी–विमर्श के फलस्वरूप संभव हुआ। यह स्त्री पुरुष की समानता तथा सामान अधिकार का हिमायती है। रेखा कस्तवार के अनुसार– "स्त्री–विमर्श स्त्री जीवन के अनछुए, अनजाने पीड़ा जगत के उद्‌घाटन के अवसर उपलब्ध करवाता है, परन्तु उसका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन में स्त्री के दोयम दर्जे की स्थिति पर आंसू बहाने और यथास्थिति बनाये रखने के स्थान पर उन कारणों की खोज से है जो स्त्री की इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है। यह स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है।" नारी–विमर्श नारी को ऐसी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है जिस से वह अपने प्रति होने वाले शोषण के विरुद्ध आवाज उठा सके। अनेक महिला लेखिकाओं का इसमें अतुलनीय योगदान है जैसे कृष्णा अग्निहोत्री, कृष्णा सोबती, अनामिका, मृदुला गर्ग, रमणिका गुप्ता, रेखा कस्तवार, तसलीमा नसरीन, प्रभा

खेतान, रोहिणी अग्रवाल आदि। इन सभी ने अपनी लेखनी के माध्यम से नारी को विश्व धरातल पर एक मंच प्रदान किया है जहाँ से वे अपनी बात सम्पूर्ण जगत को सुना सके और अपने हक़ की लड़ाई लड़ते हुए स्वयं को सशक्त भी कर सके।

अब परिस्थितियाँ परिवर्तित होती जा रही हैं नारी ने भी अपने आपको पुरुष के समक्ष समझे जाने की मांग की और प्राचीन बेड़ियों से मुक्ति की चाह ने उसे संघर्ष के लिए भी प्रेरित किया है। "इक्कसवीं शताब्दी में पहली बार ऐसी परिस्थितियाँ बनी हैं जब स्त्री सचमुच स्वतंत्र हो सकती है, इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्री को अपनी मानवीय अस्मिता के लिए संघर्ष नहीं करना चाहिए। जो स्त्री ऐसा नहीं करती, वह या तो मुर्ख है या कायर अथवा दमन के निरंतर और कठोर रूपों ने उसके व्यक्तित्व को निस्तेज कर दिया है। उसने अपनी समस्त उर्जा को समझौते में ही खर्च करने का निर्णय लिया है।" अतः स्त्री को अपनी उर्जा का प्रयोग स्वयं के लिए सामान अधिकार प्राप्ति के लिए लगाना चाहिए ताकि वह सभी पक्षों से मजबूत हो सके। कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने उपन्यास 'कुमारिकाएँ' में स्त्री के कुंवारेपन को आधार बनाया है कि कुंवारेपन को झेलते हुए उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है लेकिन समाज का कोई भी प्रतिनिधि इनकी समस्या की तरफ ध्यान तक नहीं देता तो सुलझाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। वंदना ऐसे ही समाज की मानसिकता पर प्रहार करती हुई कहती है – "जब समाज का मेरे प्रति कोई दायित्व नहीं, न मेरी मानसिकता का वह हिस्सेदार है तो उसकी थोथी मान्यता के लिए मैं कुंठा नहीं पाल सकती।" यदि यह पुरूषवादी समाज नारी की की समस्याओं में सहभागी नहीं बन सकता। उसे कोई अधिकार नहीं स्त्री की राह में कांटे बिछाने का और उन्नति में अवरोधक बने। महिला आज इस तथ्य से अवगत होती जा रही है और अपनी उन्नति के लिए प्रयत्नशील भी है। नारी विमर्श ने उसे एक सार्थक दृष्टिकोण प्रदान करने में अहम् भूमिका निभाई है।

वृद्ध–विमर्श आधुनिक और उत्तर आधुनिकता की वजह से उभरी एक भयावह स्थिति है। प्राचीन भारतीय समाज में वृद्धों का पूजनीय व सम्माननीय स्थान रहा है लेकिन आज यह स्थान अपने स्तर से गिर गया क्योंकि मनुष्य के जीवन में अर्थ का महत्व बढ़ा और उस से आगमन हुआ रिश्तों के खोखलेपन का – "भारतीय समाज में, वर्तमान में संबंधों की जड़ों में खोखलापन आ गया है – अब घर आँगन, बाड़े, चबूतरे यहाँ तक कि असहाय माता–पिता का भी या तो बंटवारा हो जाता है या फिर उन्हें छोड़ दिया जाता है। आज आदमी के सेवानिवृत होते ही वह उपेक्षा का शिकार होने लगता है। ग्रेच्युटी और पेंशन की रकम, रुपए–पैसे रहने तक तो वह बाबा, बाबु जी, दादा जी, दादू के संबोधनों से पुकारे जाते हैं, फिर वे बुड्ढे डोकरे और सठियाए हुए लोगो जैसे उद्‌बोधनों से अपमानित किये जाते हैं।" आज का युवा भौतिकवादी अधिक हो गया है वह भूल जाता है की एक अकेली माँ बच्चों को पलने के लिए कितने कष्ट उठती है लेकिन वही आज चार बच्चों से एक माँ नहीं सम्भाली जाती है। यही स्थिति बुजुर्ग होते पिता की भी है, जो अपने बच्चों की परवरिश में अपना सब कुछ दावं पर लगा देता है लेकिन जब बुढ़ापे में उसे सहारे की आवश्यकता पड़ती है तो कोई नहीं आता।

वर्तमान साहित्य में वृद्धों की इस समस्या की ओर ध्यान दिया गया और उनके पक्ष में अनेक स्वर मुखरित हो गए। अनेक लेखकों ने वृद्धों की अपेक्षाओं व उपेक्षाओं को परिलक्षित करने का कार्य किया है। पाश्चात्य संस्कृति के आगमन से पारिवारिक ढांचे में परिवर्तन आया है जिसमें घर के बड़े बूढों को बेकार की वस्तु समझा जाने लगा है। इस एकाकीपन के कारण वे मानसिक विकार से ग्रसित हो जाते हैं। मधु कांकरिया ने अपने कहानी

संग्रह 'युद्ध और बुद्ध' में संकलित 'मिसफिट' कहानी में अपूर्वा के पिता की ऐसे ही स्थिति दिखाई है। अपने पिता के सन्दर्भ में कहती है – "सोचा था इंडिया जाउंगी, यार दोस्तों के साथ घुमुंगी। ओह, कितनी तमन्नाओं के साथ मैं यहाँ आई थी। पर जब से आई हूँ, इनकी एक ही रत बराबर सुन रही हूँ– मुझे मार डालो, मुझे मरना है। मुझे कोई जहर की सुई दे दे, कोई मुझे नदी में डुबो दो, कोई बिजली का करंट लगा दे। एक बार तो घर के पास वाले तलब में ही कूद पड़े थे।" कितनी दुखद स्थिति है की घर का बुजुर्ग मरने के बारे में सोच रहा है और पुत्री को इस बात का अफ़सोस अधिक है की विदेश से वापिस आने के बाद वो पिता की मानसिक बीमारी के कारण कहीं घूम पाने में असमर्थ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है की साहित्य में प्रचलित ये विमर्श दलित, नारी तथा वृद्धों की भलाई व उद्धार की कमाना करते हैं। दलित भी समाज में सुवर्ण की भांति सम्मान से जीने के अधिकारी है, नारी को भी एक मानव की तरह देख कर पुरुष के समक्ष अधिकार दिए जाने चाहिए और प्रत्येक घर में बुजुर्गों को भी वाही प्रेम तथा आदर मिलना चाहिए जिसके वे अधिकारी है। हिंदी साहित्य की लगभग प्रत्येक विधा में इन विमर्शों पर लिखा जा रहा है ताकि इनकी स्थिति में परिवर्तन लाया जा सके। जिन्हें कभी हाशिये पर रख कर नजरंदाज किया गया था आज वही फिर से साहित्य की वजह से केंद्र में आ गये हैं जो की एक अच्छे भविष्य का संकेत है।

सन्दर्भ सूची :–

1. अग्रवाल, रोहिणी, इतिवृत की संचेतना और स्वरुप, हरियाणा : आधार प्रकाशन, 2006, पृष्ठ 211
2. लिम्बाले, शरण कुमार, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2014 पृष्ठ 14
3. चौहान, सूरजपाल, हैरी कब आएगा, गाज़ियाबाद : अनुभव प्रकाशन, 1999, पृष्ठ 28
4. वाल्मीकि, ओम प्रकाश, जूठन, नई दिल्ली : राधा कृष्ण प्रकाशन, 1997, पृष्ठ 34
5. कस्तवार, रेखा, स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009, पृष्ठ 26
6. राजकिशोर,स्त्रीत्व का उत्सव, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2006, पृष्ठ 11
7. अग्निहोत्री, कृष्णा, कुमारिकाएँ, नई दिल्ली : कल्याणी शिक्षा परिषद्, 2010, पृष्ठ 192
8. तिवारी, स्वाति, अकेले होते लोग, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2009, पृष्ठ 21
9. कांकरिया, मधु, युद्ध और बुद्ध, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2015, पृष्ठ 127

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 26-29

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिन्दी साहित्य में वृद्धावस्था विमर्श

-अनुराग चौधरी

U.G,PG (Hindi Hans), दिल्ली विश्वविद्यालय।

प्रस्तावना :-

साहित्य जो सभी के हित के लिए हो। जिसका सम्बन्ध समाज के सामान्य जन से हो साहित्य कहलाता है। मानव के जीवन में साहित्य का विशेष स्थान है। अन्य विषयों की तुलना मे उसका अलग ही योगदान है। साहित्य के द्वारा ही समाज में फैली आडम्बर निहित व्यवस्थाओं का पर्दाफाश किया जाता है। कहां जाता है कि साहित्य ही समाज का आधार स्तम्भ होता है। जो समग्र रूप में व्याप्त आडम्बरों ब्रह्यडम्बरों, समस्याओं को चित्रित कर उन पर ध्यान आकृष्ट करके उनके समाधान का मार्ग प्रस्त करता है। साहित्य की इसी सब विशेषताओं से भिज्ञय होकर आचार्य रामचन्द्र जी ने साहित्य पर अपना विचार प्रत्येक देश का साहित्य जनता की चिन्तवृत्ति का सच्चा प्रतिबिम्ब होता है के रूप में व्यक्त किया है। हिन्दी साहित्य में मुख्य रूप से विविध विषयों पर विचार विमर्श किए गए है। चाहे व स्त्री विमर्श हो या विधवा विमर्श या फिर दलित विमर्श या आदिवासीस विमर्श हो परन्तु इसी विमर्शों में वृद्ध विमर्श की भी एक गूंज सुनायी देती है। जो आज समकालीन के परिदृश्य से गम्भीर, चिंतन–मनन आवश्यक रूप में दिखायी देता है। नूतन काल में युवा पीढ़ी का बोल–बाला है। आज भारत की 65 प्रतिशत जनसंख्या 35 वर्ष से कम आयु का है। माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने लंदन के अपने अभिभाषण में यह मंतव्य व्यक्त किया था कि भारत जवानी से लबालब भरा हुआ देश है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि जिस देश की 65 प्रतिशत जनसंख्या नवयुवकों का है उस देश के नवयुवकों का नजरियाँ किस रूप में रहा है। इस पर चिंतन–मनन करना हम सब की साहित्य की आवश्यक हो जाती है। वृद्धावस्था पर हम जब भी ध यान केन्द्रित करते है। तो हमारे समक्ष एक चित्र उभर कर आता है। जिसमें जर्जर, शिथिल शरीर गिरे हुए दाँत, सफेद बाल, हल्के चिड़चिड़ापन के साथ छड़ी ही मित्रवत व्यवहार के साथ अपना (वृद्धावस्था) यापन करते है। मनुष्य के जीवन में पाँच अवस्थाएँ मानी गय है। शैशावस्था, बालावस्था किशोरावस्था एवं प्रौढावस्था के बाद जो अवस्था आता है। उसे हम वृद्धावस्था के नाम से सम्बोधित करते है।

शैशावस्था में बच्चा काफी छोटा होता है और वह अपने माता–पिता पर अवलंबित होता है या रहता है। किशोरावस्था में वह जोश, ऊर्जा, शक्ति से परिपूर्ण होता है। प्रौढ़ावस्था में वह माता–पिता अर्थात् परिवार राज्य राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारियों के बरतबी निर्वाहन करता है। वृद्धावस्था तक पहुंचते–पहुंचते व्यक्ति का शरीर शिथिल हो जाती है आँखों से स्पष्ट दिखायी नही देता है। और कमर झुकने लगती है। ऐसी अवस्था में वह दूसरे व्यक्ति पर आश्रित रहने की बाध्य हो जाता है। इसी बाध्यता, विवशता के कारण ही उसके मन में संत्रास की भावना उठती है और वह अपने जीवन में हारा हुआ एवं कमजोर महसूस करता है हमें वृद्धों के साथ दुरस्त वाली

भावना नही बल्कि समीपता वाली प्रवृत्तियां रखनी चाहिए। उनके साथ सहचर्य वाली विशेषता का प्रयोग कर प्रेम का संबंध स्थापित करना चाहिए। वृद्ध व्यक्ति ज्ञान का भण्डार होता है। और वह अपने ज्ञान के माध्यम से प्राचीन, परिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सांस्कृतिक, नैतिक जैसी श्रेष्ठ विचारों से अवगत करा सकता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी से ज्ञान हस्तांतरण वृद्धों के माध्यम से संभव होता है। जिससे समकालीन नवयुवकों आज के परिदृश्य को समझने में काफी ज्यादा मिल सकती है।

वृद्धावस्था का अर्थ :-

वृद्धावस्था मानव जीवन की वह अवस्था है जिसमें मानव की उम्र उसके जीवन काल के समीप या उससे अधिक हो जाती है। दूसरे शब्दों में वृद्धावस्था ऐसी अवस्था है जो एका–एक रूप में ना आ करके धीरे–धीरे आने वाली अवस्थाओं का नाम है। वृद्धावस्था स्वाभाविक एवं प्राकृतिक घटना है जो समय के साथ–साथ हमारे साथ घटित होती है। लोक भारती राजभाषा शब्द कोष (हिन्दी अंग्रेजी) के अनुसार–वृद्ध का अर्थ है बूढ़ा, परिपक्क या पका हुआ। अंग्रेजी हिन्दी शब्द कोष के अनुसार– वृद्ध को अंग्रेजी में व्स्क च्म्स्त्च्छए से संबोधित किया जाता है जिसका अर्थ भी पुराना, वृद्ध सीनियर पर्सन बताया गया है।

विमर्श का अर्थ :-

विमर्श शब्द को सरल भाषा में चिंतन–मनन विचार विवेचन विश्लेषण के आदि के रूप में देखा जा सकता है। किसी भी स्थिति, परिस्थितियों को उनसे उपजी हुई समस्याओं को देखकर उनके बारे में चिंतन–मनन करना ही विचार विमर्श कहलाता है।

लोक भारती राजभाषा शब्द कोष–के अनुसार विमर्श का अर्थ पूर्ण चिंतन–मनन, गहन विश्लेषण करने से है। हिन्दी के विमर्श को अंग्रेजी में Discourse के नाम से अभिहित किया जाता है। जिसका अर्थ भी सुर्धीर्ध, गम्भीर चिंतन आदि से है। समसामायिक परिदृश्य के संदर्भ में साहित्य के द्वारा सभा, वाद–विवाद, डिबेट के माध्यम से चर्चा–परिचर्चा आदि किया जाता है।

आज के समकालीन परिदृ,य में वृद्ध विमर्श :-

वृद्ध का अर्थ बूढ़ा तथ विमर्श से आशय चिंतन–मनन विवेचन से है अर्थात् वृद्ध व्यक्तियों के उनकी स्थितियों परिस्थितियों एवं समस्याओं पर विचार विमर्श कर उचित समाधान दिलाना ही विचार विमर्श कहलाता है। आधुनिकता के युग में हमे यह देखने को मिलता है किस तरह हमारी यह नयी पीढ़ी के लोग वृद्ध व्यक्तियों से दूर होते जा रहे है। नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच खाई पड़ती जा रही है। जिससे हम अपने सभ्यता और संस्कृति से ओझल होते जा रहे है। आज के युग में वृद्ध विमर्श प्रांसगिक एवं अपरिहार्य है। क्यों कि आज हम इतने व्यस्त हो गए कि हमें बुजुर्गों, वृद्ध व्यक्तियों कि पास बैठने का उन्हें समझने का समय ही नही है व्यावसायिक, आर्थिक व्यस्तता के कारण ही हमारे पास पुरानी तथा नयी पीढ़ी में सामंजस्य एवं वृद्धों के अनुभवों का नयी पीढ़ी में रूपान्तरित करने का समय ही नही है। यही सब रीजन है जो वृद्ध व्याक्तियों की तरफ ध्यान आकर्षित करने की ओर प्रेरित करता है। कहाँ जाता है कि वृद्ध व्यक्ति ज्ञान का पूंज होता है। बचपन से लेकर जवानी और जवानी से लेकर वृद्ध होने तक का अनुभव होता है। वृद्ध व्यक्ति अपने अनुभव के बल पर नयी पीढ़ी के द्वारा समाजिक आर्थिक राजनीतिक को परिवर्तित करने की क्षमता होती है। परन्तु हम आज इस नयी पीढ़ी के लोगों ने वृद्धों के इस ज्ञान से अवलोकन होने के बजाए ओझल होते जा रहे है। हम उनका लाभ ही

नहीं उठा पा रहे है न ही उनके ज्ञान का प्रयोग कर समाज राष्ट्रों का श्रेष्ठ दशा–दिशा ही नही दे पा रहे है। नयी पीढ़ी का युवक वृद्ध व्यक्तियों को समस्या की दृष्टि से देखता है। उनके पास बैठकर उनसे प्रेम भरा संवाद ही नही करना चाहता है। और न ही किसी टॉपिक पर वृद्धों से राय–मसौदा ही लिया जाता है जिसका परिणाम हमे मूल्यों के विघटन में, संयुक्त परिवार के अलगाव के रूप में दिखायी देता है।

हमें बुजुर्गों के साथ प्रेम का संबंध स्थापित करना चाहिए। समय–समय पर राय–मसौदा भी लेना चाहिए जिससे उनके हृदय में विरकिट या नैराभ्य जैसी भावना न उठे बल्कि उसके दिल में खुशी जगे। समसामयिक परिदृश्य में यह भी देखने को मिलता है कि किस तरह आज के नवयुवकों ने वृद्ध व्यक्तियों का उपहास करते है उनका मजाक उड़ाते है किसी भद्दा नामों से संबोधित करते है जिससे उनमें चिड़चिड़ा वाली भाव जगा सके। आज के नवयुवक वृद्ध इंसान को Funny के रूप में लेते है दूसरी तरफ कुछ ऐसे भी नवयुवक है जो वृद्ध व्यक्ति को प्रेम एवं सम्मान की नजर में रखते है साथ ही साथ उनकी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं की पूर्ति भी करते है। हमे नयी पीढ़ी के नवयुवक यह श्रेष्ठ गुण अनुशरण करना चाहिए। जिससे समाज में वृद्धों की उचित सम्मान एवं उनके समस्याओं का निस्तारण किया जा सके। साहित्य प्रारम्भ से ही समाज का आईना माना जाता है। साहित्य में प्राचीन काल से ही वृद्ध विमर्श पर विचार व्यक्त किया गया है और उनके उचित सम्मान दिया गया है।

ध्यातव्य है रामायण में राम अपने वृद्ध पिता के कहने मात्र से राज त्याग कर वन गमन के लिए प्रस्थान कर देते है। वहीं दूसरी तरफ पाडंव भी माता कुंती की आज्ञा का पालन बड़ी निष्ठा के साथ करते है। प्राचीन काल में वृद्धों के साथ श्रेष्ठतम एवं सम्मानित बर्ताव किया जाता था। परन्तु आज के समकालीन परिदृश्य के बदलने के साथ–साथ बुजुर्गों की स्थित में भी काफी ज्यादा परिवर्तन देखने को मिलता है। आज वृद्धों की हैसियत उसका मूल्य विघटन होता जा रहा है। उन्हें अपने पास अपने साथ रखने के बजाय वृद्धाश्रमों का दरवाजा दिखा रहे है। महिलाएं सरलता के साथ वृद्धाश्रमों को जीवन को अपना लेती है। लेकिन पुरूष को कठिनाइयों का एहसास होता है। यही एहसास पीड़ा का रूप धारण करती है और यही पीड़ा वृद्धावस्था त्रासदी के रूप ले लेती है। वृद्ध व्यक्ति की हम से धन संपदा की मांग नही करते है बल्कि वह थोड़ा सा लाड प्यार स्नेह चाहते है। ज बवह इन सब से वंचित रहते है तो उनके मन का सत्रांस का एहसास उत्पन्न होता है। जिससे उन्हें स्वयं का जीवन बोझ लगने लगता है। इससे वृद्ध व्यक्ति के जीवन का आस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। वृद्ध व्यक्तियों के लिए खोले गए वृद्धाश्रम आज व्यवसाय का रूप लिये खड़ा है। तब भी युवा पीढ़ी है कि अपने बूढ़े माता–पिता को कुटुंब मे रखने के बजाय वृद्धाश्रमों में धकेल रही है।

एक साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से समाज में व्यक्त समस्याओं को उजागर कर उचित समाधान के लिए प्रेरित कराता है उदाहरण के तौर पर प्रेमचन्द्र जी की कहानी बूढ़ी काकी में देखे जा सकते है कि किस तरह बुद्धिराम और रूपा बूढ़ी काकी को पेट भर भोजन भी नही देती है और उसको हमेशा दुत्कारती रहती थी। इस कहानी में हमे यह बताया गया है कि किस तरह समाज वृद्धों के प्रति उपेक्षा प्रकट करता है। साहित्य ही हमें इस ओर ध्यानाकार्षित करने की ओर प्रेरित करता है एवं उनके समाधान के लिए भी कमर कसता है। उषा प्रियावंदा की वापसी कहानी में गदादर बाबू किस तरह अपने ही घर में परायापन का अनुभव करते है केवल इतना ही नही सेवानिवृत्त होने के बाद नयी नौकरी पर जाने का फैसला करते है। इस कहानी के माध्यम से

वर्तमान में टूटते–बिखरते परिवार को दिखाया गया है उनके परिवारिक मूल्यों के विघटन का चित्रण किया गया है। साहित्य का उद्देश्य है कि वह वृद्धों के समस्याओं को उजागर कर उन्हे उचित सम्मान दिला सके। आज साहित्य ऐसे विषयों को सामान्य जन तक आरोपित करता है और उनके लिए एक श्रेष्ठ मार्ग का निर्धारण करता है।

सारांश :-

साहित्य ही समाज का प्रतिबिम्ब माना जाता है। साहित्य के माध्यम से ही समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, अडम्बरों को उजागर किया जाता है साथ ही साथ विविध विमर्शो पर विचार विमर्श चिंतन–मनन भी किया जाता है। समकालीन युग वृद्धों की ओर उनके समस्याओं को विवेचन, विश्लेषण एवं उचित समाधान करने की वकालत करता है। क्योंकि आज की नव युवकों की पीढ़ी वृद्धों को बोझ मान कर उनसे दूर होते जा रहे है। वृद्ध नवयुवकों के बीच एक खाई बनती हुई जा रही है। वृद्ध व्यक्ति को अपने संग रखने के बजाय वृद्धाश्रमों की पानी पिला रहे है। समकालीन समाज का दायित्व है कि वह वृद्धों की समस्याओं को पहचान कर उनकों उचित सम्मान दिलाना ही उनका प्रशंसनीय कार्य है। वृद्ध विमर्शों में साहित्य का योगदान रहा है कि उनकों उनके सम्मान के पद से सम्मानित करना है। वृद्ध व्यक्तियों के अनुभव एवं संस्कारों के माध्यम से परिवार में विघटन की स्थिति को दूर किया जा सकता है।

मोबाइल नं0–9773732653

Email Id- canurag418@gmail.com, anuragechaudhary10975@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 30-34

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी साहित्य : किसान विमर्श

–निंघोट अर्चना महादेवराय

पीएच.डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग, संत गाड़गेबाबा विश्वविद्यालय, अमरावती, महाराष्ट्र।

सारांश :–

धरती और किसान का अटूट रिश्ता है, वह अपनी जमीन से सर्वाधिक लगाव रखता। वही उसका सब कुछ है। दरअसल कृषक समाजों के लिए कृषि कोई धंधा नहीं बल्कि उनकी जीवन शैली है। किसान के लिए खेती कोई व्यापार–व्यवसाय भी नहीं है, बल्कि यह तो उसकी रोजमर्रा की जिन्दगी का एक बड़ा हिस्सा है, किसान अपने खेतों से सर्वाधिक लगाव रखता है और वह किसी भी कीमत पर अपने खेत छोड़ने को तैयार नहीं होता। लाख प्रलोभन भी उसे नहीं डिगा पाते, किसान के लिए उसका खेत ही सब कुछ होता है, सब कुछ खोकर भी वह ''किसान'' बना रहना चाहता है। वह दो बीघे की जायदाद का मालिक कहलाना ज्यादा पसंद करता है और जब–जब उसकी इस धरोहर को छीनने की कोशिश की गई है, तब–तब उसने उग्र रुप धारण किया है और आंदोलन के रास्ते पर उठ खड़ा हुआ है। प्रमाण स्वरुप अंग्रेजों के विरुद्ध हुए किसानों के आंदोलन देखे जा सकते है। हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं किसान जीवन की विधिक छवियों का प्रमाणिक अंकन समय–समय पर हुआ है। प्रेमचंद ने अपने रचनाओं माध्यम से किसान को साहित्य में एक मुकम्मल जगह प्रदान की। उन्होंने किसान जीवन को बहुत करीब से देखा और फिर उसको अपने लेखन का केन्द्र बनाया। प्रेमचंद के पश्चात् ग्रामीण जीवन पर बहुत लेखकों ने उपन्यास और कहानियाँ लिखी जो उल्लेखनीय रही है। साथ ही हिन्दी कविता में भी किसान जीवन की विविध छवियां अंकित है। लेकिन इधर के वर्षो में परिस्थितियां बदली है।

21वीं सदी की विभिन्न चुनौतियों ने किसानों के समक्ष बहुत सारे सवाल खड़े कर दिए। वैश्वीकरण और भू–मण्डलीयकरण के प्रभाव ने अन्नदाताओं को आत्महत्या के लिए मजबूर कर दिया। लेखन की दुनिया में भी आज किसान धीरे–धीरे गायब होता जा रहा है। ऐसे भीषण समय में प्रेमचंद आज भी हमारे लिए प्रासंगिक और समकालीन है क्योंकि न किसानों और जमीन की समस्या हल हुई है न भूमिहीन मजदूरों को श्रम शोषण से मुक्ति मिली है, बल्कि उसमें स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों और अल्प संख्यकों के नये आयाम और जुड़ गए।

शब्द कूंजी :– औद्योगीकरण, किसान विमर्श मीडिया, विज्ञापन, बाजार, समाचार–पत्र।

प्रस्तावना :–

भारतीय जनता इतनी अज्ञान, इतनी भोली–भाली थी कि शासन प्रणाली के दो मुंहे कष्ट को वह समझ नहीं पा रही थी और सामाजिक बुराइयों तथा विदेशी शासक के दो पाटों के बीच बुरी तरह पिसती जा रही थी। भारत जैसे महान देश की सबसे बड़ी विडंबना भी थी कि देश की 80 प्रतिशत जनता, जिसने देश को देश बनाया

था, शासन प्राणाली के द्वारा सबसे ज्यादा उपेक्षा का शिकार हो रही थी। वह किसान जो अपने खून–पसीने से भूमि को सींचता था, रोपता था और पूरे देश की जनता के लिए अनाज पैदा करता था, अंग्रेजों की भूमि व्यवस्था के कारण वही अब नीलामी और बेदखली की ठोकरें खा रहा था, भूमिहीन हो रहा था। किंतु अनेक ठोकरें खाकर भी वह किसान और गृहस्थ होने के मरजाद रूपी मोह को त्याग नहीं पा रहा था। किसानी की मरजाद एक ऐसी वस्तु है, गृहस्थ कहलाने का गौरव एक ऐसा मोह है जिसे किसान अपनी इच्छा से चाहकर भी छोड़ नहीं पाता।

प्रेमचंद गरीबों की इस भावना का वर्णन करते हुए कहते हैं– ''कृषि प्रधान देश में खेती केवल जीविका का साधन नहीं है, सम्मान की वस्तु भी है। गृहस्थ कहलाना गर्व की बात है। किसान गृहस्थी करता है। मान–प्रतिष्ठा का मोह औरों की भांति उसे घेरे रहता है। वह गृहस्थ रहकर जीना और गृहस्थी ही में मरना भी चाहता है। उसका बाल–बाल कर्ज से बंधा हो, लेकिन द्वार पर दो–चार बैल बांधकर वह अपने को धन्य समझता है। उसे साल में 360 दिन आधे पेट खाकर रहना पड़े, पुआल में घुसकर राते काटनी पड़े, बेबसी से जीना और बेबसी से मरना पड़े, कोई चिंता नहीं, वह गृहस्थ तो है। यह गर्व उसकी सारी दुर्गति की पुरौती कर देता है।'' प्रेमचंद की संवेदना, सरोकार और दृष्टि ही उनकी परम्परा है। हिन्दी उपन्यासकारों ने विभिन्न विषयों को लेकर विभिनन प्रकार के उपन्यासों की रचना की। हिन्दी साहित्य के उपन्यासकारों ने सामाजिक और आंचलिक उपन्यासों के वर्ण्य विषय के रूप में किसान जीवन को प्राथमिकता दी तथा भारतीय किसान जीवन की विभिन्न प्रकार परिस्थितियों का यथार्थ अंकन किया है। हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन का सर्वप्रथम वर्णन शिवपूजन सहाय के उपन्यास 'देहाती दुनिया' में हुआ है जिसमें भोजपुर जनपद के अंचल का चित्रण प्राप्त होता है। इसके बाद निराला के 'बिल्लेसुर बकरिहा' में किसान जीवन का चित्रण मिलता है।

निराला के बाद मुंशी प्रेमचन्द ने तो किसानों को ऐसा चित्रण अपने उपन्यास 'गोदान' में इस प्रकार किया है जो आज भी प्रासंगिक है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द के रंगभूमि तथा कर्मभूमि में भी किसान जीवन को देखा जा सकता है। प्रेमचन्द के बाद नागार्जुन के 'बलचनामा', 'बाबा बटेसरनाथ' आदि, 'फणीश्वरनाथ रेणु' के 'मैला आंचल', 'परती परिकथा', रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'सूखता हुआ तालाब', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग–अलग वैतरणी', हिमांशु श्रीवास्तव का 'नदी फिर बह चली', विवेकी राय के 'बबूल', 'लोक ऋण' तथा 'सोनामाटी', जगदीश चन्द्र के 'धरती धन न अपना', भैरव प्रसाद गुप्त के 'गंगा मैया', संजीव के 'फांस', राजकुमार राकेश के 'कंदील', सुनी चतुर्वेदी का 'काली चाट' तथा पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' इत्यादि उपन्यासों ने किसान विमर्श का वर्णन किया है।

भारतीय किसान आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। जमींदार, साहूकार, महाजन तथा सरकारी तन्त्र सभी किसान को लूट रहे हैं। किसान दरिद्रता, शोषण तथा निरक्षरता आदि का शिकार हो गया है। हमारे समाज में आर्थिक असमानता किसानों की दरिद्रता का सबसे बड़ा कारण है। इसके फलस्वरूप जो जमींदार अच्छी जमीनों के मालिक थे वो ओर अधिक जमीनें खरीद गए तथा छोटी जोत के किसान अपनी जमीन को बेचने के लिए मजबूर हैं। 'गोदान' उपन्यास में भोला होरी से कहता है– ''कौन कहता है कि हम तुम आदमी हैं। हम में आदमीयत कहां? आदमी तो वह है जिसके पास धन है, अख्तियार है, इल्म है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं।'' जमींदारों के शोषण ने किसानों की स्थिति को दयनीय बना दिया। 'बलचनामा' उपन्यास में बलचनामा के पिता की मृत्यु होने पर उसके क्रियाक्रम के लिए उनके पास पैसे नहीं थे, उस क्रियाक्रम को

ऋण के पैसों से ही करवाना पड़ता है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में जमींदार परिवार की एक सदरया विद्या कहती है– ''उस समय जब अकाल पडा और प्लेग भी फैला, तब हम लोग इलाके पर गये... उन दिनों की बाबू जी की निर्दयता देखकर तेरे रोयें खड़े हो जाते थे। बाबू जी को उड़ाने के लिए रुपये न मिलते तो वह चिढ़कर आसामियों पर गुस्सा उतारते। सौ–सौ मनुष्यों को एक पांत में खड़ा करके हंटरों से मारने लगते। बेचारे तड़प–तड़प कर रह जाते, पर उन्हें तनिक भी दया न आती थी।''

'गोदान' के जमींदार राय साहब को रामलीला कराने के लिए गांव से पांच सौ रुपये की अपेक्षा है। किसानों की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए 'फांस' उपन्यास में संजीव कहते हैं– ''महंगे बीजों, खादों और कीटनाशकों की वजह से ज्यादातर किसानों को कर्ज लेना पड़ता है। सरकारी बैंकों में खसरा–खतौनी, नकल दुरूस्ती समेत कई लफड़े कर्ज की राशि भी कम है। फलतः ज्यादातर किसान वहां जाने से घबराते हैं और उन्हें ऋण ऐजेंसियों और गांव के साहूकारों से कर्ज लेना ही आसान लगता है।''

'कंदील' उपन्यास में रणसिंह अपनी पारिवारिक स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है– ''दोनों छोहरों के ब्याह किये तो घणा पैसा लगा। अब मेरी गांठ में तो था नई। बंक के जट की चिरौरी विनती की तब जाके ईक और करज खोपड़े पर धर ल्या। खेत–खडे के इलावा घर में आमदन दूसरी तो है नई। गरचे कहीं खुदा ना खासता फसल टूट–फूट ले तो ईब समझो रोटी के लाले आ जाने वाले हुए।''

पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में सूदखोरो की शोषण नीति का बखूबी वर्णन किया है– ''रामप्रसाद का पिता जब मरा, तो जमीन के साथ बैंक का, सोसाइटी का, सूदखोरों का कर्ज भी छोड़ गया था। इलाके में सूदखोरों का सूद बड़े विचित्र तरीके से चलता था, जैसे आपने यदि मुझसे अभी इस महीने की दस तारीख को एक हजार रुपये लिए हैं, तो आप अगले महीने की दस तारीख, मतलब ठीक एक महीने बाद दो हजार वापस करेंगे या यह कि आप मुझसे दस हजार रुपये अभी ले रहे हैं, जिनको आप छह माह बाद एक हजार रुपये प्रति महीने के हिसाब से ब्याज देकर लौटाने की बात कर रहे हैं, तो आपको अभी दस हजार नहीं मिलेंगे, आप दस हजार पर अंगूठा लगाएंगे और मिलेंगे आपको केवल चार हजार, छह हजार तो ब्याज के कट गए न भाई। अब छह महीने बाद दस हजार ही लौटाना है आपको। यह सूदखोर अपने कर्ज की वसूली अपने ही तरीके से करते हैं। यह वसूल सकते हैं, इसलिए देते हैं। किसान की किस्मत तो कर्जे से बंधी ही है उसे तो लेना ही है।''

किसान का जीवन अभावों की कड़ी के समान है। नागार्जुन का बलचनमा दरिद्रता के कारण दास होकर जीवन व्यतीत करने को विवश हो जाता है। विलसी जीवन व्यतीत करने वाले जमीदारों का वह शिकार होता है और जमींदारों के यहां जूठन से तथा उनकी गलियों से अपना पेट भरना पड़ता है। किसान के घर में दवाई के लिए पैसे नहीं होते, इस प्रसंग का वर्णन 'रेणू' के मैला में देखा जा सकता है– मैला आंचल का डॉक्टर जब पास के एक गांव में मरीज को देखने जाता है और जब इंजेक्शन लगाने की तैयारी करता है तब लड़की का बाप पूछ ही बैठता है– ''डॉक्टर साहब यह जो जंकसैन दे रहे हैं, इसका कितना होगा?'' इस प्रकार किसान की स्थिति अत्यन्त दयनीय है एक तरफ तो फसल उपजाने के लिए उसे कर्ज लेना पड़ता है तथा दूसरी तरफ पहले वाला ऋण न चुका पाने के कारण जमींदार तथा साहूकार उसकी फसल को खलिहान से ही ले जाते हैं। हिन्दी उपन्यासों में किसान विमर्श के सामाजिक चित्रण के अन्तर्गत– जातिवाद, झगड़े एवं मन–मुटाव, अनैतिक

सम्बन्ध, कृषक का सभाव के विभिन्न रीति–रिवाजों का अनुसरण करना, संयुक्त परिवार के विघटन, सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन, दहेज–प्रथा, अनमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह इत्यादि प्रसंगों को देखा जा सकता है। जातिवाद को कृषक जीवन में रेणु के 'मैला आंचल' में देख सकते हैं।

'मैला आंचल' में राजपूत, कायस्त, ब्राह्मण, यादव इत्यादि जातियों के लोग हैं। विभिन्न टोलियाँ–पोलिया टोली, कुशवाहा टोली, छत्री टोली और रैदास टोली। विभिन्न जातियां तो हैं ही उनमें आपसी भेदभाव भी है। सिपहैया टोली वाली भोज के समय गवाले के साथ पंगत में बैठने के लिए तैयार नहीं है। लोगों के मन में जातिवाद इतना घर कर गया कि डॉक्टर जब गांव में पहली बार आते हैं तो सबसे पहले लोग उनकी जात को जानना चाहते हैं। डॉक्टर ठीक ही सोचते हैं– ''जाती बहुत बड़ी चीज है। जात–पांत नहीं मानने वालों की भी जाति होती है। सिर्फ हिन्दू कहने से पिंड नहीं छूट सकता। ब्राह्मण है... कौन ब्राह्मण? गौत्र क्या है?... शहर में कोई किसी से जात नहीं पूछता। शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना, लेकिन गांव में तो बिना जाति के आपका पानी नहीं चल सकता।'' जातिवाद के रोग से नागार्जुन का बलचनमा भी ग्रस्त है। बलचनामा का बूढ़ा वैद्य इसके कारण ही छोटी जातिवालों को यहां नहीं जाता है। किसानों का अंधविश्वासी होना भी किसान जीवन की प्रमुख समस्या है। 'बलचनमा' उपन्यास में नागार्जुन ने इस स्थिति का वर्णन किया है–''दामों ठाकुर भूत झाड़ने के बहाने बांस सुखिया को अकेली छोड़ने को कहता है... छोटा मालिक बलचनमा की बहन रेवनी पर बलात्कार करने की कोशिश करता है।''

'गोदान' उपन्यास में होरी के अंतिम क्रियाक्रम की स्थिति हीरा ने रोते हुए कहा– ''भाभी, दिल कड़ा करो, गो–दान करा दो, दादा चले। धनिया यक्ष की भांति उठी, आज तो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और अपने पति के ठंड़े हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली– महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है।''

भारतीय किसान बिरादरी से बंधा होता है। बिरादरी का भय पिशाच की भांति उसके सिर सवार रहता है। बिरादरी से अलग होकर जीवन जीने की वह कल्पना भी नहीं कर सकता। शादी–ब्याह, मुंडन–छेन, जन्म–मरण सब कुछ बिरादरी के हाथ में होते हैं। अतः कृषक बिरादरी से बाहर नहीं जा सकता। बलचनमा को भी मुसलमानों का छुआ खाना खाते समय डर है कि कोई बिरादरी वाला देख लेगा तो नाहक का बखेड़ा हो जाएगा। कृषक समाज में सामाजिक उत्तरदायित्व की इकाई परिवार ही होते हैं। अच्छे तथा बुरे कार्यों का उत्तरदायित्व भी परिवार पर ही रहता है। उत्सवों आदि के निमंत्रण परम्परागत रूप से व्यक्तियों को न दिए जाकर परिवारों को दिए जाते हैं। सभी के सामाजिक कर्त्तव्यों तथा नियमों को पारिवारिक सम्बनधों के अनुरूप समझा जाता है।

'फांस' उपन्यास में दहेज प्रथा की समस्या को देखा जा सकता है– ''मुलगे का पिता, मुलगे की पढ़ाई। एक बार नौकरी लगी नहीं की सारा कुछ ठीक हो जाएगा, तुकाराम–डिमाण्ड? मुलगे का पिता– अपनी तो कोई डिमाण्ड नहीं, लेकिन आपका इतना देखना तो फर्ज बनता है कि आपकी मुलगी जहां जाए, सुखी रहे। रेट तो सबको मालूम है– एक हीरो होण्डा, एक लाख नगद।'' बलचनमा के राधा बाबू को अपने पुत्रों की शादी में हाथी–घोड़ा आदि दहेज में मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जातिवाद कृषक जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। कृषक जीवन में अंधविश्वास, दहेज–प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों को भी देखा जा सकता है। किसान

साधारण जीवन व्यतीत करता है। इसी साधेपन के कारण वह विभिनन परम्पराओं में बंधा हुआ है।

उपसंहार :–

इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों में किसान–विमर्श के तीन चित्रण प्रमुख रूप से देखे जा सकते हैं। इन चित्रणों में आर्थिक स्तर, सामाजिक स्तर तथा राजनीतिक स्तर तीनों में ही किसान की स्थिति दयनीय है। किसान दिन–रात खेतों में मेहनत करता है। कभी तो प्राकृतिक आपदाएं जैसे– अतिवृष्टि, ओलावृष्टि, अकाल, सूखा इत्यादि उसकी फसलों को नष्ट कर देती हैं, तो कभी किसान की पकी–पकाई फसल को साहूकार ले जाते हैं। किसान की इसी स्थिति के कारण निरंतर किसान आत्महत्याएँ बढ़ रही हैं। जिनका वर्णन संजीव ने अपने उपन्यास 'फांस' में किया है। पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' में एक तरफ सरकार मुख्यमंत्री के कार्यक्रम के लिए उत्सव मनाया जा रहा है। वही दूसरी तरफ फसल न हो पाने के कारण किसान काल के मुंह में जा रहा है। जानकारी देना व लेना मानवीय स्वभाव का विशेष अंग है, मनुष्य की जिज्ञासु प्रकुति उसें मिलों दूर घटना के विषय में जानने को बाध्य करती है। पूंजीवाद के आगमन, उसके आगमन के साथ हमारी नैतिकता में परिवर्तन और मूल्यों में गिरावट को प्रेमचंद बड़ी शिद्दत से महसूस कर रहे थे। प्रेमचंद महाजनी सभ्यता के कट्टर विरोधी थे और इस सभ्यता से उत्पन्न समस्याओं के कारण चिंतित भी थे। उनका मुख्य विषय था समाज में व्याप्त आर्थिक शोषण का पर्दाफाश करना और गांव में रहने वाले किसानों की स्थिति को आम जनता तक पहुंचाकर उसमें मूलभूत बदलाव करना। इसी कारण प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में किसानों की स्थिति पर, भारतीय गांवों की स्थिति पर और कृषि व्यवस्था पर पूरी निष्ठा से चित्रण किया। भारतीय किसान अर्थव्यवस्था की रीढ़ माने जाते हैं। इनके वगैर खुशहाल देश की उम्मीद करना बेमानी होगी। जब तक किसान खुश नहीं होंगे तब तक भारतीय व्यवस्था पूरी तरह से मजबूत नहीं होगी। भारत की चतुर्मुखी विकास के लिए भारतीय किसानों का उद्धार होना जरूरी है।

संदर्भ :–

1. प्रेमचन्द, गोदान, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2015, पृ. 23
2. नागार्जुन, बलचनामा, पृ. 3
3. प्रेमाश्रम, प्रकाशन संस्थान, पृ. 85
4. गोदान, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2015, पृ. 16
5. संजीव, फांस, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 108–109
6. सुनील चतुर्वेदी, कालीचाट, अंतिका प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ.16
7. राजकुमार राकेश, कंदील, संस्करण 2015, पृ. 15
8. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, संस्करण 2016, पृ. 8
9. नागार्जुन, बलचनामा, पृ. 6–7
10. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आंचल, पृ. 96
11. वही, पृ. 41
12. नागार्जुन, बलचनमा, पृ. 9
13. संजीव, फांस, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 107
14. प्रेमचन्द, गोदान, प्रकाशन संस्थान, पृ. 328
15. .संजीव, फांस, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 250
16. सुनील चतुर्वेदी, कालीचाट, अंतिक प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 142

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 35-41

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन कविता में जल से जुड़ी समस्याएँ

-Aswani S

Mphil Scholar, Department of Hindi, SSUS Kalady, Ernakulam

समकालीन साहित्य में पारिस्थितिक विमर्श आज ज़ोरों पर है। जीवन का पारिस्थितिक आधार है जल, जिसको एक वरदान के रूप में लोग मानते हैं। जल जीवन के लिए अनिवार्य तत्व होने के कारण सभी जीव–जंतुओं एवं पेड़–पौधों का भी इस पर समान अधिकार है। जल की चाक्रिकता धरती के जीवन को आपस में जुड़कर रहने का संदेश देती हैं, प्राचीन समाज में प्रचलित रिपारियन प्रणाली में इस प्रकार की व्यवस्था थी कि जो जल स्रोतों का दुर्विनियोग एवं आवश्यकता से ज्यादा उपयोग करने का अधिकार किसी को नहीं देती है और इसी प्रकार उसे बर्बाद करने का या प्रदूषित करने का भी। प्राचीन जल प्रणाली में जल–प्रबंधन, जल–स्रोतों के शोषण के बिना किया करते थे। प्राचीन संप्रदायों के अनुसार कार्य करनेवाले 'ग्रेंड केनैल', उल्लार नदी के 'कपारिया' में अब भी कार्यरत है। उत्तर–पूरब क्षेत्र के 'डोंग्स' पुरानी जल प्रणाली के उदाहरण है।

शासन व्यवस्था के केंद्र के आगमन से संघठित जलाधिकार तो बिगड़ने लगे; भूसंपदाओं पर जो नियंत्रण था उसका अधिकार बाहरी एजेंसियों को दिया गया। प्राप्त हुई आमदनी पैसों से प्रादेशिक पर्यावरण की सुविधाओं के लिए पुनः जमा करने की बजाय सरकार के अन्य विभागों के खर्च के लिए प्रयोग किए गये। इसी प्रकार ब्रिटन के आगमन से एक तरह जल प्रबंधन की प्राचीन प्रणाली, जो दक्षिण भारत में प्रचलित 'सेल्फ रिपयर' का अंत हो गया। कृषक लोगों द्वारा सामान्य निविदा में जमा की गई पूँजी, जो सिर्फ जल–प्रबंधन के लिए थी लेकिन ईस्टिंडिया कंपनी ने इसका दुरुपयोग किया।

बाद में जल प्रबंधन एवं जल अधिकार एवं वितरण करने का अधिकार सरकार के हाथ में आ गए, लेकिन आज स्थिति और भी बदल गई क्योंकि शासन तो अब पूँजी के बल पर या कारपरेटों के इच्छानुसार चलने लगे। जल जो मानव द्वारा खोज निकाले गये उत्पन्न नहीं। इसलिए उसे बाँधना, कब्जा करना या मोड़ना एक प्रकार से पारिस्थितिक अस्थिरता का कारण बनता है। जल सीमित है। उपभोग से खत्म हो सकता है। आज की उपभोग संस्कृति से उत्पन्न औद्योगिक प्यास एवं प्रदूषण की मनोवृत्ति हमारी जल संपदा के लिए अभिशाप बन गई है। इसी कारण से समाज में पानी के वितरण एवं उपलब्धि में एक प्रकार की अस्थिरता आ गई। यहाँ पर सामान्य जन तो एक बूँद स्वच्छ पानी के लिए तरसने की स्थिति में है। आज का ज़माना पूँजी पर केंद्रित है। यहाँ का शासन कारपरेटों व मल्टी नैशनल कंपनियों का है। सामान्य जन से उनका जन्माधिकार छीनने लायक उद्योगिक संस्कृति आज दृष्टिगोचर है। "जल के महत्व को समझकर, सावधानीपूर्वक उसका उपयोग करना चाहिए, ताकि हम अपनी भावी पीढ़ी के लिए जल बचा सकें, जैसे हमारे पूर्वज हमारे लिए जल का विशाल भंड़ार

छोड़कर गए हैं।" समाज में संसाधनों के उपयोग का स्थान जब उपभोग हड़पता है, इसका मतलब यह है कि भविष्य घट रहा है।

पानी एक भूसंपदा है, जिसका नियम एवं अधिकार आदि सरकार द्वारा निर्धारित किया जाता है। पानी का उपयोग सभी लोगों की बुनियादी जरूरत है, लेकिन इस पर, जल स्रोतों पर अधिकार किसी विशेष एजेंसियों पर या सत्ता व्यवस्था पर निर्भर है। यहाँ तो पेयजल की समस्या गंभीर रूप से सामने खड़ी है और साथ–साथ किसान–मज़दूर वर्ग की सिंचाई की समस्या भी ज्वलंत है। मध्यवर्गीय किसानों की आत्महत्या अब भी खूब चलती रहती है। इसका मुख्य कारण पूँजीवादी लोगों की करतूतें हैं। साधारण जनता जो पानी का सिर्फ उपयोग करती है लेकिन औद्योगीकरण से प्रौद्योगिकी एवं तकनीकि के बल पर पूँजीवादी वर्ग साधारण जन के जल का भी शोषण या उपभोग करके अपना धंधा चलाते हैं। इसको तो सामाजिक विकास का नाम देती है। उनकी आँखों में तो सिर्फ उत्पादन एवं मुनाफा मात्र है लेकिन ये सब तो इस तरह आम जनता के पेयजल की समस्या एवं कृषक मजदूरों की आत्महत्या को बढ़ावा देने वाला है।

औद्योगीकृत समाज में पूँजी का ज्यादा महत्व होता है। यहाँ पर पानी का ही नहीं सभी प्रकार के संसाधनों का वितरण इसी पूँजी के आधार पर चलता है। "जब वैश्वीकरण का दौर शुरू हुआ है तब से राज्य का सिकुड़ना शुरू हो गयाहै। सामाजिक क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, जल आपूर्ति, स्वच्छता, रोजगार, सामाजिक सुरक्षा आदि में राज्य की उपस्थिति घटती जा रही है। शिक्षा व स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी राज्य एजेंसियों का स्थान निजी क्षेत्र लाता जा रहा है।" पेयजल का वितरण और निर्धारण भी आज निजीकरण के चंगुल से मुक्त नहीं। जनता को अपनी हक का पानी तो दूसरी राष्ट्रों की कंपनियों से पैसा देकर लेना पड़ता है। खासकर पेप्सी एवं कोकोकोला कंपनियों ने हमारे साथ इसी प्रकार के छल की राजनीति के खेल के दौरान उदारीकरण के तंत्र के सहारे हमारे देश में अपनी पूँजी लगाया और हमारे भूजल संपदा का शोषण करके हमारे कुओं को सोखने की स्थिति पैदा की। और इसका नतीजा तो जनता को यूँ भुगतना पड़ा कि मुफ्त में मिलनेवाला जल अब बोतल में बंद करके बाज़ार में बिकने लगा और जिनको प्यास बुझानी है वह पैसा देकर पानी लाए और पिए, यही समाज की स्थिति आज सामने उठखडी है। इसी तरह का वर्ग भेद पानी के वितरण में भी दिखता है। 'ठण्डे पानी की मशीन' कविता में कवि कहते हैं :–

"अगर आपके पास पचास पैसे हैं
तो आप एक ग्लास पानी पी सकते हैं।"

पहले एक ऐसा जमाना था कि जहाँ गुड़ की डलियाँ भी थी और ठण्डा पानी भी मिलता था। लेकिन आज कवि की राय में वह रास्ता तो दिखाई नहीं देता है।

"कितने जन ठिठकते है इसके सामने
जेबें टटोलते हैं और आगे बढ़ जाते हैं
माँ–बाप अपने बच्चों को घसीटते ले जाते हैं
कि चलो, घर चलकर पीना
खुद आपने सूखे पपड़ाए होठों पर
जीभ फेरते हुए।"

इस समाज में पैसे के बिना पानी भी नहीं मिलने की संभावना है। कवि तो सामान्य जनता के पक्षधर होकर आगे कहते हैं कि :–

"अब तक हम अपनी भूख से लड़ते थे
अब हमें अपनी प्यास से भी लड़ना होगा।"

इस पंक्ति में सर्वहारा वर्ग की दर्दनाक स्थिति मुखरित है। पानी जो मध्यवर्ग एवं आम जनता के वश के परे है, वह तो अब अमीर लोगों के मनोरंजन के कार्य का साधन बन रहा है। "पीने के लिए पानी मिलना एक मानव अधिकार है, लेकिन पानी को कुछ लोग सोने की खान बना रहे हैं। पानी बेचना, उससे खेलना और उसे मनोरंजन का साधन बनाना हमारा वर्तमान युग की त्रासदी है।" इसी तरह की समाज की खतरनाक अपसंस्कृति से लड़ना एक प्रकार से भूख से या प्यास से लड़ाई है। 'पानी के बहाने' कविता में कवि यह वर्ग भेद किस तरह समाज में पानी के क्षेत्र को साथ लेकर खेल रहा है, इसका चित्रण इन पंक्तियों द्वारा व्यक्त करते हैं।

"पूरे मुहल्ले में दो नल थे ...
खपरैलों के घरों के बीच
मुहल्ले में सिर्फ दो बिल्डिंग थी
उसमें थे कई–कई नल।"

इस तरह पैसों के या पूँजी के आधार पर किए गए विवेचन पानी के क्षेत्र में भी दिखाई देते हैं। आम जनता के साथ इस प्रकार के कई धोखे होते हैं। वह भूख से एवं प्यास से पीड़ित रह जाती है। इस औपनिवेशिक दुनिया में इस तरह मज़दूर, तीसरी दुनिया आदि के विकास का सपना तो नहीं, सिर्फ औद्योगीकरण, उत्पादन, मुनाफ़ा, बाज़ार, पूँजी यही समाज के केंद्र–बिंदु रह गए हैं।

समाज में निम्न वर्ग या सर्वहारा वर्ग पर पानी की समस्या का बुरा असर हम ज्यादा देख सकते हैं। सार्वजनिक जगहों पर भी पानी तो मिलता नहीं वहाँ पर भी बोतलों में पानी का खर्च तो ज्यादा हो रहा है। लेकिन नल में तो पानी नहीं, अगर है तो भी वह शायद पीने लायक कभी–कभी न होता है। अपनी कविता 'पानी के स्वाद' के जरिए नीलेश रघुवंशी आम जनता की संवेदना को इस तरह अभिव्यक्त करते हैं। एक प्लाटफार्म का चित्रण और वहाँ के लोग जो पानी के साथ करने वाले व्यवहार इस तरह है कि :–

"बिना प्यास के भी पानी पीते प्लाटफार्म पर
पानी खारा था या मीठा, गठकते उसे भीतर तक
कुछ प्लाटफार्म ऐसी भी मिलते, जहाँ नल तो होता लेकिन पानी नहीं
बोगी में बैठे लोग बढ़ाते पानी
पानी जूठा भी होगा, हमारी सोच से परे होती ये बात।"

जल समस्याएँ दिन व दिन बढ़ रही हैं, इसके समाधान को लेकर चर्चा को अधिक महत्व नहीं दे रहे हैं। उपयोग हेतु पानी तो खत्म होने वाला है। अगर इसी प्रकार साधारण जनता से पानी बड़े–बड़े नल कूपों से शोषण करके उन्हीं को पैसे से देने की प्रणाली के आरंभ हो जाने से निम्न एवं मध्यवर्गीय आम जनता की ज़िंदगी एकदम दु:स्सह बन जाएगी। हर मोहल्ले में पानी की स्थिति ऐसी हैं। जिसे संजय कुंदन व्यक्त करते हैं :–

"पानी का आना और जाना

कोई दावे के साथ
नहीं कर सकता था
कि इतने बजे आता है
और इतने बजे चले जाता है पानी।"

सामाजिक स्थिति ऐसी है। पानी की दुरवस्था जीवन की दुरवश्था है। पानी के लिए इंतज़ार करने का मतलब जिंदगी का इंतज़ार करना है। यहाँ पर यही इंतज़ार शोषित वर्ग नल के नीचे करते रहते हैं।

वर्ण–व्यवस्था एक अभिशाप की तरह पुरातन काल से ही समाज झेलता आ रहा है। सामाजिक संसाधनों के उपयोग में भी इसी वर्ण–व्यवस्था की झलक हम देख सकते हैं। मतलब यह है कि प्राकृतिक संसाधन जल या पानी के संदर्भ में भी वर्ण–व्यवस्था अब भी दिखाई देती हैं। अछूत की समस्या एवं जाति की समस्या आज भी नये तेवर लेकर समाज में खेलती है। पहले से ही अछूत व जाति के नाम पर दलित एवं हाशिएकृत लोगों का पानी को भी पीने के उनके जन्माधिकार का तिरस्कार होता आ रहा है। पानी तो सिर्फ सवर्ण लोगों का अधिकार है ऐसा एक मानना था और अब थोड़े–बहुत परिवर्तन आ गए। जैसे कि वर्ण के स्थान पर कभी–कभी वर्ग की बात आने लगी फिर भी दलित एवं हाशिएकृत लोगों की बदहालत में कोई खास परिवर्तन तो नहीं आया।

पुराने ज़माने में पंडित, ब्राह्मणवादियों ने मंदिरों में या वहाँ के तालाबें दलित लोगों के लिए वर्जित घोषणा किए और उनका प्रवेश तो कई जलस्रोतों को अछूत होने की संभावना पैदा करनेवाला है, इस प्रकार की झूठी पाखण्डता के नाम पर दलित लोगों को कई प्रकार का मानसिक या शारीरिक उत्पीड़न सहना पड़ा। पानी के नाम पर भी दलित वर्ग अनेक प्रकार से पिसता हुआ, रौधा हुआ एवं मसला हुआ रहा। जातिवाद एवं ब्राह्मणवाद एक प्रकार की जातीय एवं धार्मिक सत्ता के रूप में कार्यरत थे। इसलिए सत्ता में प्रविष्ठ होने वाला भी किसी ब्राह्मणश्रेष्ठ या ऊची जाति के होते थे। तो दलित वर्ग तो हाशिएकृत ही रहा। धर्म के कर्मकांडों को लेकर ऊँचे लोग साधारण दलित वर्गों की ज़िदगी को नरक तुल्य बनाते। उन्हें भूख एवं प्यास को मिटाने की स्वतंत्रता भी नहीं थी। सिर्फ वे जूठन उठाने या सवर्णों की सेवा करने या उनके जूठे भोजन या पानी का उपयोग करने के लिए विवश हो गए।

सवर्णों की मानसिकता में परिवर्तन लाना मुश्किल का काम है। पहले तो सार्वजनिक तालाब जैसे जलस्रोत थे, उस पर अधिकार एवं नियंत्रण करने में सवर्ण मानसिकता ने विजय प्राप्त किया। समाज में अब भी सवर्ण मानसिकता की झलक देख सकते हैं। दलित एवं आदिवासियों को समाज का हिस्सा मानने में सवर्ण मानसिकता हिचकती है। इन हाशिएकृत वर्ग की उन्नति एवं सुरक्षा को सवर्ण शासन नज़र अंदाज़ करते हैं। 'लेखा जोखा' कविता में ओमप्रकाश जी कहते हैं कि :–

"तपती दुपहर में
रजवाहों की नालियों में
बहते गंगाजल से
बुझायी प्यास अनेक बार
बिना हिसाब किये–
कितनी रेत समायी पेट में

कितना पानी बदला लहू में
फिर भी
न गंगा ही अपनी हो सकी
न रजबाहे की रेत ही।"

नदी या जलस्रोत किसी की निजी संपत्ति नहीं बल्कि प्राकृतिक सार्वजनिक संपदा है। इसको तो सवर्ण अपनी जाति या धर्म का हिस्सा मानकर उसे अपना करने की प्रक्रिया के विरुद्ध होकर कवि उनके भी नदी का उपयोग करने का जो अधिकार है, उसकी याद दिलाते हुए, निम्न वर्ग की नदी के साथ की संवेदना को प्रकट करते हैं।

हाशिएकृत लोग जो मन से शुद्ध एवं परिश्रमी वर्ग हैं, फिर भी समाज में उनके श्रम का शोषण ही मिलता रहा और उन्हें अब भी अपनी अस्मिता की पहचान के लिए लड़ना ही पड़ता है। यह तो एक दर्दनाक बात है। सिर्फ अछूत के कारण से ही उन्हें भूखे–प्यासे रहने की स्थिति यहाँ चित्रित है :–

"काटे जंगल खोदे पहाड़
बोये खेत फिर भी रहे भूखे।
बनायी नहरें
खोदे कुएँ
लगाए नल
फिर भी रहे प्यासे।"

इसी तरह कुएँ बनाने के बाद भी उनकी प्यास बुझाने की पानी वहाँ से नहीं मिलते अर्थात् उनके द्वारा खोदे गए कुएँ, जो सिर्फ सवर्णों की प्यास मात्र बुझाने लायक रहा। अछूत की समस्या तो एक गहरी समस्या है। इससे मुक्ति अब भी पूरी तरह नहीं मिल पायी है। पानी जैसी मूलभूत आवश्यकता में भी पहले से अब भी अछूत की समस्या वैसी की वैसी है। यहाँ पर अछूत लोगों की जो संवेदना है, इसका कवि स्वयं अनुभव किया था। इसी कारण से इसकी तीव्रता भी ज्यादा संवेदनात्मक प्रतीत होती है।

"बचपन के दिन
जब प्यास लगने पर
खड़ा रहना पड़ता था घण्टों
किसी कुएँ या नल के पास।
करनी पड़ी प्रतीक्षा
किसी जन्मना श्रेष्ठ के आने की।"

'सोचने नहीं देते' कविता की ये पंक्तियाँ पानी के ऊपर लगाए गए जातीय पाबंदियों का चित्रण है। प्यास एक ऐसी अवस्था है जिसे हम ज्यादा समय सह नहीं पाते। इसे बुझाने से ही संतृप्ति होती है। इसी प्यास को ज्यादा देर तक सहने की अवस्था अछूत होने के कारण उन्हें झेलने पड़ी। मानव को अपनी प्यास बुझाने के लिए भी किसी का इंतजार करने की अवस्था है। उसी बेशर्म वर्ण व्यवस्था को यहाँ कवि प्रकट करते हैं। अंत में वह जोड़ते हैं कि :–

"एक मैं हूँ
जिसकी न जाने कितनी पीढ़ियाँ
रहीं प्यासी बिना पानी
युगों–युगों तक।"

वर्ण व्यवस्था की यही दुरूस्थिति वास्तव में मानवाधिकार के विरुद्ध है। अछूत लोगों को इसे ज्यादा गहराई तक अनुभव करना पड़ा। वे पानी के बिना बेशर्म वर्ण व्यवस्था के गुलाम बनकर रहे। वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध जो विरोध करते या अपनी भूख प्यास के विरुद्ध अपनी श्रम की कमाई या हक माँगते तो उन्हें दुत्कार एवं दंड कभी–कभी आत्मदाह भी सहना पड़ता। सवर्णवादी समाज में सवर्णों द्वारा निर्धारित नियमों को सहते, अपनी भूख व प्यास को भी सवर्णों की दया से शमन करने का इंतज़ार, वह तो इतनी दुःखदायक है। मानवीयता का मानवीय संवेदना का ह्रास यहाँ दिखाई देता है।

दलित लोगों की शिकायतें कभी भी पूर्ण रूप से समाधान देख नहीं पातीं। इसका तात्कालिक हल तो करते दिखाई देता है। इसलिए वे ज़िंदगी भर इस तरह अपनापन की स्थिति का अनुभव नहीं कर पाएँ। कहीं भी कुछ भी संभव है। अगर माँगें ज्यादा सशक्त रूप से करें तो कभी–कभी जीना भी खराब होने की स्थिति है। इसलिए वे खामोश सहते चलते रहे।

"कभी नहीं माँगी बलिश्त भर जगह
नहीं माँग आधा राज भी
माँगा है सिर्फ न्याय जीने का हक
थोड़ा सा आकाश
थोड़ा सा पीने लायक पानी।"

उनकी माँग तो न्याय है लेकिन इसके प्रति तिरस्कार का मनोभाव एवं गोलबंद होकर टूट पड़ने की आक्रामकता ही बची रहती हैं। कभी–कभी दलित भी दलित भी इस तरह की अनीतियों के खिलाफ प्रतिरोध एवं प्रतिशोध व्यक्त करते हैं। 'अस्थि विसर्जन' कविता के जरिए कवि वर्ण व्यवस्था के प्रति अपना प्रतिरोध ऐसे प्रकट करते हैं कि :–

"इसलिए तय कर लिया मैंने
नहीं नहाऊँगा ऐसी किसी गंगा में
जहाँ पंडे की गिद्ध–नज़रें गड़ी हों
अस्थियों के बीच रखे सिक्कों
और दक्षिण के रुपयों पर
विसर्जन से पहले ही
झपट्टा मारने के लिए बाज़ की तरह!"

गंगा जो पवित्र एवं पुण्य नदी है लेकिन पाखण्डों के अविवेकपूर्ण जातीय अपसंस्कार के कारण गंदी हो जाती है। सवर्णों के संस्कार एवं व्यवहार से पानी इस तरह प्रदूषित हो रहा है, उसमें नहाने से भी लोग नफरत करते हैं। संस्कृत मंत्रों से किए गये संस्कार की अंत में बहा देनेवाली अस्थियाँ या हड्डियाँ जल या नदी प्रदूषण

का कारण बनती है, यहाँ स्वच्छ पानी न मिलनेवाले की श्रेणी में साधारण दलित, हाशिएकृत आदिवासी लोग आ जाते हैं। कवि इसके विरुद्ध प्रतिरोध प्रकट करते हैं। मानव के जन्माधिकार में से एक है स्वच्छ पानी पीना, लेकिन इस हक का भी तिरस्कार पूँजी के आधार पर हो रहा है।

आज पानी वर्ण के आधार पर और वर्ग के आधार पर वितरित किया जाता है। यहाँ पर पैसेवाले या पूँजी जिनके हाथ में हैं, उन्हें पानी का उपभोग करने का अधिकार है। पूँजी पर प्राकृतिक संसाधनों को अपना लेने और कब्ज़ा करने की स्थिति आज दिखाई देती हैं। आम जनता या सर्वहारा वर्ग तो यहाँ स्वच्छ पानी मिलने के लायक ही नहीं के बराबर आज की सभ्यता मानती है। पानी तो सामान्य तत्व है। इसका उपयोग सबका अधिकार है। जिस प्रकार इसका उपयोग करने का अधिकार है, उसी प्रकार सबका इसे प्रदूषण से बचाने का उत्तरदायित्व भी है। आज पानी जो कम होता जा रहा है, इसका शोषण और प्रदूषण बढ़ता जा रही है, इस कारण से स्वचछ पानी की माँग भी बढ़ गयी है। लेकिन इसी माँग के अनुसार वितरण संतुलित समाज में संतुलित रूप से नहीं हो रहा है। इस तरह के असंवेदनातमक व्यवहारों से अनेक लोगों को दयनीय स्थिति से समकालीन कविगण यहाँ पर उभारने की कोशिश करते हमें दिखाई देते हैं।

संदर्भ सूची :-

1. अरुण कुमार जैन, जल ही अमृत है, पृ. 21
2. रामशरण जोशी, प्रतिरोध की विरासत और वैश्विक पूँजी का प्रभुत्व, पृ. 136
3. एकांत श्रीवास्तव, बीज से फूल तक, पृ. 44
4. एकांत श्रीवास्तव, बीज से फूल तक, पृ. 44
5. एकांत श्रीवास्तव, बीज से फूल तक, पृ. 44
6. डॉ. प्रमोद कोवप्रत, समकालीन हिंदी कविता का ताप–मान, पृ. 20
7. निशांत, जवान होते हुए लड़के का कबूलनामा, पृ. 65
8. नीलेश रघुवंशी, पानी के स्वाद, पृ. 12
9. संजय कुंदन, समय के संग साहित्य, पृ. 118
10. ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नहीं ..., पृ. 9
11. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका है, पृ. 53
12. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका है, पृ. 56
13. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका है, पृ. 56
14. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका है, पृ. 61
15. ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नहीं ..., पृ. 12

Mob: 9746006701

E mail aswaniselvarajan@yahoo.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 42-44

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में 21वीं सदी का दलित जीवन

-डॉ० बबलू कुमार भट्ट

असिस्टेंट प्रोफेसर, ग्राम–फतुही, पोस्ट–पिछौरा, जिला आजमगढ़, उ० प्र०

दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है दलन किया हुआ, इसके तहत वह हर व्यक्ति आ जाता है जिसका उत्पीड़न हुआ हो, यानी जिस का शोषण हुआ है, 'रामचंद्र वर्मा ष्ने अपने शब्दकोश में दलित का अर्थ लिखा है कि मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौदा हुआ या कुचला हुआ या नष्ट किया हुआ। पिछले छह–सात दशकों में दलित पद का अर्थ काफी बदल गया है।

इतिहास के कई किताबों में बताया गया है कि इन वीर हिंदू लोगों को दलित नाम अंग्रेजों ने दिया था। इनको अंग्रेजों ने दलित इसलिए बोला था क्योंकि यह लोग मुस्लिम शासकों द्वारा शोषित थे और तन–मन–धन से इनका शोषण किया गया था। असल में अंग्रेज इतने अच्छे नहीं थे कि वह किसी के साथ अच्छा करें। भारत का भला तो वह किसी भी कीमत पर करना नहीं चाहते थे। भारत को उन्होंने जो भी मशीनरी दी है, वह अधिक से अधिक लालच के चक्कर में ही दी गई थी, इन वीर हिंदू लोगों को दलित घोषित करके इन्होंने समाज को दो हिस्सों में विभाजित किया था। यह वीर हिंदू तो पहले ही दयनीय अवस्था में थे। इसलिए अंग्रेजों ने इनको पहले और शोषित किया और बाद में इनको ईसाई बनाने का गंदा खेल खेला गया था। जब दलितों को समझ आया कि अंग्रेज हमको अपने समाज से बाहर कर रहे हैं तब भी दलितों ने मशीनरी का विरोध किया और कैसे भी हिंदू समाज में बने रहना ही स्वीकार किया। इस तरह से आप अगर दलितों का इतिहास पढ़ते हैं तो आप जान जाएंगे कि यह लोग हिंदू ब्राह्मण और राजपूत जैसी जातियों से निकले हुए लोग हैं।

दलित अंग्रेजी शब्द डिप्रेस्ड क्लास का हिंदी अनुवाद है। डिप्रेस्ड क्लास की जनगणना 1911 में की गई, जिन्हें वर्तमान में अनुसूचित जातियां कहा जाता है। दलित का अर्थ पीड़ित, शोषित, दबा हुआ, खिन्न, उदास, टुकड़ा, खंडित, कुचला हुआ, दला हुआ, पिसा हुआ, मसला हुआ, रौरा हुआ, विनष्ट हुआ होता है, परंतु अब अनुसूचित जाति को दलित कहा जाता है और दलित शब्द पूर्ण रूप से जाति विशेष के लिए इस्तेमाल किया जाता है।दलित शब्द की व्याख्या और तुलनात्मक दृष्टि से देखे तो इसका विरुद्ध विश्लेषण इस प्रकार है। दलित, पीड़ित, शोषित, दबा हुआ, उदास, टुकड़ा, तोड़ना, कुचलना, दला हुआ, पिसा हुआ, पिंडामुक्त, उच्च, प्रसन्न, खुशहाल, अखंड, अखण्डित, जोड़ना, समानता, एकरूप, पूर्ण रूप, संपूर्ण।

दलित साहित्यकार :-

1. बिहारीलाल हरित
2. महाशय नाथूराम ताम्र मेली

3. ओमप्रकाश बाल्मीकि
4. डॉ. धर्मवीर
5. मोहनदास नैमिशराय
6. सूरजपाल चौहान
7. जयप्रकाश कर्दम
8. तुलसीराम
9. असंगघोष
10. डॉ० उमेश कुमार सिंह
11. कर्मानन्द आर्य

1. ठाकुर का कुआं (कविता) ओम प्रकाश वाल्मीकि :-

भारतीय समाज व्यवस्था ने दलितों के मौलिक अधिकार ही नहीं दी है, बल्कि उन्हें निकृष्ट जीवन जीने के लिए भी बाध्य किया और उन पर कड़े कानून भी लागू किए, उनके संपत्ति अर्जित करने पर प्रतिबंध लगाए। आज भी दलितों के पास अपनी निजी जमीन व अन्य संपत्ति नहीं है, जिसे अनदेखा करते हुए अनेक राज्य सरकारें दलितों को स्थाई निवास प्रमाण पत्र जारी नहीं करती है यानि कहने का मतलब यह है कि वह भारत के नागरिक हैं लेकिन राज्य सरकार ऐसा नहीं मानती हैं ।सैकड़ों साल एक ही स्थान पर रहने के बावजूद वे उस स्थान के निवासी नहीं माने जाते हैं क्योंकि उनके पास संपत्ति के कागजात नहीं है।

2. नो बार (कहानी) जयप्रकाश कर्दम :-

अखबारों के वैवाहिक विज्ञापनों में अक्सर लिखा होता है जाति बंधन नहीं, (नो बार) लेकिन इसमें भी एक छिपा एजेंडा होता है। एक दलित के लिए यह शर्त लागू नहीं, यानी दलित स्वीकार नहीं, यह कहानी इसी समस्या को केंद्र में रखकर सामाजिक जीवन में रची बसी जाती वैमनस्य की भावनाओं को अभिव्यक्ति करती है। इस कहानी के प्रस्तुतीकरण से जो प्रभाव उत्पादकता पैदा होती है, वह पाठक को छू जाती हैं वही इसे एक अच्छी कहानी के रूप में मान्यता दिलाती है।

3. मैं दूंगा माकूल जवाब (कविता) असंगघोष :-

असंगघोष की यह कविता दलित साहित्य में अपनी एक खास जगह बना चुकी है। यह कविता अपनी प्रस्तुति में जितनी सहज और सरस है सवह बोधगम्यता में उतनी ज्यादा गहन अनुभूतियों को भी अभिव्यक्त करती है। दलित के भीतर उनके आक्रोश की यह कविता मानवीय संवेदनाओं को बहुत दूर तक ले जाती है। दलितों को शिक्षा से दूर रखने के जो षड्यंत्र व्यवस्था के नाम पर रखे गए। यह कविता उन के लिए एक माकूल जवाब है। इसलिए यह दलित कविता में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाने में सफल हुई है।

4. शिकंजे का दर्द (आत्मकथा) सुशीला टाकभौरे :-

सुशीला टाकभौर की इस आत्मकथा ने अपने पारिवारिक और सामाजिक संघर्ष को जिस तरह शब्द पद किया है वह इसे दलित साहित्य में एक विशिष्ट स्थान दिलाता है यह कि स्त्री होने की पीड़ा और दलित जीवन की विसंगतियों को अभिव्यक्त करने में एक आत्मकथाएं को सफलता मिलती है।

5. दोहरा अभिशाप (आत्मकथा) कौशल्या वैसन्त्री :–

कौशल्या वैसन्त्री की यह आत्मकथा हिंदी दलित साहित्य की पहली महिला आत्मकथाकार मानी जाती है कौशल्या वसन्ती अपने जीवन की एक एक परत को जिस तरह से उद्याड़ कर पाठकों के सामने रखती हैं। वह एक साहस का काम है। इस आत्मकथा की एक विशेषता यह है कि उसकी भाषा जो जीवन की गंभीर और कटु अनुभूतियों को तटस्थता के साथ अभिव्यक्ति करती है। एक दलित स्त्री को दोहरे अभिशाप से गुजरना पड़ता है। एक उसका स्त्री होना और दूसरा दलित होना। कौशल्या बसंती इन दोनों अभिशाप को एक साथ जीती है जो उनके अनुभव जगत को एक गहनता प्रदान करते हैं।

शोध संदर्भ :–

1. ओमप्रकाश बाल्मीकि की :ठाकुर का कुआं' (कविता) से।
2. जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'नो–बार'।
3. असंगघोष की कविता मैं 'दूंगा माकूल जवाब' से।
4. सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा :शिकंजे का दर्द'।
5. कौशल्या वैसन्ती की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप'।

Email : bhattrbabalu@gmail.com

मो० –9838991267

पत्राचार का पता –

डॉ० बबलू कुमार भट्ट

प–531 हिण्डालको कालोनी रेनुकूट

सोनभद्र उ0 प्र०

मो0 –9838991267

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 45-48

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य की दलित दृष्टि; अतीत और वर्तमान के सन्दर्भ में

-भगवती

पीएचडी हिन्दी शोधार्थी, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी, बिहार।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज के प्रभाव से कोई भी साहित्य अछूता नहीं रह सकता। साहित्यकार भी इसी समाज में सतत् जागरूक रह कर समस्याओं का अंकन करते हुए उसे क्रमबद्ध करता है। समाज में समय–समय पर बदलाव आता रहता है। जिस तरह वटवृक्ष की शाखाएँ चारों तरफ से फैली है, उसी प्रकार से साहित्य की विधाएँ भी चारों दिशाओं में फैली है। 21वी सदी में साहित्य के नये विषयों ने धूम मचा कर रख दी है।

हिन्दी में अभी भी साहित्य की दलित–दृष्टि का सैद्धांतिक पक्ष पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुआ है। ऐसे में हमें यह जान लेने की आवश्यकता और अधिक हो जाती है कि साहित्य की दलित दृष्टि की मूल अवधारणाएं क्या है? हिन्दी साहित्य में इस दृष्टि के आने से क्या परिवर्तन हुए।

'ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी पुस्तक दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र में दलित साहित्य की अवधारणा बताई है जिसमें उन्होने दलित शब्द के अर्थ को व्याख्यित करते हुए बताया है कि 'दलित' शब्द का अर्थ है– जिसका दहन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिर्दिष्ट, मर्दित, पस्त, हतोत्साहित, वंचित आदि।'[1]

दलित शब्द व्यापक अर्थबोध की अभिव्यंजना देता है। भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया वह व्यक्ति ही दलित है। दुर्गम पहाड़ों, वनों के बीच जीवनयापन करने के लिए बाध्य जनजातियां और आदिवासी आदि। बहुत कम श्रम–मूल्य पर चौबीसों घटें काम करने वाले श्रमिक, बंधुआ मजदूर दलित की श्रेणी में आते है। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज–व्यवस्था के तहत सबसे निचली पायदान पर है। वर्ण–व्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज कि श्रेणी में रखा है। जिसके साथ शोषण हुआ, इस समूह को ही संविधान में अनुसूचित जातियां कहा गया है जो जन्मना अछूत है।

'डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन 'दलित' शब्द कि व्याख्या करते हुए कहते है – दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।'[2]

इसी प्रकार कँवल भारती का मानना है कि 'दलित' वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही दलित है, और इसके अंतर्गत वही जातियां आती है, जिन्हें अनुसूचित जातियां कहा जाता है।'[3]

साहित्य की दलित दृष्टि की समझ बनाने के लिए भारतीय समाज में दलितों की स्थिति को समझना

जरुरी है; उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जानना जरुरी है। इसके साथ ही अहम् प्रश्न है कि वे कौन है? किस धर्म से सम्बंधित है? वे हिन्दू है या नहीं? यदि वे हिन्दू है, जैसा कि गाँधी जी मानते थे, तब यह प्रश्न उठता है कि उनको उन सब चीजों से क्यों वंचित रखा गया, जो एक सवर्ण हिन्दू को स्वतः प्राप्त है? यदि वे हिन्दू नहीं हैं तो वे किस धर्म से सम्बंधित हैं? बाबा साहेब अम्बेडकर का कहना था कि हिन्दू धर्म लोकतांत्रिक नहीं है। ये इन प्रश्नों से जिंदगी भर जूझते रहें और अंत में उन्होंने हिन्दू धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। नरेंद्र जाधव ने अपनी पुस्तक :आउटकास्ट' में इस संघर्ष पर गंभीरता से विचार किया। साहित्य सम्बन्धी दलित दृष्टि उनके सामाजिक संघर्ष और सामाजिक आंदोलन से जुड़ी है।

मनु–स्मृति में समाज को वर्णों में बाँट दिया गया है लेकिन समाज में सिर्फ चार वर्ण ही नहीं है। व्यवहार रूप में भारतीय समाज कई जातियों और उपजातियों में बंटा हुआ है। जाति व्यवस्था बहुत ही जटील है। अंबेडकर की राय में गुलाम भी हमेशा एक जैसा जीवन व्यतीत नहीं करते। वे आजाद भी हो सकते है। काले अमेरिकियों के साथ ऐसा ही हुआ लेकिन 'दलित अछूत पैदा होता है और मरता है तब भी वह अछूत ही रहता है।' इसका अर्थ हुआ कि सवर्णों ने दलितों को सांस्कृतिक स्तर तक पहुंचने से वंचित रखा। अक्षर ज्ञान से भी वंचित रखा। साक्षरता कि ओर उन्मुख दलित को दंडित किया जाता। मनु–स्मृति में तो एक ही अपराध के लिए सवर्णों और शूद्रों के लिए अलग–अलग सजा निश्चित की गयी।

दलित विमर्शकार मानते है कि हजारों वर्ष तक समाज ने दलितों को अमानवीय जीवन जीने पर मजबूर किया। पर समाज व्यवस्था ने अपनी गलती को कभी स्वीकार नहीं किया। आज भी उन्हें समाज में पूरी तरह वह दर्जा प्राप्त नहीं हैं जैसा एक सवर्ण को प्राप्त हैं। भारत में दलितों ने अपनी दासता अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लिया था। इसका कारण था कि कई पीढ़ियों से होता हुआ यह संस्कार उनके स्वभाव का हिस्सा बन गया था। उन्हें सवर्ण मानसिकता ने इतना संवेदनहीन बना दिया कि वे इसके खिलाफ अपनी सोच में विद्रोह नहीं करते थे। हिन्दू धर्म एक तरफ है कि सब भगवान की संतान है। दूसरी ओर सामाजिक व्यवहार में उनसे दुरी बनाये रखते है। यह बात भारत के सभी धर्मों में थोड़ी बहुत लागू होती है। अपने सिद्धांत और व्यवहार में प्रत्येक धर्म में यह कमी मिलती है। इस सामाजिक बनावट के लिए मिथक गढ़े जाते है। इन मिथकों से दलित–जीवन उनमें बाँध दिया जाता है। उन्हें कहा जाता है कि वे अपने कर्मों का फल भुगत रहें है। यह भी कि इस जन्म में वे कुछ गलत नहीं करेंगे तो उनका अगला जन्म सफल होगा। एक किस्सा मेरे निजी जीवन से है मैं कुछ समय पहले छोटे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाती थी तो एक पहली कक्षा की बच्ची अपनी सहेली से बोलती कि अरे! ये क्या? चूड़े–चमारों सी शक्ल बना कर आ गयी, उसके ये शब्द मेरे कानों में ऐसे चुभे कि क्या बताऊँ? मैंने उसको डाँटा, ऐसे क्यों कह रही है? उसने कहा कि जब मेरी शक्ल गन्दी दिखती है तो मेरी मम्मी ऐसे ही कहती है। मतलब कहने का अर्थ है कि क्या गन्दी शक्ल सिर्फ चूड़ों–चमारों (दलितों) की होती है? अन्य की नहीं है, ये उपमान इन्ही के लिए गढ़े गए है। समाज में बराबरी का स्थान पाने के लिए समाज में रूढ़ि बन चुके इन मिथकों को तोड़ना होगा। साहित्य की दलित दृष्टि यही प्रयास करती है।

व्यवस्था के खिलाफ अतीत में भी आवाज उठाई गयी है। लेकिन वह आवाज एक नैतिक स्वर पर उठाई गयी, जिसमें शोषकों के हृदय परिवर्तन पर जोर दिया गया था। हृदय परिवर्तन की बात गाँधी जी भी करते हैं। लेकिन यह परिवर्तन सीमित है, क्योंकि यह व्यवस्था को बदलने वाला नहीं है। इसलिए बाबा साहेब आंबेडकर

नैतिक चेतना और राजनीतिक चेतना में फर्क करते हैं। विश्व इतिहास के हवाले से वे कहते है किसी भी राजनीतिक विस्तार से पहले धार्मिक और सामाजिक आंदोलन जरूरी है। मतलब सबसे पहले दिमाग और आत्मा की मुक्ति जरूरी है। इस तरह सामाजिक और धार्मिक चेतना, नैतिक चेतना का आधार बनती है। बाबा साहेब अंबेडकर का मानना है कि पहले जितनी आवाजें जाति–व्यवस्था के खिलाफ उठी, वे दलितों को समाज में बराबरी का स्थान दिला सकती है। इसके लिए जरूरी है कि दलितों की राजनीतिक चेतना जागृत हो। यह राजनीतिक स्तर पर ही संभव है। समाज की बनावट बदले बिना उनको वह स्थान नहीं मिल सकता। स्वतंत्रता के बाद संविधान में उनको बराबरी का दर्जा तो मिल गया लेकिन उसके साथ ना तो भाईचारा आया और न ही सही मायने में आजादी। यह बात बाबा साहेब अंबेडकर ने संविधान सभा में कही थी।

अंबेडकर कहते हैं कि दलितों को अपनी अस्मिता बनाने के लिए अपना अतीत बनाना पड़ेगा। क्या वे अपना अतीत हिंदू संस्कृति में नहीं तलाश सकते? इसे बिल्कुल अस्वीकार कर देना चाहिए? कुछ दलित विमर्शकारों ने तो इसे सिरे से अस्वीकृत कर दिया है। कांचा इलाईया की पुस्तक 'व्हाई आई एम नॉट अ हिंदू' इस संदर्भ की महत्वपूर्ण पुस्तक है। इनकी दो पुस्तकें 'व्हाई आई एम नॉट अ हिंदू' और 'पोस्ट हिंदू इंडिया' महत्वपूर्ण है। दलित समाज के ताने–बाने को पाठकों के सामने रखें कि पढ़ने वाला यह कहे कि 'क्या ऐसा भी होता है?' अंबेडकर ने भारतीय इतिहास को नए सिरे से परिभाषित किया। उन्होंने इसमें एक धर्मनिरपेक्ष परंपरा देखी। यह परंपरा बुद्ध से शुरू होती है। शायद बुद्ध पहले विचारक है जो ब्राह्मणवादी विचारधारा को चुनौती देते हैं। दलितों को समाज में स्थान दिलाने के लिए करीब एक हजार वर्ष तक बुद्ध की विचारधारा भारत में प्रचलित रही। हिंदी में दलित साहित्य में तीन बातें विशेष रूप से दिखाई देती है ;–

1 सामाजिक अस्मिता की तलाश।

2 समाज की सवर्णवादी मानसिकता को प्रश्नांकित करने की प्रवृत्ति।

3. अपनी स्थिति को अपने लेखन के माध्यम से समाज के सामने लाने की प्रवृत्ति।

यह तीनों तत्व विशेष रूप से दलित लेखकों की आत्मकथाओ में दिखाई देते हैं। चाहे वह वाल्मीकि, हो लिंबाले हो या नैमिशराय हो या तुलसीराम हो।

बाबूराव वगुल की कहानी 'जब मैंने अपनी जाति छुपाई थी' दलितों की एक अलग ही संघर्ष को उजागर करती है। एक तरफ तो उसमें अपनी जाति छुपाने का आग्रह है जो मानसिक दर्द पैदा करता है, वहीं दूसरी और इसे गर्व से स्वीकार करने का अभाव भी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'बंधुआ लोकतंत्र 'सरकार दखल से गांव में दलित जाति का साहसी 'रूपचंद' निर्विरोध उम्मीदवार घोषित कर दिया जाता है। लेकिन यहीं से उसका जीवन बहुत कष्टदायक हो जाता है पूरी व्यवस्था उसके खिलाफ हो जाती है। यह कहानी दलित और सवर्ण समाज के बीच के संबंध को बहुत खूबसूरती से दिखाती हैं, लेकिन जिसे संभावित चेतना कहा जाता है, वह इसमें नहीं है। कुछ दलित विमर्श कारों का मानना है कि गैर दलित ना तो दलित से अनुरोध कर सकता है और ना ही उस पर लिख सकता है इसके लिए भोगा हुआ अनुभव होना जरूरी है। उनका मानना है कि गैर दलित लेखक दलित अनुभव को लेकर कोई सिद्धांत उद्घाटित नहीं कर सकता। भोगे हुए अनुभवों को सैद्धांतिक विचार का आधार बनाने के लिए उसको चेतना में बदलना पड़ता है। दलित साहित्य अब सीमित दायरे से बाहर निकल रहा है। अपने अनुभव को विस्तार दे रहा है। साथ ही अपनी रचनाओं में साहित्य के गुण भी

लाने की कोशिश कर रहा है। इसमें सफल भी हो रहा है तुलसीराम की दो खंडों में छपी आत्मकथा इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। दलित चेतना और दलित संवेदना से जो लिखा जाता है वही दलित साहित्य का चरित्र है।

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन के अनुसार, 'दलित साहित्य नया हुआ, अलग हुआ तो कितने दिन अलग और नया होगा है? इस साहित्य का भविष्य क्या है? ऐसा ही प्रश्न उपस्थित हुआ दिख पड़ता है। जब तक यह विषम व्यवस्था अबाधित है, तब तक दलित साहित्य अमर है। ऐसी दलित लेखकों की भूमिका है। जब तक हजारों वर्षों की विषम व्यवस्था नष्ट नहीं होगी। यह व्यवस्था समूल नष्ट होने के लिए और कुछ वर्ष लगेंगे।'[4]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी में इस समय दलित साहित्य और विमर्श अपने को समृद्ध कर रहा है। इस समृद्धि में दलित और गैर दलित दोनों तरह के शामिल है। दलित लेखक का लक्ष्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक हिस्सेदारी। असमानता को दूर करना और समता परक समाज बनाना। दलित उत्थान के लिए सबसे बड़ी प्राथमिकता लोकतंत्र को बचाने की है। इसी के द्वारा दलित और निर्धन छात्र सर्वोच्च पद तक जा सकता है। इसलिए शिक्षा, स्वास्थ्य और न्याय को बिकाऊ और बाजारू होने से बचाना है। इसके लिए दलित संगठनों को आगे आना होगा। संगठित होकर सरकार पर दबाव बनाना होगा कि शासकीय स्तर पर शिक्षा की व्यवस्था को बेहतर तो करें; साथ ही साथ सारे देश में एक समान पाठ्यक्रम लागू करें। शिक्षा कों बाजारू और महंगी होने से बचाना होगा क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य का विकास संभव है। साहित्य के मूल्य और प्रतिमान परिवर्तित होते रहते हैं और कला संबंधी नई कसौटियां भी निर्मित होती रहती है। दलित साहित्य जब पाठ्यक्रम का भाग बनेगा तो साहित्यिक प्रतिमानों की भी पुनर्व्याख्या होगी। मेरी समझ में दलित साहित्य का लक्ष्य है। ऐसे स्वस्थ समाज का निर्माण करना जिसमें प्रत्येक व्यक्ति सम्मान के साथ जी सके और अपनी सभी प्रकार की उन्नति और प्रगति के लिए उसे समान अवसर प्राप्त हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरी आवृति 2008, पृष्ठ संख्या 13
2. वही, पृष्ठ संख्या 13
3. वही, पृष्ठ संख्या 13
4. दलित दखल, संपादक : डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, डॉ. रजत रानी 'मीनू', आकाश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, लोनी गाजियाबाद, संशोधित संस्करण 2011, पृष्ठ संख्या 40

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 49-53

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

SIGNIFICANT ACHIEVEMENTS OF WOMEN SCULPTOR IN INDIAN

-Binoy Paul

Ph. D Scholar, Department of Visual Arts, Assam University, Silchar, 788011

Abstract :-

Some notable works were done by some female artists in the early 1960s. Went abroad to study several women artists. This was also the time when more and more women were advancing for study in art colleges and later they working professionally in the field of art. This development is quite significant as the woman has established herself as an open-minded personality who works for her own identity, without any constraints, compulsions, or inhibitions. The development of this approach is quite interesting and makes one wonder what she thinks about herself as a woman.

Keywords :- Art, Painting, Sculpture

Introduction :-

During the freedom movement, the socio-political changes were encouraging for women and helped them to path out into various areas earlier were considered as male domains. Amrita Sher-Gil (1913-41) in India in the mid-1930s categorically changed the role of women in art. Her contribution to the development of modern Indian painting is very well-acknowledged. She became the single largest role model for the women artist of India to contribution has been huge as a woman artist. Some female artists were doing some serious work in the early 1960s. Several artists went abroad to study. This was also the time when more and more women were advancing for admission in art colleges and later working professionally in the field of art. Pioneers among them are Devayani Krishna, Pilloo Pochkhanawala, Meera Mukherjee, Nasreen Mohamedi, Amina Ahmed Kar, Anjoile Ela Menon, Naina Dalai and Anupam Sud Lalita Lajmi, Sumchi Chand Arpita Singh, Gogi Saroj Pal, Nalini Malini, Nilima Sheikh, Latika Katt, and Arpana Caur drew attention to the fact that women had taken in the world of art.

They are exhibiting their works at national and international platforms. These artists cover a plethora of themes in their creations. It is observed that they are looking at life from their independent perspective and responding creatively to their situations. This development is quite significant as the woman has established herself as a freethinking individual who works for her own identity, without any constraints, compulsions, or inhibitions. The development of this approach is quite interesting and makes one wonder what she thinks about herself as a woman.

Nature has long been the inspiration and subject of artists' performances; however, major environmental crises of the twentieth century such as climate change and increasing biodiversity have challenged this approach and exposed its fragility. This increase in awareness then changes the relationship between the visual artist and the landscape.

Women artists such as Agnes Dennis and Nancy Holt were creating works of art that incorporated landscapes, established a field of environmental art that developed contemporary art, and artists such as Jackie Brookner and Patricia Johansson. The article explores concepts and a philosophy related to environmental feminism, the relationship between women and the environment, and discusses how environmental-feminist concepts informed the environmental industry produced by women. Discussions on eco-feminism begin, which will include several prominent women working in environmental art, including how the various interactions between women artists and the environment have changed since the beginning of environmental art in the 1960s. In India, many women artists practiced environmental art like Pilloo Pochkhanawala, Gogi Saroj Pal, Bharti Kher, Arpana Caur, etc.

Relationship between Art and Its Representational Surrounding :-

Today's Indian artists are taking risks of combining genres and defying disciplinary boundaries. Sometimes displaying a sharp political sensibility, rather than rely on the traditional, the works often explore newer possibilities within the environment around them, aiming to create points of context-sensitive references to politics, personal concerns, and historical debates. Bursting with an abundance of talent, this guide explores the work of ten standout Indian artists working today.

Since then, many female visual artists have taken up environmental issues in a variety of ways. Some, such as the Indian sculptor Pilloo Pochkhanawala had a college education in Bombay and got a bachelor's degree in Commerce. She started her career as an advertising designer. Pilloo Pochkhanawala, an experimentalist, during the 1970s, concentrated on the conceptual representation of rockscapes on sea beaches. Her forms and concept evolved out of industrial steel-scrap assembled with natural forms of stone for appropriate expression. Her work was influenced by the works of Picasso, David Smith, Alexander Caldor, and Henry Moore. She did not have any initial training renowned sculptor Pansare who guided her and encouraged her to use a material that she wanted to explore. He also encouraged her to start from the theme which had deeply impressed her mind.

Pilloo started with a series of versions of a seated woman as she felt that it was a symbol of the total acceptance of fatalism. In these figures, she did not render the details of the face or the body but a simplified form of a seated figure with a slightly inclined head expressing the quality of anguish and determination. He works to express a strong linear rhythm. She experimented with materials like wood, stone, molten lead, and cement. With these, she also developed a discipline to prepare the drawings as a guide for her sculpture. She also resorted to carving, constructing, and modeling. Pilloo's varied interests in theatre, drama, classical dance reflected in this way in her works. From her childhood, her mind was repeatedly thinking about death as an inevitable element for a living being. Her series on

'Death-masks' is the result of the same. Though both these artists concentrated on the conceptual representation but treated their modeling individually.

Latika Katt's sculptural forms are organizing in structures of concave and convex forms. The compositions of Latika Katt are defined by minute details as well as the irresistible presence of nature. According to the sculptor, this is not the only cakewalk to be considered the only male preservation so far. Her statement "I always felt sculpture has to be marvelously clear and transparent in terms of translating the expression of the sitter/subject. I would often ask my subjects if they would sit for me. The expression on their faces is what drew me to my subjects. My works were born of the effort of thoughts and observation, rising into the reality of the lived moment from the characteristics of what I saw," she explains.

Meera Mukherjee was born in 1923 in Kolkata and studied at the Indian Society of Oriental Art School at age 14. In 1947, she enrolled at the Delhi Polytechnic, where she studied a diploma in painting, graphics, and sculpture. She went to Germany in 1953 to study painting at the Hochschule fur Bildende Kuenste in Munich. Her statement "I have never made art for art's sake. Nor have I done what I have done with any hope of gain. The beginning of every work I have taken on has been an impulse. However, ideas, emotions, are only the beginning, to realize them in forms, calls for sustained physical as well as mental effort." (Artist statement, Meera Mukherjee: A Retrospective, 1963-1983, exhibition catalog, Jehangir Art Gallery, Bombay, April 1983. Indiatoday, 2020)

She left painting at the end of a single term in favor of sculpture, a discipline by which she gained international fame. Her sculpture was deeply influenced by the traditional Dhokra sculptures of West Bengal, Ghorous of Bastar, and Malhars in Bihar. She gave them a new twist in the use of techniques that place too much emphasis on surface texture.

She worked as an apprentice. It was during this time that she learned the disguised method of sculpture, also known as the cire-perdue or the lost wax method. From there she discovered her process for bronzing, which required the work of wax to sculpt first, strips, and rolls were subsequently added to preserve the touching nature of the substance, to create and adorn the surfaces. Despite the hardness of the bronze, its finish will look subtle, organic, and decadent, equipping the work with a unique variety of lyrics and rhythms. Her sculptures are based on the daily activities of ordinary people. Her subjects included fishermen, weavers, women sewing, laborers, and other workers. She also discovered elements of Bengali calligraphy, nature, music, and dance. Mukherjee felt that her artistic moment was crystallized by the way some artists did it, which at that time came on the scene of Indian art, transformed, transformed, and embraced.

Another important sculptor, Pilloo Pochkhanawalla (1923) who concentrated in the middle of the 1970s on the conceptual representation of the rock-scape on sea beaches, by wide-ranging use of the working process of industrial casting, Pilloo Pochkhanawalla shows a new direction in the field of sculpture. Pilloo Pochkhanawalla's early sculptures revealed both her Indian heritage and the impression that Henry Moore's organically shaped reclining figures had made on her. Soon, the holes

in the works began to enlarge and the works became increasingly abstract. She began to use wax and plaster to achieve the swirling movements and gestures of abstract expressionist sculpture which during the '70s and '80s same abstract spontaneity was reflected in the works of David Smith Like many others of the period. She began incorporating junk and scrap material into her works of the later period when exploration of space and texture became her overriding concern. She has worked with several media including welded steel, copper, ceramic, wood, lead, cement, and marble chips, but aluminum alloy, especially cast aluminum remained her favorite. She is perhaps the first person in India to represent Rock-Scape of sea-beach, the age-long subject of the painting, in the medium of sculpture.

The form and concept have evolved out of the welded sculptures in industrial steel scrap, which are with natural forms of stone. The constructed, assembled masses vibrate in natural space and evoke the feeling of the natural environment. She mixes different compositions of metal to bring color to her sculpture. This color is a natural outgrowth of her working process than a superficial imposition. She believes strongly that every step of the working process is an integrated part of the whole concept and its realization. Pilloo's statement how she did turn to sculpture? "In 1951, I went to Europe in connection with a commercial assignment. I was then in the advertising field and had no thought of becoming a sculptor. of course, once abroad, I took the opportunity of visiting the major museums. I did take in the vast collections of paintings, but every time I looked at the major works of modern sculptors I felt struck by a visual bolt.

"Evidently, it was my sudden grasp of the third dimension that left me mortified by the sculptures. The paintings did not ruffle my inner composure. I was mortified by the sculptures because I was seized by the fear of the challenge of tackling something so difficult. I suppose the mind was sorting out the message that was beginning to take shape.

"I knew that my keen interest in the drawing will not by itself lead me on to a discovery of sculptural line, form, volume, void, and the like. What made everything so challenging and confusing was my intense and instant admiration for the new sculpture of the time." Some of her famous works are Light Energy, Lacuna, Pagan Cult, Metal-Scape II, The Fossil, Execution, Sky-Scape I, Time Past (detail), Time Cycle, Cave, Ophelia.

Conclusion :-

From the evidence traced in the discussion, it is seen that Indian Art has traveled through a long journey crossing different periods. The contributions made by the different rulers and their impacts were truthfully studied. Besides the changing concept of the post-independent era till the modern time, it was authentically documented. The contribution of women artists in the history of modern Indian art is justified by tracing the root of his different forms and ways of creating his creations which made him a distinguished and immortal persona in the Indian art scenario.

Reference/ Bibliography :-

1. Burnham, J. (1968). Beyond Modern Sculpture, George Braziller. New York, Page. No. 34-47
2. Craven, Roy, C., 'A Concise History of Indian Art', Prager Publishers, New York, 1976.
3. Dalima, Yashodhara and Sambrani, Chaityana, et. al., 'Indian Contemporary Art Post Independence,' New Delhi, Vadehra Art Gallery, 1997.
4. Dalima, Yashodhara, 'Contemporary Indian Art: other Realities', Bombay, Marg Publication, 2002.
5. Kapur, Geeta, 'When was Modernism: Essays on Contemporary Cultural Practices in India ', New Delhi, Tulika Books, 2000.
6. Mago, Pran Nath, 'Contemporary Art in India - A Perspective', National Book Trust, New Delhi, 2001.
7. Mitter, Partha, 'Art and Nationalism in Colonial India 1850-1922', Occidental Orientations, Cambridge University Press, 1994.
8. Mitter, Partha, 'The Triumph of Modernism. India's Artists and the Avant-garde 1922-1947', Reaktion Books, London, 2007.
9. Narzary, J. J. (2009). 'Examining the environmental sculpture in the context of three sculptures by RamkinkarBaij', Department of History of Art, Kala Bhavana, Visva-Bharati, Santiniketan, 2009, page no 155-160
10. Sahiar, D. H. (1962). Indian Contemporaries. Marg, 25-80.

Phone (M): 9859689455/9435092853
Email: binoyart@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 54-58

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित विमर्श

-दासरथी जांगड़े

शोधार्थी (हिंदी विभाग), अटल बिहारी बाजपेयी वि.वि. बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश :-

भारत देश विविध धर्मावलंबियों का विशाल देश है पूरे देश भर में हिंदू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, सिख जैसे अनेक धर्मों के लोग वर्षों से निवासरत हैं। जहां हिंदुओं की संख्या अधिक होने के कारण उनका वर्चस्व रहा है। इस धर्म में प्राचीन काल से ही वर्ण–व्यवस्था लागू की गई है। जो वैदिक काल से शुरू होकर उत्तर वैदिक काल के आते–आते काफी जटिल रूप धारण कर लिया। इस वर्ण व्यवस्था अनुसार समाज को चार वर्णों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र में बांटा गया है। इस व्यवस्थानुसार ब्राम्हण को श्रेष्ठ माना गया। समय के बढ़ने के साथ–साथ समाज में ब्राह्मणों की प्रधानता बढ़ता गया और जो चौथा वर्ण जिन्हें शूद्र कहा जाता है इनका कार्य ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करना तय किया गया तथा अनेकों अधिकारों से वंचित कर दिया गया जो ऊपर के तीनों वर्णों को पूरी तरह से प्राप्त थे इतना ही नहीं सूत्रों का जीना भी दूभर कर दिया गया। इन्हे लोग घृणित मानकर उनके छाया पड़ने को भी पाप समझा जाने लगा इस प्रकार से शूद्रों को पल–पल अपमानित होना पड़ता था और समाज में सभी दृष्टिकोण से शूद्र लोग पिछड़े तथा दरिद्र होते गए उन्हें सदैव दलन, दमन किया गया, सताया गया मसला गया कुचला गया।

इस प्रकार सवर्ण लोगों के शोषण के परिणाम स्वरूप इन्हें खुली हवा में सांस लेना भी मुश्किल हो गया था। इन्हें समाज में कठोर गंदे कार्यों को करने के लिए मजबूर किया गया। शिक्षा ग्रहण करना और स्वतंत्र व्यवसाय आदि कार्यों को करने के लिए सख्त मना किया गया, यदि भूल से कोई शूद्र यह कार्य करने का साहस कर भी ले तो उसे कठोर से कठोर दंड का विधान किया गया था इन्हीं शूद्र वर्णों को ही दलित कहा गया जिन्हें अनुसूचि जाति और अनुसूचित जनजाति कहा जाता है।

दलित विमर्श की अवधारणा :-

दलित विमर्श का सामान्य अर्थ पीड़ित, शोषित व दबाए गए लोगों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता और जागृति से है दलितों के बारे में किया गया विचार ही दलित विमर्श कहलाता है।

'दलित विमर्श को समझने से पूर्व भारतीय समाज व्यवस्था के बारे में समझना होगा क्योंकि दलित विमर्श वर्ण व्यवस्था के तहत समाज को चार वर्णों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र में विभक्त किया गया है कालांतर में शुद्र दो वर्गों स्पर्श एवं अस्पर्श में विभक्त हो गया, जिसमें अस्पर्श अर्थात दलित जाति को समाज में सबसे निम्न स्थान प्राप्त हुआ। दलित विमर्श इस वर्ण व्यवस्था का विरोधी है वह समता का पक्षधर है। वर्ण व्यवस्था के तहत प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दमन शोषण अत्याचारों के विरोध का चेतना ही दलित विमर्श कहलाती है।'[1]

समय व्यतीत होता गया और दलित समाज के लोगों में धीरे–धीरे जागृति हुई लोगों के द्वारा अपने समाज के ऊपर हो रहे अन्याय, अत्याचार, उत्पीड़न आदि से मुक्ति पाने के लिए सोच विचार कर वास्तविकता का पता लगाया गया। इस संदर्भ में गंभीरता से चिंतन, मनन, सलाह, तर्क–वितर्क करके विवेचन, परीक्षण कर निष्कर्ष में पाए कि इस समस्या का निराकरण शिक्षा से ही संभव है इसलिए दलित समुदाय की जागरूक लोगों द्वारा शिक्षित करने का कार्य किया गया इसके परिणाम स्वरूप वर्तमान समाज व्यवस्था में सुधार आना प्रारंभ हुआ। इसके लिए अनेक संतों गुरुओं और महापुरुषों नेअपने वाणी से और साहित्य लिखकर विशेष योगदान दिये हैं।

दलित का अर्थ व परिभाषा :–

'दलित' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'दल्' धातु से हुई है जिसका अर्थ बिखरना, खंडित होना, द्विधा होना, चूर्ण करना टुकड़े करना, विनाश करना, मसला हुआ, रौंदा या कुचला हुआ है।

दलित शब्द की परिभाषा डॉ. कुसुमलता मेघवाल के अनुसार– 'दलित वर्ग का सामाजिक संदर्भों में अर्थ होगा, वह जाति समुदाय जो अन्याय पूर्वक सवर्णों या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया हो रौंदा गया हो। दलित शब्द व्यापक रूप में पीड़ित के अर्थ में आता है।'[2]

दलित शब्द का अर्थ डॉ. आरती झा के अनुसार– 'दलित शब्द का सामान्य अर्थ है दरिद्र और उत्पीड़ित। इसका अर्थ दबा, कुचला, अपमानित और प्रताड़ित प्राणी होता है। आज दलित का अर्थ अनुसूचित जातियों और जनजातियों के रूढ़ अर्थ में होने लगा है। जिसका दमन हुआ हो, दबाया गया हो, जो पीड़ित, शोषित, सताया, गिराया, उपेक्षित, घृणित, रौंदा, मसला, कुचला, विनष्ट, हतोत्साहित और वंचित व दलित है। शूद्र हो या स्त्री हो या कोई अन्य भी हो।'[3]

डॉ. भीमराव अंबेडकर के आंदोलन के बाद यह दलित शब्द हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचली पायदान पर स्थित सैकड़ों वर्षो से अस्पृश्य समझे जाने वाले जातियों को भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति के नाम से जाना जाता है और संविधान में प्रदत्त अधिकारों के अनुसार आज के समय में दलितों की दयनीय स्थिति में काफी सुधार आया है। संविधान बनने के पूर्व विभिन्न महापुरुषों द्वारा दलितों के उत्थान हेतु अनेक प्रकार से संघर्ष किए गए जिसके परिणाम स्वरूप लोगों में सुधार आने लगी थी। लेकिन मुख्य रूप से दलित समाज को मुख्यधारा में जोड़ने का काम बाबा साहब भीमराव अंबेडकर ने किया।

समकालीन हिंदी साहित्य में दलित विमर्श :–

दलित विमर्श के लिए समकालीन हिंदी साहित्य में अनेक साहित्यकारों ने दलितों की दशा और दिशा पर विचार विमर्श करते हुए उनके उत्थान के लिए साहित्य की रचना किए जिनमें दलित आत्मकथा, दलित कहानियां, दलित उपन्यास, दलित कविताएं एवं दलित आलोचनाएं तथा नाटक एवं पत्रिका आदि हैं।

दलित विमर्श पर अनेक साहित्यकारों ने अपना योगदान दिया जिनमें मुख्य रुप से मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश बाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, रूपनारायण सोनकर, शिवराज सिंह बेचौन, माता प्रसाद, सुशीला टाँकभौरे, तुलसीराम, जयप्रकाश कर्दम, रमणिका गुप्ता, डॉ. प्रेमशंकर, प्रहलाद चंद्र बोस, शरण कुमार लिंबाले, शैलेश मटियानी, हरपाल सिंह 'अरुण', रत्नाकर साँभरिया, प्रेम कपाड़िया, सत्य प्रकाश, कावेरी, अजय नाहरिया, उमराव सिंह जाटव, भगवान दास मोरवाल, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र', कंवल भारती, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, कुसमी वियोगी, लक्ष्मीनारायण सुधाकर, डॉ. तेज सिंह, पूनम तुषामड़, डॉ. एन. सिंह, डॉ. धर्मवीर, दयानंद बटोही, डॉ. रजतरानी

मीनू, मनोज कुमार आदि– सभी साहित्यकारों ने दलित विमर्श पर अनेक साहित्यों का लेखन कर दलित समाज को जागृत करने का बखूबी कार्य किया। साथ ही उनके अतिरिक्त महात्मा ज्योति राव फूले, डॉ. भीमराव अंबेडकर ने अपने लेखों से ही दलितों को भारतीय समाज में उचित स्थान दिलाने के लिए प्रयास किए तथा उनके अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किये। ये सभी साहित्यकार दलित समाज के होने के कारण दलितों की सभी दृष्टिकोण से की दशा और दिशा से परिचित थे इसलिए इन सभी को दलित साहित्यकार और इनके लिखित साहित्य दलित साहित्य कहा जाता है।

दलित साहित्य के विस्तार को रेखांकित करते हुए डॉक्टर पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी लिखते हैं कि 'भारत के संदर्भ में शताब्दियों की पारंपरिक समाज संरचना के अंतर्गत ब्रह्माणी सामंती व्यवस्था के द्वारा शब्द के बल पर वेदोपनिषद के पठन–पाठन से प्रतिबिंधित और उपनयन संस्कार आदि से वंचित बहुजन समुदाय यानी बहिष्कृत एवं तिरस्कृत अनेक जातियों, उप जातियों कबीलो जमातों में विभक्त किंतु शोषण उत्पीड़न अपमान की जन्मघुंट्टी पीने वाले दल विशेष की जनसाधारण ही दलित हैं। आज दलित आंदोलन आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक शोषण एवं इतिहास की प्रज्वलता का आंदोलन नहीं है, अपितु वह अस्मितादर्शी मानव की प्रतिष्ठा का और मानव से मानव की मुक्ति का स्वतंत्रता, समानता, बंधुता तथा अन्याय पर आधारित 'सत्यमेव जयते' ही 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' की वैज्ञानिक सामाजिक संरचना का संरचनात्मक आंदोलन भी है। जिनमें 'अपना दीप आप बनो' की लोक चेतना के कारण निषेध, विद्रोह और संघर्ष के क्रांति मूल्य समाहित है और शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो की सामूहिक दलित लोक शक्ति की गतिशीलता भी है।'[4]

दलित साहित्य :–

दलित साहित्यकारों के अतिरिक्त गैर दलित साहित्यकारों ने भी दलित विमर्श पर आधारित साहित्य लिखे हैं लेकिन अधिकतर साहित्यकारों का मानना है कि दलित साहित्यकारों के द्वारा दलित पीड़ा स्वयं से भोगा हुआ रहने से अधिक अनुभव रहता है जिसके कारण वास्तविकता की झलक अपने साहित्य में दिखता है इसके विपरीत गैर दलित साहित्यकारों के साहित्य में वास्तविकता का पूरा पता नहीं हो पाता है उनके लेखों में सहानुभूति तो होती है परंतु आक्रोश और स्वानुभूति नहीं होती है। इसलिए सभी का एक मत है कि दलितों के द्वारा लिखे गए साहित्य ही दलित साहित्य माना जाता है।

हिंदी साहित्य में दलित साहित्य दलितों के जीवन और उनके विभिन्न समस्याओं को ध्यान में रखकर दलित लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य है। दलित साहित्य के संबंध में कंवल भारती ने लिखा है– 'दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को स्थापित किया है। अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है। दलित साहित्य उसी की अभिव्यक्ति करता है.... यह कला के लिए कला का नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।'[5]

हिंदी साहित्य में दलित साहित्य लेखन के प्रेरणा स्रोत :–

भारत देश विभिन्न धर्मावलंबियों का देश है लेकिन हिंदू धर्मावलंबियों की संख्या अधिक थी। सभी धर्मों की तुलना में हिंदू धर्म में छुआछूत की भावना अधिक थी और इस भावना का शिकार मध्यकाल में निर्गुण शाखा की अनेक कवि जैसे संत रैदास, संत पलटू, संत कबीर आदि प्रमुख रूप से हुए और वे सभी अपने स्तर पर दलितों में जागृति पैदा करने वाले कविताओं को अपने वाणी से की जिससे प्रभावित होकर लोगों में आत्मविश्वास जागृत

हुआ।

संत रैदास साहब ने अपनी कविता के माध्यम से दलितों को प्रेरित करने का प्रयास किया और कहा–

'रैदास एक ही बूंद सो, सब ही भयो बित्थार।
मूरिख है जो करत है बरन अबरन विचार।।'

अधिकांश दलित साहित्यकारों के द्वारा डॉ. भीमराव अंबेडकर को दलित चेतना और दलितों की अभिव्यंजना में मुख्य प्रेरणा स्रोत मानते हैं इनके द्वारा महाराष्ट्र में दलितों के अंधकार पूर्ण जीवन में रोशनी के दीये जलाने का कार्य किया गया उन्होंने अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए हिम्मत जगाई।

समकालीन हिंदी साहित्य में प्रेमचंद का दलित विमर्श :-

मुंशी प्रेमचंद दलितों के जीवन और उनकी समस्याओं को रेखांकित करने वाले महान लेखक थे। उनके लेखों में दलितों के जीवन की त्रासदी का प्रमाणिक आकलन है क्योंकि प्रेमचंद ने स्वयं ब्राह्मणवाद के द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों को देखे हैं। उनके द्वारा लिखित कहानी 'ठाकुर का कुआं' भी है जिसमें उन्होंने वर्ण व्यवस्था पर करारा प्रहार किया। उनके कहानी 'दूध का दाम' 'घासवाली' में भी दलित विमर्श रेखांकित है।

हिंदी साहित्य के अंतर्गत दलित साहित्य के विकास में ओमप्रकाश बाल्मीकि का भी महत्वपूर्ण स्थान है उन्हें उनकी आत्मकथा 'जूठन' के कारण 1993 में डॉ. अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला था।

दलित विमर्श के अंतर्गत लिखे गए गैर दलित साहित्यकारों के बारे में कहा जाता है कि उनके द्वारा लिखित साहित्य दलित साहित्य नहीं माना जा सकता क्योंकि वह केवल सुनी–सुनाई बातों को ही आधार मानकर साहित्य लिखते हैं इसके कारण सच्चाई पूर्णरूपेण सामने नहीं आती है।

ज्योतिबा फुले ने कहा है कि 'गुलामी की यातना जो सहता है वही जानता है वही पूरी सच कह सकता है सचमुच राख ही जानती है, जलने का अनुभव कोई और नहीं।'[6]

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने लिखा है– 'डॉ. अंबेडकर ने दलितों में चेतना पैदा की। जिससे खोई हुई अस्मिता को जीवित करने की जद्दोजहाद शुरू हुई। जिसने उनकी सामर्थ्य को विकसित किया और दलित साहित्य की एक ऐसी धारा का निर्माण हुआ जिसने सिर्फ दलितों में ही नहीं बल्कि समूचे भारतीय साहित्य के आत्म विश्लेषण की भावना का मार्ग प्रशस्त किया जो साहित्य की लंबी आयु के लिए जरूरी माना जाता है।'[7]

निष्कर्ष :-

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श पर अनेकों लेखक, समाज सुधारक, संत, महापुरुषों ने दलित साहित्य लिखे जिनमें दलित समाज के और गैर दलित भी हैं। लेकिन सभी साहित्यकारों का एक राय यही है कि गैर दलित लेखक उतना सच्चाई को व्यक्त नहीं कर सकता है जितना कि कोई दलित लेखक कर सकता है क्योंकि वह दलित होने के कारण दलितों पर होने वाले अन्याय, अत्याचारों को स्वयं भोगा रहता है।

हिंदी साहित्य में दलित साहित्य इंसान को लेकर बहुत ही स्वस्थ नजरिया रखता है। जिसमें मनुष्य की मूल्य वक्ता साफ झलकती दिखाई देती है दलित साहित्य का उद्देश्य केवल वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत किए जाने वाले शोषण, अन्याय और अत्याचार का विरोध करना ही नहीं है बल्कि अधिष्ठाताओं को होश में लाना भी है। इसीलिए समय–समय पर साहित्यकार ललकार भरता भी है। शोषण कर्ताओं के विरुद्ध बगावत भी करता है। ऐसी तेवर केवल और केवल डॉ. बाबा साहब अंबेडकर की सोच का ही नतीजा है। हर शोषित, दलित, पीड़ित

को समझना होगा कि दरिद्रता से आत्मसम्मान कभी नहीं मिलेगी। दरिद्रता को समाप्त करना ही होगा और यह केवल शिक्षा से ही संभव है। शिक्षित होने के बाद दलितों को प्राप्त संवैधानिक अधिकारों का ज्ञान होगा और उस आधार पर संघर्ष करना पड़ेगा क्योंकि संघर्ष से ही परिवर्तन संभव है। इसके लिए बहुजन समाज के संतों, गुरुओं और महापुरुषों द्वारा बताए हुए मार्ग पर चलना होगा। हजारों सालों के भारतीय इतिहास में दलित वर्ग का जीवन किसी नर्क से कम नहीं था और इसका कारण वर्ण व्यवस्था और उससे निर्मित जाति व्यवस्था ही था।

हिंदी साहित्य के जितने भी दलित साहित्य हैं उनमें से कुछ ही साहित्य का यदि अध्ययन किया जाए और आत्म जागृति पैदा कर अपना दीपक स्वयं बनकर आत्म सम्मान प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जाये तो निश्चित ही प्राचीन वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था का खात्मा होगा तथा समाज में व्याप्त कुप्रथा का निर्मूलन होगा। साथ ही भारतीय समाज के वे लोग जो दलितों के साथ अशोभनीय व्यवहार करते हैं ऐसे व्यवहार करने से बचेंगे।

संदर्भ :-

1. भारती कँवल : दलित विमर्श की भूमिका, पृष्ठ–13
2. मेघवाल डॉक्टर कुसुम लता हिंदी उपन्यासों में दलित वर्ग, पृष्ठ –01
3. झा. डॉ आरती : भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना, लेख–नवविकास (शोध विशेषांक) 2012 पृष्ठ–60
4. सुमन लिपि, मासिक पत्रिका, बम्बई, फरवरी–मार्च, 1994, पृष्ठ–24
5. लिष्मते शरण कुमार : हंस जनवरी–फरवरी 1919, पृष्ठ–53
6. पाण्डेय प्रो. मैनेजर : दलित चेतना साहित्य, नवलेखन प्रकाशन, पृष्ठ–04
7. भंडारे डा. मनोहर : दलित साहित्य, समग्र परिदृश्य, पृष्ठ–18

निवास ग्राम–सूपा, उप स्वास्थ्य केंद्र के सामने,
पो.आ.–बडेभंडार
तह.–पुसौर,जिला–रायगढ़ (छ.ग.) पिन–496100
मो. 09302983034, 7974489164

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 59-62
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में चित्रित स्त्री विमर्श

-डॉ. मनिषा साळुंखे
के. एन. भिसे. आर्ट्स, कॉमर्स अँड विनायकराव पाटील सायन्स कॉलेज, विद्यानगर, भोसरे।

भारतीय समाज में नारी शुरू से ही साहित्य का विषय रही है। हिंदी साहित्य सृजन में विभिन्न लेखिकाओं ने अपना योगदान दिया है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन बदलती सामाजिक तथा राजनैतिक स्थितियों ने नारी की चिंतन में अपूर्व परिवर्तन किया। पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति को दर्शाने के प्रयास हिंदी कहानियों में विविध लेखिकाओं ने प्रस्तुत किए हैं। आठवें दशक में अनेक महिला लेखिकाओं ने स्त्री विमर्श को अपनी रचनाओं में उभारने का प्रयास किया। उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, चित्रा मुद्गल, कृष्णा सोबती तथा मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं ने सभी का ध्यान आकृष्ट किया है।

हिंदी साहित्य में महिला लेखन के प्रति हर संघर्ष एवं चुनौतियों से टक्कर देने वाली, अपनी बात को सत्य कहने वाली मैत्रेयी पुष्पा एक अलग कहानीकार है। आधुनिक नारी की मनरूस्थिति पारिवारिक जीवन में पति पत्नी संबंध, स्त्री पुरुष संबंधों के विविध कोन स्त्री पुरुष संबंधों पर निहित स्त्री शोषण को अपने कथा साहित्य के जरिए सूक्ष्मता से अंकित किया गया है। मैत्रेयी पुष्पा स्त्री पर लिखने वाली, नारी विमर्श को स्पष्टता से व्यक्त करने वाली एक प्रमुख लेखिका है। स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात नारी की अवस्था में जो बदलाव आ रहा है वही बदलाव हमें मैत्रेयी पुष्पा की नारी पात्रों में पाया है। नारी विचारों की विविधता और गहनता इन पात्रों में पाई जाती है। हिंदी साहित्य में महिला लेखन के प्रति हर संघर्ष एवं चुनौतियों से टक्कर देने वाली अपनी बात को सत्य कहने वाली मैत्रेयी पुष्पा एक अलग कहानीकार है।

प्रस्तुत शोध निबंध के निम्न उद्देश्य है -

1. मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य को जानना।
2. 'ललमनिया' में चित्रित नारी विमर्श को जानना।
3. मैत्रेयी पुष्पा के सामाजिक देन को स्पष्ट करना।
4. नारी जीवन के विविध कोनों को जानना।

हिंदी कहानीकारों में महिला कथाकार मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में चित्रित विभिन्न नारी विमर्श को मैंने अपने शोध निबंध में प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत शोध निबंध के लिये ग्रंथालयीन पत्र–पत्रिकाएँ, संदर्भ ग्रंथ साहित्य वृत्तपत्रीय लेख, हिंदी कथाकारों के समिक्षात्मक ग्रंथों का आधार लिया गया है।

हिंदी कथा साहित्य को महिला कथाकारों ने विलक्षण ताजगी दी है। युगों का इतिहास अपने किसी न किसी अंश में नारी के गौरव को प्रतिष्ठित करता रहा है। मानव जीवन का प्रत्येक क्षेत्र नारी के अभाव में अपूर्ण

है। वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नारी से प्रभावित रहा है। सृष्टि की कल्पना भी स्त्री के बिना नहीं होती। स्त्री ही जीवन की प्रेरणा तथा आवश्यक पुर्ति है वह त्याग, बलिदान, सेवा समर्पण, वात्सल्य की प्रतिमूर्ति है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी साहित्य के माध्यम से स्त्री जीवन के विभिन्न छठाओं को प्रस्तुत किया है। अपने 'ललमनिया' कथा साहित्य के द्वारा स्त्री चारित्र के वैविध्य तथा मानसिक रहस्यों को खोलने का प्रयास किया है। स्त्री मन के अंतर्मन को छूकर उसकी स्थितियों का हूबहू चित्रण नारी पात्रों के जरिए करके समाज की यथार्थ स्थिति को सामने रखा है। 'ललमनिया' कहानी साहित्य के माध्यम से स्त्री की विभिन्न छटाए हमारे सामने प्रस्तुत की हुई है।

'तुम किसकी हो बिन्नी' कहानी के माध्यम से मैत्रेयी पुष्पा ने हमारे समाज में लड़की की ओर देखने का दृष्टिकोण कितना निंदनीय है इसे प्रस्तुत किया है। पुरुष परिस्थिती के साथ समझौता कर लेता है किंतु स्त्री परिस्थितीसे समझौता नहीं करती। स्त्री ही स्त्री की दुश्मन है इसी मानसिकता को लेखिका ने प्रस्तुत किया है। यह कहानी भारतीय परिवार की लड़की की स्थिति को उजागर करती है। हर माँ खुद स्त्री होकर भी लड़की नहीं चाहती तो लड़का ही चाहती है। भारतीय स्त्री पुत्र के बिना अपने को अधूरा महसूस करती है लड़की के गर्भ को गिराती है डॉक्टरी जांच करती है, उटपटांग दवाई भी लेती है, हाथ में गड्डे बांधती है, व्रत करती है पुत्र प्राप्ति के लिए अंधश्रद्धा को अपनाती है। यदि पहली बार लड़की हो तो स्वीकार कर लेती है परंतु दूसरी बार लड़की वह नहीं चाहती है और निर्दयता से लड़की का गर्भ गिराती है। डॉक्टरी जांच के बाद मालूम हो जाए कि पेट में बच्चा है तो वह फूले नहीं समाती किंतु दुर्भाग्यवश तीसरी बार भी लड़की हुई तो आक्रोश करती है और उसी लड़की को दुश्मन समझ कर जिंदगी भर उसके साथ दुश्मनी निभाती है। लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने भारतीय परिवार में लड़की की स्थिति को तथा स्त्री की मानसिकता को आरती नामक स्त्री पात्र के जरिए प्रस्तुत किया है।

आज भी समाज में लड़का तथा लड़की में भेदभाव किया जाता है। पुत्र को वंश का कुलदीपक माना जाता है 'पुत्र हुआ ऐसा, जैसा त्रिलोकी झेंडा' ऐसा मानने वाला हमारा समाज स्त्री के साथ अन्याय करता है पढ़ी–लिखी सुसंस्कृत लड़की परिवार का नाम रोशन करती है। वृद्धावस्था में माता–पिता की सेवा सुश्रुषा करती है किंतु लड़का अपनी शादी होने पर अपने ही माता–पिता का पालन पोषण करने के लिए तैयार नहीं होता। किंतु लड़की अपने माता–पिता के प्रति निस्सीम प्रेम करती है। वह शादीशुदा होने पर भी अपने माता–पिता की जिम्मेदारी को उठाती है और उन्हें संभालने के लिए तैयार रहती है।

भारतीय परिवार में होने वाली बेटी के स्थान को स्पष्ट करने वाली मैत्रेयी पुष्पा की 'बेटी' एक पारिवारिक कहानी है। बेटे को वंश का दीपक बुढ़ापे की लाठी माना जाता है इसलिए उसकी परवरिश बड़े धूमधाम से लाड प्यार से की जाती है। उनकी शिक्षा का प्रबंध किया जाता है। बेटों का होना माता–पिता के लिए गर्व की बात होती है। बेटी को पराया धन मानकर उन्हें शिक्षा की संधि नहीं दी जाती। माता पिता पुत्र मोह में इतने अंधे हो जाते हैं कि वे बेटी के स्नेह तथा वात्सल्य को भूल जाते हैं किंतु अंत में बेटी ही माता–पिता के काम आती है माता–पिता का आधार बन जाती है। मुन्नी के माता–पिता ने मुन्नी को पराए घर का धन माना और बेटों को बुढ़ापे की लाठी मानकर उनका लाड प्यार किया पर सभी बेटे कोई ना कोई बहाना बना कर घर से बाहर चले गए। माता–पिता की वेदना देखकर मुन्नी का ही मन पिघला। उसके प्रति अपने माता–पिता के लिए ममता उमड आई और उसने रोटी की व्यवस्था के लिए अपनी ही बेटी को अपने माता पिता के पास रखा। स्त्री अपनी परिवार के प्रति संवेदना को मार्मिक ढंग से मैत्रेयी पुष्पा ने प्रस्तुत कहानी के जरिए समाज के सामने रखा है।

'पगला गई है भागवती' कहानी लड़का–लड़की में भेद करने वाले निर्दयी पिता की कहानी है। वे लड़की को उत्पन्न होने ही नहीं देना चाहते उनका घर वालों पर इतना आतंक रहता है कि बेटी के जन्म होते ही उसे दायी मरा हुआ घोषित करती है और उस लड़की को कचरे में फेंकने का प्रबंध करती है। भागवती बाल विधवा है वह बेटा तथा बेटी को समान ही मानती है। बेटी पर हुए अन्याय के लिए लड़ने वाली वह क्रांतिकारी पारिश्रमिक स्त्री है। वह नारी को सम्मान देना चाहती है। माधव सिंह इतने निर्दयी है की अपनी ही बेटी को कचरे में भागो द्वारा जीवित होने की खबर को वे सुनते हैं तो वे उसका स्वीकार नहीं करते और उस बच्ची को भागो के हवाले कर देते हैं। वही लड़की अनुसुइया माधव सिंह की मर्जी के खिलाफ मास्टर से शादी करती है तो उसे जहर देकर मार डालते हैं। जब भागो देखती है कि माधव सिंह के लड़के नरेश ने कोर्ट में शादी की और उसकी बहू हिंदू भी नहीं है और उसे चार महीने का गर्भ है। तो वह माधव सिंह पर टूट पड़ती है और कहती है तेरे बेटे ने जो गलती की है वही गलती मेरी लड़की अनुसुइया ने भी की थी किंतु तुमने निर्दयता से उसे जहर देकर मार डाला और उस पर पत्थर मार कर माधव सिंह को वह घायल कर देती है। इससे स्पष्ट है कि अपने लड़के के प्रेम में हर पिता अंधा हो जाता है। उसे अपने लड़के की गलती का एहसास नहीं होता किंतु वही गलती जब लड़की के द्वारा होती है तो उसे अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए जहर देकर मार डाला जाता है। समाज के लोग इसी प्रकार बेटी और बहू के व्यवहार में हमेशा फर्क करते हैं।

'बारहवी रात' मैत्रेयी पुष्पा की पारिवारिक कहानी है शादीशुदा स्त्री की व्यथा को लेखिका प्रस्तुत कहानी के माध्यम से हमारे सामने रखा है। सास–बहू का झगडा समाज मे हमेशा चलता रहता है। गालिया देना, तकलीफ देना उसकी पीटाई करना, उस पर अन्याय अत्याचार करना जिस से मजबूर बहू को आत्महत्या करने के लिए प्रवृत्त किया जाता है। 'बारहवी रात' कहानी की सीता पति पत्नी में होने वाली दिन रात की कलह, गाली गलौज, मारपीट से थककर आत्महत्या करती है। सीता के पति सुरेंद्र को पुलिस पकड़कर ले जाती है अभी सूतक भी छूटा नहीं कि घर में सुरेंद्र की दूसरी शादी की तैयारी शुरू हो जाती है। समाज की ऐसी कुप्रथा को लेखिका ने प्रस्तुत कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। धमना वाले सुरेंद्र के साथ अपनी बेटी का ब्याह करने के लिए तैयार होते हैं। किंतु उनकी बेटी शिक्षित है वह इस शादी से साफ इन्कार कर देती है तब सुरेंद्र के पिता अपनी पत्नी से कहते हैं 'सुरेंद्र की अम्मा, होश में आओ। मालूम है, संदेश किसका था? नाई कह रहा था कि क्या करें धमना वाले, उनकी बिटिया अडी है कि दद्दा, हमें कुँआरे रहना मंजूर है। कत्ल होने उनके घर नहीं जाएँगे।'

आज की नारियों में आत्मभिमान है वे अपनी स्थिति को सुधारने के लिए प्राणापन से जुड़ी हुई है। वह जमाना चला गया जब स्त्रियों को गाय भैंस की तरह चाहे जिस खूंटे से बांध दो वह उफ तक नहीं करती थी अब वह अपने अधिकारों के प्रति सजग है। धमना की लड़की जागरूक है वह सुरेंद्र के साथ शादी करने से इन्कार कर देती है और जिंदगी भर कुंवारी रहना पसंद करती है परंतु इस कत्लखाने में वह आना नहीं चाहती है। कहीं–कहीं नारी पुरुष अत्याचार का विरोध करती हुई प्रतिक्रिया में तथा प्रतिशोध भाव से युक्त होकर वह सब करने को विवश होती है। जिससे पुरुष ने उसे पीड़ा पहुंचायी है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों के स्त्री पात्र अपने लक्ष्य से विचलित न होकर आत्मिक मनोबल तथा दृढ़ साहित्य के बल पर जीवन में आयी कठिन से कठिन समस्याओं का सामना करते हुए परिलक्षित हुए हैं।

निष्कर्ष :-

मैत्रेयी पुष्पा का साहित्य यथार्थवादी है। वे हमे समय से बांधकर रखती है। नारी पात्रों की स्वतंत्रता, स्वच्छंदता, निर्भिकता, साहस, जिद्द, अंत तक संघर्ष करने की प्रवृत्ती इन पात्रों में पायी है। इनके नारी पात्र टूटकर समाप्त हो जाने की अवस्था में परिस्थितियों को भंवर में फंसकर कमजोर नही बनते बल्कि अपनी पहचान कायम रहते है। भारतीय समाज में विवाह जन्म–जन्म का अध्यात्मिक बंधन माना जाता है। समाज में वैवाहिक जीवन के अंतर्गत नारी अनेक यातना तथा समस्याओं से जूझती रही है। इसी रुप को मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री पात्रों के जरीए समाज के सामने रखा है। आधुनिक नारी आर्थिक रुप से स्वतंत्र होती जा रही है। आज वह परंपरागत पतिव्रता रुप को छोड़कर अधिकाधिक स्वतंत्र व्यक्ति बनने की कोशिश में है। दहेज प्रथा, बाल विवाह बंद होने के कगार पर है। घरेलु हिंसा रोकने के लिए कानुन बन चुके है। भ्रूण लिंग जांच कानूनन अपराध है। विधवा या अकेली स्त्रिया अपने दम पर स्वाभिमान से जी सकती है। स्त्रियों को कोई अलग स्तर, वर्ग, धर्म या अलग संसार नहीं चाहिए। वे सिर्फ मानवता की अपेक्षा रखती है समाज, संस्कृती व सभ्यता से। जिसमें स्त्री पुरूष दोनों के लिए समान अवसर एवं समान वातावरण हो।

संदर्भ :-

1. ललमनियाँ तथा अन्य कहानियाँ – मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन।
2. स्त्री विमर्श– डॉ. विनय कुमार पाठक, भावना प्रकाशन, दिल्ली।
3. भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार– आशारानी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
4. समकालीन हिंदी कहानी– डॉ. पुष्पपाल सिंह, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंण्डीगढ।
5. विजन– मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

manishasalunkhe216@gmail.com
9604058211

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 63-65

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी किन्नर उपन्यास साहित्य की भाषा

–प्रा. दादासाहेब खांडेकर

संगमेश्वर कॉलेज, सोलापुर।

प्रस्तावना :–

लैंगिक आधार पर मानव मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित है, स्त्री एवं पुरुष। इन्हीं दो वर्गों के साथ–साथ मानव जाति में एक अन्य लिंग अर्थात् तृतीय लिंग प्रकृति के इंसान भी उपस्थित हैं। सामान्यतः समाज में ऐसे मानव के लिए 'किन्नर' अथवा 'हिजड़ा' शब्द प्रयोग किया जाता है। ये वे लोग होते हैं, जो लैंगिक आधार से न तो पूर्णतः स्त्री होते हैं और न ही पूर्णतः पुरुष। कुछ विशेष अंगों एवं गुण सूत्रों का नियत अनुपात में विकास न हो पाने के कारण, ये लोग सामान्य स्त्री एवं पुरुष की भाँति न तो संभोग कर पाते हैं और न ही गर्भ धारण कर सकते हैं। भारत की विभिन्न भाषाओं में किन्नर के लिए भिन्न भिन्न शब्द व्यवहृत हैं, जैसे :– तेलुगू में नपुंसकुडु, कोज्जा या मादा, तमिल में थिरू नंगई, अरावनी, गुजराती में पवैय्य, पंजाबी में खुसरा, कन्नड़ में जोगप्पा एवं इसी प्रकार भारत के विभिन्न क्षेत्रों में छक्का, खोजा, किन्नर, हिजरा, नपुंसक, थर्ड जेंडर, ट्रांसजेंडर इत्यादि शब्द भी किन्नरों के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

किन्नर शब्द आधुनिक किन्नौर क्षेत्र में प्राचीन काल से निवास करने वाली जनजाति विशेष के लिए प्रयोग होता आया है। जिसके उद्‌भव एवं विकास पर राहुल सांकृत्यायन ने 'किन्नर देश में' नामक अपनी रचना में विस्तृत रुप से चर्चा की है। देश के प्राचीन साहित्य में किन्नर को 'तृतीय प्रकृति' अथवा 'नपुंसक मानव' के रुप में संबोधित किया गया है। प्राचीन काल से ही मनुष्य की प्रकृति पर विद्वानों ने विचार किया है। इसी क्रम में संस्कृत के विभिन्न प्राचीन ग्रंथों में लिंग के ज्ञान पर भी प्रकाश डाला गया है।

किन्नर साहित्य समाज के एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। किन्नर वर्ग शिक्षा की दृष्टि से पिछडे वर्ग में स्थान पाता है। उनका चित्रण करते समय साहित्यकार को विशिष्ट भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। अतः साहित्यकारों ने अपनी भाषा–शैली में किसतरह की भाषा का प्रयोग किया है यह देखना आवश्यक होता है। जिसके कारण रचना में एक सहज स्वाभाविक रूप निखर जाता है। इनके कथासाहित्य में अन्य स्थानीय बोलियों के शब्द भी कभी–कभी दिखाई पड़ जाते हैं।

शोध विषय :–

समकालीन हिंदी उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श और किन्नर विमर्श को लेकर एक गंभीर चिंतन दिखाई देता है। किन्नर विमर्श को लेकर लेखन तथा शोधकार्य भी प्रचुर मात्रा में हुआ है। हमारे समाज में किन्नर समुदाय का एक बड़ा हिस्सा हाशिये पर जीवन व्यतीत करता है।

किन्नर समुदाय के जीवन पर आधारित मराठी के प्रमुख साहित्यकार राजन गवस का 'भंडारभोग' उपन्यास तथा इसी विषय की एक बंगाली कहानी का अनुवाद पढ़ने के बाद मेरे मन में इस विषय पर अध्ययन करने की इच्छा जागृत हुयी। तत्पश्चात् मैंने हिंदी के कुछ उपन्यास पढ़े और इस विषय पर शोध करने का विचार किया।

आज किन्नर, हिजड़ा, छक्का शब्द तिरस्कृत शब्द के प्रतिक बन गए है। इस विषय पर साहित्य निर्मिती करते समय अज्ञात और समाज बहिस्कृत किन्नर समुदाय को व्यक्त करने के लिए रचनाकार को भाषा की दृष्टि से चुनौती का समाना करना पड़ा होगा। रचनाकार किन्नर समाज में प्रयुक्त भाषा का प्रयोग कैसे किया है? या शहरी कृत्रिम भाषा में अभिव्यक्ति की है ऐसे अनेक प्रश्न मेरे समाने निर्माण हो गए। इसलिए मैंने समकालीन हिंदी उपन्यास साहित्य की भाषा विषय का चयन किया है।

साहित्य में किन्नर विमर्श वर्त्तमान समय में चर्चित और महत्वपूर्ण विमर्श है। इसमें काफी मात्रा में साहित्य निर्मिती हो रही है। अस्मिता एवं अकेलेपन के संकट से जूझते तृतीय लिंगी समुदाय में आज इन्हें 'किन्नर' कहा जाता है। अगर हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श की शुरुआत कथा साहित्य से मानी जाए तो 'यमदीप' उपन्यास सन 2002 में नीरजा माधव के द्वारा लिखा गया। तब से साहित्यकारों का ध्यान किन्नर लेखन की तरफ गया। उसके बाद मनमीत पत्रिका में 'किन्नर विशेषांक' निकला जो एक किन्नर जीवन के यथार्थ से जुड़ा हुआ है। जिसके सम्पादक कुमार अरविन्द वे एक पत्रकार हैं। इसके कारण उन्होंने बहुत सारे किन्नर लोगों के साक्षात्कार लिए जिसमें किन्नरों ने अपनी पीड़ा और वेदना प्रकट की तो एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि किन्नर विमर्श की शुरुआत सन 2000 के बाद ही हुई हैं। वर्तमान समय में साहित्य में कई विश्वविद्यालयों में शोध कार्य भी हो रहा हैं।

यमदीप उपन्यास के बाद में कथाकार महेंद्र भीष्म ने 'किन्नर कथा' सन 2011 उपन्यास लिखा और वर्तमान समय में काफी सारे उपन्यास ओर कहानियाँ लिखी जा रही है। हिंदी के प्रमुख किन्नर आधारित उपन्यास यमदीप, किन्नर कथा, मैं पायल और गुलाममंडी, जिन्दगी 50–50, प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली' उपन्यास बहुत ही चर्चित है और हिंदी कहानी संग्रह भी लिखे जा रहे है जैसे हम भी इंसान हैं, वांग्मय आदि इसी के साथ पत्रिका जनकृति में किन्नर विशेषांक निकला गया। साहित्य की इन विभिन्न विधाओं में किन्नर समस्याओ की पड़ताल की गयी हैं। उपन्यास और कहानी में पात्रों के माध्यम से किन्नर से जुड़ी संवेदनाओ को प्रकट किया गया। उनकी पारिवारिक उपेक्षा और रिश्तो की तड़प व संवेदनाओं की तलाश और आर्थिक संकट, सामाजिक तिरस्कार, शैक्षणिक और आर्थिक सशक्तिकरण के लिए किस तरह संघर्ष करते हैं।

हमारे समाज में किन्नर समुदाय का एक बड़ा हिस्सा हाशिए पर जीवन व्यतीत कर रहा है। सामाजिक अस्वीकार्यता वजह से रोजगार के सामान्य अवसर भी इनके हाथ से छिन जाते हैं। इनकी अशिक्षा भी अधिकारों की लड़ाई में अक्षम बनाती है। हालांकि वैश्विक परिदृश्य में इस तरह के लोगों के संगठित होने से तृतीय लिंग की स्थिति में बन दिखाई दे रहे हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि वर्तमान समय में तृतीय लिंग समुदाय की स्थिति में बदलाव आया। अपनी अस्मिता और अधिकारों को लेकर गंभीर हुए हैं, साथ ही पारंपरिक रूप से जो सांस्कृतिक घेरा बनाया उनके काम को लेकर जीविकोपार्जन के साधन को लेकर आज उनमें भी बदलाव आ रहा है और यह समुदाय शिक्षा स्वरोजगार के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं।

आज किन्नर समुदाय को नरक से भी बदतर जीवन जीने के लिए विवश कर दिया है। इस शोध के द्वारा उनके संघर्ष को आसान बनाने का और उनकी समस्याओं को खोलने का प्रयास किया जाएगा। उनके जीवन में बदलाव लाना जरुरी है। उनकी समस्याओं की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। इसलिए इस विषय पर अध्ययन होना बहुत जरुरी है।

सारांश :-

प्रस्तुत विषय प्रतिनिधि हिन्दी किन्नर उपन्यासों की भाषा में मेरे द्वारा किन्नर समाज के जीवन संघर्षो व जटिल समस्याओं को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की जाएगी। साथ ही मेरे शोध का उददेश्य हाशिए पर जीवन यापन कर रहे किन्नर वर्ग को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास करना है। इस वर्ग को समाज ने अपने से अलग कर शापित जीवन जीने के लिए विवश कर रखा है, जो आज हमारे समाज में हँसी के पात्र बनकर रह गया है। हिन्दी उपन्यासों ने किन्नर समाज के अन्दर विद्यमान समस्याओं को परत–दर–परत खोलने का सफल प्रयास किया है। प्रस्तुत उपन्यासों के माध्यम से इस वंचित तबके की जीवन की समस्या, उसकी पीड़ा व संघर्ष को यथार्थ रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत करना मेरे शोधकार्य का उद्देश्य है।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 66-69

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी विमर्श के परिप्रेक्ष्य में 'दोहरा अभिशाप'

–डॉ. जी. डी. बिराजदार

हिंदी विभाग प्रमुख, दयानंद कला एवं शास्त्र महाविद्यालय, सोलापुर (महाराष्ट्र)

21वीं सदी में 'नारी विमर्श' एक स्वतंत्र विमर्श के रूप में पहचाना जा रहा है। नारी विमर्श में मूलतः दो शब्द संलग्नित है–नारी और विमर्श अर्थात एक ऐसा विमर्श जो स्त्री को केंद्र में रखकर सारी चर्चाओं को लेकर चलता हो। 'राजपाल हिंदी कोश' में विमर्श के विचार, विवेचन, परीक्षण, समीक्षा आदि अर्थ मिलते हैं। जिससे स्पष्ट होता है कि किसी विषय या घटक का सभी अंगों को लेकर विचार करने की प्रक्रिया को 'विमर्श' कहा जाता है।

अर्चना वर्मा 'नारी विमर्श' को परिभाषित करते हुए कहती है मुझे नहीं लगता है कि –''स्त्री की स्थिति को किसी के भी साथ समीकृत किया जा सकता है। संबंध के धरातल पर स्त्री–पुरुष संबंध एक ऐसा विलक्षण समीकरण है कि उसका कोई भी इस्तेमाल नहीं।''[1] दीपेंद्र सिंह बघेल श्नारी विमर्शश पर अपने विचार रखते हुए कहते हैं कि –

''स्त्री–विमर्श में स्त्री आकांक्षा, आजादी, स्वायत्तता, पितृसत्ता का परिवार, संरचना, विज्ञान प्रौद्योगिकी और कानूनों में विन्यस्त पुरुषवाद पर गहरा विचार हुआ है।''[2] मृणाल पांडे मानती है कि– ''अगर विचार करना है तो स्त्री के संदर्भ में नहीं, शक्ति के संदर्भ में भी विचार करना होगा। क्योंकि मूलतः जो पीड़ा है, वह शक्ति के असंतुलित वितरण से उपजी विभिन्न प्रकार की विसंगतियों एवं कष्टों को लेकर है।''[3]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'नारी विमर्श' पिछली शताब्दी का एक विचार केंद्रित गंभीर मुद्दा रहा है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'नारी विमर्श' की कोई एक सर्व सम्मत परिभाषा नहीं मिलती। अलग–अलग विद्वानों ने अपने अपने दृष्टिकोण से इसकी परिभाषा की है। अंततोगत्वा हम कह सकते हैं कि 'नारी विमर्श' परिवार तथा स्त्री–पुरुष संबंधों में विश्लेषित होकर स्वतंत्र विचारधारा के रूप में साहित्य में अपना स्थान बना रहा है। समाज में नारी की अस्मिता का धूमिल होते जाना एवं मानव समाज का पुरुष प्रधान बनते चले जाना ही नारी की स्थिति पर सोचने के लिए विवश करना है।

'नारी विमर्श' में एक ऐसे विमर्श को देखा जाता है जो नारी के पूरे व्यक्तित्व को, उसके इतिहास के साथ देखा जाता है। नारी को मनुष्य मात्र न मानकर केवल वस्तु अथवा देह के रूप में देखने की प्रवृत्ति पर विमर्श विचार करता है। तथ्य यह है कि मानव समाज में अगर संतुलन बनाए रखना है तो एक को दबाकर दूसरा अपना अस्तित्व बनाए नहीं रख सकता। वैश्वीकरण के इस दौर में नारी जीवन के महत्व को लेकर काफी विचार–विमर्श हुआ है, जिसे साहित्य में 'नारी विमर्श' कहा गया है। नारीवाद नारी के प्रति हो रहे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में उभर कर आया है। इसमें नारी के शैक्षिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अधिकारों

की माँग की जाती है। डॉ. साधना अग्रवाल नारी विमर्श के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहती है– ''यदि इस अवधारणा का हम वस्तुगत विश्लेषण करें तो पाएँगे कि भारतीय समाज में वैदिक काल से ही स्त्री को समाज में पूजनीय शक्ति का प्रतीक और देवी कहकर अभीहित किया, जो पुरुष समाज द्वारा गढ़ा गया है। पश्चिमी महिला रचनाकारों ने इस विमर्श को आँच दी हैं। पर राधाकुमार के 'स्त्री संघर्ष का इतिहास' इस ग्रंथ में यह स्पष्ट किया है कि स्त्री–विमर्श पश्चिम से आयातित नहीं, बल्कि भारतीय समाज के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संघर्षों के अंतर्विरोध की उपज है।''[4]

अतः हम कह सकते हैं कि पश्चिमी नारीवाद से प्रभावित किंतु अपनी मौलिक ऊर्जा के साथ भारतीय परिवेश के अनुकूल जिस विचार का जन्म हुआ उसे 'नारी विमर्श' कहा जा सकता है। समाज के साथ–साथ साहित्य में भी नारी विमर्श का प्रभाव दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है। जिसके परिणामस्वरूप स्त्री की सोच तथा स्थिति में सुधार हो रहा है। 'नारी विमर्श' नारी के एक अंग के रूप में उभरकर एक प्रगतिवादी विचार है। पश्चिम के नारी मुक्ति आंदोलन का प्रभाव इस विचार पर पड़ा है। हिंदी साहित्य में विशेषतौर पर महिला रचनाकारों के लेखन के रूप में इस विमर्श की पहचान अधिक स्पष्ट बनती है। साहित्य में 'नारी विमर्श' स्त्री–पुरुष संबंधों के साथ–साथ नारी की निजता के बोध को लेकर भी चिंतन करता है। बदलते परिवेश के साथ–साथ समाज का दृष्टिकोण भी नारी के प्रति बदल रहा है। नारी को मानव रूप में स्थापित करने का आग्रह 'नारी विमर्श' के मूल रूप में निहित है।

'नारी विमर्श' के अंतर्गत पारिवारिक समान अधिकार को स्त्री के लिए आवश्यक माना है। एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए परिवार में स्त्री को समान अधिकार मिलना जरूरी है। अतः परिवार में स्त्री–पुरुष संबंधों के प्रति जो परंपरा वादी दृष्टिकोण है, उसमें परिवर्तन की नितांत आवश्यकता है। परिवार में स्त्री की महत्ता उसे प्राप्त अधिकार से होती है। स्त्री के लिए यह एक दोहरी लड़ाई होती है। क्योंकि चाहे वह पढ़ी–लिखी हो या मजबूर स्त्री घर–परिवार का कल्याण ही सोचती है। 'दोहरा अभिशाप' में कौसल्या बैसंत्री को उनके पति ने सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा था। परिवार में उनके लिए कोई स्थान ही नहीं था। उनके पति उन्हें हमेशा डाँट सुनाते थे। उनके साथ झगड़ा–मारपीट करते थे। पत्नी को वह मानो दासी समझते थे। दैनंदिनी के लिए जितनी वस्तु आवश्यक है, उतनी ही वस्तु रखते थे, बाकी की वस्तु अलमारी में बंद करके रखते थे। अगर कौसल्या की ओर कोई भी मिलने आए तो चाय तक बनाने के लिए उनके पास कोई सामान नहीं था।

'नारी विमर्श' की मूल संकल्पना में नारी के समस्त अधिकार निहित है। वर्तमान समाज में नारी को अपनी अस्मिता तथा अस्तित्व की चिंता सता रही है। अतः परिवार तथा समाज के बीच वह संघर्षरत दिखाई देती है। 'दोहरा अभिशाप' में कौसल्या बैसंत्री ने विवाह का निर्णय स्वयं लिया था। इसके लिए उन्हें किसी ने भी मजबूर नहीं किया। लेकिन विवाह के उपरांत उनके परिवार में उन्हें स्वयं निर्णय लेने का अधिकार ही नहीं था। इतना ही क्यों अगर कभी कभार वह पति के आने से पहले भोजन करें तो भी उनके पति कौसल्या के साथ झगड़ा करते थे। यहाँ तक कि कौसल्या के मायकेवालों से भी शिकायत करते थे।

यह उतना ही सच है कि नारी को अपनी इच्छानुसार सफल जीवन जीना है तो उसका आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना बहुत ही जरूरी है। अर्थ ही वह शक्ति है जिसके बल पर स्त्री अपना जीवन खुशहाल बना लेती है। 'दोहरा अभिशाप' के अंतर्गत कौसल्या को आर्थिक स्वतंत्रता कतई नहीं थी। उन्होंने कोई नौकरी नहीं

की, जिसके कारण उन्हें एक–एक वस्तु के लिए अपने पति के सामने झोली फैलानी पड़ी। उनके पति देवेंद्र कुमार दूध और सब्जी के पैसे भी गिन–गिनकर ही देते थे। पैसे अलमारी में बंद रखते थे। जिससे कौसल्या जी को छोटी–छोटी वस्तु के लिए भी अपने पति के सामने गिड़गिड़ाना पड़ता था। कौसल्या ने कहा है– 'मेरे कपड़े, चप्पल की सिलाई के लिए पैसे लेने में बहुत पीछे पड़ता था। तब पैसे देता था। वह भी पूरे नहीं पढ़ते थे। कभी नहीं भी देता। कहता अगले महीने लेना। जब अगले महीने पैसे देने की बात आती है, तब कुछ ना कुछ बहाना निकालकर झगड़ा करता, मारने भी दौड़ता।'[5] विदित होता है कि कौसल्या जी को भी आर्थिक अधिकार का जो महत्व है, समझ में आ गया था। वह कहती है –'अगर हम स्वाभिमान से अपनी उन्नति करना चाहते हैं, तब हमें अपने पाँव पर खड़े होना है।'[6]

अभिव्यक्ति ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा नारी स्वयं को समाज के सामने व्यक्त हो सकती है। नारी अधिकार के संदर्भ में स्त्री का मुखर होना, अभिव्यक्त होना जरूरी है। आज स्त्री अपने मन की स्थिति को व्यक्त करने जा रही है। परिवार तथा उसका अपना घर भले ही इसे बुरा माने, परंतु वह आखिर कब तक चुप्पी साध सकती है। सदियों से जिस मन को उसने दबा रखा था, वही मन अब अभिव्यक्त होने जा रहा है। 'दोहरा अभिशाप' आत्मकथा में कौसल्या बैसंत्री ने अपने जीवन में आए सुखद और दुःखद अनुभवों को समाज के सामने बयान किया है। 'दोहरा अभिशाप' की भूमिका में उन्होंने कहा है कि – 'पुत्र, भाई, पति सब मुझ पर नाराज हो सकते हैं, परंतु मुझे भी तो स्वतंत्रता चाहिए कि मैं अपनी बात समाज के सामने रख सकूँ। मेरे जैसे अनुभव और भी महिलाओं को आए होंगे, परंतु समाज और परिवार के भय से अपने अनुभव समाज के सामने उजागर करने से डरती और जीवनभर घुटन में जीती है। समाज की आँखें खोलने के लिए ऐसे अनुभव सामने आने की जरूरत है।'[7]

नारी को सिर्फ उपयोग तथा उपभोग की वस्तु समझा जाता है। भारतीय समाज में लड़की का जन्म ही दुःख का कारण माना जाता है। नारी के पारंपरिक रूप को ही पुरुष प्रधान समाज आज भी देखना चाहता है। 'दोहरा अभिशाप' आत्मकथा में कौसल्या बैसंत्री ने समाज, पति तथा परिवार से यही अपेक्षा की है कि स्त्री की तरफ देखने का दृष्टिकोण बदल जाए। अंत में वह भी तो मनुष्य ही है। उसके साथ भी मनुष्य जैसा ही व्यवहार होना चाहिए। कौसल्या ने अपने पति के बारे में कहा है कि– 'देवेंद्र कुमार को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और उसकी शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी।'[8]

ममता यह नारी का प्राकृतिक गुण है। उसकी ममता अपनी संतान के लिए अविरत प्रवाहित रहती है। अपनी संतान से वह बेहद प्यार करती है। लेकिन जब उसकी ममता पर कोई कुठाराघात होता है तो वह टूटकर बिखर जाती है। 'दोहरा अभिशाप' में कौसल्या के बच्चे छोटे थे। उन्हें संभालने वाला भी घर में दूसरा कोई नहीं था। इसलिए उन्होंने नौकरी नहीं की। सिर्फ बच्चे छोटे होने की वजह से लगभग 40 साल तक अपने पति के अत्याचार सहती रही। जब बच्चे बड़े हो गए, अपने पैरों पर खड़े हो गए। तब उन्होंने पति से तलाक ले लिया। इस प्रकार आज की नारी अपने अधिकारों के प्रति सचेत दिखाई देती है और अपने अधिकार का प्रयोग करते नजर आती है।

नारी स्वतंत्रता का मूल अर्थ है कि वह अपने जीवन संबंधी सभी निर्णय स्वयं ले। नारी अपने जीवन साथी का चुनाव भी अपने मन के मुताबिक करें। तभी सही मायने में उसकी मुक्ति होगी। आज नारी विमर्श के परिप्रेक्ष्य

में नारी खुद विवाह का निर्णय ले रही है। कौसल्या बैसंत्री ने बताया है कि देवेंद्र कुमार के साथ विवाह करने का निर्णय उन्होंने ही लिया था। शादी के लिए पहल उन्होंने ही की थी। किंतु कौसल्या के पति देवेंद्र कुमार ने उनके साथ कभी प्रेमपूर्वक व्यवहार नहीं किया। उन्हें हमेशा अपमानित ही किया। इसलिए उन्होंने 64 साल की उम्र में भी तलाक लेने के लिए कोर्ट में अपील की।[9] वैसे तलाक का उद्देश्य उन व्यक्तियों को राहत देना है, जहाँ सामान्य वैवाहिक संबंध दुष्कर हो गए हो गए हैं। इससे स्पष्ट है कि पति के कारण स्त्री का व्यक्तित्व तथा जीवन अगर दमित होता है तो उसे स्वतंत्र रहने का पूर्ण अधिकार है। मानो यह नारी विमर्श का ही परिपाक है।

अंततोगत्वा हम कह सकते हैं कि पितृसत्तात्मक समाज की सोच को बदलने का प्रयास ही नारी विमर्श है। नारी की समस्त सक्रियता को विमर्श एक जमीन प्रदान कर रहा है। हिंदी साहित्य में प्रचलित नारी विमर्श एक समन्वयवादी दृष्टिकोण को लेकर चलता है। जिसमें नारी विमर्श से संबंधित स्त्रियों की कई समस्याओं का विवेचन किया गया है। यह सारी समस्याएँ नारी–विमर्श से ही संबंधित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. 'हंस'– संपादक राजेंद्र यादव, अगस्त–2004, पृष्ठ– 8
2. वही
3. पांडे मृणाल –परिधि पर स्त्री, पृष्ठ–47
4. संपा. अरुण प्रकाश – समकालीन भारतीय साहित्य, नवंबर/दिसंबर– 2004, पृष्ठ–136
5. बैसंत्री कौशल्या– दोहरा अभिशाप, पृष्ठ– 105
6. बैसंत्री कौशल्या– दोहरा अभिशाप, पृष्ठ– 124
7. बैसंत्री कौशल्या– दोहरा अभिशाप, पृष्ठ– 8
8. बैसंत्री कौशल्या– दोहरा अभिशाप, पृष्ठ– 104
9. बैसंत्री कौशल्या– दोहरा अभिशाप, पृष्ठ– 92

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 70-72

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रोज केरकेट्टा की कहानियों में स्त्री चेतना

-गुलांचो कुमारी

नेट जेआरफ शोधार्थी, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखंड)।

"डॉ० रोज केरकेट्टा जैविक परवशता को स्त्री की पहचान का एक मात्र मानक मानने वाली सदियों पुरानी सामाजिक सोंच के खिलाफ कलम उठाने वाली कथा लेखिकाओं की कतार में जुड़ा एक और नाम है।"[1]

जिन्होंने समाज में स्त्री की स्थिति को अनेक रूपों में चित्रित किया है। कहीं वह पति की सेवा करने वाली के रूप में नजर आती है, तो कहीं असहाय दीन–हीन व प्रत्येक अन्याय को चुपचाप सहन करने वाली अबला के रूप में, कहीं वह प्रेमिका के रूप में सहयोगिनी की भूमिका में नजर आती है, तो कहीं पुरुष की प्रेरणा शक्ति के रूप में चरित्र लिये है, कहीं वह अन्याय व अत्याचार का विरोध करने वाली विद्रोहिनी की भूमिका में दिखाई देती है। "वीर भारत तलवार के शब्दों में" –"रोज केरकेट्टा के अंदर प्रखर नारीवादी चेतना मौजूद है। लेकिन वह पुरुष विरोधी नारीवाद नहीं है। बल्कि पुरुषों की बनाई व्यवस्था विरोधी नारीवाद है।"[2]

उक्त विवेच्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रोज केरकेट्टा सुदृढ़ व्यक्तित्व के साथ–साथ आत्म निर्णय लेने में भी सक्षम दिखती है। तो कहीं, नैतिक बंधनों से जकड़ी व्यवस्थागत ढांचे में फलीभूत निराशा, कुंठा व वेदना का शिकार होती दिखाई पड़ती है। इस प्रकार इन्होंने झारखंड के हिन्दी साहित्य में स्त्री जीवन के विविध पहुलुओं को उजागर करने का प्रयास किया है, जो पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की स्थिति को बताने के लिये काफी है। "इसलिए एक नारीवादी लेखिका की कसौटी सिर्फ यही नहीं होती है कि उसने स्त्री के प्रश्नों को कितनी गहराई से महसूस किया। एक लेखिका, एक रचनाकार की एक कसौटी यह भी है कि वो पुरुषों की मानसिकता का कितना सही चित्रण करती है?"[3].

वर्तमान समय विमर्शों का युग है जैसे – दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, वृद्ध विमर्श, पर्यावरण विमर्श और आदिवशी विमर्श। किन्तु इधर कुछ वर्षों से स्त्री विमर्शों की चर्चा अधिक होने लगी है, जिसमें झारखंड की महिला लेखिकाओं ने भी बढ–चढ़कर हिस्सा लेने का प्रयास किया है। इसमें रोज केरकेट्टा का नाम अग्रणीय है। वे स्त्री वर्ग से संबंधित होने के कारण स्त्री के उत्पीड़न, प्रताड़ना और संवेदना को बतौर एक स्त्रीवादी लेखिका और प्रामाणिक तरीके से अभिव्यक्त कर सकती है या कर रही है।

हिन्दी कथा साहित्य में कृष्णा सोबती का नाम इसलिए बहुत लिया जाता है ; क्योंकि, उन्होंने मर्दानी भाषा लिखकर एक स्त्री की अपनी सेक्सुवलिटी को प्रतिष्ठित किया, किन्तु कृष्णा सोबती को कभी इसका शौक नहीं था कि उनको नारीवादी कहा जाये, पर एक सत्य यह भी है कि पुरुषों की मानसिकता को, चरित्र को, जितना वह पकड़ती है, बहुत कम पुरुष रचनाकार चित्रण कर सकते हैं।

परंतु रोज केरकेट्टा की स्त्री दृष्टिकोण उपर्युक्त महिलाओं की दृष्टिकोण से अलग रहा है। वह नारी की

देह के साथ साथ अन्य शोषक तथ्यों को उजागर करने में ज्यादा सक्षम रही है। अब तक झारखंड की हिन्दी साहित्य में कुछ ही स्त्रियाँ स्त्री शोषण, स्त्री विमर्श की बागडोर संभाल रही है। यह माना जाता रहा है कि दुनिया की सभी स्त्रियों की समस्याएं एक जैसी है, किन्तु, झारखंड की महिलाओं की स्थिति अन्य से भिन्न है। यह भिन्नता सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सभी दृष्टियों से देखी जा सकती है। यहाँ का समाज, परम्पराएं एवं उनमें स्त्रियों के लिये बनाए गए सुनिश्चित नियम अलग है। शैक्षिक विकास के कारण कुछ बदलाव आया है, जिसके प्रभाव के कारण कहें, या बाहरी लोगों के संपर्क में आने के कारण, स्त्रियाँ पढ़ाई के क्षेत्र में धीरे–धीरे आगे बढ़ रही है। झारखंड के समाज में ऐसी कई स्त्रियाँ रहीं हैं, जिन्होंने भारत को आजाद कराने में, झारखंड को आजाद कराने में स्वयं सेना की बागडोर संभाला, फिर भी इतिहास में उनकी कहीं चर्चा नहीं की गई। यह हमारे समाज के स्त्री शोषण से निकालने और चेतनशील होने के लिये बहुत बड़ा चैलेंज है। मंजरी, रोपड़ी, जोसना, अहल्या, सिनगी दई, फूलों झानों जैसी स्त्रियों के जीवन चरित्रों को बताने के लिये ही रोज केरकेट्टा जैसी स्त्री लेखिका पैदा हुई है।

रोज केरकेट्टा की कहानी संग्रह "पगहा जोरी–जोरी रे घाटो" में स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं, घटनाओं का मार्मिक चित्रण किया गया है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ नारी शोषण से संबंधित है। भंवर, घाना लोहार का, केराबाँझी, छोटी बहु, गंध, महुआ गिरे सगर राति, मैना, पगहा जोरी–जोरी रे घाटो कहानियों में स्त्री शोषण, स्त्री चेतना, स्त्री प्रतिकार के स्वर तेजी से सुनाई पड़ते हैं। झारखंडी समाज में जड़ता प्राप्त पितृसत्तात्मक समाज के स्त्रियों का जीवन हक के सवाल, क्रूरता और हिंसा चरम तक जा पहुंचा हैं। जिसमें स्त्री होने के कारण उन्हें भुगतने पड़ते हैं।

झारखंड के समाज में स्त्रियों के लिये जब भी रचनाकारों की कलम चली तो उनमें प्रायः लाचार, अशिक्षित, ठिगनी, काली, दुबली–पतली स्त्रियों का ही चित्रण किया गया, किन्तु, रोज केरकेट्टा ने इन सबसे पर्दा हटाते हुए अपनी कहानियों में सदियों से गूंगी और बेबाक स्त्रियों को आवाज दी है। इनकी कहानियों में स्त्री पात्र चुप नहीं बैठते, वे अपने अधिकारों को पाने के लिये संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। इस बारे में "शिशिर टुडू" कहते हैं –"रोज केरकेट्टा का झारखंड के ग्रामीण परिवेश से गहरा जुड़ाव और स्त्री हक के प्रति उनकी प्रतिबद्धता स्पष्ट परिलक्षित होते हैं।"[4]

"भंवर" कहानी में विधवा मालकिन पितृसत्तात्मक व्यवस्था से घिरी समाज के आगे विवश और लाचार है। पुत्र न होने की वजह से उसे उसकी संपति नहीं मिलती है। मालकिन संपति पाने के लिये कानून का सहारा लेती है। काफी प्रयास के बाद भी मालकिन को असफलता ही हाथ लगती है– "मालकिन और बेटियाँ आज जान गई है कि वे कितनी असहाय और अकेली है। अपना कहने के लिये कोई नहीं है।"[5]. इस कहनी में जाति–प्रथा के नाम पर स्त्रियों को शोषण किया जाता है। समाज में जाति–प्रथा ,पुरुष–प्रथा के हावी होने के कारण ही सुमन और मालकिन को मार दिया जाता है, क्योंकि वह पुरुषों के खिलाफ आवाज उठाने के लिये कोर्ट जाती है। यह हमारे समाज की बहुत बड़ी समस्या है।

"घाना लोहार का" कहानी में लेखिका ने झारखंड की स्थानीय स्त्री समस्या को दिखाया है। इस कहानी की स्त्री पात्र कुंठा और हीन भावनाओं से लड़ते–भिड़ते देवी सीता व सावित्री नहीं है, बल्कि वे आज की समस्याओं से लड़ते हुए और विरोध करते हुए, जूझती हुई स्त्री है। जीवन से संबंधित अनेक समस्याओं का

सामना करती हुई स्त्री है, पितृसत्ता का विरोध करती स्त्री चेतना जागृत करती स्त्री है। "घाना लोहार का" की नायिका रोपनी है। रोपनी को जगत सिंह अपनी पत्नी की तरह रखता है। घर का सारा काम करवाता है, गोबर फेकना, झाड़ू लगाना, मवेशी देखने से लेकर कपड़े धोने तक का काम संभाल लिया। बस पीने का पानी नहीं भरती थी और रसोई नहीं बनाती थी। बात जब संपति की आती है तो उसे उसके अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। यह अधिकार उसे इसलिए नहीं मिलता है, क्योंकि उसने जगत सिंह के साथ सात फेरे नहीं लगाए हैं। इस कहानी में स्पष्ट देख सकते हैं। पंचायत में जगत सिंह की बहु कहती है – "बाहरिया के बेटे को संपति किस कानून के मार्फत मिलेगी? बाहरिया तो धंगरिन होती है। वह तो बेसवा होती है। मंत्र पढ़कर, हवन कर उसका ब्याह नहीं होता। वह तो विवाह ही नहीं कहा जाता इसलिए उससे पैदा हुआ भी धाँगर होता है।"[6]

"केराबांझी" भी स्त्री प्रतिकार, स्त्री चेतना से संबंधित कहानी है। ससुर बालधन के अनेक प्रयत्न के बावजूद बहु एक ही संतान रखने के लिये अड़ जाती है। वह दृढ़ शब्दों में कहती है कि –"आप मुझे केराबांझी कह सकते हैं क्योंकि हमने हाँ, हम पति–पत्नी ने मिलकर इसे स्वीकारा है।"[7] ऐसी बहु का अपने ससुर के सामने खडा होना स्त्री चेतना का प्रभाव दिखाता है।

इस तरह रोज केरकेट्टा ने कहानी संग्रह "पगहा जोरी–जोरी रे घाटो" में बालिकाओं, किशोरियों, युवतियों, प्रौढ़ों, सभी अवस्था की स्त्रियों का चित्रण किया है। उनकी इच्छाएं, सपने, शरारत, विवशता, करूणा और वेदना सभी का सफलता पूर्वक चित्रण किया है। इन कहानियों में एक ओर शोषित स्त्री का चित्रण है तो दूसरी ओर संघर्ष का सामना करती हुई और पुरुषवादी परंपरा का विरोध करती हुई स्त्री का रूप है। कहानियों के पाठक झारखंड के समाज में प्रचलित रीति–रिवाज, पर्व–त्योहार, स्त्री–शिक्षा, स्त्री शोषण आदि सब बातों को अच्छी तरह से समझ सकते हैं। इन्होंने झारखंड के वर्तमान समाज के परिददृश्य को पाठक के सामने हु–ब–हू रखा है।

संदर्भ सूची :-

1. प्रसाद माया, पगहा जोरी–जोरी रे घाटो, समीक्षकों के नजर में, रांची : संवाद प्रकाशक, प्रथम संस्करण 2011, पृष्ट सं 43
2. तलवार वीर भारत, पगहा जोरी–जोरी रे घाटो, समीक्षकों की नजर में, रांची संवाद प्रकाशक, प्रथम संस्करण 2011, पृष्ट सं. 26.
3. वही, पृष्ट सं. 26.
4. टुडू शिशिर, पगहा जोरी–जोरी रे घाटो (कहानी संग्रह), देशज प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2009,पृष्ट सं. 12.
5. भंवर कहानी से, पृष्ट सं. 15.
6. 'घाना लोहार का' कहानी से, पृष्ट सं. 23.
7. केराबांझी कहानी से, पृष्ट सं. 32–33.

मो. 9572920963, kumarigulancho@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 73-78
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी कविता में ट्रांसजेंडर विमर्श

-काव्या नायर बी.
शोधार्थी, हिंदी विभाग, कोच्चीन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्ची, केरल।

समाज में तरह तरह के लोग रहते हैं, तभी तो वह समाज कहते है। लेकिन हर कोई इस सच्चाई को समझने के लिए तैयार ही नहीं होता। प्रत्येक समाज में मनुष्य जीवन के आरंभ से लेकर स्त्री, पुरुष और ट्रांसजेंडर मौजूद है। लेकिन समाज स्त्री और पुरुष को छोड़कर बाकी सभी को मानता नहीं है। उनके जीवन को कभी समझने की कोशिश भी नहीं की जाती है। इसलिए वे हमेशा समाज में गायब था। आज एल जी बी टी समाज का हिस्सा है। इन के जीवन और अस्मिता पर समकालीन समय में बड़े पैमाने पर चर्चायें हो रही हैं। लेकिन ये चर्चायें केवल शाब्दिक स्तर तक सीमित हो जाती है। समाज ने इन पर विचार कम ही किया है। आज भी हमारा भारतीय उस संकुचित दायरे को लाँघने के लिए तैयार नहीं जहाँ अन्य जेंडर उपेक्षित है।

ट्रांसजेंडर जीवन की अनेक छवियाँ हमें अपने पुराने साहित्य में भी प्राप्त होती हैं। लेकिन वे आज भी प्रत्यक्ष नहीं हैं। समाज कभी भी उन्हें जीव के सामान स्वीकार करने के लिए भी तैयार नहीं होता है। कहने के लिए भारतीय समाज लोकतंत्र है, लेकिन अब भी वह शब्दों में सिमट जाता है। यहाँ समता एवं स्वतंत्रता के नारे बुलंद हैं वह सिर्फ नारों में ही विद्यमान है, असली जिंदगी में नहीं। अगर हम पीछे मुड़कर देखें तो, एक बात स्पष्ट रूप से हमारे सामने आती है कि आज का जो समाज है वह हमारे पहले के समाज से भी पिछड़ा है। पहले हमारे समाज में ट्रांसजेंडरों को रहने के लिए जगह, करने के लिए नौकरी, सब विद्यमान थे जैसे राजा महाराजाओं के समय में और उससे पहले भी उनका जीवन इतना मुश्किल नहीं था। अंग्रेजों के आगमन के बाद नियम एवं कानून तैयार किए गए और उनके बंधन में ट्रांसजेंडरों के जीवन ने एक अलग मोड़ ले लिया।

आज उनका संबोधन ही सबसे बड़ा सवाल है कि इन्हें किस नाम से पुकारा जाए। क्योंकि हमारे भारतीय समाज में अनेक भाषाएँ हैं, बोलियाँ हैं और लोग भी। प्रत्येक भाषा में उनके लिए अलग अलग नाम है जैसे तृतीय प्रकृति, तृतीय लिंगी, किन्नर, ख्वाजासरा, हिजड़ा, नपुंसक, छक्का, पवैया, जनाखा, ट्रांसजेंडर आदि। लेकिन आज ज्यादा से ज्यादा ट्रांसजेंडर शब्द का प्रयोग हो रहा है। आज तो इनका एक पूरा समाज है वह है एल जी बी टी यानी लेस्बियन, गे, बैसेक्सुअल और ट्रांसजेंडर। आज भी हमारे भारतीय समाज में यही विश्वास कायम है कि किसी घर में ट्रांसजेंडर बच्चा पैदा होता है तो उसे घर से बाहर निकालना चाहिए। यह सोच अभी तक पूरी तरह से बदला भी नहीं, कोशिश तो बहुत हुई उसके बावजूद आज भी ऐसा हो रहा है। लेकिन आज इस दिशा में कोशिश हो रही है कि इनकी समस्याओं को हमारा समाज समझे और उन्हें भी समझे।

साहित्य में आज हर विधा में ट्रांसजेंडर विमर्श से संबंधित अनेक रचनायें लिखी जा रही हैं जैसे उपन्यास, कहानी, कविता आदि। आज उपन्यास के क्षेत्र में जैसे यमदीप, किन्नर कथा, तीसरी ताली आदि दर्जनों उपन्यास

निकल चुके हैं। जिससे इस विषय को एक नए सिरे से सोचने के लिए पाठक समुदाय तैयार हो रह है। कविता के क्षेत्र में ट्रांसजेंडर विमर्श से संबंधित कविताएँ निकल रही हैं।

कविता वह माध्यम है जो कम से कम शब्दों में ज्यादा से ज्यादा विचार पेश किया जा सकता है। चार पंक्ति की कविता में एक जिंदगी का निचोड़ भी हो सकता है। ट्रांसजेंडर विमर्श से संबंधित प्रमुख कविता संग्रह है, गीतिका वेदिका जी का 'अधूरी देह', लता अग्रवाल जी का 'सिसकती दास्तान' और विद्या राजपूत तथा रवीना बारीहा द्वारा संपादित 'जिंदगी की दास्तान', डॉ.विजेंद्र प्रताप सिंह का 'अस्तित्व और पहचान' आदि।

इन कविताओं में ट्रांसजेंडर जीवन के उन पक्षों को दिखाया गया है जो समाज में होते हुए भी हम नहीं देखना चाहते हैं। उनके जीवन की समस्याओं के साथ उनमें जो बदलाव भी आए हैं वे भी इसमें हैं। समाज हमेशा उन्हें उनकी लैंगिकता के स्तर पर अलग नज़र से देखता है। हम यह सोचने की जरूरत है कि वह भी इंसान है और उन्हें भी इंसानों के जैसे जीने का अधिकार है। उनके जीवन के अनेक पहलुओं को यहाँ दिखाया है जैसे परिवार में अस्वीकार, पहचान की समस्या, अकेलापन, समाज द्वारा हाशियेकृत करना, परिहास, शोषण, मानवता, आर्थिक स्थिति, शिक्षा आदि।

शरीर में जो भी कमियाँ हैं वे इंसान द्वारा बनाई गई नहीं हैं वे खुद ब खुद आ जाने वाली हैं, यह हमें समझना चाहिए। पैदा होने वाला बच्चा अगर तृतीय लिंगी है तो उन्हें हमें छोड़ना नहीं चाहिए। उनकी शारीरिक क्षमता पर उनका जीवन निर्भर नहीं है। एक मांस का टुकड़ा उनके जीवन को निर्धारित नहीं करता है। उनकी सबसे बड़ी समस्या भी यही है कि लोग उनको उस स्तर तक देखते हैं जहाँ उनका शरीर है। उनकी इस व्यथा को गीतिका वेदिका जी ने यों बताया है –

''अधूरी देह क्यों मुझको बनाया
बता ईश्वर! तुझे यह क्या सुझाया?''[1]

इसमें उनके जीवन के उस हिस्से को दिखाया है जहाँ उनको सिर्फ एक कमी की वजह से समाज अलग करता है। उनका दर्द हम समझने की कोशिश नहीं करते, एक अपाहिज को अपने पास हम रख सकते हैं लेकिन एक ट्रांसजेंडर को नहीं।

समाज ने तो उन्हें पराया कर ही दिया लेकिन अपनों ने भी उन्हें पराया कर दिया। परिवार में उन्हें कभी भी स्वीकृति नहीं मिली। इसी कारण से वे समाज एवं परिवार से कटे रहे। यही उनका सबसे बड़ा दुःख है कि परिवार वाले भी उनके इस दुःख को नहीं समझते। जन्म के साथ ही उन्हें छोड़ा जाती है जब बच्चे को सबसे ज्यादा माता–पिता की जरूरत होती है। रुद्रांशी भट्टाचार्य की एक कविता है 'उसकी रूह जनानी थी'–

"गैरों को छोडिए
अपनों को भी किया बेघर
कहकर
तू ना नर है ना नारी है।
तू तीसरा है, तू ताली है।''[2]

यह उस समाज की मानसिकता को दिखाता है जो पहले से ही चली आ रही सोच को लेकर चलता है। घर वाले भी उनकी इस स्थिति को समझने के लिए तैयार नहीं होते। घर में जो अस्वीकार की भावना है

वह यहाँ विद्यमान है।

ट्रांसजेंडर की स्थिति इतनी बुरी है कि उन्हें समाज में जीने के लिए सपना देखने का भी हक नहीं है। उनके सपनों में भी हमने पाबंधियाँ लगा दी। एक आम इंसान की तरह जिंदगी जीने की जो उनकी ख्वाहिश है, वह सिर्फ ख्वाहिश रह गई। समाज कहने के लिए तो उनके साथ है, लेकिन जब सच्चाई सामने होती है तो इससे मुह मोड़ देता हैं। आज हमारे संविधान में उन्हें शिक्षा के अधिकारी तो मानते है, लेकिन आज भी उन्हें ऐसी शिक्षा नहीं दी जाती है जो साधारण लोगों को दी जाती है। आज भी उनके सपने सिर्फ सपने रह जाने वाली हकीकत है। लेकिन वे कोशिश करते हैं कि उनके सपने भी पूरे हो जाएँ। राज कनौजिया 'नील' की कविता 'अस्तित्व' की पंक्तियाँ देखिये –

"सामने है राह पर मंज़िल कहीं खो गई,
उस मंजिल की तलाश में चला जा रहा हूँ।
न कोई साथ है न कोई साया,
न कोई अपना है न कोई पराया,
पास है मेरे लिए सिर्फ एक सपना,
उसे सच करने चला जा रहा हूँ।"[3]

सबसे बड़ी समस्या उनके लिए पहचान को लेकर रही है। लेकिन आज भी उनकी पहचान की जो समस्या है वह सुलझी नहीं। घरवालों से लेकर समाज में जितने भी लोग हैं उन सबके मन में आज भी यह सवाल वैसे ही है। लेकिन हमारे कानून एवं नियमों ने इस समस्या को एक हद तक ठीक किया है। इस पहचान की समस्या को 'अस्तित्व और पहचान' में डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह जी ने रेखांकित किया है–

"'थर्ड जेंडर'
यही होगा अब हमारा
वोटर कार्ड, राशन कार्ड, और नेमप्लेट पर
स्थायी अस्तित्व और नाम,
अब तृतीय लिंगी है हमारी पहचान,
अब मिली है हमको भी पहचान।"[4]

इन पंक्तियों में हम देख सकते हैं उनके जीवन में धीरे धीरे आने वाले बदलाव। यह सच है कि वह भी इस समाज का एक हिस्सा है। संवैधानिक मान्यता प्राप्त होने के बाद उनके जीवन में काफी बदलाव तो आया लेकिन यह बदलाव की दृष्टि सब में नहीं। यह सोच न सब ट्रांसजेंडरों में आयी न सब समाज में।

ट्रांसजेंडर लोगों के प्रति आज भी घृणित मानसिकता एवं भेदभाव की दृष्टि रखने वाले लोग है। लेकिन इस मानक से हमें बाहर आने की जरूरत है। नर और नारी तो नहीं है लेकिन वे भी इंसान है इस बात को विद्या राजपूत जी ने 'हाँ! मैं किन्नर हूँ' कविता में यों अभिव्यक्ति दी –

"हाँ! मैं किन्नर हूँ,
मैं दिन और रात का मिलन संध्या हूँ।"

.....

हाँ! मैं भोर हूँ,
मैं स्त्री और पुरुष का संगम हूँ।
हाँ! मैं अर्धनारीश्वर हूँ,
मैं जल और थल से बनी पृथ्वी हूँ
.....
मैं ना भिखारी हूँ ना फ़रिश्ता हूँ।
मैं तो सिर्फ इंसान हूँ,
हाँ!मैं इंसान हूँ।" [5]

हमेशा किन्नरों को हाशिये में रखने की कोशिश की गई है, लेकिन इससे बाहर आकर वे जीना आज सीख रहा हैं। वे खुद मेहनत करके जीना चाहने वाले है, लेकिन समाज उन्हें यह मौका नहीं देता। वे अनेक तरीकों से अपने दर्द को दिखाते हैं, जैसे समाज ने उनका परिहास किया और ईश्वर ने उनको ऐसा बनाया, ये सब दुख आज भी उनको हैं। उनके लिए कहने को कोई रिश्तेदार नहीं, घरवालों ने उनको स्वीकारा भी नहीं, यह भी उनका सबसे बड़ा दुःख है।

अब सबसे बड़ी समस्या यह है कि उनकी पहचान का नाम क्या है? उनके इस नाम को लेकर आज कोर्ट में भी केस चल रहा है, तो ऐसे में उनके अनेक संबोधन उनको ही चीर देते हैं। लता अग्रवाल जी ने 'कोई तो संबोधन हो' कविता इसका सशक्त उदाहरण है।

"हिजड़ा!
किन्नर!
बृहन्नाला !
खोजा!
यूनिक!
फकत क्या यही
संबोधन बचा है
हमारे लिए
करता है आहत
तुम्हारा यह संबोधन
दिल को।"[6]

हम लोग उनका हास परिहास ही नहीं करते हैं बल्कि उनका शोषण भी करते हैं। अनेक तो इस शोषण के शिकार बने और अनेकों को आज भी इस शोषण का शिकार बनना पड़ रहा है। जो समाज आज भी औरत को वस्तु के रूप में मानता हैं वह समाज कैसे ट्रांसजेंडर को इंसान मानेगा। समाज की इस दूषित मानसिकता को हम 'धनंजय चौहान' जी की कविता में देख सकते हैं –

"तुम नहीं खोल पाओगे उन गाठों को।
क्योंकि तुम तो लंगोट को ढीला करना जानते हो।

मेरे का से की तक के सफर में तुमने हजार बार लंगोट को ढीला किया होगा।"[7]

लेकिन आज की बदलती स्थिति ने इनको शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के लिए भी हिम्मत दी है। वह इसके खिलाफ आवाज़ भी उठते है। भारत एक लोकतांत्रिक व्यवस्था पर चलने वाला राष्ट्र है इसलिए यहाँ सब समान है, तो शोषण के खिलाफ आवाज उठाना भी चाहिए इसलिए चौहान जी आगे बताते हैं –

"किन्नर कोई औरत नहीं जिसको पांव तले रौंदा जाएगा।
तुमको भी सिखला देंगे लंगोट कैसे कसकर बांधा जाएगा।।"[8]

पढ़े–लिखे समाज पर हम गर्व करते हैं, वही समाज इस प्रकार के अमानवीय व्यवहार करता हैं और समाज में भेदभाव पैदा करता है। आज भी समाज लोगों को भेदभाव की नज़रिये से देखता है इसलिए जो तथाकथित मुख्यधारा का समाज है वह अन्य समाज को किनारा करना चाहता हैं। 'रुद्रांशी भट्टाचार्य' की एक कविता है 'पर उसे हिजड़ा बताया गया था'। इस दृष्टि से उसकी पंक्तियाँ ध्यातव्य है –

"वे अलग थी,
स्वयं की नजर में नहीं,
पर मुख्यधारा के समाज ने,
उसे समाज की नज़रों से अलग किया गया था।"[9]

यहाँ आक्रोश भी है और बताया गया भी है मुख्यधारा का समाज कहने के लिए सब को अपनाता है लेकिन हकीकत में सब को ठुकराता है।

ट्रांसजेंडर के जीवन की सबसे सबसे बड़ी समस्या यही है कि उनको शिक्षा प्राप्त नहीं है इसलिए उन्हें नौकरी मिलने में भी दिक्कतें हैं। उनको आज भी पढ़ने का मौका नहीं मिलता है जैसे आम जनता को मिलता है। समाज की जो घृणित मानसिकता है उसके कारण स्कूलों में उन्हें दाखिला नहीं मिलाता। जिस उम्र में बच्चे पढ़ने लिखने और कूदने के काम करते हैं ये ताली बजाना सीख रहे थे, अपना पेट भरने का काम सीख रहे थे। शिक्षा से वंचित रहने के कारण इनके समाज में विकास आने में देरी हो जाएगी। इस समाज का दर्द लता अग्रवाल जी 'न तीन में न तेरह' कविता में इस तरह बताया है –

"छत्तीस का आंकड़ा हमसे
छीन लिया ममता का आँचल
सर से हमारा दुलार का बादल,
विसर दिए गए।"[10]

ट्रांसजेंडरों को समाज हमेशा एक वस्तु के रूप में देखता है और उसे अपने इस्तेमाल के बाद फेंक देता है, यूज एंड थ्रो संस्कृति है यहाँ। तथाकथित सभ्य समाज उनका शोषण करता है और उनको गालियाँ देता है। लेकिन ट्रांसजेंडर को अपने जीवन चलाने के लिए अपने शरीर को बेचना पड़ाता है। ऐसी सामाजिक हालात आज भी हमारे समाज में है। इस हालात पर अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए भैरवि अमरानी 'मैं सिर्फ तन हूँ' में कहती हैं –

"मुझमें संवेदना बची नहीं अब,
मेरा मन नहीं, मैं सिर्फ तन हूँ।

इस तथाकथित सभ्य समाज ने मुझे हाशिए पर रखा,
इन सब के लोगों की भूखी वासना ने मुझे जन्म दिया।
गालियाँ दी, जलालत दी, मैं नीच हूँ।
मैं किन्नर वेश्या हूँ।"[11]

हमारे समाज में किन्नरों को केवल वेश्या के रूप में देखा जाता है। इस समाज में स्त्री का सम्मान नहीं तो फिर यह 'समाज ट्रांसजेंडर' को कहाँ तक सम्मान देगा। हमारे समाज में पुरुषों के उपभोग के लिए स्त्रियों का इस्तेमाल किया जाता है वैसे ही ट्रांसजेंडरों का भी हमारा समाज इस्तेमाल करता हैं और इसके खिलाफ आज उनका आवाज बुलंद भी है। इस प्रकार के शोषण को हमें रोकना चाहिए। उन्हें नौकरी दिलानी चाहिए। पहले अपने पेट पालने की विवशता में वेश्यावृत्ति करते आ रहे है। लेकिन आज हमारे संविधान ने उन्हें शिक्षा और नौकरी करने की सुविधाएँ दी हैं। इसी शिक्षा को प्राप्त करके वह समाज में बदलाव लाने की कोशिश भी कर रहा है इस कोशिश का परिणाम है ये कवितायें।

अतः कहा जा सकता है कि ट्रांसजेंडर जीवन पर केंद्रित कविताएँ उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं का अनावरण करती हैं। उनके जीवन का दर्द ही इन कविताओं में बुलंद है। इनमें कुछ कविताएँ ट्रांसजेंडर द्वारा ही लिखित हैं। इन कविताओं के माध्यम से समाज को जागरूक करना है। मनुष्य में मनुष्यता होनी चाहिए। इसी सोच को हमारे समाज में प्रसार करने की जरूरत है। उपयुक्त कविताओं के माध्यम से सामाजिक सुधार एवं मानवीयता का संप्रेषण होता है। यह ट्रांसजेंडर को देखने की दृष्टि में बदलाव लाने में सहायक होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. गीतिका वेदिका, अधूरी देह, पृ.सं. 13
2. विद्या राजपूत तथा रवीना बारीहा (सं), ज़िन्दगी की दास्तान, पृ. सं. 41
3. विद्या राजपूत तथा रवीना बारीहा (सं), ज़िन्दगी की दास्तान, पृ. सं. 67
4. 'डॉ. विजेंद्र प्रताप (सं), अस्तित्व और पहचान, पृ. सं. 156
5. विद्या राजपूत तथा रवीना बारीहा (सं), 'ज़िन्दगी की दास्तान, पृ. सं. 49
6. डॉ. लता अग्रवाल, सिसकती दास्तान, पृ. सं. 21
7. विद्या राजपूत तथा रवीना बारीहा (सं), ज़िन्दगी की दास्तान, पृ. सं. 32
8. वही– पृ. सं. 32
9. विद्या राजपूत तथा रवीना बारीहा (सं), ज़िन्दगी की दास्तान, पृ. सं. 40
10. डॉ. लता अग्रवाल, सिसकती दास्तान, पृ. सं. 25
11. विद्या राजपूत तथा रवीना बारीहा (सं), ज़िन्दगी की दास्तान, पृ. सं. 45

kavya.malu24@gmail.com
फोन 9633808216

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 79-84

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी विमर्श के सन्दर्भ में हिंदी कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

-ललिता स्वामी

11/359 मुक्ता प्रसाद नगर, बीकानेर।

भारत जैसे सांस्कृतिक विविधताओं वाले देश में आदिवासी वर्ग का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी हमारी संस्कृति के परिचालक है जो समाज से पृथक रहने के कारण पिछड़े हुए है। आदिवासी समाज वर्तमान में संकट के कठिन दौर से गुजर रहा है। जल, जंगल और जमीन से जुड़े रहने के कारण उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लोकसंस्कृति की समस्या, शिक्षा, स्वास्थ्य, और स्त्रियों से जुड़ी हुई समस्याएँ दिन–प्रतिदिन बढती जा रही है। संसार में किसी भी भाषा के साहित्य सृजन की मूल प्रेरणा उस समूह की पीड़ा ही होता है। आदिवासी विमर्श का प्रमुख कारक आदिवासियों को स्वातंत्र्योतर काल से ही यह अहसास हुआ कि हमारा हजारों सालों से शोषण हो रहा है प्रताड़ना, उपेक्षा और शोषण के खिलाफ साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए ये सभी प्ररेणा है। वन आदिवासी के लिए दाता, त्राता और रक्षक है जहां से उन्हें खाने के पदार्थ, रोजगार, अर्थ और सांस्कृतिक विकास को बल मिला है। परन्तु औद्योगिकरण के नाम पर उनका मूल निवास जंगल उनसे छिना जा रहा है। इसी कारण उनका अस्तित्व तहस–नहस होता जा रहा है।

हिंदी कहानी साहित्य के सन्दर्भ में आदिवासी विमर्श और अस्मिता की पहचान भारत के जातीय जीवन के भीतर से आदिवासी अस्मिता की पहचान की कोशिश ही है। क्यों की कहानी में जीवन की व्यापकता तथा प्रत्येक घटना की बोलती तस्वीर छिपी रहती है। आदिवासी विमर्श आधारित हिंदी कहानियों में आदिवासी जीवन अपनी धड़कनों, जीवन्तताओं और प्रमाणिकता के साथ विद्यमान है यंहा उस जनजीवन का वर्णन है जो शिक्षा सभ्यता के आलोक वृत्त से बाहर है। हिंदी के बहुत से कथाकारों ने आदिवासी जीवन को अपनी कहानी के केंद्र मैं रखा है। इनकी कहानियां आदिवासी जीवन की त्रासदियों को उकेरती है। इन कहानियों में भालचंद्र जोशी, संजीव, मेहरूनिसा परवेज, प्रतिभा राय, राकेश कुमारसिंह, गंगासहाय मीणा, रोज केरकेट्टा, कृष्णचंद टुन्डू, प्यारा केरकेट्टा, लक्ष्मीनारायण पयोधि, एलिस एक्का, राकेश वत्स, मनीष राय आदि प्रमुख है इनकी कहानियो में आदिवासी समाज के शोषण, गरीबी, लाचारी, जीवन संघर्ष और अस्तित्व की लड़ाई को प्रकट किया गया है। कहानियों में सामन्तों के झूठ फरेब जालसाजी जनजातीय समाज की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थितियों के चित्रण के साथ–साथ आदिवासी नारी के मन के विविध पक्षों का उद्घाटन हुआ है।

देश की शासन और प्रशासन व्यवस्था आदिवासी समाज को मुख्यधारा में निश्चित रूप से लाना चाहती है परन्तु वास्तविकता कुछ और है इन्हें मुख्यधारा में लाने के शासन–प्रशासन के प्रयास आदिवासियों को

जीवनधारा से ही हटाने के षड्यंत्र प्रतीत होते है भालचंद जोशी की कहानी–"पहाड़ों पर रात" इसी वास्तविकता का दस्तावेज है जो आदिवासी विकास के नाम पर उनके साथ किए जा रहे छल प्रपंचो का वास्तविक रूप बयान करती है एक आवेदन पत्र लिखवाने के लिए भालचंद्र जोशी रचित कहानी के आदिवासी पात्र जिस प्रकार सरकारी कर्मचारियों के पास दौड़तें रहते है। उसे देखकर इस बात की आशंका होती है कि क्या उन्हें विकास के नाम पर मदद मिल पाएगी? बुढ़ा आदिवासी जिस प्रकार भाग–दौड़ करके अपना आवेदन पत्र लिखवाता है तथा सरकारी अधिकारियों के आश्वासन पर रोज जाकर दफ्तर के बाहर खड़ा हो जाता है उस वृद्ध आदिवासी को देखकर लगता है कि प्रशासन के द्वारा इन्हें विकास एंव मुख्यधारा में लाने का भद्दा मजाक किया जा रहा है।

बाद में उसी प्रशासन व्यवस्था का एक और ढोंग देखने को मिलता है कि– "आदिवासी समाज सरकार द्वारा निर्धारित मुख्यधारा में शामिल होने से घबराते है।" कहानी में शासन व्यवस्था के ढोंग को आसानी से समझा जा सकता है। देश का मूलनिवासी प्रताड़ना और उपेक्षा का जीवन जी रहे है यही वास्तविकता ही देश के बजट में तथा राज्यों के बजट मैं आदिवासी बहुल जिला, नगर तथा पंचायत क्षेत्रों में आदिवासियों को मुख्यधारा में लाने के लिए काफी रकम घोषित की जाती है परन्तु उसका वास्तव में क्या उपयोग होता है आदिवासियों को मुख्यधारा में लाने के क्या प्रामाणिक प्रयास किए जाते है? यह कहानी इसी का जीवन्त दस्तावेज है।

जीवन भर की समस्याओं और दुःख से आदिवासी मुक्त नहीं हुए है कहानीकार संजीव की कहानी "प्रेतमुक्ति" इसी तथ्य का द्योतक है। यह कहानी आदिवासियों के सामंती शासन तथा प्रशासन के सामने घुटने टेकने के तथ्य से परिचित करवाती है। प्रशासन द्वारा आदिवासियों को दिए जाने वाले संसाधन तथा सरकारी योजनाएं उन तक पहुँच ही नहीं पाती। योजनाओं का लाभ पंहुचने की मात्रा उन तक पंहुचते–पंहुचते मात्र औपचारिकता ही रह जाती है। कहानी के पात्र डॉ.मुर्तजा को आदिवासियों का पक्ष लेने के कारण परेशानियाँ झेलनी पड़ती है और अंत में भय के कारण सामन्ती व्यवस्था का मजबूरी में समर्थन करना पड़ता है।" प्रशासन की यही कमजोरी आदिवासियों को कभी न्याय नहीं दिलवा पाती।"

सामन्ती व्यवस्था की गुलाम प्रशासन व्यवस्था आदिवासियों के अधिकारो का सामन्तो के इशारो पर गला घोटती है। आदिवासियों के नाम पर बनी खेती विकास की योजनाएं गाँव के सामन्तों के खेतो की हरियाली बनती है और फिर देश की आजादी में भी आदिवासी समुदाय सामन्तो की गुलामी नहीं करता बल्कि अपने शारीरिक और मानसिक शोषण के साथ–साथ अपनी स्त्रियों पर सामन्तो द्वारा किए जा रहे शारीरिक शोषण को भी चुपचाप देखता है। अब शासन व्यवस्था से आदिवासियों का विश्वास उठ गया है–"जानते हो सब, किसने क्या कर लिया? हिंया पे जो भी आता है उन्ही का भाई–बन्धु बन जाता है।"

संजीव की एक और कहानी "पाँव तले की दूब"– आदिवासी का संघर्ष बयान करती है। आदिवासी का मूल अर्थ ही उनका जंगल, जमीन, बोली–भाषा, उनकी अपनी संस्कृति, उनकी अपनी जीवन शैली, शारीरिक गठन और नाक–नक्शा है। वर्तमान शासन व्यवस्था उनकी अपनी संस्कृति भाषा को ही नष्ट कर रही है। बाकी सब तो स्वतः ही नष्ट हो जाएगा। पाँव तले की दूब कहानी में कहानीकार संजीव ने आदिवासी समाज द्वारा किए जा रहे आन्दोलन को विषय बनाया है। सरकारी तंत्र औधोगिक विकास के नाम पर आदिवासियों को अपनी जमीन से ही बेदखल करने का षड्यंत्र रच रहा है। जमीन का सरकारी मुआवजा इतना दिया जा रहा है कि

उसमें उनकी आधी पीढ़ी का भी गुजरा नहीं होगा अब न उनका वर्तमान ठीक है न भविष्य सुनहरा इस संबंध में कहानी का उक्त अंश कितना कुछ बोलता है– "सिन्हा साहब जैसे मुख्यधारा के लोग जब यह कहने लगते है कि–"न पढाई–लिखाई, हुनर, अनुभव से मतलब ना देश से बस खुराफते करते रहेंगे। कौन कहता है कि ये निरीह है? मुझे आदमी चाहिए काम का आदमी मैं आदिवासियों का उद्धार करने नहीं आया हूँ यहाँ।" उक्त कथन से स्पष्ट है कि– प्रशासन आदिवासियों विकास के नाम पर छल–कपट द्वारा उनके अस्तित्व को ही समाप्त करने पर अमादा है। शहरी सभ्य समाज की आदिवासियों के प्रति उपरोक्त मानसिकता के फलस्वरूप तथा आदिवासियों को उचित मुआवजा और प्रतिनिधित्व नहीं दे पाने के षड्यंत्र इत्यादि "झारखण्ड आन्दोलन" जैसे जनआंदोलनों को जन्म दे रहे है। आज स्थिति ऐसी है कि इन आंदोलनों को सफल बनाने के लिए आदिवासी समाज कुछ भी करने को तैयार है। क्योंकि आदिवासियों से उपेक्षित आदिवासी बहुल सम्प्रदाय के अधिकार और इज्जत तथा उनके अस्तित्व की लड़ाई मान रहा है।

आदिवासियों के पिछड़ेपन इनके शोषण तथा मुख्यधारा पिछड़ने का महत्वपूर्ण कारण उनका धार्मिक अंधविश्वास है उनके अंधविश्वास को देखकर सभ्य समझे जाने वाला समाज आदिवासियों की हंसी उड़ाता है। कहानीकार "संजीव" की "पाँव तले की दूब" कहानी में कथा नायक कालीचरण विशुद्ध वैज्ञानिक अविष्कारों तथा सभ्य समाज की संगति में रहने के बावजूद भी मंत्र और जादूटोना में अधिक विश्वास रखते है नायक कालीचरण किस्कू मंत्र शक्ति से सबको या किसी को भी वश में कर सकता है। नाटक में उसके साथ काम करने के लिए अस्पताल की नर्स शीला केरकेट्टा को अपनी मंत्र शक्ति से बुला सकता है। कालीचरण को यह भी विश्वास है कि वह फ्लेट के सबसे बड़े अधिकारी सिन्हा साहब को अपनी मंत्र शक्ति से अपने वश में कर सकता है। अन्धश्रद्धा ही आदिवासियों को पीछे खींच रही है। विशेषतः आदिवासी स्त्री इसका सबसे अधिक शिकार होती है। आदिवासियों के धार्मिक अंधविश्वास का सशक्त बयान करने वाली एक और प्रमुख कहानी है "टोना"।

मेहरुनिसा परवेज रचित टोना कहानी में आदिवासी स्त्रियों की विडम्बना और दुर्दशा को उजागर किया गया है। आदिवासी स्त्रियों में गोदना या गुदवाना भी एक धार्मिक अंधविश्वास है इस प्रकार शरीर पर गोदना नहीं करवाने पर स्त्रियाँ यह मान लेती है कि मरने के बाद उन्हें नरक भोगना पड़ेगा। आदिवासियों को अन्धश्रधा में लाने वाली शक्ति गाँव के पुजारी तथा झाड़–फूंक करने वाले ओझा और पंडित वर्ग होता है। इस सम्बन्ध में कहानी का अंत अंश दर्शनीय है– "मरने के बाद भगवान के घर यही लेखा साथ जाता है। जिसका गोदना नहीं वह नरक भोगता है यही देह का चिन्ह तो साथ जाता है। बिना गोदने वाले देह को कोई नहीं पूछता।" इस प्रकार मेहरुनिसा परवेज रचित टोना कहानी आदिवासियों के अस्तित्व को ही नाश की ओर ले जाने की रूढ़ि को प्रकट करती है।

प्रतिभा राय– रचित कहानी "भगवां का देश" बंडा नामक आदिवासी समाज के धार्मिक अंधविश्वास की अभिव्यक्ति करती है इस कहानी में एक जनजाति दूसरी को कनिष्ट मानकर एक–दूसरों से झगड़ कर हत्याएं करती है। बंडा जनजाति का पुरोहित लक्ष्मी सिसा दूसरी जनजाति के पुजारी के साथ बहस होने के बाद उनकी हत्या कर देता है। उसे इस बात पर क्रोध आता है कि पुजारी नारायण प्रधान उसे छोटी जाति का मानता है। तथा पूरी बंडा जनजाति को असभ्य समझता है। उसे अपने पर गर्व है की बतीस बंडा गाँवो का भला–बुरा जनता है तथा देवताओं के साथ उसकी बातचीत होती हैं। कहानी से पता चलता है कि आदिवासी समाज का मुख्यधारा

के लोगों से दूर जंगलो, गुफाओ जो अंधकार से घिरी होती है, उनके जीवन की सुरक्षा करने वाली अज्ञात शक्तियों को देवता मानने की मानसिकता ने आदिवासियों को अन्धविश्वासी बना दिया है। व्याधियो और अनिष्टों से मुक्ति के प्रयास में उनके अन्दर अंधविश्वास की भावना पनप गई है। प्रतिभा राय की कहानी ''भगंवा का देश'' का नायक लक्ष्मी सिसा मंत्र और उपासना से बंडा जनजाति का उद्धार एंव कल्याण करना चाहता है।

आदिवासी समुदाय की त्रासदी का चित्रण करती एक और कहानी राकेश कुमार सिंह रचित "अग्निदेवी" है। जंगल में बसे गाँव नंगे होते जा रहे है और साफ जमीन पर बद्री मिसिर के खेत बनते जा रहे थे एक जंगल कट रहा था तो एक दूसरा जंगल बन रहा था और वह जंगल था बेरोजगारी, भूख, विपदा और अंततः बन्दुआ मजदूर बनने का जंगल। ऐसे में आदिवासियों की इज्जत आबरू दांतून हो गई थी जो तोड़–चबाकर युवको के भीतर सुलगती आग को भी भड़का देती है। जंगल बाबू के घर आग लगा दी। जंगल बाबू के दो लोग गोली से वही पर ढेर हो गए। जिनमें एक बागुन मुंडा के पिता जादिक मुंडा भी थे पुलिस छापेमारी के डर से बागुन भी गाँव से भाग जाता है उसे नक्सलवादी घोषित कर दिया जाता है। बागुन की अनुपस्थिति में बद्री द्वारा जमीन हड़प ली जाती है तथा बागुन को मृत घोषित कर दिया जाता है। इस प्रकार कहानी में विद्रोह करने वाली नक्सलवादी करार कर दिए जाने का हृदयस्पर्शी चित्रण देखने को मिलता है।

गंगा सहाय मीणा रचित "पूस की रात" कहानी 21वीं सदी में भी आदिवासी किसान की कष्ट उठाती जिन्दगी का जीवन्त दस्तावेज है। कहानी की प्रमख चरित्र भूरी नामक स्त्री है जो कि अपने खेतों की सिंचाई करने के लिए पोष माह की शरद रात में भी जी–तोड़ मेहनत करती है गाँव में समर्थ लोगो ने खेत में बोर तुड़वा कर दूसरे किसानों के खेतो में सिंचाई का पानी देने का कारोबार कर रखा है चार सौ रुपये प्रति घंटा की दर से खेत में पानी देते हैं। भूरी अपनी बारी से पूरा खेत सींचना चाहती है वह अपने पति की अनुपस्थिति में घर, पशु तथा बुढी सास की सेवा के साथ साथ खेत में पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करती है खेत में पानी लगाते समय वह बिल्कुल भीग जाती है फिर भी ठण्ड से कांपते हुए वह निरंतर काम में लगी रहती है कहानी में गंगा सहाय मीणा के भूरी के माध्यम से एक आदर्श आदिवासी नारी का और किसानों के शोषण का सजीव चित्रण किया है। 'आदिवासी विमर्श' आधारित हिंदी कहानियों में आदिवासी समाज की बोलती यर्थाथ तस्वीर उभरती दिखाई देती है। कहानियों में आदिवासी अस्मिता का प्रश्न सचेत तथा सुव्यवस्थित ढंग से उठाया गया है। कहानियों में मुख्य रूप से तात्कालिक जीवन अधिक प्रमाणिकता से चित्रण किया गया है।

आदिवासी हिंदी कहानियों में आदिवासी व्यक्ति के तनावों, दुखों, भावनाओं और इन सबके बीच उसको खुद को जिंदा रखने की जद्दोजहद और जीवन शक्ति भीड़ में अपनी अलग पहचान बनाने की इच्छा और विपरीत परिस्थितियों में जूझते हुए निरंतर संघर्ष करने की जिन्दादिली को उजागर किया गया है। समकालीन हिंदी कहानी साहित्य में आदिवासी अस्मिता के विभिन्न रूपों को रेखांकित किया गया है। यहाँ आदिवासी जीवन अपनी धड़कनों जीवन्तताओं और प्रमाणिकता के साथ विद्यमान है। यहाँ उस जनजीवन का वर्णन है जो शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के आलोक वृत्त से बाहर है कहानियों में हाशिए पर खड़ा वह विराट जनजीवन चित्रित है जो ज्ञान अथवा सिद्धान्त से नहीं बल्कि अपने विश्वासों, संस्कारों और रीत–रिवाजो से संचालित होता है उससे रस ग्रहण करता है और उन्ही संस्कारों और रीति–रिवाजों के प्रकाश में अपने जीवन मूल्यों और अस्मिता को परिभाषित करता है। कहानियों में आदिवासी जीवन से शहरी जीवन की दूरियां बनी हुई है।

राकेश वत्स की कहानी 'अक्शेष' आदिवासी समाज में स्त्री के मान और सम्मान लूटने की गाथा है कहानी में मुख्यधारा का समाज आदिवासी स्त्री को मात्र मनोरंजन का साधन मानते है। उनकी दृष्टि में आदिवासी स्त्री का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। आदिवासी स्त्री के भोलेपन, मासूमियत की मुख्यधारा का समाज गलत फायदा उठता हैं। "नाई खाने को कुछ बात नाई हम तो संदेसवा देने की खातिर इंहा आत रहे।" आदिवासी स्त्री को उन लोगो की धूर्तता का अंदाजा तब होता है जब वे उस को शराब पीने के लिए न्यौता देते है–"नहीं–नहीं ये तो तुम्हें पीनी ही पड़ेगी। तुमने हमारे लिए इतना कुछ किया है हमारा भी फर्ज बनता है कि ...."चावला ने औरत का फैला हाथ थाम लिया और उसमे जबर्दस्ती गिलास फँसाने की कोशिश करने लगा परन्तु औरत गिलास को पकड़ने के लिए राजी नहीं हुई। इस प्रकार शर्मा जी की नजर में आदिवासियों की अहमियत जीरो थी शर्मा जी का मानना था कि आजादी से पहले यह आदिवासी स्त्री अपनी अस्मत सस्ते में लूटा देती है और अब सिर्फ चंद सिक्के चाहिए उन्हें, कहानी में भी चावला और शर्मा जी कुछ ऐसा करने की चाहत रखते है परन्तु उनका मकसद पूरा नहीं हो पाता क्योंकि आदिवासी स्त्री अपनी चेतना अस्तित्व–बोध के प्रति सजग और सतर्क है। आदिवासी औरत बिफर कर चीखी– "नाहि हमारा मंगेतर को भान होगा तो वो तुम लोगन को कच्चा चबा डालेगा। और उसने लम्बे लम्बे काले नाखुनो वाले अपने पंजे को सांप के फनों की तरह फैला लिया आदिवासी स्त्री में स्वयं के अस्तित्व बोध के चलते उन दरिंदो के विरोध करने की शक्ति और क्षमता विकसित हुई है। इस प्रकार अवशेष कहानी में लेखक ने आदिवासी नारी की अस्मिता के प्रश्न को बारीकी से उठाया है। कहानी में मुख्यधारा में लोगो की आदिवासी स्त्री के प्रति गलत धरणा को तोड़ा गया है तथा आदिवासी स्त्री के मान–सम्मान से जीने की चाह को पेश किया गया है।

निष्कर्ष :-

आदिवासी कहानी साहित्य को देखने के पश्चात हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जिस प्रकार आदिवासी समुदाय अपनी भूमि से जुड़ा होता है वैसे ही वह अपनी श्रद्धा और संस्कृति के साथ भी जुड़ा हुआ है। अशिक्षा और अज्ञानता ने उन्हें आज भी पिछड़ा हुआ रखा है परन्तु जैसे भी है अपने आप में खुशहाल है आदिवासी जीवन की विविधता, उनकी संस्कृति, लोकजीवन उनका नक्सलवाद में शामिल होना, शामिल ना होते हुए भी नक्सलवादी घोषित कर अन्याय करना, स्त्री शोषण, अशिक्षा, औद्योगीकरण तथा परियोजनाओ के नाम पर उनकी जमीने हड़पना, आदि कहानी साहित्य सृजन की प्रेरणा रहीं है। आज आवश्यकता है आदिवासी समाज के वर्चस्व पर सवाल उठाने की। कथा साहित्य द्वारा उठाए गए सवाल भी आने वाले समय में उनके प्रश्नों के उतर में परिवर्तित होकर उनके जीवन की सुनहरी जन चेतना बन सकेगे।

संन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आदिवासी साहित्य : स्वरूप एवं विश्लेषण – डॉ. शेख शहनाज बेगम अहमद।
2. आदिवासी स्वर एवं नयी शताब्दी – स. रमणिका गुप्ता।
3. वर्तमान समय में आदिवासी समाज – स. डॉ. गीता वर्मा, रवि कुमार गौड़।
4. आदिवासी विमर्श – स. वी. कृष्ण भीम सिंह।

5. आदिवासी अस्मिता वाया कथा साहित्य – रसाल सिंह, बन्नाराम मीणा।
6. आदिवासी साहित्य विविध आयाम – स. रमेश शंभाजी कुरे, डॉ.मालती और धोड़ेपंत शिंदे।
7. हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श – स. डॉ. पंडित बन्ने।
8. लोकप्रिय आदिवासी कहानियां – स. वंदना टेटे।
9. मेहरुनिसा परवेज की कहानियां – स. मेहरुनिसा परवेज।
10. पगहा जोरी–जोरी के घाटों – रोज केरकेट्टा।
11. टीस, तीस साल का सफ़रनामा – सं. संजीव।
12. एलिस एक्का की कहानियां – एलिस एक्का।
13. वाङ्मय (त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका) –डॉ. एम. फिरोज अहमद
आदिवासी विश्लेषण – भाग(1), भाग(2), भाग(3), भाग(4)

मो. 9664471921, 8769541170

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 85-88
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी साहित्य में स्त्री-विमर्श
('अल्मा कबूतरी' के विशेष संदर्भ में)

-डॉ. मधुबाला सांखला
सह-आचार्य, हिन्दी, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)

भारत एक बहुभाषिक एवं बहुसांस्कृतिक देश है। सदियों से भारतीय समाज में अनेक जाति, धर्म, वर्ग एवं संप्रदाय के लोग रहते हैं। भारत में अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं, इसमें आदिवासियों का विशिष्ट स्थान है। आदिवासी एक निश्चित भू-भाग में अपनी विशिष्ट बोली बोलते हैं तथा संगठित रहते हैं। ये लोग सभ्यता की दौड़ में पिछड़े हुए हैं। बहुत से आदिवासी जंगलों में, पहाड़ों में और दुर्गम प्रदेशों में रहकर कबीलाई जीवन शैली अपनाए हुए हैं। सदियों से सभ्यता एवं संस्कृति से दूर होने के कारण ये पिछड़े हुए हैं। आज हम जिस समाज में रहते हैं उस समाज में आज भी कुछ ऐसी आदिवासी जनजातियाँ हैं, जो मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित हैं। आदिवासी जनजातियों का जीवन पूरी तरह से जंगल पर निर्भर है उसे भी सभ्य समाज ने हड़प लिया है। वर्तमान साहित्यकार न केवल ग्राम्य व शहरी जीवन के यथार्थ को प्रत्यक्ष ला रहे हैं, वरन् दूर-दराज के क्षेत्रों में लुप्त होते उन आदिवासियों के जीवन में भी झांक रहे हैं और उस समाज की जीवन शैली की समस्या, संस्कृति, शोषण व जीवन के सत्य को हमारे समक्ष रख रहे हैं ।

हिंदी साहित्य में बीसवीं शताब्दी के अंतिम दौर में स्त्री संघर्ष का आरम्भ होता है। आज स्त्री समाज के समुचित विकास के लिए पुरूषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे बढ़ रही हैं। इसके द्वारा स्त्री अपनी अलग पहचान एवं अस्तित्व बना रही है। वस्तुतः नारी संघर्ष, नारी अस्मिता से जुड़ा अहसास है। स्त्री संघर्ष से तात्पर्य है सामाजिक, आर्थिक, वैमनस्य झेलती नारी का विरोध और उससे बाहर आने का प्रयास। प्राचीनकालीन समाज में स्त्री को आदर मिलता था, कालान्तर में नारी की स्थिति कमजोर होती गई। लेकिन स्त्री शिक्षा के फलस्वरूप सामाजिक कुप्रथाओं के विरूद्ध आवाज उठाने का साहस करने लगी। घर की चारदीवारी तोड़कर स्त्री अपना अस्तित्व खोजने का धैर्य दिखाने लगी। जहाँ तक आदिवासी समाज में नारी की स्थिति का प्रश्न है तो यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि ये आज भी समाज की मुख्यधारा से अलग है। आदिवासी स्त्री समाज, जाति से हीन और गरीब होने के कारण सामाजिक और आर्थिक जीवन स्थितियों के साथ उनका इतिहास और उनकी जीवन-शैली एक आम भारतीय स्त्री से भिन्न है। आदिवासी स्त्री संघर्ष के समर्थ संताली कथाकार के.सी. टुडू लिखते हैं- ''हिन्दी साहित्य में आदिवासी समाज और उनका जीवन अब तक उपेक्षित हैं।

हमारे हिंदी साहित्यकारों का ध्यान भारतीय समाज के इस सबसे उत्पीड़ित समुदायों की ओर लगभग नहीं के बराबर हैं।''[1] साहित्य में जहाँ कहीं आदिवासी स्त्री का चित्रण हुआ है। वहां हम आदिवासी स्त्री को मात्र

स्वच्छन्द, यौन की वस्तु, लुटी–पिटी और क्षत–विक्षत रूप में चित्रित देखते है। इसी संदर्भ में वंदना टेटे लिखती है ''भारतीय साहित्य में आदिवासी महिलाएँ परदेशी के प्रेम में देह सौंपती, दाई, आया, सेविका आदि के रूप में प्रताड़ित होती हुई ही दिखाई देती है। अस्मिता, स्वशासन और आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए संघर्ष करती हुई आदिवासी स्त्रियाँ साहित्य और फिल्मों में एकसिरे से गायब है।''[2] दलित साहित्य में भी स्त्री के सवालों को पीछे छोड़ा गया है। इसी कारण अलग से दलित स्त्री विमर्श की आवश्यकता महसूस हुई और यही स्थिति वर्तमान में आदिवासी साहित्य में स्त्री की है। आज जब सम्पूर्ण विश्व में स्त्री पूर्ण मनुष्य का दर्जा प्राप्त करने की जद्दोजहद में लगी हुई है और वर्तमान समय में हमारा देश राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया से गुजर रहा है, ऐसे में समाज के किसी एक वर्ग के प्रति अपरिचय की स्थिति घातक साबित हो सकती है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज व्यवस्था के इस कमजोर तबके से संबंधित साहित्य का विश्लेषण करके जाना जा सके कि इस वर्ग का वास्तविक जीवन कैसा है? क्यों अब तक आदिवासी स्त्रियाँ समाज की मुख्य धारा से जुड़ पाने में असमर्थ हैं। उनका जीवन आज भी एक विवश आत्म समर्पण है। आदिवासी स्त्री जीवन के संघर्ष का बहुत से साहित्याकारों ने आवाज दी है। इन साहित्यकारों ने अपनी साहित्य के माध्यम से समाज के सामाजिक, वैयक्तिक, जीवन संघर्ष की समस्याओं को व्यक्त किया है। आदिवासी स्त्री के शोषण, संघर्ष, स्त्री प्रताड़ना, मुक्ति की बैचेनी का सच्चा दस्तावेज प्रस्तुत करता ये साहित्य खुरदरे यथार्थ की सच्चाई को बिना किसी लाग–लपेट के बयान करता है। इस दृष्टि से मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी'' विशेष उल्लेखनीय है। जिन्होनें अपने लेखन के माध्यम से स्त्री शोषण एवं अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाई हैं और उस समाज की विशिष्ट संस्कृति और जीवन शैली को, उसकी समस्याओं, शोषण एवं जीवन सत्य को भी हमारे सामने रखा हैं इस दृष्टि से देखा जाए तो मैत्रेयी पुष्पा का यह उपन्यास आदिवासी स्त्री के संघर्ष को हमारे समक्ष हुबहू चित्रित करता प्रतीत होता है।

'अल्मा कबूतरी' एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें बुन्देल क्षेत्र में बसने वाली कबूतरा आदिवासी समाज के जीवन को कटु सत्य और गहरी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इस जाति के लोग सभ्य समाज का हिस्सा बनना चाहते है। किन्तु सभ्य समाज इन्हें जंगलों में छिपने के लिए मजबूर करता है। इनकी स्त्रियाँ कठिनाईयों से जूझते–जूझते जीवन जीती हैं। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की स्त्री पात्र वैसे तो अनेक हैं जिनमें भूरी, भजनी, कदमबाई, अल्मा, संतोले की बहू आदि है। परन्तु प्रमुख पात्र भूरी, कदमबाई और अल्मा ही है। सभ्य–समाज द्वारा उन पर होने वाले शारीरिक, मानसिक, तथा आर्थिक शोषण से ये संघर्ष करती हैं इनकी कठिनाइयाँ अलग है। अपराधी माने जाने के कारण सभ्य समाज द्वारा होने वाले अत्याचार अन्याय को सहन करना इनकी नियति बन गई है। सभ्य समाज के खिलाफ इनके मन में विद्रोह की भावना होते हुए भी वह अन्याय के खिलाफ आवाज नहीं उठा सकती। अपराधी आदिवासी स्त्रियाँ बलात्कार पर आँसू नहीं बहाती पीड़ित नहीं होती बल्कि उसे दुर्घटना मानकर भूला देती हैं। मंसाराम, कदमबाई से बलात्कार करता है। खुद को दोषी नहीं मानता और समाज में शान से रहता है और स्त्री निर्दोष होकर भी अपराधी मानी जाती हैं लेखिका इस समीकरण की उलट देती है।

कदमबाई खुद को अपराधी नहीं मानती वह मंसाराम के बेटे को जन्म देने का साहस करती हे– ''गर्भ में बच्चा सधा रहा। न गिराया न गिरने दिया। हौल गर्दिश छाती पर छेलती रही, पेट तक आने नहीं दी।''[3] भूरी

कज्जा लोगों द्वारा होने वाले अन्याय तथा अत्याचार के खिलाफ विद्रोह करती है। बेटे को पढ़ा–लिखा कर उसे अच्छा ईंसान बनाना चाहती है – ''बस्ती की सबसे पहली माँ थी भूरी जिसने बेटे को कुल्हाड़ी–डंडा न थमाकर पोथी–पाटी पकड़ाई।''[4] 'अल्मा कबूतरी'' की प्रमुख पात्र अल्मा सभ्य समाज द्वारा होने वाले शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक शोषण का विरोध करती है पिता की हत्या के बाद संघर्ष शुरू होता है। अल्मा रामसिंह शिक्षक की इकलौती बेटी है जिसे रामसिंह के द्वारा सूरजभान का कर्ज चुकाने के लिए अल्मा को सूरजभान के यहां गिरवी रखा जाता है। रामसिंह अपनी बेटी से कहता है कि – ''अल्मा तू गिरवी धरी है, समझे रहना। भला इसमें बुराई भी नहीं हम कबूतराओं में तो यह चलन रहा है– जेवर, गहना– बासन और बेटी मुसीबत के समय काम आते हैं।''[5] अल्मा को जिस समाज द्वारा बहिष्कृत माना जाता है उसी समाज में वह संघर्ष का सामना करते हुए नागरिक होने का हक तो ले ही लेती हैं उसके साथ–साथ सभ्य समाज पर शासन करने को भी तैयार होती है।

इस उपन्यास में लेखिका ने अपराधी जनजाति की स्त्रियों के नारकीय जीवन का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है। इस विषय पर राजेन्द्र यादव लिखते हैं– ''अल्मा इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि दलितों से आगे जाकर अपराधी जनजाति की दुनिया और विशेष कर स्त्री समाज को हमारे सामने खोलती है, कबूतरा जाति के लोगों, कज्जा, चोर, डाकू की तरह देखते बेचते हैं। वे या तो जेलों में रहते हैं या तो जंगलों में– उनकी औरों अफसरों या कज्जाओं के बिस्तरों पर।''[6]

श्री राम शास्त्री अपने चुनाव प्रचार के लिए अल्मा का इस्तेमाल करते हैं। वोटों को ध्यान में रखकर उसके साथ विवाह कर लेते हैं। अल्मा मंत्री जी को हर तरह से अपना मोहताज बना देती है– ''अल्मा परामर्श में मंत्री–सी और सेवा में दासी–सी, खिलाने पीलाने में माता–सी, सेज पर रम्भा–सी । श्री राम शास्त्री के यहाँ का हर तौर तरीका अल्मा के सलीके का मोहताज हो उठा।''[7]

लेखिका के शब्दों में '' श्री रामशास्त्री के निधन के कारण खाली हुई बबीना विधान सभा की सीट के लिए सत्तारूढ़ पार्टी की ओर से श्री राम शास्त्री की निकटतम सहयोगी और निष्ठावान गाइड अल्मा उम्मीदवार होंगी।''[8]

अतः सम्पूर्ण अध्ययन के उपरान्त कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास के माध यम से आदिवासी स्त्री के संघर्ष की गाथा को प्रस्तुत कर सभ्य समाज के घृणित, शोषित, अपराधिक स्वरूप को उजागर किया है। कदमबाई, भूरी और अल्मा के चरित्र द्वारा स्त्री की सहनशीलता, बुद्धिमता और विवेकशीलता का भी परिचय दिया है। यह उपन्यास आदिवासी समाज की स्त्रियों को अन्याय, अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाने के लिए प्रेरित करता है।

उपन्यास के इन नारी पात्रों के बहाने मैत्रेयी पुष्पा नए मूल्यों को गढ़ती है। लेखिका उन्हीं मूल्यों को स्वीकार करती है, जो वर्तमान संदर्भों में भी प्रासंगिक हों। मैत्रेयी का लेखन और पात्र एक ऐसा विमर्श खड़ा करते हैं जो सिद्धान्तों से गढ़ा न होकर समाज की सच्चाईयों से प्रत्यक्ष साक्षात्कार करवाता हो तभी तो लेखिका ने आदिवासी स्त्री अल्मा को सामाजिक कुरीतियों और असमर्थता के साथ–साथ राजनीतिक पर्दे पर भी उतारा हे लेखिका ने यहाँ वर्गभेद के साथ जीवन की वास्तविकताओं से अवगत कराया है। स्त्री अस्मिता के इस संघर्ष में गिरकर फिर उठने का हौंसला रखने वाली 'अल्मा' इस बात का जीता–जागता उदाहरण है।

आदिवासी स्त्री तथाकथित परम्पराओं, रूढ़ियों और अन्ध विश्वासों की शोषणकारी व्यवस्था में जकड़ी हुई है, इसलिए उनको अस्मिता संरक्षण के नाम पर आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों से वंचित नहीं रखा जा सकता है।

संदर्भ :-

1. टेटे, वंदना : आदिवासी साहित्य परम्परा और प्रयोजन प्यारा केरेकेट्टा फाउण्डेशन, रांची (झारखण्ड), संस्करणः 2013, पृष्ठ 49
2. वहीं, पृष्ठ 72
3. पुष्पा, मैत्रेयीः अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–28
4. वहीं, पृष्ठ 75
5. वहीं, पृष्ठ 244
6. यादव, राजेन्द्र–आदमी की निगाह में, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2007, पृष्ठ 236
7. पुष्पा, मैत्रेयी' अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 372
8. वहीं, पृष्ठ 390

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 89-94

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अल्मा कबूतरी उपन्यास में व्यक्त आदिवासी जनचेतना का सामाजिक विमर्श

–डॉ. ममता

छात्रावास प्रबंधक, महावीर पब्लिक स्कूल, पुंग सुंदरनगर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश।

समाजवादी जन चेतना पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित है। 'समाजवाद' और 'जनवादी' यह दोनों शब्द समान अर्थ से ग्रसित हैं। समाजवादी जन चेतना की सर्व सम्मत परिभाषा करना अत्यंत कठिन है क्योंकि जन चेतना को पाश्चात्य तथा भारतीय मनीषियों ने अपने–अपने मतानुसार परिभाषित किया है। जनचेतना के लिए हम कह सकते हैं कि यह कला साहित्य और जीवन के विशिष्ट दृष्टिकोण हैं ,जो जन सामान्य को महत्व देता है। समाजवादी जन चेतना का वास्तविक अर्थ है साम्राज्यवादी, पूंजीवाद और पीड़ित जन के साथ वास्तविक हमदर्दी या फिर जनवादी चेतना यानी कि समाजवादी चेतना का लक्ष्य सामंती व्यवस्था का विरोध करते हुए सामान्य वर्ग के प्रति मानव मात्र में सहानुभूति पैदा करना, आम जनता को शिक्षित करते हुए उनके सांस्कृतिक विकास के लिए प्रयास करना और उनके संघर्षात्मक जीवन को आवाज देकर जीवन मूल्य में परिवर्तन निर्माण करना।

वर्तमान में आदिवासी समाज अपनी जीविकोपार्जन के लिए कारखानो, खदानों में मजदूरी करके एवं जंगलों में रहकर अपना जीवन यापन करता है। कड़ी मेहनत के बावजूद भी उसकी स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार नहीं हो रहा क्योंकि पूंजीपति, सरकार एवं जनता के प्रतिनिधि, जमींदार नौकरशाही उनका भरपूर शोषण करते हैं। हर युग की श्रेष्ठ का दृष्टिकोण भी जनवादी समाज की ओर रहा है। समाजवादी जन चेतना को लेकर चलने वाले साहित्य में मानव के सामूहिक भावों की अभिव्यक्ति हुई है। उसकी सहानुभूति हर वर्ग के साथ रहती है पर लेखक या साहित्यकार की नजर सामान्य जन की ओर होती है जिसमें साहित्य का सौंदर्य बढ़ता है और शक्ति बढ़ती है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की पृष्ठभूमि में बुंदेलखंड की कबूतरा जनजाति का समाज ,जीवन पद्धति संस्कृति आदि का समावेश है। यह जाति अपने मूल निवास स्थान से विस्थापित है। "कबूतरा जाति के लोग स्वयं को रानी पद्मिनी, झलकारी बाई एवं महाराणा प्रताप की संतान कहते हैं। दर–दर भटकते वह दूसरों की जमीनों पर बसे इन लोगों की जीविका का एकमात्र साधन चोरी करना है। यह उपन्यास दो समाजों को चित्रित करता है पहला कबूतरा समाज, दूसरा सभ्य समाज जिसे कबूतरा लोग अपनी भाषा में कज्जा कहते हैं। कबूतरा समाज के प्रतिनिधि पात्र कदम बाई, भूरी, अल्मा, राणा, राम सिंह, सरमन दूलन आदि हैं। समाज के प्रतिनिधि पात्र मंसाराम, जोधा केहर सिंह, राणा, धीरज, सूरजभान, श्री राम शास्त्री आदि हैं।"[1]

उपन्यास का आरम्भ मंसाराम और कदम बाई की कथा से होता है। जिसमें कबूतरा जनजाति और सभ्य समाज की आपसी टकराहट व द्वंद स्पष्ट परिलक्षित होता है। "यह केवल मंसाराम और कदम बाई की प्रेम कहानी ना होकर समाज की दो विपरीत दिशाओं की टकरा हट की कथा है जिसके परिणाम स्वरूप हार निर्बल और गरीब की होती है। कबूतरा जाति एक बदनाम जनजाति है। कदमबाई उपन्यास की प्रतिनिधि पात्र है। उसके पति जंगलिया को कज्जा लोग मरवा देते हैं और जब कदम बाई खेत में अपने पति का इंतजार कर रही है तो एक (कज्जा) मंसाराम वहां पहुंचकर जंगलिया की भूमिका निभाता है और परिणाम में होता है राणा। आमतौर पर कबूतरी यां कजजा लोगों का गर्भ नहीं रखती, रुखरी खाकर खेत में बहा आती हैं परंतु कदमबाई राणा को जन्म देती है। राणा को जन्म देना कज्जा से टकराने और प्रतिशोध लेने का ही प्रतिफल है पर यहां भी उसकी हार होती है। राणा में कज्जा लोगों के लक्षण पैदा होने लगते हैं। वह मांस नहीं खाना चाहता, चोरी के नाम से बेहोश हो जाता है। शराब नहीं पीता। पढ़ना चाहता है उसे किताबों से प्यार हो जाता है कदंबबाई यह देख अपना माथा पीट लेती है।"[2]

कदमबाई के चरित्र को केंद्र में रखकर लेखिका ने संपूर्ण कबूतरा जनजाति का जीवन हमारे समक्ष खोल कर रख दिया है। "पुलिस द्वारा उनके ऊपर किए जाने वाले अत्याचार, प्रशासन का शोषण, सभ्य समाज का धिक्कार और घृणा, सभ्य समाज के प्रति कबूतराओं का शोषण और बदला लेने की भावना, उनकी जीवन वृति, चोरी, छीना–झपटी, लूट–डकैती आदि का विस्तार से वर्णन किया है।"[3] उनके बीच प्रचलित रानी पद्मिनी और झलकारी की कथा का भी लेखिका ने स्थान–स्थान पर उल्लेख किया है।

दो समाजों की टकराहट व द्वंद प्रस्तुत उपन्यास की आत्मा है। भूरी के बेटे राम सिंह और उसकी बेटी अल्मा की कहानी इसी टकरा हट को दर्शाती है। जिसमें समाज के संघर्ष करने और अपना सब कुछ दाव पर लगाने के बाद भी हार भूरी, राम सिंह और अल्मा की ही होती है। "भूरी समाज से टक्कर लेती है उसकी प्रतिशोध लेने का ढंग भी अपना है। वह अपना शरीर बेचती है और कमाए हुए पैसों से बेटे राम सिंह को पढ़ाती है। रामसिंह शिक्षा प्राप्त कर सभ्य समाज में रहने का प्रयास करता है किंतु उसे वह समाज स्वीकार नहीं करता वह शिक्षित होकर भी कबूतरा बनकर जीने को अभिशप्त है।"[4]

पुलिस का व्यवहार भी इन महिलाओं के प्रति शर्मनाक है। पुलिस के आदमी ही इनकी गरीबी व विवशता का फायदा उठाकर इनका शारीरिक शोषण करते हैं। आए दिन स्त्रियां इनकी हवस का शिकार होती हैं। इनकी बस्तियों में पुलिस का हमला होने पर कबूतर खेतों या जंगलों में भाग जाते हैं, लुटती हैं कमजोर कबूतरीयां। यथा, 'वो गई। पकड़ो साली को। पेट वाली है। मटकी जैसा पेट। लाओ इधर। हम बच्चा पैदा करते हैं। आदमी पैंट खोलने लगा। डंडेवाला पीछे था, जांघों में डंडा घुसेड़ने लगा। सरमन की औरत पूरी ताकत लगाकर चीखी.... . औरतों को आदमी खींचने लगे।'[5] पुलिस के हमले के बाद इन औरतों के पास अपना तन छुपाने के लिए कपड़े भी नहीं होते। अपने नंगे शरीरों को लेकर डेरी में छिपने के लिए विवश हो जाती हैं। बच्चे अपनी मां बहनों को नंगा देख कूड़े के ढेरों से कपड़े बीन कर लाते हैं। सभ्य समाज के पुरुषों से इन कबूतरों का जीवन कभी सुरक्षित नहीं रहता तो पुलिस वाले छानबीन की आड़ में इतना उत्पात मचाते हैं कि कबूतरों के बदन के कपड़े तार–तार हो जाते हैं, 'यह औरतें ऐसी जनजाति में पैदा हुई हैं कि इन्हें सभ्य समाज की बर्बरता, हैवानियत जार–जार होकर भी सहनी पड़ती है। यही है इनकी किस्मत की असली तस्वीर।'[6] इस प्रकार स्त्री चाहे कबूतरी हो या

काज्जिं शोषण दोनों का होता है। अंतर सिर्फ इतना है कि कबूतरों का खुलेआम होता है तो काज्जिनो का चारदीवारी की ओट। एष्वे हर पग पर उत्पीड़ित है उनका एक–एक सपना चटककर। देह मर्दन के पाशविक कुंड में अर्ध्य बनती हैं। प्रेम में बेवफाई तो गनीमत बेहपाई तक नसीब होती है।'[7]

अल्मा अनेक प्रकार से अनेक लोगों द्वारा शोषित व पीड़ित होती है किंतु उसके सहन करने की शक्ति अभूतपूर्व है। जीवित रहने की जिजीविषा उसे लगातार संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करती रहती है। राणा द्वारा छोड़कर चले जाने पर वह राणा की तरह विक्षिप्त नहीं होती बल्कि उसे पुनः प्राप्त करने के लिए संघर्षों का मुकाबला पूरी शक्ति से करती है चाहे इस राह में उसे अपनी देह से ही क्यों ना गुजरना पड़े। वह बुद्धि का उपयोग भी बड़ी समझदारी से करती है जिसके बल पर वह श्री राम शास्त्री की मृत्यु के बाद उसकी सीट की उम्मीदवार घोषित होती हैं।यह उपन्यास स्त्री जाति के शोषित रूप का उद्घाटन करता है। इसमें असहाय स्त्रियों का दर्द उभर कर सामने आया है जो भारतीय समाज का कड़वा सच है।

प्रस्तुत उपन्यास दो विरोधी समाजों को चित्रित करता है सभ्य समाज और दूसरा कबूतरा समाज। कबूतरा समाज में पुरुष भी अपनी स्त्रियों की भांति ही सभ्य समाज द्वारा शोषित व पीड़ित होते रहते हैं। ये पुरुष अपनी जीविका चलाने के लिए चोरी, डकैती, लूटमार करते हैं। इन पुरुषों का स्थाई निवास जंगल या खेल है। डेरो पर रहने से सदैव पुलिस का डर बना रहता है जो कभी भी इनको उठाकर जेल में डाल देते हैं। कबूतरा पुरुषों का शोषण सर्वाधिक पुलिस द्वारा किया जाता है इन्हें इनके द्वारा ना किए जाने वाले बड़े अपराधों में भी पुलिस फंसा कर जेल में डाल देती है। जहां अमानवीय यातनाएं दी जाती हैं पुलिस का शोषण उस समय चरम पर होता है जब किसी इनामी डाकू को मारने के स्थान पर उस डाकू की मिलती–जुलती कद काठी वाले कबूतरा को मारकर डाकू का नाम दे दिया जाता है। मारने के बाद लाश को पानी में फेंक दिया जाता है जिससे पहचान ना की जा सके।इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, 'तुम मुठभेड़ दिखाओ, बेटा सिंह को मरवाओ, ईनाम की रकम आधी –आधी रही। एक दिन में एक लाख। डाकू जीवन दर्शन समझाता रहा। दरोगा का नासमझ साबैठा था।'[8]

कबूतरा बस्ती में पुलिस का हमला होते ही पुरुष जंगलों में भाग लेते हैं केवल रह जाता है मलिया। ऐसा नहीं कि वह भाग नहीं सकता वह डेरे पर जानबूझकर रह जाता है क्योंकि पुलिस किसी के हाथ न आने पर मरे हुए को ही मारने लगती है। किसी का हाथ ना आना उसे अपना अपमान लगता है। जिसका गुस्सा वे बस्ती में बचे लोगों पर उतारने लगती है। मलिया ऐसा ही पात्र है जो पुलिस से पीटने के लिए डेरे पर रह जाता है। पिट पिट कर उसकी बूढ़ी हड्डी पक्की हो चली है। इस बात की पुष्टि मलिया द्वारा कही बात से होती है मैं रोटी का टुकड़ा हूं, पुलिस के आगे फेंकने के लिए। पुलिस आए और खाली चले जाए यह दरोगा सिपाहियों की तौहीन है, वे गुर्राने लगते हैं और फिर मरे हुए को फिर से मारने लगते हैं।.... सो मलिया नजराना हो गया। मलिया शिकार बन जाता है ऐसा शिकार जो खुद ही शिकारी के पास आ जाए।'[9] कबूतराओं का जीवन अनिश्चित की स्थिति में ही रहता है। पिटना उनके लिए आम बात है। अब जिंदगी के तार टूट जाए तथाअसमय ही मृत्यु हो जाए ,इस बात की शंका उनमें सदैव बनी रहती है। काज्जाओ द्वारा कबूतरों की हत्या करना व करवाना भी बड़ी बात नहीं। कबूतरा की हत्या ना खबर बनती, ना चर्चा का विषय। उनका मरना ऐसे ही है जैसे किसी जी जानवर का मरना।

सभ्य समाज में पुरुष की स्थिति स्त्रियों से ऊंची मानी गई है। मंसाराम सभ्य समाज का प्रतिनिधि है।

अपनी धर्मपत्नी आनंदी के होते हुए भी वह कदमबाई पर मोहित होता है जब तक उसका संबंध कदमबाई से ना था तो समाज में प्रतिष्ठित था लेकिन संपर्क में आते ही उसका सम्मान दो कौड़ी का रह गया। समाज के साथ परिवार भी दुत्कारने लगा। सभी उसे बहिष्कृत करते हैं, 'बच्चे कहते हैं, अम्मा यह हमारा बाप नहीं है, बाप का भूत है। समझ ले तू रांडु हो गई।'[10] मंसाराम का सभी उपहास उड़ाते हैं 'फिर भी मंसाराम की चर्चा चलती है लोग बोतल से शुरू करके कदमबाई पर खत्म करते हैं ना अच्छे पति हो सके ना जिम्मेदार पिताओं की गिनती हुई।'[11]

अलग–अलग समाज में वैवाहिक पद्धतियां भी भिन्न हैं। कबूतरा समाज में वही युवक लड़कों से विवाह योग्य समझे जाते हैं जो चोरी करने में माहिर हो। राणा चोरी करने से कतराता है इसी पर कदम बाई कहती है, 'बेटा! अभी कुछ नहीं बिगड़ा, भैंस खोलने का हुनर सीख। सगाई संबंध वाले भी ऐसी कलाकारी सुनकर ही रुपत्ते हैं।'[12] कबूतरा समाज में लड़के वालों से दहेज लेने की प्रथा है। शिव सिंह कबूतरा अपनी अति सुंदर बेटी की शादी। जंगलिया कबूतर से करने के लिए तत्पर है क्योंकि जंगलिया कबूतरा बस्ती में अपनी हिम्मत जवाब बाजी व चोरी के लिए विख्यात है। शिव सिंह जंगलिया से परंपरा के अनुसार धन भी नहीं लेता तथा बारात का स्वागत भी शान से करता है।

कबूतराओ के यहां बारात का दस पंद्रह दिन तक रुकने का रिवाज है। लड़की वाले के यहां बारात खूब खाती–पीती है साथ ही लड़ाई–भिड़ाई चलती है बारातियों की दवा दारू भी बेटी के पिता को ही करानी पड़ती है। 'बारात पंद्रह दिन रही। रस्म के मुताबिक खूब खाया पिया और रोज लड़े। लड़ाई में कई घायल हुए जिनकी दवा दारू कदम बाई के पिता को करनी पड़ी।'[13] हिंदुओं की विवाह पद्धति के अनुसार ही इनके यहां भी विवाह के समय दुल्हन की मांग भरी जाती हैं। पैरों में महावर लगाई जाती है। बिछिया पहनाए जाते हैं। सुहाग की कांच की चूड़ियां पहनाई जाती हैं, लाल रंग की चुनरी ओढ़ाई जाती है। बहू के घर आने पर मंगल गीत गाए जाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि कबूतरा जाति में लड़की का महत्व विवाह के संबंध में लड़के से अधिक हैं यही कारण है कि लड़की के विवाह के बदले में यथोचित धन की मांग की जाती है।

लोक विश्वास, लोक संस्कृति में धर्म प्रचलित विश्वासों, मान्यताओं और लोकाचारों का प्रतीक है जिसमें उपासना पद्धति, चिंतन मनन, स्वाध्याय का समावेश होता है। इस उपन्यास में अलौकिक शक्तियों के प्रति भय से परिचालित होकर सुख की प्राप्ति और अशुभ के निवारण हेतु पूजा–पाठ, जादू–टोना, मंत्र–तंत्र आदि का प्रयोग अधिक दिखाई देता है।

राणा की दवा करने के स्थान पर बस्ती के लोग उसके शरीर से भूत उतारने की तैयारी करते हैं। 'वीर देव की स्थापना की। लिपि हुई चबूतरे पर, बेर के पत्ते, पान का पत्ता, गुड और बकरी का खून चढ़ाया। रोटी का चूरमा और लाल कपड़ा, मद और तेल पास में रखा। इसके बाद गुनिया आया और उसने झाड़–फूंक शुरू की। गुनिया आग लगाता जाता, खून के छींटे देता जाता।..... देवता आ गया उसके ऊपर। बलवान पहलवान की तरह पुख्ता पन से तन गया।'[14] राणा द्वारा धर्म का दिया बुझा देने पर सब लोग डर जाते हैं कि देवता रुष्ट हो जाएंगे।

कबूतराओ में शनिवार और मंगल के दिन चोरी करना शुभ माना जाता है तथा चोरी वाले घर में मल त्याग करना सगुन माना जाता है। कदमबाई ने जाल लगाकर खरा पकड़ लिया। खरगोश का गोश्त शुभ होता है। राणा

के लिए मोटी रोटी बनेगी, भरपेट खाकर जाएगा। चोरी वाले घर में हगना सगुन्न है।'[15] जनजातियों के लोग अनेक अंधविश्वासों से घिरे रहते हैं। उनकी जीवन चर्या अंधविश्वासों से ही परिचालित होती है वह इन विश्वासों में ही जिंदगी बिताना चाहते हैं। आदिवासियों में भूत प्रेत और झाड़ फूंक पर भी अधिक विश्वास होता है।

हिंदू सामाजिक संगठन में जाति महत्वपूर्ण संस्था रही है प्राचीन काल में जाति व्यवस्था गुण कर्म के आधार पर थी। अब गुण कर्म का स्थान जन्म ले लिया है। उपन्यास में चित्रित कबूतर आ जाति एक ऐसी जनजाति है जो समाज से बिल्कुल अलग–थलग है। उच्च जाति के लोग इनके घरों के पास भी भटकना नहीं चाहते हैं। कबूतरों से उच्च जाति के लोग किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं रखते हैं। कबूतरा लोग उच्च जाति के देवी– देवताओं को तो क्या, पीपल के पेड़ तक को छू नहीं सकते। कबूतरा जाति का राणा जब स्कूल में पढ़ने जाता है तो वहीं बच्चे और मास्टर उसके साथ भेदभाव करते हैं। बच्चे उसे अनेक यातनाएं दे ते हैं। 'स्कूल के बच्चों ने राणा का बस्ता पीपल पर टांग दिया। उसे लगा बस्ता नहीं, उसका बेटा ही पीपल पर टांग दिया हो। पीपल, तुलसी के पेड़ कबूतरों के छूने से जल जाते हैं या काज्जा लोगों को शाप दे डालते हैं।'[16]

राणा जब अपना बस्ता लेने पीपल के पेड़ पर चढ़ने लगता है, मास्टर उसकी पीठ पर कोड़ा मारता है और कहता है साले यह नहीं देखता कि पीपल पर देवताओं का वास होता है। स्कूल जैसी पवित्र जगह में बैठ जाने दिया तो तू हमारे देवताओं के मुंड पर नाचेगा। तू स्कूल में घुस आया है तो सजा भुगत। बस्ता उतरवाना ही था तो किसी ब्राह्मण लड़के से कह देता।'[17]

राणा तड़पता रहा लेकिन उसे स्कूल का नल छूने की आज्ञा नहीं थी। 'मास्टर जी ने कहा दिया था तू नल नहीं छुएगा। नल के आस–पास भी देख लिया तो.....यहां सिपाही आते है पकड़वा दूंगा। प्यास के कारण उसका गला चटकने को आ गया, नल नहीं छ सका।'[18] इस प्रकार के सकते है की कबूतरा जाति समाज की एक तिरस्कृत जाति है जिसके साथ पशुतुले व्यवहार किया जाता है।

अल्मा कबूतरी उपन्यास में कबूतरा जाति की आर्थिक विषमता बहुत ही विचारणीय बिंदु है। इस जाति की आर्थिक विषमता के पीछे जहां इनकी अशिक्षा है वही सभ्य समाज की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। कज्जा समाज अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए भी इस जाति का विकास नहीं चाहता। दूसरा कारण यह भी है कि यह जाति अपने मूल से विस्थापित हैं। इनके पास ना अपने रहने के लिए घर है और ना ही खेती आदि रोजगार के साधन। इनका जीवन खानाबदोश है। कदमबाई राणा से कहती है, 'पगले गाय, भैंस बनावटी की निशानी होती है और हमारी जिंदगी खरपतवार, कज्जा लोग उखाड़ने पर आमादा रहते हैं। देखता नहीं पुलिस पीटने आती आ जाती है ठेके वाले भी बेबात ही हमें खदेड़ते हैं।'[19] इन लोगों में शिक्षा का अभाव है और यदि इस जाति का कोई व्यक्ति पढ़ना भी चाहता है तो यह बात सभ्य समाज सहन नहीं कर पाता। रामसिंह कबूतरा ऐसा ही पात्र है जो पढ़ लिखकर अध्यापक बन जाता है। लेकिन सभ्य समाज के उपेक्षा पूर्ण व्यवहार, मानसिक शोषण के कारण उसकी आर्थिक स्थिति विषम ही रहती है।

अतः कहा जा सकता है आदिवासी जीवन भी चुनौतियों से परिपूर्ण है आज भी लोग शोषित जीवन जीते हैं जिसे मैत्री पुष्पा ने अल्मा कबूतरी उपन्यास में बौद्धिकता के साथ चित्रित किया है इस स्थिति से बाहर निकलने के लिए इस जाति के लोगों को स्वयं ही बाहर आने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अल्मा कबूतरी, मैत्रेई पुष्पा, पृष्ठ 87, 88
2. वही, पृष्ठ 88
3. वही, पृष्ठ 265
4. वही, पृष्ठ 27
5. वही, पृष्ठ 44
6. राष्ट्रीय सहारा, 2 जुलाई 2000
7. पूर्ववत, जनवरी 2001
8. अल्मा कबूतरी, मैत्रेई पुष्पा, 192
9. वही, पृष्ठ 114
10. वही, पृष्ठ 89
11. वही, पृष्ठ 89
12. वही, पृष्ठ 14
13. वही, पृष्ठ 51
14. वही, पृष्ठ 53
15. वही, पृष्ठ 81
16. वही, पृष्ठ 81
17. वही, पृष्ठ 81
18. वही, पृष्ठ 80, 56, 57
19. वही, पृष्ठ 57

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 95-98

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विनोद कुमार शुक्ल कृत 'खिलेगा तो देखेंगे' उपन्यास में चित्रित मध्यवर्गीय जीवन विमर्श

-एम.एन.एस. जयंती,

पीएच.डी. शोधार्थिनी, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नै।

मध्यवर्गीय लोग अपने परिवार में अध्यावश्यक चीजों को आर्थिक समस्या के कारण दुकानदार से उधारी मे लेते हैं। वेतन मिलने के बाद दुकानदार को पैसे देते हैं। इसी तरह विनोद कुमार शुक्ल के 'खिलेगा तो देखेंगे' उपन्यास में गुरुजी भी किराने की दुकान में उधारी में सामान लेके अपने परिवार को संभालते थे। गुरुजी पाठशाला में बच्चों को पढा रहे थे। तब उनकी पत्नी पाठशाला के बरामदे में खाना बना रही थी। खाना बनाते समय नमक खाली हो गया था। इसे वह जोर से गुरुजी से कहती थी। तुरंत चार–पाँच लडके "मैं लाता हूँ गुरुजी" बोलते थे। गुरुजी अपनी आदत के कारण किसी एक लड़के की पट्टी लेके लिखते थे "एक किलो नमक चाहिए। द. गुरुजी।" गुरुजी का सन्देश पाकर जिवराखन जवाब देता, "अब दो रुपया चार आने उधारी हो गयी है गुरुजी। द. जिवराखन।"[1]

उधारी चुका देने के लिए मध्यवर्गीय लोग पैसे न मिले तो अपने घर के सामानों को बेचते हैं। क्योंकि दुकानदार से अपमान होना नहीं चाहते थे। जिवराखन की दुकान में बेचारी उधार लेने वाले मजबूरी में बंधे हुए ग्राहक थे। थोड़ी चीज सामान लेते और अपनी हाजिरी दे देते थे। सभी निगरानी शुदा ग्राहक थे। जो नून तेल लेने बहुत दिन बाद जाता उससे जिवराखन जरूर पूछता था "बहुत दिन से दिखते नहीं।"[2] जिसका आशय होता था मर तो नहीं गये थे। सिपाही लोगों के आने से उधारी की वसूली अपने आप होने लगी थी। जो थाली, बटकी, गुण्डी कुछ दिन बाद बेचते उसको पहले बेचकर उधारी चुका देते थे। गुण्डी के बदले घड़ा रखने जैसा काम चल कहा था। कुछ नहीं रखने जैसा काम भी चल रहा था।

उधारी लेने से आज का पेट भर जाता था। आगे खाली पेट के दिन बढ़ जाते थे। उधारी खाते–खाते जिन्दा रहने की बचत हो जाती थी, जीना हो जाता था। वर्तमान में सब लोगों के जीवित के भविष्य में सब लोगों की मृत्यु थी। भविष्य में जन्म रहता है इसकी याद नहीं आती थी। अगर आती तो भविष्य का जन्म कर्जदार होता था जिसे मृत लोगों का कर्ज पटाना पड़ता था। मध्यवर्गीय लोग अपने जीवन भर कर्जदार हो जाने के कारण भविष्य के बारे में नहीं सोचते हैं। क्योंकि एक कर्ज खत्म हो जाते तो दूसरा खर्च लगातार आके उन लोगों को कर्जदार बनाता है।

मध्यवर्गीय परिवार में भूखा रहने का आदत भी हैं। वे सोचते हैं कि भूखा रहने से स्वाभिमान से जीना आसान होगा। यह उपन्यास में गुरुजी के बेटे मुन्ना को पेट भर खाने के दो घंटे बाद उसे फिर पेट भर खाने

की इच्छा होती थी। भूख लगते ही तुरंत वह हाँफता हुआ नीचे बैठ जाता था। बापजी मुन्ना को भूख से रहना सिखाना चाहते थे। एक बार गुरुजी ने मुन्ना के पास बैठकर उसके बस्ते पर अपना एक हाथ रखते हुए मुन्ना से यह कहा कि, "मुन्ना तुमको भूखा रहना सीखना होगा।"[3] उन्होने मुन्ना के सिर पर अपना दूसरा हाथ फेरा। बस्ते पर रखे हुए हाथ को उन्होंने उठाया नहीं था कि पाठ का बस्ता यही नहीं है, इसके अलावा भी है, दुनिया है। स्वाभिमान से जीते रहने का पाठ। भूखा रहने की जितनी आदत होगी स्वाभिमान से जीना उतना आसान होता होगा। स्वाभिमान को खत्म करने का जहर भूख की जड़ या जड़ी से बनाया जाता होगा। मुन्ना से गुरुजी ने कहा, "भूखे रहकर पढ़ने का अभ्यास करो। पाठशाला जाओ, खेलो औऱ भूखे पेट से सो जाओ। भूखे उठो। मुँह हाथ धोओ। नहाओ, पढ़ने बैठ जाओ। दिनचर्या में खाना खाना भूल जाओ।"[4]

मध्यवर्ग लोग अपने बच्चों को खाने की आवश्यकता, उपयोगिता और खाने का कारण बताके पालते हैं। क्योंकि माँ–बाप बच्चों के साथ न होने पर भी बच्चे खुद अपने जीवन को संभालना चाहिए। यह उपन्यास में गुरुजी की बेटी मुन्नी गुरुजी से कहती थी कि मुन्ना को दो रोटी खाने से, हमसे ज्यादा ताकत आ जाती है। पर मुन्नी बापजी से मुन्ना को भूखा रहना सिखाने का कारण जानना चाहती थी। गुरुजी ने मुन्ना से कहा, "ताकत के लिए नहीं, जिन्दा रहने के लिए खाना पड़ता है। मुन्ना! माँ बाप हमेशा साथ नहीं देते। उनका साथ छूट जाता है। अभी साथ हैं, जब साथ नहीं होंगे तब क्या करोगे! भूखे रहकर देर तक जिन्दा रहने का अभ्यास करना। तुम कर सकोगे?"[5]

आजकल बच्चे शिक्षा या नौकरी के कारण अपनी माँ–बाप को छोड़कर बहुत दूर या विदेशी में रहते हैं। खाना मिलता है कि नहीं स्वाभिमान से जीना सीखना पड़ता है। जो काम उच्च अधिकारियों से दिया गया है, उसे पूरी करने के बाद खाना पड़ता है। माँ–बाप पास होते तो खाना खिलाएँगे। वे दूरी रहने के कारण बच्चे अपनी काम में ध्यान देकर भूख को नियंत्रण करना पड़ता है। काम पूरी होने के बाद खाते हैं। भूख को थोड़ी देर नियंत्रण करके काम पर ध्यान दिखाना अच्छा आदत है। यह आदत से बच्चे अपने जीवन भर अच्छा नाम कमाएँगे और समाज में मश्हूर पाएँगे।

मुन्ना भूखा रहने के कारण से उसकी माँ डरती थीं। मुन्ना पानी पीना चाहता था। माँ उसको पीने को कहती थी। मुन्नी उसको पानी देती थी। तब गुरुजी आधा गिलास पानी देने को कहते थे। गुरुजी ने सोचा, "क्या पता भविष्य कैसा हो, शायद पीने का पानी न मिले।"[6] मुन्नी ने फिर भी आधे गिलास से कुछ अधिक पानी दिया। पर इतना अधिक नहीं था कि गिलास भरा लगता था। पानी की समस्या को संभालना सबको बहुत मुश्किल है। सबसे मध्यवर्ग लोगों को यह बहुत बड़ी समस्या होता है। क्योंकि आजकल पानी भी पैसे देकर खरीदना पड़ता है। पुराने जमाने की तरह सरकारी नलों में अब पानी समय पर नहीं आता है। पानी आने पर भी गंदी होता है। इसके कारण लोग आजकल पानी भी पैसे देकर खरीदकर पकाने के लिए, पीने के लिए प्रयोग करते हैं।

जितने काम करने पर भी मध्यवर्ग लोगों को सही वेतन नहीं मिलता है। उच्च वर्ग लोग अपने पास रहनेवाले मजदूरों को तंग करते हैं और उनका सही वेतन भी नहीं देते हैं। यह उपन्यास में हाडू नामक लड़के की माँ दाऊ के पास काम कर रही थी। दाऊ के बरामदे के नीचे सीढ़ी के कोने में दाऊ के कुत्ते ने पंजे से खोद–खोद कर छोटा–सा गड़डा कर दिया था। दाऊ ने हाडू को इस गड़डे को मिट्टी से भरने के लिए कहा। हाडू भी बहुत खुश से वह काम किया। हाडू की माँ को मलेरिया था। इसलिए तीन दिन काम पर नहीं आयी

थी। वह उम्मीद करती थी कि एक दिन के भी पैसे नहीं कटेंगे। हाडू की माँ खुशामद की कि वह सुबह से शाम तक मर–खट कर काम करती थी पर दाऊ ने पूरे चार दिन के पैसे काटे। दाऊ जब पैसे देने लगा तो उसने साड़ी के आँचल को इस तरह फैलाया कि फटे वाले हिस्से से नोट चिल्लर न गिर जायें। "चल" महीना झोंकने के बाद उसने हाडू से कहा। दाऊ आँख निकालकर हाडू को डराना चाहता था। पर गुस्से से उसने दाँत पीसा। "जाओ नहीं तो डंडे से मारूँगा।"[7] दाऊ ने हाडू से कहा। गड़डे पूरने के काम के लेए हाडू ने दाऊ से पैसे माँगने पर भी दाऊ ने उसे डाँटा। अंत में बार–बार हाडू अपने काम के लिए पैसे माँगने के कारण दाऊ ने यह कहा "निकल साले, अब यहाँ कभी सूरत न दिखाना।"[8] और बंडी की जेब से चिल्लर निकालकर एक चवन्नी उसने हाडू की तरफ फेंकी। ऐसे कुछ उच्चवर्ग लोग मध्यवर्ग मजदूरों को धोखा देते हैं, डाँटते हैं और मारते हैं। नौकरों को काम करवाते हैं। लेकिन वे काम के लिए पैसे माँगते तो कुछ लोग उनको डाँटने लगते हैं और कुछ लोग उनको मारने भी लगते हैं।

आधुनिक जमाने में ज्यादातर लोगों की जीने का तरीका बदल जा रहा है। छोटे–छोटे समस्याओं को मुकाबला करने के बदले उनसे डरकर आत्महत्या करना ही जीवन जीने का तरीका हो रहा है। विशेषतः मध्यवर्गीय जीवन में लोगों के जीने का तरीका आत्महत्या का तरीका हो रहा है। यह उपन्यास में आँधी से बहुत लोगों की झोंपड़ी उजाड़ होने के बाद वह हालत को संभालना बहुत मुश्किल होता था। गुरुजी थाने में ठहरते समय यह सोचते थे कि पाठशाला के उजाड़ होने के बाद गाँव में एक खाली थाना था, जहाँ रुका जा सका। भविष्य निश्चित नहीं होता है इसलिए उसके बारे में कुछ भी सोच सकने की बहुत छूट होती पर इस स्वतंत्रता का उपयोग नहीं होता। भविष्य के बारे में बुरा सोच सकने की कोई रोकटोक अपना विवेक नहीं करता पर अच्छा सोचने की स्वतंत्रता में बहुत रुकावट होती। जिन्दगी को जीना स्थगित मौत को भी नहीं जिया सकता। आत्महत्या करते हुए मौत की प्रतीक्षा होती। ज्यादातर लोगों के जीने का तरीका आत्महत्या का तरीका होता। कल कोई और तरह की जिन्दगी होगी सोचते हुए गुरुजी जैसे दूसरे दिन पाठशाला जाने के लिए तैयार होकर दरवाजा खोलकर निकले। आधुनिक जमाने में कुछ लोग गरीबी के कारण, कर्ज के कारण, प्रेम विफलता आदि के कारण मानव आतमहत्या कर लेते है। ऐसे छोटे–छोटे कष्टों को सह न सकने के कारण से ज्यादातर लोगों की जीने का तरीका आत्महत्या का तरीका हो जाता है। जीवन में मुश्किलें आते तो मध्यवर्गीय समाज में कुछ लोग आत्महत्या के बारे में सोचने लगते हैं।

कुछ औ़रत पति पर होने वाले प्रेम दिखाने के लिए पति के जूठी थाली में खाते हैं। यह कार्य मध्यवर्गीय परिवार में ज्यादा चल रहा है। यह उपन्यास में गुरुजी खाने के बाद थाली में अँचो दिये। तब उनकी पत्नी गुरुजी से कहती थी वह उनकी जूठी थाली में खाना चाहती थी। तब गुरुजी ने अपनी पत्नी से कहा कि "मेरी जूठी थाली में मत खाओ। क्या सारा प्रेम जूठी थाली में खाने से बनता है! मैंने जानबूजकर थाली में अँचोया है।"[9] आजकल यह आदत औरतों के बीच में कम होने पर भी मध्यवर्गीय परिवार में कुछ औरतों को यह आदत है। वे अपने पति पर होने वाले प्रेम दिखाने के लिए अपने पति की जूठी थाली पर खाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. 'खिलेगा तो देखेंगे' – विनोद कुमार शुक्ल : आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पंचकूला (हरियाणा), तृतीय संस्करण 2011, पृ. संख्या 15
2. वही, पृष्ठ संख्या 205
3. वही, पृष्ठ संख्या 182
4. वही, पृष्ठ संख्या 182
5. वही, पृष्ठ संख्या 182
6. वही, पृष्ठ संख्या 183
7. वही, पृष्ठ संख्या 55
8. वही, पृष्ठ संख्या 55
9. वही, पृष्ठ संख्या 186

मोबाइल संख्या 8778642626

ई मेइल jeyanthi.mns@gmail.comcom

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 99-101
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित साहित्य की अवधारणा और दलित विमर्श

–कु. मोनिका पोपट कांबळे
शोधार्थी, पुण्यश्लोक अहिल्यादेवी होलकर, सोलापुर विश्वविद्यालय, सोलापूर (महाराष्ट्र)

"साहित्य समाज का दर्पण है" का प्रचार–प्रसार तो काफी हुआ, लेकिन दलित साहित्य के संदर्भ में इस सिद्धान्त की परिणति व्यावहारिक रुप के नहीं हुई। दलित समाज जितना उपेक्षित रहा, उतना साहित्य भी। दलित समाज औंर साहित्य ने अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए निरंतर संघर्ष किया है। तथा इसी अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए दलित साहित्य प्रतिबद्ध है। दलित साहित्य का मूल उद्देश्य नए मानवीय समतामूलक समाज का निर्माण करना है। दलित साहित्य के केंद्र में भारतीय समाज का सबसे निचला, दुबका, मेहनतकश सर्वहरा एवं असंख्य मानव जाति है। जिसे सदियों–सदियों से मनुवादी वर्णव्यवस्था ने धर्मशास्त्र, सामाजिक परंपरा आदि की आड़ में दलितों को शारीरिक एवं मानसिक रुप से गुलाम बनाकर रखा था। इतिहास इस बात का गवाह है कि प्राचीनकाल से अब तक शोषण और उत्पीड़न सिर्फ शुद्र एवं पिछड़ी जातियों का ही हुआ है।

भारतीय समाज सदियों से वर्ण–व्यवस्था की बेड़ियों में जकड़ा रहा। भारतीय समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र इन वर्णों में बॉट दिया। इसी व्यवस्था के चलते सबसे निकृष्ट वर्ग को शिक्षा और ज्ञान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित कर दिया गया था। प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक दलित चेतना किसी न किसी रुप में विद्यमान थी। लेकिन इसकी व्यापकता आधुनिक काल में आकर एक साकार रुप धारण करती है। जहाँ पर दलित समाज अत्याचारों के खिलाफ संघर्ष करता हुआ नजर आता है। साथ ही अपने अधिकारों की माँग भी करता है। ओम प्रकाश वाल्मिकी आपने कविता में लिखते है :–

"असंख्य मुख पिड़ा
कसमसा रही है।
मुखर होने के लिए रोष से भरी हुई।
बस्स !
बहुत हो चुका
चुप रहना।"

इस विचारधारा के मूल प्रेरणा स्त्रोत डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर थे जिन्होंने दलित साहित्य को विकासपथ पर अग्रसर के लिए प्रेरित किया। उनकी पहल औंर समाजवादी विचारधरा ने दलित साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। दलित विमर्श को समझने से पहले दलित शब्द को समझना आवश्यक है।

"संक्षिप्त हिंदू सागर" में डॉ. रामचंद्र वर्मा ने दलित शब्द का अर्थ निम्मवत स्पष्ट किया है :–

दलित विनष्ट किया हुआ।
मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ।।

डॉ. कुसूमलता मेघवाल ने "दलित" की परिभाषा देते हुए लिखा है कि, "दलित वर्ग का सामाजिक संदर्भ में अर्थ होगा वह जाति समुदाय जो अन्यायपूर्वक सवर्णी या उच्च जातियों व्दारा दमित किया गया हो, रौंदा गया हो। दलित शब्द व्यापक रुप में पीड़ित के अर्थ में आता है।"

हम कह सकते है जिसका दलन या उत्पीड़न किया गया हो। चाहे वह उत्पीड़न शास्त्र के द्वारा किया हो या शस्त्र के द्वारा। दलित शब्द का अर्थ समझने के बाद दलित साहित्य का अर्थ और इसकी परिभाषा समझना आसान हो जाएगा। दलित साहित्य का तात्पर्य, वह साहित्य जो दलितों के द्वारा तथा दलितों के उद्‌बोधन हेतू किया गया हो। श्री प्रेमकुमार मणी ने दलित साहित्य की परिभाषा करते हुए लिखा है कि, "दलितों के लिए, दलितों के द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित साहित्य है, यह विलास का नहीं आवश्यकता का साहित्य है। संपूर्ण विज्ञान उसकी दृष्टि है औंर पीड़ित मानवता का उद्धार इसका इष्ट है। दलित साहित्य का प्रकाश पुँज है, जो अंधेरे में उतरा है।"

धर्मवीर भारती "दलित साहित्य वह है जिसे दलित लेखक लिखता है।

मोहनदास नैमिशराय "दलित साहित्य यानी बहुजन समाज के सभी मानवीय अधिकारों औंर मूल्यों की प्राप्ति के उद्देश्यों से लिखा गया साहित्य है। जो संघर्ष से उपजा है, जिसमें समता औंर बंधुता का भाव है। और वर्ण–व्यवस्था से उपजे जातिभेद का विरोध है।"

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में दलित विमर्श का उदय होता है। दलित चेतना और संवेदना हिंदी साहित्य सें पुरानी है। मगर एक आंदोलन के रुप में दलित साहित्य सिर्फ ढाई दशक पुराना है। दलित साहित्य में विद्रोह और आक्रोश का स्वर व्यवस्था ते प्रति देखा जाता है। स्वभिमान को जगाने के साथ–साथ सामाजिक विसंगतियों को उभारना भी दलित साहित्य का उद्देश्य है। दलित जीवन की जय पराजय, आशा–आशंकाएँ, संघर्ष, संत्रास तथा घुटन इसके केंद्र में है। इसमें कल्पना के बजाय यथार्थ, स्वप्न के बयाज आकांक्षा, महामानव के बजाए उत्पीड़ित मनुष्य को प्राथमिक मानने वाले दलित लेखन की सबसे बड़ी विशेषता है। ओम प्रकाश वाल्मिकी आपने कविता में लिखते है :–

"जब भी देखता हुं मैं
झाडू या गंदगी से भरी बालटी–कनस्तर
किसी हाथ मे, मेरी रगों में
दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ।"

दलित साहित्य हर विधा में पाया जाता है। जैसे मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा आपने–आपने पिंजरे, ओम वाल्मिकी की जूठन, सुरजपाल चौहान की, तिरस्कृत आदि।

जय प्रकाश कर्दम की कहानियाँ – तलाश, लाठी, जहर, रमणिका गुप्ता की कहानियाँ/चिड़िया, चमेली, बहु–जूठाई, प्रल्हाद चंद्र बोस की कहानियाँ/पुंटूस के फूल, बैगंन बारी रुपनारायण सोनकर की कहानियाँ/जहरिली जडे, शरणकुमार लिम्बोल की कहानियाँ/दलित, ब्राह्मण, आत्मकथा, सफेद मखी, सरकार का जमाई।

साहित्य सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण हथियार होता है। जो मानसिक रुप से विचारो को बनाने–बिगाड़ने का कार्य करता है। दलितों ने भी इसी हथियार का सहारा लेकर समाज में नए मूल्य स्थापित करने की कोशिश की जिसकी तीव्र रचनात्मक अभिव्यक्ति दलित साहित्य में देखने को मिलती है। दलित कवियों ने हिंदू धर्म, वर्ण व्यवस्थाजन्य जातिभेद से उत्पन्न समता और एकता विरोधी तमाम तत्वों को अपनी रचनाओं में नकारा है। वर्ग व्यवस्था से उपजे संकटो को वे चूपचाप सहने को तैयार नही हैं। दलित साहित्य मानवीय अधिकारों का पक्ष प्रस्तुत करता है। दलित साहित्य दलितों की मूक्ती का मार्ग प्रशस्त करता है। जय प्रकाश कर्दम वर्णव्यवस्था का विरोध करते हुए लिखते है :–

"जी करता है
ध्वस्त कर दूँ इन किलों को
चिंदी–चिंदी कर दूँ
इनका वजूद"।

दलित आंदोलन (विमर्श) का उद्देश्य वर्ण व्यवस्था का अंत कर उसकी जगह एक ऐसी समाज व्यवस्था का निर्माण करना है जिसमें व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक मुक्ति की बात हो और समाज को समानता की कसौटी पर कसा जा सके। दलित साहित्य की अनेक विधाओं जैसे आत्मकथा, कहानी, कविता उपन्यास, नाटक, आदि के माध्यम से अभिव्यक्ति हो रही है।

संदर्भ :–

1. समकालीन परिदृश्य में दलित साहित्य की अभिव्यक्ति – मोहर सिंह बैरवा।
2. हिंदू उपन्याओं में दलित वर्ग – डॉ. कुसूमलता मेघवाल।
3. हिंदू काव्य में दलित काव्यधारा – माता प्रसाद।

मो.नं. 9518751066

Email ID : monikakamble901@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 102-104
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सूर्यबाला की कहानियों में वृद्ध विमर्श

-पंचमी. आर

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, यूनिवर्सिटी कोलेज, तिरुवनन्तपुरम्, केरल।

वृद्ध विमर्श का अर्ध है वृद्धावस्था की परिस्थितियों घटनाओं आदि का चिन्तन करना अर्थात वृद्धावस्था की समस्याओं को समझकर उनके लिए उचित समाधान करना। आज हम इतने व्यस्त हो गए हैं कि हमारे पास बुजूर्गों को समझने का समय नहीं है। इसका मुख्य कारण संयुक्त परिवारों का टूटना है। हिन्दी साहित्य में अनेक विमर्श दिखाई दे रही है। वृद्ध विमर्श आज की परिस्थिति में चर्चित विमर्श के रूप में ऊपर है। आज के समय में वृद्धों की दशा और परिस्थिति को लेकर विचार वृद्ध विमर्श कह रहा है। वृद्ध होना जीवन का अंतिम अवस्था है,दूसरे बाल्य है। यह समझने का प्रयास वृद्ध विमर्श कर रहा है। वृद्ध विमर्श बुजुर्गों के मान सम्मान की बात करता है। उन्हें घर का पालतू सामान,कबाडा ना मना जाए, उन्हें मनुष्य माना जाए यह मांग वृद्ध विमर्श की है।

अन्य संस्कृतियों के अपेक्षा भारतीय संस्कृति संपूर्ण विश्व में अपनी अलग छाप छोड़े हुए हैं। हमारे इस संस्कारों में वृद्धों का बहुत बड़ा स्थान था। लेकिन आज के बदलते परिवेश के कारण बुजुर्गों की स्थिति बड़ी खराब हो जाती है। बुढ़ापा मनुष्य जीवन की अंतिम अवस्था होती है, इस अवस्था में व्यक्ति का आचरण कुछ–कुछ बच्चों जैसा हो जाता है। जब बुजुर्ग व्यक्ति को अपने परिवार वालों की सबसे ज्यादा ज़रूरत होती है तभी उनकी और ध्यान नहीं दिया जाता। भारतीय समाज में माता–पिता को ईश्वर माना जाता था। परंतू भूमंडलीकरण और बाज़ारीकरण के दौर में माता–पिता के प्रति जो ये मनःस्थिति बदली है। इसका विरोध वृद्ध विमर्श करता है, इस मामले में परंपरागत होने की मांग करता है।

हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श की शुरुआत तब हुई जब साहित्यकारों ने संवेदनात्मक रूप से यह महसूस किया कि संयुक्त–परिवारों की परंपरा अब धीरे–धीरे भारतीय समाज से भी गायब हो रही है। तमाम हिन्दी साहित्यकारों ने उस परिवर्तन को महसूस किया कि जो बुजुर्ग कल तक घर के नीति–निर्माण थे उन्हें बिल्कुल स्वाभाविक रूप से आज उनके पद से मुक्त किया जा रहा है, बल्कि हाशिये पर भी ढकेला जा रहा है।[1]

फ्रांसीसी लेखक अनातोले फ्रांस का शब्दों में – "काश! बुढ़ापे बाद जवानी आती।" बुढ़ापे में जवानी वाली ऊर्जा शक्ति तो नहीं रह जाती, रह जाता है विविध अनुभवों का भंडार। हिन्दी साहित्य के अन्य गद्य विधाओं में कहानी विधा अपने समय के प्रति अधिक संवेदनशील दिखाई देती है। 21वीं सदी के अंतर्गत कहानी विधा की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। बदलते हुए मानवीय मूल्य, बदलते हुए पारिवारिक संबंधों के साथ मध्यवर्गीय व्यक्ति अनजाने ही क्रमशः अपनी मानवीय संवेदना खो बैठता है। इस बदलते हुए पारिवारिक वातावरण में बुजुर्गों की स्थिति दयनीय हो रहा है।

हिन्दी की कई साहित्यकारों ने अपने कहानियों में वृद्धों की समस्या को निरूपित किया गया है। इनमें

डॉ. सूर्यबाला का स्थान उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने कहानियों द्वारा समाज में वृद्धों की स्थिति को दर्शाया है। उनकी 'निर्वासित' नामक कहानी में बूढों के प्रति नई पीढ़ी की उपेक्षाकृत मनोभाव को दर्शाया गया है। यहाँ एक बुजुर्ग रिटायर हो गयी बाबू जी एवं उनकी पत्नी की खोर अकेलापन को महसूस करते हैं। आज के युवा पीढ़ी वृद्धों पर कोई आदर नहीं दे जाते हैं। सन्तानों को अपने माँ–बाप बोझ पड़ता है। कहानी में वृद्ध दंपतियों के पुत्र एवं बहु पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित थे। इसी कारण उनके यहाँ के ज़िन्दगी दोनों बुजुर्गों को निर्वासित महसूस करते हैं। उन्हें घर आने वाले अतिधियों के सामने माँ–बाप चिढ़ जैसा लगता है।[2] "राजेन ने ज़रा झिझकते हुए नपे–तुले स्वर में कहा, बाबुजी, शाम को मेरे दोस्त वगैरह आते हैं न तो प्लीज आप अंदर आ जाया कीजिए।" इसी तरह निस्संतान वाले वृद्ध दंपतियों के प्रति रिश्तेदारों के स्वार्थता दिखाने वाली अन्य कहानी है 'पड़ाव'। पुराने और नए पीढ़ियों के अंतर दिखाने वाली यह कहानी में लेखिका ने आधुनिक मानव के स्वार्थी मानसिकता को उजागर करने का खूब प्रयास किया है।

सूर्यबाला जी की अन्य वृद्ध समस्या संबन्धी कहानी है 'बाऊजी और बंदर', जिसमें परिवार से तिरस्कृत एक वृद्ध पिता का खोर अकेलापन का वर्णन करते हैं। बाऊजी ने अपने बेटे और उनके परिवार के साथ बसने की इच्छा से कुछ महीने के लिए शहर आ जाते हैं। लेकिन वहाँ सभी से उनको सही मान्यता नहीं मिली। परिवारवालों ने बूढा को सदा किसी काम में लगाने के लिए कोशिश करता है। कहानी के अंत में पिता ने अपनी अकेलापन को मिटाने के लिए बंदरों के सहारा लेते हैं। इसी तरह एक वृद्ध नारी का संवेदनाओं को उजागर करने वाली अन्य कहानी है 'समापन'। बुढापे की कमज़ोरियों के साथ संघर्ष कर रही माँ है यहाँ की नायिका। जो अपने बेटी को देखने की इच्छा से जीना है, लेकिन बेटी को अपनी व्यस्तता के कारण माँ को मिलने के लिए नहीं आ पाती। पुत्री को माँ की राहत के लिए पत्र में झूठ भी लिखना पड़ता है।[3]" माँ तुम खबराया मत करो मैं सितंबर, अक्तूबर या नवंबर तक आ रही हूँ।" सूर्यबाला जी की अन्य वृद्ध संबन्धी कहानी है 'उत्तरार्ध'।

प्रस्तुत कहानी में स्वयं अपने ज़िन्दगी को भूलकर परिवारवालों की खुशी के लिए जी रही एक बूढ़ी औरत की अकेलापन को चित्रित किया गया है। वह माँ दिन–रात पति एवं पुत्र–बहु के लिए मेहनत करती है, लेकिन उस लोगों से उनको कोई आदर कभी नहीं मिली।[4] "उसने सालों–साल से कभी सोचा ही नहीं–उसे कब भूख लगी, कब प्यास? अभी खाना चाहती है या बाद में? आज भी, उसने चाय पी या नहीं? पी तो कब? उसे कुछ याद नहीं।" कहानी के अंत में वह नारी अपनी इस बेकार ज़िन्दगी से मुक्ति पाकर अपनी ज़िन्दगी की उत्तरार्ध अपने लिए जीना चाहती है। यहाँ लेखिका ने महानगरीय सभ्यता के दुष्प्रभाव के कारण बदलती हुई पारिवारिक रिश्तों पर संकेत किया है। बदलते रिश्तों एवं वृद्ध माँ–बाप के अकेलापन की त्रासदियों को उजागर करने वाली अन्य कहानी है 'आखिरी विधा'।

सूर्यबाला जी की वृद्ध जनों की समस्याओं पर आधारित पारिवारिक कहानी है 'सांझवाती'। कहानी में वृद्ध पिता एक बेटे के पास और माँ दूसरे बेटे के पास रहता है। घर में सब कुछ होने पर भी दोनों को घोर अकेलापन महसूस पड़ते हैं। पति–पत्नि दोनों आपसी मिलने के लिए और एक साथ जीने के लिए तड़पते हैं। लेकिन पुत्रों के सुविधानुसार दोनों को अलगाकर साथ लेते हैं। एक वृद्ध माता की अकेलापन तथा मातृ स्नेह को दर्शाती हुई अन्य कहानी है 'तिलिस्म'। व्यस्त परिवारवालों को बीच अकेला जीने पड़ी एक वृद्ध माँ की गँवार बातों की अंकन है 'दादी और रिमोट'। यहाँ बूढ़ी माँ की टी.वी प्रेम तथा महानगरीय ज़िन्दगी में हो रही समायोजन समस्या को

सही तरीके से वर्णन किया है। विदेशी सभ्यता के जाल में पड़कर जीने वाली नई पीढी के बीच में प्यार के लिए तड़पती रही वृद्ध दंपतियों की कथा है 'सप्ताहांत का ब्रेकफास्ट'। अपने पुत्र–बहु के तिरस्कृत मनोभाव के कारण दु:खित एक विधुर पिता की दर्दभरी दास्तान है 'सौगात' नामक कहानी। अपनी वृद्धावस्था में पुत्र से कोई नज़र उन्हें नहीं मिली।[5] "फिर सुबह.....फिर रात। ज़िन्दगी मौत से भी खामोश निस्पंद होती चली गई।" आज के व्यस्त पारिवारिक माहौल में घर में बंधी हुई वृद्ध जनों की वास्तविक ज़िन्दगी को दर्शाती हुई कहानी है 'मौज'। यहाँ सूर्यबाला जी ने रिश्तों का सूखापन की और भी संकेत किया है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि हिंदी कहानी में जो वृद्ध–विमर्श का दौर शुरू हुआ उससे वृद्ध मन की संवेदनाओं को अपनी कहानियों में कई साहित्यकारों ने उकेरा है, परंतु सूर्यबाला जी ने जितनी प्रखरता और प्रभावकारी ढंग से वृद्धों की दयनीय अवस्था का चित्रण किया है उसके करीब भी कोई साहित्यकार नहीं पहुँच सका है। वृद्धावस्था के तमाम सामाजिक आर्थिक पक्षों को जिस सूक्ष्मता से सूर्यबाला ने चित्रित किया है वह इस समाज की कलई खोलने वाला जान पड़ता है। महत्वपूर्ण यह है कि ऐसी घटनाएँ प्रति दिन आज भी हमारी सुर्खियों में बनी हुई है और हमारे आस–पास घट रही है।

संदर्भ सूची :-

1. https:@@www.Jansatta.com
2. एक इन्द्रधनुष जुबेदा के नाम पर – सूर्यबाला, पृष्ठ सं. 90
3. गृहप्रवेश – सूर्यबाला, पृष्ठ सं. 79
4. सांझवाती – सूर्यबाला, पृष्ठ सं. 47
5. मुंडेर पर – सूर्यबाला, पृष्ठ सं. 80

Address

Panchami. R

Radhamandiram, Mannaram, Vinobanikethan p.o.

Pin: 695542

Phone: 9961490898

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 105-120
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी साहित्य विमर्श और जनजीवन

-डॉ. पंडित बन्ने, डी.लिट.
अध्यक्ष एवं शोध निर्देशक, भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल), तह. करमाला, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य अनायास ही समाज व्यवस्था का अंग बन जाता है। समाज में रहते हुए मनुष्य को सामाजिक नियमों का पालन करना पड़ता है। यह नियम उसे जाति, रूढ़ि–परंपरा, पारिवारिक जीवन, धर्म आदि की जानकारी देते हैं।

हर एक समाज की अपनी अलग पहचान रही है। वर्ण व्यवस्था, वित व्यवस्था, जातीयता, राजनीतिक मूल्य आदि संस्थाएँ भारतीय समाज जीवन का आधार रही है। आदिवासी समाज भारतीय समाज जीवन का एक अंग है, जो पहाड़ी घाटी प्रदेशों में, नगरों से दूर अपनी समाज व्यवस्था से चिपका हुआ जी रहा है।

आदिवासी समाज की सामूहिकता प्रधान प्रवृत्ति है। लोकगीत, लोककथा आदिवासी मन का दस्तावेज है। आदिवासी समाज दु:खी और सताया हुआ है। अन्याय, अत्याचार से पीड़ित है। अनेक व्याधियों से जर्जर है। जंगल और जमीन उनकी संपत्ति है। आदिवासी समाज की जरूरतें सीमित होने के कारण उनका जीवन सुखी, स्वच्छंदी रहा है। आदिवासियों का अज्ञान के कारण, जमींदार, धार्मिक व्यक्ति, पुलिस, सरकारी अफसरों द्वारा शोषण हो रहा है। जातीयता, उच्च नीचता से आदिवासी पीड़ित है। कोयला खदान, औद्योगीकरण, जंगल कटाई, बाँध निर्माण के कारण विस्थापितों के पुनर्वास की ओर ध्यान न देने से अलग राज्य, नक्सलवादी आंदोलन जैसी नई समस्याएँ बन रही हैं। प्रकृति की गोद में स्वच्छंदी बना आदिवासी विद्रोही बनता जा रहा है।

आदिवासियों का शोषण :-

कोयला अंचल की संथाल आदिवासी जाति बाह्य शक्तियों के शोषण से अत्यधिक त्रस्त है। अमीर लोग कुत्ते की भाँति आदिवासी औरतों को नोंचते हैं। मैना कहती है –''हाँ हम पापिन, हमारा माँ पापिन, ऊ सब धरमातमा। कोई भी जनाना ई कुत्ता लोग से बचा नई को .....ड.....ड.....ड.....ई नई।''[1]

मैना जैसी को भी जेलर सिपाही, सीताराम पंडित, बनन आदि न जाने कितने कुत्तों ने नोंचा है। कोयले की खदाने इतनी गहरी होती है कि कभी जमीन धँसने पर अनेक आदिवासी मजदूर जिंदा दफनाएँ जाते हैं। पुलिस और अधिकारी आदिवासियों को न्याय देना तो दूर बल्कि उनसे ही रिश्वत लेते हैं। सुब्बराव सोरे जैसे निरपराध लोग माफिया और पुलिस की गोलियों के शिकार बनते हैं। ''अब बाँसगड़ा में रहने का मतलब है या तो पुलिस का शिकार बनना या माफिया का।''[2] पुलिस, माफिया और पूँजीपातियों के कारण यह जाति विस्थापन से गुजरती मिलती है। इसी कारण एक बार वे बाँसगड़ा को छोड़कर बेरमों चल जाते हैं। मैना की माँ और मैना महेंद्र बाबू के शोषण का विरोध करती है तो उन्हें अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती है।

वीरेंद्र जैन कृत पार उपन्यास में आदिवासी जीरोन क्षेत्र के साथ–साथ लड़ैई ग्राम्य की यात्रा भी चल रही है। जीरोन खेरा वही इलाका है जहाँ दीन–हीन राउल आदिवासी लोग बसते हैं। वे मन के भोले होते हैं। अपने पेट को पालने के लिए वनोपज को बेचते हैं। किंतु दूसरी तरफ उच्च समाज के तथाकथित सफेद पोश लोग किस प्रकार राउल आदिवासियों का शोषण करते हैं।

बाँध निर्माण के कारण उठने वाली समस्याएँ, डूबे क्षेत्र में डूबे जाने वाली मनुष्यता, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, भूगोल, पशु, पक्षी, पेड़, पौधे, पहाड़ और वहाँ रहनेवाले आदमी है, आदमी भी, जिनमें से कितने तो पानी में डूबते हैं, और कितने बाँध निर्माण की वजह से यंत्रणाओं, यातनाओं और भूख के पारावार में समाचार खत्म हो जाते हैं। सरकार डूब क्षेत्र को बीसियों साल पहले डूबा हुआ मानकर सो जाती है, वहाँ रहनेवाले लोगों ने जीवित मनुष्य मानना छोड़ देती है।

शंकर शेष कृत 'पोस्टर' नाटक में आदिवासी जनजीवन का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत नाटक में आज आदिवासी जाति पर अन्याय एवं शोषण होता है और चुपचाप सहन करते हैं। अशिक्षित होने के कारण जमींदारों का विरोध नहीं कर सकते हैं। ये लोग दिन–रात मेहनत करते हैं और अपने मालिक से जो मिलता है इसी में गुजारा करते हैं। इसी अन्याय, अत्याचार से भरी जिंदगी में परिवर्तन लाने की आवश्यकता को महसूस किया गया है।

विवाहेत्तर यौन संबंध :-

सुमंत कौर के अनुसार –''विवाहेत्तर यौन संबंध कई तरह के हो सकते हैं। जैसे विवाहपूर्व प्रेम संबंध, विवाह के बावजूद पति या पत्नी दोनों के किसी अन्य से संबंध विधुर के किसी के संबंध, अधेड़ अविवाहितों के संबंध, स्त्री–पुरूषों में मित्रता संबंध, वेश्या संबंध एवं पुरूष द्वारा स्त्री का शोषण आदि।''[3] कुछ आदिवासी जातियों में पुरूष महिलाओं को वेश्या बनाकर धन अर्जित करते हैं। कुछ आदिवासी जातियों में नवयुवक एवं नवयुवतियों को अपनी ही आदिवासी जाति में स्वच्छंदतापूर्वक यौन संबंध स्थापित करने की स्वतंत्रता रहती है।

मैत्रेयी पुष्पा कृत 'अल्मा कबुतरी' उपन्यास में मैत्रेयी जी ने बुंदेलखंड की आदिवासी कबूतरा जाति के स्त्री–पुरूष यौन संबंधों पर गहराई से प्रकाश डाला है। कबूतरा घुमक्कड़ जाति होती है। एक गाँव से दूसरे गाँव जाकर कोई निर्जन जगह या किसी के खेत में डेरा डाले अपना जीवन गुजार लेती है। उनका मूल व्यवसाय शराब बेचना होता है। शराब बेचने का व्यवसाय होने के कारण उनके यहाँ हर एक किस्म के लोग आया – आया करते हैं। स्त्री के नसीब में अपने पति का सुख अधिक दिनों तक नहीं रहता। शराब बेचने या चोरी करने के जुल्म में पुलिस द्वारा अधिकतर कबूतरा जाति के पुरूषों को अपराधी घोषित किया जाता है। ये सारे अपराधी पुलिस से बचने के लिए अपने डेरों से दूर जगलों में जाकर बसते हैं। ''कदमबाई का पति जंगलिया इसी प्रकार का अपराधी बनकर कदमबाई से दूर जंगल में जाकर बसता है। जंगलिया की अनुपस्थिति में कज्जा मंशाराम माते कदम के रूप पर मोहित होकर धोखे से जंगलिया की हत्या करके कदमबाई के साथ शारीरिक संबंध बाँधता है।''[4]

डॉ. रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं – ''नट कई तरह के होते हैं, इनमें करनट जरायम पेशा कहलाते हैं। इनकी कोई नैतिकता नहीं होती। इनमें मर्द औरतों को वेश्या बनाकर उसके द्वारा धन कमाते हैं। वैसे तो नट समाज में केवल शारीरिक स्तर पर ही औरत का अस्तित्व माना जाता

है, वह स्वच्छंद यौनाचार को औरत का कार्य मानता है।''[5]

शिक्षा :-

आदिवासी जनजीवन की समस्या की जड़ अशिक्षा है। आज वे समझ गए हैं कि शिक्षा पाना अनिवार्य है। सरकारी शिक्षा नीति से वे प्रभावित है। 'जंगल के फूल' में पाठशाला खोलना, जाने कितनी आँखों में बदरी प्रसाद का बीस साल से अध्यापक होना, कमलापन का पढ़ लिखकर उच्च पद पर कार्य करना। 'शैलूष' उपन्यास में सावित्री द्वारा नटों को शिक्षा का महत्व समझाकर 'कमलापुर' में स्कूल चलाना। 'सुराज्य' उपन्यास में गांगी द्वारा ढलती उम्र में भी बच्चों को पढ़ना। 'एकलव्य' एक एकलव्य निषादों को शिक्षा देकर संगठित करना चाहता है। कृषि ज्ञान देना, राज बनाने में आगे लाना चाहता है।

'जंगल के आसपास' उपन्यास में दमकड़ अँचल के लोग जंगली जानवरों के उत्पात से भयभीत है। यहाँ के लोग अपने बच्चों को पाठशाला में भेजने के लिए तैयार नहीं। पाठशाला की दशा से चिंतित होकर मास्टर दिनेश सोचते हैं – ''पूरे डेढ़ महीने में स्कूल डेढ़ दिन लगा था। और वह भी चार बच्चों को लेकर।''[6]

'सोनामाटी' उपन्यास में भगवान व्दिवदी लड़कियों के शिक्षा के विरुद्ध है। वे स्वयं अपनी बेटी को पढ़ने से विरोध करते हुए कहते हैं– ''ज्यादा पढ़ना–लिखना दिक्कत पैदा करेगा। लड़की चूल्हे–चौके के लिए बेकार हो जाएगी। खानदान में या गाँव घर में किसी औरत ने नौकरी नहीं की।''[7]

'अग्निबीज' उपन्यास के रामपुर अंचल में नारी शिक्षा का विरोध किया जाता है। ''लड़के कुछ स्कूल में जाने भी लगे थे पर लड़कियों का स्कूल जाना हिमालय लाँघने के समान था। छबिया हमेशा कहती थी, 'बहिन जी, जिस दिन हम लोग पढ़ने लगेंगे एक दिन जानों गंगा में जौ बो दिया गया।''[8] अर्थाभाव, अज्ञान और अंधविश्वास के कारण आदिवासी जीवन में पिछड़ी जनजातियाँ शिक्षा के प्रति उदासीन पाई जाती है। 'महर ठाकुरों का गाँव' उपन्यास में कुमाऊँ के पहाड़ी अंचल में अंधविश्वास और रूढ़ि–परंपराओं के कारण शिक्षा के प्रति उदासीनता पाई जाती है। शिक्षित हरदा गाँव के बच्चों को पढ़ाता है, तब कुछ लोग कहते हैं कि हरदा पागल हुआ और कहते हैं –''सारा गाँव बाभन बना दिया हरूवा शात्तरी ने। बिगाड़ के रखेगा आखिर साला गाँव के बच्चों को। न काम, न धाम। सुबह से शाम तक गिटपिट–गिटपिट लगी रहती है गाँव में। जहाँ देखो धूप, हवन होम। खेत गाड़ी का काम सब चौपट हो गया है। अरे, तुम्हारे होम हवन से थोड़े ही पेट भरेगा अन लड़कों का।''[9] आदिवासी जीवन में शिक्षा से ज्यादा खेती को महत्व दिया जाता है।

विवाह संबंधी प्रथाएँ :-

आदिवासी समाज में विवाह संबंधी विविध प्रकार की प्रथाएँ प्रचलित है। 'गोंड' आदिवासियों में विवाह संबंधी लमसेन, दूध लौटना, तम्बाकू माँगना, तम्बाकू नहीं बाँटना, चावलों का मिलना तथा बाँस सुराही आदि प्रथाएँ प्रचलित है।

विवाह का आयोजन फसल कटाई के बाद गर्मियों के दिनों में ही किया जाता है। 'सोनामाटी' उपन्यास में रामरूप की कन्या कमली का विवाह वर पक्ष के लोग फागुन में करने की इच्छा प्रकट करते हैं, तब कमली की माँ रामकली कहती है –''अरे हम लोग भी क्या बनिया महाजन है कि फागुन में शादी होगी? साल माथ में फसल भेंटा जाने पर गाँव में विवाह शादी ठानते हैं।''[10] विवाह संबंधी विभिन्न रिवाजों का जैसे – पूजन, आसन, स्नान, चंदनसेली, गंध, सिंदूर, पुष्प, माला, दूर्वा, दीप, गुड़, अक्षत, भोग, नैवेश आदि। 'शैलूष' उपन्यास की

करनट जनजाति में विवाह संबंधी विभिन्न रस्म–रिवाजों का पालन किया जाता है। इनमें अपहरण विवाह वा प्रचलन भी पाया जाता है। दहेज के रूप में वर मूल्य और वधू मूल्य की पद्धति भी है। नटों के विवाह में वर पक्ष को कन्या के यहाँ डलवा भेजने की रस्म का अत्यंत महत्व है। डलवे में लड़की के लिए कुछ चीजें भेजनी पड़ती है। हीरामन की शादी के समय भेजा जा रहा डलवा इस प्रकार था– ''वहाँ बाँस की सीखें से बुना बहुत सुंदर डलवा रखा था। उसमें साड़ी, बाऊज, पेटीकोट, चप्पले, रंग–बिरंग की शारीयाँ, टिकुलिए, चूडियाँ और तरह –तरह के प्रशासन की चीजें, तेल, साबुन, क्रीम आदि बाकायदे से सजी थी।''[11] नटों की प्रतिष्ठानुसार डलवें में शराब भेजने का भी प्रचलन है। विवाह के समय लड़का लड़की की माँग सात बार सिंदूर से भरता है दोनों एक–दूसरे को शराब पिलाते हैं उसके बाद विवाह संपन्न होता है। इस संदर्भ में माणिक से लल्लू काका कहते हैं– चलों मानिक, तुम लगाओं सात बार सिंदूर रूपा की माँग में। रुई ऐंठ कर बनाई हुई बत्ती थी, उससे सात बार सिंदूर छुआ कर उसने रुपा की माँग भर दी।....रूपा, अब उठ इस चुक्कड़ में महुये का ठर्रा भरकर पिला मालिक को। देर चुक्कड़ तू पिलायेगी, फिर दो चुक्कड़ तुझे मानिक पिलायेगा।''[12]

'जंगल के फूल' उपन्यास में जलिया की शादी कोई दूसरे युवक से तय की जाती है। शादी तय होने से पहले वह अपने गाँव के युवक झालर सिंह से प्रेम करती है। जब धुइंगा बाँटती वह झालर सिंह के पास जाती है, और महुआ को कहती है कि, 'नहीं महुआ, मुझसे धुइंगा नहीं दी जाएगी।

पारिवारिक जीवन :–

परिवार सामाजिक संरचना का प्रमुख अंग है। यह एक ऐसी संस्था है जहाँ व्यक्ति का विकास, धर्म एवं संस्कृति की रक्षा, संतानोत्पति, अस्तित्व की रक्षा आदि कार्य सहज होते हैं।

आज नागरीकरण, पाश्चात्य संपर्क, भौतिक व्यवस्था के कारण संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। 'अपने लोग' उपन्यास में देऊ का परिवार संयुक्त परिवार है। परिवार में चाचा विशनू, बेटा भोला, लल्लू के भाई कुँवर और कलिया एवं उनकी पत्नियाँ, बच्चे आदि सभी साथ–साथ रहे हैं। कुछ ही दिनों में परिवार टूट जाता है। कुछ ही दिनों में परिवार टूट जाता है। ''घर में दो चूल्हे जल गए। पूरा घर साँय–साँय कर रहा था। वक्त की बात है। कल तक बहुएँ, देवरानी, जेठानी, चाचा भतीजा, भाई सब एक थे। परिवार एक–दूसरे का था, परंतु आज उसी घर में दो परिवार हो गए। एक विशनू–लक्ष्मी का, दूसरा देऊ–लल्लू का।''[13] कहना सही है कि धन–वैभव के कारण देऊ का परिवार टूट जाता है।

'जंगल के फूल' उपन्यास में मातृसत्तात्मक परिवार, 'शैलूष' में पितृवंशीय सत्ता परिवार 'धार' में संयुक्त परिवार, साँप और सीढ़ी' में संयुक्त परिवार, 'कब तक पुकारूँ' में बहुपति परिवार के दर्शन हो रहे हैं। आदिवासी परिवार में पति, पत्नी, बच्चे रहते हैं। आधुनिक युग में खानपान, नौकरी, विस्थापन के कारण परिवार की नींव हिल रही है। वंशरक्षा, वंशप्राप्ति के लिए बहुविवाह, नारी सौंदर्य के कारण बहुपत्नी रखने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। 'शैलूष', 'दंड विधान', 'सोना माटी', 'सु–राज', 'सागर की गलियाँ' आदि उपन्यासों में भी संयुक्त परिवार का चित्रण किया गया है।

नारी शोषण :–

ईसाई करण, अंग्रेजों, जमींदारों, ठाकुरों की मनमानी, धार्मिक व्यक्ति का प्रभाव, सामाजिक–पारिवारिक मान्यता, अज्ञान, अंधश्रद्धा के कारण आदिवासी नारी शोषित है। उच्च वर्गीय पुरूषों द्वारा निम्न जाति की स्त्रियों

को शोषण होता रहा है। गाँव में आई नववधू का शोषण उच्च वर्ग की परंपरा रही है। 'विकल्प' उपन्यास में उच्चवर्गीय रूदल गाँव के हर एक निम्न जाति की लड़की का शोषण करता पाया जाता है। ''गाँव की छोकरियों पर शासन है रुदन का। कोई माई का लाल ऐसा नहीं जो अच्छी लौंडिया ब्याह लाए और वह रुदल के हाथों से बचाकर रखे।''[14] 'वनतरी' उपन्यास में ठाकुर परमजीत सिंह आदिवासियों की बहू–बेटियों की बहू–बेटियों का शोषण करता है। यदि कोई आदिवासी स्त्री उसका विरोध करती है तो उसकी हत्या कर उसे नदी में फेंक दिया जाता है। ठाकुर का गुंडा जुलूमसिंह भी निम्न जाति की स्त्रियों का शोषण करता पाया जाता है। मेहरुन्निसा परवेज जी ने अपनी कहानियों में बस्तर की जनजातियों में नारी जीवन की पीड़ा दर्द एवं त्रासदी का चित्रण किया है। 'जंगली हिरनी' कहानी की मेगन का पर्यटक अंग्रेज दैहिक शोषण करता है।

जात पंचायत :-

स्वतंत्रता के पहले आदिवासी समाज में जात पंचायत का स्थान महत्त्वपूर्ण था। वैवाहिक संबंध, तलाक, अवैध यौन संबंध, आपसी कलह, खेती संघर्ष आदि के संदर्भ में निर्णय देने का कार्य जाति पंचायत का ही होता था। प्रमुख को मुखिया कहते हैं, गाँव के बहार, मंदिर के पिछवाड़े, खुले मैदान में इसका आयोजन होता। नियम अलिखित, निर्णय सर्वमान्य होता है। विभिन्न जाति के लोग इसमें सम्मिलित होते हैं। यह विवाह, चोरी, कत्ल, अवैध संबंध, अवैध संतान, दंगा पसाद पर निर्णय करती है।

'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास में जीते प्रेम संबंध में विवाह पूर्व ही पेट से रहने वाली बुज्जी की बेटी दीवी पंचायत द्वारा दंडित की जाति है। वह विवाहपूर्व ही एक मृत बच्चे को जन्म देती है। यह खबर पंचायत में पहुँचती है, तब फैसले के लिए मेवाड़ से पंच एवं मुखिया आ जाते हैं, और उसे दंडित करते हैं। रम्या को अपने पीठ के दाग बताते हुए दीवी कहती है –''उसके बाद हुआ यह कि पंचों ने तिरसूल गरम किया और हम दोनों की पीठ पर दाग दिया बारी–बारी।''[15] 'जंगल के फूल' सुलकझाए द्वारा शराब पीकर दूल्हे की पिटाई करने पर पंचायत बैठती है। 'वनवासी' में पंचायत का निर्णय भगवान का आदेश माना जाता है। 'धार' उपन्यास में जातपंचायत मैना को दोषी मानती है। उसे पंचायत, स्थानीय मंडल, ग्रामसभा भी कहते हैं। आज शिक्षित आदिवासी जात पंचायत का विरोध करता हुआ लक्षित होता है। आदिवासी या पिछड़ी जन–जातियों में आज भी जाति पंचायत का स्थान महत्वपूर्ण है।

घोटुल :-

आदिवासी गोड़ो की 'घोटुल', 'युवागृह' महत्वपूर्ण विरासत, शिक्षा केंद्र, संस्कृति का प्रतीक है। घोटुल में स्वच्छंदी व्यवहार चलता है। घर में पति–पत्नी, तीन–चार वर्ष के बच्चे होते हैं। युवक–युवती जीवन की प्रारंभिक शिक्षा, यौन शिक्षा यहाँ प्राप्त करती है। घोटुल का सरदार किसी भी लड़की के साथ संबंध रख सकता है। हर सदस्य को रात वहाँ गुजारनी होती। बाहर रहने से सजा दी जाती। आदिवासियों का विकास योजना में सहयोग लेना हो तो पहले घोटुल की सहायता आवश्यक है। राजेंद्र अवस्थी के 'जंगल के फूल' उपन्यास में गोडों का मर्मस्थ, गाँव के बाहर, झोपड़ीनुमा केंद्र है। खुला मैदान, दीवारों पर जन्म से लेकर मृत्यु की झाँकियाँ होती है। सूरज डूबते ही गाँव के युवक–युवती चटाई लेकर सज धज कर घोटुल की ओर निकलते हैं। एक दूसरे का स्वागत करना, अनुशासन के साथ सौपी जिम्मेदारी निभाना, नाच–गान होना, सारी रात वहाँ बिताना। सरदार प्रमुख होने से घोटुल पर नियंत्रण रखता है। यहाँ यौन शिक्षा के पीछे वासनात्मकता नहीं होती। नाच–गान के

पश्चात प्रेमिका प्रेमी के साथ जाती है, मुर्गे की बाँग के साथ घोटुल खाली होता है। ''घोटुल गाँव का रक्षक है। वहाँ का हर जवान सिपाई होता है। गाँव पर आक्रमण करनेवाले को प्रथम घोटुल से लड़ना पड़ता। 1908 में बस्तर में जो विद्रोह हुआ उसका केंद्र घोटुल ही था।''[16] शिक्षा, अनुशासन, संस्कार निर्माण का केंद्र घोटुल है।

नारी जीवन :-

आदिवासी समाज शुरू से अपनी अस्मिता, पहचान को लेकर असुरक्षित महसूस करता आया है। हिंदी कथा–साहित्य में आदिवासी अस्मिता की बोलती तस्वीर प्रस्तुत है। आदिवासी 'बेचारे हैं'– शोषित और उत्पीड़ित लेखकीय सहानुभूति के पात्र हैं। विशेषकर, आदिवासी स्त्रियों के संदर्भ में तो इस तरह का लेखन और भी क्रूर दिखाई देती है। जब हम साहित्य में आदिवासी स्त्रियों को सिर्फ स्वच्छंद यौन की वस्तु के रूप में और अपना बलात्कार करवाते ही देखते हैं। भारतीय साहित्य में आदिवासी महिलाएँ परदेशी के प्रेम में देह सौंपती, दाई, आया, सेविका आदि के रूप में मार खाती, बलात्कार भोगती हुई ही दिखाई देती है। आदिवासी स्त्रियाँ हर वक्त, हर किसी के साथ सहवास के लिए तत्पर रहती है, क्योंकि उनका यौन वर्जना से मुक्त समाज है। सही है कि आदिवासी स्त्रियाँ लड़ रही है, अपने समाज के भीतर मौजूद अंधविश्वास, कुरीतियों से, बाहरी शोषण उत्पीड़न से। विस्थापन, पलायन और औद्योगीकरण की सबसे ज्यादा मार आदिवासी महिलाओं को ही झेलनी पड़ी है। खदान क्षेत्रों और औद्योगिक शहरों के विकास के साथ ही आदिवासी महिलाएँ पहले से कहीं ज्यादा असुरक्षित हुई है। पितृसत्ताक समाज में स्त्री से उपेक्षा की जाती है कि वह पुरूष की दासी बनकर रहे।

करनट आदिवासियों में नारी की सामाजिक स्थिति अत्यंत दर्दनाक है। 'कब तक पुकारू' उपन्यास का नायक सुखराम अपने शब्दों में कहता है –''औरत! तू मेरे पाँव की जूती है। कजरी और प्यारी दोनों मेरी है। कजरी कहे कि मन की करेगी सो नहीं होगा। प्यारी भी मेरी होगी।''[17] आदिवासी नारी गाँव के ठाकुरों और पुलिस लोगों के अत्याचार का शिकार बनना पड़ता है। आदिवासी नट समाज उपेक्षित समाज है। आदिवासी करनटों को अनैतिकता के संबंध में डॉ. कमलाकर गंगावने लिखते हैं – ''अभिजात समाज के समान करनटों में सामाजिक नियमावली नहीं होती। अभिजात समाज में जो नीति मूल्य है, करनटों का उनसे कोई सरोकार नहीं है। अभिजात समाज में जो नैतिकता मानी जाती है, वही करनटों में संभवतः अनैतिकता है। इसके विपरित अभिजात में जो अनैतिकता है, वही आदिवासी नटों में प्रायः नैतिकता है। शराब पीना, चोरी करना तथा जुआ खेलना करनटों के लिए नैतिकता है। इन गुणों का न होना उनके समाज में अस्वाभाविक ही माना जाता है। सुखराम करनटों के नैतिक मूल्यों से परे है, इसलिए करनट नर–नारी का उसकी ओर देखने का नजरिया ही कुछ अलग है।''[18] आदिवासी नरनटियाँ जीवनयापन के लिए दूसरों से अपने यौवन का सौदा करती है। आपने यौवन के बल पर खुद को बेचकर धन कमाती है। वेश्यावृत्ति को ध्यान में रखकर विमल शंकर लिखते हैं– ''यौवन के बल पर वह स्वयं को, अपने पति को पुलिस से छुड़ाती है, भूखे मरते करनट व बच्चों को भोजन लाकर खिलाती है।''[19]

आदिवासी स्त्रियाँ पुरूषों के बराबर कार्य करते पाई जाती है। घास काटना, पशुओं की देखभाल करना, जंगल से लकड़ियाँ लाना, खेतों में काम करना, शिकार में पति को मदद करना आदि काम का आदिवासी स्त्रियाँ करती रहती हैं। 'महर ठाकुरों का गाँव' उपन्यास में सीरगाड गाँव की स्त्रियों के कार्य का वर्णन इस प्रकार है –''सीरगाड गाँव की औरतें इसी पश्याड़ की धार से मवेशियों के लिए घास ले जाती है और जंगल से लकड़ियाँ और बाँज के पतेल भी गाय भैसों के खाने के लिए बटोर ले जाती है। भोर का उजाला फूटते ही औरत गाय

– भैसों का दूध दुहती है और फिर वम को चली जाती है। लकड़ियाँ और पतेल का गट्ठर घर आँगन में फेककर खाने की तैयारी करती है और परिवार को खाना खिलाकर बरतन माँजकर फिर रस्सी लेकर या तो पश्चाड़ की धार में घास लेने या खेतों में काम करने चली जाती है।''[20] इससे स्पष्ट होती है कि आदिवासी स्त्रियों का काम गोंद इकट्ठा करना, शहद के छत्ते निकालना, जड़ी–बूटियाँ, फल–फूल एकत्रित करना आदि होता है।

उच्चवर्गीय पुरूषों द्वारा आदिवासी स्त्रियों का शोषण होता रहा है। गाँव में आई नववधू का शोषण उच्चवर्ग की परंपरा रही है। 'विकल्प' उपन्यास में उच्चवर्गीय रूदल गाँव के हर एक आदिवासी लड़की का शोषण करता पाया जाता है। ''गाँव की छोकरियों पर शासन है रूदल का। कोई माई का लाल ऐसा नहीं जो अच्छी लौंडिया ब्याह लाए और वह रूदल के हाथों से बचाकर रखे।''[21] 'वनतरी' उपन्यास में ठाकुर परमजीत सिंह आदिवासियों की बहू–बेटियों को शोषण करता है। यदि कोई आदिवासी स्त्री उसका विरोध करती है तो उसकी हत्या कर उसे नदी में फेंक दिया जाता है। ठाकुर का गुंडा जुलूमसिंह भी निम्न जाति की स्त्रियों का शोषण करता पाया जाता है। ''किसी के घर में घुसता और जवान बेटी हो या बहू टाँगकर ले आता। कोई चूँ–चपड़ करता तो ऐसा सापड़ मारता कि छठी का दूध याद आ जाता। फिर तो जी भरकर पहले खुद रूई की तरह धुन देता और बाद में ठाकुर के हवाले कर देता।''[22] इस प्रकार आदिवासी नारी की दयनीय दशा है।

आदिवासी समाज में नारी शिक्षा के प्रति उदासीनता पाई जाती है। आदिवासी जन–जातियों में नारी का पढ़ना–लिखना उसके विवाह के लिए बाधा बन सकता है। उनका पढ़ना–लिखना समाज को स्वीकार नहीं है। 'सोनामाटी' उपन्यास में भगवान द्विवेदी लड़कियों के शिक्षा के विरुद्ध है। वे स्वयं अपनी बेटी को पढ़ने से विरोध करते हुए कहते हैं – ''ज्यादा पढ़ना–लिखना दिक्कत पैदा करेगी। लड़की चूल्हे–चौंके के लिए बेकार हो जाएगी। खानदान में या गाँव घर में किसी औरत ने नौकरी नहीं की।''[23]

'जंगल के फूल' उपन्यास में गोंड आदिवासी समाज में व्याप्त यौन संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। 'घोटुल' नाम की संस्था में अविवाहित युवक–युवतियाँ रहते हैं। उनमें प्रत्येक का एक प्रेमी अथवा प्रेमिका होती है। ये नवयुवक रात्रि में 'घोटुल' में रहते हैं और वहाँ पर मनोरंजन के साथ–साथ स्वतंत्र रूप से यौन संबंध स्थापित करते हैं।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में आदिवासी जातियों में पुरुष महिलाओं को वेश्या बनाकर धन अर्जित करते हैं अथवा वेश्यावृत्ति से उनका कमाया हुआ खाते हैं। कबूतरा घुमक्कड़ जाति होती है। उनका मूल व्यवसाय शराब बेचना होता है। स्त्री के नसीब मे अपने पति का सुख अधिक दिनों तक नहीं रहता। शराब बेचना या चोरी करने के जुल्म में पुलिस द्वारा अधिकतर कबूतरा जाति के पुरुषों को अपराधी घोषित किया जाता है। ये सारे अपराधी पुलिस से बचने के लिए अपने डेरों से दूर जंगलों में जाकर बसते हैं।'' कदमबाई का पति जंगलिया इसी प्रकार का अपराधी बनकर कदमबाई से दूर जंगल में जाकर बसता है। जंगलिया की अनुपस्थिति में कज्जा मंशाराम माते कदम के रूप पर मोहित होकर धोखे से जंगलियाँ की हत्या करके कदमबाई के साथ शारीरिक संबंध बाँधता है। कदमबाई कहती है –''वादे के हिसाब से वह पास आया, वह छाया को देखते ही मदहोश हो गई। गहराई हुई गेहूँ की बाले पेट को गुदगुदा रह थीं, गुनगुनी बाँहों ने उसका बदन बाँध लिया। हाय, सदा घाघरा उतारता आया था, आज पहले चोली के बटन खोल रहा है।..... कदम ने घाघरा खुद ही नीचे को सरका दिया। बंद आँखों में अपने ही गोरे बदन की छाया जगमगाई। आँखों पर रखे हाथों की उंगलियों से झांकना

चाहती थी कि गर्म साँसो ने होठों पर कब्जा कर लिया। सारे डर–भय को दबाने की खातिर उसने अपने पुरुष को भींच लिया। आनंदलोक में विचरने वाली कदमबाई, दो गुनी ताकत से भिड़ रही थी। मिलन की डोर से बंधी स्त्री हर लम्हे नई–से–नई मुद्राएँ अपनाने लगी। अब केवल वह थी, बाकी कोई न था। धरती, धरती न थी दे हके साथ उठती–दबती चादर। आसमान, आसमान न था। तारों का झमकता झूलना.....।''[24] कदमबाई मंशा के साथ बार–बार यौन संबंध रखती है। उसके पति जंगलिया की मौत का जिम्मेदार स्वयं मंशा होता है। कदमबाई यह सारी बाते जानते हुए भी मंशा को सहजता से स्वीकारती है। केवल स्वीकारना ही नहीं, वह मंशा को अपना रक्षक मानकर रक्षक को खुश रखने हेतु बार–बार अपना शरीर देती रहती है।

सरोज केरकेट्टा अत्यंत ही संवेदनशील और बहुआयामी कवयित्री है। आदिवासी पुरूष, पत्नी का देहांत होने पर तुरंत दूसरा विवाह कर लेता है। उस स्थिति में उनके बच्चों का जीवन कष्टदायक हो जाता है।

आदिवासी समाज में कर्ज एक बड़ी समस्या है। फलतः आदिवासियों के शोषण में बनिया–साहूकार लोगों की बड़ी भूमिका रही है। शराब के लिए कर्ज हो या पारिवारिक जरुरत के लिए, उसके बदले आदिवासी समाज को दिकू महाजन व सामंत बंधक बनाते रहे हैं। यहाँ तक कि कर्ज के एवज में वे उनकी स्त्रियों तक को हथिया लेते हैं। मजबूरी में माँ–बाप भी इस अदला–बदली में साझेदार बन जाते हैं। ऐसी स्त्रियों की तरफ से सरोज केरकेट्टा अपनी नाराजगी जताते हुए अपनी कविता 'क्यो बहका कर लाए' में कहती हैं –

''ओ मेरी माँ। क्यों भेजा मुझे तुमने?
दुश्मन साव ने तो। तुम्हारी आँखों में मुझे बार–बार बे।
किसे बताऊँ। किसके पास रोऊं?
मेरी माँ मुझे बहका कर लाया।
बाध मारे साव को। एक दिन मैं
दबोचूँगी। सता–सता कर पूछँगी।
क्यों बहका कर लाया।''[25]

आदिवासी समाज में बूढ़ी महिलाएँ अपने पूरे परिवार के साथ भावात्मक रुप से जुड़ी रहती है। कभी खाली बैठना पसंद नहीं करती। जब तक हाथ पाँव चलते हैं, वे कुछ न कुछ काम करती रहती है। सरिता सिंह बड़ाइक की 'आजी' कविता में :–

''दांत बिन मुँह पिलपिली। धंमी आँखों में टकटकी।
रास्ते में ढंगी है आजी। कोई तो खबर भेजेगा। चिट्ठी में
नाती। ढेला फोड़ते, गोबर फेंकते। थक गई है काया।
नाती की आम में टिकी है सांस।
आंगन में चटाई बुनती। 'करमा' से बतियाय आजी।''[26]

आदिवासी कविता में शोषण के जो दृश्य प्रस्तुत करती हैं, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। आदिवासी समाज मातृसत्ताक समाज रहा है। महिलाओं को वह हक सदियों पूर्व इस समाज को मिल चुका था, जिसकी नुमाइंदगी भारतीय संविधान पैंसठ वर्षों से करने की कोशिश कर रहा है। लेकिन बाहरी घुसपैठ और अपनी अंधविश्वासी रूढ़ि–वादिता के कारण यह पिछड़ेपन लगा है। बाहरू सोनवणे आदिवासी स्त्री की संवेदना कुछ इन्हीं शब्दों में–

''वानी में वेश्या, बुढ़ापे में डायन ऐसे ही कहते हैं लोग
एक ऐसी चीज जिसे घाट में बांट में
जहाँ मिले थाम लो, जब भी चाहे अंग लगा लो
पूरी हुई हवस तो त्याग दो, चीख न पुकार।''[27]

एक तरफ स्त्री को वे वेश्या, डायन समझने वाला सामज है, तो दूसरी तरफ हटिया कारखाने में मजदूरी कर सुखी जीवन की कामना में जीने वाले वे आदिवासी है।

''काश यह संभव होता
काश, यह संभव होता
मैं प्रेम बन जाता
दिन–रात तुम्हारे पीछे पड़ता
तुम्हारी छाया का पीछा करता
प्रिय, तुम्हारे साथ भागकर खो जाता
मैं हटिया कारखाने में मजदूरी करता।''[28]

अपनी मूल्यों के प्रति आदिवासी लोग आत्मचिंतन भी करता है। आदिवासी कवि सारा दोष बाहरियों पर ही नहीं थोपता वह आत्मलोचन भी करता है। समाज में पतनशील हो रहे मूल्यों व अपनी विकृत जड़ परंपराओं पर भी चोट करता है। मेघालय का कवि पॉल लिंग्दोह अपने पतनशील युवक–युवतियों पर शर्मसार होकर व्यंग्य करता है –

''बिकाऊ है
हमारी युवा–विवाह योग्य लड़कियाँ
इस देश जैसी ही खूबसूरत
हमारी वरीयताः मैदानी इलाकों के मर्द
या बेशक समंदर पार। बस्स थोडे तंदुरुस्त।''[29]

निर्मला पुतुल घुसपैठियों द्वारा अपनी बस्तियों के बलात्कार की बात करती है जहाँ घुसकर ये आदिवासी स्त्रियों पर बलात्कार करते हैं। इस प्रकार आदिवासी स्त्रियों की यह दर्दनाक कहानी है।

रमणिका गुप्ता के 'सीता–मौसी' उपन्यास में आज की आदिवासी समाज की स्त्री की वो दास्तान है जिसमें वह देश का मुकाबला करती है जो उसके स्वाभिमान को चोट पहुँचती है। सीता–मौसी ने ऐसे नेतृत्व को जन्म दिया है जो सदियों से मौन रहा है जो तिरस्कार भरी जिंदगी जीता रहा है। परंतु अब उस तबके जागरुकता उसने लगी है। आदिवासी स्त्री अस्तित्व–संघर्ष के स्वर गति पकड़ते हुए दिखलाई पड़ते हैं। उन्होंने परिस्थितियों के हर कदम पर, हर मोर्चे पर जिंदगी को मौत से छीना है – अपनी समाज के लिए, अपने स्वाभिमान के लिए, अपने जनजातीय के लिए।

आदिवासी स्त्री के प्रतिरोध को सशक्त आवाज देने वाली कविताएँ आज हिंदी में दिखाई देती है। एक ही स्त्री–पुरुषों की नजर में अलग–अलग हो जाती है। जो पहले कली, फूल और बाद में डायन–सी लगती है। मीरा रामनिवास अपनी कविता 'अपराधबोध' के माध्यम से स़ी की त्रासदी को व्यक्त करती है :–

''पहले जब वह हंसती थी कलियाँ सी
खिल उठती थीं चाल में हिरणों–सी
आप अपराध बोध से देखती है
आँखे क्योंकि वह आज विधवा है
जो पहले फूल थी वही आज कांटा है।''[30]

सरिता बड़ाइक की कविताएँ औरत के मात्र वस्तु बनाना नहीं चाहती वह उसकी आजादी के लिए सपने सजाती है। जैसे करमी, बुधनी, फुगनी, सुगिया अपने रोमजर्रा के कामों के साथ अस्तित्व के साथ यथार्थ मौजूद है। 'मुझे भी कुछ कहना है' कविता में अपने प्रियवर के लिए स्त्री के अस्तित्व का संदेश देती है। अपने जीवन कैसे झेलती है और घर के सदस्यों को चूल्हे से लेकर बिस्तर तक खुश रखकर भी कैसे खपती इसका स्पष्ट चित्र उभार देती है।

''चूल्हें बिस्तर की परिधि में
मुझे नहीं है रहना
गऊ चाल में चलकर नहीं थकना
मन में भरी है कविता
मंजूर नहीं है थमना हे प्रियवर।''[31]

सरिता बड़ाइक जी की कविता के संदर्भ में रमणिका गुप्ता कहती है –''सरिता की मोरपंखी भाषा इतनी बहुरंगी है कि झारखंड के हर तेवर को पकड़ लेती है। वे न केवल झारखंड के गाँवों की धड़कनों को स्वर देती है बल्कि झारखंड के हर निवासी की, चाहे वह किसी आयु, स्तर, वर्ग, वर्ण का क्यों न हो उनके बिम्ब सरल सहज शब्दों में खड़ा कर देती हूँ।''[32]

आदिवासी लड़कियों का जमींदारों, प्रधान, शहरी बाबुओं से शोषण होता आया है। नौकरी का बहाना हो या शादी का झूठ, इन कोमल मासूम लड़कियों को जिदगी के नए–नए सपने दिखाकर बेंगलोर, मुंबई, पूना, कोलकत्ता, दिल्ली जैसे बड़े शहरों में बेचा जा रहा है। चंद रूपयों और विदेशी शराब के लालच में गाँव का प्रधान अपनी बेटी, बहनों को बेपत्ता है। निर्मला पुतुल जी 'चुड़का सोरेन' कविता के माध्यम से कहती है –

''कैसा बिकाउ है
तुम्हारी बस्ती का प्रभाव
जो सिर्फ एक बोतल
विदेशी दारू में रख देता है
पूरे गाँव को गिरवी
और ले जाता है
कोई लड़कियों के गट्टर की तरह।''[33]

ससुराल में लड़कियों के साथा शोषण, अत्याचार, दहेज के लिए जलाना, खेत और घर को संभालना और यह सब बुधनी, मोसरी, मंगरी जैसी पीड़ित युवतियों के उदाहरण देखे हैं। डॉ. मंजु ज्योत्सना जी ब्याह कविता के माध्यम से –

''पिता मेरी शादी मत करना
मैंने देखी है – बुधनी की जिंदगी
बाल–बच्चे संभाल खेत में खटती है
उसका मर्द सांझ, सवेरे–रात
मारता है कितना।''[34]

आदिवासियों के पिछड़ेपन का एक कारण है रूढ़ि– परंपराएँ, अंधश्रद्धाएँ जिसके कारण वह ना ही अपना विकास कर पाए है। न ही बुरी हालात से बाहर निकल पाए हैं। जिसके ना पर आज स्त्रियों की विधवा, डायन कहकर सताया जाता है। निर्मला पुतुल जी अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्रियों के अधिकार, हक, अस्तित्व, घर–वर्ग–जाति में अपनी बराबरी का हक माँगती है। वह परंपराओं से तंग आ गई है।

''पलकु बुढ़िया की तरह
मुझे भी घसीटकर ले जाते लोग कुलि में
और भरी पंचायत में सर मुंडवा
नचा देते नंगा कर देते मुँह पर पेशाब
ठुंस देते मैला।''[35]

आदिवासी स्त्री के जीवन के संघर्ष को लेकर रमणिका गुप्ता, महावेश्ता देवी, निर्मला पुतुल, सरिता बड़ाइक, ग्रेस कुजुर, मीरा रामविलास, डॉ.मंजु ज्योत्सना आदि साहित्यकारों ने आवाजी दी है। इन साहित्यकारों ने आदिवासियों के उन प्रश्नों की तरफ ध्यान देनेवाले साहित्य का निर्माण किया है, जो आदिवासियों जागरुकता, प्रेरणा, अपने हक के लिए लड़ने की शक्ति दे सके। कवियों के मन को वेदना और विद्रोह बड़े पैमाने पर व्यक्त हुआ है। उनक कविताएँ क्रांतिकारी है।

आदिवासी जनजीवन और संघर्ष :–

''जंगल, पहाड़, पशु–पक्षी, हरि–भरी घाटियाँ और उसके बीच अपने अधिकारो को लेकर संघर्ष करते आदिवासी इनकी रचनाओं के केंद्र में है। आदिवासी कभी वनपति कहते थे और वन के स्वामी हुआ करते थे वे आज अपनी जमीन और जंगलों से बेदखल होकर भुखमरी के कगार पर पहुँच गए हैं। डॉ. रमादयाल मुंडा का कथन दृष्टव्य है– ''पूरा देश मरुभूमि बनने के कगार पर है जहाँ आदिवासी है वहाँ थोड़ा जंगल बचा है। सरकार के लिए तो यह रेव्हेन्यू मात्र है। जंगल को बचाना है तो आदिवासी को बचाना होगा। पहले खेती से आधा पेट भरता था तो आधा पेट जंगल से। लेकिन जंगल तो वैसे लोगों के हाथ से चला गया जो जंगल को समूल नष्ट करने पर तुले हैं। जंगल देखते–देखते गायब हो गया। जंगल के आदमी का चेहरा भी उजाड हो गया। हम अंदमान निकोबार देखकर आए हैं। देह पर कपड़ा नहीं लगता है पूरा सत ही निचुड गया है। मूल वजह है जंगल नहीं रहे।''[36]

संजीव का 'सावधान नीचे आग है' (1986) और 'धार' (1990) उपन्यास में मध्यप्रदेश की झरिया क्षेत्र की कोयला खान की एक दुर्घटना को केंद्र में रखकर कोयला–माफियों, ठेकेदारों और उनके दलालों के स्वार्थी, शोषक और क्रूर रूप का चित्रण किया गया है। संजीव के 'पाँव तले की दूब' (1995) और 'जंगल जहाँ शुरू होता है' (2000) उपन्यास का विषय झारखण्ड और बिहार के दूरदराज अंचलों की वास्तविकता से जुड़ा है। 'जंगल

जहाँ शुरू होता हैं' में नेपाल की सीमा से जुड़े बिहार के पश्चिमी चंपारण जिले के मिनी चंबल नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र में निवास करने वाली थारू जनजाति तथा वहाँ के ठाकुओं, नेताओं, पुलिस और प्रशासन के भी छिड़ी जंग का रोमांच चित्रण हुआ है।

'अल्मा कबूतरी' (2000) में मैत्रेयी पुष्पा जी ने बुंदेलखंड क्षेत्र में बसने वाली कबूतरा जाति के जीवन को अपना विषय बनाया है। प्रस्तुत उपन्यास में कबूतरा समाज के लगभग संपूर्ण ताने–बाने, लोग लुगाईयाँ, प्रेम झगड़े की वास्तविक जटिल कहानी का चित्रण हुआ है। नीरा नाहटा ने उचित ही कहा है कि – ''अल्मा कबूतरी अपराधी मानी जानेवाली एक विशेष जनजाति की जिजीविषा, रोटी की चिंता और जीने के संघर्ष में कूटते – पिटते, बंधते–मरते अविरत लगे रहनेवालों की ऐसी व्यथा–कथा है, जो आजादी की आधी सदी के बाद का भी यथार्थ है।''[37]

मुन्नी सिंह का 'सहराना' उपन्यास राजस्थान की एक मात्र आदिम जनजाति सहरिया के जीवन और समस्याओं पर आधारित है। सहरिया एक अत्यधिक पिछड़ा और उपेक्षित आदिवासी समुदाय है। जंगल पर आश्रित सहरिया जनजाति के लोग जरूरत पड़ने पर खेती भी करने लगे। इनकी खेती स्थानांतरण खेती की श्रेणी में आती है। खेती में अनाज पैदा नहीं होने ये जंगल से चिरौंजी, शहद, आंवला, महुआ, कत्था, कुरेंटा की दाल, धौली मूसली, गोंद आदि वस्तुएँ इकट्ठी करते और उनके बदले में मैदान से नमक, कपड़ा और अनाज ले आते थे। बारिश के दिनों में जंगल में कोई उपज नहीं होती इसलिए ये इसके लिए पहले से अनाज बंदोबस्त करके रखते हैं।

हबीब केफी का 'गमना' (1999) आदिवासी की त्रासदी और शोषण की कथा है। तेजिन्दर का 'काला पादरी' (2000) उपन्यास में छतीसगढ़ के सरगुजा जिले के ओराँव या उराँव आदिवासियों की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासियों के बीच सात दशकों का विस्तार लिए ईसाई मिशनरियों की भूमिका, आदिवासियों का धर्मांतरण, संकीर्ण धार्मिक हितों के लिए धर्म का उपयोग और राजनीति लाभ की गणना का सुंदर चित्रण हुआ है। श्री प्रकाश मिश्र का 'जहाँ बाँस फूलते हैं' (2001) उपन्यास में उत्तर पूर्व की मिजो जनजाति की अस्मिता, स्वतंत्रता व आर्थिक शोषण का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में मिजोराम की संस्कृति, भाषा, भूगोल, जीवनचर्या, खानपान, प्रकृति, पहाड़ व पशु–पक्षियों की जीवंत व सार्थक चित्रण उपन्यास को मूल्यवान बनाता है।

मनमोहन पाठक का 'गगन घटा बहरानी' (1999) उपन्यास में आदिवासियों की जिंदगियों की अतीत, वर्तमान और भविष्य का चित्रण है। उरांव जनजाति के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवेशों का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। जमींदारी उन्मूलन के बाद भी क्षेत्र के जमींदारों के पास सैंकड़ो बीघे जमीन है, जहाँ आदिवासियों का उपयोग मजदूर या बंधुआ मजदूर के रूप में होता है तब उनके साथ जानवरों से बदतर व्यवहार किया जाता है। वीरेंद्र यादव के शब्दों में –''झारखंड के पलामू क्षेत्र का आदिवासी जीवन व संघर्ष इस उपन्यास में अपनी संपूर्णता के साथ उपस्थित है। ओराँव जनजाति की इस संघर्ष गाथा में आदिवासी जीवन का सौंदर्य, शौर्य, विवशता, सरलता, कुरुपता, अभाव व बदलाव की चेतना एक साथ उपस्थित है। यह समूचे प्रांतर तथा आदिवासी समाज के व्यक्तित्वान्तरण की औपन्यासिक गाथा है।''[38]

जनजातीय समुदाय का जादू–टोना, जंतर–मंतर आदि में पूरा विश्वास होता है। अलग–अलग समुदायों

में अलग–अलग प्रकार के जादू–टोने चलते हैं। 'जंगल के फूल' उपन्यास में गुंडाधूर जादू की करामतें दिखाकर भोले–भाले आदिवासियों को डराता है। सामान्यतः बीमारी में, बदला लेने के उद्देश्य से लोग जादू–टोना करवाते हैं। जंगल के फूल उपन्यास में लेखक कहता है कि –''जो बांझ होती है, अपने कस्म को कोसती है, कंकाली की पूजा करती है। देवी–देवता मनाती है। जब देव प्रसन्न नहीं होते तो भूत–प्रेतों का सहारा लिया जाता है। आधी रात को वह बिल्कुल नंगी पीपल के नीचे जाती है और वहाँ दीप जलाकर प्रेत को बुलाती है और कहते हैं वहाँ से लौटकर कभी कोई स्त्री बांझ नहीं रह पाती।''[38]

मेहरून्निसा परवेज जी का कार्य क्षेत्र आदिवासी जीवन से जुड़ा है। इसलिए मध्यप्रदेश के वर्तमान छतीसगढ़ विशेषकर बस्तर के आदिवासी जीवन और समाज के प्रामाणिक चित्र उनकी कहानियों में मिलते हैं। अज्ञानता, अशिक्षा, रुढ़ियों एवं अंधविश्वासों के कारण आदिवासी बच्चे प्रायः व्यथ में भटकते हुए अपना बचपन गुजार देते हैं। आदिवासियों का जीवन आर्थिक रूप से विपन्न है। वे अपनी आजीविका के लिए प्रकृति, पशु–पक्षियों एवं खेतों पर निर्भर होते हैं। 'पसेरी भर जवानी' कहानी में लेखिका कहती है – ''बसोडों का पूरा अलग ही मोहल्ला है। घर–घर बिनते टोकने, सूप, आँगन में चरत मुर्गियाँ, छत पर गुटरते कबूतर, गली में पले हुए सुअर और धूल में लोटते हुए नंगे बच्चें। ओसारे में टोकने के झूले में पड़े बच्चे और टोकना बिनती माथे तक घूंघट किए बुंदेलखंडी गीत गाती औरत। घर–घर में झगड़े, वही समस्या, वही पीर। बच्चों का भूख से कुलराना – बिलखाना, बारिश–टूटी छतों को जोड़ना।''[40]

शराब बनाना और बेचना आदिवासी समाज का व्यवसाय है। 'टोना' कहानी की काकी कच्ची शराब बनाने और बेचना का कार्य करती है। उससे अपना घर खर्च चलाती है। ''इस छोटे से धनपुजी गाँव में काकी जाने कब से कच्चा शराब बेचने का धंधा करती थी। काकी के तीनों मरद भाग गए चौथी बार काकी इसी गाँव के कोतवाल का हाथ पकड़कर यहाँ आ गई। कोतवाल की आस औलाद नहीं हुई थी, तब डूमर–फूल (गूलर फूल) की तरह उसका जन्म हुआ था। कोतवाल के मरने के बाद से काकी शराब बनाने और बेचने का धंधा करने लगी थी।''[41] इससे स्पष्ट होता है आदिवासी परिवार के भरण–शोषण के लिए शराब बेचने का कार्य करे हैं। आदिवासी स्व आश्रित है पराश्रित नहीं है।

संजीव की कई कहानियों में आदिवासी जीवन का यथार्थ उनका समाज, उनके रीति–रिवाज तथा उनके जीवन में होने वाले नाना परिवर्तनों को देखा गया है। 'टीस' कहानी के केंद्र में आदिवासी शिबुकाका है। गाँव में आदिवासियों की झोपडियाँ हटाकर खदान शुरु हो गई है। कारखाने के मालिक आदिवासियों को शराब पिलाकर, डराकर जमीन से बेदखल करते हैं। अधिकारी, क्लर्क मुआवजे की रकम खा जाते हैं। तब आदिवासी मजबूर होकर गाँव छोड़कर चले जाते हैं। गाँव छोड़ते आदिवासी को देखकर शिबुकाका कहते हैं – आज कनाई चला गया, आज खोखन..... आंज गंशा..... आज मनतोष। अब न माँदल बजेगे या, न बाँसुरी, ना झांझ, नागपंचमी उत्सव पिका–फिका रह जाएगा। पुजारी पंचानन भट्टाचार्य शिबुकाका की पत्नी मनाई से जबरन संबंध रखता है। यह देखकर शिबुकाका मताई का चाकू से खून करता है। परंतु पुजारी भाग जाता है। पुजारी जैसे लोग आदिवासी स्त्रियों के साथ अनैतिक संबंध रखते हैं।

इसी प्रकार आप यहाँ है, ऑपरेशन जोनाकी, दुनिया की सबसे हसीन औरत, टीस, जीवन के पार और लिटरेचर कहानियों आदिवासी जनजीवन का चित्रण संजीव ने किया है। संजीव ने अपनी कहानियों में आदिवासी

जनजीवन और उनकी शोषण की सूक्ष्म चित्रण किया है।

आदिवासियों के विविध जीवन संघर्षों, शोषण, अभावों के विविध रूपों, अशिक्षा के कारण प्रचलित रुढ़ियों और अंधविश्वासों, सांस्कृतिक निष्ठाओं, सामाजिक संगठन के स्वरूपों और जीवन निर्वाह के साधनों आदि का प्रभावपूर्ण चित्रण है। जल, जंगल इनकी दृष्टि में व्यक्तिगत संपत्ति न होकर सामुदायिक संसाधन है। आदिवासी जनता आर्थिक क्षेत्रों में भी संघर्ष और चुनौतियाँ का सामना कर रही है। जंगल की हर चीज से उन्हें गहरा लगाव है। आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थितियों पर रचनाकारों ने सूक्ष्मता के साथ यथार्थ चित्रण किया है। आदिवासी समाज जीविका निर्वाह के लिए पूरी तरह जंगल पर निर्भर है।

कृषि जीवन :-

आदिवासियों के कृषि परंपरा आदिकाल से चली आ रही है। आदिवासी प्रारंभिक कृषक बने, बहुत लंबे समय तक ये जंगलों और पहाड़ो के पिछवाडे रहकर त्रासदी जीवन बिताते रहे। कृषि उनके आर्थिक जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है। आज से आठ–दस दशक पहले भीलों की अर्थ व्यवस्था जंगल तथा जंगल के उपज पर निर्भर थी। शासन के दबाव के कारण धीरे–धीरे भील कृषि गाँवों में बस गए। उन्होंने बारिश में खरीफ की फसल को लेना प्रारंभ किया। भील वर्ष में केवल एक फसल लेता था।

आदिवासियों ने जंगल की लकड़ी और उसकी उपज से जीवन निर्वाह करके फखक्कड जीवन बिताती रही। ब्रिटिश राज में भी जंगल में रहने वाले सेहरियाँ आदिवासी केवल जंगल की उपज और आखेट से जीविकोपार्जन करते थे। अन्य भील, मीणा, डामोर आदिवासियों के मुकाबले में इन्होंने खेतों को अपनाएँ हुए 60–65 वर्ष से अधिक नहीं हुए। खेती का प्रारंभ भी इन्होंने स्थान्तरण खेती या डांडा काश्त खेती से जिसमें जंगल को जलाकर खेती करते थे।

आज भीलों ने नकद फसलों को लेना प्रारंभ किया है। गन्ना, तम्बाकू, कपास तथा रेशम के कीडे पालने का काम भील कुशलता से कर लेते हैं। सिंचाई के कारण आज प्रगतिशील भीलों ने वर्ष में तीन फसल तक लेते हैं। इन्हीं भीलों में ऐसे समूह भी है जो शहरों में रहते हैं और कल–कारखानों में काम करते हैं। इनका मुख्य भोजन मक्का, बाजरा एवं कुछ दालों का होता है। जंगली अनाज में कोदरा, सामा का आहार प्रधान है। जीविको पार्जन के बाद जो कुछ अतिरिक्त उसके पास बचता था। उसे बेचकर वह दिन प्रतिदिन की आवश्यकता पूरी करता था। उसकी यह जीविकापार्जन अर्थव्यवस्था थी। आर्थिक दृष्टि से इस अवस्था में आकर भीलों में पहली बार वर्ग बने। एक वर्ग वह था जिसने मैदानी गाँवों में रहना प्रारंभ कर दिया। भीलों के इस वर्ग को ग्रामीण भील कहते हैं। दूसरा वर्ग भीलों का था जिसने खेती को एक व्यवसाय के रूप में अपना लिया। इसे खेतीहार भील कहलाता है। तीसरे वर्ग में वे भील है जो पहाड़ों, जंगलों में रहते थे। और जिनका मैदान की सभ्यता से बहुत कम संपर्क था, इस वर्ग को पहाड़ के भील कहते हैं।

गुजरात के लगे सीमावर्ती गाँवों में डामोर आदिवासी खेती करते आये हैं। इनके पास कृषि योग्य भूमि बहुत कम है। एक परिवार के पास तीन–चार बीघा जमीन से अधिक नहीं। यदि वर्षा हुई तो वर्ष में दो फसले ले लेते हैं। खरीफ फसल में ये आदिवासी दाले और मक्का पैदा करते हैं। कहीं–कहीं मूँगफली की फसल भी लेते हैं। रब्बी की फसल में मुख्यतः चने लिये जाते हैं। आज आदिवासी जमीन को लेकर बड़ी समस्या में है। उनके कब्जे में वैसे ही जमीन थोड़ी थी वह भी उनके हाथ से निकल रही है। सरकार ने भूमि संरक्षण का कानून

बनाया है फिर भी आदिवासियों के हाथ जमीन बेच नकद या बेनामी बिक्री द्वारा आदिवासी जमीन से बेदखल हो रहा है। इनमें अपेक्षित रूप से संपन्न आदिवासी थोड़े दामों में गरीब आदिवासी की भूमि को गिरवी रखलेता है या खरीद लेता है। खुले बाजार में जमीन के जो दाम मिलने चाहिए गरीब आदिवासी को नहीं मिल पाते। आम किसानों की तरह आदिवासियों की जमीन का भी बराबर दर पीढ़ी–दर–पीढ़ी विभाजन हो रहा है। आदिवासियों में मुख्य व्यवसाय आज कृषि नहीं रहा उसका दर्जा सहायक धंधों में आ गया है। आदिवासियों ने जीवन यापन के लिए कृषि को प्राथमिक व्यवसाय की तरह अपनाते हैं। आज कृषि प्रधान आदिवासियों का प्रतिशत बहुत कम होता जा रहा है।

मानसून की अनिश्चितता के परिणाम स्वरूप भूमि की जोत में निरंतर कमी के कारण आदिवासियों की अर्थ व्यवस्था में अनेकता आयी है। आरक्षण कोटे से किसी न किसी व्यवसाय में लग गए हैं। कृषि मजदूर या सड़क तथा भवन निर्माण में दिहाड़ी पद पर काम करते हैं। कुछ आदिवासी साइकिल की मरम्मत, छोटी मोटी चाय की दुकान, ईट भट्टा, रेशम के कीड़े पालने का व्यवसाय आदि करने लगे हैं। कुछ आदिवासी औद्योगिक क्षेत्रों में जाकर कारखानों, होटलों, घरों में मजदूरी का काम करने लगे हैं। जैसे सूरत, इंदौर, अहमदाबाद, नडियाद आदि औद्योगिक क्षेत्र में काम करते हैं। आदिवासी समुदाय में सहकारिता की भावना कई अवसरों पर देखने को मिलती है। जब कृषक भील को खेत की कटाई, बुवाई करनी होती है वह श्रमदान के लिए गाँव के अन्य परिवारों को आमंत्रित करता है। आमंत्रित परिवार मिलकर खेती की कटाई, बुवाई कर मेजमान द्वारा दिया एक समय का भोजन कर संतुष्ट अनुभव करते हैं। जंगलों में रहते हुए इनके पास जड़ी–बूटियों के उपयोग तथा विभिन्न प्रकार की व्याधियों के उपचार की गहरी जानकारी है।

आदिवासी शहरों में प्रवासी बन जाना आज के संदर्भ में कृषि नाममात्र की है। आदिवासियों के लिए कृषि काफी थी लेकिन आज इनके हाथ से निकल रही है। आदिवासियों की बहुत बड़ी समस्या उनका गैर–कृषि व्यवसायों में प्रवेश करना है। निष्कर्षतः स्पष्ट है कि आदिवासी साहित्य में घिनौनी राजनीति, दलबंदी, जातिवाद, ईर्ष्या–द्वेष, भ्रष्टाचार, घुसखोरी, जड़ता, अंधविश्वास, स्वार्थ और गाँवों की टूटन तथा आपसी रिश्तों का खोखलापन ही है, बल्कि स्वतंत्रता के बाद आदिवासियों में एक नया आत्मविश्वास, संघर्षशीलता, अपने अधिकारों के प्रति सजगता, अंधविश्वास, अन्याय, अत्याचार आदि का चित्रण हुआ है।

आदिवासी मूलतः वनों में रहने वाले एवं वनों पर ही अपनी उपजीविका चलाते हैं। आदिवासियों में अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता की अधिनता दिखाई देती है। आदिवासी हमेशा नशा करते हुए दिखाई देते हैं। जमींदार, पुलिस, समाज एवं शासन के द्वारा इनका शोषण होता है। आदिवासियों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषतः सामूहिक रूप से कार्य करना है। यह आदिवासी पहाड़ो, वनों, जंगलों में निवास करते हैं। वन ही इनकी उपजीविका का प्रधान साधन है। भारत में संथाल, थारू, नागा, करनट, नट, बंजारा, चेंचु, बँगा, खारिया, भुइया, गोंड, हो, भील, भोकसा आदि प्रमुख आदिवासी जन जातियाँ है। झारखंड, मध्यप्रदेश, बिहार, मिझोराम, अल्मोड़ा, बस्तर, असम, नागालँड, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल और पूर्वी महाराष्ट्र आदि विभिन्न अँचलों में आदिवासी जनजातियाँ निवास करती है। आदिवासी विशिष्ट भू–प्रदेश, जंगल तथा पर्वतीय क्षेत्र में वास्तव करते हैं।

संदर्भ सूची :-

1. संजीव – धार, पृ. 33
2. वही, पृ. 127
3. समकालीन हिंदी कहानी – स्त्री पुरूष संबंध – सुमंत कौर, पृ. 107
4. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.80
5. हिंदी में आदिवासी जीवन में केंद्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन – डॉ. बी.के. कलासवा, पृ. 102
6. जंगल के आसपास – राकेश वत्स, पृ. 160
7. सोनामाटी – विवेकीराय, पृ. 298
8. अग्निबीज – मार्कंडेय, पृ. 131
9. महर ठाकुरों का गाँव – बटरोही, पृ. 8
10. विवेकीराय – सोनामाटी, पृ. 86
11. शैलूष – शिवप्रसाद सिंह, पृ. 138
12. वही, पृ. 258
13. अपने लोग – रामनाथ यादव, पु. 110 – 111
14. विकल्प – रामदेव शुक्ल, पृ. 09
15. पिंजरे का पन्ना – मणि मधुकर, पृ. 66
16. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पु. 239
17. कब तक पुकारूँ – रांगेय राघव, पृ. 99
18. कथाकार रांगेय राघव – डॉ. कमलाकर गंगावने, पृ. 227
19. आँचलिक : सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ – डॉ. विमल शंकर नागर, पृ. 204
20. महर ठाकुरों का गाँव – बटरोही, पृ. 11–12
21. विकल्प – रामदेव शुक्ल, पृ. 9
22. वनतरी – सुरेशचंद्र श्रीवास्तव, पृ. 41
23. सोनामाटी – विवेकीराय, पृ. 437
24. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 22
25. युद्धरत आम आदमी – सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 9, जनवरी, 2014.
26. वही, पृ. 9
27. पहाड़ हिलने लगा, वाहरू सोनवणे, पृ. 19
28. आजादी के बाद आदिवासी ने क्या हासिल किया, स्मारिका, पृ. 72
29. आदिवासी साहित्य विमर्श – सं. गंगा सहाय मीणा, पृ. 143
30. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी – सं. रमणिका गुप्ता
31. नन्हें सपनों का सुख – सरिता बड़ाइक, संस्करण, 2013
32. वही, सं. 2013
33. पूर्वोत्तर : आदिवासी सृजन स्वर – सं.स्मणिका गुप्ता
34. वही
35. अपने घर की तलाश में – निर्मला पुतुल सं. 2005
36. अस्तित्व के लिए लड़ते हुए – डॉ. रामदयाल मुण्डा, अरावली उद्घोष, अंक – 93, पृ. 10
37. दस्तावेज – 92, जुलाई – सितंबर, 2001, पृ. 11
38. आलोचना – जुलाई – सितंबर, 2001, पृ. 37
39. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ. 118
40. मेरी बस्तर की कहानियाँ – मेहरून्निसा परवेज, पृ. 31
41. वही, पृ. 30–31

मो.नं. 9657240554, E.ID- drpanditbanne@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 121-125

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी के प्रमुख समकालीन कवियों से अरूण कमल के काव्य का किसान विमर्श में तुलनात्मक अध्ययन

-परमानंद पाटीदार

सहायक प्राध्यापक (हिंदी), शा. महाविद्यालय कन्नौद, जिला देवास (म.प्र.)

शोध संक्षेप :-

मनुष्य के विचारों, संवेदनाओं तथा मन की ईच्छाओं की अभिव्यक्ति कर समाज के सामने लाने का कार्य कविता आसानी से करती है। मनुष्यता के सम्पूर्ण गुणों का विकास करना तथा संरक्षण कविता के माध्यम से संभव है। वर्तमान काल में मनुष्य कठिन और संकीर्ण होता जा रहा है। मानव के स्वभाव को जानने व उसे प्रकट करने की कला भी कविता में निहित है। समकालीन का अर्थ है एक ही समय का समसामयिक। समकालीन उस अवधि के बारे में बताता है जो आज के लिए एकदम प्रासंगिक है। समकालीन कविता किसान आम आदमी के सुख–दुख, मनोभावों व सामाजिक उथल–पुथल को आम जन तक सभी के सामने प्रकट किया है। जन चेतना को विकसित करना व उसके रूप को आम आदमी तक ले जाना अच्छी कविता की पहचान है। कविता समय चक्र परिवर्तन के साथ–साथ बदलते सोच के अनुसार अपने नामस्वरूप बदलती रही है।

समकालीन कविता का सामाजिक–राजनीतिक उद्देश्य है कि वह समाज को वास्तविकता व सत्यता का बोध कराएं। समकालीन कवि ने पूर्ण ईमानदारी के साथ सर्वहारा शोषित वर्ग की तथ्यपरक बातों को समाज के सामने लाने का कार्य किया है। किसान व शोषित वर्ग की स्थिति के लिए जिम्मेदारों तथा राजनीतिक स्थिति से भीतर ही भीतर अत्यन्त दुःखी है और इसीलिए समाज और राजनीति के रूप को अभिव्यक्ति देकर वह इस रोष को और समसामयिक सत्य को सबके सामने लाना ही कवि का उद्देश्य है।

प्रस्तावना :-

समकालीन कविता में उच्च व निम्न वर्ग की परस्पर शोषित व शोषक के प्रति सर्वहारा की भावना को व्यक्त किया गया है। श्रम जीवी जन–समुदाय की कठोर संघर्ष से भरी हुई जिंदगी के दुःख और सुख को समाज के सामने लाने में कवि की अनुभूति तथा संवेदना को प्रकट किया है। सर्वहारा वर्ग समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा राजनीति में समाज के सबसे निम्न वाले वर्ग को कहा जाता है, जो हमेशा शारीरिक परिश्रम से जीवनयापन करते है। कल–कारखानों में अकसर कार्य करने वाले मजदूरों को सर्वहारा कहा जाता था किंतु कभी–कभी खेती तथा अन्य निर्धन मेहनत करने वाले व्यक्तियों को भी इसमें सम्मिलित किया जाता है। कई कवियों ने सर्वहारा वर्ग के प्रति संवेदनशीलता प्रकट की है। वास्तव में समाज को वर्गों में विभाजित किया जाता है। किसान व यह सीधा–सादा, सादगी से युक्त तथा भोला–भाला वर्ग है। उस वर्ग के प्रति कवियों के मन में संवेदनशीलता है।

समकालीन कविता में किसान व सर्वहारा सौंदर्य बोध की अभिव्यक्ति हुई है। कवि अरूण कमल के काव्यों में तथा प्रमुख समकालीन कवियों के काव्यों में निम्न प्रकार से समानता व सर्वहारा सौंदर्य बोध प्रदर्शित होता है। अरूण कमल ने जहाँ मजदूरों के त्याग और बलिदान को प्रकट किया है वहीं मंगलेश डबराल ने सर्वहारा की पीड़ा को, भगवत रावत ने मानव के सर्वश्रेष्ठ होने पर, ज्ञानेंद्रपति ने मानव के पराक्रम पर, अशोक वाजपेयी ने गरीब व बेरोजगारी के दंश पर, चंद्रकांत देवताले ने शोषितों के प्रति सहानुभूति, वीरेन डंगवाल ने शहरों में संघर्षरत मानव को, नरेश मेहता आदि कवियों ने सर्वहारा सौंदर्य बोध को प्रकट करने की कोशिश की है जो कि अरूण कमल के काव्यों में तुलनात्मक रूप से समानता को प्रकट करती है।

कवि अरूण कमल ने जब व्यक्ति और समाजमूलक चेतना पर अपने विचारों को कविता के द्वारा प्रकट किया तो उन्हीं के अन्य समकालीन कवि भगवत रावत, चंद्रकांत देवताले, ऋतुराज, ज्ञानेंद्रपति, मंगलेश डबराल, कैलाश वाजपेयी, उदय प्रकाश, विजय बहादुर सिंह, अशाोक वाजपेयी, नरेश सक्सेना, वीरेन डंगवाल आदि कवियों ने तुलनात्मक रूप से व्यक्ति एवं समाजमूलक चेतना विषय पर भी अपनी कविता की है।

किसान विमर्श में तुलनात्मक अध्ययन :-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के साथ मनुष्य का रिश्ता सदैव के लिए बना रहता है। वास्तव में समाज की कल्पना व्यक्ति के अभाव में नहीं की जा सकती है अर्थात् समाज से अलग जीवन मनुष्य के लिए असंभव है। समाज के सदस्य होने के कारण, मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन का प्रभाव समाज का अविछिन्न अंग होता है। व्यक्ति के विचारों का प्रत्यक्ष प्रभाव सामूहिक रूप से सभी पर पड़ता है। वैसे ही कवि भी समाज में प्रचलित अच्छी या बुरी रीति रिवाजों, परम्पराओं का असर मनुष्य के जीवन में किसी न किसी तरह होता है। समाज के गरीब परिवार को अन्न प्राप्त नहीं होता है। गोदान में भरा हुआ अन्न सड़ जाता है किंतु गरीब के पेट में नहीं जा पाता है। गोदामों में भरे हुए धुन खाये अनाज को चुहे खा रहे हैं परंतु गरीबों को नहीं मिल पाता है। अन्न का अपमान न होकर समय पर गरीब व भूखें लोगों तक समय पर अन्न पहुचने की आवश्यकता है :-

''भरे फट रहे हैं अनाज से
लम्बोदर गोदाम आकण्ठ भरे हैं
कि डकारना भी सम्भव नहीं उनके लिए
जगह की कमी पड़ गई है।''[1]

कवि चंद्रकान्त देवताले ने ''जो नहीं होते धरती पर'' पर कविता के माध्यम से किसान के परिश्रम तथा सत्यनिष्ठा के साथ हक हलाल की कमाई के साथ पुरी शक्ति व मेहनत के साथ किए गये कार्य का वर्णन किया है। वास्तव में किसान धरती पर न होते तो अन्न कहां से उग पाता। जिस अन्न को खाने से ऊर्जा मिलती है व मनुष्य के शरीर का विकास होता वह किस प्रकार से होता। हमारे पूर्वजों ने खेती–बाड़ी करके, मेहनत करके अन्न का भरपुर उत्पादन न किया होता तो देश व मनुष्य का विकास कैसे हो पाता :-

''जो नहीं होते धरती पर
अन्न उगाने–पत्थर तोड़ने वाले अपने
तो मेरी क्या बिसात जो मैं बन जाता आदमी
आखेट और खेती–बाड़ी करते पुरखों ने

जो आग के भीतर नहीं पकाई होती अपनी जुबान
तो वे नहीं दे पाते चीज़ों को एक के बाद एक
उनकी पहचान।''[2]

कवि नरेश सक्सेना ने समाज की आर्थिक स्थिति में किसान तथा गरीबों की स्थिति के कारण भरण–पोषण की समस्या को अभिव्यक्त किया है। किसान को सही दाम नहीं मिलने पर फसलों को ही आग लगाना पड़ता है। माताएँ आर्थिक स्थिति के कारण अपने बच्चों का पालन–पोषण करने में असमर्थ है इसलिए बच्चों को गोद में लेकर कुओं में कूद जाती है, वास्तव में आर्थिक स्थिति के कारण मनुष्य को जीने में कितनी मुश्किल होती है, कितना संघर्ष करना पड़ता है :–

''कोई कुछ बचा नहीं पा रहा
किसान बचा नहीं पा रहा अन्न को
अपने हाथों से फसलों को आग लगाए दे रहा है
माताएँ बचा नहीं पा रहीं बच्चे
उन्हें गोद में ले
कुओं में छलाँगे लगा रही हैं।''[3]

कवि अरूण कमल ने प्रकृति के सैकड़ों रंगीन प्रतीकों को उद्‌घाटित करते हुए कहते है कि प्रकृति में पीले रंग के खेत, हरे–हरे पेड़, नीला आकाष, सफेद बगुले प्रकृति के विभिन्न रंगों के माध्यम से प्रकृति के विभिन्न रंगों के माध्यम से जीवन में आनंद को प्रकट किया है। कवि की 'अगहन' कविता में –

''खेत पीले
हरा पेड़
नीला आकाश
बगुले सफेद।''[4]

तनाव व चिन्ता के कारण आम आदमी का जीवन प्रभावित होता है। चिंता जीवन में विष का कार्य करती है। कवि अरूण कमल ने अवसाद, चिन्ता और विनाश के दौर में सृजन की नई उम्मीद दी है। अवसाद और चिन्ता के बीच मानव किस प्रकार से सृजनात्मकता के साथ विनाश से सर्जन की ओर जाता है। किसी के हाथ की हड्‌डी टूट जाए तो वह गिलास को भी उठा नहीं पाता उसी प्रकार कवि अरूण कमल कहते है कि विनाश के दौर में क्या मैं भी बेकाम हो जाऊँगा। जिस प्रकार मिट्‌टी की सुराही फूटने के बाद भी काम में लाई जा सकती है वैसी भी में भी काम आ सकता हूँ। अन्न ऊगा नहीं सकूँ तो क्या सूखते धान के पास बैठ कर कौआ ही भगाउँगा। जिस प्रकार पेड़ के कटने के बाद जो नीचे का भाग शेष रहता है उससे कम–से कम बैल या गाय को तो बाँधा ही जा सकता है :–

''फूटने के बाद भी मिट्‌टी की सुराही
जाड़े में बोरसी बन जाती है
वैसे ही मैं भी तो काम आ सकता हूँ
अन्न उगा न सकूँ तो क्या

सूखते धान के पास बैठ कौआ तो हाँकूँगा
पेड़ कटने पर बचा हुआ थम्भ
किसी थके बैल या गाभिन गाय का
खूँटा बन जायेगा।''[5]

कवि ज्ञानेंद्रपति ने 'बीज–व्यथा' नामक कविता में वर्तमान किसान की व्यथा को व्यक्त किया है। समकालीन समाज में कई लोगों को कई प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो रही है। इसका कारण आयातित रूप से तकनीक भी है। युवान लोगों द्वारा मोबाईल का अत्यधिक उपयोग भी मानसिक थकावट का कारण है। बच्चे, युवा व बूढ़े सभी को तकनीक ने जकड़ा रखा है तथा दूर करना भी मुष्किल है। रासायनिक खाद व कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग से भी कई बीमारियाँ जन्म ले रही है। अन्न व जल प्रदूषित हो चुके है जिससे समाज में अवसाद व चिंता तीव्रता के साथ बढ़ रही है :–

''रासायनिक खादों और कीटनाशकों के जहरीले संयन्त्रों की
आयातित तकनीक आती है पीछे–पीछे
तुम्हारा घर उजाड़कर अपना घर भरने वाली आयातित तकनीक
यहाँ के अन्न–जल में ज़हर भरने वाली।''[6]

कवि नरेश सक्सेना हल, बैल, खेत, गैल, तोते, ताल, कजरी, नदी आदि का सामंजस्य विरला है। कवि ने किसान की मेहनत का परिचय दिया है :–

''अब नहीं मेरे लिए
हल नहीं बैल नहीं
खेतों की गैल नहीं
एक हरी बूँद नहीं
तोते नहीं, ताल नहीं, नदी नहीं, आर्द्रा नक्षत्र नहीं।
कजरी मल्हार नहीं मेरे लिए।[7]

उपसंहार :–

समकालीन कवि तथा अरूण कमल की कविताएँ किसान व आम आदमी के अभावों, तकलीफों और समस्याओं से गहरा सरोकार रखती है। इन्होंने समकालीन समाज की विडम्बनात्मक स्थितियों का केवल विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। इनकी कविताएँ हमारे मनोमस्तिष्क तथा हमारी संवेदना को गहराई तक छूती है, हमारे मन को झकझोरती है, उसमें हलचल पैदा करती है और हमें आंदोलित करती है। इन कवि की कविताएँ इन अमानवीय स्थितियों की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित कर सोचने–विचार ने और कुछ सार्थक पहल करने के लिए प्रेरित करती है। कवि की संवेदनाओं तथा मनोमस्तिष्क के विचारों को पंक्तियों में उकेरना व मानव समाज के सम्मुख आदर्श रूप देते हुए समाज को सही दिशा व मार्गदर्शन देते हुए आगे उन्नति के पथ–पर अग्रसर करना अत्यंत आवश्यक है।

कवि अरूण कमल के प्रमुख समकालीन कवियों के विचारों से विभिन्न संदर्भों में तुलनात्मक रूप से अध्ययन करने पर कई समानताओं का प्रदर्शन होता है जिसमें सामाजिक संदर्भ के क्षेत्र समाजोत्थान हेतु कृत कार्यों की

अभिव्यक्ति है। समाज के विभिन्न क्रियाकलापों को कवि तथा प्रमुख समकालीन कवियों ने विभिन्न दृष्टिकोणों के साथ, समानता के साथ विविध पक्षों को समाज के सम्मुख लाने व उनसे शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् गुण दोषों के आधार पर समाज में हुए परिवर्तनों की ओर ध्यान दिलाने की कोशिश की है जिसके कारण व्यक्ति व समाज के सम्पूर्ण घटकों को लाभ प्राप्त हो सके। वास्तव में सभी कवियों का उद्देश्य भी सामाजिक क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों की व्याख्या करना है तथा उसमें सुधार के साथ समाज को नई दिशा की ओर अग्रसर करना है। मजदूरों के जीवन यापन व संघर्ष के दिनों को प्रकट करती समकालीन कविता व अरूण कमल की कविताएं यथोचित मात्रा में न्याय कर पाती है। समाज की मुख्यधारा से विलगित मानव व मजदूरों की व्यथा ही निराली है। शोषित, अत्याचार के भार से दबे कुचले किसान की स्थिति को व्याख्यातित करती कविता ने किसान के दर्द, निराशा व नकारात्मकता के भावों को कम करने की कोशिश की है तथा समाज के सम्मुख मजदूरों की वेदना को प्रकट करके संदेश देना चाहा है कि मजदूरों को भी बराबरी का हक मिलना चाहिए आखिरकार वे भी मानव है, उनकी भी ईच्छाएँ, सपने, भावना व उन्नति के पथ को प्राप्त करने की चाह है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ज्ञानेंद्रपति – संशयात्मा, अखबार का टुकड़ा, पृष्ठ 202
2. चंद्रकांत देवताले – प्रतिनिधि कविताएँ, जो नहीं होते धरती पर, पृष्ठ 17
3. नरेश सक्सेना – कवि ने कहा, पानी क्या कर रहा है, पृष्ठ 50
4. अरूण कमल – नये इलाके में, अगहन, पृष्ठ 42
5. अरूण कमल – नये इलाके में, अगहन, पृष्ठ 42
6. ज्ञानेंद्रपति – संशयात्मा, बीज – व्यथा, पृष्ठ 170
7. नरेश सक्सेना – कवि ने कहा, पृष्ठ 05

8889119008

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 126-130
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी दलित कविताओं में दलित चेतना

–डॉ. पारूल सिंह

प्रभारी आचार्या, श्री कृष्ण प्रणामी, आर्ट्स कॉलेज, दाहोद।

कविताओं का मनुष्य के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। नन्हा सा बच्चा माँ की लोरी सुनकर गहरी नींद में सो जाता है वैसे ही जीवन की वृद्धावस्था तक कविता उसे प्रभावित करती है। किन्तु यहाँ बात कुछ अलग है –

''साहित्य का काम लोरी सुनाकर जनता को सुलाना नहीं है। साहित्य वह है जो उसकी रोजमर्रा की जिन्दगी में घट रही घटनाओं को उसके सम्मुख रखे, उन पर अपनी राय बनाने में उसकी मदद करे और उनके कारणों को खोज कर उन्हें बेनकाब भी करे। जिससे जनता लामबन्द होकर संघर्ष करने को तत्पर हो सके। कुल मिलाकर वह साहित्य ही है जो आम आदमी के जीवन में परिवर्तन लाने की प्रेरणा दे सकता है, उसके सुख–दुःख में उसके साथ खड़ा रहता है।''[1]

समाज को बदलने की क्षमता साहित्य में होती है दलितों ने भी अपनी इसी क्षमता को अपना हथियार बनाकर समाज में नए मूल्य स्थापित करने का प्रयास किया, जिसकी तीव्र रचनात्मक अभिव्यक्ति दलित साहित्य की प्रमुख विधा कविता में देखने को मिलती है। दलित कविता में सम्मानपूर्वक जीवन जीने और अपने मानवीय अधिकारों का पक्ष प्रस्तुत किया गया है। यह कविता केवल कविता न होकर हज़ारों का मार्ग प्रशस्त करने का साधन है। कविता की सार्थकता को स्वीकार करते हुए ओम प्रकाश वाल्मीकि कहते हैं :–

''जीवन संघर्ष में आदमी का सहारा बनकर जो हौसला दे, वही तो कविता है। कविता कला से ज्यादा जीवन की अदम्य लालसा, गतिशीलता की संवाहक है।''[2]

दलित रचनाकारों ने कविता के माध्यम से दलितों के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक अधिकारों से वंचित रखे जाने की सामाजिक व्यवस्था के समक्ष प्रश्न उठाए हैं। हिन्दी दलित कविता इसी व्यवस्था के प्रति दलित समाज की वेदना को प्रकट करने के साथ–साथ विद्रोह प्रकट करती है। अस्पृश्यता, चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक, विसंगतियों का यथार्थ चित्रण दलित कविताओं में किया गया है।

दलित कविताओं में दलित समाज की पीड़ा, निराशा, संघर्ष, आक्रोश और विद्रोह आदि के साथ घृणा के स्थान पर प्रेम, समता, बन्धुता के साथ मानवीय मूल्यों का संचार करना ही कविता का मुख्य लक्ष्य है।

सुशीला टाकभौरे अपनी कविता 'हमारे हिस्से का सूरज' में यह बताती हैं कि हमारे हिस्से का सूरज कहाँ छिपा है और उस क्रान्ति सूर्य के माध्यम से दलितों को जागृत करने का प्रयास करती है तथा आगे भी कहती हैं कि दलित समुदाय अपनी स्थिति को समझे और डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा को अपने भविष्य के विषय हेतु समझने का प्रयास करे–

''बरसों से
उसके पैरों में वही है
दासता की बेड़ियाँ
हाथों में वही है
नरक सफाई के औज़ार
सिर पर भी वही है
त्याज्य अपवित्रता का बोझ
कोई परिवर्तन नहीं।''[3]

पूनम तुषामड अपने काव्य संग्रह 'माँ मुझे मत दो' में दलित कन्या अपने परंपरागत कार्य से मुक्ति चाहती है। दलित चेतना को झकझोरने वाली इस कविता में दलितों के सदियों से चले आ रहे शोषण का प्रतिकार किया गया है। दलितों द्वारा किये जाने वाले मैला ढोने, झाड़ू लगाने, जूते सिलने और समाज की गंदगी साफ करने के कार्यों का उल्लेख है, साथ ही पीढ़ी–दर–पीढ़ी इसी कार्य को करते हुए वे शिक्षा से वंचित रखे गए। कविता में दलित पूनम माँ से मिली विरासत को अस्वीकार करते हुए कहती है–

''झाड़ू तलसी और
कूड़े की विरासत
माँ मुझे मत दो।
मुझको पढ़ना, आगे बढ़ना
और सबको है जगाना
माँग कर खाने की आदत
और नसीहत
माँ मुझे मत दो।''[4]

आज़ादी के बाद दलितों की स्थिति में बदलाव जरुर हुआ है किन्तु उनकी स्थिति में सुधार आज भी होना शेष है। डॉ. लक्ष्मी नारायण सुधाकर अपनी कविता 'वामन फिर आ रहा है' में वर्षों के इसी इंतजार का उल्लेख करते हुए कवि कहते हैं–

''बीत गई वह साल, घाव पर दिल के अभी हरे हैं।
कैसे स्वागत करुँ नई का, नैनन नीर भरे हैं।
बेकारी–भूखमरी–जहालत, कब तक और चलगी ?
नये साल में क्या सबको अब रोटी–दाल मिलेगी ?''

स्वतंत्रता वस्तुतः विचार से अधिक एक अनुभव है, जो उसे ही हो सकता है जो स्वतंत्र हो। हमारे समाज में आज भी ऐसे अनेक–अनेक दूषण हैं जिनके कारण दलितों की स्थिति, पशुवत बनी हुई है। कुसुम वियोगी अपनी कविता 'हरिजन' में समाज की इस व्यवस्था पर आक्रोश प्रकट करते हुए कहते हैं–

''कुत्ते, बिल्ली अथवा कोई जानवर,
मन्दिर, कुओं, पोखर एवं तालाबों में,

पानी पी सकते हैं।
परन्तु ! हरिजन, आज भी।
उस पर
चढ़ नहीं सकते।''[6]

दलितों की स्थिति में सुधार तभी हो सकता है जब सामाजिक परिवर्तन के लिए समाज द्वारा निरंतर प्रयास किया जाए। अधिकार यदि प्राप्त करने हैं तो उसकी प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना होगा। समाज में जब तक चेतना का संचार नहीं होगा तब तक दलितों को अधिकार नहीं मिल पाएँगे। जयप्रकाश कर्दम की कविताऐं दलितों को नई दिशा एवं मज़बूती प्रदान करती हैं साथ ही उनकी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति भी प्रदान करती है–

''मेरे शब्दों
केवल शब्द मत बने रहो,
अपने अर्थों में आ जाओ,
तीर तलवार में बदल जाओ
धरती आसमान को हिला दो
अन्याय की दुनिया में
आग लगा दो
क्रान्ति का बिगुल बजा दो।''[7]

आज़ादी के 74 साल बाद भी आज भारतीय गाँव की स्थिति में सुधार होना शेष है। सूरजपाल चौहान की कविताओं में ग्रामीण संस्कारों की झलक व ऐतिहासिक विसंगतियों के प्रति आक्रोश दिखाई देता है। ग्रामीणों की यथार्थ स्थिति को उज़ागर करते हुए कवि कहते हैं–

''मेरा गाँव कैसा गाँव ?
न कहीं ठौर न कहीं ठांव
कच्ची मड़ैया, टूटी खटिया
घूरे से सटकर
बिना फूंस का मेरा छापर
मेरे घर न पेड़ की छांव
मेरा गाँव कैसा गाँव ?
न कहीं ठौर न कहीं ठांव।''[8]

दलितों के जीवन में सुधार लाने के लिए अति आवश्यक है उनके प्रति करुणा, दया या सहानुभूति नहीं बल्कि वर्णजाति व्यवस्था को खत्म किया जाए।

दर्द के साथ दलित का रिश्ता जन्म से है। जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता, उपेक्षा आदि नकारात्मक व्यवहार दलित बालक की नींव में डाला जाता है। दलितों को मिलने वाली सदियों की उपेक्षा से वे पीड़ित हैं जिसे वे निरंतर व्यथित और विकल बन जाते हैं। दलित कविता जाति के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव

का तीव्र प्रतिकार करती है। जाति का विरोध दलित कविता का प्रमुख स्वर है। दलित कविता का नाता दर्द से निकलने वाली अनुभूति से है। शोषित–पीड़ित व्यक्ति के दुख–दर्द और संघर्ष को बनाए रखने वाली वर्ण–जाति–व्यवस्था को ध्वस्त करने हेतु उस पर कठोर प्रहार करने का कार्य दलित कविता ने किया है। दलित कविता की इसी शक्ति को डॉ. रमेशचन्द्र चतुर्वेदी ने अभिव्यक्त करते हुए कहा है–

''दलित कविता में समाज की वर्ण व्यवस्था को
थर्रा देने वाला कंपन है, शोषण की बर्फ को
पिघलाकर नदी बहा देने वाली गर्मी है, और
वर्ण और वर्ग की नींव को ध्वस्त कर एक
समता मूलक समाज की एक नई इमारत
खड़ी करने वाली वास्तुकला है।''[9]

मनुस्मृति वर्ण व्यवस्था को पुख्ता आधार देने वाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। मनु–स्मृति का विरोध इसीलिए आवश्यक है क्योंकि दलितों को सदियों तक इसी का आधार बनाकर यातनामय जीवन जीने के लिए विवश किया गया। स्वामी अछूता नंद ने कविता के माध्यम से मनु–स्मृति की तीखी आलोचना की है, यथाः

''निशिदिन मनुस्मृति ये हमको जला रही है।
ऊपर न उठने देती, नीचे गिरा रही है।
ब्राह्मण व क्षत्रियों को सबको बनाया अफसर।
हमको पुराने उतरन, पहनों बता रही है।
दौलत कभी न जोड़े, गर हो तो छीन लें वह।
फिर नीच कह हमारा दिल भी दुखा रही है।''[10]

दलित कवियों ने पूरी इमानदारी से दलित समाज की व्यथा–वेदना, इच्छा–आकांक्षा, खीझ और विवशता भरी छटपटाहट को चित्रित किया है। गाँव हो या शहर दलितों के साथ अस्पृश्यता पूर्ण व्यवहार आज भी जारी है। दलितों के शोषकों को बेनकाब करने का कार्य दलित कविता में बखूबी किया गया है।

दलित कविता में विद्रोह के स्वर भी देखे जा सकते हैं–

''अब दलित भी धीरे–धीरे विद्रोही हो रहे हैं, जिसके संकेत कुछ दलित रचनाकारों की कविताओं में मिलने भी लगे हैं। वे इस सम्पूर्ण दुरावस्था का जिम्मेदार व्यवस्था को मानते हैं क्योंकि सामन्ती युग में तो दलित शोषण और अत्याचार के शिकार थे ही, लेकिन आज भी उन पर अत्याचारों में कमी नहीं आई है। उनके मामले में कानून अंधा तो हो जाता है और पुलिस तंत्र नकारा। नेता दूसरे राजनीतिक दल को बदनाम करने के लिए इस स्थिति को राजनीतिक हथियार के रुप में इस्तेमाल करते हैं। इन सभी के लिए दलित व्यक्ति नहीं, वोट होकर रह गया है।''[11]

मानवता ही दलित कविता का मूलस्वर है। मनुष्यता के अभाव में किसी में देश या समाज की प्रगति संभव नहीं है। मानवता ही सभी प्रकार के सामाजिक दूषणों को रोकने का एक मात्र हथियार है। दलितों के वेदनामय जीवन के अंधकार को मनुष्यता के माध्यम से ही बदला जा सकता है। भूतकाल हमारे वश में नहीं है किन्तु वर्तमान और भविष्य को यदि हमें सुनहरा बनाना है तो उस सुनहरे भविष्य में जाति प्रथा, भेदभाव, अस्पृश्यता

आदि दूषणों से मुक्त भविष्य की कल्पना को दलित कवियों की कविताएँ जीवंत बना सकती हैं। दलित कवियों की ऐसी आशावादी कविताएँ ही समाज में चेतना का संचार करके समाज में परिवर्तन ला सकती हैं।

संदर्भ सूची :-

1. डॉ. एन सिंह 'मेरी ओर से', प्रीतनिधि कविताएँ, नई दिल्ली, ईशाज्ञानदीप पृ. सं. 25
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि– दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रा. लि, नई दिल्ली–2009 पृ. सं. 35
3. डॉ. सुशीला टाकभौरे– 'हमारे हिस्से का सूरज' पृ. सं. 12
4. पूनम तुषामड– 'माँ मुझे मत दो (सफाई कर्मचारी)' आन्दोलन प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. सं. 43
5. लक्ष्मीनारायण सुधाकर–'वामन फिर आ रहा है' पृ. सं. 20
6. कुसुम वियोगी– 'व्यवस्था के विषधर' (हरिजन)' अपना प्रकाशन दिल्ली 1995 पृ. सं. 10
7. जयप्रकाश कर्दम 'तिनका तिनका आग', पृ. सं. 17
8. सूरजपाल चौहान– 'क्यों विश्वास करुँ' पृ. सं. 22
9. डॉ रमेशचन्द्र चतुर्वेदी, बीसवीं सदी की हिन्दी दलित कविता, प्राक्कथन
10. स्वामी अछूतानंद, 'हरिहर' और हिन्दी नवजागरण, कँवल भारती, पृ. सं. 225
11. डॉ. एन. सिंह 'हिन्दी काव्य में दलित चेतना' दर्द के दस्तावेज अलीगढ़, आनंद साहित्य सदन पृ. सं. 14

मों नं. 9428673109

Email - parulsndt@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 131-134
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कविता-विकास-मानवाधिकार

-डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत
एसोसियट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कुसाट, कोच्चिन, केरल–682022

विनोद तिवारी ने 'पक्षधर' पत्रिका के संपादकीय में एक बार लिखा है कि "आज बाज़ारवाद के पसारे में सार्थकता की कोई 'रिअल इमेज' अब नहीं बची है। हां, 'इमेज रियालिटी' के छद्म के सहारे, व्यक्ति, प्रतिष्ठान और राष्ट्र सबमें 'सफलता' का तर्क हावी है, वह भी संघर्ष की ईमानदारी के धरातल पर नहीं, चालाकी, बेईमानियों की तिकड़मी संजालों के सहारे।"[1] यह तिकड़मी चालाकी का रवैया पूंजीवाद के खून में समा हुआ है। पूंजीवाद अपने मानव विरोधी षड़यंत्र से साधारण जनता को बुनियादी अधिकारों से वंचित करके विस्थापित करता है। आज की सच्चाई यह है कि एक्सप्रेस हाईवे, सेज, औद्योगिक परियोजना, बांध, आदि के लिए भूमि जब्त कर ली जाती है। 'सिंगुर', 'नंदीग्राम', 'नर्मदा' साईलेंटवाली आदि के संघर्ष की कहानी ने मानव के जीवन जीने के अधिकार के लिए किए गए संघर्ष के प्रतीक के रूप में हमारे इतिहास में प्रविष्टि पा ली है। विकास योजना तैयार करनेवाले के मन में विकास का नक्शा तैयार करते समय भारत के गरीब नागरिक का चेहरा मन में उतरता ही नहीं। इसका कारण स्पष्ट है कि ऐसे लोगों का अध्ययन पूंजीपतियों की पाठशाला में हुआ है।

जयप्रकाश लीलावान कहते हैं कि उनकी पाठशाला पाशविकता की पाठशाला है– "पूंजीवादी पाशविकता की पाठशाला में/पढ़कर आए हैं भेड़िए/अपनी वीभत्स व्याकुलता का प्रदर्शन/करते निकल चले हैं। तकनीक उनकी रखैली है/और विज्ञान के उपकरण/अलंकार श्रृंगार बना दिए हैं।"[2] इसलिए ऐसे लोगों के व्यवहार में वीभत्सपूर्ण हिंसा का रूप जरूर मिलेगा ही। 'विकास' अपने मूल में विकल्पों के वातायन खोलते हैं, 'संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार विकास से मानव को स्वस्थ जीवन के साधन उपलब्ध होने चाहिए, व्यक्ति की असीम क्षमताओं के विकास के अवसर प्राप्त होने चाहिए।'[3] लेकिन पूंजीवादी विकास में मानव के आत्मचौतन्य के विकास करने तथा जीवन जीने की बुनियादी चीज़ों की कोई गैरंटी नहीं है। विस्थापन की भीषणता इसका ज्वलंत उदाहरण है। 'विस्थापन से मनुष्य अपने जमीन से मात्र नहीं हट जाता है, अपनी भाषा, अपनी परंपरा, संस्कृति, अपने परिवेश के प्रति जो हृदयगत संबंध है, उससे कट जाता है तथा जिस समाज में किसी की नैसर्गिक परिवेश होती है, उससे वह अलग हो जाता है।

इस प्रकार के अलगाव से मनुष्य की सामाजिकता बिखर–बिखर जाती है, जीविका के साधनों से विस्थापित होता है। ज़मीन के बदले प्रतिपूर्ति राशि के माध्यम से इन सबका परिहार नहीं किया जा सकता। औद्योगिक परियोजनाओं के लागू करने से, लाखों सालों में प्रकृति का जो वैभव जन्म लेता है, वह भी विस्थापित होता है, इसके मूल्य को किस मापदंड के आधार पर मूल्यांकित किया जाएगा। इस प्रकार की प्राकृतिक संपत्ति पर मानव का मात्र नहीं, सबका हक बनता है, सबका समान अधिकार है। वे सब इस पृथ्वी की जीवन लीला

के लिए अपेक्षित हैं। पैसे के तुले पर इन सबको तुलाया जा नहीं सकता। पैसा देकर अनैतिक कार्य करना न्याय के किस सिद्धांत के आधार पर युक्तिसंगत ठहराया जा सकता है। विस्थापन से, विशेषकर आदिवासी जनों का जीवन नष्ट–भ्रष्ट हो जाता है। उनके जीवन में मिट्टी की सोंधी गंध है, प्रकृति के साथ सल्लाप है। 'आदिवासी कौन है?'

शीर्षक आलेख में विनायक तुमराम लिखते हैं– "वर्तमान स्थिति में आदिवासी शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहनेवाले, विशिष्ट भाषा बोलनेवाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परंपराओं से सजे और सदियों से जंगलों और पहाड़ों में जीवन–यापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखनेवाले मानव समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है।"[4] मेरे कहने का तात्पर्य यही रहा है कि जंगल के सपाट विध्वंस से आदिवासी के जीवन के आधार ही मिट जाते हैं। मानव के रूप में जन्म लेकर मानव के रूप में अपने सांस्कृतिक परिवेश में जीने का स्वाभाविक या नैसर्गिक अधिकार है, उससे आदिवासी इस बेदखली से वंचित हो जाता है। यह तो मानवाधिकार का स्पष्ट उल्लंघन ही नहीं, जिंदगी से ही विस्थापन है। यहाँ मानव मात्र की स्वतंत्रता को सत्ता के बलबूते पर खारिज किया जाता है। जेरिली के लिए 'स्वतंत्रता अपने आपमें मानव की आत्मसत्ता का ही ऐलान है या मानव की सर्जनशील क्रिया का ही सामाजिक रूप है। लेकिन यहाँ विकास के नाम पर जो विस्थापन संभव होता है, उससे आदिवासियों के कार्य करने के थल को ही नष्ट किया जाता है। ऐसी स्थितियाँ 'कुविकास' की हैं या विकास के आंतक की हैं। इस आतंक में युद्ध एक अनिवार्य शर्त है। जितने युद्ध आधुनिक काल में हुए, उसके मूल में अर्थतंत्र की साजिश हमें देखने को मिलती है। यह बाज़ार को विस्तार करने का कार्यक्रम है।

वंदना शिवा कहती हैं कि 'भूमंडलीकरण संपूर्ण पृथ्वी को एक बाज़ार के रूप में बदलता है। प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा करने के क्रम में युद्ध पूंजीवाद के लिए अनिवार्य हो जाता है, जिसका फल अधिकांश रूप में गरीबों को भुगतना पड़ रहा है।'[5] इस बाज़ार में कवि की भाषा में– "बिक जाता है बहुत सस्ते में पसीना/खून बिक जाता है उससे कुछ महंगे में/पानी बिक जाता है दूध के मोल/सरसों का तेल, डीजल और पेट्रोल उसमें भी महंगे बिक जाते हैं।"[6] पसीने का कम बिकना मनुष्य की निर्माणकारी शक्ति का अवमूल्यन है। इसे आलोचना की भाषा में पृथक्करण या एलिनियेशन कहा जाता है। "एलिनियेशन की प्रक्रिया श्रम के साथ मनुष्य के रचनात्मक संबंध को काट देती है। इस काटने की प्रक्रिया में वह श्रम के ऐतिहासिक रूपांतरण की प्रक्रिया से भी कट जाता है और इस तरह उसका इतिहास बोध नष्ट होता जाता है। जब बाज़ार में श्रमिक का श्रम बिकाऊ माल बन जाता है तो एलिनियेशन की प्रक्रिया शुरू होती है।"[7] इससे जाहिर हो जाता है कि यह मानवीय मूल्यों के बिखरने का समय है, क्योंकि अतिशय मशीनीकरण से मानव की श्रम शक्ति का कोई मूल्य नहीं रह जाता है। वह बाज़ारी वस्तुओं का मूक उपभोक्ता बनकर रह जाता है, आधुनिक पूंजीवाद विमर्श की भाषा में उसको 'आदर्श उपभोक्ता' कहा जाता है। उसके दिल–दिमाग में न अपनापन है, न कोई विराट दर्शन से वह संचालित है। आदमी अंदर और बाहर से टूट जाता है, एक प्रकार का सपाट बिखराव सर्वत्र व्याप्त होता है। पूंजीवाद की क्रूरता से मानव अपने परिवेश से मात्र नहीं, खुद से भी विस्थापित होता है। भयावहता के इस समय में मानव का अधिकार मुंह में पट्टी बांधकर चुप बैठता है। इस 'असमय' को कवि सभ्यता के नष्ट हो जाने का समय कहता है। कविता की पंक्तियाँ नीचे उद्धृत हैं–

यह मित्रताओं के टूटने का समय है/यह तिरस्कार घृणा, दरिंदगी व गजालत एकदम से चुक चुकेंगी/तब कमरे में बिखरे अखबारों के बीच गिरे एक लिफाफे के वजूद की तरह/टूटेगी हमारी मित्रता....यह समय/हिंसाओं की प्रतिहिंसा का/गति की अगति का/स्थिर के अस्थिर का यह अपनी ही संकल्पनाओं के झुठलाने का समय है। यह सस्वर होती सभ्यता के नश्वर होने का समय है।[8]

आज के 'विकास' में खून का काला धब्बा जमा हुआ है। जो इस समय की भीषणता के खिलाफ़ आवाज़ उठाता है, उसको व्यवस्था की मशीनें चुप करती हैं। प्रकाश जाधव की कविता 'भय और उम्मीद के बीच' कविता कहती है कि पल–पल में भय में जीना तो खतरनाक है, ऐसी खतरनाक स्थिति को जिंदगी की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। पूंजीवाद भय का आतंक बिछाकर एक प्रकार से मानव को शारीरिक–मानसिक रुप से ध्वस्त करके छोड़ता है। ऐसे मन में किसी भी हालत में सद्वृत्तियों का विकास नहीं होगा, प्रतिभा का अंकुर नहीं फूटेगा। सब जानते हैं कि भय से आक्रांत होकर मनुष्य अपने जीवन से ही पलायन करता है, अपनी जीवनाकांक्षाओं से विरत होता है क्योंकि आतंक आत्मा को जख्म करके छोड़ता है। प्रताड़ित किए जाने पर उसका कोई निदान नहीं रह जाता है। सच में उसका इलाज नहीं किया जा सकता है। हरदम भयाक्रांत होकर जीने से जीवन में असुरक्षा का भाव भर जाता है, ऐसी स्थिति में अपनी पहचान स्थापित करने के लिए मानव को संघर्ष करना पड़ता है। प्रकाश जाधव की कविता का पात्र पुलिस के द्वारा पकड़े जाने पर पहचान पत्र की तलाशी करता है, वह दुविधा में पड़ जाता है कि आगे क्या किया जाए।

विकास की भयावहता के वर्तमान जीवन संदर्भ में आलोक वर्मा की 'बस्तर 2002' तथा 'बस्तर 2010' कविताओं का अध्ययन किया जाना अपेक्षित है। ये दोनों कविताएँ विस्थापित मानव की आहों से परिपूरित हैं। तथाकथित सभ्य समाज की निरंकुशता, सत्ता की भयावहता, अपने समस्त जीवनाधिकारों से वंचित एक मासूम मानव का चीत्कार इन दो कविताओं के रेशे–रेशे में अनुगूंजित हैं। भूख से पीड़ित आदिवासी यदि अपने जन्मसिद्ध अधिकार के लिए, जीवन जीने के अधिकार के लिए मुंह खोलता है तो न जाने कितने और किस प्रकार के नाटक रचे जाते हैं। ऐसे लोगों के ऊपर नक्सलवादी होने का आरोप लगाया जाता है, या किसी नक्सली खलबली की दांव–पेंच में संसार के सबसे मासूम–भले आदमी को गोली से भुनाया जाता है। कविता की परिसमाप्ति इन पंक्तियों से होती है– "तुम्हारे खून और आंसुओं को/शराब में ढालकर/तुम्हें ही/कहा जाएगा एक दिन/जंगली असभ्य और गंवार।"[9] आफत की इस घड़ी में 'घोसियारी बाज़ार' में आदमी पल भर में कैसे गायब हो जाता है, किसी को इसका अता–पता नहीं चलता है, गायब होने पर किसी का पता नहीं लगता। वहाँ आदमी की कीमत क्षण–क्षण घट जाती है।

स्वप्निल श्रीवास्तव की कविता मनुष्य के जीवन में व्याप्त असुरक्षा एवं अस्वतंत्रता की भावना को रेखांकित करती है और बताती है– "आप यह भी सोचिए कि यदि आप/बसे हुए हैं तो इसका यह अर्थ नहीं हैं कि/आप गायब नहीं हो सकते।"[10] यहाँ मानव के वाक् स्वातंत्र्य, चलन स्वातंत्र्य, न्याय की सुरक्षा आदि अधिकार निरी कल्पना मात्र रह जाते हैं। अधिकार की ध्वस्तता के वर्तमान में अफ़सोस के साथ समकालीन कविता कहती है– "हे राजा!/हम आपकी प्रजा हैं/बस इतनी ही हमारी सजा है/कि आपकी हम प्रजा है।"[11] उक्त विवेचन से व्यक्त होता है कि आज का विकास समाज के चेहरे को विकृत कर रहा है और लगता है कि यह विकृति अष्टभुजा शुक्ल की पंक्तियों में भरी पड़ी है– "एक हाथ में पेप्सी कोला/दूजे में कोंडम/तीजे में राम पुरिया

चाकू/चौथे में हरिओम।"[12]

संदर्भ :-

1. तिवारी, विनोद. "संपादकीय". पक्षधर. संकलन 2. (2007) 7.
2. लीलावान, जयप्रकाश. "आपकी आदमघोर धुन". दलित अस्मिता. संयुक्तांक 8–9. (जुलाई–सितंबर 2012) 43.
3. Human development is a process of enlarging public choices. In principle this choice can be infinite and change over time. But at all kinds of development] the three essential one are for people to lead a long and healthy life to acquire knowledge and have access to resources needed for decent standard of living. In these essential choices are not available, many other choices remain un&accessible. But human development does not end there. Additional choices, highly valued by many people range from political, economic and social freedom to opportunities for being creative and productive and enjoying personal self-respect and guaranteed human rights. Human development has two sides: the formation of human capabilities, such as improved health, knowledge and skills and the use of people make of their acquired capabilities for leisure, productive purposes or being active in cultural, social and political affairs. If the scales of human development do not finally balance the two sides, considerable human frustration may result. Human Development Report (1990). UNDP & Oxford university Press: London, 1990. p.10.
4. ठाकुर, प्रणव कुमार. हिंदी आदिवासी साहित्य में स्त्री, हैदराबाद विश्वविद्यालय में प्रस्तुत शोध प्रबंधः 2011, पृ. 3–4.
5. Shiva, Vandana. Making Peace with the Earth: Beyond Resources, Land and food wars. Women unlimited (An Associate for kali for women): New Delhi, 2012, p. 3-4.
6. शुक्ल, अष्टभुजा, "पुरोहित की गाय", पहल, अंक 102, (जनवरी 2016) 263.
7. मिश्र, अच्युतानंद, "बिलगाव, आधुनिक विज्ञान और मध्यवर्ग", पहल, अंक 102, (जनवरी 2016) 197.
8. शुक्ल, श्रीप्रकाश, प्रगतिशील वसुधा, अंक 64, (मार्च 2005) 194.
9. वर्मा, "आलोक, बस्तर 2002, बस्तर 2010," प्रगतिशील वसुधा, अंक 87 (अक्तूबर–दिसंबर 2010) 76–77.
10. श्रीवास्तव, स्वप्निल, "गायब होते आदमी के बारे में", पहल, अंक 92, (मार्च 2013) 107.
11. मिश्र, यतींद्र, "प्रजा का नंदी पाठ", प्रगतिशील वसुधा, अंक 64, (मार्च 2005) 194.
12. शुक्ल, अष्टभुजा, "पुरोहित की गाय", पहल, अंक 102, (जनवरी 2016) 274.

मोबाईल–9446661250

ईमेलः drhebbarillath@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 135-138
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दो पीढ़ियों का विमर्श

–डॉ. प्रीतिबहन हसमुखभाई पटेल
असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभागाध्यक्ष, सरकारी विनयन एवम वाणिज्य कॉलेज, बासदा, जिला, नवसारी गुजरात।

भूमिका :–

'पीढ़ि' मानव समाज मे सार्वत्रिक तौर पर नीव की धरोहर एवम संस्था है। मनुष्य के जीवन का प्रारंभ ही परिवार से होता है। समाज और संस्कृति के सातत्य मे परिवार केंद्रवर्ती स्थान रखता है। आज के मनुष्य की प्रकृति और पीढ़ी के साथ रिश्तेदारी दिन–प्रतिदिन विरक्त होती दिखाई दे रही है। हमारी पलकों ने कभी आँखों को नहीं देखा, फिर भी दोनों का रिश्ता अटूट है। जो हमारे पास है उसका मूल्य हमें समझना होगा। जो विरासत हमें मिली है उसे कभी खोना नहीं चाहिए बल्कि उसका जतन करना चाहिए। मनुष्य के पास सभी समृद्धिया होगी पर प्रेम और करुणा से भरा हृदय नहीं होगा तो सभी व्यर्थ महसूस होगा।

विमर्श से तात्पर्य :–

"विमर्श" से तात्पर्य होता है– जब व्यक्ति किसी समूह में किसी विषय पर चिंतन अथवा चर्चा–परिचर्चा आदि करता है या किसी विषय को लेकर अकेले में गहन चिंतन, मनन, करके किसी समूह मे जाकर उस विषय पर अन्य व्यक्तियों से तर्क–वितर्क करता है। आज हम दो पीढ़ियों के बीच विमर्श और अंतर के समन्वय को देखे तो भारतीय संस्कृति का पल्लवन अरण्यों तथा पर्वत की उँचाईयों में अवस्थित ऋषियों–मुनियों के आश्रमों में हुआ। पाश्चात्य भोगवाद एवम भोगजन्य आंधी ने आज सम्पूर्ण विश्व को अपने आगोश में ले लिया है। स्वभाव, विचार, परम्पराओं की आस्था, दृष्टिकोण के साथ–साथ पुरानी और नई पीढ़ी के संघर्ष और अंतर एक कारण मानव जीवन में बढ़ती हुई संकुचितता, संकीर्णता भी मुख्य है।

विज्ञान और टैक्नॉलॉजी के साथ–साथ मनुष्य की गति दूर–दूर तक संभव हुई। किन्तु उस चक्रव्यूह में उसका दिलों–दिमाग संकुचित और संकीर्ण बन गया। विद्वान विजयनाथ देथा के शब्दों में– "यह कहानी सूरज जितनी पुरानी और उजाले जितनी नयी है। यह कहानी चाँद जितनी पुरानी और चाँदनी जितनी नयी है। यह कहानी बादल जितनी पुरानी और बरसात जितनी नयी है। यह कहानी बीज जितनी पुरानी और हरियाली जितनी नयी है। यह कहानी फूल जितनी पुरानी और फल जितनी नयी है।"[1]

दो पीढ़ियों के विमर्श का विहंगावलोकन :–

1. विचारों में परिवर्तन
2. सामाजिक व्यवस्था
3. वैषम्यता
4. नूतन और पूरातन का संघर्ष
5. संघर्ष और अंतर का समन्वय

20वीं सदी के दूसरे दायके के बाद सामाजिक अंतर का अभिगम उत्पन्न हुआ। औधोगीकरण, स्थलांतर,

शहरीकरण की प्रक्रियाओं की असर सामाजिक अंतर में विशेष भूमिका निभाने लगी। आज कैसे बर्ताव करना है, कैसे जीना है, यह सम्पूर्ण बाते समझने की अति आवश्यकता है। वास्तव में आज इन्हीं बातों को गौर से सोचने–समझने की जरूरत है।

विचारों में परिवर्तन :–

अपना सुख, अपना आराम, आपना लाभ के इर्द–गिर्द उलझकर सब रह गए। नई पीढ़ी की विचारवृति अपने आप तक सीमित होने लगी है। अपनेपन और अपने लाभ को प्रमुखता देने वालों के लिए असमर्थ, अकर्मण्य, वृद्धजनों का जीवन और भी कठिन हो जाता है। दूसरी ओर नई सभ्यता मे पले हुए युवक–युवतियों से वृद्धजन (पुरानी पीढ़ी के लोग) अपने ही जमाने की परम्पराओं का अनुगमन चाहते है। ऐसा न करने पर उन्हें मनदुख होता है। नए जमाने के स्वतंत्र और आझाद विचार के युवक–युवातियों को वृद्धजनों की यह रोकथाम बुरी लगती है। माता–पिता अपने जीवन के महत्वपूर्ण समय को बच्चों को पालन–पोषण में लगा देतरे है लेकिन बड़े होकर बच्चे उनसे सवाल दागने लगते है कि उन्होंने किया क्या? कवियित्री ममता कालिया के "दौड़" उपन्यास मे बेटा कहता है बाप से – 'आपने इतने बरसों में किया क्या?"[2]

दोनों पीढ़ियों को विचारों में सामानजस्य लाने की जरूरत है। वानप्रस्थ और सन्यास का विधान इसीलिए रखा गया था। इसमें पुरानी पीढ़ी नई को अपने ज्ञान अनुभवों से सही शिक्षा देकर, सदज्ञान की प्रेरणा देकर उन्नति एवम कल्याण की ओर अग्रसर करती रही है। घर में बंधन, स्वजनो में मोह, आसक्ति, वस्तुओं के आकर्षण से मुक होकर वानप्रस्थ या सन्यास जीवन बिताना ओर अपने अनुभव, ज्ञान, योग्यता से जन–समाज को सही–सही रास्ता बताना इसी में पुरानी पीढ़ी के जीवन का सदुपयोग है।

सामाजिक व्यवस्था :–

इन 40–50 सालों में विज्ञान की सहायता से दुनिया परस्पर बहुत निकट आ गई है। अनेकों संस्कृति सभ्यता का मिलन हुआ। जिसका प्रभाव हमारे आमाजिक ढांचे पर भी काफी पड़ा है। नई शिक्षा सभ्यता और सामाजिक ढांचे पर भी काफी पड़ा है। नई शिक्षा, सभ्यता, सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित वर्तमान पीढ़ी पिछली पीढ़ी के जमाने के स्वभाव, संस्कारों से सर्वथा भिन्न है। नई सामाजिक व्यवस्था पुराने जमाने के विचारधारा से बहुत कुछ भिन्न है। इससे पुरानी और नई पीढ़ी में जमीन–आसमान का अंतर पड गया है। स्कूल–कॉलेजों से प्रभावित दोनों पीढ़ियों की परंपरा, विचारधारा, सामाजिक व्यवस्था उनके संस्कारों से ओतप्रोत दोनों पीढ़ी में एक प्रकार का अंतर और खिंचातानी सी आज चल रही है और परस्पर एक दूसरे से असन्तुष्ट एवम परेशान है।

वैषम्यता :–

दोनों पीढ़ी के बीच आज ही नहीं बल्कि हमेशा से विषमता रही है। इन दोनों के बीच असली समस्या है कि पुरानी पीढ़ी यह नहीं समझती की उनकी उम्र ढल गई है और युवा पीढ़ी यह समझती है कि अब वे काफी बड़े हो गए है। उनकी उम्र उतनी हो गई है कि वे सबकुछ कर सकते है। दोनों के बीच सारी समस्या ही यही है। कोई और उस जगह पर कब्जा जमाए हुए है। जिससे आप हासिल करना चाहते है। ऐसा सिर्फ इंसानों मे ही नहीं होता, प्राणियों में भी यह बात देखने को मिलती है।

नूतन और पूरातन का संघर्ष :–

वस्तुतः पुरानी और नई पीढ़ी का संघर्ष नूतन और पुरातन का संघर्ष है, जो थोड़ी बहुत मात्रा में सदैव

रहता है। किन्तु वर्तमान युग मे अचानक भारी परिवर्तन हो जाने के कारण टकराव की परिस्थितियां अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली बन गई है। जिससे संघर्ष को और अधिक बल मिला है। आज एक ही परिवार की मा ओर बेटी में जमीन आसमान का अंतर हो गया है। जिस माँ ने घर की चार दिवारी मे परदे की ओट में दिन–रात गृहस्थी की चक्की चलाकर अपने सुख–सुविधाओं का ध्यान रखे बिना ही रूखा–सूखा खाकर, फटा–टूटा पहनकर जीवन व्यतीत किया उसकी ही बेटी शिक्षित होकर आधुनिक रहना–सहन, व्यवहार, स्वतंत्रता की अभ्यस्त बन गई है। वह सामूहिक कार्यक्रमों में भी भाग लेती है। माँ की उपेक्षा उसके जीवन की गति विभिन्न विस्तृत क्षेत्रों तक फैल गई है। इसी तरह पिता और पुत्र में भी यही असामान्यता पैदा हो गई है। जो पिता मेहनत मजदूरी करके साधारण गरीबी का जीवन बिताता रहा, जिसके जीवन की सीमित आवश्यकता और सीमित दायरा रहा उसका पुत्र शिक्षित होकर उच्च पद पर नौकरी करता है अथवा बड़ा व्यापार करता है। राजनीति में हिस्सा लेता है। सामूहिक कार्यक्रमों में हाथ बंटाता है। उसका रहन–सहन, मानसिक स्तर, बोलचाल, व्यवहार, जीवन स्तर के ढांचे में भी बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। इस बहुत बड़े परिवर्तन से दोनों पीढ़ियों के बीच बहुत बड़ा अंतर हो गया है। इसके साथ ही पुरानी पीढ़ी की पुरातन के और नई पीढ़ि की नवीनता के प्रति अनन्य आस्था, अंधनिष्ठा, आसक्ति का होना दोनों के संघर्ष को और भी तूल दे देते है। उषा प्रियंवदा की वापसी कहानी में –"ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए है, हमारा जो कर्तव्य था, कर रहे है। पढ़ा रहे है, शादी कर देंगे।"[3]

संघर्ष और अंतर का 'समन्वय' :–

संघर्ष और अंतर का सरल समाधान 'समन्वय' है। 'ले' और 'दे' की समझौतावादी नीति से क्लेश, कलहपूर्ण अनेकों गुड्डियां सुलझ जाती है। थोड़ा–थोड़ा दोनों झुके तो मिलन का एक केंद्र सहज ही मिल जाता है। नई पीढ़ि को उग्र और उच्छृखंल नहीं होना चाहिए। उसे भारतीय परम्पराओं का मूल्य और महत्व समझना चाहिए। जिससे शिष्टता, सभ्यता ओर सामाजिक सुरक्षा की बहुमूल्य मर्यादाओं में रहते हुए दोनों पक्षों को अपने अपने दृष्टिकोण मे थोड़ा–बहुत परिवर्तन करना ही पड़ेगा। पुरानी पीढ़ी को समय के अनुसार अपने आपको ढालना होगा। नई पीढ़ि को एक सीमा तक अपनी इच्छा अनुसार रहन–सहन अपनाने की छूट भी देनी होगी।

नई पीढ़ी के जीवन जीने के तौर–तरीके मे अनावश्यक हस्तक्षेप भी न किया जाए। खासकर व्यक्तिगत जीवन की बातों मे तो जहा तक बने ध्यान ही नहीं देना चाहिए। जहा नई बहुओं के जीवन की छोटी–छोटी बातों पर टीका–टिप्पणी की जाती है, आलोचनाएं होती है, उनके जीवन की स्वाभाविक बातों, मानवीय अधिकारों पर चोट की जाती है, तो सहज ही संघर्ष और कलह एवम अशांतिकी आग भड़क उठती है।

नई पीढ़ी के युवक–युवतियों को भी वृद्धजनों के प्रति अपने कर्तव्य, उत्तरदायित्व, आदरभाव, अनुशासन के लिए सतर्क और सावधान रहना आवश्यक है। अपने थोड़े–बहुत शाब्दिक ज्ञान दिमागी विकास के बल पर झूठा गर्व करके वृद्धजनों के लंबे अनुभवों, व्यावहारिक जीवन की ठोस शिक्षा के प्रति उपेक्षा नहीं बरतनी चाहिए। आदर और अनुशासन के द्वारा वे वृद्धजनों के अनुभव व्यावहारिक ज्ञान का प्रश्रय लेकर जीवन में अधिक उन्नत हो सकते है। भारत मे दो पीढ़ियों का तारण निकालने वाले पाश्चात्य विद्वय इरावती कर्वे के मतानुसार– "पश्चिमी ढब के वास्तविक अर्थवाले विभक्त परिवार के परिणाम, द्रष्टात भारत में बहुत कम देखने को मिलते है।"

परंपरागत हिन्दु पितृसत्ताक संयुक्त परिवार में तीन या तीन से अधिक ज्यादा पीढ़ी के सदस्य एक ही निवास मे रहते थे। कभी–कभी एक या ज्यादा निवासों में एक–दूसरे के नजदीक रहते थे। सहभोजन,

सहरसोईघर, संयुकत मिलकत और आमदनी, संयुक्त पूजा–आराधना आदि उसकी विशेषताएं थी। सभी अपने पिता के वंश से जाने जाते थे।

आधुनिक पीढ़ी में प्रत्येक पीढ़ी दर पीढ़ी में परिवर्तन होता जा रहा है। ऐसी सैंकड़ों स्त्रियां थी जो अपने पुरुषों की लंपटता को मूह बंद करके सहन कर लेती थी। आश्रयहीन स्त्री का समाज में जीना मुश्किल हो जाता था। पुरुष चोर हो, व्यभिचारी हो, शराबी हो तो उसकी चरणरज धोकर जीवन को धन्य मानना पड़ता था। विधवा किसी पुरुष से प्रेम करे तो उसका जीवन भ्रष्ट माना जाता था, उसकी दुर्गती होती थी। किन्तु मर्द के लिए सब कुछ माफ था। वर्तमान समय में लोगों का यह नजरिया बदला है। वह स्त्री को आदर सम्मान देने लगा है। आज स्त्री चार दिवारी में अपनी दुनिया को नहीं समेटती। आज हर क्षेत्र में उसने अपना मुकाम हासिल किया है। आज चारों दिशाओ में देखे तो स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान समाज की रीति–नीति मे परिवर्तन आया है।

निष्कर्ष :-

दो पीढ़ियों के बीच के अस्तित्व को संभाले रखने के लिए आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों के साथ अनुकूलता रखने की आवश्यकता है। अनुकूलन से ही समाज मे परिवर्तन आया है, लेकिन वह परिवर्तन दोनों पीढ़ियों को एक साथ जोड़े रखता है। मूल्य, स्थान, भूमिका, व्यक्ति, संस्था, सामाजिक संबंध, संस्थाकीय संबंध कम या ज्यादा रूप से बदलते रहते है। परिवर्तन तो प्रकृति का भी नियम है। भाषा परिवर्तनशील है, संस्कारों में अनगिनत नये मूल्यों का समावेश होना, जीवन पद्धतियों का विश्लेषण बहुत–कुछ में परिवर्तन आ रहा है। इन परिवर्तनों से आँखों को चकाचोंध नहीं कर देना है। अपनी पीढ़ी को दिशा–निर्देश देना है, तभी तो आने वाली पीढ़ी कुछ नया ग्रहण करके अपनी उत्तरोत्तर प्रगति कर पाएगी।

संदर्भ सूची :-

1. कहानी–दिवाले की बपौती, चौधराइन की चतुराई {कहानी–संग्रह} विजयनाथ देथा, १९९६, सायरा प्रकाशन, जोधपुर, पृष्ठ–१२०
2. दौड़ (उपन्यास) ममता कालिया (वाणी प्रकाशन), पृष्ठ –40
3. वापसी उषाप्रियंवदा कथाश्री, संपादक डॉ. विजयनाथ सिंह जयभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ– ११०

संपर्क 7990838445

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 139-141
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

असगर वजाहत के साहित्य में नारी विमर्श

प्रो. राघवेंद्र मिस्कीन, संशोधना छात्र,
हिंदी विभाग, एस.के.कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय तालिकोटी
-डॉ. जेड.ए.गुळगुंडी, मार्गदर्शक
हिंदी अध्ययन विभाग कर्नाटका कला महाविद्यालय, धारवाड़, कर्नाटक।

आज की आधुनिक नारी तमाम क्षेत्रों में अपनी शक्ति का परिचय दे चुकी है। फिर भी असल में आज भी पुरुष स्त्रियों के प्रति परंपरागत है रूढी के शिकार हैं लेखिका रमणिका गुप्ता जी का प्रतिक्रिया है– "मातृ सत्ता के समाप्ति के बाद स्त्री की गुलामी तो सत्ता का परिणाम है। विवाह उस गुलामी की शुरुआत है तो पारिवारिक बंधन उसका पिंजड़ा है जिसमें वह केवल संयोग से अनुशासन के नाम पर कैद है।"[१]

बिल्कुल सही है कि तमाम वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के बावजूद स्त्री के प्रति ज्यादातियाँ बढ़ती ही रहती है। अतः बेटियों के लिए आज भी जमाना नहीं बदला जो क्योंकि बेटी के जन्म पर शोक मनाते है। "पाखंड से भरा है वह समाज जो देवी के भक्तों के भक्त हैं लेकिन कन्या रूपी देवी का निरादार करता है। पारिवारिक प्रताड़ना की पीड़ा की उपेक्षा सोंग्स के दानों और बच्चों के भविष्य की पीड़ा ने औरत को विचलित कर दिया है वहां से तथा दहेज हत्या भी एक पूंजीवादी परिंदा है पर एक भारतीय पूंजीवादी परिघटना।"[२]

असगर वजाहत की लेखनी महिला के प्रति होने वाली अब मूल्य की समस्या को भी मर्मस्पर्शी है, विचारणीय है कि उन्होंने स्त्री की किसी संप्रदाय के तहत रूखकर आम आँका नहीं बल्कि सामाजिक प्राणी होने के नाते उसके ऊपर होने वाले अत्याचारों एवं अन्याय के खिलाफ विद्रोह किया है। उनके अनुसार समाज में स्त्री की अदालत का जमीदार भ्रष्ट व्यवस्था ही नहीं उसके प्रति मौजूद पूर्वाग्रह की लोहड़ी मान्यता भी उनके विकास के प्रति बाधा डाल रही है। ऐसी ही चर्चित कहानियां है उनकी 'ड्रेन में लड़कियाँ', 'लड़किया', 'अपनी–अपनी पत्नियों का विकास' और तलाक आदि।

'ड्रेन में रहने वाली लड़कियाँ' प्रस्तुत कहानी में पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्रियों के प्रति ज्यादातियाँ बढ़ रही है। आडंबर से भरा यह समाज जहां बेटी को जन्म देने के अपराध में माँ–बाप को दंड स्वरूप दहेज देना ही अनिवार्य होता है। दहेज लेना मान प्रतिष्ठा का कारण भी माना जाता है यदि स्त्री विवाह के बाद भी पुरुष वर्ग से शोषित होती है। जब वह बार–बार बेटियों को जन्म देने पर उसकी गलती को भी एक स्त्री पर ही ठहराया जाता है। साथ में उसका पति ही नहीं पति के घरवाले भी उसे नफरत करके षड्यंत्र से मार डालकर दूसरे विवाह के साथ दहेज लाने को सोचते हैं। ऐसी बिगड़ती समाज के लोगों दृष्टांत में कहानी का चित्रण मिलता है। 'ड्रेन में रहने वाली लड़कियाँ' ड्रेन यानी 'गटर' कहानी केवल श्रीमती सरला कि नहीं सरला जैसे तमाम महिलाओं के साथ ऐसा ही अन्याय हो रही है। सरलाने पहले से दो बेटियां हैं। अब वह तीसरी भी बेटी को जन्म

देती है। वह खुद अपनी बेटी को 'पोट' में डालकर जंजीर चला देती है। बच्चा रोते–रोते मर कर गटार पहुँच जाता है। श्रीमती सरला बिस्तर पर आ कर लेट रही थोड़ी देर बाद नर्स बच्ची लेने आई तो सरलाने सच–सच बताती है तो बच्ची को मारने के लिए जुर्म में अदालत का कटघरे में खड़ा करके पूछा तो उसका बयान था "अपनी बच्ची के सुंदर भविष्य के लिए और मां–बाप का काम अपने बच्चों भविष्य में को सुधारना है।"[३] अदालत में जज ने सरला को छोड़ छोड़ दिया क्योंकि वह होश–हवास में गलती नहीं की है समाज में स्त्री अपनी बेटी को जन्म देकर अब उसी से मार डालने की वातावरण को पैदा किया जा रहा है।

बेटियों की नफरत करते रहे तो क्या होगा? इस विचार को लेकर असगर वजाहत कहते हैं "संसार से लड़कियों का गायब हो गई है पूरी दुनिया में अब कोई लड़की नहीं है।"[४] स्त्री संताने दुनिया में पैदा होना ही मुश्किल बनती जा रही है। ऐसी ही होता रहा तो ना पत्नी, ना माँ, ना बहने, ना गुरु माता मिलने में पुरुष वर्ग की संतानी भी घट जाएगी। सरला के पति के घरवाले स्त्री संतान से विरोध करते हुए षड्यंत्र से जलाकर राख कर देते हैं। राख बनकर अपनी नन्हीं बच्ची से मिलने जाती है।

अतः इस कहानी के माध्यम से स्त्री की दारुण संकटों का मर्मस्पर्शी चित्र चाहे सरला जैसे कई स्त्री बेटियों के लिए बेटियों के लिए भारत में आज भी दुखित होकर अपना प्राण त्याग किया हुआ निदर्शन मिलता है। यह आज की ज्वलंत समस्या भी है।

'लड़कियां' कहानी में दहेज स्वीकार करने वालों पर कड़ी व्यंग्य किया गया है। भारत में दहेज प्रथा काफी पुरानी है। सदियों से चली आ रही है। इस प्रथा को अब लोगों ने अपना धंधा बना लिया है। आज के समाज में बदलता समय इस रीति रिवाज को भी बदलता गया कन्या की शादी में स्वेच्छा से दिया जाने वाला धन–दौलत धीरे–धीरे लड़के वालों का ऐसे अधिकार बन गया। आज के समय में तो कई व्यक्ति दहेज को अपना जन्मसिद्ध अधिकार ही मानते है।

इस कहानी में श्रीमती श्यामा नामक स्त्री के ऊपर होने वाला अन्याय अत्याचार मारपीट तथा मार डालने की षड्यंत्र रचाकर आखिर में जलाकर मार भी डालते हैं। श्याम को अन्याय के प्रति कभी न्याय नहीं मिलने की हृदय स्पर्शी व्यथा की कथा मिलती है।

अतः इस कहानी में यही आज की बेटियों की हालत है। केवल श्यामा के साथ ऐसा नहीं हुआ समाज ऐसे कई लोग आज भी जिस मुद्दा का सामान्य सामना कर रहे हैं। इन्हें कहां पर भी इंसाफ नहीं मिल रहा है। जैसे अदालत, ठाणे, अकबर, दफ्तर, प्रधानमंत्री सचिवालय आदि जगहों पर सब इनके खिलाफ ही है। कहानीकार कहानियों के माध्यम से नारी पर होने वाली शोषण का बयान करता है।

'अपनी–अपनी पत्नियों का सांस्कृतिक' कहानी में फिल्मी दुनिया में महिलाओं के संस्कृति विकास में बाधा डालने वाले पुरुष समाज पर व्यंग्य है। स्त्री पुरुष के समान स्थान, सम्मान बनाने की इच्छा प्रकट करती है। और वह उसकी अधिकारी ने भी है। लेकिन समाज में पुरुष स्त्री को ज्यादा महत्व नहीं देने के कारण उनकी आशाएं निराशा में बदल रहे हैं। तथा उनकी अभी कुछ लता अंदर ही अंदर समाप्त होते जा रहे हैं श्री एक पत्नी बनने के बाद पुरुष उसके सांस्कृतिक विकास को भाधा होकर के चार दीवारों में ही रखना चाहते हैं।

आज के समाज में पुरुष वर्ग की प्रधानता होने के कारण स्त्री की विकास में बाधा डालने में श्री को सभी दुर्बल मानते हैं। लेकिन वह सफल पुरुष के समान काम करने में कभी पीछे हटी नहीं अपने विश्वास कायम

रखकर जीना चाहती है। लेकिन समाज उसे कमजोर या दुर्बल समझते हैं। कभी आगे बढ़ने नहीं देते हैं। फिर भी आज शहरों में काफी सुधार आया है।

'किरच–किरच लड़की' कहानी में शिक्षित बेरोजगारी स्त्री की अंकन हुई है। इलाहाबाद से लता श्रीवास्तव एमबीए करके दिल्ली को नौकरी की तलाश में निकलती है। लेकिन वहां पर कोई नौकरी ना मिलने पर बहुत दुखित होती है। अपना पेट तक भरना उसे बहुत मुश्किल होता है अपने भूखे पेट को भरने के लिए एक कपड़े के दुकान में जो विंडो में डेमी मॉडल बनकर खड़ी होती है। जिससे पैसा कमाने चाहती है जिसमें खड़े होते होते बहुत पछता कर अपना प्राण को गवा देती है।

अतः शिक्षित बेरोजगारी को लेकर कहानी में चित्रित किया गया है। नौकरी की तलाश केवल पुरुष को ना होकर स्त्रियों को भी जिन आर्थिक संकटों से बचने का प्रयास करती है। लेकिन हर कष्टों का सामना करना ना होकर जीवन से विमुख होकर जीने लगते हैं। यह पढ़े लिखे शिक्षित उनकी दर्द का आता है श्री कई क्षेत्र में आज आगे बढ़ना चाहते हैं अपने सपनों को पूरा करना चाहते हैं। लेकिन प्रसिद्धि उसको साथ नहीं देती यह आज की तुरंत प्रासंगिक मिलता है।

'तीन तलाक' कहानी में मुस्लिम महिलाओं को तीन तलाक एवं मुर्गे का विरोध तो करते हैं। लेकिन मुस्लिम महिला जैसे ने कई समाज के महिलाएं भी शोषित है जैसे आदिवासी दलित महिला अन्य कई समाज के स्त्री के प्रति मन में यही संवेदना होना जरूरी है। फ्री होती है लकी हिंदू मुसलमान सिख दलित आदि भी फ्री होती है इनके अच्छाई के बारे में सोचने की बात रखते हैं प्रयोग को भी राजनीति कथा से बंटवारा किया जा रहा है केवल वोट बैंक बनाने के लिए ऐसा करना गलत है।

निष्कर्षतः यह कहना संगत है कि अगर वजहात आजाद की कहानी साहित्य में नारी मनोविज्ञान को बारीकी भारतीय नारी के तत्कालीन में चुनौतियों को कहानी में लेखक जाहिर करते हैं कि चटपटा तीसरी आशाओं और आकांक्षाओं युवा लड़की की बेरोजगारी नारी की बेबसी नारी शोषण की हत्या पुत्र या वो हमें कभी दहेज के लालच में स्त्री न्याय की समानता अधिकारी संबंधी प्रस्तावों को प्रस्तुत किया गया है।

आधार ग्रंथ :–

1. रमणिका गुप्ता, टीकाकरण कथादेश, जुलाई 2003, पृष्ठ संख्या 63
2. रमणिका गुप्ता, टीकाकरण कथादेश, जुलाई 2003, पृष्ठ संख्या १७
3. असगर वजाहत, 'ड्रेन में रहने वाली लड़कियाँ', पृष्ठ संख्या १८
4. असगर वजाहत, 'ड्रेन में रहने वाली लड़कियाँ', पृष्ठ संख्या १७

मो.नं रू 9886446040

Email: miskinraghavendra@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 142-146
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वृद्धा अवस्था विमर्श

–राजेश कुमार
पी.एच.ड़ी. शोधार्थी, श्री गोबिन्द सिंह धर्म अध्ययन विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, पंजाब।

बुढ़ापा मनुष्य जीवन का आखरी पड़ाव होता है। यह वह समय होता है जब मनुष्य के पास से बचपन की बेपरवाही और जवानी की मौज–मस्ती सदा के लिए चली जाती है। बचपन आता है और चला जाता है। इसी तरह से जवानी आती है और चली जाती हैः परन्तु बुढ़ापा आता है और मनुष्य को अपने साथ ले जाता है। जीवन की यह एक ऐसी सच्चाई है जिस से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। परन्तु बुढ़ापे को बोझ या बेबसी, दुर्बलता या दरिद्रता, पश्चाताप या प्राधीनता/सजा या श्राप समझ लेना केवल निराशावादी और नाकरात्मक सोच का ही प्रगटावा होता है।

माता पिता की अनदेखी करके, उनको अकेले में बिर्लाप करने के लिए अपने हालात पर छोड़ के आप चाहे कितनी भी धार्मिक यात्राएँ करें, चाहे कितनी बार धार्मिक स्थानों पर नाक रगड़ें, दान–पून्य करे, पाठ पूजा, हवन यज्ञ आदि जितनी मर्जी करें, सब बेकार और व्यर्थ है। यह आडंबर भगवान के घर स्वीकार नहीं है, क्योंकि भगवान कण–कण में विद्यमान है। वह पल–पल की जानकारी रखता है। श्री गुरू ग्रंथ साहब में कहा गया है कि ''बिन बोलया सब कुछ जाणदा किस आगे कीचै अरदास''। (1421)

संत कबीर जी भगवान रूपी माता–पिता के अपने बच्चों प्रति प्यार, स्नेह और खुलदिली और माता–पिता की तरह से अपने बच्चों के घोर अपराधों को माफ कर देने का हौंसला आदि बारे बहुत ही भाव–पूर्वक तरीके के साथ समझाते हैं। सवाल पैदा होता है कि जब माता–पिता अपने बच्चों के लिए दरिया–दिल होते हैं तो फिर बच्चों के अन्दर उनके प्रति बेरूखी और तंग–दिली क्यों पैदा होती है जब कि सच्चाई यह भी है कि समय आने पर बुढ़ापा उनको भी आना है और वह उस समय बुढ़ापे के अकेलेपन में अपने बच्चों से क्या उम्मीद रखते हैं? बस यही सोच हर नौजबान बच्चे को समझने की जरूरत है।

आज के बच्चे अपने माता–पिता की जायदाद, धन–दौलत पर तो ऑख रखते है और उसको पाने के लिए हमेंशा ही तत्पर रहते है क्योंकि वह उनके ''उत्तरदायी पुत्र'' हैं, परन्तु पुत्र का अपने माता–पिता के प्रति नैतिक और समाजिक फर्ज क्या है, उस को निभाने से हमेशा दूर भागते हैं। ऐसा लगता है कि अब माता–पिता और औलाद का रिश्ता भी एक स्वार्थी और मतलबी बनता जा रहा है।

असल में माता–पिता का, खास तौर से माता का जिसने बच्चे को जन्म दिया और उसने 9 महीने तक अपने गर्भ में रखा होता है। मां अपने बच्चे पर अपना रंग–रूप कुर्बान कर देती है। बच्चे को अपना दूध पिला कर और उसकी अच्छी तरह से देखभाल करके उसे बड़ा करती है। उस के प्रति उस का बहुत ज्यादा मोह–प्यार होना कुदरती बात है। औरतें, खास करके बहूँ और बेटियॉ, बुजूर्गों को जीवन की खुशी और आनंद देने में सब

से ज्यादा भूमिका अदा करती हैं। औरत आदर्श रूप में तो त्याग, सेवा, नम्रता और मिठास की मूर्त मानी जाती है। सेवा करने में भी औरत की कोई बराबरी नहीं। कई बार औरत ही औरत को दुखी करने और कड़वे बोल बोल कर, खास करके औरत को सताने में भी, वह किसी से कम नहीं रहती। परन्तु व्यवहारिक और समाजिक जीवन में इस कठोर रूप और कठोर वाणी भी कई बार इसके आदर्श को ठाह लगाती है।

डॉ. गुरमीत सिंह सिंधू ने अपनी पुस्तक ''ब्राह्मणवाद से हिन्दूवाद'' में बताया है कि ''विवाह के बाद विवाहित जोड़ी अपने बड़े–बुजर्गो से आशिर्वाद लेने जाती है और परिवार के इष्ट (भगवान) की वे दोनों मंनता/पूजा करते हैं। यह सभी इसलिए किया जाता है कि कोई पूर्वज या देवता नाराज ना हो और विवाह में किसी भी तरह की कोई रूकावट ना आये और सभी के आशिर्वाद से विवाही जोडी की झोली खुशियों से भरी रहे।''

बुढ़ापे की सुन्दता का वर्णन करते हुए अंग्रेजी के प्रसिद्ध वार्ताकार ए. जी. गारडीनर एक जगह लिखते है कि चढ़ते हुए सूरज की अपनी सुन्दरता होती है और छिपते हुए सूरज की अपनी। पर इन दोनों में छिपते सूरज की सुन्दरता ज्यादा गहरी और रूहानी होती है। जीवन की पूर्णता और बुलंदी का प्रतीक बुढ़ापा कुछ खुश–किस्मत व्यक्तियों को ही नसीब होता है क्योंकि कईयों की जीवन डोरी तो बीच (मध्य) में ही टूट जाती है। जरूरत केवल इस बात की है कि ठुकराने के बावजूद सकारात्मक सोच और सही व्यवहार द्वारा बुढ़ापे को वृद्धि में बदल के इस का आनंद लिया जाये।

बुढ़ापा बुजूर्गी नहीं होता और न ही बुजूर्गी के लिए बूढ़ापा जरूरी होता है। बूढ़ा उस को माना जाना चाहिए जिस के शरीर के साथ साथ उस की सोच भी बूढ़ी हो जाये। बुढ़ापे में जवानी का भ्रम पालन के साथ केवल पलक–झलक के हुलारे मिल सकते है जबकि बुढ़ापे का अहसास मनुष्य को रूहानी आनंद का अनुभव करवा सकता है। हमारा बुढ़ापा कैसा होगा, यह बहुत हद तक हमारी सोच और जीवन प्रति पहुँच पर ही निर्भर करता है। इसी कारण से कुछ लोग जवानी में ही बूढ़ों की तरह लगने लगते हैं और कुछ छोटी उम्र में ही बड़ी सोच और महान कार्यों के कारण आदरणीय स्थान ग्रहण कर लेते हैं। इस के विपरित कुछ लोग बड़े हो कर भी बड़े नहीं होते। वह व्यर्थ की बातें करते रहते हैं। इसीलिए बुढ़ापे का सम्बन्ध इलम और अकल के साथ है, उम्र के साथ नहीं। श्री गुरू अर्जुन देव जी द्वारा श्री हरमंदिर साहब के पहले ग्रंथी थापे गये बाबा बूढ़ा जी ने अपनी बुद्धिमता, दूर–अंदेसी, धार्मिक सोच और लगन के कारण बुढ़ापे का रूतबा अपने बचपन में ही प्राप्त कर लिया था।

आनंद के साथ बुढ़ापा काटने के लिए सब से जरूरी है कि वृद्धों को जीवन की इस सच्चाई की पहचान होये कि उनका समय गुजर चुका है और नईं पीढ़ी ने उनका स्थान ले लिया है। परिवार की संस्था में अपनी चौधरी या लानेदारी होने की हैसियत और अंहकार में से निकल कर, वृद्धों को यह शक्ति और पदवी, इज्जतमान और प्यार से अपनी अगली पीढ़ी पर भरोसा करते हुए, उनको इस तरह प्रदान कर देनी चाहिए, जैसे सांप अपनी कुंजली उतार के आजाद हो जाता है। यदि अपनी पुत्र–पुत्रियां को जिम्मेवारी का बोझ सहन करना नहीं सिखायेंगें और उनकी स्मर्था पर भरोसा नहीं करेगें, तो वह बुढ़ापे को जवानी पर, भूत को भविष्य पर और पुराने को नये पर धक्के से ठोसने की गलत रूचि और धारना का शिकार होयेंगे। जैसे मां बच्चे को शुरू में चलना सिखने के लिए पहले अपना हाथ बच्चे के शरीर पर रखती है। फिर थोड़ा शरीर से फर्क के साथ हटाके रखती

है, पर बच्चे को गिरने से पहले पकड़ लेती है। फिर थोड़ा दूर खड़ी होकर प्यार से आवाज मारती है कि आ जा आ जा ..... और अकेले छोड़ा हुआ बच्चा धीरे धीरे कदम रख रख के चलने का हौसला करने लग जाता है। बुढ़ापे में नई पीढ़ी के बनते सामाजिक स्थान को यदि वृद्ध सही तरीके से स्वीकार कर लें फिर आनंद ही आनंद है। सिर्फ सोच बदलने की जरूरत है।

गांव और शहर, अनपढ़ और पढ़े लिखे, औरत और पुरूष के बुढ़ापे में बहुत बढ़ा फर्क होता है। आजकल लोग खेती का काम छोड़ चुके हैं वह अपना काम दूसरे प्रदेश से आने वाले मजदूरों से करवाते हैं। पंजाब में कोई ही ऐसा गांव होगा जहां पर कोई अच्छा पार्क वृद्धों के लिए बना हो। ज्यादा से ज्यादा वृद्ध किसी धार्मिक स्थान पर सवेरे शाम जा के अपना समय व्यतीत करते हैं। आमतौर से पंजाब के गांवों में ''फट्टियों'' का एक नया सभ्याचार पैदा हो गया है। खाली लोग वहां बैठ के ताश खेलते रहते है। ऐसी स्थिति में जीवन का आनंद अनपढ़ लोग कहां से ग्रहण करें? मेरे ख्याल से बुजर्ग को अपने पोते–पोतियों के साथ समय व्यतीत करने की कोशिश करनी चाहिए। परन्तु आजकल की नई पीढ़ी मोबाईल फोन, टी.वी., वीड़ियो गेमज़ और स्कूल के होमवर्क में इतनी व्यस्त होती है कि दोनों पक्षों के पास सम्बन्ध बनाये रखने और आपस में बातचीत करने का समय ही नहीं होता। दोनों पीढ़ियां एक दूसरे को इज्जत, मान–सम्मान और प्यार दें, क्योंकि दुनियां में दूसरों को, खास करके वृद्धों को इज्जत देने में कभी भी किसी का कुछ नहीं घटता। रसूल हमज़ातोव लिखता है कि ''मनुष्य को बोलने और सिखने में सिर्फ चार साल लगते हैं। जुबान संभालने व सिखने में 60 साल लग जाते हैं।''

वृद्धों के पास घर की लाणेदारी (जिम्मेवारी) खत्म होने के बाद कोई आर्थिक साधन नहीं होता। परन्तु उनका मन पुत्र–पोतियों, बेटियों, दोहतियां और बहुओं को कुछ न कुछ प्यार के साथ देने के लिए हमेशा ललचाता रहता है। ऐसी मानसिकता को समझते हुए यदि अपने बच्चों को सीधे पैसे या मन–पसंद कपड़े देने की जगह–यह अच्छा काम अपनी जेब से पैसे खर्च करके–उनके हाथ से करवाया जाये–यह सोने पर सुहागा होगा। बच्चे दादा–दादी, नाना–नानी को बहुत प्यार करने लग जायेंगे। परिवारिक सांझ की डोर ज्यादा पक्की होगी और वृद्धों का मन, मान और आनंद से भर जायेगा। बुढ़ापा काट रही औरतों का संताप पुरूषों के संताप से बड़ा होता है। पुरूषों के पास तो कई हालातों में जायदाद का हक होता है, इस कारण से ''दाल में घी'' पड़ते रहता है। औरतें निरोल मौहताजी की जिन्दगी व्यतीत करती है। घर में उनको कई मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। भारत जैसे महान देश में हजारों औरतों को मर्दों के साथ सती होना पड़ा है। परन्तु मर्द चिता ठण्डी होने से पहले ही दूसरा विवाह रचा लेते हैं। इस पुण्य के काम का सब से पहले श्री गणेश आदमी की बहने और दूजे रिश्तेदार औरतों की तरफ से किया जाता है। वृद्ध मर्द तो शायद किसे भी तरह वृद्ध आश्रम में जीने का फैसला कर लेते हैं पर औरतों के लिए यह ''वृद्ध आश्रम'' में रहना कठिन हो जाता है। औरत जाये तो जाये कहॉ? जुबान की मिठास और सच्चे आदर–मान की जरूरत वृद्धों को बुढ़ापे में सब से ज्यादा होती है। यह ठीक है कि आज की आर्थिक मुसीबतों के नीचे दबे लोगो के पास दिलासा और प्यार देने के इलाबा बचता ही क्या है?

जब हम आज के समाज की तरफ नजर दौड़ाते है तो देखते है कि सत्कार और आदर के पात्र जन्म देने वाले माता–पिता को गैर–जरूरी बोझ समझ के वृद्ध आश्रमों में तड़फने, रोने और विलाप करने और हर पल अपनी मौत के इंतजार के लिए टूटे हुए पौधे की तरह छोड़ दिया जाता है। आज जरूरत है इस वृतांत को

समझने की। हर एक पुत्र–बेटी–बहू और बच्चों से यही उम्मीद रखी जाती है, जो उनकी नैतिक जिम्मेवारी भी है, कि वह अपने माता–पिता के आज्ञाकारी हो तब जो वह अपने वृद्धों की दुआएं और आशिर्वाद के हमेशा ही हकदार रहें। माता–पिता किस तरह अपने बच्चों को बड़ा होते हुए देख के उनकी बड़े चाव से विवाह शादी करते है और घर में पुत्र–बहू का आपसी प्रेम–प्यार मिलाप और सद्–भावना देख के किस तरह फूले नहीं समाते हैं और उनके उज्जवल भविष्य, लम्बी उम्र और खुशहाली के लिए दुआएं मांगते हैं और आशिर्वाद देते हैं, परन्तु वही पुत्र–बहू निर्मोहे होकर उनकी नेक सलाह भी अनसूनी कर देते हैं। लालची और स्वार्थी हो कर बच्चे उनकी जायदाद तो जल्दी से जल्दी प्राप्त करना चाहते है, पर उनकी सेवा करने से कान कतराते हैं। ओर तो ओर उनके पास वृद्धों की बात सुनने का भी समय नहीं होता है। स्नेह और लाड़–प्यार से मुश्किलों से पाले अपने बच्चे ही उनके साथ अजनबियों की तरह व्यवहार करते है। वह माता–पिता से धन, दौलत, जमीन जायदाद प्राप्त करके उनके साथ बुरा व्यवहार करते है और उनको वृद्ध आश्रम में छोड़ आते हैं या फिर किसी अजनबी की दर पर रूलने के लिए मजबूर कर देते हैं। शायद वह भूल जाते है कि एक दिन वह भी बूढ़े होंगे और उनके बच्चे भी उन के साथ ऐसा ही व्यवहार कर सकते हैं। लाहनत है ऐसी औलाद पर।

सभ्यचारी समाज और सूझवान परिवार वृद्धों को अपनी शान और बहूमूल्य सरमाया समझते हुए उनकी देखभाल को सब से ऊँचीं प्राथमिकता देता है। वृद्ध जहॉ समाज को सेध और स्थिरता प्रदान करते हैं वहीं अपनी सूझ–बूझ के द्वारा पारिवारिक शान्ति बनाये रखने में भी सहायक होते हैं। घर में बैठा वृद्ध, चाहे वह माता–पिता के रूप में हो, सास–ससुर के रूप में चाहे दादा–दादी, नाना–नानी या किसे भी किसी ओर रूप में हो, घर की छत की तरह होते हैं। उनका अस्त्तिव किसी पाक–पवित्र स्थान पर रोशनी बिखराती हुई दूध जैसी सफेद मोमबत्ती की तरह होता है। बच्चों के लिए तो दादा–दादी या नाना–नानी से अच्छा दूसरा कोई मित्र हो ही नहीं सकता। वृद्धों का मान–सम्मान, उन की पूजा, उन की सेवा, देख–रेख सब से बड़ा तीर्थ और उनके आशिर्वाद को भगवान का आशिर्वाद माना जाता है। वृद्धों ने अपने जीवन में सारे रंग देखे होते हैं, दुख–सुख अपने जीवन में बिताये होते है, नफा–नुकसान झेले होते हैं और खुशीयॉ–गमीयॉ सहन करने की समर्था होती हैं। इस असीम अनुभव के कारण ही उनकी सलाह बहुत ही वजनदार और व्यवहारिक होती है। उनका कोई भी सुझाव निंदनीय नहीं होता।

एक संदेश वृद्धों के लिए भी है यदि वह राम ओर श्रवण जैसे आज्ञाकारी और सेवादार पुत्र और सीता/सावित्री जैसी बेटियॉ और बहुॅयें चाहते है तो उनको भी आदर्श सोच और व्यवहार के धारणी बनना होगा, क्योंकि ताली कभी भी एक हाथ से नहीं बजती है। अपनी औलाद से बे–मतलबी उम्मीद रखने वाले, बात बात पर झगड़ा करने वाले, बिना बजह रोक–टोक और दखल–अंदाजी करने वाले, बच्चों की मौज मस्ती को देख कर ईष्या करने वाले और हर समय खिजे खिजे और चिड़–चिड़े रहने वाले व्यक्ति न केवल अपना सम्मान घटाते हैं, बल्कि पारिवारिक सुख–शान्ति को भी भंग करते हैं। कुछ व्यक्ति अपनी अकल और प्राप्तियों को तो बहुत बड़ा–चढ़ा के पेश करते हैं, परन्तु अपने बच्चे–बच्चियों की अकल और प्राप्तियों को कम समझते हैं जिसको बच्चे कदाचित् पसंद नहीं करते। नौजवान पुत्र–पुत्रियों की अपनी स्वतंत्र सोच और कार्यशैली होती है। उनकी अपनी समर्था और सीमाऍ होती हैं। वह हर हाल में अपने बहुबल और बुद्धि को परखना चाहते हैं। बिना कारण दखल अंदाजी और रोक–टोक उनकी स्वतंत्रता और स्वाभिमान की भावना को ठेस पहुॅचाती है। इसलिए वृद्धों को ऐसा

करने से बचना चाहिए।

जहाँ तक परिवारिक जीवन के दुखांत का सम्बन्ध है उससे बचने के लिए मनुष्य को समझने, सोचने और व्यवहारिक होने की जरूरत है। माता–पिता को भी शुरू से ही अपनी औलाद को अच्छे संस्कार देने होंगे। अपना मिसाल रूपी जीवन बच्चों के सामने रोल–मॉडल के तौर पर पेश करना होगा। पुत्र–बहू को भी यह समझना होगा कि एक दिन बुढ़ापा उनके ऊपर भी आना है और जैसा व्यवहार और बर्ताब अपने माता–पिता के साथ कर रहे हैं, उनके बच्चे भी वह सब कुछ देख रहें है और उनको भी समय आने पर ''जैसी करनी वैसी भरनी'' के लिए तैयार रहना होगा। हर एक पुत्री को समझना होगा कि जिस तरह वह अपनी भाभियां को अपने माता–पिता की आज्ञाकार और सेवाकारी होने की उम्मीद करती हैं। उसी तरह का व्यवहार उनको भी अपने ससुराल में पूरा मान–सत्त्कार और आदर देना होगा। यदि पुत्री को अपनी जन्म देने वाली मां प्यारी है तो पुत्र को भी अपनी जननी माता उसी तरह प्यारी होती है जिस के साथ बहू उसको तोड़ के, उसका अपनी माता प्रति मोह भंग करके, गलत रास्ते पाकर पारिवारिक जिंदगी के साथ खिलवाड़ करती है। इस तरह करने से परिवारिक जीवन, बड़े पदों, धन–दौलत, जमीन–जायदादों के होते हुए भी, कभी खुशहाल, सुखी और मानने योग्य नहीं होगा। समाज भी ऐसे व्यवहार की इजाजत नहीं देगा, बल्कि दुतकारेगा भी। इसलिए घर–परिवार में हर एक को पूरी सूझ–बूझ, आपसी प्रेम–प्यार, आदर–मान, सहनशीलता और सही होंद की भावना से जीने की जांच सीखनी होगी। फिर चाहे घर में गरीबी ही क्यों न हो तब भी जीवन पूरा सुखदायी होगा।

संदर्भ :–

1. श्री गुरू ग्रंथ साहिब, पं. 1421
2. डॉ. गुरमीत सिंह सिंधू, ''ब्राह्मणवाद से हिन्दूवाद – वर्ण, जात, धर्म और राष्ट्रवाद'' गुरज्ञान बुक्स, पटियाला, 2018, पं. 108–109.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 147-149
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

FEMALE ALIENATION AND OPPRESSION IN KAMALA MARKANDAYA'S 'A SILENCE OF DESIRE'

-PROF. RAMESH V. PATIL
Head and Asst. Professor, Dept. of English, Bharat Mahavidyalaya, Jeur, Tal – Karmala, Dist – Solapur

The term Indian English Literature reflects the literary works written by Indian authors who are the natives of India and converse in at least one of the several Indian languages. This relatively new genre of literature has shown consistent growth with respect to style, content, themes etc. As a result, we are now surveying ample literary works of high merit in India. They exhibited Indianness with the sensations of varied customs of India. It proved to be a powerful tool to utter feelings of Indian women restricted to traditional household duties. Women in India got voices to express their medicaments and they started talking about women through the view points of women. This movement of awareness about equality of women in all spheres of life gave rise to the writings of Indian women novelists such as Anita Desai, Kiran Desai, Mahashweta Devi, Nayantara Sahgal, Shashi Deshpande, Shobha De, Arundhati Roy, Jhumpa Lahiri, Ruth Jhabvala, Manju Kapoor and Kamala Markandaya. Their literary works echoed the women agonies with respect to love, excitement, warmth, schooling, marriage system, solitude, search for identity, social, political and legal system etc.

'A Silence of Desire' is seemingly about the turmoils in the life of a government clerk, after his routine is shattered one day when he finds his wife missing when he returns home from work. Furthermore, he also realizes later that the reason she had given for her absence was not the truth. He suspects his wife of infidelity. Much flustered, and not helped by the discussions happening in his office on the social mores of womenfolk, he follows her and finds out something, which to him becomes a more painful thing to bear than what he had initially suspected his wife of. His structured life then goes through a turbulence, as his personal problems begins to affect his work, and even his character undergoes a change.

Kamala Markandaya portrays the assault of the views of western skepticism on the oriental faith of Sarojini, the female protagonist. Dandekar is a middle class clerk who is happily married to Sarojini. He is satisfied with his wife, his reasons being that she is good with the children and an excellent cook, an efficient manager of his household, a woman who still gives him pleasure after fifteen years of marriage. It is sufficient for Dandekar and for an average Indian man to know that he can command the services of his wife for conjugal relationship whenever he desires. The male ego is satisfied that the wife is only giver and man the eternal taker. He doesn't even think of reciprocity. He

is so used to obedience that a slight departure from the routine work upsets him. He also gets irritated with his God fearing and religious wife and makes fun of the Tulsi plant. Sarojini fits well into the traditional groove and hence she is a good wife.

Dandekar's family life is initially full of peace and harmony, with Sarojini maintaining the peace and order on the domestic scene. But there comes a time when Dandekar's security is threatened through Sarojini's alleviation from him. As to the knowledge of the depth of Sarojini's beliefs and conviction, Dandekar is totally indifferent to it. He is so immersed in his own beliefs and convictions that he attaches little importance to Sarojini's. Sarojini begins visiting a faith – healing Swamy to cure a growth in her womb. And whatever be the reactions of Dandekar against her secret visits to the Swamy, she keeps silence to maintain her mental and spiritual peace. She knows that faith and reason cannot go together and is confident that without faith she shall not be healed.

Her cousin Rajam also finds fault with Dandekar for having lost faith in religion because of his training by the British. Concealing the fact makes Dandekar suspicious about her. And he feeds insecure and anxious when he finds his home life shattering and stumbling. He always thinks his wife to be his property but now he thinks that Swamy is taking his wife away from him. Sarojini very often tells lies about her visits. Her lies and his discovery of a stranger's photograph in her trunk strengthen his suspicion. There appears to be an element of abnormally intense jealousy in him which is often the case with people prone to neurotic reaction. Markandaya shows how the candour and spontaneity of their relationship ends. There follows the confused mixture of lies, half truths, deceits, cunning and subterfuges.

She conceals her visits from her husband lest he should react to her decision in the negative. Dandekar realizes that Swami is taking his wife away from him but when Dandekar finally comes to know the real truth of Sarojini's neglect of her family, he feels truly contrite and persuades Sarojini to go to the hospital. The question of individual freedom and responsibility that each person has to grant the other his or her freedom arise here and is a complex one. Sarojini prefers faith healing to surgery. While Dandekar is a firm believer in modern medical science; hence her decision to keep her visits a secret.

In this way their honest differences of opinion lead to the clash of their coils and beliefs in traditional values and modern rationalistic beliefs. The effect of British culture and British education produced men like Dandekar who are alien to both British and Indian cultures, rooted in neither.

Markanday's creative imagination works on the clash between faith and reason and dramatizes it through Sarojini, and Dandekar, the rationalist, apparently united in a harmonious marriage but each a product of two different evolutions of thought. Both Dandekar and Sarojini learn the value of a secure home life, but in different ways. Both do not realize the value of certainty in life until they miss it.

'A Silence of Desire' offers the hope of a new realization of self, reconciling the modern and traditional for a better future. The good old days return with the fusion of two opposite ideas. Dandekar

aspires for peace in the end. In the world of Markandaya to have peace one should reconcile the innate impulses with social responsibilities. Dandekar can attain happiness only by going halfway in the relationship with Sarojini. He eventually understands that she has a right to freedom of thought, expression and action as much as he has a duty to her as much as he expects her to have it to him. He thinks that Swamy performs the social duties towards the deformed and the crippled. The Swamy is the example of free man without bonds and ties; he is good to all, and performs his duties in the spirit of 'Karmyoga'.

Sarojini is subjected to a conflict between self – satisfaction and her husband disliking of her ideas. Lack of union of her rigid and traditional ideas and the rational and scientific thinking of her modern minded husband leads her to mental pain. Dandekar, her husband does not approve of his wife's belief in faith – healing for the treatment of the growth of the tumor in her womb. He advises Sarojini to have the operation. Here each represents a view of life, one based on faith and convention, the other mainly on reason and truth. By depicting this Markandaya emphasizes, the conflict between faith reasons. In Dandekars case Kamala Markandaya gives expression to the needs of emotional response. He is actually threatened with the loss of Sarojini's companionship, and when she begins giving both time and money to Swamy, he becomes almost neurotic because of anxiety.

Select Bibliography :–

1. Chatterjee, Bankim Chandra. The Poison Tree; New Delhi Penguin Books, 1996. 295 – 296.
2. Begum, Jameela. A Glimpses of Indian women in Kamal Markandaya's novel's. Commonwealth Quarterly Vol.13 Dec, 1987.
3. Krishnaswamy, Shantha. The Women in Indian Fiction in English. New Delhi: Ashish Publishing House, 1984.
4. Markandaya, Kamala. A Silence of Desire. Rpt. Bombay, Jaico Publishing House, 1960.

Mob – 9423526470 / 8855870901
Email ID – rameshvp2975@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 150-154
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी साहित्य विमर्श की संभावनाएं और चुनौतियाँ

–डॉ. रमेश यादव

अध्यक्ष हिंदी विभाग, महारानी काशीश्वरी कॉलेज, कोलकाता।

1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोध स्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी साहित्य है। 20वीं सदी के आखिरी दशकों में भारत में नए सामाजिक आंदोलनों का उभार हुआ। स्त्रियों, किसानों, दलितों, आदिवासियों और जातीयताओं की 'नई' एकजुटता ऐसी मांगें और मुद्दे उठाए गए जो स्थापित सैद्धांतिक व राजनीतिक मुहावरों के माध्यम से आसानी से समझे और सुलझाए नहीं जा सकते थे। इन अस्मिताओं ने अपने साथ होने वाले शोषण के लिए अपनी खास अस्मिता को कारण बताया और उस शोषण तथा भेदभाव से संघर्ष के लिए उस संबंधित अस्मिता, पहचान को धारण करने वाले समूह, समुदाय को अपने साथ लेकर अपनी मुक्ति के लिए सामूहिक अभियान चलाया। चूंकि इस प्रक्रिया में शोषण और संघर्ष का आधार अस्मिताएं हैं, इसलिए इसे अस्मितावाद की संज्ञा दी गई। वंचितों के शोषण के खिलाफ उठ खड़ी हुई मुहिम में सामाजिक–राजनीतिक आंदोलन के अलावा साहित्यिक आंदोलन ने भी बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया है। स्त्रीवादी साहित्य और दलित साहित्य उसी का प्रतिफल है। अब आदिवासी चेतना से लैस आदिवासी साहित्य भी साहित्य और आलोचना की दुनिया में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुका है।

आदिवासी लोक में साहित्य सहित विविध कला–माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका था लेकिन वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा मूलतः मौखिक रही। जंगलों में खदेड़ दिए जाने के बाद भी आदिवासी समाज ने इस परंपरा को अनवरत जारी रखा। ठेठ जनभाषा में होने और सत्ता प्रतिष्ठानों से दूरी की वजह से यह साहित्य आदिवासी समाज की ही तरह उपेक्षा का शिकार हुआ। आज भी सैकड़ों देशज भाषाओं में आदिवासी साहित्य रचा जा रहा है, जिसमें से अधिकांश से हमारा संवाद शेष है। डॉ. अभिषेक कुमार यादव ने लिखा है–''किसी भी समाज के लिए साहित्य का सिर्फ इतना ही महत्व नहीं होता कि वह समाज और उसकी संस्कृति का चित्रण करता है बल्कि साहित्य उस समाज की ऐतिहासिक दस्तावेज भी होता है। ... साहित्य हमारी खुशियों दुःखों, विजय–पराजयों, अकेलेपन और सामूहिकता का अमूल्य दस्तावेज हे। अरूणाचल प्रदेश के जनजातीय समुदाओं के पास लोक–साहित्य का अपूर्व भंडार है जो एक ऐतिहासिक दस्तावेज भी है।''[1]

समकालीन आदिवासी साहित्य आंदोलन के ऐतिहासिक–भौतिक कारण हैं। दो दशकों पूर्व भारत की केंद्रीय सरकार द्वारा शुरू की गई आर्थिक उदारीकरण की नीति ने बाजारवादी का रास्ता खोला। मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार के नाम पर मुनाफे और लूट का खेल आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन से भी आगे जाकर उनके जीवन को दांव पर लगाकर खेला जा रहा है। आंकड़े गवाह हैं कि पिछले एक या दो दशक में

अकेले झारखंड राज्य से तकरीबन 10 लाख से अधिक आदिवासी विस्थपित हो चुके हैं। इनमें से अधिकांश लोग दिल्ली जैसे महानगरों में घरेलू नौकर या दिहाड़ी पर काम करते हैं।

विडंबना यह है कि सरकार के अनुसार राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में मूलतः कोई आदिवासी नहीं है, इसलिए यहाँ की शिक्षण संस्थाओं और नौकरियों में आदिवासियों के लिए आरक्षण या कोई विशेष प्रावधान नहीं है। विकास के नाम पर अपने पैतृक क्षेत्रों से बेदखल किए गए ये लोग जाएं तो कहाँ जाएं? यह दुखद है कि जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1993 में 'देशज' लोगों का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष के रूप में मनाने का फैसला किया तो भारत सरकार की प्रतिक्रिया थी–'संयुक्त राष्ट्र द्वारा परिभाषित इंडिजिनस लोग भारतीय आदिवासी या अनुसूचित जनजातियाँ नहीं हैं, बल्कि भारत के सभी लोग देशज लोग हैं और न यहाँ के आदिवासी या अनुसूचित जनजाति किसी प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक पक्षपात के शिकार हो रहे हैं। दरअसल पूरा मसला आदिवासियों को आत्मनिर्णय का आधिकार देने का था, जिसकी मांग आदिवासी साहित्य में भी देखी जा सकती है। अपने जल–जंगल–जमीन से बेदखल महानगरों में शोषित–उपेक्षित आदिवासी किस आधार पर इसे अपना देश कहें? आज बाजार और सत्ता के गठजोड़ ने आदिवासियों के सामने अस्तित्व की चुनौती खड़ी कर दी है। जो लोग आदिवासी इलाकों में बच गए, वे सरकार और उग्र वामपंथ की दोहरी हिंसा में फंसे हैं। अन्यत्र बसे आदिवासियों की स्थिति बिना जड़ के पेड़ जैसी हो गई है। नदियों, पहाड़ों, जंगलों, आदिवासी पड़ोस के बिना उनकी भाषा और संस्कृति तथा उससे निर्मित होने वाली पहचान ही कहीं खोती जा रही है। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व का इतना गहरा संकट इससे पहले नहीं पैदा हुआ। जब सवाल अस्तित्व का हो तो उसका प्रतिरोध भी स्वाभाविक है। सामाजिक व राजनीतिक प्रतिरोध के अलावा कला और साहित्य द्वारा भी इसका प्रतिरोध किया गया है और उसी से समकालीन आदिवासी साहित्य अस्तित्व में आया।

जब दिकुओं ने आदिवासी जीवन में अनावश्क हस्तक्षेप किया, आदिवासियों ने उसका प्रतिरोध किया है। पिछली दो सदियां आदिवासी विद्रोहों की गवाह रही हैं। इन विद्राहों से रचनात्मक ऊर्जा भी निकली, लेकिन वह मौखिक ही अधिक रही। रमणिका गुप्ता ने लिखा है–'' बहिरागत दिकुओं की भरमार और आदिवासी स्त्रियों के प्रति उनकी कुत्सित दृष्टि, मानसिकता और अभद्र व्यवहार, उन्हें अलग से साल रहा है। गैर–आदिवासी दूषित समाज का इनके प्रति विकृत रूख व अंदाज–इन्हें जंगली समझना व अपने मूल्य, संस्कृति और धर्म को उन पर जबरन या फुसला कर लादना, आदिवासी बुद्धिजीवियों को सह्य नहीं है।''2 संचार माध्यमों के अभाव में वह प्रतिरोध राष्ट्रीय रूप नहीं धारण कर सका। समय–समय पर गैर–आदिवासी रचनाकारों ने भी आदिवासी जीवन और समाज को अभिव्यक्त किया। साहित्य में आदिवासी जीवन की प्रस्तुति की इस पूरी परंपरा को हम समकालीन आदिवासी साहित्य की पृष्ठभूमि के तौर पर रख सकते हैं। जाहिर है कोई भी साहित्यिक आंदोलन किसी तिथि विशेष से अचानक शुरू नहीं हो जाता। उसके उद्भव और विकास में तमाम परिस्थितियां अपनी भूमिका निभाती हैं। समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श की शुरूआत हमें 1991 के बाद से माननी चाहिए। भारत सरकार की नई आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण–उत्पीड़न की प्रक्रिया तेज की, इसलिए उसका प्रतिरोध भी मुखर हुआ। शोषण और उसके प्रतिरोध का स्वरूप राष्ट्रीय था, इसलिए प्रतिरोध से निकली रचनात्मक ऊर्जा का स्वरूप भी राष्ट्रीय था। अब साहित्य में आदिवासी और गैर–आदिवासी रचनाकार बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं। इस साहित्य का भूगोल, समाज, भाषा, संदर्भ शेष साहित्य से उसी तरह पृथक है जैसे स्वयं आदिवासी

समाज और यही पार्थक्य इसकी मुख्य विशेषता है। यह आदिवासी साहित्य की अवधारणा के निर्माण का दौर है। आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किए गए और किए जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्‌घाटन तथा आदिवासी अस्मिता व अस्तित्व के संकटों और उसके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है, जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके 'आत्मनिर्णय' के अधिकार के साथ खड़ी होती है। हालांकि यह समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श का आरंभिक दौर है लेकिन इसके बावजूद यह सुखद है कि इसमें अभी तक 'स्वानुभूति बनाम सहानुभूति' जैसी गैर–जरूरी बहसें केन्द्र से दूर परिधि के इर्द–गिर्द ही घूम रही हैं। आखिर स्वानुभूति या अनुभूति की प्रामाणिकता को केंद्रीय महत्व मिले भी क्यों? निश्चय ही अनुभूति की प्रामाणिकता की जगह अभिव्यक्ति की प्रामाणिकता अधिक महत्वपूर्ण है और होनी भी चाहिए। यह सच है कि लंबे अनुभव, निकट संपर्क और संवेदनशीलता के बिना प्रमाणिक अभिव्यक्ति संभव नहीं है, खासकर आदिवासी संदर्भ में, लेकिन इसके बावजूद स्वानुभूति को एकमात्र आधार नहीं बनाया जा सकता।

चूंकि आदिवासी साहित्य विमर्श अभी निर्माण–प्रक्रिया में है, इसलिए अभी इसके मुद्‌दे भी आकार ले रहे हैं। 'आदिवासी कौन है' से शुरू होकर आदिवासी समाज, इतिहास, संस्कृति भाषा आदि पर पिछले एक दशक में कुछ बातें हुई हैं। हर साहित्यिक आंदोलन की शुरूआत और उसे आगे बढ़ाने में एक या अधिक पत्रिकाओं की भूमिका होती है। साहित्य जगत में आदिवासी मुद्‌दों को उठाने, उनसे जुड़े सृजनात्मक साहित्य को प्रोत्साहन देने में इन पत्रिकाओं ने अहम योगदान दिया है–'युद्धरत आम आदमी' (दिल्ली, हजारीबाग, संपादक–रमणिका गुप्ता), 'अरावली उद्‌घोष' (उदयपरु, संपादक–बीपी वर्मा 'पथिक'), 'झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखड़ा' (रांची, संपादक–चंदना टेटे), 'आदिवासी सत्ता' (दुर्ग, छत्तीसगढ़ संपादक–केआर शाह) आदि। इनके अलावा 'तरंग भारती' के माध्यम से पुष्पा टेटे, 'देशज स्वर' के माध्यम से सुनली मिंज और सांध्य दैनिक 'झारखंड न्यूज लाइन' के माध्यम से शिशिर टुडु आदिवासी विमर्श को बढ़ाने में लगे हैं।

ताराम सुन्हेर सिंह ने लिखा है–''आज संताली, कुडूख, असमिया, नागा, गोंडी जैसी आदिवासी भाषाओं में काफी साहित्य आ चुका है। गोंडी भाषा मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ में लगभग 2 करोड़ लोग बोलते हैं, ... भाषा किसी जाति की नहीं है। जिस पारिक्षेत्र में जो भी रहेगा उसका उस भाषा से परिचय हो जायेगा। गोंडी, कोरकू, कोलाम में साहित्य लिखा जा चुका है, आवश्यकता है उसकी व्यवस्था करने की।''[3] बड़ी संख्या में मुख्यधारा की पत्रिकाओं ने आदिवासी विशेषांक निकालकर आदिवासी विमर्श को आगे बढ़ाने में मदद की है, जैसे–'समकलीन जनमत' (2003), 'दस्तक' (2004), 'कथाक्रम' (2012), 'इस्पातिका' (2012) आदि। शुरू में हिंदी की प्रमुख पत्रिकाओं ने आदिवासी मुद्‌दों को छापने में उतनी रूचि नहीं दिखाई लेकिन अब विमर्श की बढ़ती स्वीकारोक्ति के साथ ही इन पत्रिकाओं में आदिवासी जीवन को जगह मिलने लगी है। छोटी पत्रिकाओं में आदिवासी लेखकों को पर्याप्त जगह मिल रही है।

आदिवासी लेखन विविधताओं से भरा हुआ है। मौखिक साहित्य की समृद्ध परंपरा का लाभ आदिवासी रचनाकारों को मिला है। आदिवासी साहित्य की उस तरह कोई केंद्रीय विधा नहीं है, जिस तरह स्त्री साहित्य और दलित साहित्य आत्मकथात्मक लेखन है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक–सभी प्रमुख विधाओं में

आदिवासी और गैर–आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी जीवन समाज की प्रस्तुति की है। आदिवासी रचनाकरों ने आदिवासी अस्मिता और अस्तिव के संघर्ष में कविता को अपना मुख्य हथियार बनाया है। आदिवासी लेखन में आत्मकथात्मक लेखन केन्द्रीय स्थान नहीं बना सका, क्योंकि स्वयं आदिवासी समाज 'आत्म' से अधिक समूह में विश्वास करता है।

अधिकांश आदिवासी समुदायों में काफी बाद तक भी निजी और निजता की धारणाएं घर नहीं कर पाईं। परंपरा, संस्कृति, इतिहास से लेकर शोषण और उसका प्रतिरोध–सब कुछ सामूहिक है। समूह की बात आत्मकथा में नहीं, जन कविता में ज्यादा अच्छे से व्यक्त हो सकती है। आदिवासी कलम की धार तेजी से अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर रही है। डॉ. विनायक तुमराम ने लिखा है–'' आदिवासी साहित्य जीवनवादी साहित्य है। आदिमों के सर्वांगीण उत्थान का सवाल लेकर यह स्थापित समाज व्यवस्था को ललकार रहा है।... इस साहित्य का सपना है कि आदिम समूहों में वर्ग रहित, जाति रहित समाज–व्यवस्था रची जाए,... आदिवासी साहित्य का स्वरूप व्यापक है। चाहे कोरकु जनजाति पर लिखा साहित्य हो अथवा गोंड, भील, परधान, कोलाम, आन्ध्र, महादेव, कोली (मछुआरे) बारली आदि किसी भी अन्य जनजाति पर लिखा साहित्य हो, उस सबका समावेश आदिवासी–साहित्य में है।''[4]

आजादी से पहले आदिवासियों की मूल समस्याएं वनोपज पर प्रतिबंध, तरह–तरह के लगान, महाजनी शोषण, पुलिस–प्रशासन की ज्यादतियां आदि हैं, जबकि आजादी के बाद भारतीय सरकार द्वारा अपनाए एक विकास के गलत मॉडल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल और जमीन छीनकर उन्हें बेदखल कर दिया। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई। इस प्रक्रिया में एक ओर उनकी सांस्कृतिक पहचान उनसे छूट रही है, दूसरी ओर उनके अस्त्वि की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया है। अगर वे पहचान बचाते हैं तो अस्तित्व पर संकट खड़ा होता है और अगर अस्तित्व बचाते हैं तो सांस्कृतिक पहचान नष्ट होती है, इसलिए आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। चूंकि आदिवासी साहित्य अपनी रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी विद्रोहों की परंपरा से लेता है, इसलिए उन आंदोलनों की भाषा और भूगोल भी महत्वपूर्ण रहा है। आदिवासी रचनाकरों का मूल साहित्य उनकी इन्हीं भाषाओं में है। हिंदी में मौजूद साहित्य देशज भाषाओं में उपस्थित साहित्य की इसी समृद्ध परंपरा से प्रभावित है। कुछ साहित्य का अनुवाद और रूपांतरण भी हुआ है। निर्मला पुतुल ने लिखा है–''साहित्य लेखन की ओर रूख किया जाये तो कहना हो होगा कि आदिवासी रचनाशीलता की मुख्य विधाएं हैं–कविता, कहानी, उपन्यास और संस्मरण, आलोचना और व्यंग्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने की दृष्टि से बुदु उरांव और मंजु ज्योत्स्ना के नाम लिए जा सकते हैं, लेकिन यह जोड़ते हुए कि उनके काम का परिणाम अभी तक अल्प है।''[5]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारत की तमाम आदिवासी भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य हिंदी, बांग्ला, तमिल जैसी बड़ी भाषाओं में अनूदित और रूपांतरित होकर एक राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर रहा है। प्रकारांतर से पूरा आदिवासी साहित्य बिरसा, सीदो–कानू और तमाम क्रांतिकारी आदिवासियों और उनके आन्दोलनों से विद्रोही चेतना का तेवर लेकर आगे बढ़ रहा है। इस तरह आदिवासी साहित्य के समक्ष चुनौतियां हैं तो प्रबल संभावनाएं भी हैं।

संदर्भ :–

1. यादव, अभिषेक कुमार (डॉ.), 'सूर्य के प्रदेश के साथ शुरूआती संवाद', साहित्यमाला : पूर्वोत्तर भारतीय साहित्य, डॉ. अनिता डगोरे (सं.) केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली, संस्करण 2017, पृ. 443
2. गुप्ता, रमणिका, 'कलम को तीर होने दो' रमणिका गुप्ता (सं.) 'कलम को तीर होने दो', संस्करण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 7
3. सिंह, ताराम सुन्हेर, 'पौराणिक मिथकों की आदिवासी व्याख्या, 'आदिवासी कौन' रमणिका गुप्ता (सं.), संस्करण 2016, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, पृ. 159
4. तुमराम, विनायक (डॉ.), आदिवासियों की अब तक की साहित्य यात्रा' आदिवासी : साहित्य यात्रा' रमणिका गुप्ता (सं.), संस्करण 2016, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, पृ. 25
5. पुतुल, निर्मला, हिंदी जगत में अपनी पैठ मजबूत करता आदिवासी समाज, साहित्यमाला :आदिवासी विमर्श, डॉ. अर्चना त्रिपाठी (सं.), केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली, सं. 2015, पृ. 13

ईमेल : rameshyadav6479@gmail.com मो. 9831934019

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 155-158
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी साहित्य में मुस्लिम पात्र छौंक की तरह आते है

–प्रा. डॉ. शेख साबेर शेख कदीर
हिंदी विभागाध्यक्ष, नैशनल कला विज्ञान महाविद्यालय पलसखेड़ा, त. सोयेगाव जिला. औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

प्रस्तावना :–

साहित्य और समाज परस्पर संबंधित होते हैं। साहित्य की जड़ें समाज में होती हैं। वह स्वयं एक सामाजिक उत्पादन है। इस स्थापना की झलक हिंदी उपन्यास में भी देखी जा सकती है। हिंदी उपन्यास अपने उदय के तिलिस्म–ऐय्यारी और जासूसी के दौर से चलकर एक लंबी यात्रा तय कर चुका है। उसने भारतीय समाज के विविध पहलुओं को छुआ है। अब उपन्यास के गलियारों में ऐसे लोग जगह पा रहे हैं जो कभी हाशिए पर थे। यह हिंदी उपन्यास का विकास ही है कि आज दलित, आदिवासियों एवं तृतीया पंथियों के जीवन पर उपन्यास लिखे जा रहे हैं। लेकिन मुस्लिम समाज पर हिंदी साहित्य में लेखन न के बराबर होता है, अगर कोई छुटपुट लिखता है तो वह मुस्लिम समाज का कोई लेखक लिखता है। इसी स्थापना के तहत मुस्लिम समाज के सैद्धांतिक पक्ष संबंधी रचनाओं का विश्लेषण करना जरुरी हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य का बहुत ही साफ तथा सटीक ढंग से मूल्यांकन किया जाए तो हमें समकालीन हिंदी साहित्य में मुस्लिम पात्र दमदार नजर नहीं आते, छौंक की तरह नजर आते है।

डॉ. श्यामाचरण दुबे जैसे समाजशास्त्री ने ''देश विभाजन की त्रासदी पर सशक्त और हिला देने वाले'' उपन्यास की माँग तो की थी पर उनकी नजर से भी देश विभाजन के बाद का मुस्लिम जीवन का व्यापक परिवेश छूट जाता है। 'शानी' ने सबसे पहले यह सवाल उठाया था कि हिंदी उपन्यास में मुसलमान कहाँ हैं?

'समकालीन भारतीय साहित्य' पत्रिका' के 41 वें अंक में नामवर सिंह से बात करते हुए 'शानी' ने सवाल उठाया था कि "क्या किसी भी देश का भौगोलिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक मानचित्र 12–15 करोड़ मुस्लिम वजूद को झुठलाकर पूरा हो सकता हैं?...नामवर जी कई वर्ष पहले आपने कहा था कि हिंदी साहित्य से मुस्लिम पात्र गायब हो रहे हैं। मुस्लिम पात्र जब थे ही नहीं तो गायब कहाँ हो रहे हैं। प्रेमचंद में नहीं थे, यशपाल में आंशिक रूप से थे।''[1] शानी' की यह बात सौ फीसदी सच है।...गोदान जो उच्चकोटि का उपन्यास कहा जाता है और हमारे भारतीय गाँव का जीवंत दस्तावेज है, उसमें गाँव का कोई मुसलमान पात्र क्यों नहीं हैं? क्या अपने देश का कोई गाँव इनके बिना पूरा हो सकता है? प्रेमचंद फिर भी उदार हैं, जबकि प्रख्यात उपन्यासकार यशपाल के 'झूठा सच' में नाम मात्र के मुस्लिम पात्र नहीं हाड़–मांस के जीवंत लोग हैं।

यशपाल का दो खंडों में प्रकाशित उपन्यास 'झूठा सच" विभाजन की त्रासदी पर हिंदी में लिखा गया पहला ऐसा उपन्यास है जो इसे विराट ऐतिहासिक–राजनीतिक फलक पर प्रस्तुत करता है और विभाजन के बाद स्वाधीन भारत में शुरू होने वाली राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा स्वाधीनता संघर्ष के मूल्यों में होने वाले झड़न को

यथार्थवादी ढंग से चित्रित करता है। विभाजन को लेकर लिखा गया भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' भी यशपाल के 'झूठा सच' की तरह ही आधुनिक क्लासिक की श्रेणी में रखा जाता है। यशपाल को इसे लिखने की प्रेरणा 1970 में भिवंडी, जलगांव और महाड़ में हुए सांप्रदायिक दंगों से मिली थी और वहां के दौरे ने उनकी रावलपिंडी की यादों को ताजा कर दिया था। इस उपन्यास का फ़लक 'झूठा सच' जैसा विराट तो नहीं है लेकिन सांप्रदायिक हिंसा, समुदायों के बीच असुरक्षा और दूसरे समुदायों के प्रति नफरत पैदा करने की प्रक्रियाओं का इसमें सूक्ष्म अध्ययन पेश किया गया है। कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' भी विभाजन पर हिंदी में लिखे गए उल्लेखनीय उपन्यासों में गिना जाता हैं। लेकिन इसमें पूर्णरूपेण मुस्लिम किरदार नजर नहीं आए। विभाजन को दर्शाते पात्र के रूप में ही दिखाई दिए। लेकिन उसके बाद? अज्ञेय, जैनेन्द्र, नागर जी या उनकी पीढ़ी के दूसरे लेखकों में मुस्लिम किरदार क्यों नहीं नजर आए? और उससे भी ज्यादा तकलीफ़देह यह है कि आजादी के बाद के पीढ़ी में भी क्यों नहीं नजर आए? आजादी के बाद के कहानीकारों में और उसके बाद के कहानीकारों में भी नहीं नजर आए। ...हिंदी में मुस्लिम किरदार क्यों नहीं नजर आए है? जबकि हिंदी में कुछ मुस्लिम लेखक है। जैसे राही मासूम रज़ा का उपन्यास 'आधा गांव', 'दिल एक सादा कागज', 'हिम्मत जौनपुरी', बदीउज्जमा का उपन्यास 'छाको की वापसी', अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास– 'झीनी झीनी बीनी चदरिया', 'जहरबाद', नासिरा, मेहरुन्निसा परवेज़, असगर वजाहत जैसे मुस्लिम साहित्यकारो के साहित्य कृतियों में पूरी तरह से मुलिम किरदार नजर आते है।

इसी के साथ–साथ हिंदू और मुसलमानों की यह सांस्कृतिक एकता को उजागर करते हुए दिखाई देते है। और गुलशेर खान 'शानी' का उपन्यास, 'काला जल' मुस्लिम समुदाय के जीवन पर एक प्रमाणिक दस्तावेज़ है और बड़े कमाल का है। पहला कमाल तो खुद इसका शीर्षक है। वो चाहते तो इसको 'काला पानी' कह सकते थे क्योंकि पूरे उत्तर भारत में 'पानी' 'जल' से ज्यादा प्रचलित है। पर जाने क्यों उन्हें 'काला जल' चुना? शायद इसलिए कि काला पानी एक सज़ा है और जीवन कोई सज़ा नहीं। उन्होंने जीवन में व्याप्त सड़ांध आपदाए, जो एक सज़ा से कम तो नहीं पर भी जीवन है, दिखाने के उद्देश्य से शायद 'काला जल' चुना होगा। और दूसरा कमाल ये कि जब ये छपा तो किसी संघी या किसी लीगी की नज़र से बच गया वार्ना कोई संघी इसे 'लव जिहाद' के नाम पर या कोई लीगी मज़हब के आडम्बर को उजागर करने पर अपनी राय जारी करके इसको लोगों तक पहुंचने नहीं देता। 'शानी' के इस उपन्यास में दो नायक हैं : एक खुद 'शानी', जो मुस्लिम समाज में आई हुई विकृतियो की बड़ी बेहरमी से चीर फ़ाड़ करते चलते हैं और दूसरा बब्बन, जो इंसान की कुंठाओं के साथ न जीता है, न मरता है। दोनों नायक साथ–साथ चलते हुए आख़िर में एक होकर ऐसा सच रचते हैं जो 'शानी' को प्रेमचंद के समकक्ष खड़ा ही नहीं ऊंचा भी कर देता है। 'शानी' का सच प्रेमचंद के सच के समान कड़वा नहीं है पर, एक गहरी वेदना के साथ दिल में चुभता है। और ये हक़ीक़त कि दबे कुचले हुए लोग, चाहे किसी भी धर्म या मज़हब से जुड़े हैं एक जैसे मुखोटे पहने हुए हैं और एक जैसा दर्द लेकर जीते हैं, बयाँ करता है। 'शानी' ने जिस बेबाकी से मुस्लिम समाज का वर्णन किया है, मैं सोचता हूँ शायद उतना विरले ही किसी मुस्लिम लेखक ने किया होगा।

मतलब 'शानी' और इस उपन्यास की व्यापकता का आकाश अनंत है। वस्तुतः 'काला जल' एक बंधे–ठहरे जीवन की अनेक त्रासदियों से भरी महागाथा है। इस उपन्यास में दरपेश हाशिए के मुस्लिम समाज

के अहम सवालों के जवाब अभी भी लुप्त हैं। साहित्य से भी और राजनीति से भी। इसे बेवजह ही आजादी के बाद के भारतीय कथा साहित्य में एक क्लासिक का दर्जा हासिल नहीं हुआ है। अनुभवों की अत्यंत सघन बुनावट, जीवन स्तिथियों का बेहद सूक्ष्म और प्रमाणिक चित्रण और पात्रों के संस्कारों की जबरदस्त गहरी पकड़ फिलहाल तक किसी अन्य भारतीय उपन्यास में नहीं मिलती।

दुनिया भर में फिक्शन (गल्प/उपन्यास) में बड़े–बड़े लोगों ने शिद्दत के साथ मुस्लिम मन की पड़ताल की है। लेकिन माना जाता है कि 'शानी' ने 'काला जल' के जरिए मुस्लिम निम्न–मध्यवर्गीय समाज का जो अद्वितीय और अत्यंत प्रामाणिक खाका भाषाई सौंदर्यशास्त्र के समस्त शिखरों को छूकर खींचा है, वह विश्व साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।[2] इसीलिए अर्थ कि अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए भगवानदास मोरवाल ने साहित्य आज तक के मंच से कहा था "आजादी के बाद किसी हिंदू लेखक का एक भी उपन्यास नहीं है जिसमें मुस्लिम समाज पूरी पूर्णता के साथ आता हो।"[3] इसी मंच से कहा अंजुम उस्मानी ने कहा कि "समाज मजहब से नहीं बनता। मैंने जो साहित्य पढ़ा उसमें मुझे हिंदू–मुस्लिम नहीं दिखा। मुस्लिम समाज तो इसमें था ही नहीं।"[4]

साहित्य आज तक के मंच के सवाल पर मुस्लिम समाज को मुख्य धारा में लाने के लिए साहित्य कितना मायने रखता है? इस सवाल पर अब्दुल बिस्मिल्लाह ने कहा था कि "मुस्लिम समाज मुख्य धारा में है। हम नंबर दो के नागरिक नहीं हैं। हम पूरे भारतीय हैं।"[5] इसी मंच से नरेंद्र कोहली ने कहा था कि "साहित्य का धर्म है पीड़ित के पक्ष में खड़े होना।"[6]

यह सच बात है कि साहित्य में मुस्लिम समाज के दमदार पात्र नजर नहीं आते, छौंक की तरह नजर आते है। आजादी के बाद के समकालीन साहित्यकारों में और आज मेरी पीढ़ी के साहित्यकारों में भी नहीं नजर आते। समकालीन हिंदी साहित्यकार भी शायद भूल गए है भारत सिर्फ हिंदुओं का देश नही है। यह मुस्लमानों का भी देश है।

मुसलमानों के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन परस्पर भिन्न हैं तथा एक ही भू–भाग में रहने वाले हिंदू और मुसलमानों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में समानता भी देखने को मिलती है। भारतीय मुसलमान शिक्षा के क्षेत्र में देश के अन्य समुदायों से पीछे है। इस समुदाय में बड़े पैमाने पर फैली गरीबी और बेरोजगारी इसके लिए जिम्मेदार है। मुस्लिम समुदाय की वे बिरादरियाँ जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक है, वे शिक्षा के मामले में भी आगे हैं। आधुनिक सोच और शिक्षा से वंचित मुस्लिम समाज का एक बड़ा तबका मुल्ला–मौलवियों के प्रभाव से ग्रस्त जीवन के हर क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। मुसलमानों साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से बहुत कम है। प्राथमिक शिक्षा के बाद शिक्षा छोड़ देने वाले मुस्लिम बच्चों की संख्या सबसे ज्यादा है। इसी कारण स्नातक तथा स्नातकोत्तर करने वाले मुस्लिम छात्रों की संख्या उनकी आबादी के अनुपात में काफी कम है। मुस्लिम समाज का अधिकांश हिस्सा भयंकर गरीबी से जूझ रहा है। इनकी स्थिति हिंदू धर्म के मजदूर तथा श्रमशील जनता की तरह ही है। वह भी मजदूरी एवं छोटे मोठे व्यवसाय उद्योगों के भरोसे जिंदगी गुजार रहे हैं। मुस्लिम समाज की अधिकांश आबादी स्वरोजगार पर भरोसा करती है। क्योकि अधिकांश स्नातक तथा स्नातकोत्तर शिक्षा अर्जित करने के बाद भी मुसलमानों को नोकरिया नहीं मिलती। वे धर्म एवं अंधभक्ति मानसिकता के चश्में के शिकार हो जाते है।

निष्कर्ष :-

हिंदी साहित्य में अब भारतीय मुस्लिम समाज में राजनीति के अलावा सामाजिक, आर्थिक, सुधार, शिक्षा जैसे सवालों पर साहित्य कृतियाँ हिंदू लेखक द्वारा भी लिखी जानी चाहिए। सतह पर दिख रहे मुसलमानों में राजनीति का यह ठंडापन हिंदी साहित्य द्वारा एक परिपक्वता का अहसास करा सकता है। हिंदी साहित्य से मुस्लिम समाज में वैचारिक बदलाव की यह हवा जितनी तेज होगी, मुस्लिम समाज उतना ही प्रगति करता दिखेगा। यह सिर्फ मुसलमानों की प्रगति नहीं होगी। यह सम्पूर्ण भारत की प्रगति होगी। चौदह प्रतिशत आबादी को दरकिनार करके कोई देश प्रगति नहीं कर सकता। एक सांस्कृतिक आवाजाही, सांस्कृतिक सहजीविता ही इस संकट का अंत है। जाहिर है इसके लिए हिंदी में हिंदू लेखक द्वारा मुस्लिम साहित्य सृजन समझदारी और साझेदारी से होना जरूरी है। मैंने हिंदी साहित्य में एक बहस शुरू की है जिसमें हिंदुस्तानी मुसलमानों की उम्मीदें दिखती हैं और यही उनके बेहतर भविष्य और सार्थक लोकतंत्र की राह बनाएगी। पिछले 70 सालों में असहिष्णुता और धार्मिक अतिवाद सबसे ज्यादा इस सरकार में दिखाई देता है। जिसके चलते प्रिंट मीडिया, ऑनलाइन मीडिया या फिर सोशल मीडिया हो या हिंदी साहित्य हो या साहित्यकार या फिर राष्ट्रीय संगोष्ठी हो या अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी कहीं पर भी मुस्लिम समाज के अहम सवाल सामने नहीं आते। हाशिए के मुस्लिम समाज के अहम सवालों के जवाब अभी भी खाली हैं। आजादी के बाद के भारतीय साहित्य से भी और राजनीति से भी। कहीं पर भी मुस्लिम विमर्श की बात नहीं होती। बात कड़वी है लेकिन सच्ची है।

संदर्भ सूची :-

1 समकालीन भारतीय साहित्य – 'शानी', साहित्य अकादमी, दिल्ली प्रकाशन, वर्ष १९९१, भाग ११

2 जन्मदिन विशेष : शानी और उनका 'काला जल', – नवजीवन ट्विटर हैंडल १६ मई २०२०

3 साहित्य आज तक, नई दिल्ली, १७ नवंबर २०१८

4 साहित्य आज तक, नई दिल्ली, १७ नवंबर २०१८

5 साहित्य आज तक, नई दिल्ली, १७ नवंबर २०१८

6 साहित्य आज तक, नई दिल्ली, १७ नवंबर २०१८ (www.aajtak.in) #SahityaAajTak18

मो नं 9096430400 ईमेल sabersir5@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 159-161
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

तिरस्कृत वर्ग की व्यथा : गाथा –पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा

–डॉ. संजीव कुमार. के
एम.इ.एस अस्माबी कॉलेज, कोटुंगल्लुर, त्रिशूर।

समकालीन हिन्दी साहित्य शोषित और तिरस्कृत वर्गों को लेकर कई विमर्श परम्पराएं दिखाई पड़ती हैं। चाहे वह नारी विमर्श हो, दलित विमर्श हो, या आदिवासी विमर्श हो। इन विमर्शों के समान्तर एक नया विमर्श अपनी उपस्थिति दर्जा कर रहा है– वह है किन्नर विमर्श। विश्व में दो लिंग के अलावा एक अन्य प्रजाति के लोग रहते है, जो न ही पुरुष के श्रेणी में आते है और न ही स्त्री श्रेणी के अन्तर्गत। जिन्हें हम हिजड़ा, किन्नर, नपुंसक, खोजा आदि उपनामों से संबोधित करते है। समाज किन्नर जाति को स्त्री–पुरुष के दायरे से बाहर समझता है। इस अस्वीकार्यता के कारण किन्नर समुदाय कई विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता हैं।

चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित 'पोस्ट बॉक्स नं.203 नाला सोपारा' (2016) उपन्यास में एक तृतीय लिंगी बालक की वेदना और संवेदना को बताया गया है। ये उपन्यास पत्रकारिता शैली में लिखा गया है। पूरा उपन्यास माँ–बेटे के बीच के संवाद पत्र के माध्यम से होती है। बिनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली जन्म से नपुसंकलिगं होता है, उनके घरवाले समाज के भय के कारण उसे किन्नरों के हाथ में सौंप देता है। माँ घरवालों से छुपकर पोस्ट बॉक्स द्वारा आया पत्र के माध्यम से अपने बच्चे के साथ बात करता है। बिन्नी कई शिकायत अपनी माँ से करती है – "तूने, मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया। मेरी सुरक्षा के लिए कोई कानूनी कार्रवाई क्यों नहीं की? मनसुख भाई जैसे पुलिस अधीक्षक पप्पा के गहरे दोस्त के रहते हुए? वो अपने आप मुझे बचाने केलिए तो आ नहीं सकते थे। मेरे आंगिक दोष की बात पप्पा ने उनसे बांटी जो नहीं होगी। वरना वह मुझे बचाना जरुर आ जाते"।[1] विनोद के मन में दुनिया को लेकर ही नहीं बल्कि खुद के बारे में भी बहुत अधिक सवाल होते है। वह अपने माँ से पूछता है–"मंजुल के गोद में सम्भालते हुए मैंने तुझसे प्रश्न किया था,'मेरे नुन्नू क्यों नहीं है, बा?' तो तूने मुझे बहलाया था। 'बच्चे के जन्मते ही आटे का नुन्नू बनाकर लगाना पड़ता है। नर्स भूल गयी तूझे लगाना। लगवा देंगे तुझे भी"।[2] विनोद की ओर से लिखी चिट्ठियों के माध्यम से किन्नर जीवन की अनगिनत त्रासदियों को प्रस्तुत कर गंभीर संवेदनशीलता का परिचय मिलता है।

बिन्नी के माँ–बाप ने उसे कई डाक्टरों को दिखलाता है। लेकिन किसी से कोई लाभ नहीं होता। वह अपनी शारीरिक विकृति के साथ बडा होता जाता है। हिजड़ों की नायिका चंपाबाई बिन्नी को अपने साथ ले जाने केलिए कई बार उसके घर आकर धमकती है। कुछ समय तक उसके पिता चंपाबाई को खाली हाथ भेजने में सफल हो जाता है। अंत में चंपाबाई पूरी जानकारी ईकट्ठा करके घर आते है, धमकाती है, बिन्नी को उसके साथ ले जाती है। विनोद अपनी स्कूल के दोस्त ईशान को फोन करता है,उनकी आवाज़ सुनकर चौक जाता है और

कहता है–" तू.... तू ज़िन्दा है विनोद? तू जिन्दा कैसे हो सकता है? स्कूल में तेरे पप्पा ने खबर दी थी। तू अब इस दुनिया में नहीं रहा। तू अब स्कूल नहीं आ सकता। तेरे गाँव में एक भयानक जीप दुर्घटना में तेरी मृत्यु हो चुकी है। स्कूल का तू होशियार विध्यार्थी था ना? दूसरी सुबह स्कूल की असम्बली में हमारी सीनियर ईंचार्ज मैम ने तेरी आकस्मिक दुखद मृत्यु की घोषणा की थी। तेरी स्मृति में हम लोगों ने एक मिनट का मौन रखा था"।[3] विनोद के पिता उनकी असलियत छुपाने के लिए उसकी जूठी मृत्यु की खबर फैलाता है। किन्नरों को सर्वप्रथम परिवार से विस्थापन का दंश भुगतना पडता है। समाज में हरएक माता–पिता के संबंध में यह एक कटु सत्य है कि यदि उनके बच्चे शारीरिक या मानसिक रूप से अपाहिज है तो उसे स्वीकार करते है, किन्तु यदि बच्चे यौनिक कमी है तो उसे त्याग करते है।

चंपा को सौंप जाते समय बिनोद की उम्र चौदह की थी। वह पढ़–लिखकर अपने पैरों पर खड़े होने की जिद अपने घर छोडने के बाद भी नहीं छोडता। किन्नर समाज में विनोद बिमली बनाती जाती है। विनोद कहता है–"जिस दिन चंपाबाई के सुपुर्द कर दिया गया, कसाईखाने के कपाट खुल गया। गाली हो गाया मैं। हिजड़ा, हिजड़ा, हिजड़ा! गलियों की गाली। किन्नर कह देने भर से नासूर छटक जाएँगे देह से"?[5] विनोद अपने लिए प्रयुक्त शब्द 'हिजड़ा', उसे अच्छा नहीं लगता। ये शब्द उसे मन ही मन अपमानित करता है।

जहाँ किन्नरों की समस्याओं के लिए समाज को दोषी ठहराया गया है, वहीं खुद किन्नर समुदाय को भी है। जिस उपेक्षित, अपमानित, अभिशप्त जीवन को वे झेलते है, वे आने वाली पीढी को भी उसी जीवन की ओर ले जाते है। इस कृत्य के पीछे एक ही लक्ष्य है– अपनी मण्डली की शक्ति बढ़ाना। "यह भीतर से खोखले और डरे हुए लोगों की जमाते है। ये चाहते हैं, जिस विशेष परिभाषा से उन्हें मंडित किया गया है, उसी रूप में ही सही, उनकी भी एक संगठित उपस्थिति समाज में बने। उनकी ताकत में इजाफा हो। ढूंढते फिरते हैं, जननांग, विकलांग को, इसीलिए। कहीं से कोई टोह मिल जाए। गुरु परम्परा से दीक्षित कर बनाए रखना चाहते हैं उस एकता को जो उन्हें आपस में जोड़े रहे। अब आप ही बताएँ बा, उन्हें समाज की मुख्यधारा में क्यों नहीं स्वीकार्य होना चाहिए"?[5]

बिनोद से बिमली बना दिया बिन्नी हिजड़ों की डेरे पर रहते हुए फरीदाबाद में सुबह–सुबह गाड़ियां धोने का काम करता। बिनोद कभी भी उस पेशे को नहीं अपनाता है, जिस पर हिजड़ा समुदाय पलते है, भिक्षावृत्ति, नाच, मसलन बधाई माँगना आदि। बाद में स्थानीय विधायक जी की मदद से कम्पूटर संचालन का कोर्स पास करके, उनके दफ्तर नौकरी करने लगता है। "इस अवमानना को झेलने से इंकार कीजिए। कुली बनिए। मिस्त्री बनिए, ईट–गारा ढोइए, जो चाहे, सो कीजिए, पाएँगे मेहनत के कौर की तृप्ति"।[6] विनोद की प्रेरणा से उसके अड्डे पर रहने वाली पूनम जोशी कुछ विरोधों के बावजूद उनके जैसे काम करने के लिए तैयार हो जाती है।

अपन्यास राजनीति लोगों की कुटिल षड्यंत्र को भी चित्रण करते है। ये लोग भी किन्नरों को मानवीय गरीमा दिलाने में नहीं, बल्कि उसे आरक्षण का लालच देकर उन्हें वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करते है। स्थानीय विधायक अपनी पार्टी द्वारा चलाने हिजड़ा आंदोलन के सामने विनोद को खड़ा करते है। लेकिन विनोद जानता है कि आरक्षण हिजड़ा बिरादरी की समस्या का इलाज नहीं है। विनोद विधायक जी की पार्टी के मंच पर खड़े होकर किन्नरों की स्वाभिमान और आत्म निर्भरता पर ज़ोर देता है। विनोद कहता है– "किन्नर बिरादरी का संघर्ष उन्हें मनुष्य माने जाने का संघर्ष है। फिर 0अदर्स में क्यों ढकेला जा रहा है। 0अदर्स को खत्म कर देना चाहिए,

सरकार को। देखिए, मेरा मानना यह है, अपना लिंग उन्हें चुनने की स्वतंत्रता दीजिए। यही मैं सोचता रहा हूँ। मानता भी आया हूँ। आज आप सबके सामने वही सब दोहरा रहा हूँ। विमर्श कीजिए इस मुददे पर....."[7] ऐसा कानून की व्यवस्था होना चहिए, जो जननांग दोषियों के समाज से बहिष्कृत किये जाने की प्रक्रिया को रोक ले। अर्थ यह है कि सरकार जननांग दोषियों को परिवार और अपने संबन्धियों के साथ रहने को प्रोत्साहित करे और समाज में अवसर प्रदान करने की कानून का निर्माण करें।" पुरानी पहचान को मिटाए बिना नयी पहचान सम्भव नहीं । सख्त कानून बना दिया जाए। कन्या भ्रूण हत्या पाप है, अपराध है। कन्या भ्रूण हत्या के दोषी माता–पिता अपराधी हैं। उससे कम दंडनीय अपराध नहीं जननांग दोषी बच्चों का त्याग"।[8] आज संवैधानिक लड़ाई में बहुत कुछ जीत लिया है। सर्वोच्च न्यायालय ने 15 अप्रैल 2014 को किन्नरों के पक्ष में अपना ऐतिहासिक निर्णय दिया। तदनुसार उन्हें तृतिय लिंग (थर्ड जेण्डर) के रूप में समाज में सम्मानजनक ढंग से जीने का अधिकार दे दिया गया है। समाजिक लडाई अब भी ज़ारी हैं।

चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' उपन्यास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उपेक्षित वर्गों में भी किन्नर सर्वाधिक उपेक्षित वर्ग है। किन्नर समुदाय की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं जैविक संरचना पक्षों को बहुत ही गहनता से प्रस्तुत करते है। किन्नर समुदाय के उत्थान के लिए किन्नर समुदाय और समाज के मुख्यधारा के लोग दोनों एक दूसरे के समीप आने की आवश्यकता है। उनके अधिकारों के संरक्षण के साथ उन्हें समाज से जुड़ने के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए।

संदर्भ सूची :-

1. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा पृ. सं – 11
2. वही. पृ. सं– 13
3. वही. पृ. सं– 31
4. वही. पृ. सं– 42
5. वही. पृ. सं– 50
6. वही. पृ. सं– 187
7. वही. पृ. सं– 195
8. वही. पृ. सं– 178

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 162-163
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रूपजीवाओं की अभिशप्त जिन्दगी : 'फूलरानी' कहानी के विशेष संदर्भ में

–विजय लक्ष्मी. एल

हाईस्कूल अध्यापिका, सरकारी मॉडल एच.एस, मूवाट्टुपुषा, एरणाकुलम, केरल।

रूप के बल पर जीविका चलाने वाला रूपजीवा है। जीविकोपार्जन हेतु वह अपनी लज्जा तथा संकोच को बेहूदापन के स्तर पर उतरने को विवश है। आर्थिक विपन्नता के कारण ही अधिकतर स्त्रियाँ मन–मारे इस दैहिक व्यापार के लिए निकलती हैं। अपने परिवारवालों की क्षुधाशमन हेतु अन्य जीविकोपार्जन की अप्राप्य में इस घृणित वृत्ति की ओर स्त्रियाँ आकर्षित होती हैं। सदियों से चलती आ रही इस कशमकश ज़िन्दगी को भोगनेवाली नारियों की त्रासदी को साहित्य में उसकी यथार्थ के साथ उपस्थित किया है। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने इस नरकीय ज़िन्दगी की वास्तविकता को सेवासदन के ज़रिए हमारे सम्मुख रखा था। आगे में बहुतेरे साहित्यकारों ने शरीर विक्रय करने वाली नारियों पर अपना विशेष ध्यान दिया है।

नई कहानी के अग्रणी कथाकार अमरकांत ने अपनी कहानी 'फूलरानी' में फूलरानी नामक रूपजीवा के जीवन के दुख को मार्मिक ढंग से उभारा है। फूलरानी धन–मानी और रईसों के घर शादी–ब्याह के अवसरों पर नाच–गान के लिए बुलायी जाती थी। स्वतंत्रतापूर्व तक उसको अपने संगीत–नृत्य कौशल का प्रदर्शन करने के लिए सही मंच मिला, किंतु स्वातंत्र्योत्तर बदले परिवेश से सामाजिक गतिविधियों में जो रद्दोबदल आयी उससे नृत्य और संगीत का कलेवर भी बदल गया– 'धीरे–धीरे शैकीन, सामन्त, रईस और कद्दान परिदृश्य से गायब होते गये और उनकी जगह अजीब बेढंगे, अधकचरे, अर्धउज्जड़ लोगों ने ले ली, जिनके पास किसी सभ्य, बारीक शौक के लिए फुरसत ही न थी।'(पृ. सं–291) फूलरानी जैसी स्त्रियों को इसी के अलावा अन्य कोई श्रम असाध्य होने पर अपनी ज़िन्दगी को चलाने के लिए यही धन्धे का अनुगमन करने की नौबत आ 'पड़ी–इधर के रहे न उधर के यानी त्रिशंकु की तरह बीच में निराधर घूमती छटपटाती ज़िन्दगियाँ, जो न ऊपर जा सकीं और न पहले की अपनी जमीन ही पा सकीं।' (पृ. सं–291)

फूलरानी दो जुड़वाँ बेटियों की माँ थी। घर–गृहस्थी सँभालने में उसके मर्थ को कतई इच्छा न थी। वह हर समय दलालों के साथ नशे में डुब रहता था और साल में एक–दो लड़कियों को पकड़कर कोतवाली ले जाता था। ऐसी गैर–ज़िम्मेदारियों के रास्ते वह अपना जीवन व्यतीत करता था। गरीबी, बच्चों की शिक्षा, पारिवारिक जिम्मा उठाने में पति की विमुखता जैसे कई चुनौतियों के सामने भी फूलरानी अपने परिवार को डूबना नहीं चाहती थी। परिवार का बागडोर अपने हाथ आने पर उसे परिवार चलाने के लिए धनार्जन करना ज़रूरी था हालांकि इसमें इज्जत–बेइज्जत का सवाल ही नहीं उठता था। बस उसमें यही ख्वाइश थी कि रोज़मरै खर्च का प्रबन्ध हो साथ ही अपनी बेटियों के भविष्य में सुधार लाये। उसकी आशा–आकांक्षाओं को मज़बूत तब मिला जब सरकार

की ओर से यह खबर फैली कि–'सबको एक–एक घर मिलेगा, सिलाई की मशीन मिलेगी, कढाई–बुनाई सीखने–सिखाने का पक्का इन्तज़ाम होगा, उनकी सन्तान की शिक्षा की पूरी व्यवस्था होगी और इस पेशे को छोड़कर समाज की मुख्यधारा में शामिल होने और सम्मानजनक स्वावलम्बन के लिए मासिक आर्थिक सहायता भी प्राप्त होगी।' (पृ.सं–291, 292) लेकिन यह तो केवल स्वप्निल कल्पनाएँ थीं, जिसके पीछे सामाजिक छल छदम का नाटक था। सुंदर भविष्य के इंतज़ार में फूलरानी की आँखें पथरा गयी और दिल भी उतर गयी। धीरे–धीरे समझ में आया कि कुछ भी नहीं होनेवाला है। फलतः न वह बेटियों को शिक्षा दे पायी न कोई अन्य स्वावलम्बी काम के लिए काबिल। आर्थिक अवस्था भी दिन–व–दिन गिरती गयी।

सालों बीत गयी। अधेड़ावस्था को पार कर वृद्धावस्था में पहुँच चुकी फूलरानी को ज़िन्दगी में मात्र अभाव और अवहेलना ही संपत्ति थी। बेटियाँ बड़ी हो गयी थीं और वे अभावों के दायरे से मुक्त होने के लिए तरस रही थीं। इस तरह की दुविधापूर्ण ज़िन्दगी में वे माँ को कोस्ती है– 'हाय अम्मा, तुमने हमारे लिए कुछ भी नही किया। तुम पुराने ज़माने की तारीफ हमारे सामने न किया करो। सब झूठा है। तुम्हारे पास तो पैसा–रुपया, गहना कुछ भी नहीं है। इज्जतवाला काम तो छोडा, पर तुमने हमे थोड़ा–बहुत पढ़ा दिया होता और धन से मदद की होती तो इस काम में भी चमक जाते।'(पृ.सं–291) न वह स्वस्थ ज़िन्दगी जी पायी न अपने बेटियों को दे पायी। इतनी कष्ट उठाने पर भी उसकी ज़िन्दगी असफल ही रही। इस अभिश्प्त ज़िन्दगी के पाप–भार को धो डालने की चाह में वह गंगा–स्नान करने निकलती है। क्योंकि नदी मोक्षदायिनी मानी जाती है– 'कितनी प्यारी होती है नदी ! वह सबको सुख देती है। अमीर, गरीब, दुखिया, अपाहिज किसी को भी दुत्कारती नहीं। सबको बुलाती है, सबका स्वागत करती है।'(पृ.सं–295) लेकिन समस्या वहाँ भी अभरकर आयी। स्नान के बाद घर–वापसी के रास्ते कुछ छोकरों ने हँसी मज़ाक करके, तालियाँ बजाते, फिकरा उछालते उसका पीछा किया– 'अरे, सत्तर चूहे खाकर, भगतिन बनके कहाँ चली?'(पृ. सं–296) अनसुनी करके तेज़ी से चलने पर भी छोकरे उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए और ऐसा करतूत किया कि उसकी पिड़ली में ढेला फेंक दिया–'हाय अम्मा, वह रुआँसी आवाज़ में चीख पड़ी। लड़खड़ा कर सँभल तो ज़रूर गयी, लेकिन आगे चला नही गया तो झुककर हाथ पिंडली के ऊपर सहलाने लगी। साथ में आँखों से अनचाहे आँसु गिरने लगे।'(पृ. सं–297)

शारीरिक और मानसिक रूप से अस्वस्थ होकर घर लौटी फूलरानी को देखकर बेटियाँ परेशान हुई। पिडली का सूजन सहनीय था मगर दिल का दर्द काँटे की तरह चुभती रही। माँ के साथ हुई इस अन्यास से बेटियाँ क्रोध से चिल्लायी। मगर क्या करें? सभ्य समाज से लड़ने की ताकत नहीं होने की वजह से सब कुछ बरदाश्त करके तमाम दुखों को दबते हुए जीने की विवशता इनकी नियती बन चुकी है– 'क्या तुम अपने पाप कटाकर स्वर्ग जाना चाहती हो? वहाँ भी तुमको कौन पूछेगा? वहाँ भी तुम्हारे लिए कोई जगह न होगी। सबसे बड़ा स्वर्ग वह अपना घर है, चुपचाप यही पड़ी रहो।' (पृ.सं–298) अवसाद और नैराश्य से पीड़ित रहते फूलरानी जैसी रूपजीवाओं की विडम्बनाओं का यथार्थ रूप यहाँ दृष्टव्य है। एक हद तक समाज ने ही उसे मांस का दरिया बना दिया था। वह चाहते हुए भी समाज उसे स्वस्थ वातावरण में जीने का अवसर नहीं दिया। आम जनता की सुविधाएँ तक उसके लिए वर्जित थी। पूरा जीवन तलघर के अंधेरे में झटपटाती हुई व्यतीत करके आखिर वह वैराग्य की राह पर निकल पड़ती है।

संदर्भ :-

1. आधार ग्रन्थ : अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ–भाग–2– फूलरानी– अमरकांत–भारतीय ज्ञानपीठ, 2013

मो. 9061036390

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 164-168
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मन्नू भंडारी के उपन्यासों में नारी–विमर्श : एक अनुशीलन

–डॉ. संतोष कुमार अहिरवार
डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर

सारांश :–

हिन्दी कथा साहित्य को महिला–लेखन के माध्यम से समृद्ध करने वाली लेखिकाओं में मन्नू भंडारी का नाम शीर्षस्थ है। वह नारी विमर्ष से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों को औपन्यासिक फलक पर प्रस्तुत करती हैं। मन्नू भंडारी ने उपन्यास–साहित्य ज्यादा नहीं रचा पर जो रचा है उसमें नारी–जीवन की वास्तविकता इतनी सहजता और बारीकी से झलकती है कि वो हर पाठक को अन्दर तक छू लेती है। उनके द्वारा रचित एक इंच मुस्कान (1961, सहयोगी उपन्यास), आपका बंटी (1971), महाभोज (1979), कलवा (1971), स्वामी (1982), उनके समर्थ लेखन के साक्षी हैं। 'कलवा' उपन्यास को छोड़कर अन्य उपन्यासों में नारी–जीवन से संबंधित अनेक जटिल प्रश्नों को उठाया गया है। प्रायः इन सभी उपन्यासों में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती तथा समाज व पुरूष की यातना झेलती हुई नारी के चित्रण के साथ नारी की उस छवि को भी अभिव्यक्ति मिली है, जो पुरूष के समकथ बराबरी की मांग करती है। विवाह, संतान, प्रेम एवं कार्यक्षेत्र आदि के संबंध में, नए खतरों से जूझती, उत्तर आधुनिकतावादी मूल्यों से टकराती तथा पुरूष के एकाधिकारों में अपना दखल दर्ज करने में सक्षम है।

मन्नू भंडारी ने अपने उपन्यासों में नारी–विमर्श का जो स्वर उठाया है, वह उनके अपने अनुभव की जमीन से उपजा है। लेखिका ने नारी की जिस पीड़ा व दमन का अनुभव किया है, उन्मुख आकाश में विचरने के लिए जिन सुख–स्वप्नों की कल्पना की है, उस भारतीय नारी की संवेदना लेखिका के लेखन में नारी–विमर्श के रूप में अभिव्यक्त हुई है। मन्नू भंडारी ने नारी–विमर्श का महत्वपूर्ण पक्ष स्त्री–देह का उन्मुक्त चित्रण एवं यौन सम्बन्धों की उन्मुक्तता के अभिव्यक्तिकरण की विशेष की विशेष रूप से आलोचना की है। नारी–विमर्श के माध्यम से प्रशंसनीय रूप में हिन्दी में मन्नू भंडारी द्वारा रचित उपन्यासों में नारी–मुक्ति उसकी सुरक्षा और स्त्री के अधिकारों के संदर्भ में एक गंभीर चिंतन को व्यापक धरातल पर उभारा गया है। मन्नू भंडारी ने अपने औपन्यासिक लेखन के केन्द्र में नारी जीवन के जिन पक्षों को रखा है, उनमें समाज व परिवार में नारी की चिंतनीय दशा चाहे वो दशा विवाह से संबंधित हो या संतान से संबंधित या प्रेम मे नारी की स्थिति से संबंधित हो या फिर नारी की कार्यक्षेत्र में स्थिति से संबंधित हो नारी पर पुरूष का वर्चस्व, नारी का शोषण नारी की आर्थिक निर्भरता, नारी की पुरूष के समकक्ष अधिकारों की मांग प्रमुख है। इन उपन्यासों की वनाबट और बुनावट इन्ही मुद्दों को पक्ष और विपक्ष में रखते हुए नारीत्व को पूर्णता–प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ाती है। अतः मन्नू भंडारी के समग्र लेखन को समझने हेतु उनकी विविध अवधारणाओं को समझना आवश्यक है जो उनकी रचनाओं का मूलाधार है।

विवाह के प्रति नारी के दृष्टिकोण मे निष्चित रूप से नवीनता एवं परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित हो रहे है। महिला लेखिकाओं ने विवाह के संबंध में अनेक बदलते दृष्टिकोणों को स्पष्ट किया है। इनके उपन्यासों में एक ओर विवाह संबंधी कुप्रथाओं जैसे बहू विवाह, अनमेल विवाह, विधवा नारी का उसके देवर से विवाह आदि का विरोध प्रदर्शित है वही दूसरी ओर विवाह संबंधी अनेक नवीन दृष्टिकोणों का चित्रण है, जैसे प्रेम–विवाह, विजातीय विवाह, विधवा या परित्यक्ता विवाह आदि। मन्नू भंडारी ने भी अपने उपन्यास साहित्य में विवाह संबंध को नए–पुराने संदर्भो के साथ उठाया है। कुछ संदर्भ परम्परागत रूप से चले आये हैं तो कुछ आधुनिक काल की देन है पर लेखिका मन्नू भंडारी ने उन्हें सशक्त रूप से उठाया है– 'मेरे ख्याल में तुम भारत के संदर्भ में विवाह–संस्था के भक्ति के बारे में जानना चाहते हो तो इतना समझ लो कि सारे आधुनिकीकरण के बावजूद कुछ सदियों तक तो इसे कोई खतरा नहीं है लेकिन इसके स्वरूप को जरूर बदलना होगा, इसके परम्परागत दकियानूसी रूप न तो इसे परिवार में पुरूष के वर्चस्व का आधार बना रखा है, जिसमें स्त्री के लिए विवाह सम्बन्ध नहीं, मात्र बंधन बनकर रह गया। अब आज की आधुनिक स्त्री इस बंधन को स्वीकार करने को तैयार नहीं, परिणाम तलाक की बढ़ती संख्या, ऐसी स्थिति में विवाह की जरूरत पर ही प्रष्न उठने लगे हैं।[1] विवाह के प्रसंग में नारी स्वयं को अब किसी बंधन में बांधने को तैयार नहीं है। बदलते सामाजिक परिवेश मे नारी ने स्वयं को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में घोषित करने का जो साहस दिखाया है उसका उदाहरण मन्नू भंडारी के उपन्यासों की नारी पात्र अमला, रंजना, शकुन, मिनी आदि।

'एक इंच मुस्कान' उपन्यास की नारी पात्र 'अमला' पति किशोरी बाबू द्वारा विवाह के कुल एक वर्ष बाद ही सत्रह वर्ष की उम्र में त्यागी परित्यक्ता नारी है। अमला के मन में विशेषकर विवाह के प्रति विरोध का भाव है क्योंकि विवाह ने उसे अपमान और आन्तरिक पीड़ा दी है, पिता जब उसे पुनर्विवाह के लिए कहते है तो अमला दृढ स्वर में जबाव देती है– 'मैं किसी से विवाह करना नही चाहती, किसी से भी नहीं। मै इतनी निर्बल और नरीह नहीं हूं कि जीवन बिताने के लिए कोई सहारा चाहिए।'[2] अमला अपना अकेलापन विवाह द्वारा दूर नही करती बल्कि विवाह बंधन से मुक्त रहकर मुक्त आसंग में मुक्ति तलाषने लगती है। उपन्यास की दूसरी प्रमुख नारी पात्र है 'रंजना' जो अपने विवाहित जीवन में हो रहे शोषण को बर्दाश्त नही करती हैं। वह पति 'अमर' को छोड़कर चली जाती है। रंजना अपने पति से कहती है – 'आपके भीतर वही पुराना सामन्तवादी पति जिन्दा है. .. आप चाहते हैं कि पत्नी नौकरी तो करे ही साथ ही साथ घर की देखभाल करे, नौकर से सिर मारे कपड़े संभाले, बटन लगाए, बच्चे खिलाए, फिर पति की पूरी–पूरी सेवा भी करे उसका चौका–चूल्हा करे, हाथ पांव दबाए– फिर भी पति को यही शिकायत कि न वह पति को देखती है न घर को।'[3] इस तरह रंजना का विवाहित जीवन में शारीरिक, आर्थिक, और मानसिक शोषण होता है तो उसका परम्परागत मान्यताओं से विष्वास हट जाता है, वो उन्हें तोड़कर समाज में नारी–मुक्ति का सही आयाम प्रतिष्ठापित करती है।

'आपका बंटी' उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र 'शकुन' के जीवन का सत्य है कि नारी की जायज महत्वकांक्षा और आत्मनिर्भरता पुरूष के लिए चुनौती बन जाती है। नतीजे में दाम्पत्य तनाव उसे अलगाव तक ला छोड़ता है, जो शकुन का नही बल्कि भारतीय समाज में निरन्तर अपनी जगह बनाती, फैलाती और अपना कद बढ़ाती आधुनिक नारी का सत्य है। 'डॉ निर्मला जैन भी बंटी के चरित्र से अधिक शकुन के चरित्र को जटिल और प्रभावक मानती हैं।'[4] शकुन आधुनिक सोच से सम्पृक्त एक ऐसी नारी का चरित्र जीती है जो प्राचीन

परम्पराओं और रूढ़ियों मे विश्वास नहीं रखती है अजय के साथ तनाव भरे माहौल में रोज–रोज अपने व्यक्तित्व को दबाते हुए मृत प्राय करते चलना उसे स्वीकार नहीं। 'शुरू के दिनों मे ही गलत निर्णय ले डालने का एहसास दोनो के मन में बहुत साफ होकर उभर आया था, जिस पर हर दिन और हर घटना ने केवल सान ही चढ़ाई थी। भीतर ही भीतर चलने वाली एक अजीब ही लड़ाई थी वह भी, जिसमें दम साधकर दोनों ने प्रतिक्षा की थी कब सामने वाले की सांस उखड़ जाती है और वह घुटने टेक देता है।'[5] शकुन भले ही एक माँ के अथवा पत्नी के रूप में रूढ़ियों से विरोध रखती हो लेकिन जब सवाल उसके व्यक्तित्व का आता है तो वह फिर से मूल्यों में बँधना पसंद करती है वैवाहिक मूल्यों को नकार नही पाती क्योंकि उसके अन्दर भी एक नारी भावना मौजूद रहती है जो घर परिवार और एक जीवन साथी भी चाहती है – 'और कहीं की कही पहुँच जाए फिर भी पुरूष का साथ उसके लिए कितना जरूरी है– पर वह साथ हो सही अर्थों में।'[6] 'स्वामी' उपन्यास की नारी पात्र 'मिनी' सामाजिक परम्पराओं और संस्कारों के कारण आत्मधिक्कार और पापबोध वाली कुल–वधु नहीं बनती और न ही पति के चरणों में झुककर अपने किए की क्षमा माँगती है। वह तो आधुनिक भारतीय नारी की भूमिका अंतर्द्वद्व को झेलते हुए अंत में पत्नित्व को चुनती है।

मणिबाबू मनि को समझाते हुए कहते है – 'मिनी तू घनश्याम से शादी करना, वही तेरे लिए सही पात्र है ... तेरे मन की बात मैं जानता हूँ। तुझे नरेन्द्र प्यार कर सकता है, पर निभा घनश्याम ही सकेगा।'[7] 'महाभोज' उपन्यास की नारी पात्र इस तरह की है जो रूढि बन चुकी परम्पराओं में ही जीवन सुख से जीती है जिन्हें अपने घर परिवार एवं पति से बेहद लगाव होता है, जिनका अपना निजी व्यक्तित्व घर एवं पति के आगे कुछ भी नही होता है, जिन्हें सिर्फ अपने घर एवं पति के सुख–दुःख से ही सरोकार होता है। पति सुखी तो वे सुखी, पति दुःखी तो वे दुःखी। उनकी अपनी सोच, अपने विचार भी पति देव तक की केन्द्रित रहते है, और उनकी नारी–मुक्ति जन्म–जन्मान्तर के बंधन विवाह–संबंध को भोगते हुए ही पूरी होती है।

उपन्यास की नारी पात्र 'जमना बहन' जो मुख्यमंत्री दा साहब की पत्नी है। इसी तरह की नारी है जो रूढ़ि बन चुकी भारतीय परम्पराओं को आजीवन ढोती रहती है एवं प्रसन्नता का अनुभव करती है। यदि वैवाहिक जीवन में कोई दुःख भी होता है तो उसे अपनी नियति मानकर चुप रहती है क्योंकि उनका सर्वस्व ही उनका पति है– 'सचमुच पति के साथ बैठने का समय ही नहीं मिलता कभी उनको पर किसी तरह का गिला या शिकायत नहीं है उन्हें पति का बड़प्पन नहीं सबसे बड़ा संतोष है उनका यों दा साहब खुद राजनीति की बात नहीं करते, पर वे हैं कि एक–एक बात की खबर रखती हैं – चाहे पांडे जी से, चाहे लखन से या कही और से। जब कोई संकट की स्थिति आती है तो दा साहब से अधिक चिंतित होती है और जब संकट टल जाता है तो प्रसन्नता भी दा साहब से अधिक जमना बहन को होती है।'[8] मन्नू भंडारी विवाह संस्था को नकारती नहीं है बल्कि विवाह संस्था में रहकर नारी मुक्ति को नया आयाम देती है।

समाज में नैतिकता बनाए रखने के लिए विवाह संस्था का होना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक विवाह संस्था के नाम पर होने वाले नारी शोषण को रोकना। समाज में रूढ़ी बना चुकी परम्पराओं को ढोना अब आधुनिक नारी के लिए कठिन है, वो रूढ़ी बन चुकी परम्पराओं मे परिवर्तन की मांग करती हैं। नारी की यह मांग समय के अनुसार गलत नहीं है, क्योंकि परिवर्तन ही सृष्टि का नियम है। मन्नू भंडारी जैसी संवेदनशील लेखिका मे समाज की नब्ज भली भाँति पहचानने की ताकत है, उन्हें नारी जीवन की कुशल चितेरी माना जाता है, उनकी

संवेदना नारी के अंतस्तल तक पहुँचकर नारी की संतान संबंधी उलझनों को जानने के लिए सदैव प्रयत्नशील रही है। लेखिका मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' उपन्यास में नारी और संतान के मध्य उपजे द्वंद्व को अंकित किया है। 'आपका बंटी' उपन्यास में नारी शकुन की परेशानी अजय से अलग होने के बाद भी कम नही होती बल्कि संतान बंटी को लेकर और अधिक बढ़ जाती है। उसके व्यक्तित्व के दो हिस्से हो जाते हैं, एक नारीत्व का तो दूसरा मातृत्व का। 'त्याग, सेवा अपने को होम कर देना, अपने को मिटा देना क्या यही है स्त्रीत्व के गुण–उसकी महानता की कसौटी? क्यों नही किसी ने शकुन की तकलीफ को समझा उसे महसूस किया?'[9] मन्नू भंडारी ने आधुनिक नारी की इस पीड़ा को समझा महसूस किया और बड़े विश्वसनीय और प्रभावी ढंग से नारी में आये इस सहज बदलाव को नारी पात्र 'शकुन' के रूप में रचा।

प्रेम न जो रहस्यमायी भावना है और न ही पाशविक भोग। वह सर्वोच्च भावों के मागदर्शन के अधीन एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति आकर्षण है। प्रेम के संबंध में यह भी सच है कि –'प्रेम शब्द का अर्थ स्त्री और पुरूष दोनों के लिए ही होता है। इस शब्द का प्रयोग समझ–बूझकर न करने पर ऐसी गंभीर गलत फहमियाँ पैदा हो जाती है जो प्रेमियों मे बिलगाव तक पैदा कर देती हैं। 'बायटन' ने कहा है पुरूष का प्रेम पुरूष के जीवन का एक हिस्सा भर होता है, लेकिन स्त्री का तो यह सम्पूर्ण अस्तित्व ही हैं।'[10] मन्नू भंडारी ने अपने उपन्यास–साहित्य मे प्रेम का यथार्थ के ठोस धरातल पर चित्रित कर प्रेम की एक–एक पर्त को अलगाते हुए प्रेम को निराकृत किया है। 'मन्नू भंडारी किसी कपोत कल्पित या अलौकिक की पक्षधर नहीं हैं, क्योंकि प्रेम जीवन की अनिवार्यता है। वह यथार्थ की कंकरीली पथरीली जमीन पर चलकर ही परिपक्व होता है। जिन्दगी की विद्रूपताओं, विसंगतियों, विकृतियों को झेलते–झेलते ही किसी विशेष क्षण में व्यक्ति प्रेम की मधुर अनुभूति से गदगद होता है। यही अनुभूति अनुभावक को उसकी रिक्तता की मांग में चुटकी भर जयोतिर्मयी बना देती है। इसलिए यह सहज स्वीकार्य है कि प्रेम महसूस करने के लिए एक उदार मानसिकता अपेक्षित है।'[11] 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास की 'अमला' पुरूष से प्रेम संबंध तो रखती है पर इस प्रेम संबंध में जब बन्धन महसूस करती है तो बड़ी निर्ममता से उस प्रेम संबंध का त्याग भी कर देती है। 'मेरे जीवन में किशोरी आया, मेजर कपूर आया, कैलाश आया और चन्द दिनों के परिचय के आधार पर ही प्रेम–पत्र लिखकर विवाह का प्रस्ताव करने वाला चावला भी आया। जब आये थे तब मैं सुखी नहीं हुई थी –'चले गए तो दुःखी नहीं हूं।'[12] इस तरह मन्नू भंडारी ने अपने उपन्यास साहित्य में एक अलग परिप्रेक्ष्य में नारी के व्यक्तित्व को उभारा है। वह प्रेम को लेकर भावुक नही हैं। प्रेम और विवाह को वह दो स्तरों पर रखकर देख सकती हैं और विवाह के लिए प्रेम का त्याग भी कर सकती हैं। वह यह सोचकर यह निर्णय करती है कि जिन्दगी का केवल भावुकता के आधार पर देखना नहीं चाहिए।

निष्कर्षतः मन्नू भंडारी एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहती है जहां नारी को पुरूष के समान ही अधिकार प्राप्त हों, उसका भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व व व्यक्तित्व हो। वह साहित्य में नारी के स्वतंत्र निर्माण पर बल देती हैं। व उसकी गरिमा, वास्तविक सम्मान और उसकी रक्षा के प्रति अधिक जागरूक हैं यद्यपि वे एक औसत भारतीय नारी का चित्रण कर सकी हो, लेकिन उन्होंने जिस विशिष्ट भारतीय नारी को प्रस्तुत किया है वह न केवल समसामयिकता का सही रूप है, बल्कि नई बनने का प्रयत्न करने वाली नारी समाज की आकांक्षाओं की पहचान भी कराती हैं। मन्नू भंडारी ने उपन्यास साहित्य में कही भी भारतीय परम्पराओं का विरोध नहीं किया है

लेकिन रूढ़ि बन चुकी परम्पराओं में अपनी नारी पात्रों के माध्यम से परिवर्तन अवश्य किया है चाहे वो परिवर्तन अमला, रंजना, के रूप में हो या शकुन, मिनी और रूक्मा के रूप में। इन नारियों के भीतर सम्मान और अधिकार के लिए अपनी संघर्ष मात्रा में मानसिक चोरों से क्षत–विक्षत होकर मुक्ति के लिए जो तड़प और छटपटाहट है वही अंधेरे से उजाले की ओर जाती पगडंडी को संकेत है। अतः इनका साहित्य नारी विमर्श–नारी मुक्ति का प्रस्थान बिन्दु ही माना जायेगा। व नारियों की स्थितियों–परिस्थितियों के सूक्ष्म आकलन तथा कुशल प्रस्तुतीकरण में सिद्ध हस्त है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची :-

1. सं. हरिनारायण, कथादेश पत्रिका, दिल्ली, जनवरी 2001, पृ0 173–174
2. मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव, एक इंच मुस्कान, राजपाल एण्ड सन्स, प्रकाशन दिल्ली संस्करण, 2001 पृ0 87
3. वही, पृ0 148
4. डॉ. वंशीधर, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मन्नू भंडारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य, नटराज, पब्लिशिंग हाउस, करनाल (हरियाणा), संस्करण, 1983, पृ0 7
5. मन्नू भंडारी, आपका बंटी, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ0 37
6. वही, पृ0 110
7. मन्नू भंडारी, स्वामी नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2001, पृ0 27–28
8. मन्नू भंडारी, महाभोज, राधाकृष्ण प्रकाषन, नई दिल्ली, तेईसवा संस्करण, 2000, पृ0 154
9. मन्नू भंडारी, एक कहानी यह भी, (आत्मकथा), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृ0 118
10. अनुवाद–डॉ. प्रभा खेतान, सीमोन द बोउवार (स्त्री उपेक्षिता), हिन्दी पाकेट बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2002, पृ0 331
11. डॉ. ब्रजमोहन शर्मा, कथा लेखिका मन्नू भंडारी, कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1991 पृ0 85
12. मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव, एक इंच मुस्कान, राजपाल एण्ड संन्स, प्रकाशन, दिल्ली संस्करण, 2001 पृ0 160

डॉ. संतोष कुमार अहिरवार
द्वारा डॉ. बी.एल. अहिरवार (प्रोफेसर)
वार्ड क्र. 04 पथरिया जिला दमोह (म0प्र0) पिन– 470666
दूरभाष – 9589077310
ई–मेल – drsantoshpha@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 169-172
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित-स्वर्ण कामकाजी संबंध : जूठन भाग दो

-सरिता कुमारी
पी–एच.डी शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजीव गांधी विश्वविद्यालय, रोनो हिल्स, दोइमुख, अरुणाचल प्रदेश–791112

ओमप्रकाश वाल्मीकि की प्रसिद्ध आत्मकथा 'जूठन' का पहला खंड सन् 1997 ई. में प्रकाशित हुआ इसके 18 वर्ष बाद सन् 2015 में दूसरे खंड का प्रकाशन हुआ। यद्यपि हिंदी साहित्य में अनेक महत्त्वपूर्ण आत्मकथाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, किन्तु 'जूठन' के इस दूसरे खंड का अपना महत्त्व है जिसने पाठक के मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला है। पहले खंड में गाँव का परिवेश, स्कूली जीवन, नौकरी मिलना, विवाह का चित्रण है तो दूसरे खंड में नौकरी के दौरान रह रहे देहरादून, जबलपुर, माता–पिता की मृत्यु, सेवानिवृत्ति के बाद शिमला में रहना एवं इलाज हेतु दिल्ली जाने का चित्रण है।

दलितों से स्वयं को श्रेष्ठ समझने की बीमारी स्वर्णों में प्राचीन काल से ही रही है। यह रोग समाज को अंदर से खोखला कर रही है और बहुत हद कर चुकी है। इस रोग से यह समाज आज तक पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो पाया है। दलितों के साथ केवल छुआछूत ही नहीं बरती जाती बल्कि उनकी कामयाबी, उनका कौशल, उनका ज्ञान, उनके तजुर्बे को भी हमेशा शक की निगाह से देखा जाता है। अधिकतर गैर दलित उनको कामयाब देखकर स्वयं को अपमानित महसूस करते हैं। उनके द्वारा जहाँ मौका मिलता है दलितों को नीचा और असफल साबित करने की कोशिश की जाती है, जैसे उनका मुख्य काम ही वही हो। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को अपनी नौकरी के दौरान अकसर ऐसी विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है और एक दलित एवं कर्मठ होने के नाते उन्होंने ऐसी परिस्थितियों को एक चुनौति के रूप में लिया तथा स्वयं को साबित करके सभी लोगों का मुह बंद किया। ओमप्रकाश जी ने इस मानसिकता पर गहरा प्रहार किया है कि दलित सवर्णों से बेहतर नहीं हो सकते। अपनी लगन व कर्मठता से उस मानकिता को गलत सिद्ध किया है जो दलितों की योग्यता को शक की निगाह से देखते हैं।

चन्द्रपुर महाराष्ट्र से तबादले के बाद जब ऑर्डनेंस फैक्टरी देहरादून में आते हैं तो इस फैक्टरी के प्रभारी जेठी जी को वाल्मीकि जी की योग्यता पर संदेह होता है कि एक दलित वाल्मीकि डिजाइनर कैसे हो सकता है। वाल्मीकि जी से जब वे मिलते हैं तो पहला प्रश्न ही यही करते हैं कि – "यहाँ डिजाइनिंग का काम होता है, आप कर पाएँगे?"[1] यह प्रश्न ही गलत है। क्योंकि जेठी जी सवर्णवादी मानसिकता के ग्रस्त हैं, इसलिए ऐसा बेतुका प्रश्न करते हैं, उन्हें यह पता होना चाहिए कि यह व्यक्ति उसी पद के लिए चुना गया है तभी वह वहाँ आया है, अन्यथा वह वहाँ नहीं होता। जेठी जी ने यह प्रश्न सिर्फ इसलिए किया क्योंकि सामने वाला व्यक्ति दलित है। वाल्मीकि जी के यह बताने पर कि उन्होंने मुम्बई से इस कार्य के लिए प्रशिक्षण लिया है तथा ऑर्डनेंस फैक्टरी चन्द्रपुर में यही काम कर रहै थे, तो वे चौंक जाते हैं और उन्हें तनिक भी भरोसा नहीं होता, वे कहते

हैं–"वाल्मीकि...वह भी डिजाइनर...?"[2] यह उनकी कल्पना से बाहर था कि एक वाल्मीकि का इस पद पर आना। जेठी जी का फैक्टरी के डिप्टी जनरल मैनजर पद्मनाभन जी के पास वाल्मीकि जी की शिकायत लेकर पहुँचना और विफल होने पर उनका परेशान होना यह सिद्ध करता है कि वे यह बर्दाश नहीं कर पा रहे थे कि एक वाल्मीकि उन्हीं के साथ काम करेगा। अगर उस पद पर कोई सवर्ण आया होता तो जेठी जी निरूसंदेह उनका स्वागत गर्मजोशी से करते और बड़ा प्रसन्न होते। वे वाल्मीकि जी को अपने अधीन रखना चाहते थे, जो हो नहीं पाया इस कारण वे चिढ़ गए थे। वाल्मीकि जी कहते हैं –"मुझे ऐसा लगा कि मेरे सरनेम को लेकर वे कुछ ज्यादा ही पूर्वग्रही हो गए थे।"[3] फैक्टरी के डिप्टी जनरल मैनजर पद्मनाभन जी भी सवर्ण ही हैं किन्तु उनमें जाति को लेकर किसी प्रकार की कोई परेशानी या पूर्वाग्रह दिखाई नहीं देता। वे लेखक का बस काम देखते हैं तथा लेखक के अच्छे काम की वजह से उनकी बड़ाई करते हैं।

इसी फैक्टरी में दो मजदूरों के बीच किसी बात लेकर हाथापाई हो जाती है उसके बाद जब वे दोनों एक दुसरे के खिलाफ रिपोर्ट करते हैं तत्पश्चात फैक्टरी के महाप्रबंधक द्वारा अधिकारी रमेश कुमार ढींगरा को मामले की जाँच करके रिपोर्ट प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया। हाथापाई करने वाले में संयोगवस एक दलित था इसलिए सारी गलती उसके सर मढ़ दी जाती है और रिपोर्ट में उसे एस.सी कहकर उसके व्यवहार पर भी प्रश्न चिह्न लगा दिए जाते हैं। हर परिस्थिति में दलितों को शक के कटघरे में लाकर खड़ा कर दिया जाता है।

फैक्टरी में काम करने के दौरान वाल्मीकि जी लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर सन् 1994 ई. में 'अस्मिता अध्ययन केन्द्र' की स्थापना की जिसका मूल्य उद्देश्य था लोगों में पढ़ने की प्रवृत्ति को विकसित करना तथा डॉ अम्बेडकर, बुद्ध और ज्योतिबा फूले के विचारों से आम लोगों को परिचित कराना। छुट्टी के बाद उन्हें जितना भी वक्त मिलता वे इस काम के लिए देते थे तथा वे और उनके साथी आम जनता को जागरूक करने में सफल हो रहे थे।'अस्मिता अध्ययन केन्द्र' के कार्यक्रमों की भनक फैक्टरी का महाप्रबंधक के.पी. सिंह को लगी, जो अक्खड़ मिजाज वाले थे। उन्होंने ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को बुलाया और सामने पाते ही उनपर टूट पड़े, चिल्लाने लगे कि–"तुम अपने आप को समझते क्या हो...एक अच्छी नौकरी मिल गई है तो हजम नहीं हो रही है...अगर यही सब करना है तो जाओ बाहर और करो भंगी–चमारों की नेतागिरी और कुछ तो तुम लोगों के वश में है नहीं, बस जाति के नाम पर दूसरों को गालियाँ ही बको...।"[4] के.पी. सिंह का यह रवैया सिर्फ इसलिए था क्योंकि ओमप्रकाश वाल्मीकि जी दलित थे। समाज सेवा करना, सामाजित कार्य में लगना, जनता को जागरूक करना कहाँ का अपराध है जो इस तरह के क्रूर वाक्यों का सामना करना पड़ता है। गालियाँ दलितों ने गैर–दलितों को नहीं दी है, इतिहास गवाह है कि स्वर्णों ने दलितों को कितनी भद्दी–भद्दी गालियों से संबोधित किया है, जो के.पी. सिंह के वाक्य से भी सिद्ध होता है। और रही बात नेतागिरी करने कि तो समाज–सेवा के लिए किसी न किसी को तो आगे आना ही पड़ेगा। बड़े बहादुर हैं वे लोग जो ऐसे कार्य की पहल करते हैं। यह केवल उन्हीं को नेतागिरी लग सकती है जिनको समाज और राष्ट्र की भलाई से कुछ लेना–देना नहीं है या जो समाज में अपना वर्चस्व खोना नहीं चाहते, दूसरों को आगे बढ़ने देना नहीं चाहते और आगे बढ़ते देख भी नहीं सकते।

ये सारा कार्य लेखक अपने ड्यूटी के बाद किया करते थे, इसलिए महाप्रबंधक को इससे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए थी। यह आपत्ति केवल और केवल जाति की थी। 30 नवम्बर सन् 1998 ई. में ओमप्रकाश

वाल्मीकि जी का तबादला देहरादून से जबलपुर जी.सी.एफ में एक पदोन्नति के साथ हो गया था। वहाँ अपना पद ग्रहण करने के बाद इनको जो कार्य अनुभाग दिया गया था वह इनकी कार्य क्षमता के अनुसार नहीं बल्कि इनके सरनेम वाल्मीकि के आधार पर तय किया गया था। जी.सी.एफ के संयुक्त महाप्रबंधक एन.के. वार्ष्णेय जी थे। इन्होंने ही वाल्मीकि जी को इनके सरनेम के आधार पर साफ–सफाई से लेकर सीवेज आदि के कामों वाला अनुभाग सौंपा था। स्वर्णवादी मानसिकता के आगे वाल्मीकि जी का तकनीकी ज्ञान पर जाति हावि हो गया था। लेखक के मित्र, जो सवर्ण ही हैं उनके शब्दों में –"तुम चाहे जितने बड़े लेखक, बुद्धीजीवी बन जाना, हमारी बनाई व्यवस्था घुमा–फिराकर तुम्हें यही अहसास कराती रहेगी कि तुम्हारी असली जगह क्या है!"[5]

जबलपुर की ऑर्डनेंस फैक्टरियों के ज्वाइन्ट कंट्रोलर महेन्द्र वशिष्ठ के एन.के.वार्ष्णेय से यह पुछने पर कि "आपने उन्हें (वाल्मीकि जी को) कहाँ पोस्ट किया है... सफाई काम में...?"[6] इस प्रश्न के उत्तर में एन.के. वार्ष्णेय का जवाब होता है –"क्यों सर!...फिर कहाँ करता...यह तो उनके लिए सबसे सही जगह है...?"[7] एन.के.वार्ष्णेय जी के शब्दों से यह साफ जाहिर होता है कि इन्सानों की काबिलियत वे जाति से तौलते हैं, भारतीय समाज के पिछड़ने का मुख्य कारण ही यह जाति–व्यवस्था और जातिवादी मानसिकता है। एन.के.वार्ष्णेय के घर के पास एक बैल के मर जाने से उनको बड़ी परेशानी होती है इसलिए मजदूरों को बुलाकर हटवाया जाता। उस दौरान भी दूर खड़े रहकर मुँह पर कपड़ा लपेटकर देख रहे होते हैं और मजदूरों पर टिप्पणी कर रहे होते हैं कि–"एक घंटे से ज्यादा हो गया है लेकिन ये लोग इस बैल को ट्रक में नहीं चढ़ा पा रहें हैं। सब के सब हरामखोर और निकम्मे हो गए हैं।"[8] जो मजदूर एक घंटे से बिना किसी अतिरिक्त सहायता एवं सुरक्षा के अपनी सेहत खतरे में डालकर उस मरे बैल को, जिससे बदबू आ रही है, उठाने की जी तोड़ मेहनत कर रहें हैं और दूर खड़े होकर, मुँह पर कपड़ा लपेटकर उन्हें हरामखोर और निकम्मा कहा जा रहा है, उनकी मेहनत के बदले उन्हें गालियाँ दी जा रही हैं और दलितों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे जाति के नाम पर गालियाँ देते हैं। जबलपुर की फैक्टरी में ही एक और अधिकारी थे भरत सिंह जो तबादले आदि कामों को देखते थे।

वाल्मीकि जी का तबादला जबलपुर से देहरादून हो जाने पर किन्तु भरत सिंह उन्हें जाने नहीं देते, कार्यवाई उनसे होकर गुजरनी है जिसका फायदा उठाते हुए किन्तु वे आगे की कार्यवाई नहीं करते हैं, रोक देते हैं जिससे लेखक को बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ता है और उन्हें यह परेशान करने के लिए ही यह सब किया जाता है। काफी जद्दोजहद के बाद उन्हें इजाजत मिलती है। स्वर्णवादी मानसिकता वाले लोग हर कार्य में दलितों को न केवल अपमानित करते हैं बल्कि उनको कदम–कदम पर परेशान करते हैं, उनका मनोबल गिराते हैं तथा उन्हें पीछे खींचने की तमाम कोशिशें करते हैं।

जबलपुर के बाद ओ. एल एफ. देहरादून में 29 अप्रैल, 2001 को ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने ड्यूटी ज्वाइन की। यहाँ इनकी पोस्टिंग प्लानिंग विभाग में हुई जिसके अधिकारी राजीव गुप्ता होते हैं। इनके साथ लेखक का तालमेल अच्छा बैठ गया था। जाति को लेकर इनमें कोई दुर्भावना नजर नहीं आती है, किन्तु उनके तबादले के बाद उनकी जगह अमित मेहता आ गए। अमित मेहता का व्यवहार लेखक के प्रति बेहद रूखा एवं असहनीय होता है और वे यह दर्शा चुके होते हैं कि दलित वर्ग के अधिकारी को अपने साथ बैठा देखने के वे आदि नहीं हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी बस यह चाहते थे कि उनका मूल्यांकन जाति के आधार पर न किया जाए, उन्हें काम करने का मौका दिया जाए फिर उनका मूल्यांकन किया जाए, किन्तु अकसर ऐसा नहीं होता

था। अनेक अधिकारी जाति के पूर्वग्रहों से जकड़े हुए थे। अमित मेहता भी ऐसे ही थे। अमित मेहता के शिकायत से वाल्मीकि जी को महाप्रबंधक ने यार्ड अनुभाग में ट्रांसफर दे दिया, जहाँ सफाई कर्मियों, लेबरर्स आदि को देखने का कार्य मिला यानी फिर से जाति के आधार पर उन्हें यह कार्य सौंपा गया। और लोगों कि यह मान्यता भी थी कि इस विभाग में निकम्मे लोगों का ही ट्रांसफर होता है, यानी वाल्मीकि जी को निकम्मा साबित कर दिया गया था। इसी फैक्टरी में शिवबाबू मिश्र थे जो अपवाद थे। शिवबाबू मिश्र वाल्मीकि जी से बड़े अधिकारी थे, किन्तु उन्होंने कभी भी लेखक को नाम से नहीं बुलाया बल्कि 'भैया जी' कहकर बुलाते थे और हमेशा सम्मान देते थे। विजय बहादुर, अनिल भारद्वाज, राजेश वाजपेई, महेन्द्र वशिष्ठ इन्हीं की तरह कई सवर्ण पात्रों का परिचय इस आत्मकथा में मिलता है जो लेखक के हितैषी हैं, उनके मित्र हैं। ये लोग सवर्ण हैं, किन्तु स्वर्णवादी मानसिकता से मुक्त लोग हैं। असल में पढ़े–लिखे जागरूक लोग हैं। सवर्णवादी मानसिकता से ग्रस्त लोग हर जाति में पाये जाते हैं। यह आत्मकथा पढ़े–लिखे दलितों के साथ कार्यस्थलों पर होने वाले जातीय भेद–भाव का खुलासा के साथ ही सवर्णवादी मानसिकता का विरोध करती है। समाज में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के लोग होते हैं, किन्तु यहाँ मुद्दा बुरे होने का नहीं है, जाति का है। यहाँ जाति के आधार पर बुरा व्यवहार किया जाता है। जाति के आधार पर ऐसे व्यवहार निन्दनीय एवं दंडनीय है।

एक जाति विशेष में जन्म लेना ही जहाँ अपराध हो उस समाज में उस जाति वालों के लिए जीना कितनी भीषण सजा है यह सवर्णों के लिए समझना जरा कठिन होगा और जो इस वर्णाश्रम–व्यवस्था में आस्था रखते हैं, जो दलितों के मालिक बने फिरते हैं, किसी के जन्म होने पर निम्न और उच्च होने का फैसला सुनाते हैं, जरूरत है एसी सोच का खात्मा होना अन्यथा केवल दलितों का नहीं पूरे समाज एवं संपूर्ण भारत का विकास स्थगित रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. 'जूठन' दूसरा खंड, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, तीसरा संस्करण 2015, पृ–14
2. वही. पृ–15
3. वही. पृ– 21
4. वही. पृ–73
5. वही. पृ–83
6. वही. पृ–86
7. वही. पृ–86
8. वही. पृ–98

9366453881, 6009835919

Saritapg977@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 173-177
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी समाज का बदलता स्वरूप और स्त्री

–शैलेश यादव

शोधार्थी– पीएच० डी०, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, काँचीपुर, इंफाल– 795003

आदिवासी समाज की जीवन संस्कृति अपनी धरती तथा प्रकृति से प्रेम के अभाव में कुछ भी नहीं है। आदिवासी जीवन के फूल प्रकृति के गोद में ही खिलते हैं। आदिवासी समाज के विकास की नींव में ही प्रेम बंधुत्व व स्त्री–पुरुष की समानता निहित है। साहित्य में इनकी सामूहिकता, समानता की पूर्णतः अभिव्यक्त होती है। साहित्य लेखन में लेखक के अपने व्यक्तित्व के साथ–साथ उसकी संवेदना तथा उसके गहनतम सामाजिक हित का चिंतन भी शामिल होता है क्योंकि साहित्य समाज का कलात्मक सृजन है।

आदिवासी समाज जहाँ एक तरफ सुंदर जीवन दर्शन का प्रेरणास्रोत है वहीं दूसरी तरफ बाहरी वर्चस्व व कुछ अंधविश्वासी परंपरा आदिवासी समाज को भटकाव के दिशा में ले जाती है। इस दोनों तरह की स्थिति को कथा साहित्य में चिंतन तथा प्रतिरूपण किया गया है। चूँकि आदिवासी महिलाएँ आदिवासी समाज की प्रत्यक्षदर्शी होती हैं इसलिए वह अपने समाज के प्रति अपना दृष्टिकोण कथा साहित्य के माध्यम से मुखर रूप से रखती हैं। जो भी घटना, अंधविश्वास, दीकू समाज के वर्चस्व के कारण हो रहे बदलाव स्त्रियों के अंतःस्थल को छू जाता है या विचलित कर देता है, उसे आदिवासी स्त्रियाँ कभी उसकी सुंदरता को स्पष्ट करती है तो कभी अपनी लेखनी के माध्यम से विद्रोह कर उठती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज के सुख–दुःख, हास्य–रूदन, संघर्ष और विद्रोह आदिवासी महिलाओं के लेखन में भी स्पष्ट होता है। ''आदिवासी स्त्री लेखकों की रचनाएँ न सिर्फ भारतीय समाज के अदेखे बहुभाषायी और बहुसांस्कृतिक संसार को दर्ज करती हैं बल्कि पूर्वाग्रहों और गैर बराबरी से मुक्त एक स्वस्थ लोकतांत्रिक समाज की पुनर्रचना के लिए उत्प्रेरित भी हैं।'' कहा जाता है कि आदिवासी समाज में स्त्रियों की स्वच्छंदता होती है। यह कहाँ तक सत्य है? आदिवासी स्त्रियों की स्वच्छंदता के बारे में आदिवासी महिलाओं का कथा साहित्य किस रूप में देखता है। क्या स्त्री–पुरुष की समानता आदिवासी समाज में है? इन सभी प्रश्नों को आदिवासी कथा साहित्य के दृष्टि से देखने की कोशिश करेंगे।

आदिवासी प्रकृति के बीच रहने वाला मनुष्य है। उनकी सभी आवश्यकताएं प्रकृति ही पूरी करती है। नदी से पानी, वन से फल तथा लकड़ियाँ इकट्ठा करना इनके जीवन का एक अहम हिस्सा है। दैनंदिन जीवन की जरूरतों की पूर्ति अधिकतर आदिवासी स्त्रियाँ ही करती हैं। आदिवासी स्त्रियाँ अपनी सुरक्षा भी कर सकती हैं। इस तरह आदिवासी स्त्री जीवन काफी हद तक स्वच्छंद है, उन्हें घर से बाहर जाने के लिए कोई रोक–टोक नहीं है। आदिवासी स्त्री जीवन जितना सरल और उन्मुक्त है, वह उतना ही कर्मठ भी होती हैं। अपनी और अपने परिवार की जिम्मेदारियों को बखूबी निभाना भी जानती हैं। एलिस एक्का की कहानी 'वनकन्या' में स्त्री के कर्मठ,

सरल व स्वच्छंद जीवन बहुत ही अच्छी तरह से अभिव्यक्त हुआ है– ''सूरज की किरण के साथ ही कन्याएँ अपनी टोकरियाँ, कुल्हाड़ियाँ, विंडा और रस्सी लेकर वन को चली जातीं। वहाँ जंगल के फल–फूल और कंदमूल खोजती और उन्हें टोकरियों और आंचल में इकट्ठा करती वे सूखी लकड़ियाँ चुनती और उन्हें पेड़ की छालों से बाँध कर घर ले जातीं।'' ऐसे ही कर्मठ जीवन एक अन्य कहानी 'कोयल की लाडली सुमरी' में भी व्यक्त होता है। विश्व की मुख्य विकास की धारा में स्त्री समाज को घर के चारदिवारी के अंदर केवल उपभोग की वस्तु माना जाता है। तथाकथित सभ्य समाज में स्त्रियों पर हजार तरह के बंधन होते हैं। वे कभी अकेली नहीं जा सकती। जो स्त्री परिवार और समाज से बाहर कदम निकालने की कोशिश करती है उसे कुलटा, दुष्टा आदि बना दिया जाता है। सभ्य समाज में तो स्त्रियों की सीमा घर के चारदिवारी के अंदर तक ही है, जैसे ही चारदिवारी के बाहर कदम रखा, अपने अनुसार जिंदगी जीने के लिए पर फैलाए वैसे ही पर कुतर दिये जाते हैं या समाज उन्हें बदनाम कर देता है। यहाँ आदिवासी लेखिका आदिवासी स्त्री के माध्यम से सभी स्त्रियों के समानता व स्वतंत्रता के हनन का विचारणीय बिंदू छोड़ देती हैं।

आदिवासी लेखिकाओं ने आदिवासी स्त्री के बारे में दीकू समाज की वासनाग्रस्त मानसिकता कि आदिवासी स्त्री केवल कामुक होती है, का भी खण्डन किया है। इन लेखिकाओं के कथा साहित्य में आदिवासी स्त्री को सरल, कर्मठ, दयाद्र तथा दूसरों की सेवा या सहायता करने की तरफ उन्मुख दिखाती हैं। बाजारवाद, पूँजीवाद के विकास की इस अंधी दौड़ में स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु बनाकर रख दिया है। क्या सच में स्त्री उपभोग की वस्तु मात्र है? क्या स्त्री का अस्तित्व व स्वतंत्रता रंच मात्र भी नहीं है? 'वनकन्या' कहानी में इसका समुचित समाधान दिया जाता है। कैसे एक शहरी व्यक्ति भटक कर जंगल में घायल हो जाता है, जान की रक्षा कर उसकी सहायता आदिवासी स्त्रियाँ ही करती हैं। उस पुरुष को ठीक कर प्रेम पूर्वक विदा देती हैं। विभिन्न औषधि की जानकारी भी इन प्रकृति के बीच रहने वाली आदिवासी स्त्रियों को होती है। कहानी की नायिका फेचो घायल पुरुष को इन्हीं औषधियों के उपयोग से ठीक कर देती है। आदिवासी स्त्रियों के सेवा सुश्रुषा से अविभूत होकर उस युवक ने कहा ''तुम्हें अकेला छोड़ने का मन नहीं करता तुम्हारी सेवा को मैं कभी भूल नहीं सकूँगा फेचो, तुमने मेरे हृदय को जीत लिया है। आदिवासी इतने सहृदय और नेक होते हैं यह मुझे मालूम नहीं था।''

आदिवासी स्त्री केवल अपने या अपने समाज के बारे में ही नहीं वरन वह पूरे भारत की उन्नति के लिए चिंतनशील है। आदिवासी स्त्री हिंदू समाज में निचले तबके के मैला ढोने के पेशे में भी बदलाव जरूरी समझती है। आदिवासी स्त्री कभी किसी मनुष्य में भेदभाव न कर मानवता के हित के लिए संघर्षशील व कल्पनाशील है। आज मुख्य धारा के समाज में विभेद आ गया है। पूँजीवादी लोग ही मानवता की सभी सुख–सुविधाओं का भोग करते हैं और ये ही निचले तबके के मनुष्य को मनुष्य नहीं समझते। उन्हें मजबूरन निकृष्ट कार्य को करना पड़ता है। यहाँ एक आदिवासी स्त्री के मनुष्य के प्रति विचार दर्शनीय हैं– ''हाय री दुनिया! एक ही सृष्टिकर्ता परमपिता की संतानों में इतना फर्क कोई हिंडोले पर झूलता है और कोई सिर पर मैला की बाल्टी लेकर घर–घर डोलता है हाय विधाता क्या तुम्हारा यही न्याय है? और कितना घिनौना काम है यह। क्या हमारे देश से इस कार्य का अंत कभी नहीं होगा?... काश, ऐसा भी दिन आता कि इस आजाद भारत के कोने कोने बिल्कुल साफ सुथरे हो जाते। सभी अपनी सफाई का काम आप ही कर लेते, तब शायद ही कोई भंगी होता।'' स्त्री केवल इतना ही

नहीं सोचती वह तो देश सेवा करना चाहती है। एलिस एक्का की कहानी '15 अगस्त, बिलचो और रामू' में आदिवासी स्त्री बिलचो, रामू के साथ मिलकर देश सेवा के साथ ही आदिवासी जीवन मूल्य और मानवता के जीवन मूल्यों से विश्व समाज की स्थापना करना चाहती हैं। सरकार के शिक्षा के अभियान 'सब पढ़े सब बढ़े' को आगे बढ़ाने में आदिवासी स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान है। वे अपने समाज से निकलकर शिक्षा को प्राप्त कर अपने समाज, भारतीय समाज यहाँ तक कि विश्व समाज को उन्नत करने की इच्छा रखती हैं। शिक्षा के प्रसार से ही आदिवासी समाज की अंधविश्वास, रूढ़िवादिता को तोड़ा जा सकता है। आदिवासी स्त्रियों के साथ–साथ आदिवासी समाज भी आपनी रूढ़ हो चूकी परंपरा में बदलाव चाहता है। शिक्षा के माध्यम से ही आदिवासी एक नए, सुखद, दुःख–क्लेष मुक्त जीवन और समाज की स्थापना करना चाहता है।

आदिवासी कथा साहित्य में जहाँ एक तरफ स्त्री का स्वच्छंद जीवन, जीवन के रंगों में डूबी, अच्छे समाज के निर्माण की कल्पनाएँ लिए आदिवासी स्त्री का चित्रण किया गया है, वहीं दूसरी तरफ शोषण, संघर्ष, प्रतिरोध के स्वर को भी आदिवासी स्त्रियों को कभी–कभी अंधविश्वासों, रूढियों एवं गलत पम्पराओं की बलि चढ़ना पड़ जाता है। अधिकतर गैर आदिवासी समाज, स्त्री शरीर को बलात ही पाना चाहता है। उनके लिए स्त्री शरीर केवल उपभोग की वस्तु होती है।

इसी संबंध में हरिराम मीणा जी सही कहते हैं– ''आदिवासी और दलित औरतों के साथ अधिकांशत–गैर दलित आदिवासी ही बलात्कारी साबित होते हैं अन्यथा ऐसी घटनाएं उनके समाज में न के बराबर होती हैं इस अर्थ में मुख्यधारा व कथित सभ्य समाज में कई पायदान ऊपर ठहरती है आदिवासी की सोच'' आदिवासी तो अपने सरल स्वभाव एवं व्यवहार के कारण सभी को शामिल कर लेते हैं लेकिन शामिल होने वाले दीकू की दृष्टि केवल आदिवासी स्त्री शरीर को टटोलती है। वे आदिवासी स्त्री को आसानी से अपनी वासना का शिकार भी बना लेते हैं।

रोज केरकेट्टा की कहानी 'घाना लोहार का' में अधेड़ जगतसिंह अपनी पत्नी के रहते हुए भी आदिवासी रोपनी को अपने घर ले आता है। उसे रखता है वह अपने हिस्से की जायदाद से रोपनी को नहीं देता है जबकि रोपनी और जगत सिंह का बेटा भी है। रोपनी अपना अपमान तो सहन करती ही है लेकिन जब जगत सिंह के गाँव वाले उसे और उसके बेटे को बुरी तरह से मारते हैं तो वह बेटे का अपमान सहन नहीं कर पाती और जगत सिंह को उसके किए की सजा जान लेकर देती है। यहां आदिवासी समाज की स्त्री को जमींदार जगत सिह रखैल के रूप रखा था लेकिन उसे न ही प्रेम मिला न ही संपत्ति में हिस्सेदारी, ऊपर से बेटे और खुद का अपमान। इस बात को आदिवासी स्त्री सहन नहीं कर पाती और सभी समाज के सामने अपने प्रतिरोध को प्रतिशोध के रूप में जमींदार की हत्या कर देती है। अपने अधिकार को पाने के लिए बहुत मजबूर होकर हथियार भी उठा लेती है। यहां आदिवासी स्त्री के बारे में कहा जा सकता है कि वह अपने अधिकार के लिए सभी समाज से लड़ सकती है। वह जमींदारों की बनी बनाई परिपाटी से सीधे टकराकर तोड़ती है। वक्त के साथ स्त्री अपने अधिकार को माँग रही है। आदिवासी स्त्री दुनिया में चल रहे स्त्री विमर्श के अनुासार अपना अधिकार छीन कर लेना चाहती है क्योंकि अधिकार मांगने से नहीं मिलता है।

वहीं दूसरी तरफ 'प्रतिरोध' कहानी में आदिवासी लड़कियाँ दातून पत्ता बेचकर घर का खर्च तो चलाती हैं लेकिन उन्हें खुलकर रहने को अधिकार नहीं मिलता, समानता का अधिकार नहीं मिलता। आदिवासी समाज

मे भी जेंडरगत असमानता को यह कहानी दिखाती है। इसी कहानी में आदिवासी स्त्रियाँ जेंडरगत असमानता का प्रतिरोध भी करती हैं– ''हाँ भाई लोग बहनों से दातुन–दोना, पत्ता बिचवाएंगे अपनी पत्नियों को अंडा जैसे जोगाकर रखेंगे। बहनों को दिल्ली गोवा भेजेंगे, उनकी कमाई से अपने बच्चों का पेट पालेंगे।'' यह कहानी उस प्रतिरोध को भी दर्शाती है जिसमें केवल पुरुष वर्ग ही खेल (फुटबाल आदि) प्रतियोगिता खेल सकते हैं स्त्रियाँ नहीं। इस कहानी में स्त्रियों ने आपसी सहयोग तथा सामूहिकता ने आदिवासी पुरुषवादी मानसिकता को बदल कर रख दिया, सभी स्त्रियों ने फुटबाल मैच खेला। आदिवासी स्त्रियाँ अपने अधिकार के संघर्ष के लिए लगी हुई हैं। समय के साथ–साथ वे भी अपने और अपने समाज के लिए जागरूता ला रहीं हैं।

आदिवासी कहानियाँ बाहरी समाज के संघर्ष तथा अपने समाज के अंतरद्वंद्व को रखते हुए इस समाज में दीकू समाज के वर्चस्व के कारण हो रहे बदलाव को भी सामने रखती हैं। ये कहानियाँ साथ ही साथ यह भी उजागर करती हैं कि जहाँ स्त्री का न भी दोष हो वहाँ दीकू और आदिवासी समाज दोनों केवल स्त्री को ही दोष देता है। आदिवासी स्त्री बलात वासना के शिकार से इतना डरी हुई है कि उसके अवचेतन मन में भी वही भय चलता रहता है। स्त्री अपने अवचेतन तन के भय से संघर्ष कर विजयी हो जाती है। कहानी 'कोयल की लाडली सुमरी' का एक उदाहरण देखिए कि स्त्री कैसे संघर्ष कर रही है– ''सुमरी रोई, चीखी। गालियों की बौछार लगा दी– घोड़मुँहा, निदनाहा, पगैरठाहा आदि, परंतु उनके बल के सामने उसका कुछ न चलने लगा, साथ के कुल्हाड़े से एक दो पुरकस दे मारा खून का फौवारा बह निकला। सुमरी मत्त हो गई। अंधाधुंध कुल्हाड़ी चलाने लगी और न जाने कब तक चलाती रही और जब थक कर निढ़ाल हो गई, तो देखा उसके सिवा वहाँ कोई नहीं था। वह पड़ी ही रही और उसके नथुने फड़कते ही रहे साँस तेज चलती रही।'' कहीं न कहीं इन दीकू समाज के वर्चस्व के कारण आदिवासी समाज की स्त्रियाँ, बलात्कार से भयाकुल हो गईं हैं इसलिए उनके अवचेतन मन में भी वही दृश्य चलता रहता है। इस मन की लड़ाई से बचने का रास्ता तो पा लेती हैं लेकिन वास्तविक रूप में बलात्कृता हो जाती हैं। सुमरी बलात्कृता तो होती है लेकिन वह आत्महत्या जैसा कदम उस समय नहीं उठाती। वह इस घटना को भूल भी जाती है। वहीं अन्य व तथा कथित सभ्य समाज में देखा जाए तो बलात्कार स्त्री के अस्तित्व के साथ जुड़ गया है कि उसके बाद वे जीना अपमान और नरक की स्थिति समझती हैं और आत्महत्या कर लेती हैं। ''आदिवासी समाजों में बलात्कार कम से कम होते हैं और जब होते हैं न तो कोई स्त्री आत्महत्या करती है और न ही मान लिया जाता है कि उसका सर्वस्व लुट गया है।'' आदिवासी समाज उस स्त्री को सम्मान के साथ जीने देता है तथा उस घटना को एक दुर्घटना समझकर भुला देता है।

आदिवासी समाज बलात्कार जैसे संवेदनशील मुद्दे पर इतना खुलापन रखता था कि उस बलात्कृता स्त्री को जीने का अधिकार मिल जाए। उस स्त्री से उस बलात्कारी पुरुष का नाम पूछ कर उससे शादी करा देता था लेकिन जब से बाहरी समाज के व्यक्ति और उनकी संस्कृति का इन आदिवासी समाज पर प्रभाव आया है वे अपने जीवन मूल्य को भूलते ही जा रहें हैं। पहले बलात्कृता स्त्री को दुष्टा कलंकिनी नहीं समझा जाता था लेकिन अब– ''और एक दिन बाजार के लोगों ने बस्ती के बुजुर्गो से कहा, सुमरी पापिनी है, दुष्टा है, कुल कलंकिनी है।'' आदिवासी परंपरा के अनुसार जब बुजुर्गों ने सुमरी से बच्चे के पिता का नाम पूछा तो वह अनजान लूटेरों का नाम नहीं बता पाती है तब उसे आदिवासी संसार से बहिष्कृत कर दिया जाता है। इस पूरी घटना में स्त्री का कोई दोष नहीं है। फिर भी आज का आदिवासी समाज अपनी परंपरा को भूलकर स्त्री को आत्महत्या

की तरफ ढ़केल रहा है। ''सुमरी ने भी सोचा, ठीक ही तो है, मैं सब कुछ हूँ। पर मेरा क्या दोष पेट में साँस ले रहे नए जीव का क्या दोष? लोग दीकू की तरह सोचाने लगे हैं– 'मैं किसी को मुँह दिखाने के लायक नहीं और न ही मुझे जीना चाहिये'।'' और गर्भ में पल रहे बच्चे को लेकर कोयल नदी के किनारे पर मानसिक द्वंद्व के साथ खड़ी हो जाती है।

यहाँ एक तरफ आदिवासी स्त्री बच्चे को जीवन देना चाहती है दूसरी तरफ बाहरी समाज के वर्चस्व के कारण उसे अपना ही समाज उसे जीने नहीं देना चाहता है। आदिवासी समाज में हो रहे बदलाव को इस कहानी के माध्यम से साफ देखा जा सकता है। आदिवासी समाज के जीवन मूल्य हिंदू आदि संस्कृतियों से प्रभावित होकर खोते जा रहें हैं। आज 2020–21 में आदिवासी समाज की स्त्री की स्थिति मुख्य धारा के समाज की स्थिति है। आदिवासी सामाजिक व्यवस्था के स्त्री–पुरुष बराबर के हकदार हैं। आदिवासी समाज में स्त्री शोषण का यथार्थ या शोषिता स्त्री का निर्मम स्वरूप सामने रखती हैं ये कहानियाँ।

अतः समग्र रूप से कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज का अर्थ ही है प्रकृति की गोद का निवासी, स्वतंत्र, निश्छल, द्वेषरहित व विभेद से परे जहाँ स्त्री व पुरुष दोनों की स्वतंत्रता, अस्मिता, सामाजिक पहचान। ऐरी समाजिक व्यवस्था भी आज कुरीतियों से प्रभावित होकर मैली हो रही, प्रकृति मैली हो रही यानी आदिवासी। दोनों का दोहन हो रहा है। कहीं स्त्री स्वतंत्रता है तो कहीं दीकू समाज के प्रभाव से स्त्री की स्वछंदता, समानता तथा सामूहिकता तार–तार और निर्मम हो रहीं हैं। कहा जाता है कि आदिवासी स्त्री को ज्यादा अधिकार है, ज्यादा स्वछंद है। यह पूर्ण सत्य नहीं है। आदिवासी समाज में भी जेंडर विभेद के द्वंद्व मौजूद हैं।

संदर्भ :-

1. एलिस एक्का की कहानियाँ, सं. वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, कवर पृष्ठ।
2. वनकन्या, एलिस एक्का की कहानियाँ, सं.–वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ– 37
3. पूर्वोक्त, पृष्ठ 42
4. दुर्गी के बच्चे और एल्मा की कल्पनाएं, एलिस एक्का की कहानियाँ, सं.–वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ– 49–50
5. आदिवासी विमर्श, हरिराम मीणा, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ– 65
6. प्रतिरोध, बिरुवार गमछा, रोज केरकेट्टा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ– 31–32
7. कोयल की लाडली सुमरी, एलिस एक्का की कहानियाँ, सं.–वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ– 55
8. स्त्री के लिए जगह, राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ– 120
9. कोयल की लाडली सुमरी, एलिस एक्का की कहानियाँ, सं.–वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ– 60
10. पूर्वोक्त, पृष्ठ– 60

ई–मेल: shailesh1859@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 178-181
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी विमर्श के विशेष संदर्भ में 'अपने–अपने कोणार्क' उपन्यास में प्रतिबिम्बित समस्याओं का निरूपण

–षमीना.टी, शोध छात्रा, हिन्दी विभाग,
अविनाशिलिंगम इंस्टीट्यूट फॉर होम साइन्स एंड हाइयर एडुकेशन फॉर वुमेन, कोइम्बतूर, तमिलनाडु

उपन्यास किसी भी समाज में अंतर्बाहयः जगत का प्रामाणिक लेखा होता है। यह ऐसा एक गद्य विधा है जो सच को उसी रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यास की प्रासंगिकता दिन–भर दिन बढ़ता जा रहा है। प्रस्तुत उपन्यास 'अपने–अपने कोणार्क' में लेखिका चंद्रकांता ने साधारण उड़ीसा के लोगों का वर्णन किया हैं। भारतीय समाज में आज भी ज्यादातर परिवार में छोटी–बड़ी नैतिक, सामाजिक रूढ़ियाँ प्रचलित हैं। 'अपने–अपने कोणार्क' उपन्यास का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से मालूम हो जाता है कि उपन्यास में प्रस्तुत हर एक घटनाएँ आज के जमाने में बिल्कुल प्रासांगिक है। प्रस्तुत उपन्यास में श्रीमती चंद्रकांता ने विभिन्न प्रकार के समस्याओं को दर्शाया है जिनमें सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक और धार्मिक समस्याएँ प्रमुख हैं। अविवाहित नारी की मानसिक स्थिति एवं तनाव का खुला वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलते है।

लेखिका ने यहाँ पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास करने के साथ साथ मानव जीवन के अनुभूतियों को भी प्रस्तुत उपन्यास द्वारा दर्शाया है। मूल्यों का टकराव, आधुनिक मानव के प्रति मोहभंग, स्त्री–पुरुष संबंधों में विघटन से उत्पन्न स्थितियों की अभिव्यक्ति आदि प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य विषय वस्तु बन गया है।

अपने–अपने कोणार्क उपन्यास में प्रतिबिम्बित समस्याएँ :–

उपन्यास 'अपने–अपने कोणार्क' में विविध प्रकार के समस्याओं पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने एवं उक्त समस्या पर सोच विचार करने के लिए पाठकों को मजबूर कराने में सक्षम है। उपन्यास में घटित हर एक घटनाएँ आजकल प्रासंगिक है। 'अपने–अपने कोणार्क' उपन्यास की नायिका कुनी अपनी परिवार की पूरी जिम्मेदारियों को सफल रूप में निभा रहीं है। वह एक अविवाहित शिक्षित युवती है जो समाज की अनुशीलनों को पालन करनेवाली है। नायिका कुनी कई प्रकार की समस्याओं को झेलते रहते है। अपनी इन संघर्ष भरित हालत में भी घर का पूरा दायित्व ठीक तरीके से संभालती है। श्रीमती चंद्रकांता के उपन्यास 'अपने–अपने कोणार्क' में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का रेखांकन स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है। युगीन समस्याओं को निकट से तथा पैनी दृष्टि से देख–समझकर, उन समस्याओं की तीव्रतम अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में करती है।

पारिवारिक समस्याएँ :–

'परिवार' सामाजिक संरचना का प्रथम एवं महत्वपूर्ण इकाई है। सामाजिक इकाई के रूप में परिवार

स्त्री–पुरुष का एक समूह है जो विवाह संबंधों से या गोद लेने से बंधा होता है तथा जो आय, लिंग व अन्य संबंधों पर आधारित भूमिकाओं को अदा करता है और सामाजिक दृष्टि से एक घर या उपघर के रूप में पहचाना जाता है।"[1] मनुष्य के व्यक्तित्व को रूपायित करने एवं निखारने में परिवार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। परिवार का अस्तित्व, परिवार के सदस्यों के बीच के घनिष्ट संबंधों पर निर्भर होता है। परिवार के सदस्यों के बीच आजकल अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती है। पारिवारिक जीवन एवं उसकी समस्याओं पर चंद्रकांता ने इस उपन्यास में अपनी तूलिका चलाई है।

टूटते दाम्पत्य संबंध :-

चंद्रकांता के उपन्यास 'अपने–अपने कोणार्क' में भी टूटते दाम्पत्य जीवन प्रस्तुत किया गया है। दिवाकर और कावेरी पति–पत्नी है। दिवाकर नागालैंड में काम करता है। पत्नी कावेरी रसायन विज्ञान में एम.फिल कर चुकी है। वे पढ़ाई के सिलसिले में पिछले दो वर्षों से घर से दूर रहती है। हॉस्टल में रहकर छात्राओं को पढ़ाती है। शादी के बाद भी दोनों को एक साथ रहने का अवसर मिल नहीं पा रहे हैं। उनकी कई शिकायतों में एक बड़ी शिकायत यह है कि शादी के बाद भी वह पति से अलग और अकेली रहने को मजबूर है। दोनों को एक साथ रहने का अवकाश न मिलने पर दोनों के बीच में रिक्तता एवं घुटन उत्पन्न होता है।

पति की गैर जिम्मेदारी :-

उपन्यास की नायिका कुनी की भाई है दिवाकर। दिवाकर की पत्नी अपनी दाम्पत्य जीवन में संतुष्ट नहीं है। शादी के बाद पति–पत्नी दोनों काम और पढ़ाई के सिलसिले में दूर रहने से संघर्ष उत्पन्न होता है। दोनों के बीच में झगड़ा होता रहता है। कावेरी पति की गैर–जिम्मेदारी के बारें में कुनी से एक बार शिकायत भी की है। चंद्रकांता ने प्रस्तुत उपन्यास में पति–पत्नी के बीच में सामंजस्य न होने से उत्पन्न घुटन को अभिव्यक किया है।

माता-पिता और बच्चों के बीच में संघर्ष :-

माता–पिता और बच्चों के आपस में प्रेम और आत्मीयता से ही परिवार की खुशी होती है। परिवार के सुख एवं शान्ति के लिए पति–पत्नी के बीच जितनी एकरसता आवश्यक है उतनी एकरसता माता–पिता और बच्चों के बीच में भी आवश्यक है। प्रस्तुत उपन्यास की कुनी एक ब्राह्मण परिवार की युवती है। कुनी का पिता पारम्परिक विश्वासों को पालन करने वाले थे। बहन प्रीति को एक एक लड़का पसन्द आया। लड़का एक निम्न वर्ग का है, इसी कारण से बप्पा ने उस रिश्ता को मंजूर नहीं दिया। लेकिन कुनी ने बप्पा से बातकर उसकी शादी करवाया। प्रस्तुत घटना माता–पिता एवं बच्चों के बीच में संघर्ष का एक कारण बना है। चंद्रकांता ने प्रस्तुत उपन्यास 'अपने–अपने कोणार्क' द्वारा परिवार के आन्तरिक रिश्तों में हुए संघर्षों को पाठकों के सामने दर्शाया है।

संयुक्त परिवार का विघटन :-

संयुक्त परिवार की सुख और शान्ति के लिए, परिवार की पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच यथासंभव समायोजन एवं सदस्यों के बीच प्यार, आत्मीयता और सहयोग लाना अनिवार्य है। इसके अभाव में ही संयुक्त परिवार में विघटन होता है। 'अपने–अपने कोणार्क' उपन्यास में भी चंद्रकांता ने इसी प्रकार की संयुक्त परिवार का विघटन को दर्शाया है। घर के सब लोग शिक्षा तथा काम के कारण दूर रहते हैं। नायिका कुनी संबलपूर में है। दिवाकर नागालण्ड में काम करता है। दिवाकर की पत्नी कहीं दूर एक हॉस्टल में रहते हुए पढ़ाई और काम

दोनों एक साथ चलाते हैं। मति और प्रीति दोनों की शादी अपने इच्छानुसार करवाते ससुराल भेजता है। प्रद्युम्न और मंदा ही सिर्फ घर में है। इन सभी प्रकार की जीवन शैली के कारण आपस में मिलना झुलना मुश्किल पढ़ता है। संयुक्त परिवार के विघटन से हर व्यक्ति अपने में केंद्रित एवं स्वार्थी हो जाते हैं। यह आज के जमाने में बहुत प्रासंगिक समस्या बन जाती है।

वृद्धों की त्रासदी :-

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में वृद्धजनों को बहुत आदर एवं सम्मान देता है। श्रीमती चंद्रकांता भी परिवार में वृद्धों के सान्निध्य को अत्यंत महत्व देती है। 'अपने–अपने कोणार्क' उपन्यास में राधानाथ मौसा के द्वारा परिवार में वृद्धों के महत्व को चंद्रकांता इस प्रकार व्यक्त करती है "बड़े–बुजुर्ग ठाकुर बनकर खटोले में रहे तो साहस बढ़ता है।"[2] किन्तु बदलते युग के साथ इस मनोभाव में बदलाव आ गया और वृद्धत्व को अभिशाप एवं वृद्धजनों को बोझ मानने लगा। डॉ. अजित चव्हाण के अनुसार "वृद्ध जीवन अस्तित्व युक्त होते हुए भी अस्तित्वहीनता के संकट बोध को झेलता हुआ जिंदगी ढो रहा है। अपनी बाहरी–भीतरी यातनाओं को झेलते हुए जीना मानो उसकी नियति बन गई है। संत्रास, क्षणवादिता, अकेलापन, भयावहता, लाचाही, बेचारगी आदि वृद्ध जीवन की नियति का मानो अनिवार्य फल बन गया हो। यह आधुनिक युग का अत्यंत भयावह यथार्थ है।"[3] चंद्रकांता ने प्रस्तुत उपन्यास में वृद्ध जीवन से संबंधित विभिन्न समस्याओं का जीवन चित्रण प्रस्तुत उपसन्यास में किया है।

वैवाहिक समस्याएँ :-

'विवाह' विश्व भर के सभी मानव समाज द्वारा स्वीकृत महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य संस्कार है। श्रीमती चंद्रकांता का विवाह सम्बन्धी दृष्टिकोण लौकिक स्तर से भी ऊंचा है। विवाह के महत्व को आत्मसात करते हुए लेखिका ने हमारे समाज में दृष्टिगत विवाह संबंधी विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत उपन्यास 'अपने–अपने कोणार्क' में पाठकों के सामने दर्शाया है।

दहेज प्रथा :-

दहेज प्रथा के कारण परिवारवालों के सम्मुख कन्या का विवाह अत्यंत चिंता का विषय बन रहा है। इस विषम परिस्थिति के प्रति चंद्रकांता का एक कहावत है "लड़की अनव्याही तो खाये माँ–बाप का खान, ब्याही तो खाये माँ–बाप की आत।"[4] 'अपने–अपने कोणार्क' उपन्यास के कुनी और प्रभाकर एक दूसरे को पसंद करते हैं। किन्तु प्रभाकर के पिता की भारी माँगे पूरी करने में कुनी के पिता असमर्थ रह जाते है। फलस्वरूप वह रिश्ता टूट जाता है। तत्पश्चात जब कुनी की छोटी बहन मति के लिए डॉ. मानस आचार्य का रिश्ता आता है तभी भी वर के पिता की भारी माँगे से कुनी के पिता चिंतित होता है। किन्तु कुनी सारी माँगे पूरा करने का निर्णय लेती है। इस प्रकार दहेज देने के कारण मति का विवाह सम्पन्न होता है। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका कुनी दहेज को लेकर हठ करनेवाले, लड़केवालों को अनुनय करने उतरे पिता को देखकर अपने स्वाभिमान पर तीखी चोट पहुँचती महसूस करती है। अपने आत्मसम्मान की रक्षा हेतु कुनी लेन–देन का विरोध करती है "नहीं, मैं बिकाऊ नहीं हूँ, मेरा मोल नहीं लगेगा।"[5] कुनी मन ही मन आजन्म कुँवारेपन को स्वीकृति देती है। जब भी शादी की बात उठती है तो वह गुस्से में भर उठती है और कहती है "शादी का सौदा? तन के व्यापार केलिए सामाजिक ठप्पा।"[6] जिसे स्वीकारने के लिए वह तैयार नहीं थीं।

अंतरधर्मीय एवं अन्तर्जातीय विवाह :-

चंद्रकांता ने अपने उपन्यास 'अपने–अपने कोणार्क' में विवाह सम्बन्धी समस्याओं के चित्रण के साथ साथ अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्धी समस्याओं पर भी पर्याप्त रूप प्रकाश किया है। निस्संदेह जाति सम्बन्धित पुरानी पीढ़ियों की संकुचित मानसिकता नयी पीढ़ी के अन्तर्जातीय विवाह को स्वीकृति नहीं दे पा रही है। ऐसी जाति सम्बन्धित रूढ मानसिकता एवं बिरादरीवालों द्वारा तिरस्कार के भय के कारण ही 'अपने–अपने कोणार्क' उपन्यास के ब्राह्मण समुदाय के कुनी के पिता अपनी छोटी बेटी प्रीति की विवाह एक मारवाड़ी व्यापारी के साथ कराने की अनुमति देने में पहले संकोच प्रकट करता है। वे अपनी बड़ी बेटी कुनी से पूछते है "गैर बिरादरी में लड़की दे दें? कल को कुछ उल्टा–सीधा हो गया तो कौन जिम्मेदार होगा? आखिर हम लोग बिरादरीवालों को क्या जवाब देंगे? बाप–दादाओं की चौदह पीढ़ियों ने जो न किया, वह हम करेंगे?।"[7]

नारी समस्याएँ :-

हिन्दी साहित्य में ही नहीं संसार–भर के साहित्य में नारी का जीवन एवं नारी जीवन की समस्याएँ सार्वकालिक विषय रही है। हम शिक्षित होते हुए भी नारियों पर अत्याचार करने में पीछे नहीं है। आज उच्च शिक्षित एवं आर्थिक आत्मनिर्भर नारी एक ओर पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में अग्रसर हो रही है तो दूसरी ओर नई–नई समस्याएँ उसके सुखी, संतुष्ट एवं सुरक्षित जीवन में अनेक प्रतिधान करती हुई उसे तोड़ती रहती है। डॉ. बयाबान रंभाजीराव के अनुसार "उसे आज पुरानी रूढ़ि परंपरा समस्यारूपी कुएँ से निकलकर नयी आधुनिक बावड़ी रूपी समस्याओं का सामना करना पड रहा है।"[8]

निष्कर्ष :-

चंद्रकांता के उपन्यास 'अपने–अपने कोणार्क' में प्रतिबिम्बित हर एक छोटी–बड़ी समस्याओं का वर्णन संदर्भोजित, स्वाभाविक एवं प्रभावी ढंग से हुआ है। उनमें सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, समस्याएँ प्रमुख रूप से उभरकर सामने आए हैं। समाज के विस्तृत फलक के अंतर्गत के पारिवारिक जीवन, विवाह, नारी समस्याएँ, नारी शोषण, अविवाहित नारी की मानसिक व्यथा जैसी मुख्य समस्याओं को सूक्ष्माति सूक्ष्म से अंकन किया हैं। इस प्रकार देखा जाए तो चंद्रकांता के उपन्यास 'अपने–अपने कोणार्क' के समसामयिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित हर एक समस्याएँ बहुचर्चित एवं प्रासंगिक हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. समाज शास्त्र : अवधारणा एवं विकास, डॉ. सुधीर राजाराम देवरे, पृ 136
2. अपने–अपने कोणार्क; चंद्रकांता; पृ : 38 .
3. कहानीकार महीप सिंह रू संवेदना और शिल्प, डॉ. अजित चव्हाण, पृ. 99
4. यहाँ बितस्ता बहती है, चंद्रकांता; पृ 66
5. अपने–अपने कोणार्क; चंद्रकांता; पृ 51
6. वही, पृ. 54
7. वही, पृ. 147
8. बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की कहानियों में नारी, डॉ. बयाबान संभाजी राव बोड़के, पृ 239.

Just4shameena@gmail.com 9656250594

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 182-184
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य में स्त्री विमर्श

–डॉ. स्मिता जे. मकवाणा

पीजीटी (हिंदी), केवीएस वी. वी. नगर, आणंद।

साहित्य का अर्थ व्यापक है। प्रत्येक काल एवं समय की संस्कृति समसामयिक साहित्य में अभिव्यक्त हुई है। इतिहास पर दृष्टिपात करें तो प्राचीन काल में स्त्रियों की स्थिति शीर्ष स्थान पर थी। वह पूज्या के रूप में सम्मानित एवं गौरवान्वित थी। पुरुष के साथ समानाधिकारिता रखती थी। लेकिन समय प्रवाह में बहते मध्यकाल में नारी 'पूज्या से भोग्या की दयनीय स्थिति में आ पहुंची'। यही कारण है कि रीतिकाव्यों में अधिकांश नायिकाएं भोग्या के रूप में ही चित्रित है। न तो वह किसी की सहचारी दिखाई गई और नाहिं सहधर्मिणी। वासनागत दृ ष्टिकोण और पशु समान जीवनयापन करते–करते समय की गति ने फिर करवट बदली और परिवर्तन की लहर दौड़ उठी। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में वैश्विक फलक पर आंदोलन हुए और परंपरागत प्रचलनो, रूढ़ियों, दूषणों का विरोध कर स्त्रियों ने अपनी प्रबल शक्ति का सशक्त प्रमाण दिया और इतिहास के पन्नों पर उन वीरांगनाओं का नाम सुवर्ण अक्षरों से दर्ज हो गया, जिसमें झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, रानी जिंदा, जीनत महल, बेगम हजरत महल, रानी अवंतीबाई तथा इंदुमती गोयल।

भारतीय संदर्भ में स्त्री विमर्श की बात करें तो सर्वप्रथम नाम महादेवी वर्मा का आयेगा। उन्होंने सन् 1942 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'श्रृंखला की कड़ियां' में भारतीय नारी की समस्याओं को व्यापक दृष्टिकोण से परिभाषित कर परिवर्तन का प्रमाण दिया है। वह लिखती है कि "हमें न किसी पर जय चाहिए और न किसी पर प्रभुता। केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है पंख जिसके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेगी।"[1]

वैसे महादेवी वर्मा ने अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने की चुनौती देते हुए स्त्री विमर्श का प्रारंभ तो किया लेकिन भारत में स्त्री मुक्ति का विचार पाश्चात्य सोच का परिणाम माना जाता है। पाश्चात्य लेखिका सीमोन द बोउआर अपनी पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' में नारी की विषम स्थिति का चित्रण करती है। उनकी इन्हीं पुस्तक का हिंदी में अनुवाद प्रभा खेतान जी ने 'स्त्री उपेक्षिता' शीर्षक में से किया है। मैत्रेयी पुष्पा का नजरिया कुछ इस प्रकार का है – "स्त्री विमर्श है क्या? इसका लक्ष्य क्या है? मैं समझती हूं स्त्री विमर्श वह बातचीत है, तर्क–वितर्कों से भरी बहस और बहसों से निकलकर आनेवाला वह निष्कर्ष है, जो स्त्री के जीवन को पुरुष जीवन के साथ समानता के स्तर पर लाना चाहता है।"[2]

यह परिवर्तन अचानक था, जिसने जनमानस को आंदोलित किया था, लेकिन स्त्री अपने अस्तित्व की लड़ाई में अभी भी संघर्षरत है। आजादी के बाद लेखन को एक सबल एवं असरकारक माध्यम के रूप में प्रयुक्त कर महिला लेखिकाओं ने अपनी कलम चलाई और साहित्य की विभिन्न विधाओं में नारी की संघर्ष गाथा को अनेक रूपों में वाणीबद्ध किया है, जिसका उत्तम प्रमाण साठोत्तरी युग की महिला रचनाकारों के साहित्य में देखने को मिलता है। इसी दिशा में आगे 'पितृसत्तात्मक वर्चस्व और तथाकथित वर्जनाओं को तोड़ती हुई ये स्त्री आत्मकथाएं स्त्री द्वारा श्वानुभूत आत्मकथाओं या स्वीकृतियों के कारण चर्चा के केंद्र में आई है।

उत्तर आधुनिक युग में स्त्री–विमर्श के आदर्श बदल रहे हैं। मध्य युग में जैसे स्त्री संघर्ष कर पुरुष सत्ता एवं सामंती व्यवहारों को पैरों तले रौंदकर ऊपर उठ आई थी, आज वही पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने भूमंडलीकरण के दौर में बाजारवाद को हथियार बनाकर स्त्री को छला है। बाजार की चमक–दमक से मोहित हुई नारी उपभोक्ता संस्कृति का किस्सा बनती जाती है। जहां शान शौकत का महत्व है, हर चीज बिकती और खरीदी जाती है। करोड़ों कमाने की लालसा में अपना रूप सौंदर्य, फिगर, आवाज का प्रदर्शन कर स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छन्दता की चादर ओढ़े नारी वही बंधनों में बंधने हेतु अपनी स्वीकृति देती दिखाई पड़ती है। जैसे, "अब भी पितृसत्तात्मक पूंजीवादी मीडिया स्त्री को निम्फ़ोंमेंनिक (कामोन्मादिक) ही समझता है।

निम्फ़ोंमेंनिक स्त्री का अर्थ है– एक कामातुर स्त्री, अप्सरा की भांति सजी–धजी जो हमेशा दर्शकों द्वारा निगला जाना पसंद करें। लेकिन साहसी और यौन वर्जनाओं को तोड़नेवाली स्त्री को वहीं मीडिया आकर्षक नहीं दिखलाता है। उसे बोल्ड कहा है, अगर वांछनीय नहीं।"[3]

प्रस्तुत संदर्भ एक विचारशील प्रश्न को हमारे सामने रखता है। बाजार के बढ़ते प्रभाव तथा ग्लैमर ने स्त्री की दशा को भोग्या बना दिया है। जिस राह पर वह चली थी उस आत्मगौरव, अस्तित्व खोज की राह से विचलित होकर उपभोक्ता संस्कृति के सामने नतमस्तक नजर आती है। ऐसे ही आदर्श उदाहरण के जरिए कई महिला उपन्यासकार ने अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री विमर्श की चिंगारी को हवा दी है। उसी उपलक्ष में लत्ता शर्मा जी का उपन्यास है 'सही नाप के जूते', जिसमें उन्होंने सौंदर्यता की धनी एवं स्वतंत्रता की पैरवी करती स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को बड़ी संवेदनशीलता के साथ अंकित किया है।

ममता कालिया के 'दुक्खम–सुक्खम' उपन्यास की प्रतिभा अपने नाम को चरितार्थ करती मॉडलिंग हेतु बम्बई जाने के लिए उत्सुक है– "नहीं मां, फिल्मों में नहीं, हमें मॉडलिंग के लिए एक बड़ी एजेंसी ने कहा है। तुम मैगज़ीन पढ़ती हो, उसमें आधे से ज्यादा पन्नों पर विज्ञापन छपते हैं। बस यहीं करना है। कोई साबुन या टूथपेस्ट हाथ में लेकर फोटो खींचाओ और लखपति हो जाओ।[4]

यहां स्वतंत्रता प्रतिभा के समूचे व्यक्तित्व को स्वछंदता का रूप धारण करने हेतु उक्साती है। यहां स्त्रीवादी लेखन में नारी की बदलती सोच और भूमिका के अस्तित्व का यथार्थ अंकन किया है, जो परिवर्तित परिवेश में उसकी चुनौतियों के लिए तैयार रहने का इशारा भी देती है। यह एक कड़वा सत्य है कि आधुनिक एवं उत्तर आधुनिकता के प्रभाव में स्त्री के मानवीय गुण, सौंदर्य को नजर अंदाज किया जा रहा है, केवल उसकी देहाकृति

का आकर्षण मात्र रहा है। स्त्री का व्यावसायिक इस्तेमाल हो रहा है, जिसे स्त्री को समझना पड़ेगा और उसका विरोध करने हेतु स्वयं सशक्त बनना पड़ेगा; क्योंकि मीडिया, बाजारीकरण आदि पितृसत्तात्मक दौर का बदला हुआ चेहरा है, जिसका उद्देश्य स्त्री का उपभोग मात्र है। इस सत्य को समझते हुए स्त्री को जागृत होना पड़ेगा तथा उपभोक्ता स्वीकृति की चपेट में आने से खुद को बचाना होगा। जिसके लिए उसे स्त्री विमर्श की संचेतना हमेशा अपने भीतर उद्वेलित रखनी होगी, तभी वह इस अभिशाप से उभर पाएगी और नवीन सरोकारों के माध्यम से अपनी आजादी की मंजिल को पा सकेगी बशर्ते उसे संघर्षरत रहना पड़ेगा।

संदर्भ सूची :-

1. देवराज वर्मा, स्त्री विमर्श के प्रश्न और महादेवी वर्मा, भाग 2, पृष्ठ 127
2. मैत्रेयी पुष्पा, 'उत्तर प्रदेश', लखनऊ मई 2003, पृष्ठ 210
3. देवराज वर्मा, स्त्री विमर्श के प्रश्न और महादेवी वर्मा, भाग 2, पृष्ठ 204
4. ममता कालिया, दुक्खम–सुक्खम, पृष्ठ– 236

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 185-188
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' में दलित विमर्श

-प्रा. डॉ. सुचिता जगन्नाथ गायकवाड

अध्यक्षा एवं शोध निर्देशिका, हिंदी विभाग, वसुंधरा कला महाविद्यालय, जुले सोलापुर, महाराष्ट्र

प्रस्तावना :-

आत्मकथा यह दलित साहित्य की अत्यंत सशक्त विधा है। आत्मकथा के माध्यम से दलित साहित्यकार स्वयं के साथ-साथ अपने समाज के अंतःकरण की पीड़ा अभिव्यक्त करता है। हिंदी की समकालीन दलित आत्मकथाओं में मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे' भाग-1, 2, ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन, कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', सूरजपाल चौहान की 'तिरस्कृत' और 'संतप्त', श्योराजसिंह बेचौन की 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर', डॉ. डी. आर. जाटव की 'मेरा सफ़र मेरी मंजिल', माता प्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन तक', डॉ. धर्मवीर की 'मेरी पत्नी और भेड़िया', डॉ. तुलसीराम की 'मुर्दहिया', सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द', रूपनारायण सोनकर की 'नागफनी' आदि आत्मकथाएँ प्रमुख हैं।

1995 में प्रकाशित मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे' हिंदी की प्रथम दलित आत्मकथा मानी जाती है। प्रस्तुत आत्मकथा दो भागों में प्रकाशित हुई है। इसमें मोहनदास नैमिशराय जी ने स्वयं के जीवन के दग्ध अनुभवों के साथ-साथ हाशिए के दलित समाज जीवन के दुःख-दर्द का यथार्थ रूप प्रस्तुत हुआ है। उत्तर प्रदेश के मेरठ शहर में चमार इस दलित जाति में जन्मे मोहनदास नैमिशराय जी को बचपन से अत्यंत उपेक्षित एवं अपमानित जीवन जीना पड़ा है। आलोच्य आत्मकथा में लेखक बताते हैं कि दलित जाति में जन्मे व्यक्ति को हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्म के लोगों की घृणा का सामना करना पड़ता है। हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्म के लोग दलितों के साथ गुलामों की तरह व्यवहार करते रहे हैं। लेखक दलित समाज जीवन की पीड़ा इस तरह अभिव्यक्त करते हैं, "हम लम्बे समय से अपमान सहते आए थे, पर गुनाहगार न थे हम। हम हारे हुए लोग थे, जिन्हें आर्यों ने जीतकर हाशिए पर डाल दिया था। हमारे पास सिर्फ कड़वा अतीत और जख्मी अनुभव था। सदियों से गर्दिश में रहते-रहते हम अपने अतीत से कट गए थे।"[1]

दलित समाज निर्धन और साधनहीन होने के कारण बेरोजगारी जैसी समस्याओं से जूझता है। दलित लोग आज भी दिन-रात कड़ी मेहनत करने के बावजूद भूखे पेट सो जाते हैं। आत्मकथा में लेखक रोटी की समस्या का जीवंत चित्रण इस प्रकार करते हैं, "शादी-ब्याह के दिनों में हमारे चेहरे खुशी से चमकने लगते थे। यह सोचकर कि भरपेट खाने को तो मिलेगा। हम उस दिन की कई-कई हफ़्तों से प्रतीक्षा किया करते थे।"[2] लेखक

बताते हैं कि उनकी बस्ती में शादी–ब्याह में बचा हुआ भोजन हर घर में बांटा जाता था। दलित घरों में यह भोजन कई दिनों तक खाया जाता था।

गरीबी और बेरोजगारी कारण अधिकांश दलित समाज अपने लिए अच्छे वस्त्र खरीद नहीं सकते।

मोहनदास नैमिशराय जी अपने बचपन की यातनाएं बताते हुए कहते हैं, "मैं नौरंग, बड़ा भाई तारा, दुली, डालचंद हममें से किसी के भी शरीर पर भी पूरी ड्रेस न होती थी। अगर सफ़ेद कमीज होती तो निक्कर नदारद, उसके स्थान पर पेंट होती या पायजामा। जूते तो हममें से किसी के पांवों में कभी होते ही न थे। अधिकांश के पांवों में रबर की चप्पलें ही हुआ करती थीं। वह भी ऐसी रस्ते में एक–दो बार उनकी पट्टियाँ अवश्य ही निकल जाया करती थीं।"[3]

दलित समाज को गाँव तथा शहर में रहने के लिए अच्छी जगह नहीं मिलती है। लेखक को मेरठ शहर में किराये के मकान में अनेक समस्याएँ सहनी पड़ती थीं। लेखक अपनी समस्याओं का वर्णन करते हुए लिखते हैं, "हमारे घर में नहाने की कोई जगह न थी। घर के बच्चे थे और उनकी जमीनें भी। जरा–सा पानी पड़ा कि मिटटी फूल उठती थी। ताई माँ परवाने की गली में नहाती थी। न नल था, न बिजली।"[4] बारिश के दिनों में लेखक और उनके परिवार की समस्याएँ और अधिक बढ़ जाती थीं।

दिन–रात कठोर परिश्रम करने के बावजूद दलित समाज अपने जीवन की मुलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं। कुछ दलित लोग अपनी जीविका की तलाश में शहर चले जाते हैं। किन्तु शहर में भी उन्हें मजदूरी करते हुए अपना जीवन अभावग्रस्तता में ही जीना पड़ता है। यहाँ पर भी पूंजीपति वर्ग दलितों का शोषण करना नहीं छोड़ता है। मोहनदास नैमिशराय जी और उनके परिवार को मेरठ शहर में किराये के मकान में रहते हुए अनेक समस्याएँ सहनी पड़ती थीं। "स्वयं बा पर तीन–तीन, चार–चार महीने का किराया चढ़ जाता था। जब छः–आठ रुपये चड्ढ जाते, तब बा नवाब के घर जाकर किराया दे आता था। बा वहीं से हाथ में चप्पल उठाकर ले आता था। पर नवाब चप्पल मरम्मत का पैसा न देता था। ऐसा ही होता था। वह बेगार थी, हमारी जात के लोगों के बस का नहीं था। हमारा बोझ भी दोहरा था। एक गरीबी का बोझ दूसरा जात–पात का।"[5]

जातीय विषमता के कारण दलित समाज को मंदिर, मठ, सार्वजानिक कुएं, धर्मशाला आदि स्थानों पर दलितों के साथ पशु से भी हिन व्यव्हार किया जाता रहा है। नैमिशराय जी इस स्थिति का यथार्थ चित्रण इस प्रकार करते हैं, "उनकी बस्ती के किनारे भी एक मंदिर था पर उसमें दलितों को जाने का कोई अधिकार नहीं था। मंदिर भी उनकी जड़ खरीद संपत्ति थी जिसके जर्रे–जर्रे पर उनका अधिकार था। हमारी बस्ती के लोग मंदिर को आते–जाते ही दूर से देखकर संतोष कर लिया करते थे।"[6]

छुआछूत जैसी प्रथा के कारण दलित समाज के साथ अत्यंत अमानवीय और निर्मम व्यवहार होता रहा है। आत्मकथा में लेखक बताते हैं कि एक बार वे अपने भाई के साथ बहन के गाँव जा रहे थे। प्यास लगने पर वे सवर्ण के घर पानी मांगते हैं। लेकिन उन्हें दलित होने के कारण पानी नहीं मिलता है बल्कि उन्हें अपमानित होते हुए यह उत्तर सुनना पड़ता है, "म्हारे घर चमारों के लिए पानी ना है।"[7]

नैमिशराय जी के अनुसार दलित समाज संघठित न होने के कारण वह अत्यधिक शोषण और उत्पीडन का शिकार होता है। दलित समाज अनेक छोटी–छोटी जाति और उपजाति में बंटा हुआ है। दलितों में भी श्रेष्ठ–कनिष्ठ की भावना होने के कारण उनमें आपसी संघर्ष की स्थितियां बनी रहती हैं। लेखक आत्मकथा में बताते हैं कि दलित जातियों में संवाद का अभाव होने के कारण वे आपसी घृणा और तनाव में जीते थे। लेखक के शब्दों में, "हमें ब्राह्मण ने जाति में बाँट और समाज के सबसे निचले स्तर पर लाकर अपना उल्लू सीधा किया था। अभी भी हम एक–दूसरे को अपने से ऊपर नीचे की जातियों में बांटकर स्वयं उल्लू बने हुए हैं।"[8]

दलित स्त्री हर पल शोषण और उत्पीड़न की शिकार होती रहती है। अज्ञान और अशिक्षा के कारण वह अपने अधिकारों से वंचित रहती है। दलित स्त्री की चिंताजनक स्थिति का चित्रण करते हुए लेखक लिखते हैं कि, "जिस घर में बेटी पैदा हो जाती, उसका बाप अपना माथा पकड़कर बैठ जाता था और माँ गम–सुम सी होकर रह जाती थी। लड़कियां दु:ख, कलह, अभाव, लड़ाई–झगड़ों का प्रतीक मानी जाती थी।"[9] गरीबी और अभावग्रस्तता की वजह से दलित स्त्रियों को खेतों में मजदूरी करने जाना पड़ता है। गाँव के जमींदार और साहूकारों द्वारा उनका शोषण किया जाता है। दलित स्त्री शहर में भी सुरक्षित नहीं हैं। नैमिशराय जी दलित स्त्री के उत्पीड़न की व्यथा इस तरह अभिव्यक्त करते हैं, "शहर की अन्य दलित बस्तियों की तरह हमारी बस्ती में भी ढेर सारी औरतें जंगल जाती थी। उन्हें अकेला पाकर उनके शरीर को नोचने के लिए गिद्ध तयार बैठे रहते थे। उनमें से कुछ बच जाती थीं तथा कुछ अपनी इज्जत गंवाए बिना भाग जाती थी। मजबूरीवश या कैसे भी जिसने एक बार अपना शरीर उन गिद्धों को दे दिया फिर लम्बे समय तक उन्हीं महिलाओं को अपना शरीर नुचवाना, खिंचवाना पड़ता था।"[10]

महात्मा फुले, राजषि शाहू और डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर जी के प्रयासों के परिणामस्वरूप दलितों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त हुआ है परन्तु शिक्षा प्राप्त करते समय दलित छात्रों को जातीय दंश सहने पड़ते हैं। नैमिशराय जी बताते हैं कि दलित कही भी जाएँ जातियां उनका पीछा कभी नहीं छोड़ती हैं। मोहनदास नैमिशराय जी के पिताजी उन्हें अपनी बस्ती में चमारों के स्कूल में प्रवेश दिलाते हैं। दलित छात्रों के इस स्कूल में सवर्ण अध्यापक बहुत कम आते थे। जो अध्यापक आते थे, वे भी अपनी नाक–भौंह सिकोंड़कर पढ़ाते थे। लेखक उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपना अस्तित्व सिद्ध करना चाहते थे। किंतु कई बार उन्हें सवर्ण समाज के द्वारा शिक्षा प्राप्त करते समय निरुत्साहित करने का प्रयास किया जाता था। लेखक बताते हैं कि एक बार उनकी परीक्षा के समय पिताजी दुकान पर नहीं थे। अपनी परीक्षा होने के कारण लेखक दूकान पर आए ग्राहक को चप्पल सीकर देने से मना करते हैं। लेकिन वह ग्राहक लेखक की समस्या समझे बिना उन्हें अपमानित करते हुए प्रस्तुत पंक्तियाँ कहता है, "पढ़–लिखकर क्या तू लाट–गवन्नर बन जागा। गांठेगा तो येई लतीरें।"[11]

इस प्रकार के अनेक अपमान सहते हुए लेखक शिक्षा प्राप्त करते हैं। नैमिशराय जी डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर जी के विचारों से उच्च शिक्षा प्राप्त कर सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में सामाजिक आंदोलनों का नेतृत्व करते हुए समाज परिवर्तन के लिए अपना योगदान देते हुए दिखाई देते हैं।

निष्कर्ष :-

मोहनदास नैमिशराय की 'अपने–अपने पिंजरे' इस समकालीन दलित आत्मकथा में नैमिशराय जी ने अपने जीवन की आप बीती बताते हुए दलित समाज जीवन की यथार्थ त्रासदी का वर्णन करते हुए समाज परिवर्तन की मांग की है। वर्तमान समय में दलित समाज डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर जी के 'शिक्षित बनो संगठित रहो और संघर्ष करो' इस सन्देश को ग्रहण कर रहा है। वह डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर जी के क्रांतिकारी विचारों से प्रेरणा लेकर उच्च शिक्षा प्राप्त करते हुए अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है। आलोच्य आत्मकथा डॉ. बाबासाहब अंबेडकर जी के मानवता, समता, न्याय, बंधुता आदि तत्वों का प्रचार प्रसार करती है।

संदर्भ संकेत :-

1. अपने–अपने पिंजरे : मोहनदास नैमिशराय, पृ. 18
2. वही, पृ. 106
3. वही, पृ. 77
4. वही, पृ. 31
5. वही, पृ. 40
6. वही, पृ. 27
7. वही, पृ. 68
8. वही, पृ. 65
9. वही, पृ. 37
10. वही।
11. वही, पृ. 121

Mob- 9860254358

EMail – suchitagaikwad@ymail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 189-192
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इतिहास के पन्नों से बेदखल आदिवासी संघर्ष की कहानी 'धूणी तपे तीर'

-सुमा अजीथ

हिन्दी विभाग, सरकारी महिला महाविद्यालय तिरुवनंतपुरम, केरल।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में अनेक आन्दोलनों का उदय हुआ। महिलाएं, दलित, किसान, आदिवासी और अन्य जातीय समूह एक साथ आगे आये और अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर आवाज़ उठाने लगे। यह एक नया पहल था क्योंकि उनकी आवाजें और आवश्यकताएं तब तक दबाई गयी थी और समाज उनकी समस्याओं को कभी न समझ सका और न ही स्थापित सैद्धांतिक और राजनैतिक मुहावरों से उन्हें समझने की कोशिश कर सका। अपने ऊपर होने वाले शोषण का सामना करने के लिए हाशियेकृत लोगों का यह आन्दोलन चूंकि अपनी अस्मिता या पहचान बनाए रखने के लिए था, इसलिए ही इसे अस्मिता वाद कहलाने लगा।

समाज शास्त्रीय आन्दोलन के साथ–साथ साहित्यिक आन्दोलन भी शोषितों एवं वंचितों के लिए इस लड़ाई में शामिल हुए। नारी वादी साहित्य और दलित साहित्य इस आन्दोलन के उप उत्पाद हैं। ऐसे ही एक आन्दोलन जनजाति समूह की ओर से हुआ जो आदिवासी विमर्श के नाम से विख्यात हुआ। आज मुख्यधारा के साहित्य और आलोचना के क्षेत्र में आदिवासी साहित्य अपने लिए एक जगह हासिल कर चुका है। असल में आदिवासी साहित्य और कलारूपों का उदय मुख्य धारा के साहित्य से काफी पहले हुआ था। पर यह लिपिबद्ध नहीं था, बल्कि मौखिक था। जंगलों में धकेल दिए जाने के बावजूद जन जातीय समुदायों ने अपनी रचनात्मक प्रवृत्तियों को अक्षुण रखा जो कि हमारी संस्कृति के धरोहर है। हालांकि यह साहित्य अपरिष्कृत लोक भाषाओं में था, इसलिए मुख्य धारा में इसका प्रचुर प्रचार नहीं हो सका। सत्ता से भी आदिवासी लोग कोसों दूर थे, इसलिए उनका साहित्य भी उनकी तरह काफी हद तक नज़र अंदाज़ किया गया।

आदिवासी साहित्य अपनी अस्मिता की खोज का साहित्य है, बाहरी लोगों द्वारा हुए शोषण के अतीत और वर्तमान रूपों को उजागर करने के इए तथा अपनी पहचान और अस्तित्व के लिए लड़ रहे आदिवासियों के संघर्ष और प्रतिरोध के लिए रूपायित साहित्य है। यह एक रचनात्मक परिवर्तन और हस्तक्षेप है, जो भारत के मूल निवासियों के वंशजों के खिलाफ किसी भी प्रकार के भेदभाव के विरोध के रूप में रूपायित हुआ है। यह उनके

जल संसाधनों, जंगलों और भूमि की रक्षा तथा उनके अधिकारों का समर्थन करनेवाला साहित्य है। आदिवासियों की जीवन गाथा लिखने के लिए प्रामाणिक और लम्बे अनुभव, उनसे निकट संपर्क और संवेदना नितांत आवश्यक है। आदिवासियों के लिए कोरी सहानुभूति की नहीं, संवेदना की आवश्यकता है। पर जहां तक प्रमाणिकता का सवाल है वहां केवल संवेदना को मापदंड नहीं बनाया जा सकता, आदिवासियों के जीवन का साक्षात दर्शन और उनके निकट संपर्क से ही यह संभव है।

प्रमुख आदिवासी लेख़क हरीराम मीणा का मशहूर उपन्यास है 'धूणी तपे तीर' जो भारतीय इतिहास के एक भूले हुए अध्याय का खुलासा है जो पाठकों को आदिवासी शहादत की वास्तविकता से रूबरू करवाता है। राजस्थान के बांसवाडा क्षेत्र में आदिवासियों द्वारा आयोजित एक आन्दोलन जिसे इतिहास में कहीं जगह भी नहीं मिला, उसका जीवंत वर्णन इस उपन्यास में लेख़क करते हैं। अमृतसर में हुए जलियाँवाला बाग की घटना से छह साल पहले राजपुताना में मंगलगढ़ की पहाड़ियों द्वारा तत्कालीन राजा के उत्पीडन के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए आयोजित एक आन्दोलन, जिसने कई आदिवासियों की मौत देखी। सबसे बड़ी त्रासदी यह थी कि इन आदिवासियों के खिलाफ लड़ने के लिए ब्रिटिश और देशी सेना के लोग इकट्ठे खड़े हो गए। हमारे इस देश के आदिम निवासी थे वे। उनको जंगलों में धकेलकर उनके आवास स्थान को छीना था सभ्य कहलाने वाले देशी लोग। इसके बावजूद उन पर जुल्म और शोषण निरंतर करते भी रहे और जब वे अपने अस्तित्व के लिए संगठित हो गए तो उन्हें मिटाने के लिए अंग्रेजों का साथ दिया था हमारे देशी शासक। इससे भी बड़ी शर्मनाक बात शायद ही कभी सुनी हो। शायद इसलिए ही उस आन्दोलन की तरफ से इतिहास ने भी अपनी आँखें मूँद ली।

आध्यात्मिक गुरु गोविन्द भगत के नेतृत्व में आदिवासी लोग उस संग्राम में बड़ी बहादुरी से लड़े और शहीद हो गए। दुःख की बात यह है कि दिल तोड़नेवाली यह कहानी राजस्थान के बाहर अज्ञात ही रही है। यह एक ऐसी कहानी है कि जिसे पीढी दर पीढी बताते रहना चाहिए और उपन्यासकार का लक्ष्य भी यही है। लेख़क के श्रम साध्य शोध और स्थानीय इतिहास और संस्कृति के बारे में उनकी समझ का परिणाम एक दुःखद पर शानदार गाथा के पुनर्निर्माण के रूप में पाठकों के सम्मुख आया।

इतिहास के पन्नों से बेदखल आदिवासी शहादत की कहानी है 'धूणी तपे तीर।' अग्रेजों के जाने के बाद देश तो गुलामी से मुक्त हुए, पर हमारे देश में आज भी ऐसा एक वर्ग है जो अपने ही देश में, अपनी मिट्टी में अपनों के द्वारा गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। आदिवासियों का संघर्ष कोई नया नहीं है। इस मिट्टी में पहला अधिकार आदिवासियों का ही है। जब उन्हें अपने निवास से बेदखल किया गया तो वे जंगलों में विस्थापित हो गए। जंगल की सम्पदा को लूटने के लिए समाज के कुटिल नेता वहां भी आदिवासियों के साथ ज़बरदस्ती करने लगे तो वे उनके खिलाफ आवाज़ उठाने लगे। ऐसी ही एक संघर्ष की गाथा प्रस्तुत उपन्यास में हम देखते है। औपनिवेशिक भारत में आदिवासियों की मुख्य समस्याएं वनोपज संग्रहण, विभिन्न प्रकार के भू–राजस्व पर प्रतिबन्ध, साहूकारों के शोषण और पुलिस प्रशासन के अत्याचार से संबधित थी। आज़ादी के बाद सरकार द्वारा

अपनाए गए त्रुटी पूर्ण मॉडल ने आदिवासियों को अपने जल, जंगल और ज़मीन से वंचित कर दिया और उन्हें अपने घरों से भी विस्थापित कर दिया। यह विस्थापन एक तरफ उन्हें उनकी सांस्कृतिक पहचान से वंचित कर रहा था तो दूसरी ओर उनके अस्तित्व पर भी ख़तरा साबित हो रहा था।

बांसवाडा में आदिवासी भीलों और मीणों के संख्या काफी तादाद में थी। देशी शासकों द्वारा अपना निवास स्थान हड़पने पर, जंगल में धकेल दिए जाने पर और बाद में जंगल में आकर वहां के संसाधनों पर हस्तक्षेप किये जाने पर भी आदिवासी लोग चुप रहे। वे इन से डरते थे और अपना हक़ मांगना उनको आता भी नहीं था। गोविन्द गुरु ने इन भीलों और मीणों के अन्दर जागृति पैदा करने की कोशिश की, उन्हें अपने हक़ के लिए आवाज़ उठाने की प्रेरणा दी। अपने अस्तित्व के लिए, अधिकारों के लिए लड़ने के लिए उन्हें सक्षम बनाया। यही इस उपन्यास की कथावस्तु है। अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध की आवाज़ उठाने में आदिवासियों को प्रेरित कर आन्दोलन में स्वयं उनका नेतृत्व किया था गोविन्द गुरु ने।

लेख़क स्वयं आदिवासी विभाग के मीणा वंशज है, इसलिए इस आदिवासी शहादत की कहानी पर उनकी दिलचस्पी स्वाभाविक है। फिर भी सुनी–सुनायी बातों पर विश्वास न करके उन्होंने इस विषय पर काफी शोध किया, प्रामाणित सामग्रियां इकट्ठा की और उसे एक प्रामाणिक और असंदिग्ध आख्यान का रूप दिया।

अंग्रेज़ी ठिकानेदारों की मदद से देशी सामंतों का शोषण, बेगार की ज़बरन वसूली, वनोपज पर कब्जा अदि से आदिवासियों का जीना दूभर हो रहा था। अपनी ही ज़मीन से बेदखल किये जाने पर भी जंगल में वे अपना जीवन और संसार बना चुका था। उस जंगल की प्राकृतिक संपदा पर भी राजपुताना लोगों की नज़र पड़ेगी इसकी कल्पना भोले आदिवासियों को नहीं थी। एक ओर उनकी स्वतन्त्रता पहले से ही छीन ली गयी थी दूसरी ओर शोषण का भी कोई अंत न रहा। ईस्ट इंडिया कंपनी के आगे अपना अधिकार बनाए रखने के लिए मेवाड़ के कई रियासतों ने मिलकर संधि की, बदले में अंग्रेजों ने उनसे वनोपज पर कब्जा माँगा। वनोपज पर अधिकार और खनिज पदार्थों का दोहन अंग्रेजों का मुख्य लक्ष्य था। इसके लिए मेवाड़ के कई रियासतों को अपने संरक्षण में ले लिया। आदिवासी विद्रोहों को कुचलने के लिए अंग्रेजों का सैन्य बल भी रियासतों के साथ था। अपने अधिकारों के लिए अगर कोई आदिवासी आवाज़ उठाने लगा तो उसे राजद्रोह मानकर उसकी हत्या की जाती थी। इस तरह राजा–महाराजा अंग्रेजों की कठपुतली बनकर अपनी ही प्रजा के घातक बने।

ऐसे भयानक माहौल में गोविन्द गुरु का आगमन होता है। जो खुद आदिवासी नहीं थे बल्कि आर्य धर्म में दीक्षित एक सन्यासी थे। सबसे पहले गोविन्द गुरु ने अपने को जाति मुक्त कर दिया। आदिवासियों में जागृति जगाना आसान काम नहीं था। उनके मन में रूढ़ मूल कई अंधविश्वासों को हटाना गोविंद गुरु का पहला लक्ष्य था, क्योंकि अंध विश्वास रूपी अन्धकार को हटाये बिना जागृति का दीपक जलाना मुश्किल था। फिर बुरी आदतें जैसे नशाखोरी, कुप्रथा आदि से भी उन्हें मुक्त करना। धीरे–धीरे गुरु ने आदिवासियों को यह विश्वास दिलाया कि वे ही इस भूमि के अधिकारी है जिस पर ये देशी राजा–महाराजा विदेशियों के साथ मिलाकर कब्जा करना चाहते हैं। अपनी मिट्टी को बचाना, जल, जंगल और ज़मीन को बचाना उनका कर्तव्य है। अपने उपदेशों से गुरु

ने उन्हें अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने के लिए सक्षम बनाया और उन अधिकारों के लिए अपना बलिदान देने तक उन्हें तैयार करवाया। उन्हें संगठित करना आसान काम नहीं था। सबसे पहले उनके मन में विश्वास पैदा करना आवश्यक था जिसमें गोविन्द गुरु सफल हुए। नतीजा आदिवासी लोग गोविन्द गुरु के नेतृत्व में शोषक सामंतों और विदेशियों के खिलाफ आन्दोलन पर डटे रहे। पर उनके भीतर भी फूट डालने की कोशिश अंग्रेजों द्वारा हुई।

प्रस्तुत दास्तान से लेख़क ने यह दिखाया है जिन लोगों को हम असभ्य कहकर परे हटाते हैं वे एक जीता जागता समाज है और सभ्य कहलाने वाले नेता–माहा नेताओं से कई अर्थों में भले हैं और उनमें मानवीयता कूट–कूटकर भरी हुई है। स्वतन्त्रता की तीव्र अभिलाषा ने उन्हें इस तरह संघर्ष और संग्राम करने को प्रेरित किया था। स्वतन्त्रता के लिए ही हमने भी अंग्रेजों के साथ लड़ाई लड़ी थी। फिर इन आदिवासियों के साथ गुलाम जैसे व्यवहार क्यों कर रहे हैं? इस विरोधाभासी मानसिकता पर लेख़क उंगली उठाते हैं। इस उपन्यास लेखन से लेख़क का लक्ष्य स्वतन्त्रता चाहने वाले एक जन विभाग की जीवन गाथा को, उनके स्वतन्त्रता संग्राम की कहानी को लोगों तक पहुंचाना था जिसे इतिहासकारों ने अब तक अँधेरे में रखा था। इसलिए उन्होंने भूमिका में कहा है ''स्पष्ट है कि मनुष्य के हक़ की लड़ाई के इतिहास को मनुष्य विरोधी शोषक–शासकों ने दबाया है और उनके आश्रय में पलनेवाले इतिहासकारों ने उनका साथ दिया है।'' कथा तंतु को प्रामाणिकता दिलाने के प्रयास में उपन्यास सुलभ कल्पना का अभाव इस रचना में दृष्टिगत होता ही है, इसलिए इसे ऐतिहासिक रचना कहें या उपन्यास, आलोचकों में मतभेद ज़रूर है। पर चाहे ऐतिहासिक रचना हो या उपन्यास, शुरू से अंत तक उसकी रोचकता बनाए रखने में लेख़क को सफलता मिली है। इतिहास से जानकारी हासिल कर उसे अपदस्थ किये बिना उपन्यास का रूप देने में लेख़क ने ईमानदारी दिखाई है वह अत्यंत सराहनीय है। आर्य–अनार्य के बीच हुए संघर्ष से विस्थापित आदिवासियों की कहानी कहते समय इतिहास के एक भी सूत्र छूट न पाने की कोशिश लेख़क ने की है।

सन्दर्भ :–

1. धूणी तपे तीर : हरिराम मीणा।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 193-197
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

असमीया लेखिका निरूपमा बरगोहाई के उपन्यासों में नारीवाद

-सुमि शर्मा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, असम।

अंग्रेजी 'फेमिनिजिम' शब्द के प्रतिरूप में असमीया एवं हिन्दी में नारीवाद शब्द का प्रयोग किया जाता हैं। नारीवादियों के दृष्टि से नारी का सम अधिकार का अर्थ हैं नारी–पुरुष दोनों में मानसिक एवं शारीरिक रूप से किसी प्रकार का भेद न होना। उन लोगों के दृष्टि से मनुष्य मात्र में चाहे वह पुरुष हों, या नारी, सब में स्वतंत्र अस्तित्व एवं स्वाधीन सत्ता होती हैं।

असमीया लेखिका निरूपमा बरगोहाई के रचनाओं में नारीवादी दृष्टिकोण पायी जाती हैं। लेखिका निरूपमा के उपन्यास 'मार प्रति मरम आरू अश्रद्धा' में एक आदर्शवाद युवक के मिलन के पूर्व अवस्था में एक सचेतन, शिक्षित युवती मम्मी के लिए लिखे जाने वाली लम्बी चिट्ठी है। लेखिका ने परम्परा के बंधन से मुक्त होकर नर–नारी के प्रेम से मिलने वाले प्रकृत सुख को नारीवाद में स्वीकार किया है।

निरूपमा जी के अन्य एक नारीवादी उपन्यास अन्य जीवन में भी पुतली नाम के एक नारी ने परंपरा के सबंध को मुक्त करके सफल जीवन के यथार्थ रूप को उजागर करने में पूर्णतरू सफल हुए है।

निरूपमा जी के अन्य एक सफल नारीवादी उपन्यास चंपावती हैं, जिसमें दाम्पत्य जीवन में स्वामी के अत्याचार से पीड़ित एक नारी परम्परा से हटकर स्वामी को परित्याग करके समाज में खुद की प्रतिष्ठा के लिए वामपंथी नारी समस्या के साथ जुड़ जाते हैं।

नारीवाद राजनैतिक आन्दोलनों, विचारधाराओं और सामाजिक आन्दोलनों की एक श्रेणी है, जो राजनैतिक, आर्थिक, व्यक्तिगत और सामाजिक लौकिक समानता को परिभाषित करने, स्थापित करने और प्राप्त करने के एक लक्ष्य को निर्धारित किया जाता हैं। इसमें महिलाओं के लिए पुरुषों के समान शिक्षा ग्रहण और नौकरी करने का अवसर प्रदान किया जाता हैं।

नारीवादी सिद्धांतों का उद्देश्य लौकिक असमानता की प्रकृति एवं कारणों को समझना तथा इससे पैदा होने वाले लौकिक भेदभाव की राजनीति और शक्ति संतुलन के सिद्धांतों पर इसके प्रभाव को व्याख्या करना है। स्त्री विमर्श संबंधी राजनैतिक प्रचारों का जोर प्रजनन संबंधी अधिकार, घरेलू हिंसा, मातृत्व अवकाश, समान वेतन संबंधी अधिकार, यौन उत्पीड़न, भेदभाव एवं यौन हिंसापर रहता है।

अंग्रेजी के 'फेमिनिजिम' शब्द के प्रतिरूप में 'नारीवाद' शब्द का प्रयोग किया जाता है। फेमिनिजिम ग्रंथ के रचियता जन सर्वे के अनुसार नारी–पुरुष दोनों के सम धारणा या भाव ही नारीवाद है। नारीवादियों के दृष्टि से पुरुष के समान ही नारी की शक्ति–सामर्थ्य है और मुक्त है। नारी–पुरुष दोनों का स्वतंत्र सत्ता है।

नारीवादियों में मुख्य रूप से तीन स्तर देखने को मिलते हैं– उदारवादी, मार्क्सवादी और चरमवादी। उदारवादियों के दृष्टि से नारी–पुरुष दोनों समान है, इसीलिए दोनों को समान रूप से स्वतंत्र अस्तित्व एवं अधिकार मिलना चाहिए। मार्क्सवादियों के अनुसार नारी–पुरुष के विषमता का मुख्य कारण है अर्थनैतिक व्यवस्था। नारी अर्थनैतिक रूप से पुरुष के ऊपर निर्भरशील है। अर्थनैतिक रूप से नारी स्वतंत्र नहीं है। चरमवादियों के अनुसार पितृ प्रधान समाज व्यवस्था में नारी का शोषण मूल रूप से पुरुषों द्वारा होती है। इसीलिए उन लोगों के अनुसार पितृतांत्रिक व्यवस्था को ही समाज से खत्म कर देना चाहिए। तभी नारी–पुरुष दोनों का अधिकार समान हो सकते है।

नर और नारी समाज में समान अधिकारों के हकदार हैं। किन्तु पितृसत्तात्मक समाज लिंग के आधार पर नारी को उनके अधिकारों से वंचित रखता है। परिणामस्वरूप नारी हाशिए पर रहने के लिए बाध्य हो गई। इन असमानताओं के खिलाफ तथा स्त्रियों के अधिकार–प्राप्ति हेतु किए जानेवाला संघर्ष नारी मुक्ति आंदोलन अथवा नारीवाद है। दूसरे शब्दों में, नारीवाद वह सिद्धांत है जो सभी क्षेत्र में नारी को पुरुष के समान अधिकार और अवसर की मांग करता है।

नालंदा अंग्रेजी–हिन्दी कोश में फेमिनिजिम का अर्थ 'स्त्रियों के अधिकारों और उनकी प्रगति के मार्ग पर आंदोलन करनेवाला' दिया गया है।

लोकभारती राजभाषा शब्दकोश, हिन्दी–अंग्रेजी में नारी अधिकारवाद के अर्थ में फेमिनिजिम शब्द का प्रयोग किया गया है। मानक अंग्रेजी–हिन्दी कोश में फेमिनिजिम का अर्थ स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन, स्त्री–अधिकारवाद आदि दिए गए है।

नारीवाद का उद्देश्य है– 'समानता, सम्मान, स्वतंत्रता'। नारी से जुड़े यही मुद्दे नारीवादी लेखन के केंद्र में है। इसके अलावा दहेज, स्त्री हिंसा, बलात्कार, घरेलू हिंसा, स्त्री भ्रूण हत्या, कामकाजी महिला के प्रश्न, तलाक़शुदा एवं विधवा स्त्रियों की समस्याएँ, नौकरी में असमानता, वैयक्तिक कानून, धर्म तथा रीतिरिवाजों के माध्यम से स्त्रियों का दमन, मातृत्व (गर्भधारण) तथा गर्भपात का अधिकार आदि स्त्रियों से जुड़े कई छोटे–बड़े मुद्दों का नारीवादी लेखन के अंतर्गत समाविष्ट कर लिया गया है।

हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा कृत 'शृंखला की कड़ियाँ' नारीवादी लेखन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। वर्तमान समय में कई समर्थ लेखक–लेखिकाओं ने नारीवादी लेखन को अत्यंत सशक्त और सार्थक बनाया है।

विशेष रूप से हिन्दी का उपन्यास और कथा–साहित्य नारीवादी लेखन की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध और सार्थक है। इस्मत चुगताई के 'कागजी है पैरहन' से हम भारतीय नारीवादी लेखन का प्रारम्भ मान सकते हैं। साठोत्तरी हिन्दी नारीवादी लेखन (उपन्यास एवं कथा–साहित्य) में कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, प्रभा खैतान, मैत्रेयी पुष्पा, ममता कालिया, चित्रा मृदुगल, राजी सेठ, नासिरा शर्मा, कृष्णा अग्निहोत्री, शशिप्रभा शास्त्री, सूर्यबाला, कुसुम अंसल, कमल कुमार, अलका सरावगी, मेहरुन्निसा परवेज़, लवलीन, लता शर्मा, गीतांजलि श्री, कृष्ण बलदेव वैद, सुरेन्द्र वर्मा, चंद्रकांता, सत्येनकुमार, तहमीना दुर्रानी आदि महत्वपूर्ण है।

हिन्दी महिला उपन्यास लेख का दायरा घर–परिवार तक ही सीमित नहीं रहा। उनका प्रभाव समाज और राष्ट्र से भी बराबर रहा है। मन्नू भंडारी का 'महाभोज', महाश्वेता देवी का 'जंगल के देवदार', कृष्णा सोबती का

'जिंदगीनामा', कुरेतुल एन हैदर का 'आग का दरिया', प्रभा खैतान का 'छिन्न मस्ता', नासिरा शर्मा का 'जिंदा मुहावरे', चित्रा मृदुगल का 'आँवा', मैत्रयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी', मृदुला गर्ग का 'चित्तकोबरा', राजी सेठ के 'तत–सम' और 'निष्कवच' उपन्यासों में नारी का यथार्थवादी स्वरूप मिलते हैं।

अंततः हिन्दी साहित्य में 'नारीवाद' को एक वाद, सिद्धांत, बोध एवं चेतना के रूप में देखने से यही पता चलता है कि स्त्री को केवल दैहिकता, लौगिकता या जैविक पदार्थता के स्तर पर प्रोजेक्ट न करते हुए, उसे संवेदन, मनन, विचार और व्यवहार के स्तर पर भी अपनी समग्रता में उपस्थित करने का यत्न समकालीन हिन्दी कथाकारों, उपन्यासकारों का हमेशा से रहता है।

नारी सम अधिकार स्थापना हेतु पाश्चात्य में विभिन्न प्रकार की नारीवादी आंदोलन का प्रारम्भ हुआ था। भारतवर्ष में अंग्रेजों के शासन के बाद ही इन आन्दोलोनों का थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ाद्य साथ–साथ असम में भी इसका प्रभाव पड़ा।

असम के क्षेत्र में 19वीं सदी के संस्कार आंदोलन और स्वाधीनता आंदोलन में नारी के सक्रिय भागीदारी ने चंद्रप्रभा शैकिया, राजवाला दास आदि की तरह शिक्षित और सचेतन नारी का जन्म दिया और इन लोगों के चेष्टा से 1926 सन में नारी मंगल कामना हेतु 'असम महिला समिति' नाम के एक स्वतंत्र महिला संगठन का आयोजन किया गया। इसके पहले 1915 सन में डिब्बरुगढ़ में 'डिब्बरुगढ़ महिला समिति', 1917 सन में 'नगाँव महिला समिति' आदि महिला संगठन का निर्माण हुआ था। इसीतरह असम में सीमित रूप से नारीवादी आंदोलन का विकास हुआ था।

असमीया समाज में नारी–पुरुष के सम अधिकार को लेकर बहुत सी नारी एकसाथ संगठित होने पर भी असमिया उपन्यास विधा में नारी समस्या एवं उसके अधिकार को लेकर 19वीं सदी के प्रारम्भ में विभिन्न उपन्यासकारों ने उपन्यास लिखें। रजनीकान्त बरदलै के 'रहदै लिगिरी'(1930) और दंडीनाथ कलिता के 'साधना'(1928), उपन्यास को नारीवादी उपन्यास के रूप में देखने को मिलते है। असमिया उपन्यास के आदियुग महिला उपन्यासिका पद्मावती देवी फुकननी के 'सुधर्मार उपाख्यान'(1884) के बाद बीसवीं सदी के सुप्रभा गोस्वामी, स्नेहलता भटचार्य और चंद्रप्रभा शैकिया के नाम आते हैं।

42वे गण आंदोलन में कनकलता, भागेश्वरी आदि वीरांगनाओं ने आत्म बलिदान देने पर भी इस समय में इस तरह प्रेरणा प्राप्त उपन्यास का रचना नहीं हुआ था। 60के दशक से ही पाश्चात्य के भावधारा असमिया उपन्यासों में देखने को मिलते है। इस सदी में अँग्रेजी उपन्यासकार जेमस जइस, भार्जिनिया वोल्फ आदि के कलाप्रधान एवं चेतना प्रधान उपन्यास का प्रभाव असमीया उपन्यासों में पड़ा। फ्रायेड के मनस्तात्विक सूत्र ने जिस प्रकार इस समय को प्रभावित किया है, ठीक उसी प्रकार असमिया समाज में मार्क्सीय दर्शन के प्रभाव वृद्धि होने के साथ–साथ साहित्य में भी एक प्रगतिशील धारा का उद्भव हुआ।

असमीया साहित्य में स्त्री उपन्यासिकाओं में मामनी रयसम गोस्वामी, निरूपमा बरगोहाई आदि के उपन्यासों में नारीवादी चेतना उभर कर सामने आयी है। इनके अलवा अरुपा पटंगीया कलिता के रचनाओं में भी सीमित रूप से नारीवादी चेतना का आभास मिलती हैं।

मामनी रयसम गोस्वामी के 'नीलकंठ ब्रज'(1976), 'संस्कार आदि उपन्यासों में नारीवादी चेतना का प्रभाव है। इसके साथ–साथ निरूपमा बरगोहाई के 'तिनिकन्या'(1978), 'इपारर घर सिपारर घर', 'अन्यजीवन', 'चंपावती'

आदि नारी चेतनतावादी उपन्यास हैं। अरुपा पटंगीया के 'मृगनाभि'(1987) उपन्यास भी इस कोटी में आते हैं। असमीया लेखिका निरूपमा बरगोहाई के रचनाओं में नारीवादी दृष्टिकोण पायी जाती हैं। लेखिका निरूपमा के उपन्यास 'मार प्रति मरम आरू अश्रद्धा' में एक आदर्शवाद युवक के मिलन के पूर्व अवस्था में एक सचेतन, शिक्षित युवती मम्मी के लिए लिखे जाने वाली लम्बी चिट्ठी है। लेखिका ने परम्परा के बंधन से मुक्त होकर नर–नारी के प्रेम से मिलने वाले प्रकृत सुख को नारीवाद में स्वीकार किया है।

उपन्यास में रूपाली नाम के एक युवती वामपंथी दल के कर्मी मनोज के साथ प्रेम विवाह के बंधन में बाँधना चाहती है, लेकिन परंपरा के तहत इसके विरोध में रूपाली की माँ खड़ी हो जाती है। लेकिन माँ की आज्ञा को न मानते हुए रूपाली ने परंपरा को अस्वीकार किया है। उसके अनुसार नारी स्वयं अपनी इच्छा के अनुसार विवाह जैसी जीवन की बड़ी सिद्धांत खुद ले सकती है, खुद की पसंद से प्रेम विवाह कर सकते है। पुरुष प्रधान समाज में सिर्फ परंपरा को मानते हुए स्वयं को किसी दूसरे के हवाले बलि नहीं चढ़ा सकते। एक समाज में नारी–पुरुष दोनों ही स्वतंत्र रूप से अपना विचार, इच्छा को प्रकट कर सकते है।

लेखिका ने रूपाली के माध्यम से पुरुष प्रधान समाज में सामाजिक रूप से नारी स्वतन्त्रता की मुक्ति को पहचाना है। मूल नायिका रूपाली किसी दूसरे मर्द के साथ विवाह करके अपनी माँ की तरह ससुराल में प्रेम शून्य जीवन को अपनाकर पुरुष प्रधान समाज की हर एक सिद्धांत को नहीं मान सकते। नारीवादी दृष्टि से रूपाली अपनी माँ की सामाजिक स्थिति को व्यक्त करती है :–

बचपन में तुम पितृगृह में एक भय से पराजित होकर अपनी प्रेम को अस्वीकार किया, चाँदि के बाद उसी दर से स्वामी द्वारा शासित जीवन चलता रहा। और वृद्धावस्था में बड़ा भाई लोग भी जो तुमको शासन करेगें अर्थात फिर से एक जैसी भय से तुम्हारी मन और आत्मा को बंदी करके रखेंगे उसमें कोई संदेश नहीं। कैसा पश्चाताप का विषय है, भारत में आज भी नारी–मन को मुक्ति नहीं मिल सका माँ। यद्यपि हम एक दिन मन और आत्मा से सच्ची रूपों में मुक्त स्वभाव के थे, खुद की उल्लास हृदय की अस्तित्व को रक्षा करके पुरुष के समान ही आगे बढ़े थे। (पृ–3)

'तिनिकन्या' उपन्यास संकलन के अंतर्गत 'मार प्रति मरम आरू अश्रद्धा' उपन्यास में विवाह संबन्धित नारी की नवीन दृष्टिकोण को दिखाया है। मूल रूप से उपन्यास में असमिया नारी की परंपरागत विवाह को अस्वीकार करते हुए सममर्यादा के रूप में विवाह को अपनाया हैं, जो पुरुष और नारी दोनों के लिए समान हैं।

निरूपमा बरगोहाई के सफल नारीवादी उपन्यास 'अन्य जीवन' है। उपन्यास के कहानी में धुबुरी कॉलेज में अध्यापक पद में नौकरी करने वाला मनोज और उसके शिक्षित पत्नी अणिमा गाँव के घर में आने के बाद मनोज के मुँह से टुनटुनी नदी में रंभा नाम के चाची की आत्महत्या करने की बात सुनती है, पूरी कहानी न जानने के कारण पुतली नामक लड़की से आत्महत्या के पीछे छिपी रहस्य को मालूम पड़ाद्य पुतली जो रंभा चाची की लड़की थी, उससे अणिमा को यह पता चला कि स्वामी की शोषण–अत्याचार सहन करते–करते एकदिन उसकी माता ने आत्महत्या करने के लिए बाध्य हो गई।

पुतली मार्क्सवादी युवक नरेन से मिलने के बाद मार्क्स दर्शन से प्रभावित होकर नारी मुक्ति चेतना के लिए खड़ी हुई। आइकन नाम की एक लड़की भी पुतली से प्रभावित थी। आइकन की दीदी को जीजा से मिलने वाली पीड़ा, पुतली की माता को पिता से मिलने वाले अत्याचार, रजनी नामक चाची को चाचा से मिलने वाले दुर्व्यवहार

आदि कई बातें उल्लेख हैं।

अणिमा जैसी किताबी ज्ञान के बीच सीमित रहने वाली युवती के सामने नारी शोषण जैसी समाज की सच्ची घटना को देखना पूरे उपन्यास को प्रभावित करते है। आइकन और पुतली से मिलने के बाद अणिमा ने अपनी सास की कष्ट को महसूस कर पाई। जो पहले पूरे घर के बारे में सोचकर अपना सारा जीवन घर के नाम पर ही न्योछावर कर दिया, पुरुष प्रधान समाज में खुद की कोई अस्तित्व नहीं बना पाया। नारी मुक्ति की प्रकृत चेतना का आभास गाँव की साधारण सी लड़की से प्राप्त करके अणिमा ने एक 'अन्यजीवन' को पहचाना। मार्क्सवादी चिंता से प्रेरित पुतली, आइकन और अणिमा तीनों ही उपन्यास के आकर्षक चरित्र हैं, जो सामाजिक नारी मुक्ति की परिकल्पना करते हुए असम के कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा चलाने वाले असम महिला संघ और गणतांत्रिक महिला समिति आदि नारी संगठन में एक साथ जुड़ गए।

लेखिका निरूपमा की एक अन्य सफल नारीवादी उपन्यास चंपावती हैं। चंपावती पिता की आज्ञाकारी पुत्री थी, पिता के कहने पर उसने कांग्रेस मंत्री घर की कॉलेज के प्रोफेसर शिव से विवाह कर लिया। विवाह के उपरांत चम्पा को अपनी सास से पति की अवैध संबंध के बारे में पता चला, तब उसने समझा कि उनके दांपत्य जीवन में प्रेम नहीं, बल्कि योन तृप्ति की साधन मात्र है। शिव जैसे पुरुष नारी को 'पातीर तिरुता' (विस्तर की औरत) ही समझते है। शिव ने चम्पा की रूप के कारण ही चाँदि की। एक उच्च शिक्षित युवक शिव के लिए प्रेम, श्रद्धा, विश्वास और समझदारी कोई मायने नहीं रखतेद्य चम्पा ने जब शिव को उसके अवैध संबंध के बारे में पुछा तो चम्पा खुद ही शिव द्वारा शोषित होने लगा।

एक दिन गाँव की एक युवक जो नारी मुक्ति स्वाधीनता के समर्थक सूर्य के हाथ में दिए गए पिता की चिट्ठी पाकर चम्पा ने एक नवीन सिद्धांत ग्रहण करने लिए प्रोत्साहन पाई। पिता ने खुद उस चिट्ठी के जरिए विवाह बंधन से विच्छेद होने की बात उठायी।

अंततः दाम्पत्य जीवन से पीड़ित चंपावती आइनसम्मत रूप से अपने पति से विच्छेद हो जाती है। समाज में खुद की प्रतिष्ठा के लिए वामपंथी नारी संस्था के साथ सर्वदा के लिए जुड़ जाते हैं।

निष्कर्षतः लेखिका ने अपने सफल उपन्यासों के माध्यम से समाज व्यवस्था में 'नारीवाद' को प्रतिष्ठित करने में सक्षम हुई हैं। लेखिका स्त्री लेखिका की गरिमा हैं। उनके उपन्यासों में स्त्री किसी कटघरे में बन्दिस्त नहीं रहती, उनके लेखन में स्त्री–पुरुष का कोई भेद नहीं है, स्त्री अपनी अस्मिता बनाते हुए कभी पुरुष नहीं बनना चाहतीद्य उसकी लड़ाई किसी पुरुष मात्र से नहीं वरन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक प्रतिकुलताओं के विरुद्ध है जो सदियों से स्त्री को अनेक बंधनों में बांधकर रखती आयी है। लेखिका ने 'नारीवाद' को अपने उपन्यासों में विशेष स्थान दिया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. बरगोहाई, होमेन : असमीया साहित्यर बुरंजी, आनंदराम बरुआ भाषा–कला–संस्कृति संस्था, असम।

Ph no – 8876133001

Mail – sumisarmah1993@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021–वेबिनार विशेषांक Page No. : 198-200

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में दलित संवेदना

–उमेश कुमार

सहायक आचार्य हिंदी, राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, अलवर
(शोधार्थी, राज ऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय, अलवर)

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति धारा प्रवाहित हुई थी। इस धारा में अनेक सन्त कवि सामने आये। इन संत कवियों की एक खास पहचान यह थी कि ये परम्परागत समाज व्यवस्था में प्रचलित असमानताओं पर प्रहार करते थे। इनके मन में सवाल उपजते थे, जैसे– भगवान के सामने सभी समान हैं तो मनुष्य उनमें भेदभाव क्यों करता है? समाज में असमानता क्यों फैली? समाज में कर्मकाण्ड और पूजा पाठ जैसे अन्धविश्वास क्यों हैं? आडम्बर क्यों हैं ? ऐसे सवाल उठाकर वे इनको सारहीन बताते थे। वे लोगों को प्यार से रहने की बात समझाते थे। वे लोगों को मेलजोल का पाठ पढ़ाते थे। वे अपने भक्तों और लोगों को आत्मा और परमात्मा के मिलन से एक होने की सीख देते थे। इन संतों की रचनाओं में यह संदेश दिया गया है कि समाज में सभी समान हैं। हमें भाईचारे से रहना चाहिए। समाज में सभी को बराबरी का दर्जा देना चाहिए। हमें कोई हक नहीं है कि हम किसी को ऊँचा व किसी को नीचा समझें। हमें बन्धुत्व की भावना का विकास करना चाहिए।

हिन्दी साहित्य में दलित सम्वेदना की ओर भक्तिधारा में सहयोगी इन संत कवियों ने अपने विचार सीधी और सरल भाषा में आम जनता के सामने रखे। संत कवियों ने बोलचाल की भाषा से जनता को जागृत किया। ज्यादातर संत कवियों ने अपनी बात को दोहों के माध्यम से कहा। लोगों को उनकी बातों में सच्चाई नजर आई। लोगों ने उनको समझा। दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर भक्ति का प्रचार और प्रसार भक्तिकाल में छा जाता है। सन्त कवियों ने अपनी रचनाओं में भगवान के प्रति प्रेम को प्रदर्शित किया है। उन्होंने भगवान के अनेक अवतारों की कहानियाँ भी सुनाई। उन्होंने समाज में प्रचलित असमानताओं और अन्धविश्वासों पर सवालिया निशान लगाया। उन्होंने धार्मिक आडम्बरों का परदाफ़ाश करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने जाति–व्यवस्था के विरूद्ध आवाज को समाज में पहुँचाया। इनमें प्रमुखतः सन्त कबीरदास जी और गुरूनानक जी आदि की विचारधारा आज भी मौजूद है। मीराँबाई के भजन आज भी लोगों को भक्ति का पाठ पढ़ाते हैं।

हिन्दी साहित्य में प्रमुख भक्ति सन्त कवि रामानन्द ने भक्ति के माध्यम से आम जनता को नया रास्ता दिखाया था। इन्होंने एकेश्वरबाद पर बल दिया। इन्होंने हिन्दू–मुस्लिम एकता पर जोर दिया। रामानन्द की शिष्य परम्परा में राजस्थान में रामस्नेही सम्प्रदाय का उदय हुआ। इस सम्प्रदाय की रेण (मेड़ता) और शाहपुरा (भीलवाड़ा) की शाखाएँ लोकप्रिय हैं। रामस्नेही सम्प्रदाय के सन्तों ने राजस्थान और उसके बाहर रामभक्ति का बहुत प्रचार–प्रसार किया। इनके अनुसार–

जाँति–पाँति जानै नाहिं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई।

भक्ति सन्त कवि कबीरदास जी समाज सुधारक थे। सामाजिक असमानताओं का उन्होंने विरोध किया था। उनकी नजर में भगवान सबके हैं। भगवान पर किसी व्यक्ति, जाति, धर्म या वर्ग विशेष का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने भगवान की सच्ची भक्ति का संदेश दिया। प्राचीनकाल में महात्मा बुद्ध ने, भक्तिकाल में सन्त कबीरदास ने और गुरूनानक साहेब ने जाति प्रथा का डटकर विरोध किया। कबीरदास जी ने सभी व्यक्तियों को जन्म से समान होने का संदेश दिया। उनके अनुसार जिस व्यक्ति ने अपने अच्छे कार्यों से भक्ति का मार्ग चुना है उसकी जाति के बारे में पूछना असंगत है। कबीरदास ने कर्म की अच्छाई पर जोर दिया। एकेश्वरवाद के कारण हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उनके भक्त थे। तत्कालीन समाज व धर्म के क्षेत्र में उन्होंने वर्ण व्यवस्था पर प्रहार, साम्प्रदायिकता का विरोध और सादगी भरी भक्ति पर बल दिया था। कबीरदास जी ने बाह्याडम्बरों का खुलकर विरोध किया था। उन्होंने गुरू को भगवान से भी बड़ा बताया –

गुरू गाविंद दोउ खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरू आपने, जिन गोविन्द दियो बताय।।

संत गुरू नानक जी ने सामाजिक कुरीतियों और परम्पराओं को सुधारने का मार्ग बताया। उनके अनुयायी विभिन्न जातियों से सम्बन्धित थे। नानक जी ने हिन्दू– मुसलमानों को सौहार्दपूर्ण जीवन जीकर एक बने रहने का संदेश दिया। नानक जी सीधी सी बात को सरल भाषा में कहते थे–

उसती करहि अनेक जन, अन्तु ना पारावार,
नानक रचना प्रभि रची, बहु बिधि अनिक प्रकार।

नानक जी ने ईश्वरीय एकता के संदेश से मानवीय एकता का पाठ पढ़ाया। उन्होंने समानता, बंधुता और सृजनात्मकता पर जोर दिया।

संत दादू दयाल ने भगवान की भक्ति को समाज सेवा और मानवता से सम्बद्ध किया। उन्होंने घमंड से दूर रहने की शिक्षा दी। मानवता के लिए सेवा करना उन्होंने नैतिक कर्त्तव्य बताया। दादू के अनुयायी विभिन्न जातियों, धर्मों और वर्गों से सम्बन्धित थे। दादू के अनुसार बह्म एक है और वह सर्व विद्यमान है। इस संदर्भ में वे कहते हैं– पूरन ब्रह्य बसैं सब ठाई, कहै रैदास मिले सुख साँई।

सन्त चैतन्य महाप्रभु ने कर्मकाण्डों का विरोध किया था। उनके अनुसार भक्त भक्ति में डूबकर गोत्र, कुल, जाति और धर्म की संकुचित भावना से बाहर आ जाता है। संत रैदास (रविदास) जी हिन्दू–मुसलमान का विभेद नहीं करते थे। इन्होंने जाति–पाँति का विरोध किया था। इन्होंने बाह्यडम्बरों को दूर करने पर जोर दिया था। ये मन की शुद्धता पर बल देते थे। समानता एवं बंधुता की वे शिक्षा देते थे। उनके अनुसार ऐसा चाहो राज मैं, जहाँ मिलै सबन को अन्न, छोट बड़ों सब सम बसै, रविदास रहै प्रसन्न।

भक्तिकाल में महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, सखूबाई और चोखामेला आदि ने समानता का पाठ पढ़ाया। इस समय पंढरपुर का नाम विट्ठल नामक स्थानीय देवता से प्रसिद्ध हुआ। नामदेव ने एकेश्वरवाद पर जोर दिया। इन्होंने मूर्ति पूजा और धार्मिक परम्पराओं का विरोध किया। सभी जातियों व धर्मों के लोग इनके अनुयायी थें।

भक्तिधारा की सर्वप्रथम प्रसिद्धि दक्षिण भारत में सावतीं और नौवीं सदी के मध्य दिखायी देती है। वहाँ के घुमक्कड़ी साधुओं को इसका योगदान जाता है। इन घुमक्कड़ी साधुओं में जो शिव भक्त थे वे नयनार के नाम से प्रसिद्ध हुए। जो विष्णु के भक्त थे वे अलवार के नाम से प्रसिद्ध हुए। नयनार और अलवार सन्तों ने स्थानीय देवी–देवताओं की प्रशंसा में संगीतबद्ध काव्य सृजन किया और लोगों के दिलों में स्थान पाया। इन संतों में अनेक जातियों के लोग थे। नयनार संतों में उप्पार, संबंदर, सुन्दरार और मणिक्कवसागर आदि थे। अलवार संतों में पेरिय अलवार, पेरिय अलवार की बेटी अंडाल, नम्मालवार और तोंडरडिप्पोडी अलवार आदि थे।

भक्ति धारा में सन्त कवियों की तरह भारत में सूफ़ी सन्त भी अपनी बात को लोकभाषा में कहते थे। वे अपना मत लोगों तक कथा और काव्य के माध्यम से प्रसारित करते थे। भक्ति सन्तों और सूफी संतों में अधिकांश समानताएँ है, जैसे– गुरू का महत्त्व, नाम स्मरण, ईश्वर के प्रति प्रेम, नाम स्मरण, प्रार्थना, विरहाकुलता की स्थिति, क्षणिकवाद, सरल जीवन, सच्ची साधना, मानवता–प्रेम और ईश्वर की एकता और सर्वव्यापकता आदि। भक्ति आंदोलन एवं सूफ़ी आन्दोलन ने भक्ति और मानवता प्रेम से संचार में साहित्य के माध्यम से शांति, अहिंसा और बंधुता को बढ़ावा दिया।

सहायक ग्रंथ सूची :-

1. (संपादक मण्डल) वर्मा, डॉ. धीरेन्द्र (प्रधान), वर्मा, डॉ. ब्रजेश्वर, चतुर्वेदी, श्री रामस्वरूप, डॉ. रघुवंश (संयोजक), भारती, डॉ. धर्मवीर, (2015), हिन्दी साहित्य कोष भाग–1 (पारिभाषिक शब्दावली), प्रकाशक–ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संत कबीर रोड़, वाराणसी।
2. (संपादक मण्डल) वर्मा, डॉ. धीरेन्द्र (प्रधान), वर्मा, डॉ. ब्रजेष्वर, चतुर्वेदी, श्री रामस्वरूप, डॉ. रघुवंश (संयोजक), (2015), हिन्दी साहित्य कोष भाग–2 (नामवाची शब्दावली), प्रकाशक – ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संत कबीर रोड़, वाराणसी।
3. (संपादक) चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, (1998), मीराँबाई की पदावली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 12 सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद।
4. सहगल, डॉ. मनमोहन, (2008), हिन्दी शोध–तन्त्र की रूपरेखा, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर।
5. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, (2017), हिन्दी साहित्य की भूमिका, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली।
6. वर्मा, डॉ. रामकुमार, (1992), हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (संक्षिप्त), प्रकाशक साहित्य भवन प्रा.लि, 93, जीरो रोड़, इलाहाबाद।
7. मिश्र, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद, (2012), हिन्दी साहित्य का अतीत प्रथम भाग : आदिकाल–भक्तिकाल, वाणी प्रकाशन 4695, 21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली।
8. मिश्र, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद, (2008), हिन्दी साहित्य का अतीत दूसरा भाग : श्रृंगारकाल, वाणी प्रकाशन 21–ए, दरियागंज, नयी दिल्ली।
9. सिंह, डॉ. बच्चन, (2016), आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद।

E-mail – drukumar7@gmail.com, Mob. – 8769642307

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 201-204
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'तीसरी ताली' उपन्यास में अभिव्यक्त किन्नर विमर्श

-वाघमारे विजयकुमार प्रल्हाद
शोधार्थी पीएच.डी., दयानंद कला महाविद्यालय, लातूर।

विश्व में मनुष्य को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है। यही दो वर्ग सर्वसंम्मत एवं सर्वमान्य है। इसके अलावा भी सृष्टि में ओर एक वर्ग है जिसे तृतीय पंथी के रूप में माना जाता है। जो न पुरुष है और न स्त्री। बल्कि वह नपुंसक है। उसे ही हम हिजडा, खोजा, किन्नर, थर्ड जेंडर, ट्रांसजेंडर, बृहन्नला, तृतीय लिंगी, तृतीय पंथी, उभयलिंगी, यूनक, खोजवा, मौगा, छक्का, पावैया, खुस्त्रा, जनखा, अनरावनी, शिखंडी, ख्वाजासरा, लौंडा, गे, लेस्बियन आदि जैसे कई नामों से जाना जाता है। प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' उपन्यास में फ्लैप पर लिखी हुई सुधीश पचौरी की टिप्पणी सटीक लगती है–''यह उभयलिंगी सामाजिक दुनिया के बीच और बरक्स हिजडों, लौंडो, लौंडेबाजों, लेस्बियनों और विकृत प्रकृति की ऐसी दुनिया है जो हर शहर में मौजूद है और समाज के हाशिए पर जिंदगी जीती रहती है। अलीगढ से लेकर आरा, बलिया, छपरा, देवरिया यांनी 'एबीसीडी' तक दिल्ली से लेकर पूरे भारत में फैली यह दुनिया समांतर जीवन जीती है।''[1]

यह समाज आज हाशिए पर आर्थिक, सामाजिक, राजकीय, सांस्कृतिक, प्रादेशिक, शैक्षिक तथा जीवन के अनेक क्षेत्रों में शोषण से अभिशप्त होकर दर्द भरा जीवन–यापन कर रहा है। लेकिन इसकी अभिव्यक्ति साहित्य में कम मात्रा में ही प्रस्तुत हुई हैं इस दृष्टि से हिंदी साहित्य में भी किन्नर विमर्श अभी भी अपरिपक्व अवस्था में है। फलतः सामाजिक वैचारिकता इसे स्वीकारने में हिचकिचा रही है। इसी सामाजिक भेदभाव को मिटाकर समतामूलक समाज की स्थापना करना साहित्य का प्रधान उद्देश्य है। तीसरी दुनिया के समुदाय की स्थिति अत्यंत दयनीय है। उन्हें पद–पद पर प्रताडीत, अवमानित तथा अपमानित होना पड रहा है। इसी की यथार्थ अभिव्यक्ति प्रदीप सौरभ के 'तीसरी ताली' उपन्यास में हुई है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रदीप सौरभ ने किन्नरों की व्यथा–कथा को मार्मिक ढंग से विवेचन किया है। इतना ही नहीं तो उन्हें सृष्टि का एक अनिवार्य घटक के रुप में भी स्वीकार किया है।

'तीसरी ताली' उपन्यास की कथावस्तू दिल्ली की सिद्धार्थ एनक्लेव सोसायटी से शुरु होती है। जहाँ गौतम साहब के घर बच्चे का जन्म हुआ है। इस बच्चे के जन्म की खुशी के अवसर पर अपने पेट के लिए हिजडे नाच गाना करने के लिए सिद्धार्थ एनक्लेव सोसायटी में आते हे। मगर गौतम साहब इनको शगुन देने के लिए तैयार नहीं होते। तभी गुस्से में सुंदरी कहती है–''गौतम साहब लल्ला हुआ है और गरमी में रजाई ओढकर बैठे हो।''[2] सुंदरी का साथ निभाते हुए बिंदिया भी कहती है–''हिजडों को शगुन नहीं दोगे तो लल्ला हिजडा निकलेगा।''[3]

तात्पर्य पेट के लिए किन्नर समाज दर–दर भटकता है उसके ऐवज में उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। असल में गौतम साहब के घर बेटा जरुर हुआ था, लेकिन कुछ दिनों के अंदर परिवार को पता चल गया था कि वह किसी काम का नहीं है। इसलिए गौतम साहब इन हिजडों को शगुन देने से हिचकिचाते है।

प्रस्तुत उपन्यास का पात्र राजा आर्थिक विवशता एवं बेरोजगारी से त्रस्त होकर काम के लिए सिराज भाई नामक व्यक्ति के बँड में नाचगाना करने के लिए शामील होना चाहता है। आर्थिक आय से परेशान होकर वह कहता भी है–''बहुत परेशानी में हूँ। पूरे सुर–ताल में नाचूँगा। कोई शिकायत हो तो बॅन्ड से निकाल दीजिएगा।''[4] अर्थात वह पेट की भूख के लिए कुछ भी करने को तयार होता है। परिणामतः वह अलीगढ से दिल्ली जाने का विचार करता ही नहीं बल्कि जाता भी है। दिल्ली में उसकी मुलाकात डिम्पल नामक हिजडे से होती हे। डिम्पल उसे गाय और भैंस को सँभालने का काम देती है। डिम्पल के डेरे में बेटी मंजू राजा के प्रति आकर्षित होती है और उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित करती है तथा पेट से रहती है। इस बात का पता जब डिम्पल को लगता है तब वह दो चार मुसटण्डों द्वारा राजा का पुरुषांग कटवाती है तथा राजा को रानी बनाती है। अर्थात उसे हिजडा बनाती है। तात्पर्य डिम्पल द्वारा किया हुआ कृत्य प्रकृति के विरोधाभास को दर्शाता है। राजा की आर्थिक आय सीमित रहने से ही वह डिम्पल के चक्रव्युह में फँस गया था।

उपन्यास के तीसरे अध्याय में जमींदारी तथा सामंतवादी व्यवस्था का चित्रण परिलक्षित होता है। जिसमें बलिया जिले के बाबू श्यामसुंदर सिंह उस इलाके के दबंग जमींदार थे। वे तवायफें और लौण्डों का शौक रखते थे। बाबू श्यामसुंदर सिंह का सबसे चहेता लौण्डा ज्योति नामक दलित युवक था। जो वह आर्थिक हालत से खस्त होकर कुछ पैसों के लिए बाबू श्यामसुंदर सिंह का दिल बहलाने का प्रयास करता था। एक दिन भिखारीदास की मंडली के भाँड बाजार में कुछ लोग ज्योति के साथ जबर्दस्ती करने का प्रयास करते है। इस बात का पता जब श्यामसुंदर सिंह को लगता है तब वे ज्योति को कोठी से बेदखल करते है। ज्योति लाख सफाई देता है किंतु बाबू श्यामसुंदर सिंह पर कोई असर नहीं होता तथा वे पिघलते नहीं।

ज्योति एक दलित लड़का था। पूरा मर्द। नाच गाना उसे पसंद था, इसीलिए उसके अंदर स्त्री भाव जागृत हो गया था। बाबू श्यामसुंदर सिंह के साथ रहते और सोते वह अपने को स्त्री समझने लगा था। गरीबी उसे बाबू साहब की कोठी तक ले गई थी। अब वह नाच–गाने और दूसरों को खुश करने के अलावा कोई काम नहीं कर सकता था। ज्योति को अपने परिवार की चिंता सताने लगी। एक दिन उसकी मुलाकात बलिया के हिजडों की गद्दी के गुरु सोनम से हो गई। ज्योति सोनम से बिनती करता है कि उसको भी इस मंडली में शामिल किया जाए। तब सोनम उसे कहती है कि–''लौण्डेबाजी का धन्धा बंद कर दे, वरना एक दिन पछताएगा। उम्र बढ जाएगी तो मक्खी भी तेरे ऊपर नहीं बैठेगी। भीख के लिए तरस जाएगा। बड़ी जालिम दुनिया है यह।''[5]

ये कथन सुनकर ज्योति अपने माता–पिता तथा आर्थिक स्थिति को यथायोग्य सोनम के सामने व्यक्त करता है। परिणामतः सोनम पिघलकर उसके प्रति संवेदनशीलता अर्जित करती है तथा कहती है कि, 'तू हिजडा तो है नहीं। मैं अपनी मंडली में शामिल नहीं कर सकती।' तब ज्योति मजबुरीवश प्रत्युत्तर देता है–''बिना हिजडे के भी तो हिजडा बना हुआ हूँ। जो अपने को मर्द कहते हैं, वे कौन से हिजडों से कम है! गरीब का बेटा हूँ तो पूरे गाँव की भौजाई बन गया हूँ।''[6]

ज्योति यह गरीब परिवार से होने के कारण वह कुछ भी करने को तैयार होता है। वह न चाहकर भी

हिजडा बनता है। किंतू परिस्थितियाँ ही ऐसी निर्माण हुई थी जो उसे स्वीकार करना पडा। वह हमें तथा समाज के सामने अनेक प्रश्नचिह्न लगाता है। यथा– ''हिजडे और आम आदमी में क्या अंतर है। दोनों को ही तो भगवान ने बनाया है। मैं तो उसे हिजडा मानता हूँ, जो सच्चा फैसला नहीं कर पाते है और मौके पर पाछा दिखाकर भाग जाते है।''[7]

ज्योति के माध्यम से प्रदिप सौरभ ने ऐसे बहुत सारे सवाल उठाए है जिसका जबाब हमारे पास नहीं है। ज्योति जैसे अनेक पात्र आर्थिक विषमता या विपन्नता का शिकार होते जा रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास का पात्र ज्योति अपने परिवार की जिम्मेदारी उठाने के लिए अपने पौरुषत्व को समर्पित करता है। वह पुरुष होकर भी हिजडा बन जाता है। बलिया में ठाकूर श्यामसुंदर सिंह ने जिस प्रकार उसके साथ खिलवाड किया था ठिक उसी प्रकार दिल्ली में भी स्थिति कुछ अलग नहीं है। अतः वह मजबुरीवश अपने पुरुषांग का त्याग करता है तथा हिजडा बन जाता है। जीवन से तंग आकर वह सोनम से कहता भी है–''माना मैं मर्द हूँ, लेकिन ये समाज मुझसे मर्द का काम लेने के लिए राजी नहीं है। मुझे इस समाज ने मादा की तरह भोग की चीज में तब्दील कर दिया है। मैं मर्द रहूँ, औरत रहूँ या फिर हिजडा बन जाऊँ, इससे किसी को कोई फर्क नहीं पडेगा, पेट की आग तो बडे–बडों को न जाने क्या क्या बना देती है।''[8]

संक्षेप में कहा जाए तो आधुनिक समय में हिजडा समाज आर्थिक, सामाजिक, स्थिति के कारण भीख माँगने तथा वेश्यावृत्ति करने के लिए तैयार हो रहा है। किंतू कोई भी इनके दर्द को समझना नहीं चाहता। इस समुदाय के बारे में किसी को सोचने के लिए वक्त भी नहीं है। इसके लिए परिवार, समाज, राजनेता, जमीनदार, साहूकार, पुलिस प्रशासन तथा न जाने कितने जिम्मेदार है। मुख्यधारा के समाज का कर्तव्य है कि हाशिए पर जो प्रस्तुत समाज है उसको समाज के मुख्य प्रवाह में लाना चाहिए। तथा उसको सामान्य इन्सान की तरह जीवन जीने का अधिकार देना चाहिए। किन्नरों का अगर सर्वांगीण शोषण रोकना है तो हमारी ओर से निम्नलिखित प्रयास होने चाहिए :–

1) सामाजिक स्तर पर सम्मान के साथ जीवन जीने का अधिकार।
2) विवाह का अधिकार।
3) बच्चा गोद लेने का अधिकार।
4) तलाक लेने का अधिकार।
5) घर बनाने की सुविधा।
6) व्यवसाय में सुअवसर प्रदान करना।
7) बुढे किन्नरों के लिए पेंशन योजना।
8) बैंक तथा विभिन्न क्षेत्र में लोन की सुविधा।
9) स्कूल तथा महाविद्यालय या अन्य मुफ्त में शिक्षा की सुविधा।
10) छात्रवृत्ति तथा अभिछात्रवृत्ति की सुविधा।
11) अपना लिंग बदलवाने संबंधी मेडिकल सुविधा।
12) न्यायालयीन सुविधा।
13) ट्राव्हेलिंग ऑथोरिटी।

सारांश रुप में हम कह सकते है कि, किन्नर समुदाय भी एक तरह मानव समुदाय है। इसे भी संवैधानिक दृष्टि से जीवन जीने का पूरा अधिकार है। हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने उन्हें तीसरे लिंग के रुप में अपनाया भी है। फिर भी इस समाज का दायित्व बनता है कि वह पूरे स्वाभिमान के साथ जीवनयापन करे। संविधान ने जो अधिकार दिए है उन अधिकारों का उपयोग कर जीवन की उपजीविका के लिए व्यवसाय करने चाहिए। अब उन्हें भीख माँगने, रोने तथा गिड़गिड़ाने की आवश्यकता नहीं है। यही विचार प्रदीप सौरभ कृत 'तीसरी ताली' उपन्यास में अभिव्यक्त है।

संदर्भ सूची :-

1) प्रदीप सौरभ–तीसरी ताली, फ्लैप, टिप्पणी, सुधीश पचौरी
2) प्रदीप सौरभ–तीसरी ताली, पृष्ठ क्र. 11
3) वही, पृष्ठ क्र. 11
4) वही, पृष्ठ क्र. 20
5) वही, पृष्ठ क्र. 56
6) वही, पृष्ठ क्र. 56
7) वही, पृष्ठ क्र. 56
8) वही, पृष्ठ क्र. 57

दूरभाष : 9881696753 / 8169706075

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 205-210

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान परिदृश्य में पर्यावरण प्रदूषण और भारत

-डॉक्टर सुनैना, शोध निर्देशिका
सहायक प्रोफेसर, मीडिया अध्ययन संकाय,
-विकास बेरवाल, शोधार्थी
संचार प्रबंधन एवं प्रौद्योगिकी विभाग,
गुरु जंभेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार।

सार :-

भारत में उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल और राजस्थान ऐसे राज्य है जिसमें वायु प्रदूषण के कारण 50 फ़ीसदी से अधिक मौत हुई है। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह हमारे आने वाली पीढ़ियों के लिए बेहद खतरनाक विषय है, जिसके लिए समय रहते हमें सावधान होना पड़ेगा। हम सभी पर्यावरण प्रदूषण व उनसे होने वाले दुष्प्रभाव से पहले से ही अवगत हैं हम यह भी जानते हैं कि इनका सबसे अधिक असर बच्चों और बूढ़ों पर पड़ता है अक्टूबर 2020 को जारी स्टेट ऑफ ग्लोबल एयर 2020 की रिपोर्ट के अनुसार वायु प्रदूषण (आउटडोर और इंडोर) के कारण 2019 में जन्मे एक महीने के भीतर ही भारत में एक लाख 16 हजार से अधिक शिशुओं की मृत्यु हो गई थी यह बहुत चिंतनीय विषय है। पर्यावरण के सुधार के लिए जो कदम उठाए जाते हैं उनकी गति के मुकाबले पर्यावरण प्रदूषित होने की गति कई गुना ज्यादा है। भारत के विभिन्न राज्यों में पर्यावरण प्रदूषण से बचने के लिए विभिन्न प्रकार के नियम व कानून बनाए गए हैं। फिर भी बहुत ज्यादा परिवर्तन नजर नहीं आता। इस अध्ययन के माध्यम से पर्यावरण प्रदूषण के मूल कारण को जानने का प्रयास रहेगा। पर्यावरण प्रदूषण से बचने के लिए कौन से सुधार उपयोगी होंगे। अध्ययन के बाद परिणाम के रूप में यह स्पष्ट हुआ की जीवन यापन की जरूरतें पूरी करने के साथ हमें जीवनमूल्यों को पहचानने की आवश्यकता है ताकि पर्यावरण प्रदूषण से बचकर हम प्राकृतिक सुख का अनुभव कर सकें। इसलिए शिक्षा के स्तर पर रोजगार उन्मुख के साथ साथ विभिन्न जीवन मूल्यों को सुदृढ़ करने और जीवन को जीने के ढंग को पहचानने की जरूरत है।[1]

मुख्य शब्द :- पर्यावरण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, उद्योग, जीवन मूल्य, शिक्षा।

परिचय :-

पर्यावरण हमारे जीवन का आधार है जिसमें प्रत्येक सजीव और निर्जीव को गिना जाएगा जो हमारे चारों ओर इस भू-मंडल पर विद्यमान है। आज पर्यावरण का गिरता स्तर सीधे रूप से हम अपने जीवन के ह्रास के रूप में देख सकते हैं। इस गिरते स्तर में हम ना केवल अपने जीवन को बल्कि सभी सूक्ष्म जीव, पेड़-पौधे, नदी, जल, वायु, पर्वतों आदि को भी क्षति पहुंचा रहे हैं। 'यहां पर बहुत सी मानव सभ्यता हैं जो स्वयं को पर्यावरण से अलग नहीं मानती और उनकी नजर में समस्त प्रकृति को एक इकाई के रूप में देखा जाता है और मनुष्य

भी इसका का एक हिस्सा है' ।[2]

मनुष्य ने विज्ञान और तकनीकी के व्यापक प्रयोग से अपनी प्राकृतिक दशा में काफी बदलाव किए हैं मानव हस्तक्षेप के आधार पर पर्यावरण को दो भागों में बांटा जाता है 1. प्राकृतिक 2. मानव निर्मित। पर्यावरण का संभालने वाले वनों की कटाई इसका एक बहुत बड़ा कारण है जहां आए दिन हम जंगलों को काट कर उद्योग खड़े कर रहे हैं। हिंदुस्तान टाइम्स में छपे लेख के अनुसार पिछले तीन दशक में मुंबई ने अपने 42 प्रतिशत जंगलों की हानि उठाई है 1988 में जो 29260 हेक्टेयर थी वह 2018 में 16814 हैक्टेयर भूमि ही बची हुई है।[3]

मानव द्वारा धन पाने के लालच और जीवन को आराम देने की स्थिति के लक्ष्य को पाने के लिए प्रकृति के साथ छेड़छाड़ ने प्राकृतिक पर्यावरण का संतुलन नष्ट किया है, जिससे प्राकृतिक व्यवस्था पर संकट पैदा हुआ जिन्हें हम पर्यावरणीय समस्याएं कहते हैं जैसे जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण आदि। यह स्थिति और भी भयानक हो जाती है जब पीने के पानी की बात की जाती है। नीति आयोग द्वारा 15 जून 2018 में जारी किए गए आंकड़ों के अनुसार 60 करोड़ भारतीय जल संकट से गुजर रहे हैं और तीन–चौथाई घरों को पीने का पानी तक नहीं मिलता और 70 प्रतिशत जल दूषित हो जाता है।[4] वायु प्रदूषण का स्तर भी सार्वभौमिक है। इनरडाटा द्वारा जब कार्बन डाइऑक्साइड गैस द्वारा वायु प्रदूषण के प्रमुख कारकों के बारे में 2019 में आंकड़ा दिया गया तो पाया गया कि कुल 2277 मीट्रिक टन कार्बन डाइऑक्साइड गैस के उत्सर्जन में (41 प्रतिशत) 933 मीट्रिक टन केवल विद्युत और ताप संयंत्र और (34 प्रतिशत) 714 मिट्रिक टन गैस के उत्सर्जन का कारण उद्योग व कारखाने हैं।'[5]

यह आंकड़े मनुष्य को अपने जीवन शैली के बारे में पुनर्विचार करने के लिए मजबूर करते है और अब पर्यावरण संरक्षण और पर्यावरण प्रबंधन की चर्चा कर रहे हैं' ।[6]

मनुष्य द्वारा किए जाने वाले इस नुकसान को कम कर सकने के कुछ ऐसे रास्ते भी है क्या जिसमें आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक टकराव ना हो पर्यावरण के गिरते स्तर को सुधार सके। इस बारे में हम क्या करें आज का सर्वाधिक चर्चित विषय है। इस अध्ययन के लिए हम विभिन्न संस्थान द्वारा जारी किए गए द्वितीयक आंकड़ों (सरकारी आंकड़े, शोध अध्ययन और समाचार पत्रों के लेख) का चयन कर यह जानने का प्रयास करेंगे की विभिन्न योजनाओं, नियम और कानून बनाने के बाद भी प्रदूषण का स्तर केवल नाम मात्र ही कम होता है जबकि उसके बढ़त बहुत तेजी से बढ़ रही है।

सांखिकीय अध्ययन :–

चित्र 1.

प्रति व्यक्ति विद्युत खपत

वर्ष	प्रति व्यक्ति विद्युत खपत किलो वाट घंटा में
1980	172
1990	329
2002	559
2012	672
2020	1208

स्त्रोत : भारत सरकार के केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण द्वारा जारी पुस्तिका 2020

जहां 1980 में सालाना प्रति व्यक्ति विद्युत उपयोग 172 kwh(किलोवाट घंटा) था जो 2020 तक 7 गुना बढ़कर 1208 kwh हो गया।

चित्र 2.

कोयला और लिग्नाइट आधारित ऊर्जा संयंत्रों की उत्पादन क्षमता और उत्पादन

वर्ष	उत्पादन क्षमता मेगावॉट में	विद्युत उत्पादन गीगा वाट घंटा में
1980	15991	55720
1990	41237	172643
2002	62131	370884
2012	112022	612497
2020	205135	994197

स्त्रोत : भारत सरकार के केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण द्वारा जारी पुस्तिका 2020।[7]

प्रति व्यक्ति विद्युत खपत को पूरा करने के लिए जहां 1980 में 15991 kwh (मेगावाट) उत्पादन क्षमता के साथ 55720 kwh (गीगा वाट घंटा) बिजली का उत्पादन किया जाता था। जो कि वर्ष 2020 तक 1280 प्रतिशत बढ़त के साथ 205135 kwh क्षमता तक पहुंचा जिससे 1780 प्रतिशत बढ़त के साथ बिजली का उपयोग 994197 kwh हो गया।

1980 के दशक की शुरुआत में जहां औसतन पंजीकृत होने वाली फर्म की संख्या 15780 प्रति वर्ष थी[8] जोकि 2020 के दशक के अंत तक 874 प्रतिशत वृद्धि के साथ 138000 फर्म पंजीकृत हो रहे हैं। विद्युत ताप संयंत्र और उद्योग कारखाने पर्यावरण के प्रदूषण के दो मुख्य कारक है इनकी इस प्रकार की बढ़त आने वाले समय में और भी भयानक परिणाम पैदा करने के संकेत दे रही हैं।

उपरोक्त आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि आर्थिक व सामाजिक तरक्की की गति तो तेजी से बढ़ रही है परंतु हम जितने ज्यादा शिक्षित और सभ्य बनने की दौड़ में आगे बढ़ते गए अपने पर्यावरण को उतना ही अधिक नुकसान भी पहुंचाते गए। हमने विज्ञान और तकनीक के सहारे अपनी समस्याओं और अज्ञान को कम करने का प्रयास करना था। परंतु जितना भी हम आगे बढ़ते गए तो पाया कि आज हमारी समस्या कम होने के स्थान पर और अधिक बढ़ गई। जैसे जीव विज्ञान में ज्ञान पाने की कोशिश यह थी कि अच्छा स्वास्थ्य हम पा लेंगे लेकिन स्वास्थ्य की समस्या तो और भी भयंकर हो गई। कोविड–19 से ज्यादा सटीक उदाहरण और क्या हो सकता है जहां सभी को घर में कैद होना पड़ रहा है और केवल शुद्ध हवा की कमी के चलते न जाने कितने ही अपनों को खोते चले आ रहे हैं। द वायर में छपे एक लेख के अनुसार 2019 में वायु प्रदूषण के कारण भारत में कम से कम 16 लाख 70 हजार लोगों की मृत्यु हुई।[10]

आज लग रहा है कि हम पहले से भी ज्यादा अज्ञानी हो गए। धन कमाने और अच्छा घर बनाने के लिए जिस गति से लोग फैक्ट्री और कारखानों में विभिन्न प्रकार के रसायनों के प्रयोग से अपने धन कमाने का सपना पूरा करने में लगे हैं वहीं दूसरी ओर अपने हवा, पानी और मिट्टी में इतनी अधिकता से रसायनों का प्रयोग कर गए कि हमें जितना आराम कमाना चाहिए था आज उससे कहीं ज्यादा अपने जीवन यापन और रहन–सहन के

लिए गुणवत्ता वाली वस्तुएं पाने के लिए दौड़ना पड़ रहा है। हमारी महत्वकांक्षा इतनी बढ़ गई है कि अब हमें अपने पर्यावरण का ख्याल भी नही आता। हवा जहरीली है फिर भी गैर जरूरी चीजों के प्रयोग से उसमें और जहर घोल रहे हैं। हमें पर्यावरण के विस्तृत अध्ययन के साथ–साथ इसे संबंधित व्यवहारिक ज्ञान पर भी बल देना होगा। आज पूरा विश्व पर्यावरण की स्वच्छता की गंभीर चुनौती के दौर से गुजर रहा है। ऐसे में हमें संवेदनशीलता को सीखना जरूरी हो गया है यदि हम शिक्षा में कुछ सकारात्मक बदलाव ला पाए जिससे कि हम महत्वकांक्षा के वशीभूत ना होकर अपना, अपने परिवार और समाज का, उस में रह रहे विभिन्न सूक्ष्म जीव, पेड़दृपौधे आदि के प्रति भी संवेदनशील होना होगा। अपने जीवन की रक्षा तभी संभव है जब हम अपने साथ रहने वाले हर जीवमात्र के कल्याण के लिए मिलकर काम करें। ऐसे में यदि हम अपनी परंपरा और संस्कृतियों पर नजर डालें तो ना जाने जीवन को सुखमय बनाने के कितने ही रास्ते हमको मिल सकते हैं। जैसे वसुदेव कुटुंबकम हमें मिल जुल कर रहना सिखाता है ना कि हम अपने आप में जिएं। संपूर्ण मानव सभ्यता पर एक दृष्टि डालें तो पायेंगे कि जब तक प्रत्येक जीव को हम अपने ही जीवन का हिस्सा नहीं मानेंगे तब तक किसी स्थाई समाधान पर पहुंच पाना मुश्किल ही नजर आता है। 'परिस्थितिक तंत्र या परितंत्र पृथ्वी के किसी क्षेत्र में समस्त जैविक और अजैविक तत्वों के अंतरू संबंधित समुच्चय को कहते हैं अतः पर्यावरण तभी एक परितंत्र है।'[11]

ज्यादातर पर्यावरणीय समस्याएं पर्यावरण की हानि और मानव द्वारा संसाधनों के उपभोग में वृद्धि से जुड़ी है 'पर्यावरण अवनयन के अंतर्गत पर्यावरण में होने वाले वह सारे परिवर्तन आते हैं जो अवांछनीय हैं, इसके अंतर्गत प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का क्षरण, प्राकृतिक आपदाएं इत्यादि शामिल की जाती हैं।'[12]

हम अपने स्वयं के हितों के प्रति वशीभूत होकर स्वयं की हित सिद्धि के लिए हम बाकी सभी को अनदेखा करते हुए आगे बढ़ते जा रहे हैं जैसे कमरों को ठंडा करने के लिए वातानुकूलित कमरों में सोने की लालसा पर्यावरण में कितनी गर्मी फैला देते हैं। यह कुछ इसी तरह का प्रयास है कि दूसरे कितनी गर्मी में मरे मुझे चौन से नींद आए। अतः स्वार्थ हम पर इस प्रकार हावी है कि हम दूसरे का शोषण करने में संकोच करते ही नहीं। दूसरे के दुख में हम सुख अनुभव करते हैं। किस प्रकार की व्यवस्था में हम जीते चले जा रहे हैं जहां किसी दूसरे का शोषण हमें शांति देता है। अपने सुख के साधन एकत्रित करने के चक्कर में पर्यावरण के लिए कितनी मुश्किलें खड़ी कर रही हैं हमें इस ओर ध्यान देकर समझना जरूरी हो गया है। चार्ल्स फुरियर द्वारा कल्पना दी गई थी कि 'हम एक दिन महासागरों को नींबू पानी में बदल देंगे'। उस समय उनका मजाक उड़ाया जाता था। नथानिएल हाथोर्न ने अपने उपन्यास 'द ब्लिथेडेल रोमांस' के अध्याय 7 में लिखा कि 'फुरियर की कल्पना को सकारात्मक लेते हुए कल्पना कीजिए कि शहर के घाट इस मनोरम रस को पाने के लिए हर दिन भर जाया करेंगे'।[13] आज स्थिति फुरियर के पक्ष में खड़ी हुई है और कोई भी इस बात को झुठला नहीं सकता।

मनुष्य जीवन यापन की जरूरतें पूरी करने और ऐसी शिक्षा पाने के लिए प्रयासरत है जो उसे आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से लाभ दे जिनसे हम अपने जीवन मूल्यों को अनदेखा करते जा रहे हैं रोजगार उन्मुखी की शिक्षा के साथ–साथ हमें जीवन मूल्य जैसे मानवता, नैतिकता, संवेदनशीलता, परोपकार की भावना, भलाई, सत्य के निकट, आत्म साधना को सीखने के बारे में सोचना होगा। आजीविका के साथ–साथ 'जीवन को जीने के ढंग' की शिक्षा के महत्व को बढ़ाना होगा ऐसे शिक्षण प्रकम भी शुरू करने होंगे जो जीवन मूल्यों को जानने और सीखने में सहयोगी होंगे। रोंडा बर्न की पुस्तक 'द सीक्रेट' में भी तर्क दिया है कि 'प्रकृति हमें वही लौट

आती है जो हम इसे देते हैं।"[14]

यदि हम केवल जीवन यापन को केंद्रित ना करके जीवन मूल्यों को सीखेंगे और जीवन जीने के ढंग को समझ कर पाने का प्रयास करेंगे तो निसंदेह एक दिन हम प्रकृति और पर्यावरण की आदर्श स्थिति भी पा ही लेंगे।

निष्कर्ष :-

यह अध्ययन हमें पर्यावरण को गंभीर रूप से हानि पहुंचाने वाले कारकों की निरंतर वृद्धि के बारे में जानकारी देता है जिसमें हम प्रति व्यक्ति विद्युत के उपभोग और उसकी आपूर्ति के लिए लगाए जाने वाले विद्युत ताप संयंत्र और औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि को प्रमुख रूप से पर्यावरण प्रदूषण के उत्तरदाई कारक के रूप में चिन्हित करता है। मनुष्य द्वारा आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक हितों की पूर्ति के लिए अंधाधुंध रूप से पर्यावरण को हानि पहुंचाए जाने के लिए मूलभूत कारण के रूप में चिन्हित करता है। हमें अपने आर्थिक और राजनीतिक लक्ष्यों के साथ साथ जीवन मूल्य के महत्व को समझने और जानने के लिए शिक्षा के स्तर में प्राथमिकता के तौर पर बदलाव लाने के पक्ष में ले जाता है। यदि हम अपने जीवनयापन के साथ ही जीवन मूल्यों को भी प्राथमिकता के तौर पर समझे और उन पर काम करें तो पर्यावरण प्रदूषण के लिए स्थाई और बिना रुके चलने वाले प्रयास की संभावना की ओर संकेत करता है।

संदर्भ सूची :-

1. Kiran Pandey. (23 Dec 2020) Air pollution: Half of India's death toll in these 5 states. Down To Earth, Latest news, opinion, analysis on environment & science issues | India, South Asia. https://www.downtoearth.org.in/news/air/air-pollution/half/of/india//death/toll/in/these.5/states.74768
2. Jamieson, Dale. (2007) The Heart of Environmentalism. In R. Sandler & P. C. Pezzullo. Environmental Justice and Environmentalism. (pp. 85-101). Massachusetts Institute of Technology Press.
3. Badri Chatterjee. (27 July 2020) 42.5% decline in Mumbai's urban green cover over 30 years'. Hindustan Times.https://www.google.com/amp/s.www.hindustantimes.com/mumbai-news/42-5-decline-in-mumbai-s-urban-green-cover/story-1uHglIrejP2nUOWEA9YFTP-amp.html
4. See how Indian states fared on the water index. (2018, June 15). Down To Earth | Latest news, opinion, analysis on environment & science issues | India, South Asia. https://www.downtoearth.org.in/news/water/see-how-indian-states-fared-on-the-water-index-60868
5. Anshul Joshi. (26 November 2019). India accounts for the highest number of deaths among G20 nations due to air pollution. ETEnergyworld.com. https://energy.economictimes.indiatimes.com/news/power/india-accounts-for-the-highest-number-of-deaths-among-g20-nations-due-to-air-pollution/72234587
6. Suresh Lal Srivastava. (March 2009) Pratiyogita Darpan.
7. Power sector at a glance ALL INDIA | Government of India | Ministry of power. (n.d.). Welcome to Government of India | Ministry of Power- https://powermin.gov.in/en/content/power-sector-glance-all-india.
8. Rajeswari Sengupta, Manish Singh. (01 April 2019) Firm formation in India: The last 40 years. Ideas For India. https://www.ideasforindia.in/topics/macroeconomics/firm-formation-in-india-the-last-40-years.html

9. 1.38 lakh new companies registered in India in pandemic year: Govt. (2021, March 22). Google. https://www.google.com/amp/s/www.timesnownews.com/amp/business-economy/economy/article/1-38-lakh-new-companies-registered-in-india-in-pandemic-year-govt/735722
10. The wire staff. (2020, October 22). Almost 1.7 million people had died due to air pollution in India: a study. The Wire - Hindi. https://www.google.com/amp/s/m.thewirehindi.com/article/more-than-16-lakh-deaths-due-to-air-pollution-in-india-in-2019-study/144540/amp
11. Savinder Singh (2005) Jave Bhugol. Prayag pustak bhawan, Allahabad.
12. Johnson, D.L., S.H. Ambrose, T.J. Bassett, M.L. Bowen, D.E. Crummey, J.S. Isaacson, D.N. Johnson, P. Lamb, M. Saul, and A.E. Winter-Nelson. (1997) Meanings of environmental terms. Journal of Environmental Quality 26: 581–589.
13. Nathaniel Hawthorne. (1852) The Blithedale Romance. Ticknor and Fields. p. 166.
14. Rhonda Byrne. (2006) The Secret. Atria Books, Beyond Words Publishing.

cvdrive90@gmail.com
मो. 9416216824

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 211-215
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दलित विमर्श

-Dr.Y. Kasturi Bai
Lecturer (Rtd) The New Cambridge English School

परिचय :-

भारतीय समाज सामाजिक रूप से अलग अलग जातियों का एक समूह है। 'दलित' शब्द का सबसे पहले प्रयोग संभवतः ज्योतिबा फूले ने किया था। जितना पुराना यह शब्द है, उतना ही पुराना इसके अर्थ को लेकर मतभेद भी है। 'दलित' शब्द की उत्पत्ति से पहले इस समाज को पंचम, अस्पृश्य, शूद्र, बाह्य जातियां, हरिजन, सर्वहारा आदि नामों से पुकारा जाता है। इस जाति को अलग अलग नामों से अभिहीत किए जाने के बावजूद भी इनके अर्थ, अर्थ की समग्रता, सामाजिक आयामों, अवधारणा में काफी फर्क रहा है। शूद्र और अस्पृश शब्द वर्ण व्यवस्था आधारित जाति व्यवस्था से संबंधित है। सर्वहारा शब्द प्रगतिशील मार्क्सवादी चिंतन में औद्योगिकीकरण से अपने पूंजीवादी समाज व्यवस्था में शोषित वर्ग से जुड़ा है। हरिजन शब्द का प्रयोग महात्मा गांधी द्वारा स्वाधीनता आंदोलन में भारतीय ग्रामीण जनसंख्या को जोड़ने की प्रक्रिया में प्रक्रिया किया गया। बाह्य जातियां शब्द बाबा बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा भारतीय समाज में शोषित उत्पीड़न जनों के समूह के संदर्भ में किया गया। 'दलित पैंथर्स' ने भारतीय समाज में ब्राह्मण वादी समाज व्यवस्था के खिलाफ आंदोलन किया, इस आंदोलन ने 'दलित' शब्द को ज्यादा प्रसिद्धि दी। अपने शुरुआती दौरमें यह आंदोलन काफी आक्रामक था, परंतु आगे चलकर यह आंदोलन राजनीति का शिकार होकर कमजोर हो गया।

दलित शब्द का अर्थ बहुत ही व्यापक है इसका संबंध जाति विशेष से मना जाता है। दलित शब्द का अर्थ 'मसला, रौंदा, या कुचला हुआ, नष्ट किया हुआ, दरिद्र और पीड़ित समाज का वह वर्ग जो सबसे नीचा माना गया हो या दुःखी और दरिद्र हो और जिसे उच्च वर्ग के लोग उठने ना देते हो, जैसे भारत की छोटी या अछूत मानी जाने वाली जातियों का वर्ग।'

भारतीय समाज में सदियों से प्रचलित उच्चवर्ण व्यवस्था ने शूद्र और स्त्री को पशुवत जीवन प्रदान किया। उसके लिए भगवान, भाग्य, पुनर्जन्म इन हत्यारों का उपयोग किया, जिसका आधुनिक युग का इंसान और विज्ञान प्रमाण नहीं दे पाया है। परंतु विगत 5000 वर्षों से दैवी शासन के अंधविश्वासों को स्वीकार कर यहां का शूद्र और स्त्री वर्ग असमानता, अमानवीय, अन्याय, अत्याचार, धर्मांधता, सामाजिक अन्याय, अर्थहीनता, अशिक्षाहीन, और गुलामी का जीवन जी रहा था। भारत देश में इस अमानवीय व्यवस्था का चक्र उल्टा घुमाने का प्रथम प्रयास महात्मा बुद्ध ने किया। महात्मा बुद्ध ने अपने बौद्ध धर्म में स्त्री और शूद्रों को स्थान देकर मानवतावाद की नींव डाली। बुद्ध धर्म को नष्ट करने के लिए यहां के धर्म पाखंडियों ने फिर से 'मनुस्मृति' के माध्यम से हिन्दू धर्म में

प्रचलित वर्ण व्यवस्था को मजबूत किया। 'रामायण' 'भगवदगीता' जैसे ग्रंथों के माध्यम से वर्ण व्यवस्था को बढ़ावा दिया साथ ही अहिल्या, सीता, द्रौपदी, कुंती जैसे नारियों का यातना से भरा चित्रण करते हुए उसे धर्म को स्वीकारते दर्शाया और स्त्री बंधनों को कठोर किया। जन्म मृत्यु का फेरा पाप पुण्य, भाग्य से जोड़कर वर्ण व्यवस्था निरंतर रखी गई।

दलित का पहचान :–

महात्मा ज्योतिबा फूले के बाद बाबा साहब डॉ० भीमराव अंबेडकर। भारत में दलित मुक्ति के सबसे बड़े नायक बने। डॉ० अंबेडकर के नेतृत्व में इस आंदोलन ने पुरानी समाज व्यवस्था के विरुद्ध सीधी कार्यवाही की नीति के रूप में विरोध किया। महात्मा गांधी दलितों को तो हिंदू मानते थे, परंतु उनकी राजनैतिक कार्य योजना में दलित प्रश्न मौजूद नहीं था। इस संबंध में डॉ० अंबेडकर का विचार था कि, 'दलित हिंदुत्व के अंग नहीं है, वे उस में दास वर्ग है, इसलिए वे भी एक पृथक समुदाय है। कांग्रेस और हिंदू महासभा के राजनैतिक एजेंडे में दलित मुक्ति की कोई योजना नहीं थी।' इस स्थिति में भारत की आजादी से दलित वर्ग की स्थिति में कोई खास बदलाव की उम्मीद नहीं थी। डॉ० अंबेडकर भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता से पहले दलित वर्ग की सामाजिक स्वतंत्रता को सुनिश्चित कर लेना चाहते थे।

सन 1930–1932 के मध्य लंदन में संपन्न हुए गोलमेज सम्मेलनों में डॉ० अंबेडकर ने अछूतों के प्रतिनिधि के रूप में हिस्सा लिया। इन्होंने दलितों के लिए राजनैतिक हिस्सेदारी के तौर पर देश में उनकी सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए पृथक प्रतिनिधित्व की मांग की। उस समय के ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने इस मांग को मान लिया लिया था, जिसे हम 'कम्युनल अवार्ड' के नाम से जानते हैं। हिंदू महासभा को पृथक प्रतिनिधित्व स्वीकार नहीं था। महात्मा गांधी इसके खिलाफ आमरण अनशन पर बैठ गए। कांग्रेस और हिंदू महासभा का कहना था कि इस से भारतीय समाज विभाजित हो जाएगा। बड़े पैमाने पर सामाजिक दबाव के बीच महात्मा गांधी और डॉ० भीमराव अंबेडकर के बीच पूना में समझौता हुआ, जिसे हम 'पूना पैक्ट' के नाम से जानते हैं। इस समझौते में पृथक प्रतिनिधित्व की मांग समाप्त कर प्रशासन में कुछ पद आरक्षित करने का निर्णय लिया गया। पूना पैक्ट ने दलित राजनीति की दिशा बदल दी।

बीसवीं शताब्दी का सातवां दशक दलित राजनीति की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसी दशक में तीन महत्वपूर्ण घटनाएं हुई। एक 'भारतीय रिपब्लिक पार्टी जिसने महाराष्ट्र दिल्ली और उत्तर प्रदेश में दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यक समुदाय में अपना जनधई बनाया। इस पार्टी ने भूमि के प्रश्न को दलित मुक्ति आंदोलन के केंद्र में रखा, जो कि दलित जनसाधारण की नब्ज थी।

दूसरी, क्रांतिमयी घटना वामपंथ के रेडिकल रूप में नक्सलवादी का जन्म है। यह आंदोलन भूमिहीन दलित वर्ग के लिए संघर्ष की नई प्रेरणा लेकर आया था। धीरे–धीरे यह आंदोलन बंगाल, बिहार तथा दूसरे अन्य राज्यों में भी फैल गया। शासन व्यवस्था ने इस आंदोलन को खत्म करने का हर संभव, प्रयास किया, परंतु आज भी यह आंदोलन किसी न किसी रूप में जारी है। तीसरी महत्व पूर्ण घटना सन 1969 ई० में कांग्रेस का इंडिकेट और सिंडिकेट में विभाजन है। सामंती विचारधारा वालों ने अपनी अलग कोंग्रेस बाना ली और श्रीमती इंदिरा गांधी ने बाबू जगजीवन राम को अध्यक्ष पद देकर असली कांग्रेस का गठन किया। एक बार फिर दलित वर्ग कांग्रेस की तरफ आया।

बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में काशीराम जी का उदय दलित नायक के रूप में हुआ। सन 1978 में उन्होंने 'बैक वर्ड एंड माइनारिटी कम्यूनिटीस इम्प्लाइज' की स्थापना की। काशीराम जी के इस कदम को देश में व्यापक पैमाने पर सफलता मिली, जिसके तहत 2 लाख कर्मचारी बामसेफ के नियमित सदस्य बने। इस सफलता से उत्साहित होकर काशी राम जी ने सन 1981 ई० में डी० एस० 4 का गठन किया। सन 1984 में इन्होंने एक नई राजनीतिक पार्टी 'बहुजन समाज' पार्टी बनाई। इस पार्टी का राजनैतिक उद्देश्य दलितों व पिछड़ों को सत्ता तक ले जाना था। वह बार–बार यह घोषणा करते रहे हैं कि, 'हमारी पार्टी का एकमात्र लक्ष्य सत्ता प्राप्त करना है, बिना सत्ता प्राप्त किए हम कुछ नहीं कर सकते। सत्ता प्राप्त करने के बाद हम सब कुछ कर देंगे।' बसपा की राजनीतिक यात्रा के संबंध में विद्वानों में अलग अलग मत है। कुछ का यह मानना है कि बसपा ने सामाजिक परिवर्तन और नवजहरण के दलित, पिछड़े जान नायकों को जातीय सम्मान और स्वाभिमान से जोड़ा। राजनीति में दलितों के दखल ने समाज में एक क्रांतिकारी परिवर्तन तो अवश्य किया है, परंतु दलित समुदाय के भीतर भी एक जातिगत स्तरीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई है। सत्ता एवं समाज के उच्च पदों तक दलित समुदाय का पहुंचना एक सकारात्मक परिवर्तन है। इन तमाम बदलाओं को नब्बे के बाद के उपन्यासों में देखा जा सकता है।

दलित और हिंदी काव्य :–

समय का चक्र अपनी गति से चलता है। वह ना किसी के रोके नहीं रुकता है। कल हम नई दहलीज पर खड़े थे और बारह तीलियों का चक्र पूरा होते ही आज हम इक्कीसवीं, भूमंडलीकरण, वैश्विक सदी मनाए हैं। दलितों के लिए यह नई सदी की प्रभात कैसी हो सकती है? उन्हें किन किन चुनौतियों से जूझना होगा, अभी भी प्रश्न सामने खड़ा हो जाता है।

आज आधुनिक के संदर्भ में दलित,आदिवासी और नारी विमर्श को लेकर काफी लिखा जा रहा है। दलित साहित्य तो काफी चर्चा का विषय रहा है। इन्हें यथोचित न्याय देने की भी आवश्यकता है। वैसे देखा जाए तो हिंदी साहित्य के इतिहास में आफिकावी वाल्मीकी से लेकर आज तक दलित कवियों की एक समूह परंपरा रही है। लेकिन आदिकाल के नाथ कवियों तथा भक्ति काल के संत कबीर को छोड़कर रैदास, दादू दयाल, पीपा जैसे कवियों का नाममात्र उल्लेख मिलता है और हीराडोम अछूतानंद जैसे भक्त कवि तो हाशिए पर उड़ गए हैं। आज इन्ही के विचारों का सूत्र पकड़कर तथा डॉ० बाबासाहेब आंबेडकर की प्रेरणा पाकर दलित साहित्य विविध विधाओं में शिखर की ऊंचाई प्राप्त कर चुका है।

दलित कविता अपनी सांस्कृतिक और कलावादी परंपरा से इस बदर भिन्न भाषा, मुहावरा और रचना विधान में बदली हुई है कि उसे कविता के प्रचलित अर्थ में स्वीकार करना असंभव है। दलित कविता शोषितों, पीड़ितों, दलितों को जगाने का काम करती है। दलित कविता के क्षेत्र में प्रेमशंकर की कविता 'क्रांति आ रही है' में दलितों को निरंतर दिशा देती रही है। वह सीधे से स्वतंत्रता की धारा में अपना वर्चस्व स्वीकार करती है। दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'बस बहुत हो चुका' का कविता संग्रह बहु चर्चित है। इन कविताओं में कवि ने अवहेलित और अपमानित पात्रों का चित्रण किया है। मोहनदास नैमीशराय कवि और दलित पत्रकार के रूप में हिंदी साहित्य में बहुचर्चित है। हिंदी जगत में बहुत सम्मान से उनका नाम लिया जाता है। अब तक इनका एक कविता संग्रह 'सफदर का बयान प्रकाशित हुआ है। इनकी कविता का मूल दलित जीवन की समस्या को

उजागर करती है। कल तक गांव और कस्बों में कहे जाने वाले जाति तथा अपमान सूचक शब्द आज महानगरों में भी कहे जाने लगे हैं।

हिंदी दलित कविता डॉ० अंबेडकर के विचारों की ऊर्जा है।वह वर्तमान के अत्याचारों, शोषण की घटनाओं, उपेक्षित दलितों की अभिव्यक्ति को जोर देकर, दरेरा देकर और तेजस्वी रूप में विरोध करती है। चाटुकारी तथा दबाव में नहीं आज भी परंपरागत शिक्षा से वंचित दलित वर्ग के छात्रों के साथ विद्यालयों में ही नहीं महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में भी भेदभाव बरता जाता है। डॉ० दयानंद बटोही की कविता 'द्रोणाचार्य सुनें' : उनकी परंपराएं सुनें' इस सम्पूर्ण स्थिति का पर्दाफाश करती है की अब कोई द्रोणाचार्य किसी एकलव्य से अंगूठा मांगने का तो साहस नहीं करेगा।

हिंदी साहित्य में दलित :–

हिंदी साहित्य में दलित का तात्पर्य समाज के उस पद दलित अस्पृश्य वर्ग से है जो लगातार समाज के द्वारा शोषित पीड़ित और दमित होता आ रहा है। को समाज में अधिकार विहीन है। जाति व्यवस्था के विरोध की श्रृंखला में महात्मा बुद्ध, अश्वघोष, गोरखनाथ, कबीर आदि से लेकर आधुनिक युग के चिंतक रहे हैं। परंतु दलित साहित्य के संदर्भ में दलित चेतना का प्रारंभ मराठी साहित्य में हुआ।

दलित साहित्य के संदर्भ में दलित होने का दंश का बोध होना 'दलित चेतना' है। जीवन के कटु अनुभवों के रचनाकार अपने पीड़ा दाई अनुभवों को रचनाकर्म के माध्यम से पुनः जीता है, जैसे वह स्वयं को कोड़ों से पीट रहा हो। इस तरह संसाधन और सत्ता से बेदखल होने की चुभन से दलित साहित्य का सृजन हुआ। यह सृजन स्वानुभूति का है। स्वानुभूत तो सिर्फ उस व्यक्ति को हो सकता है जो सिर्फ दलित समाज में पैदा हुआ और दलित दंश को जिसने बचपन से झेला है। लेकिन सहानुभूति किसी के भी हृदय में पैदा हो सकती है।

आदिकाल, भक्ति काल, रितिक में ज्यादातर दलित विमर्श का परिचय नही होता परंतु आधुनिक काल में यह सिलसिला जारी है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद ने दलितों की समस्याओं को लेकर प्रथमतः साहित्य की रचना की। इसी प्रकार दलित अपने जीवन में भोगी हुई घटनाओं को शब्द बद्ध करने लगे है। दलित रचनाकार का इतिहास देखने पर पता चलता है कि ज्योतिबा फूले, डॉ० अंबेडकर जैसे संविधान शिल्पी आदि लोगों का योगदान इस देश के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

दलित साहित्य लेखन में एक लंबी परंपरा मिलती है जिनमें दलितों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा शैक्षिक अभिव्यक्ति के साथ जातिगत भेद भाव के प्रति अपने विद्रोह को स्पष्ट किया है। दलित विमर्श अंबेडकर, फूले, शाहू इत्यादि बहुजन नायकों से प्रेरित है। इस विमर्श में अपने विचार जीवन की घटनाएं और अनुभवों को प्रस्तुत किया है। समाज में व्याप्त जातिभेद सामाजिक एवं असमानता छुआ छूत भावना और दलित समाज के पीड़ित व्यक्ति द्वारा भोगे हुए अनुभवों व यथार्थ का कथन है। वर्तमान के इस युग में भी समाज से जातिवाद का बंधन आज भी मजबूती के साथ बना हुआ है। किसी समाज की प्रगतिशीलता वहां की शिक्षा पर आधारित होती है। सामाजिक प्रक्रिया में शिक्षा का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। समाज में जिस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था होगी, उसी प्रकार समाज का निर्माण भी होगा। सादियों से दलितों के पिछड़ेपन का कारण अशिक्षित होना है। आज भी दलितों की स्थिति खराब होने का कारण ही अपने अधिकार से दलित अलग थलग खेमे में बंटे हुए हैं। शोषण का आधार क्या है यह जाने बिना संघर्ष नहीं किया जा सकता। यह ज्ञान शिक्षा से ही प्राप्त हो सकता है।

प्राचीनकाल से ही दलितों को अस्पृश्यता या अछोत मानकर सार्वजनिक कुएं, तालाब इत्यादि से रोका गया जबकि उस तालाब में जानवर भी पानी पीते थे। स्वर्णों के घर में अंदर तो दूर, उनके मुहल्लों में चलना भी पाबंदी थी। भारतीय संविधान में अस्पृश्यता दूर करने का नियम बना है। लेकिन आज भी हमारे देश में छुआ छूत की भावना लगभग स्थाई रूप में कायम है।

निष्कर्ष :-

दलित कविता, साहित्य, आत्मकथा, का सर्जनात्मक मूल स्वतंत्रता, समानता, बंधुता की भावधारा को प्रवाहित करना है। मानवतावाद और लोकतांत्रिक मूल्य उसके सर्वोच्च प्रतिमान है। उसकी प्रतिबद्धता डॉ० अंबेटकर के चिंतन के प्रति होने के कारण उनका समग्र चिंतन क्षेत्र दलित कविता का चिंतन क्षेत्र है। उसमें पीड़ा चीखती ही नहीं बल्कि अन्य और अन्याय, अत्याचार के खिलाफ मानस को विद्रोही भी बनाती है वह यदार्थ में दलित मानस का महाकाव्य है। मुझे बार बार यही लगता है कि ये दलित कवि आज जो 'दर्द के दस्तावेज' लिख रहे हैं वे निश्चय ही इस वर्ग के लोगों के लिए एक दिन मशाल बनेंगे, जिसकी रोशनी में ये लोग अपना लक्ष्य स्पष्ट होता देख सकेंगे, और उसे प्राप्त करने के लिए संघर्षशील हो सकेंगे। दलित कविता इसके लिए ही अपनी भूमिका तैयार करने का प्रयास कर रही हैं।

अंबेडकर वादी साहित्य दलित जनजीवन से संबंधित है। अंबेडकर जी ने अनेक किताबों का भारतीय समाज व्यवस्था के परिदृश्य में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लेखन किया। डॉ. सोहनलाल सुमानाक्षर जी ने अखिल भारतीय दलित साहित्य सम्मेलन के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काम किया। उनमें अनेक विदेशी व्यक्तियों को अपने कार्यक्रमों में प्रमुख अतिथि के रूप में बुलाया। मोहनदास नैमिशराय जी ने 'बयान' पत्रिका के माध्यम से देश विदेश में अपना दलित चिंतन पहुंचाया। इस तरह डॉ० अंबेडकर के चिंतन से प्रभावित अम्बेदकरवादी साहित्य ने राष्ट्रीय एकात्मकता के साथ विश्वबंधुता का कार्य किया। दिन दलित वर्ग को अपने दुःख दर्द, पीड़ा, शोषण के लेखन की प्रेरणा देकर अन्याय के खिलाफ संघर्ष करने की ताकत दी। जिसे पढ़कर हिंदी तथा भारतीय भाषाओं का महत्व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विविध विदेशी भाषाओं के माध्यम से पहुंच गया है।

अंत में मैं केवल यह स्पष्ट करना चाहूंगी कि जाति प्रथा को जड़ से उखाड़ फेंकना ही हमारे समाज का एक मात्र लक्ष्य होना चाहिए। हम किसी भी पत्र को देखें, चाहे वह 'गोहत्या' का सुक्का हो या 'परिवर्तन की बात' का किसी ने इन्होंने समाज में परिवर्तन लाने की बात कहीं हैं और सवर्णों का डटकर विरोध किया है। लेकिन अभी भी कई जगहों पर दलितों पर अत्याचार उनके साथ हो रहे शोषण के चित्र नजर आते हैं और यह तभी बदल सकता है जब आज का शिक्षित वर्ग दलितों का खुलकर स्वागत करें और वैसा ही व्यवहार करें जैसा आम मनुष्य के साथ किया जाता है।

संदर्भ सूची :-

1. कैलाश पुस्तक सदन, श्री वात्सव। लोक जीवन और साहित्य आदिवासी दुनिया समाचार पत्र।

Phone: 9449336187, 9535763748

ykasturi@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 216-219

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राजस्थान एवं हरियाणा राज्य में मेव जाति के बालकों के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन के कारणों का अध्ययन

–डॉ. इस्पाक अली, निर्देशक
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूर
–देशराज यादव, शोधार्थी
शोध छात्र, शिक्षा संकाय, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा कर्नाटक, मद्रास।

सारांश :–

राजस्थान के अलवर एवं हरियाणा के मेवात जिलों में निवास करने वाले मेव समाज के शैक्षिक एवं सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ा हुआ हैं। प्रस्तुत शोधकार्य में समाज की शैक्षिक एवं सामाजिक स्थिति के राजनैतिक एवं भौगोलिक कारको के अध्ययन से सम्बन्धित है। सर्वेक्षण अध्ययन में राजस्थान प्रान्त के अलवर एवं हरियाणा प्रान्त के मेवात जिलों के मेव बाहुल्य क्षेत्रों में निवासरत 104 अभिभावकों को सम्मिलित किया गया। स्वनिर्मित अभिमत मापनी के प्रयोग से किये गए आंकड़ों के विश्लेषण हेतु शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया एवं सांख्यिकीय पद्धतियों के रुप में प्रतिशत मान का प्रयोग किया। सांख्यिकीय विश्लेषण के पश्चात निष्कर्ष प्राप्त हुए कि 1. मेव समाज के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनितिक कारण वोट बैंक की राजनिति है। 2 मेव समाज के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भौगोलिक कारक भैगोलिक बाधांए है हालांकि यह कारक सार्थक नहीं है।

प्रमुख शब्द :– मेव समाज के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन।

राजस्थान एवं हरियाणा प्रान्त में मेव जाति मुख्यतः अरावली पर्वतमाला के क्षेत्रों में निवासरत है। काला पहाड़ के नाम से प्रचलित यह क्षेत्र अनेक स्थानों पर बहुत दुर्गम रास्तों एवं बसावट का क्षेत्र है। मेव जाति मुस्लिम समुदाय से सम्बंधित है और अत्यधिक पिछड़ी जाति है। देश की जनसंख्या के 1 प्रतिशत+ से भी कम आबादी वाली इस जाति में पुरूष साक्षरता दर मात्र 18 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता दर 1 प्रतिशत से भी कम होने के कारण इस जाति का शैक्षणिक विकास लगभग नहीं के बराबर है। पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण इस क्षेत्र के नागरिकों को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनमे शिक्षा से सम्बंधित समस्याएं भी हैं।

सम्बंधित साहित्य का अध्ययन :–

प्रशेर उमा (2014) द्वारा जम्मू एवं कश्मीर राज्य के उत्तरी गाँव में अनुसूचित जातियों के नागरिकों के सामाजिक–आर्थिक स्तर का अध्ययन किया गया। निष्कर्ष में पाया कि अच्छी आर्थिक स्थिति के बावजूद भी जम्मू

एवं कश्मीर के अनुसूचित जातियों के व्यक्तियों को विभिन्न प्रकार के भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

भोई धनेश्वर (2014) द्वारा अठारहवी विश्व समाज शास्त्र कांग्रेस में अपने शोध कार्य का प्रस्तुतिकरण किया गया। उच्च शिक्षा में अनुसूचित जातियों के विद्यार्थियों के मनो–सामाजिक अनुभवों पर किये गये इस अध्ययन में उड़ीसा राज्य में उन्होंने अनुसूचित जातियों द्वारा अनुभव की जाने वाली पीड़ा, दुर्व्यवहार, तनाव एवं मानसिक आघात पर शोध कार्य किया। अध्ययन में पाया कि अनुसूचित जाति के विद्यार्थी उच्च अध्ययन के क्षेत्र में जातिगत, छुआ–छूत, सामाजिक अलगाव आदि का अनुभव करते हैं।

कौर अमृत (2015) द्वारा पंजाब के रूपनगर जिले के मुगलमगरी गाँव में अनुसूचित जातियों में सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन किया गया। अध्ययन के उद्देश्य थे– अनुसूचित जातियों में सामाजिक गतिशीलता की प्रकृति का अध्ययन करना। सामाजिक गतिशीलता में शैक्षणिक एवं व्यावसायिक स्तर के भूमिका का अध्ययन करना। सामाजिक गतिशीलता में अन्तर जातीय विवाह एवं धर्म परिवर्तन की भूमिका का अध्ययन करना। निष्कर्ष में पाया कि अनुसूचित जातियों के सभी परिवारों की सामाजिक गतिशीलता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। शैक्षणिक एवं व्यावसायिक स्तर की सामाजिक गतिशीलता में उल्लेखनीय भूमिका है। जबकि धर्म परिवर्तन की सामाजिक गतिशीलता में सार्थक भूमिका नहीं पायी गयी।

कुमार रविन्द्र (2015) द्वारा सामाजिक परिवर्तन में उच्च शिक्षित अनुसूचित जातियों के परिवारों की अभिवृत्ति पर सामाजिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन किया। निष्कर्षतः अनुसूचित जातियों में सामाजिक वातावरण, उच्च शिक्षा एवं अभिवृत्ति में सार्थक सम्बन्ध पाया गया।

शोध की आवश्यकता एवं महत्त्व :–

भारत की जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार मेव समाज की शैक्षिक स्थिति बहुत चिंतनीय है। सच्चर कमेटी के सुझावों के पश्चात् भारत सरकार एवं राज्य सरकार में इस दिशा में अनेक प्रयास किये हैं किन्तु अभी तक मेव समाज की शैक्षिक स्थिति में उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है। आज भी मेव समाज की अधिकांश जनसँख्या अशिक्षित है। मेव समाज के कमजोर शैक्षिक स्थिति के प्रभावी कारकों में राजनैतिक कारक एवं भोगौलिक कारक प्रमुख हैं। इन कारकों का शोध की दृष्टि से अध्ययन करना औचित्यपूर्ण है।

शोध के उद्देश्य :–

1. मेव जाति के बालकों के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन के राजनैतिक कारकों का अध्ययन करना।
2. मेव जाति के बालकों के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन के राजनैतिक कारकों का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना :–

1. मेव जाति के बालकों में व्याप्त शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन के लिए राजनैतिक कारक प्रभावी नहीं है।
2. मेंव जाति के बालकों में व्याप्त शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन के लिए राजनैतिक कारक प्रभावी नहीं है।

न्यादर्श :–

शोध कार्य हेतु राजस्थान एवं हरियाणा राज्य में निवासरत मेव जाति के 104 अभिभावकों का यादृच्छिक विधि से चयन किया गया।

उपकरण :–

शोध को पूर्ण करने हेतु शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित अभिमत मापनी का निर्माण किया गया। जिसमें मेव

समाज के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन के कारणों के राजनैतिक एवं भौगोलिक कारकों से सम्बंधित विभिन्न पद संकलित किये गए थे।

सांख्यिकीय विश्लेषण–

तालिका क्रमांक 1

अभिभावकों की दृष्टि में मेव समाज के बच्चों के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन के राजनैतिक कारक

क्र. सं.	घटक	न्यादर्श	सहमत	असहमत
1	राजनैतिक समीकरण	104	81 (77.88%)	23 (22.12%)
1.1	राजनैतिक इच्छाशक्ति का अभाव	104	89 (85.58%)	15 (14.42%)
1.2	नगण्य राजनैतिक प्रतिनिधित्व	104	89 (85.58%)	15 (14.42%)
1.3	वोटबैंक की राजनीति	104	93 (89.42%)	11 (10.58%)
1.4	राजनैतिक अप्रभाविता	104	57 (54.81%)	47 (45.19%)

विश्लेषण एवं व्याख्या :– तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि 77.88 प्रतिशत अभिभावक इस बात से सहमत हैं कि मेव समाज के के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन हेतु राजनैतिक कारक ज़िम्मेदार हैं। राजनैतिक कारक के सभी आयामों पर अभिभावकों का बहुमत स्वीकार करता है कि ये आयाम मेव समाज के शैक्षिक पिछड़ेपन हेतु जिम्मेदार हैं। आंकड़ों के प्रतिशत विश्लेषण से ज्ञात होता है कि राजनैतिक कारक का सर्वाधिक प्रभावी आयाम वोट बैंक की राजनीति है, दूसरा प्रभावी अंग नगण्य राजनैतिक प्रतिनिधित्व एवं राजनैतिक इच्छाशक्ति का अभाव पाया गया। राजनैतिक अप्रभावित से सबसे कम अभिभावकों ने सहमति प्रदर्शित की हालाँकि यह भी 50% से अधिक रही।

तालिका क्रमांक 2

अभिभावकों की दृष्टि में मेव समाज के बच्चों के शैक्षिक पिछड़ेपन के भौगोलिक कारक

क्र. सं.	घटक	न्यादर्श	सहमत	असहमत
1.	भौगोलिक स्थिति एवं परिस्थितियां	104	34 (32.69%)	70 (67.31%)
1.1	भौगोलिक बाधाएं	104	35 (33.65%)	69 (66.35%)
1.2	दुर्गम क्षेत्र	104	33 (31.73%)	71 (68.27%)
1.3	निकटवर्ती/पड़ौसी विद्यालय का ना होना	104	34 (32.69%)	70 (67.31%)
1.4	भौतिक संसाधनों का अभाव	104	24 (23.08%)	80 (76.92%)

विश्लेषण एवं व्याख्या :– तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि 32.69 प्रतिशत अभिभावक इस बात से सहमत नहीं हैं कि मेव समाज में भौगोलिक वातावरण शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन का कारक हैं। भोगोलिक कारक के विभिन्न आयामों के मेव समाज के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन हेतु जिम्मेदार होने से अधिकांश अभिभावकों ने असहमति का प्रदर्शन किया। हालाँकि एक तिहाई अभिभावकों ने भौगोलिक बाधाओं को मेव समाज के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन का कारक माना।

निष्कर्ष :-

1. मेव समाज के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनैतिक कारक वोटबैंक की राजनीति है।
2. मेव समाज के शैक्षिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भौगोलिक कारक भौगोलिक बाधाएं हैं हालाँकि यह कारक सार्थक नहीं है।

सन्दर्भ :-

1. Prasher Uma (2014). Scheduled Caste: A study of Uttri Village of Jammu and Kashmir. Online International Interdisciplinary Research Journal. Volume IV, Issue V. Sept-Oct 2014. Pp 318-325
2. Bhoi Dhaneswar (2014). Psycho-social Experiences of Scheduled Caste Students at Higher Education. Oral Presentation. XVIII ISA World Congress of Sociology (July 13-19, 2014).
3. https://isaconf.confex.com/isaconf/wc2014/webprogram/Paper68117.html
4. Kaur Amrit (2015). Socio-Economic Mobility among Scheduled Caste: A Study of Village Mugalmagri in Rupnagar District of Punjab. International Journal of Humanities and Social Science Invention. Volume 4, Issue 3. March 2015. Pp 41-51. http://www.ijhssi.org/papers/v4(3)/Version-1/H0431041051.pdf
5. Kumar Ravindra (2015). A Study of Impact of Social Environment on Attitude of Highly Educated Scheduled Caste Families Towards Social Change. Journal of International Academic Research for Multidisciplinary. Volume 3, Issue 5, June 2015. Pp. 120-125.
6. http://www.jiarm.com/JUNE2015/paper22832.pdf

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 220-223

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

An Analytical Study Of Women's Empowerment

-Mr. Aghav Tukaram Haribhau

Asst. Prof. of Economics, Bharat Mahavidyalaya, Jeur, Tal. Karmala, Dist. Solapur, Maharashtra

Abstract :-

The subject of empowerment of women has becoming a burning issue all over the world including India since last few decades. Empowerment of women is one of the concepts that has developed in connection with improving their status empowerment includes highter literacy levels, education, better healthcare, equal ownership of productive resources increase participation in economic and commericial sector ,Democratic policy our laws, development police plans and program's have aimed at womens s advancement in different spheres

The social dynamics of tribal welfare and development is such that effective strategies to protest tribals and there live such program's. Tribal women are engaged in ecological movement , environmental protection and conservation, their role my be enhanced through capacity building and empowerment in the context of ecological development .

Keywords :- Woment Empowerment, Education, Trital, Analytical

Introduction :-

India as a country is still recovering from years of abuse in the time of the Raj and more years of economic suffering at the hands of the License Raj. It is only now that globalization, liberalization and other social-economic forces have given some respite to large proportion of the population. However, there are still quite a few areas where women empowerment in India is largely lacking. To truly understand what women empowerment is, there needs to be a sea-change in the mind-set of the people in the country Not Just the women themselves, but the men have to wake up to a world that is moving towards equality and equity. It is better that this is embraced earlier rather letter, for own goods. Women want to be treated as equals so much so that if a women rises to the top of her field it should be a common place occurrence that draws nothing more than a raised eyebrow at the gender.

This can only happen if there is a channelized route for the empowerment of women such topics gender equality, agriculture, ecological development, forests, health, education, property rights, Deveopment and planning programs of ministry are effects to Development of tribal women in region. History of women education in India/Women status in Indian history :

In India, women have been in piteous condition. She had no existence of her own. Kitchen was her only heaven, Women were only dolls who danced on men's finger. They had very much tolerate

the torture. In ancient India education have got only to higher class society. But Mahatma Phule worked for education women in spite on the opposition from society.

Education has empowered women many philosopher of eminent persons like, Rama Ram Mohan Roy, Pandita Ramabai, Ishwarchandra Vidhyasagar emphasized on women's education Mahatma Phule and Savitribai Phule established first girl's school in Pune 1854, both had struggle only for ower caste people. The governor of that time, Mr. George Chembell and Jotiba Phule ahd demanded higher education under government rule, because of that person's struggle we live independently. In Idian history women condition was not well but now women broke that slavery sickles and move out from that darkness. They faced lot of problems like child marriage, a veil tradition, Kehsavapan, and she was blindly toad to indigo and an early marriage. She followed there brutal tradition and scarified their self – respect. She offering her life for family. After some time condtion had changed, Babasaheb Ambedkar, Pandita Ramabai Karve raised their voiced against these old traditions. They can vassed women remarriage, stop child marriage. Today also certain parts in India people thinks girls are load or tensions for parents and in some corner women rights are not them. In this 21st century also didn't bring brightness or light for them.

Objetives of the Study :-

1) To Study the Women's Empowerment
2) To Study the educational women's Empowerment
3) To study the Role of women's in development process in tribal region.

Research Methodology :-

This research paper is basically descriptive ad analytical. In this paper attempt has been taken to analyze the importance Role of women's in Tribal region sustainable development. The data used in it is purely from secondary sources according to the need of this study.

Importance of women education in India :-

Education is very important in women life, because of education she can do everything so she want only one opportunity for prove her strength. Education is on only one weapan of her progress. Women education in India plays a vital role in the development of the country. Education was empowered women, educated house-wife is able to perform her household duties more efficiently. She can better understand the values of sanitations creation, health, and education. She can be a true helpmate of her husband. She can improve the quality of life at home & outside she can solved problem of another women oe educated women promote to her girl child. She can inspire to illiterate people who provide better guidance and moral values to society.

She can also help in the reduction of corruption, infant mortality rate and growth of population education is also crucial for a mother health almost 700 women die from preventable causes related to pregnancy child birth. Education can reduce poverty. Once the women come out of the four walls of the house women empowerments depends on number of factors. She can raise her voice against injustice. If she knows her rights and she can use it. Empowering women chains of imitating belief

patterns and social or religious conditioning that have traditionally kept women suppressed and unable to see their true beauty and power.

Role of Women's in development process I tribal region :-

There was a time when women's education was not a priority even among the elite. Since the last quarter of the 20th century and more so after the opening up of die economy, post-1991, a growing number of women have been entering into the economic filed, seeking paid work (remunerative jobs) outside the family. Women are playing bigger and bigger role in economic field: as workers, consumers, entrepreneurs, managers and investors. We can now see women in almost every filed. Architecture, lawyers, financial services, engineering. Medical and IT jobs. They have also entered service occupation such as a nurse, a beautician, a sales worker, a waitress, etc. they are increasingly and gradually seen marching into domains which were previously for males (Police, driver's army, pilots, chartered accountants. Commandos.

In spite of their increasing number in every field. Women still remain perhaps the world's most underutilized resources. Many are still excluded from paid work and many do not make best use of their skills.

Problems in the development of women in corporate sector :-

Women corporate sector encounter many problem in India. Very few women managers are in big companies. They mostly confined to small business. The face lot of problems.

1. Gender differences
2. Social Attitude
3. Families ties
4. Lack of education
5. Problem of Finance
6. Low mobility
7. Sexual harassment
8. Exploitation
9. Intense Competition etc.

Recommendation for women development in Corporate Sector :-

1. Develop policies that create a women friendly workplace environment.
2. Establish training programmers for women.
3. Promote awareness initiatives that highlight the value of women managers.
4. Make accommodation for women in areas such as need based postings.
5. Elicit input from women employees regarding policies and promotion and performance review processes, etc.

Suggestion/Recommendation :-

The role of tribal women is impotent but their socio-economic development is poor. More needs to de done. The problems of tribal women and tribal's are largely common, suggestion and recommendations to strengthen and empower tribal's as well as tribal women are :-

- Increase agriculture production through conservation to settled agriculture, where Possible, with linage to easy credit and markets and assured irrigation.
- Survey of water resources, integrated watershed management approach must be adopted.

- To create job opportunities like as kitchen gardening, childcare, food preservation, and handicraft and house based activities.
- Various govt. subsidies programs dairy, sericulture, fisheries, handicraft, horticulture agri-food processing and harvesting technologies.
- In modern techniques various trainings and proactively knowledge continuously to tribal Women's
- Some Action research to their included works, maintaining, impact of programs,
- Teach tribal children in their mother tongue at least at primary level.
- In tribal area Schools controlling pore decentralized as local management committee,
- Promote the synthesis of Indian of systems of medicine like Ayurveda, siddha an umami with the Tribal system.
- Improving the healthcare systems in tribal region
- Provide good drinking water facilities in tribal areas.
- Solve the migration problem in tribal areas.
- Encourage women's organizations working among tribles and ensure the formation, stabilization and bank linkages.

Conclusion :-

Tribal Women play a major Role in Development process. As well as social economic resources and agriculture development including production, livestock production, horticulture and harvesting process. But the women's back word due to traditional values, illiteracy, superstitions, and dominant role in decision making, social evils and many other cultural factor. In a procegour of equalization fastly in social sector women makes world satisfactory position. The participatory role of tribal's I improving their living conditions by fully exploring natural endowments and alternative uses must find and appropriate place in the strategic approach.

REFERENCE :-

1. Economic survey (2007 -2008) ministry of finance. Govt. Of India
2. http/www Indian women org. in
3. Jeanie, miss Rani paper "Women Empowerment women"

Mo. No. : 9552030797
E-mail ID :- tukaram.h.aghav@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 224-227
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ताण - व्यवस्थापन

-प्रा. मुंगूसकर अनिल मधुकर
सहायक प्राध्यापक, मानस शास्त्र विभाग, भारत महाविद्यालय,
जेऊर (म.रेलवे) ता. करमाळा, जि. सोलापूर (महाराष्ट्र)

प्रास्ताविक :-

मानवी जीवनात ताणरहित अवस्था असणे शक्य नाही। थोडयाफार प्रमाणात प्रत्येकाला ताण असणारच मात्र विविध उपायांचा वापर करुन ताणाची तीव्रता कमी करण्यासाठी प्रयत्न केले पाहिजेत. ताण सुसहय कसा होईल या दिशेने विचार केला पाहिजे। यालाच ताण नियमन किंवा ताण व्यवस्थापन असेही म्हणतात। ताण अनुभवाला जात असताना विविध प्रकारच्या शारीरिक प्रतिक्रिया घडून येतात। या प्रतिक्रियांची वेळीच जाणीव होऊन नियंत्रण करता येते।

''जीवनातील ताण सहन करुन दैनंदिन व्यवहार सुरळीतपणे पार पाडणे व वर्तनाचा समतोल राखणे म्हणजे ताण व्यवस्थापन होय।'' ताण संबंधीत प्रतिक्रियांवर मात करणे, त्यांच्यावर नियंत्रण ठेवणे आणि त्या प्रतिक्रियांना दिशा देणे त्यांच्या साहयाने ताणाची तीव्रता कमी करणे शक्य आहे। याकरीता मानसशास्त्रज्ञांनी सुचविलेले ताण व्यवस्थापनाचे मार्ग पुढील प्रमाणे आहेत।

अ) सभोवतालची परिस्थिती बदलणे -

ताण–तणाव निर्माण झाल्यानंतर तो कमी करण्यासाठी धावपळ करण्याऐवजी तो निर्माणच होऊ नये यासाठी अगोदरच योग्य ती खबरदारी घेतली पाहिजे। यातूनही ताण निर्माण झालाच तर त्याची तीव्रता व परिणाम कमी करण्याचे प्रयत्न केले पाहिजेत. ताणांचे यशस्वी व्यवस्थापन करावयाचे झाल्यास ताणाची लक्षणे कमी करणाऱ्या प्रतिक्रिया शिकून घेतल्या पाहिजेत। ताणदायक परिस्थितीमध्ये बदल घडवून आणण्याचे पुढील तीन मार्ग आहेत।

1) आग्रहीपणा -

सभोवतालची परिस्थिती बदलावयाची असेल तर स्वभावामध्ये आग्रहीपणा हवा। जेव्हा यश मिळण्याची शक्यता असते तेव्हा ताण व्यवस्थापनासाठी आग्रहपणा हा एक मार्ग उपलबध असतो। आग्रहीपणामुळे ताणजन्य परिस्थितीत बदल घडवून आणण्यासाठी भर दिला पाहिजे।

2) माघार घेणे -

ताणदायक परिस्थितीला आणखी एक दिली जाणारी प्रतिक्रिया म्हणजे माघार घेणे होय. योग्यवेळी माघार घेता येणे ताण–तणाव कमी करण्यासाठी उपयुक्त ठरते। आग्रहीपणा किंवा तडजोड या मार्गाचा वापर करून तणावग्रस्त प्रसंग टाळता येत नाहीत त्यावेळी माघार घेणे लाभदायी ठरते।

3) तडजोड –

तडजोडीमुळे ताण–तणाव पूर्णपणे नाहीसा करता येऊ शकत नाही पण तडजोडीमुळे ताणाची तीव्रता आणि वारंवारिता कमी करता येऊ शकते। आपल्यापेक्षा उच्च पदावरील व्यक्ती तिच्या भूमिकेवर ठाम असते आणि आपआपल्या म्हणण्यावर अडून बसतात। अशावेळी तडजोडीचा मार्ग स्वीकारावा लागतो. तडजोडीमध्ये तीन पर्याय आहेत।

अ) अनुरूपता –

आपल्या दैनंदिन जीवनात विविध प्रसंगी अनुरूप असे बदल करावे लागतात। स्वभावाला मुरड घालावी लागते। स्वतःची मते, इच्छा व कार्यपद्धतीमध्ये बदल करावा लागतो। परिस्थितीमध्ये मिळते–जुळते घेऊन स्वतः मध्ये अनुरूप असे बदल घडवून आणावे लागतात तेव्हाच ताण व्यवस्थापन होते।

ब) वाटाघाटी –

व्यक्तिगत आणि समाज जीवनातील अनेक समस्या, चर्चा या वाटाघाटीमुळे सुटतात. कामगार, व्यवस्थापन यांच्यातील तंटे, शेजारी, मित्र यांच्यातील वादविवाद राजकीय संघर्ष, पती–पत्नीमधील मतभेद इ। वाटाघाटी करून सोडविले जातात।

क) पर्याय किंवा प्रतिस्थापन –

अनुरूपता आणि वाटाघाटी यांचा उपयोग होत नसेल तेव्हा पर्यायी मार्ग म्हणून ''प्रतिस्थापन'' हा पर्याय उपलब्ध असतो। पर्याय निवडल्यामुळे ताण कमी होऊन व्यक्ती सुखावह होतो।

ब) जीवनशैली बदलणे –

ताणाची तीव्रता कमी करण्यासाठी ताण व्यवस्थापन करण्यासाठी ''सभोवतालची परिस्थिती बदलण्याचा प्रयत्न करा ते शक्य नसेल तर स्वतःलाच बदला'' जीवन जगत असताना असा दृष्टीकोन ताण नियंत्रणात ठेवण्यास उपयुक्त ठरतो। दैनंदिन जीवनातील समस्या सोडवित असताना आपल्या सभोवतालच्या परिस्थितीवरील नियत्रंणापेक्षा आपले स्वतःवरच जास्त नियंत्रण असते। त्यामुळे स्वतःमध्ये आणि स्वतःच्या वर्तमान सुधारणात्मक बदल करणे हा ताण व्यवस्थापनाचा अधिक चांगला मार्ग आहे। ताण व्यवस्थापनासाठी जीवनशैलीमध्ये बदल करण्यासाठी पुढील मार्ग महत्वाचे आहेत।

1) ताण सहनशीलता वाढविणे –

सभोवताली घडणाऱ्या घटनामुळे त्रासून न जाता त्या सहन करावयास शिकले पाहिजे। काही व्यक्ती उगाच लहान लहान प्रसंगामुळे ताण घेतात। ताण सहनशीलता म्हणजे तुम्ही किती प्रमाणात ताण सहन करू शकता। किंवा तुम्ही विवेकहिनता, विसंगतता न आणता आवश्यक ते काम करू शकता। आपल्या भोवती घडणाऱ्या अनेक घटना असतात. त्यांना घाबरण्याचे कारण नाही ताण सहन केल्यामुळे ताणाचे व्यवस्थापन योग्य होते।

2) जीवनगती बदला –

प्रत्येक व्यक्ति आज अत्यंत धावपळीचे जीवन जगत आहे। अगदी घडयाळाच्या काटयांशी त्यांची स्पर्धा आहे. त्याचा परिणाम म्हणून ताणाला सामोरे जावे लागत आहे। त्यामुळे योग्य नियोजन करून प्रत्येकाने आपली गती बदलून ताण कमी करणे शक्य आहे। यासाठी पुढील कानमंत्र उपयोगी ठरतो।

– गडबड – घाई टाळण्यासाठी लवकर उठा।
– न्याहारीसाठी पुरेसा वेळ द्या।
– दिवसभरात करावयाच्या आपल्या कामाची यादी करा आणि महत्वाचे कामे अग्रक्रमाने हातावेगळी करा।
– कामात घाई करू नका। शांतपणे वाहन चालवा।
– इतरांसमवेत किंवा कुटुंबियांसमवेत एकवेळ तरी जेवण घ्या।
– दिवसातून थोडी विश्रांती घ्या, चालत जा, फिरायला जा, सायकल चालवा, गरम पाण्याने आंघोळ करा।
– आपल्या हातातल्या कामावर लक्ष केंद्रित करा।
– मित्रांशी बोलण्यासाठी थोडावेळ राखून ठेवा।
– अभ्यासाला नियमित वेळ द्या।
– सुट्टीच्या दिवशी आरामदायक कार्यक्रमांचे नियोजन करा।
– झोपण्यापूर्वी नियमित वाचन करा. चांगले संगीत ऐका।
– चांगले छंद जोपासण्यासाठी वेळ राखून ठेवा।
– एकटे – एकटे राहू नका. सामाजिक संपर्कासाठी वेळ द्या।
– व्यायामासाठी वेळ देऊन चांगले आरोग्य राखा।
– आपल्या कामानुसार त्याचे वेळापत्रक करा, कामाचा आढावा घ्या।
– कॅफीन, मद्य, गांजा यासारखी अंमली द्रव्ये घेणे आळा, व्यसनांपासून दूर रहा।
– आशावादी राह, निराशेला थारा देऊ नका। सकारात्मक दृष्टीकोन बाळगा।

3) विघातक विचारांवर नियंत्रण ठेवा –

व्यक्ति जीवनात अनेक प्रसंगाबाबत नकारात्मक विचार करतात। याउलट आपले विचार नेहमी आशावादी, होकारात्मक विधायक असले पाहिजेत। सकारात्मक विचार व्यक्तीमध्ये आत्मविश्वास निर्माण करतात। ताण व्यवस्थापनामध्ये यशस्वी झाल्यानंतर स्वतःच स्वतःला शाबासकी द्या। स्वतःचे कौतुक करा। प्रोत्साहन म्हणून स्वतःला एखादे बक्षीस द्या। स्वतःशी सकारात्मक संवाद साधल्याने योग्य परिणाम पाहावयास मिळतात। चिंता ताण – तणाव कमी करता येतात।

4) समस्या परिहार कौशल्ये आत्मसात करा –

जीवनामध्ये विविध गंभीर, संकीर्ण, तीव्र स्वरूपाच्या समस्यांमुळे गडबडून–गोंधळून न जाता, हातपाय न गाळता त्यातून योग्य मार्ग शोधणे आवश्यक असते। समस्या सोडविण्याची कौशल्ये आत्मसात करावी लागतात। तज्ञ व्यक्तीची, उपयुक्त साधनांची मदत घ्यावी लागते। अलीकडील काळात मोठया शहरातून ताण – व्यवस्थापनाचे कार्यक्रम आयोजित केले जातात। ताण–व्यवस्थापन प्रशिक्षण कार्यक्रमाचा फायदा घेऊन समस्या परिहार कौशल्ये आत्मसात केली पाहिजेत।

5) सामाजिक आधार शोधा –

एकलकोंडया, एकाकी व्यक्तींना ताण–तणावांना समर्थपणे सामोरे जाता येत नाही। याउलट ज्यांचा सामाजिक आधार समृद्ध व मोठा आहे। आंतरव्यक्तिक संबंध निकोप आहेत अशा व्यक्ती ताण–तणावांना यशस्वीपणे सामोरे जातात। इतरांवर भावना व्यक्त करून मन मोकळे केल्याने त्यांच्याशी, सल्लामसलत, चर्चा,

वैचारीक देवाण–घेवाण केल्याने संकटाचा सामना करण्याचे धैर्य निर्माण होते। समाजात मिळून मिसळून राहिल्याने मानसिक तसेच भावनिक आधार मिळतो। आपल्या पाठीशी कोणीतरी आहे असा विश्वास असणे, तणावमुक्त व आनंदी जीवन जगण्यासाठी मोठा आधार ठरतो।

कोहेन (1988) यांना असे दिसून आले की, पत्नी, मुले, नातेवाईक, मित्र, शेजारी, सहकारी इत्यादी व्यक्तींचा मानसिक आणि भावनिक पाठिंबा असणाऱ्या व्यक्ती एकलकोंडया व्यक्तीपेक्षा समर्थपणे संकटाचा सामना करतात। त्यांचे शारीरिक, मानसिक आरोग्य चांगले असून आयुष्य ही अधिक लाभते।

सारांश –

जीवनात चिंता, ताण–तणाव, यश–अपयश, सुख–दुःख हे असणारच त्यातून मार्ग काढत काढत आनंदीवृत्तीने जीवन जगायला शिकले पाहिजे। प्रत्येक व्यक्तीने ताणाचे व्यवस्थापन योग्य पध्दतीने केले तर ताण निर्माण होणार नाही. मानवाने आपल्या स्वभोवतालच्या परिस्थितीमध्ये बदल घडवून आणले पाहिजे। आपण आपली जीवनशैली बदलली पाहिजे। ताण घेतल्यामुळे शारीरिक व मानसिक परिणामांना सामोरे जावे लागते। त्यासाठी प्रत्येक व्यक्ति ने ताणाचे व्यवस्थापन योग्य पद्धती ने केले तर जीवन आनंदी जगता येईल।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. उपयोजित मानसशास्त्र–प्रा. तडसरे, प्रा.तंबाके, फडके प्रकाशन, कोल्हापूर प्रथम आवृत्ती, डिसेंबर 2004
2. आधुनिक उपयोजित मानस शास्त्र – प्रा. डॉ. सुनिल सोनटक्के, प्रा. डॉ. के. एम. जाधव, प्रा. डॉ. उत्तमराव भोसले, प्रा. अनंत कुलकर्णी – सनराईज पब्लिकेशन, सोलापूर।
3. उपयोजित मानसशास्त्र – पलसाने एम.एन. ननवरे सविता (1993), वहिली वेस्टर्न लि.पब्लिशर्स, दिल्ली
4. जीवनपयोगी मानसशास्त्र – पाटील अनघा आणि राजहंस मानसी (1998), उन्मेष प्रकाशन, पुणे।
5. उपयोजित मानसशास्त्र – पंडीत कुलकर्णी, गोरे (2004), पिंपळापूरे आणि कंपनी, नागपुर।
6. Health Psychology – Sarafino and Smith (2012) Wiely Indian Edu.
7. Psychology Applied to Modern life – Wrieten and Lioud (2007)–Thomson-Wardsworth – Indian Edu.
8. Field of Applied Psychology – 2nd Ed. Anastasi Anne (1976) Mcgrow Hill Book Company, New York.

Email ID – anilmm261974@gmail.com

मो. नं. 9423526469

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 228-231
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी विमर्श

-चन्द्रसैन राहुल

एम0ए0 (हिन्दी), नेट, शोधार्थी, एन0आर0ई0सी0 कॉलिज, खुर्जा (बुलन्दशहर)।

मानव, समाज का एक अपरिहार्य अंग है। समाज के सदस्य के रूप में इसका इतिहास छोटे–छोटे कबीलों से प्रारम्भ होता है। इन लघु समाजों को प्रकृति के विभिन्न तत्वों एवं वन में विचरण करने वाले अन्य प्राणियों से मात्र अस्तित्व के लिए कठिन संघर्ष के एक अत्यन्त लम्बे दौर से गुजरना पड़ा। महाद्वीपीय के दुर्गम क्षेत्रों में आज भी ऐसे अनेक मानव समूह हैं, जो हजारों वर्षों से विश्व की आधुनिक सभ्यता से दूर अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की पहचान बनाए हुए हैं।

ये मानव–समूह बीहड़ों, वनों, मरूस्थलों, ऊँचे पर्वतों और अनुर्वर पठारों के उन अन्चलों में निवास करते हैं, जो आधुनिक समाज के लोगों के अर्थ में अनुपयोगी हैं। इन मानव समूहों का अपना स्वयं का इतिहास रहा है, जिसका केवल अन्तिम पृष्ठ ही शेष बचा है और उसमें यह लिखा है कि न जाने किस समय यह समूह छोटे–छोटे ऐसे कबीलों में बट गया, जिनमें एक दूसरे की पहचान और रिश्तों की डोरी टूट चुकी है या उलझ चुकी है। हिन्दी में ऐसे मानव समूहों के लिए 'आदिवासी', 'आदिमवासी', 'कबीली आबादी' और 'जनजाति' जैसे सम्बोधन हैं। भारत में ब्रिटिश काल से पूर्व भारत के विपुल वन साम्राज्य के अधिष्ठाता 'वनवासी' या 'आदिवासी' हुआ करते थे, जिनकी स्वतन्त्र सत्ता थी।

आदिवासियों की समस्याएँ :-

आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं। ये प्रारम्भ से ही दूरस्थ एवं निर्जन स्थानों पर निवास करते हैं, परिणाम स्वरूप आदिवासियों पर शहरी सभ्यता एवं विकास का बहुत कम प्रभाव पड़ा है। ये सदैव ही प्रगति के लिए आवश्यक साधनों के अभाव से ग्रस्त रहे हैं। इसलिए आदिवासियों की अपनी अलग व विशिष्ट पहचान बनी रही है। विस्थापन का नाम दौर अंग्रेजों के जमाने से शुरू हुआ, जिससे राज्य ने प्राकृतिक संसाधनों पर अपना अधिकार जमाना शुरू किया। हमारे देश का सबसे बड़ा विस्थापन लोगों के अधिकारों की अनदेखी करके जमीन के मामले में तरह–तरह के बिचौलियों–जमींदार, जागीरदार इत्यादि लाकर राज्य की सत्ता स्थापित करके हुआ, परन्तु इसमें अधिकतर लोग अपनी जगह बने रहे। लोगों को अपने मूल स्थानों से हटाने के लिए मजबूरी भरा पहला बड़ा विस्थापन, पिछली शताब्दी में वनों का कानून बनने के बाद, आदिवासी इलाके में शुरू हुआ। यह सिलसिला आज भी जारी है।

अंग्रेजों द्वारा बनाई गई व्यवस्था में जमीन जोतकर गुजर–बसर करने वाले जमीन के मालिक नहीं थे, उसके मालिक थे बड़े–बड़े जमींदार और जागीरदार। इसलिए जब इन जमीनों को किसी काम के लिए लेने का सवाल आता था, तो जमीन के मालिक के लिए कोई खास अहमियत नहीं थी। इसलिए उस समय में जहाँ कभी

बड़े पैमाने पर जमीने ली गई, वहाँ विस्थापन की बात सुनने को ही नहीं मिलती थी। जैसे आदिवासियों को जंगलों से कानून के सहारे हटा दिया गया, वैसे ही इन जमीनों पर गुजर–बसर करने वाले भी कानून के सहारे हटा दिये जाते थे। सच तो यह है कि उस जमाने में उन्हें बलपूर्वक हटाने की भी जरूरत नहीं थी, क्योंकि उन्हें मालूम था कि वहाँ से हटने के अलावा उनके पास और कोई चारा ही नहीं था। कानून उनके खिलाफ चलता रहा। जमीन जोतकर अपनी जिन्दगी चलाने वालों के लिए जमीन छोड़ने की मजबूरी और तमाम मुसीबतों के समान ही एक और छोटी सी मुसीबत की तरह थी, जिसे वह अपना भाग्य मानकर सहन कर लेता था।

आजादी के बाद आदिवासियों के तौर–तरीकों में एक मोड़ आया। पहले तो जमीन की हकदारी के मामले में बुनियादी फेर–बदल हुए, जमीरदार–जमीदार खत्म हो गई, ''जो जोते उसकी जमीन'' के सिद्धान्त को आमतौर पर मान लिया गया। इससे लोगों में अपने हकों के बारे में जागरूकता आयी, दूसरी ओर हमारे देश में नियोजित विकास का दौर शुरू हुआ। इसके तहत तरह–तरह की छोटी–बड़ी योजनाएं चालू हुई। उन्हें 'जनहित' का दर्जा देने में किसी को कोई ऐतराज नहीं हो सकता था। इसलिए जहाँ भी जरूरत होती, पुराने कानून का सहारा लेकर, जनहित के लिए बड़े पैमाने पर लोगों से जमीने लेने का एक नया सिलसिला आजादी के बाद चालू हुआ।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि आदिवासियों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाए। उन्होंने आदिवासी लोगों के विकास हेतु पंचशील सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इन लोगों के विकास में उनकी अधिक भागीदारी सुनिश्चित कर, इनके प्रतिनिधियों को सम्मिलित करते हुए, लाभान्वित किया गया। उसी समय सहकारी साख संस्थाओं का गठन करके ग्रामीण क्षेत्र में ऋण सुविधाओं का विस्तार भी किया गया। नेहरू जी किसानों की दुर्दशा से परिचित थे। शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया। कृषकों को बिचौलियों के शोषण से बचाने और उपज का उचित मूल्य दिलाने के लिए मण्डियों के शोषण से बचाने और उपज का उचित मूल्य दिलाने के लिए मण्डियों का विस्तार किया गया एवं बदले हुए परिवेश में आदिवासियों की समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया गया। आदिवासियों के हित के लिए विभिन्न विकासशील परियोजना के अन्तर्गत राहत भी देने की कोशिश की गई है।

यह ठीक है कि आज आदिवासी इलाकों के संसाधनों की राष्ट्रीय विकास के लिए जरूरत है, परन्तु साधारण आदिवासी अभी ऐसी हालत में नहीं है, जहाँ वे इन संसाधनों से अलग हटकर अपनी जिन्दगी बिता सकें। इसलिए बुनियादी सवाल यह है कि क्या आदिवासी की जिन्दगी का हक छीनकर राष्ट्रीय विकास को जारी रखा जा सकता है? सबसे बुनियादी हक जीवन के हक का सवाल है। यह सामाजिक न्याय का सवाल है और उसके साथ ही देश की सभ्यता और संस्कृति और उसके मानवीय मूल्यों में विश्वास का भी सवाल है।

आजादी के बाद जिन संस्थाओं का गठन आदिवासियों के हित के लिए किया गया है, उन्हीं के द्वारा बड़ी चतुराई से उनका शोषण हो रहा है और वह भी समतावादी व्यवस्था के अधीन और अधिक प्रभावशाली तरीके से, लेकिन पर्दे की आड़ में।

आदिवासी समाज की पत्रकारिता :–

अरावली उद्घोष पिछले दो दशक से लगातार आदिवासी विमर्श कर रही है। इसी पत्रिका के बैनर तले चार बड़े सम्मेलन किये जा चुके हैं। इसमें आदिवासियों की ही आवाज लगातार उठाई जाती रही है। तो सहयोगी पत्रिकाओं में आदिवासी विशेषांक, निकालने वाली पत्रिकाएं रही हैं–'दस्तक', 'समकालीन जनमत', 'युद्धरत आम

आदमी', 'दोआबा' और 'ट्राइब' आदि हैं। इनमें आदिवासी समस्याओं को विविध दृष्टि से उठाया गया है। अरावली उद्घोष में अब तक ऐसी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं, जो उल्लेखनीय रही है। विपिन बिहारी की 'टारगेट', भावसिंह हिवानी की 'परणती', खुला जेल और परदेशी राम वर्मा की 'रास्ते ही रास्ते' और 'फैसला' ऐसी कहानी हैं, जो इस समय चल रही आदिवासी क्षेत्र की ज्वलंत समस्या नक्सलवाद पर आधारित है। इसी श्रंखला में कैलाश चन्द की। 'अँधेरे में सुगन्ध' इस वर्ष की वर्तमान साहित्य पत्रिका में आयोजित कहानी प्रतियोगिता की विजेता कहानी रही है और इसका विषय भी नक्सलवाद ही रहा है।

हाशिये पर रह रहे आदिवासी समाज की पत्रकारिता अभी विकसित ही नहीं हुई है। हिन्दी की चर्चित पत्रिका 'हंस' हो या 'कथादेश' या कोई भी साहित्य की पत्रिकाएं उनमें किसी तरह का आदिवासी लेखन व विमर्श का अभाव ही पसरा रहता है। दलित और स्त्री विमर्श करने के बाबजूद राजेन्द्र यादव से यह हाशिया लगभग छूट ही गया है। 'आदिवासी सत्ता' एक मात्र ऐसी पत्रिका रही है जो साहित्य के अलावा हर तरह के आदिवासी मुद्दों को उठाती रही है। कुछ पत्रिकाओं के विशेषांक आने के अलावा इस क्षेत्र में काफी कुछ किया जाने की जरूरत है। जिस प्रकार पत्रकारिता व्यावसायिक सरोकार के कारण कठघरे में आ रही है, ठीक उसी तरह से साहित्य में भी आदिवासी हाशिये पर ही रह रहे हैं। ऐसा कहना किसी भी तरह से अतिश्योक्ति नहीं है।

आदिवासियों पर विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया अध्ययन :-

हेमबर्ग (1927) ने पश्चिमी खानदेश के भीलों पर शोधकार्य किया, जिसमें उनकी निरक्षरता पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया। गौड और सन्थालों के बाद भील आदिवासियों का भारतीय आदिवासियों में तीसरा स्थान है। हेमबर्ग ने आदिवासियों की बौद्धिक क्षमता का भी परीक्षण बड़ी बारीकी के साथ किया और मध्यप्रदेश की अन्य जनजातियों की बोली के आधार पर उनका मूलयांकन किया।

सी0एम0 चौधरी ने अपनी पुस्तक ग्रामीण विकास में यह विचार प्रस्तुत किया है कि किस प्रकार कई तरह के करों, कटौतियों और शुल्कों की वसूली कर स्थानीय प्रशासन और मण्डियों में बिचौलिया वर्ग आदिवासियों का शोषण करते हैं और तौल में गड़बड़ी, कर्जा और बट्टा आदि की आड़ में खुली लूट करते हैं।

आदिवासी संस्कृति को यथार्थ रूप में विश्लेषित एवं व्याख्या करने का श्रेय देश के जाने–माने प्रबुद्ध विद्वानों में एलविन (1947), मजूमदार (1952), एस0सी0 दूबे (1969) आदि को जाता है, जिन्होंने आदिवासी समाज का अध्ययन कर उनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया।

1951–52 तथा 1956–57 के अनुसंधान एवं पुनरानुसंधान पर आधारित दोनों प्रतिवेदनों में ग्रामीण ऋण ग्रस्तता विशेषतः कृषि सम्बन्ध श्रमिकों की ऋण ग्रस्तता के सम्बन्ध में बहुमूल्य सामग्री मिलती है (ए0आर0 देसाई 1999)।

डॉ0 ओमप्रकाश जोशी 1992 ने अपनी पुस्तक भारत में सामाजिक परिवर्तन में आदिवासी अशिक्षा के कारणों का विश्लेषण किया तथा जी0आर0 मदन (1990) ने अपनी पुस्तक 'भारत का सामाजिक पुर्ननिर्माण' में बताया कि राज्य का उत्तरदायित्व जनता के दुर्बल वर्गों के लिए, विशेष रूप से अनुसूचित जाति–जनजातियों की शिक्षा–सम्बन्धी एवं आर्थिक हितों को विशेष ध्यान देकर बढ़ाना है। अन्याय के सभी स्वरूपों में आदिवासी शोषण का विवेचन इस पुस्तक में किया गया है।

योगेन्द्र सिंह (1984) ने आदिवासियों के अध्ययन में अवधारणात्मक निरूपण को देखते हुए कहते हैं कि

परिवर्तन के दौर में होमोजीनस आदिवासी समूहों में जातियों की तरह के अन्तर्विवाहिकी समूह उभर रहे हैं। ये समूह स्थान व परिस्थितियों के अनुसार अलग–अलग स्वरूप ले रहे हैं। सामान्यता आदिवासियों में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया, जैसा कि जी0एस0 अरोरा और एफ0जी0 बैली कहते हैं, आदिवासी से जाति और जाति से वर्ग की दिशा में हो रही है।

पं0 गोविन्द बल्लभपंत के अनुसार आदिवासी अपनी संस्कृति के रूप को स्वयं निर्धारित करें और देश की बहुरंगी सांस्कृतिक सम्पदा में उनका विशिष्ट योगदान हो। उनके रीति–रिवाजों और आमोद–प्रमोद की रीति–नीति को आवश्यक रूप से इतना न बदला जाये कि उनकी अपनी कोई पहचान ही न रह जाए।

1972, 1982, 1960 ई0 में पी0सी0 दवे द्वारा आदिवासियों पर किया गया कार्य चर्चा का विषय रहा। श्री दवे ने आदिवासी क्षेत्रों में हुए विकासात्मक कार्य, इनके रहन–सहन, कृषि वर्ग, आवासीय व्यवस्था पहचान, चरित्र, मृत्युगीत, धार्मिक भावना आदि का मूल्यांकन किया। इनकी आर्थिक स्थिति की परख भी बड़ी बारीकी से की गई। इस प्रकार श्री दवे ने आदिवासी के सर्वागीण जीवन की विवेचना की।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. डॉ0 बृह्मदेव शर्मा – आदिवासी विकास : एक सैद्धान्तिक विवेचन, भोपाल (म0प्र0 ग्रन्थ अकादमी)।
2. आदिवासी कोल – डॉ0 स्वामी पी0 गुप्ता, आकाश पब्लिकेशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद।
3. ग्रामीण विकास का अध्ययन – सी0एस0 चौधरी (1991), दिल्ली प्रकाशन।
4. ट्राईबल डवलपमेन्ट इन इण्डिया – योगेन्द्र सिंह (1984), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. आदिवासियों का आर्थिक शोषण एवं संरक्षात्मक उपायों की प्रभावशीलता – डॉ0 रितू जार्ज, नवभारत प्रकाशन, दिल्ली।
6. आदिवासी लोक और संस्कृति – रमेश चन्द मीणा, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद–201102।

मो0नं0–9761185282

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 232-236
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी कविता में पर्यावरण चेतना

–डॉ. प्रभा शर्मा

सह आचार्य– हिन्दी, राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान।

साहित्य और पर्यावरण दोनों अन्योन्याश्रित है। पर्यावरण शब्द का सामान्य अर्थ हम भौतिक परिवेश से ही लेते हैं। लेकिन जब समाज और साहित्य के साथ पर्यावरण की चर्चा करते हैं तो हमें पर्यावरण को व्यापक रूप में देखना होगा। इसकी परिधि में हमारे ऊपर नीचे तथा चारों ओर का वातावरण आ जाता है। हमारी संस्कृति हमारे पर्यावरण से सीख ग्रहण करती है। वह पर्यावरण से ही पोषित–पल्लवित होती है। हिंदी साहित्य के समस्त कवियों के यहां पर्यावरण की उपस्थिति अनिवार्यतरू देखी जाती है। हां, इसका रूप जरूर बदल जाता है कहीं पर्यावरण अथवा प्रकृति आलंबन रूप में मिलती है तो कहीं यह उद्दीपन रूप में पाई जाती है। यदि यह कहा जाए की पर्यावरण की उपस्थिति के अभाव में कविता अधूरी है या कविता हो ही नहीं सकती तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। एक श्रेष्ठ कविता पर्यावरण के आभूषणों से सुशोभित होती है। पर्यावरण के अंगों, उपायों से ही संपूर्ण बनती है। जिन कवियों ने पर्यावरण के द्वारा जीवन की व्याख्या की है, वे कालजयी कवि कहलाये हैं। हमारे हिंदी के महाकाव्य पर्यावरण का संपूर्ण चित्रण करते हैं। तुलसी की रामचरितमानस, जायसी की पद्मावत, जयशंकर प्रसाद की कामायनी, पर्यावरण की दृष्टि से उत्तम कृतियाँ है।

तुलसीदास जी पंचमहाभूत जिनसे हमारा भौतिक शरीर निर्मित है के महत्व को स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि इसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती–

छिती जल पावक गगन समीरा।
पंच तत्व से रचित शरीरा।।[1]

बड़े दुःख की बात है कि इन पंचभूतों को आज मनुष्य दूषित करने में लगा है जिसके परिणामस्वरूप उसे नित नये संकट और अनेक बीमारियों का सामना करना पड़ रहा है। पर्यावरण प्रकृति का बैंक है। इस बैंक में जमापूंजी के सहारे जिंदगी का कारोबार चलता है। पर्यावरण वह 'आवरण' या 'खोल' है जिससे हम घिरे हैं। प्रकृति, जल, वायु, प्रकाश, ध्वनि, आदि पर्यावरण के अंतर्गत आते हैं। वन–बाग, फूल–पत्ती, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, नदी–सरोवर, विविध प्रकार की वनस्पतियां यह सब मानव के कल्याण के लिए हैं। इनसे मनुष्य के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा होती है। शिव बहादुर सिंह 'दिलबर' कहते हैं–

जीव–जंतु सब जगत के, हैं प्रत्यक्ष प्रमाण।
देती वनस्पति जिनहि नित, सब व्याधिन से त्राण।।

जड़, डाली, पत्ती, तना, पुनि, टहनी, फल–फूल।
सकल रूप से पेड़ कुछ, हरें मनुज के शूल।।[2]

प्रकृति में जितनी भी वनस्पतियां हैं वह सब औषधियों का भंडार है। हम जितना प्रकृति के निकट रहेंगे उतना ही ईश्वर के समीप रहेंगे। ईश्वर ने मानव जाति के कल्याण के लिए उसे उपहारस्वरूप यह प्राकृतिक संपदा प्रदान की है। प्राकृतिक सौंदर्य ना केवल मन को सुख, शांति और आनंद प्रदान करता है अपितु जीवन जीने के लिए सुविधाएं भी उपलब्ध कराता है। कवियों का पर्यावरण से अटूट संबंध है। प्राकृतिक मनोरम दृश्यों को देखकर कविता स्वतः ही कवियों के मुख से फूट पड़ती है। उसके लिए कवि को कभी प्रयास नहीं करना पड़ता परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि हम निरंतर प्रकृति का दोहन करते जा रहे हैं। बजाय प्रकृति का संरक्षण और संवर्धन करने के। रामचरितमानस में जगह–जगह प्रकृति के सौंदर्य और उसके संरक्षण की बात कही गई है। चित्रकूट मैं घने वृक्ष हैं, उन्हीं घने वृक्षों की छाया के बीच राम ने अपनी कुटिया बनाई है। सीता और लक्ष्मण ने वहां तुलसी के पौधे लगाए हैं–

नाथ देखि अहिं विटप विसाला। पाकर जंबु रसाल तमाला।
ए तरु सरित समीप गोसाई। रघुवर परनकुटी जह छाई।।
तुलसी तरुवर विविध सुहाए। कहुं–कहुं सिय कहुं लखन लगाए।
वट छाया वेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई।।[3]

इस प्रकार रामचरितमानस में अन्य प्रसंगों में गंगा, यमुना और सागर आदि को देवता मानकर पूजने का प्रावधान है और इन प्राकृतिक शक्तियों के प्रति विश्वास, आस्था और अनुराग द्वारा पर्यावरण स्वच्छता का संदेश भी दिया गया है।

जल उन पांच तत्वों में से एक है जिनसे मिलकर इस सृष्टि का निर्माण हुआ है। रहीम ने इस दोहे के माध्यम से बहुत पहले ही 'जल संचयन' की बात कहकर उसके महत्व की ओर संकेत कर दिया था–

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती मानस चून।।[4]

भक्तिकालीन कवि रसखान ने तो गंगा की महिमा का अद्‌भुत वर्णन किया है। उनके अनुसार गंगा का जल पवित्र और जीवन रक्षक औषधियों का भंडार है। जीवन दान देने वाला है। उसके जल को स्पर्श करने मात्र से मनुष्य के सारे पाप, कुलुषता, मलिनता नष्ट हो जाते हैं। तन और मन निर्मल हो जाते हैं। यहां तक कि इसका पान करने से विष का प्रभाव भी निष्फल हो जाता है। वह कहते हैं–

वैद की औषधि खाऊं कछु न करौं व्रत संजम री सुन मोसे।
तैरोई पानी पियो 'रसखानी' संजीवन लाभ लहों सुख तोसे।।
एरी सुधामयी भागीरथी कोई पथ्य कुपथ्य करैं तउ पोसे।
आक धतूरे चबात किरै विष खात फिरैं सिव तेरे भरोसे।।

कृष्ण भक्त कवि सूरदास ने भी गंगा को परम पुनीत, मोक्षदायिनी और वरदान देने वाली बताया है–

अति पुनीत विष्णु पादोदक, महिमा निगम पढ़त गुन चौन।
परम पवित्र मुक्ति की दाता, भागीरथी भई वर दैन।।[5]

परंतु बड़े दुःख की बात है कि आज वही अमृत्तुल्य गंगा सबसे अधिक प्रदूषित हो चुकी है। भौतिक संपन्नता और अंधाधुंध प्रगति की होड़ ने इन नदियों की पवित्रता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। गंगा सूखती जा रही है। नालियों और कारखानों का गंदा पानी निरंतर गंगा को प्रदूषित करने में लगा है। आज गंगा बचाओ अभियान की महती आवश्यकता है।

यह निर्विवाद सत्य है कि जब हम प्रकृति का संरक्षण करते हैं तो वह भी हमारा भरपूर पोषण करती है परंतु जब हम उसका अनावश्यक दोहन और शोषण करते हैं तो वह भी हमारा विनाश करती है। समय–समय पर आने वाली बाढ़, तूफान, भूस्खलन, भूक्षरण और सबसे अधिक वर्तमान में जिसे हम लगभग डेढ़ वर्ष से भोग रहे हैं– कोविड–19 वैश्विक महामारी जैसी भयानक बीमारी। जिसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जिसके कारण समूचे विश्व की गति थम सी गई है। जनजीवन अस्त–व्यस्त हो गया है। इसलिए हमारे कवि प्रकृति के इस विनाशकारी रूप के प्रति पहले से ही सचेत थे। इसी वजह से वे बार–बार प्रकृति के संरक्षण की बात कहते हैं। डॉक्टर विद्यानिवास मिश्र ने इस संदर्भ में लिखा है कि– 'प्रकृति की संवेदनशीलता मानव को प्रभावित करती है। किंतु जहां औद्योगिक विकास से अंधे मानव ने प्रकृति को चुनौती माना और उस पर विजय प्राप्त करने की इच्छा करने लगा वहीं से मानव और प्रकृति का संघर्ष शुरू हुआ, जिसका परिणाम सामने है।'

मनुष्य जब प्रकृति से छेड़छाड़ करता है तो उसके परिणाम बड़े भयावह होते हैं। पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाता है। कामायनी के श्चिंता सर्गश में प्रकृति का विध्वंसकारी रूप के दर्शन होते हैं जहां मनु अपने अतीत सुख की विनाश लीला को स्मरण करते दिखाई देते हैं–

पंचभूत का भैरव मिश्रण शंपातों के शक्ल–निपात,
उल्का लेकर अमर शक्तियां खोज रही ज्यों खोया प्रात।
उल्का क्रंदन करती गिरती और कुचलना था सबका,
पंचभूत का यह तांडवमय नृत्य हो रहा था कब का।।[6]

आज जहाँ आर्थिक और औद्योगिक उन्नति और वैज्ञानिक प्रगति ने मानव को सुविधा संपन्न तो बना दिया परंतु उसके दुष्परिणाम भी स्वयं मानव को ही झेलने पड़ रहे हैं। सभी लोग प्रदूषण को लेकर चिंतित हैं। वायु, जल, पृथ्वी, आकाश सभी प्रदूषण के शिकार हो रहे हैं। वर्तमान में देश में ऑक्सीजन को लेकर बड़ा संकट पैदा हो गया था। कोरोना से ग्रस्त मरीजों के लिए ऑक्सीजन की बहुत जरूरत थी। ऐसे में एक कवि समाज के प्रति अपने कर्तव्य को लेकर सजग है और हम सबको अपनी कविता के माध्यम से बार–बार पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रेरित कर रहा है। पर्यावरण प्रदूषण ने किस तरह हम सबको अपनी गिरफ्त में ले लिया है, वह इन पंक्तियों में दर्शनीय हैं–

अब ऐसे मौसम में
भले ही यह पागलपन समझा जाए

पर यह सच है
कि पेड़ों के पास नहीं बची है ऑक्सीजन
वे धरती पर चेतावनी की तरह खड़े हैं
और अब इन दिनों कोई नहीं सुनता पेड़ों की आवाज।।[7]

भोगवादी संस्कृति और वैज्ञानिक चमत्कारों की अंधी दौड़ में, कंक्रीट के जंगल खड़े करके दमघोटू वातावरण तथा विषाक्त होते जल संसाधन, कार्बन डाइऑक्साइड के सघनीकरण से तापमान में वृद्धि, ग्लोबल वार्मिंग के खतरे और चुनौतियां, हाल के वर्षों में पृथ्वी के तापमान में वृद्धि के कारण हरी–भरी धरती का विनाश चिंतनीय विषय है। धरती हमारी मां है, इसकी रक्षा करना और बचाना हमारा परम कर्तव्य है। कवियों ने पृथ्वी के संरक्षण के लिए बहुत से संदेश दिए हैं। जैसे कि–

जीवन का संदेश यही, गीत धरा के हम सब गा लें।
सच्चा देकर प्यार इसे, इसके सब श्रंगार सजा लें।
मोड़े मुख भौतिकता से व संरक्षण के मंत्र निकालें।
प्रतिकूल इस बेला में अनुकूल का उपचार निकालें।
चीखेगी वरना माटी, मानव तू है अत्याचारी।
तूने रौंदा बहुत मुझे, तेरी ही है अब तो बारी।

समय रहते यदि हम सजग नहीं हुए तो परिस्थितियां संभलने की जगह और बिगड़ती जायेंगी। आधुनिक विकास की लंबी दौड़ ने उपहार में हमें पर्यावरण प्रदूषण दिये जिससे सांस लेना भी दूभर हो गया है। विनोद कुमार शुक्ला के शब्दों में–

बचाकर रख लेनी चाहिए हवा
सांस लेने के लिए
दूर नल से पानी लाते हैं
वैसे ही नालियों, दुर्गंध से दूर जाकर
एक साबुत घड़े में शुद्ध हवा लानी चाहिए।[8]

पर्यावरण संरक्षण मनुष्य का प्राकृतिक और सामाजिक दायित्व है। 21वीं सदी की दहलीज पर खड़े मनुष्य को ही अब यह तय करना है कि भारतीय संस्कृति को अपनाकर आने वाली पीढ़ी को स्वस्थ जीवन का वरदान देना चाहते हैं या उनके पैरों के नीचे की जमीन खींचना चाहते हैं। पर्यावरण को बेहतर बनाए रखने के लिए हमें प्रकृति के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है। कवि प्रकृति का अत्यधिक दोहन ना करने की चेतना का विकास करने के लिए विश्वव्यापी अभियान की शुरुआत अपनी रचना के माध्यम से करते हैं। यदि साहित्य द्वारा दिखाए गए मार्ग पर चलकर हम सब प्रकृति को संरक्षण प्रदान करें तो निकट भविष्य में भारतीय संस्कृति की 'सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे भवंतु निरामयाः' की संस्कृत की महान कल्याणकारी भावना सत्य सिद्ध होगी और जीवन सुंदर से सुंदरतम बनता जाएगा। इसलिए संपूर्ण मानव जाति के लिए कवि का यही संदेश है–

सबको दे संदेश विमल, भू–रक्षण का मंत्र सफल दें।
वरना अब ये हारेगी, मानव को कब तक तारेगी?[9]

संदर्भ :-

1. किष्किंधा कांड – रामचरितमानस, पृष्ठ 677
2. यह मोती हैं ज्ञान के – शिव बहादुर सिंह 'दिलबर', पृष्ठ 87
3. अयोध्या कांड – रामचरितमानस, पद संख्या 37, पृष्ठ 566
4. रहीम के दोहे
5. सूर सारावली – सूरदास, पद संख्या 434
6. कामायनी – जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 22–23
7. कृतिका, – सं वीरेंद्र सिंह यादव, अंक 4 जुलाई–दिसंबर 2009, पृष्ठ 147
8. अतिरिक्त नहीं – विनोद कुमार शुक्ल, पृष्ठ 112
9. गीत धरा के – कुसुम शर्मा, पृष्ठ 75

ईमेल– prabha2364@gmail.com
मोबाईल 7976740636

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 237-240
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नारी शाक्तीकरण और अनामिका की कविता

–डॉ. जस्टी इम्मानुएल
सहायक आचार्या, अल्फोंसा कॉलेज पाला, कोट्टायम, जिला केरल।

बदलाव या परिवर्तन दुनिया का नियम है। काल के अनुसार, प्रगति के साथ, मौसम बदलाव के साथ सब कुछ बदलते रहते हैं। पर पुराने जमाने से लेकर आज तक स्त्रियों पर होने वाले शोषण, अत्याचार और उत्पीड़न में कोई बदलाव नहीं आया है। पुरुष सत्तात्मक समाज के पैरों के नीचे स्त्रियों की इच्छा, आकांक्षा एवं सब कुछ उछल–कुचल कर रही है। कर्तव्य परायणता, सेवा भाव, मर्यादा जैसे डोंगी–मुखौटों द्वारा उसका शोषण कर रहा है। परम्परावाद, आदर्श, सहनशीलता आदि गुणों के नाम पर उसे अपनों पर किये दुर्व्यवहार से समझौता करना पड़ता है। दिन–ब–दिन प्रगति की ओर अग्रसर करने वाले हमारे समाज में नारी आज भी शोषक वर्ग की अनैतिक क्रियाओं का शिकार हो रही है। नारी मुक्ति का स्वर चारों ओर गूंज उठती है स्त्री शिक्षा, स्त्री सुरक्षा संबधी क़ानून, समाज सुधार आदि सुलझावों के प्रभाव से नारी की स्थिति में कम बदलाव दिखाई देता है, फिर भी नारी को अपना अस्तित्व और अस्मिता कायम रखने के लिए अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। भूमंडलीकरण और पाश्चातीकरण के इस युग में बहुसंख्यक महिलाएं मूलभूत मानवाधिकारों से वंचित है। इस उत्तराधुनिक युग में नारी की यथार्थ स्थिति करुणाजनक बनती जा रही है। इस अर्थलोलुप समाज में उन्हें कम महत्त्व दिया जा रहा है।

दहेज के नाम पर उत्पीड़ित नारियों की संख्या भी निरंतर बढ़ती रहती है। अनेक नारियों को अपने जीवन ज़ीना चढ़ने की प्रक्रिया में अपनी जिंदगी भी नष्ट करनी पड़ती हैं। इसलिए आज की इस माहौल में नारी शाक्तीकरण की बड़ी प्रासंगिकता है। शाक्तीकरण का मतलब स्त्रियों के समग्र विकास करना है। सामाजिक आर्थिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में पुरुषों की अपेक्षा निम्नस्तरीय जीवन बिताने में अभिशप्त नारी की मुक्ति ही नारी शाक्तीकरण का लक्ष्य है। वह अपने अस्तित्व को पहचान कर अपनी क्षमताओं का विकास करें और परिवार, समाज तथा देश के विकास में अपना योगदान दे सके, उनके समस्त जीवन स्तर को ऊपर उठा सके, इस प्रकार समस्त महिलाओं का समग्र विकास करें, ये बातें भी स्त्री शाक्तीकरण के अंतर्गत आते हैं। अनेक नारियों में अपने अधिकारों के अवबोध की कमी है इसलिए नारी को अज्ञानता से मुक्ति दिलाना और अपने अधिकारों का अवबोध जगाना नारी शाक्तीकरण का पहला कदम है। इसके लिए नारी को शिक्षित करना और उसका मानसिक तल मज़बूत करने की ज़रुरत है। उसका शोषण के खिलाफ लड़ने का ताकत बढ़ाना चाहिए। इसके लिए संघटित श्रम और समर्थन की जरूरत है। समाज सेवक, साहित्यकार, आदर्श शासक, राजनीतिक नेता इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए काम करते हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य में अनामिका सदैव स्त्री के ताकत में विश्वास करने वाली तथा स्त्री को

महत्वपूर्ण दायरे में प्रतिष्ठित करने वाली कवियत्री है। वे स्त्रीवादी दृष्टि की सशक्त लेखिका हैं। नारी जीवन के हर पहलू पर मद्देनजर रखते हुए वे लिखती है। नारी के भिन्न–भिन्न रूप हमारे सामने मौजूद हैं। रीति काल में नारी विलास और उपभोग का साधन मात्र था, इसके विरुद्ध छायावादी युग में स्त्री करुणा, क्षमा, दया आदि गुणों से युक्त गरिमामय देवी के रूप में माना गया था। समकालीन युग में इन सबसे अलग नारी को हम देख सकते हैं। इस युग में नारी की मानसिकता में काफी बदलाव आ गया है। अपने स्वत्व को पहचानने वाली नारी के रूप में वह अपनी अस्मिता को तलाशती है। पुरुषों के वर्चस्व का वह पहचान करती है। पुरुषों की छाया में वह अपने को महत्वहीन मानती है। अब वह ज्यादा आत्मनिर्भर है स्त्रियों के साथ पुरुषों का व्यवहार में परिवर्तन लाने की जरूरत पर जोर देती है। अनामिका की 'स्त्रियां' कविता में स्त्रियों की प्रतिक्रिया इसका स्पष्ट गवाह है।

'पढ़ा गया हमको
जैसा पढ़ा जाता है कागज
बच्चों की फटी कांपियों का
चनाजोरगरम के लिफाफे बनाने के पहले
देखा गया हमको
जैसे कि कुफ्त हो उनींदें
देखी जाति है कलाई घड़ी
अलसुबह अलार्म बजने के बाद।[१]

स्त्री और पुरुषों की आपसी सहयोग,तनाव और संघर्ष को अनामिका इस कविता में में खुले ढंग से अभिव्यंजित करती है। स्त्री यहाँ पुरुषों का वर्चस्व महसूस करती है। स्त्री आज़ाद है लेकिन नारी की स्वतंत्रता की सीमा पुरुष सत्तात्मक समाज में पुरुष ही निर्धारित करती है। पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री उपेक्षित है। उनके हिसाब में वह तुच्छ और निसार है लेकिन उत्तर आधुनिक युग में स्त्री की अपनी भावनाएं हैं, अपनी आकांक्षाऐं हैं, अपनी निजी अस्मिता है लेकिन पुरुषाधीन सामाजिक व्यवस्था पर वह बेचैन है। इस सामाजिक व्यवस्था में स्त्री हाशिएकृत है। उनके श्रम को कोई मूल्य नहीं, उनकी क्षमताओं को किसी भी प्रकार की प्रोत्साहन भी नहीं मिलता। नारी की श्रम गरिमा की ओर पुरुषों की आंखें बन्ध है। वह उसे पराया मानकर उसे धिक्करते हैं। कवित्री के शब्दों में :–

'किन्हीं सरपरस्तों के दम पर फूली –फैली
अगर धत्त जंगली लताऐं !
खाती–पीती सुख से ऊबी
और बेकार बेचैन आवारा महिलाओं
का ही
शक्ल मात्र है कहानियां कविताएं।'[२]

अपने परिवार में स्त्री के प्रति क्या दृष्टिकोण है? परिवार में उसे कितना मूल्य है? स्त्री होने के कारण उसे किन किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है? इसका स्पष्ट गवाह है 'बेजगह' शीर्षक कविता जिस प्रकार नाखून और केश अपने जगह से गिरकर अनुपयोगी मान गया है उसी प्रकार औरत भी। जगह खोने के

डर के मारे वह अपने जगह पर जम जाती है तमाम पीड़ाएं झेलती है, सहिष्णुता से।

परिवार बच्चों की पहली पाठशाला है। इस व्यवस्था में लड़का–लड़की के बीच का फर्क या अलगाव परिवार में ही शुरू होती है। बचपन से ही लड़की को दबाब के जीवन बिताने का प्रशिक्षण देती रहती है। कवित्री के अपने शब्दों में–

'"राम पाठशाला जा!
राधा, खाना पका!
राम आ बताशा खा!
राधा झाड़ू लगा!
भैया अब सोएगा,
जाकर बिस्तर बिछा
अहा नया धर है
राम देख यह तेरा कमरा है!
और मेरा
ओ पगली
लड़कियां हवा धूप मिट्टी होती है
उनका कोई घर नहीं होता!'[३]

परिवार में लड़के को तमाम प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध है पढने, खाने, सोने या खेलने की स्वतंत्रता उनको है लेकिन लड़की उन तमाम सुविधाओं से वंचित है उसकी जिंदगी रसोई घर में खाना पकाने में बाहर झाड़ू लगाने में अभिशप्त है।

यह बदलाव की दुनिया है। भूमंडलीकरण के उपरांत तमाम क्षेत्रों में बदलाव आया है, लेकिन पुरुषों की तंग मानसिकता में, उनके सोच में कोई भी बदलाव नहीं आया है। शाम को घर में मालिक के आगमन से तमाम स्थिति बदलती है। बच्चे चुप हो जाते हैं। जल्दी ही वे खेल समाप्त कर पढ़ाई में मग्न हो जाते हैं पतिदेव को तृप्त करने की चेष्टा में दिनभर के श्रम से थकी हुई पत्नी भयभीत होकर मेमने की तरह खड़ी हो जाती है। पत्नी द्वारा घर में कोई भूल चूक हो जाने पर पत्नी का समस्त गुण दुर्गुण हो जाता है। उसे सहने के लिए पति देव तैयार नहीं होता है। आसानी से उसके मुंह से गेट आउट शब्द निकलती है उसे हर प्रकार की मारपीट घसीटा–घसीटी, गाली–गलौज सहन करनी पड़ती है।

अनामिका की कविताओं में प्रतिरोध की भावना का अतिरिक्त कोमल भावनाएं भी है। मां और दादी मां कवियत्री का प्रिय बिम्ब है। माँ ममतामयी है, कर्तव्यपारायण है, निस्वार्थ है। 'सत्रह वर्ष प्रतियोगी परीक्षार्थी' शीर्षक कविता में बेटा अपने माँ से कहने वाला एक दृश्य है :–

'माँ भूख लगी है।
इस सनातन वाक्य में
एक स्प्रिंग है लगा
कितनी भी हो आलसी मां

वह उठ बैठती हैं
और फिर कनस्तर खडक्के हैं।'[४]

बच्चों की भूख, बीमारी ये सब बातें माँ के तनाव को बढ़ाने वाली समस्यायें हैं। भूख शब्द सुनते ही माँ तमाम आलस्य छोड़कर उठ खड़ी होती है और कनस्तर खडकते हैं।

वर्तमान युग के युवा पीढ़ी में मानवीय मूल्य कम हो रहा है भौगोलिकीकरण के इस युग में बुजुर्गों की स्थिति दयनीय होती जा रही है। नारी पर होने वाले धिक्कार वृद्धावस्था तक जारी है। दादी माँ पर सोचने पर भी कवियत्री की संवेदनाएं बढ़ती है 'वृद्धाएं धरती का नमक है' शीर्षक कविता की पंक्तियां है–

'जो घर में हो कोई वृद्धा
खाना ज्यादा अच्छा पक्का है
पर्दे पेटिकोट और पायजामें भी दर्जी और रफूगरों के
महताज नहीं रहते,
सजा–धजा रहता है घर का हर कमरा, बच्चे ज्यादा अच्छा पलते हैं,
उनकी नन्ही–मुन्नी उल्टियाँ संभालती
जागती हैं वे रात भर'।[५]

दादी माँ घर में तो बहुत ज्यादा काम उनके द्वारा संभालती है लेकिन वह निशब्द है, विनीत है, घरवाले नहीं जानती है कि उनके द्वारा इतना काम संभलती हैं। अपने अनुभव के सहारे काम चैन से करने में वे प्रवीण हैं। अपनी कमज़ोरियों के बावजूद कमरों का सजावट, अपने पोते पोतियों का पालन सब कुछ वे निश्चिंतता से करती हैं।

संक्षेप में अनामिका की स्त्री पक्ष कविताऐं स्त्री शाक्तीकरण में बड़ा सराहनीय कार्य कर रही हैं। नारियों के मन में अपने अधिकारों का अवबोध जगाने में तथा अपने कर्तव्यों को निभाने में ये कवितायें बड़ी भूमिका निभाती हैं। उनकी कविताओं का चीख नारी के अंतर दबी हुई पुरुष वर्चस्ववादी दबाब से उत्पन्न दीन रोदन है। ये कवितायें अपने समय की नब्ज़ पकड़ने में सफल हुई है। अनामिका की ये कवितायें निशब्दता की भाषा बोलने वालों का बुलन्द आवाज़ है। नारी मुक्ति की चेतना को ही नहीं वरन सपूर्ण समाज के रूपायन की कामना को ये कवितायेँ वाणी दे रही है।

सन्दर्भ :–

१. अनामिका की कविता 'स्त्रियाँ'।
२. अनामिका की कविता 'स्त्रियाँ'।
३. अनामिका की कविता 'बेजगह'।
४. अनामिका की कविता 'सत्रह वर्ष की प्रतियोगी परीक्षार्थी'।
५. अनामिका की कविता 'वृद्धायें पृथ्वी का नमक है'।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 241-243

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कठगुलाब उपन्यास में – नारी की विभिन्न छवियाँ

-KRISHNAPRIYA J K
RESEARCH SCHOLAR, DEPARTMENT OF HINDI
MAHATHMA GANDHI COLLEGE, (AFFILLITED TO UNIVERSITY OF KERALA), THIRUVANANTHAPURAM

मृदुला गर्ग साठोत्तरी हिंदी लेखिकाओं में बोल्ड करार लेखिका है। हिंदी उपन्यास सहित्य में मृदुला जी का अपना एक गरिमा पूर्ण स्थान प्राप्त है। 'चित्तकोबरा', 'अनित्य', 'मैं और मैं', 'वंशज' और 'कठगुलाब' जैसे उपन्यासों के माध्यम से समाज के सारे विषमताओं को विशेषकर नारी को केंद्र में रखकर प्रस्तुत किया है। मृदुला जी अपनी साहित्य में स्त्री को स्वयं की पहचान करने का संदेश दिया है।

'कठगुलाब' मृदुला जी की काफी चर्चित उपन्यास है। पश्चिमी फेमिनिजम का प्रभाव अधिक होने के कारण यह 'नारीवादी' उपन्यास कहा गया है। पुरुष प्रधान समाज में नारी के लिए शब्द उठाने के लिए कोई नहीं है। नारी समस्याओं को लेकर आवाज़ उठाने के उद्देश्य से बीसवीं शताब्दी तक आते ही नारीवाद ने उग्र रूप धारण किया। 'कठगुलाब' उपन्यास नारी के दमन, शोषण और संघर्ष की गाथा है। चाहे वह नारी भारत की हो या विदेश की, कभी उसका आर्थिक और शारीरिक शोषण होता रहा तो कभी बौद्धिक और मानसिक। नारी सदियों से इस शोषण को मूक भाव से सहती आई है। आज की नारी भी इस दमन और शोषण के चक्र में पीसी जा रही है। पर आज कुछ नारी संगठन आगे बढ़कर नारी को शक्ति प्रधान कर उसे संगठित और एकजुट करके पुरुष की दमनशाही दृष्टि के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश कर रहे हैं।

'कठगुलाब' उपन्यास में पांच खंड़ है– स्मिता, मारियान, नर्मदा, असिमा और विपिन। प्रस्तुत उपन्यास की नारियां ही कठगुलाब का प्रतीक है। पूरा कथानक तिरस्कृत नारियों की मनोव्यथा पर लिखा गया है। जो अपनी – अपनी अस्तित्व को कायम रखने के लिए लडती रहती है। लेखिका कहती– 'कठगुलाब' उपन्यास में पांच वाचक है, जो अपनी–अपनी कहानी कहते हैं। लेकिन जीवन में वे सब कहीं न कहीं एक दूसरे से जुड़े हैं। इसलिए उनकी कहानी अलग होते हुए भी दुख एक जैसे है। इसलिए उनकी कहानी तब तक पूरी नहीं हो सकती, जब तक कथानक पूरा न हो जाए।'

उपन्यास का प्रथम खंड है 'स्मिता' 'लेखिका स्मिता' के माध्यम से यह कहना चाहती है कि बलात्कृत नारी को अपराध बोध से ग्रस्त होने की ज़रुरत नहीं है। केवल समाज का नजरिया बदलने से कुछ नहीं होगा जब स्त्री जब तक स्वयं को अपराधी मानना ना छोड़ेंगे तब तक वह अपनी बर्बाद जिंदगी से उबार नहीं पाएगी। इसलिए अपने उपन्यास में लेखिका ने स्त्री पात्रों से अपराध बोध से मुक्त होने की सलाह देती है।

उसका पूरा नाम स्मिता कश्यप था। मां की मृत्यु के बाद पिता के साथ दिल्ली आ गई। बीएससी करते समय पिता भी चल बसे और अभी से अपनी बड़ी बहन के यहां रहना पड़ रहा है। इसका जीजा अत्यंत लालची एवं गंदी हरकतें करने वाला था। अब स्मिता बड़ी मुश्किल से सब सहन करती थी क्योंकि उसकी मजबूरी थी

एक दिन तो उसने स्मिता का पशुपत बलात्कार किया। स्मिता की आंखों पर चश्मा न होने के कारण इस नराधमन को ठीक से पहचान नहीं पाई। फिर भी उसे जीजा का ही यह कृत्य लग रहा था। इस हादसे के बाद वह घर छोड़कर दूसरे शहर में आकर आगे की पढ़ाई करती है। बड़ी कठिनाई में अपना जीवन निकालती है और दिन–रात जीजा से बदला लेने को सोचती है और सोचते–सोचते मनोरुगण सी बन जाती है। अंदरमुखी स्वभाव, अकेलापन का गम इन सब से वह स्वयं से बातें करती हुई विक्षिप्त सी हो जाती है। जब उसे नौकरी मिल जाती है तब नौकरी के सिलसिले में वह अमेरिका चली जाती है और इलाज के लिए वहां पर जिम से मिलती है। और इलाज के दौरान स्मिता और जिम शादी कर लेते हैं। शादी के कुछ ही दिन बाद जिम ने स्मिता से ऐसा ही व्यवहार किया जैसे उसके जीजा ने किया था इससे वह एक दम घबरा जाती है और उसे लगने लगा की जिम आदमी नहीं बल्कि शैतान ही है। उसे घरेलु हिंसा का सामना भी करना पड़ता है। घरेलु हिंसा इतना बढ़ जाता है कि उसे अपने अजन्मे बच्चे को भी खोना पड़ा, इसका नतीजा यह हुआ कि वह जीवन भर फिर कभी माँ नहीं बन पायी। वह जिम से भागकर एब्युस्ड बुमन रां सोसाइटी जाती है और वहां से अपनी नयी ज़िन्दगी की शुरुआत करती है।

'मारियान' समाज शास्त्र की लेक्चर है। वह प्रतिभाशाली छात्र थी। बचपन में सगी मां और सौतेले पिता और भाई के साथ रही। अपनी माँ से उसे कभी प्यार नहीं मिला लेकिन सौतेला पिता और उनके बेटे ने उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। उसकी शादी इरविंग के साथ हुई। शादी के कुछ दिनों तक सब कुछ ठीक था पर बाद में बात बिगड़ी। मारियन के लिखी हुई पुस्तक को पति ने खुद के नाम पर निकला और सम्मान भी प्राप्त किया। इस बात से मारियन और उसके पति के बीच तनाव बढ़ गया और सब कुछ खोकर वह पति से अलग हुई। लेकिन वह हार माननेवालों में से नहीं था, उसने अपने आप को संभाला और बाद में एक प्रतिष्टित लेखक बनी। स्मिता और उसकी अच्छी मित्रता थी और सालों बाद दोनों ने मिलकर एक संस्था भी खोली थीं जिससे दूसरी नारियों को मदद मिल सके।

'नर्मदा' एक देहाती लड़की है। मां पिताजी का साया बचपन से ही उठ जाता है और बड़ी मजबूरी से बड़ी बहन की घर में जीती है। उसके यहां तो जीजा ने हद ही कर दी। इसे अपनी दूसरी बीवी ही बना डाला मगर बड़ी हिम्मत से नर्मदा उससे पीछे छोड़ आती है और दर्जीन बी के साथ रहती है और काम करके अपनी ज़िन्दगी के सफ़र को मज़बूत बनाती है।

'असीमा' को ना सिर्फ एक स्त्री के रूप में बल्कि पूरी उपन्यास के जान के रूप में चित्रित किया गया है। ऐसा लगता है असीमा एक पूरा अभियान है। डॉक्टर सुनीता जैन का कहना है 'यह उपन्यास नारी मुक्ति में फेमिनिस्ट निष्कर्षों के विरोध में एक सजग मोर्चा है जबकि लेखिका फेमिनिज्म का अलग–अलग आती है मैं समझती हूं कि फेमिनिज्म का मतलब नारी मुक्ति नहीं सोच सकती है अगर स्त्री मौजूदा राजनैतिक आर्थिक नीति व इतिहास के उन मापदंडों के अनुसार शक्ति है जो उसने खुद ने इजाद किए हैं तो वह समझता है बल्कि कारागार फेमिनिस्ट'। वह है जो सड़क पर अपना कचरा तो सही नहीं बल्कि दूसरों का फैन का कचरा साफ करवा लेना का मदद करती है असीमा दर्जन बी की लड़की है मगर बेटे की तरह है। वह तो एक दम झांसी की रानी जैसी मरदानी है। जब उसे पता चलता है कि उसके पिता ने उन्हें छोड़कर दूसरा घर बना लिया है तो उनसे सारा रिश्ता नाता तोड़ देती है। अपने आवारा भाई को भी मारकर बाहर कर लेती है। उसने करते

सीखकर दूसरी औरों को भी सिखाना शुरू किया और अपनी माँ की मृत्यु होने पर बेटा बनकर आग भी देती है।

उपन्यास में विपिन ही ऐसा पुरुष पात्र है जो नारी सुलभ भावनाओं का धनी है। स्वयं प्रकाश जी लिखते हैं 'स्त्रियों की स्वतंत्रता अस्मिता और आत्म सम्मान का एक बड़ा शत्रु है पति एक ही खलनायक पुरुष है पति एक ही उदित व राक्षस आदमी है या पूंजीवाद सामंतवाद धर्म नबासन अवस्था ना राजनीति केवल परी केवल पुरुष विभिन्न में इन सभी लक्षणों का अभाव देखा है' बल्कि वह तो स्वयं चाहता है कि विवाह करके अगर दोनों में से एक ही आए बस्ती में बचा हुआ एक अत्यंत दुःखी हो गए तो ऐसे विवाह को कोई न करें जैसे कि उसने उसकी मां की असहनीय दुःख उसके बाप की मृत्यु के बाद देखे थे। इसलिए वह संवेदनशील प्रेमी बनकर रहता है। वह नीरजा से असीम प्यार करता है। वह चाहता है कि नीरजा से उसे बच्चा हो, पर नीरजा माँ नहीं बन सकती थी, फिर भी उसका प्यार कम नहीं हो जाता। जब निरजा दूसरी शादी करती है तब विपिन गोधड को अपनी कर्मभूमि मानकर वहां चला जाता है।

मृदुला गर्ग की उपन्यासों में उनकी प्रगतिशील मानववादी दृष्टि का परिचय मिलता है। मृदुला जी ने नारी के अस्तित्व को स्वतंत्र रूप में स्वीकार किया है। कठगुलाब उपन्यास के पात्र–स्मिता, मारियान, नर्मदा, असिमा आदि विभिन्न तबके के है, पर एक दूसरे से किसी न किसी वजह से जुड़ी हुई है। इन पात्रों के ज़रिए, वे नारी की कष्टताओं को ही नहीं बल्कि उनके जागरण को भी दर्शाया है।

उपन्यास के सभी नारी पात्र सफलता प्राप्त है। एक तरफ नहीं तो दूसरी तरफ से सफल है। मन में स्वतंत्रता की चाह होने के कारण उन्हें सफलता प्राप्त हुई है। उपन्यास का पहला पात्र है– स्मिता। पहले स्मिता एक असफल नारी प्रतित होती है। जीजा के ज़रिए बलात्कार के शिकार होने के कारण वह अपने आप को नकारा समझती है। बाद में अमेरिका में मनोचिकित्सक जिम जारविस के साथ भी उसका जीवन खुशमद नहीं रहा। उससे गर्भपात होने के कारण वह उसे छोड़ देती है। एब्युस्ट वुमन राँ सोसाइटी में शरण लेती है। बाद में भारत लौट आती तो वह समाज सुधारक बनकर गोधड गांव में जाती है।

दूसरा पात्र 'मारियान' है। वह भी अमेरिका में है। वह पहले लेखक इविंग से शादी कर लेते हैं। इविंग से धोखा खाने के बाद, वह गोरी शंकर से शादी करती है। उसका एकमात्र लक्ष्य 'एक बच्चा' था। लेकिन वह उस पर असफल रह जाती है। बाद में राँ जाकर, एक सफल लेखिका बन जाती है। तीसरा 'असिमा'– वह एक मर्ददार औरत है, उसे पूरे उपन्यास की जान मानती है। वह पुरुष विरोधी होकर, समाज कई रुढ़िवादी परंपराओं को तोड़कर, सफलता प्राप्त करती है। वह स्मिता के साथ मिलकर गोधड में एक स्कूल की आरंभ करती है। चौथा पात्र नर्मदा भी अपने पति (जीजा) को छोड़कर सिलाई का काम करके जीवन बिताती है।

'कठगुलाब' उपन्यास में मृदुला जी समाज के विभिन्न तबके के नारी पात्रों को चित्रित किया है। मृदुला जी की नारियाँ भी उनकी तरह बोल्ड है, क्योंकि इतने अधिक संघर्षों के सामने करने पर भी एक भी औरत आत्महत्या जैसी हरकतें नहीं करती। दूसरी औरतों को भी जीने की और अपने हक को पहचानकर आगे बढ़ाने की हिम्मत भी देती है।

संदर्भ :–

1. मृदुला गर्ग के साहित्य में चित्रित समाज– डॉ. किरणबाला जाजू, अमन प्रकाशन।

Email:- jkkrishnapriya7939@gmail.com, Contact number :- 6238350260

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021–वेबिनार विशेषांक Page No. : 244-248
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

केदारनाथ अग्रवाल का काव्य और किसान जीवन

–पप्पू यादव, शोधार्थी
–डॉ. मनप्रीत कौर, शोध निर्देशिका
गुरु नानक कालेज आफ आर्ट्स, साइंस एंड कामर्स, जी.टी.बी.नगर, सायन मुंबई, मुंबई विश्वविद्यालय।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता विश्व में अप्रतिम है। दुनिया की गौरवशाली संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति सिरमौर है और अतीत की इस अद्वितीय संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने वाले एवं इसके सबसे बड़े संवाहक इस देश के किसान हैं। एक तरह से यहाँ का कृषक वर्ग ही इस संस्कृति और सभ्यता का सच्चा संरक्षक है। एक ऐसे देश में जहां की आधे से ज्यादा आबादी का गुजर–बसर कृषि कार्य से होता है और जो कृषि व्यवसाय देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हो, वही कृषि कार्य करने वाला किसान सदियों से न केवल अपेक्षित हुआ है बल्कि उसे उसके अधिकारों से भी वंचित रखा गया। शीत, गरमी और बरखा की विपरीत परिस्थिति से जूझते हुए जो किसान न केवल अपने लिए अन्न उपजाता है अपितु सम्पूर्ण देश के लिए खाद्यान्न उपलब्ध करता है कितनी पीड़ादायक बात है कि वही किसान अपनी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता। आज भी भारतीय समाज में वर्गगत भिन्नता पूर्ववत बनी हुई है। किसान आज भी उपेक्षित है और निम्न आर्थिक सामाजिक जीवन जीने को विवश भी है। वह आज भी एक हाशिये पर रख दिया गया है जहाँ उसे तरह–तरह की यातनाएं सहते हुए आत्महत्या के लिए विवश किया जाता है। व्यावसायिक जगत में बढ़ते अवसरों से आज किसानों की प्रतिष्ठा को और कमतर आंका जाने लगा है जिससे आज की युवा पीढी कार्पोरेट जगत की तरफ ज्यादा आकर्षित होती जा रही है नतीजन भारत देश का भविष्य युवा वर्ग इस सांस्कृतिक विरासत कृषि कर्म से दूर होता चला जा रहा है।

साहित्य समाज का आईना है जिसमें समाज में घटित सामाजिक, धार्मिक, राजनितिक और आर्थिक क्रियाएं प्रतिबिंबित होती हैं। जिस साहित्य में समाज का जितना अधिक सम्यक व यथार्थ वर्णन होता है वह साहित्य उतना ही प्रगतिशील और वह समाज उतना ही जागरूक होता है। इस कारण एक साहित्यकार का यह परम कर्तव्य बनता है कि वह समाज के यथार्थ को अपनी रचनाओं में जगह दे, समाज की विसंगतियों को चित्रित करे एवं उपजी समस्यायों के कारणों के साथ–साथ उनके निदानों का भी मार्ग प्रशस्त करे। हिन्दी साहित्य हमेशा से ही देश के किसानों को साथ लेकर चला है। मध्यकालीन काव्य में महाकवि तुलसीदास कलियुग का आभास कर लेते हैं –

"खेती न किसान को,भिखारी को न भीख बलि
एबनिक को बनिज,न चाकर को चाकरी।"[१]

अचरज की बात है कि इतने बड़े कवि ने उस युग में ही कलियुग की स्थितियों की कल्पना कर ली थी जो आज अक्षरशः सत्य साबित हो रही है। वास्तव में जो किसान सम्पूर्ण देश के लिए अन्न उपलब्ध करवाता

है वही किसान अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी अभावग्रस्त तरीके से जीने के लिए बेबस है। हिन्दी कवियों ने हर समय न केवल इन शोषित, पीड़ित किसानों के दुःख दर्द को समझा बल्कि अपनी रचनाओं में उन्हें यथोचित स्थान भी दिया। भारतेंदु युग में महत्वपूर्ण कवियों भारतेंदु, बालमुकुन्द गुप्त, बालकृष्ण भट्ट और प्रेमधन जैसे समाज चिंतकों ने किसानों के दर्द को आवाज दी एवं उनके निराकरण न करने पर सत्तारूढ़ सरकारों पर क्षोभ व्यक्त किया। द्विवेदी युग में युग प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं –

"तुम्ही अन्नदाता भारत के, सचमुच बैलराज महराज!
बिना तुम्हारे हो जाते हम दाना–दाना को मोहताज।"[२]

इसी युग में राष्ट्रकवि मथिलीशरण गुप्त जी भी किसानों के लिए आवाज उठाते दीखते हैं और 'किसान' एवं भारत–भारती जैसी प्रसिद्ध कृतियों की रचना करते हैं। द्विवेदी युग के एक और महत्वपूर्ण कवि कि चर्चा यहाँ जरुरी है –गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी की जो इस युग में किसानों के करुणामय जीवन से द्रवित होते हैं। 'सनेही' जी 'दुखिया किसान', कृषक–क्रंदन, जैसी महत्वपूर्ण कवितायें लिखकर किसानों के दुःख–दर्द को बयाँ करते हैं। छायावाद युग में कविवर निराला भी किसान और शोषितों के उद्धार की बात करते हुए उन्हें क्रान्ति का सन्देश देते हैं, उन्होंने 'बादल राग', 'वह तोड़ती पत्थर', 'दीन', विजय और 'उत्साह' तथा 'पाचक' जैसी कविताओं के माध्यम से समाज के हाशिये पर रखे किसानों की स्थिति पर न केवल चिंता व्यक्त करते हैं बल्कि उन्हें अपने हक के लिए लड़ने के लिए प्रेरित करते हैं। सुमित्रानंदन पन्त भी 'युगांत' 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' जैसे काव्य–संकलनों से किसानों के दुःख–दर्द को मानवीय संवेदनाओं के साथ चित्रित करते हैं। इन कविताओं में किसानों की दयनीय अवस्था का बड़ा ही मार्मिक वर्णन है। आगे के कवियों ने भी किसानों के प्रति सहानुभूति रखते हुए उन पर कवितायें लिखीं और ग्राम्य–समाज के उत्थान की बात की। प्रगतिवादी कवियों में शिवमंगल सिंह 'सुमन', नागार्जुन, त्रिलोचन शाष्त्री जैसे कवि भी किसानों के उत्थान लिए कई महत्वपूर्ण रचनाएं लिखते हैं, इस प्रगतिशील चेतना लिए कवियों में सर्वप्रमुख और ऊंचे स्थान के अधिकारी हैं : केदारनाथ अग्रवाल।

केदारनाथ अग्रवाल का रचना संसार व्यापक है। केदारनाथ जी समूचे भारतीय किसान समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे एक जनवादी कवि हैं और जनजीवन से जुड़ी छोटी–छोटी चीजों पर पैनी नजर रखते हैं। किसानों पर उनका अटूट विश्वास है। देश के निर्माण में किसानों के योगदान को वे बखूबी समझते हैं इसलिए वे किसानों के प्रति आजीवन सम्बद्ध रहे। 'किसान से' कविता में वे लिखते हैं–

जल्दी–जल्दी हांक किसनवा
बैलों को हुरियाये जा।
युग की पैनी लौह कुसी को
'भूईं' में खूब गडाये जा।।
पुरखों की हड्डी के हल को,
आगे आज बढाए जा।
वैभव को सूने खेतों की
छाती चीर दिखाए जा।। 'किसान से [३]

किसान दिन–रात की जी तोड़ मेहनत करके, तपती दुपहरी में पसीना बहाकर अथक परिश्रम के बाद

भूमि को उर्वर बनाते हैं और अपने लिए ही नहीं अपितु देश के लिए खाद्यान्न उपजाते हैं। इसीलिए केदारनाथ अग्रवाल को लगता है कि इस धरती पर सबसे ज्यादा हक किसान का है। 'धरती' कविता में वे अपने इसी मंतव्य का समर्थन करते हैं–

"यह धरती है उस किसान की
"जो बैलों के कन्धों पर
बरसात घाम में,
जुआ भाग्य का रख देता है,
खून चाटती वायु में।
नहीं कृष्ण की
नहीं राम की
नहीं भीम नकुल सहदेव की
नहीं पार्थ की"..। धरती [४]

किसान का धरती से अगाध प्रेम रहता है वह निः स्वार्थ भाव से देश की धरती को हरा–भरा बनाता है, अन्न उत्पन्न करता है पर भारत देश की बिडम्बना देखिए कि जिस किसान से सबका पेट भरता है, वही किसान समाज में कमतर आंका जाता है, उसके परिश्रम की महत्ता पर कम विचार किया जाता है। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में समाज से उपेक्षित किसान के प्रति पूरा सम्मान है। धरती पुत्र किसान को समाज के द्वारा ठगे जाने पर भी तटस्थ भाव से किसानों के समर्पण भाव को अपनी कविताओं में जगह देते हैं :–

"मैं तुम पर कविता लिखता हूँ
कवियों में तुमको लेकर आगे बढ़ता हूँ
असली भारत पुत्र तुम्ही हो
मैं कहता हूँ।" 'किसान स्तवन' [५]

कवि केदार की कविताओं का बारीकी से अध्ययन करने पर यह साफ़ परिलक्षित होता है कि उनमें किसान जीवन के प्रति अगाध प्रेम है, कवि को लहलहाते खेत बहुत आनन्दित करते हैं। कवि अक्सर समय निकालकर खेतों के प्राकृतिक सोंदर्य को देखने पहुँच जाया करता है पर इन खेतों के स्वामी किसान की साधनहीनता एवं बेबसी से कवि खिन्न है, वह किसानों के शोषण से उन्हें मुक्त कराने के लिए पूर्णतया प्रतिबद्ध है। केदारनाथ जीवन भर किसानों, शोषितों के पक्षधर रहे और उनके अधिकारों के लिए लड़ते रहे। 'अशोक त्रिपाठी' कवि के बारे में लिखते हैं–"केदार धरती के कवि हैं –खेत खलिहान, कारखाने और कचहरी के कवि हैं।

इन सबके दुःख, दर्द, संघर्ष और हर्ष के कवि हैं। वे पीड़ित और शोषित मनुष्य के पक्षधर हैं। मनुष्य बनना और बनाना ही उनके जीवन की तथा कवि कर्म की सबसे बड़ी साध और साधना थी।"[६] सही मायनों में केदारनाथ जी की रचनाओं में ग्रामीण परिवेश विद्यमान है। उनकी रचना का केंद्र बिंदु सर्वहारा किसान मजदूर वर्ग है वह उन्हें क्रान्ति की सलाह देता है और अपने हक को लेने के लिये प्रेरित करता रहता है। देश का अन्नदाता किसान जब जेठ की तपती दोपहर में पसीने से तर–बतर हल चलाता है, जी तोड़ मेहनत करता है पर उसका ही घर अन्न से खाली रह जाता है तो किसान जीवन की यह विद्रूपता केदार जी को व्यथित कर

देती है। किसान विरासत में क्या छोड़ता है अपनी संतान को, कवि कितना मार्मिक वर्णन करता है–

"जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने :
घर का मलबा, टूटी खटिया,
कुछ हाथ भूमि दृवह भी परती।
चमरौधे जूते का तल्ला,
छोटी, टूटी बुढ़िया औगी,
दरकी गोरसी बहता हुक्का,
लोहे की पत्ती का चिमटा।" पैतृक संपत्ति[७]

कितनी करुणा छुपी है केदार जी की इन पंक्तियों में कि एक किसान की ज़िन्दगी किन–किन अभावों में गुजरती है, वो किसान जो पूरे देश का भरण–पोषण करता है उसी की ज़िन्दगी में रोटी कपड़ा और मकान कितनी मशक्कत के बाद भी मयस्सर नही होता। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में यह ग्रामीण यथार्थ पूरी सजीवता से चित्रित होता है जिसमें गरीब कृषकों, असहाय मजदूरों का जीवन दिखाई देता है। इसीलिए कवि उनमें ऊर्जा और उत्साह भरता है। 'किसानों का गाना' कविता में वे लिखते हैं –

"हमारे हाथ में हल है,
हमारे हाथ में बल है ,
कि हम बंजर को तोड़ेंगे–
बिना तोड़े न छोड़ेंगे।
पसीना खूब सीचेंगे,
रुधिर सारा उलीचेंगे,
कि हम मिट्टी भिगोएँगे–
छने आटे–सी माड़ेंगे।" किसानों का गाना[८]

कवि केदारनाथ अग्रवाल की जिन कविताओं का सम्बन्ध किसान जीवन से है उन सबमें कृषक–चेतना और संवेदना का अंकन हुआ है, उनमें किसानों के प्रति सहानुभूति है, उनके उत्थान की बात है। कवि केदार का व्यक्तिगत और साहित्यिक जीवन निडरतापूर्ण रहा है। सीधे–साधे किसानों का शोषण करने वाले पूंजीपतियों की क्रूरता और अत्याचार की भर्त्सना कवि कड़े शब्दों में करता है, यहाँ तक कि वो शोषकों को जनता का मांस नोचने वाला गिद्ध तक कह डालते हैं। देश की तत्कालीन विषमतापूर्ण अवस्था का ठीकरा कवि मिल–मालिकों, सूदखोरों ,और पूंजीपतियों के माथे पर फोड़ता है। कवि केदार के रचना काव्य में किसान जीवन का समग्र वर्णन हुआ है। किसान की जीविका खेतों से चलती है और वे लहलहाते खेत कवि को मंत्रमुग्ध कर देते हैं। खेतों में झूमते हुए धान की उपमा से कवि जीते रहने की प्रेरणा देता है –" हम जियें न जियें दोस्त/तुम जिओ एक नौजवान की तरह/खेत में झूमे धान की तरह।"[९] वस्तुतः कवि श्रम के प्रति आस्थावान है इसीलिए कवि को किसान अत्यंत प्रिय है पर इसी श्रम समर्पित किसान की बदहाल जिंदगी से असंतुष्ट भी है।

केदारनाथ अग्रवाल का काव्य खेतों में उडती धूल, फसलों में कंधी करती हवाओं से निर्मित है। जीवन

की विषम कठोरता से जूझता कृषक कवि को बार–बार लिखने के लिए प्रेरित करता है।

कवि के अनुसार इस देश के किसान की बिडम्बना यह है कि उसे उसके श्रम के अनुपात में फल नहीं मिल पाता। मेहनतकश किसान के प्रति उनकी आस्था, निष्ठा और अनन्य अनुराग उन्हें जनकवि सिद्ध करता है। कवि न केवल बुंदेलखंड के किसानों की अपितु पूरे देश के किसानों की अटूट संघर्ष क्षमता को व्यक्त करता है और समाज में हाशिये पर रखे गये निम्न वर्ग के हितों की रक्षा के निमित्त खड़ा रहता है। केदारनाथ अग्रवाल जीवन–पर्यंत उसी सामान्य जन यानि कृषक वर्ग की भावनाओं, आकांक्षाओं एवं उनके संघर्ष को वाणी प्रदान करते रहे। केदार जी के कई साथी अपनी अलग राह निर्मित कर लिए पर यह जनकवि आजीवन एकनिष्ठ भाव से राष्ट्रनिर्माता किसान को अपनी रचनाओं में जगह देता रहा। कवि को पता है कि किसान की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा पाखण्ड, अन्धविश्वास, कर्मकांड और अतार्किक धारणाएं है इसीलिए कवि शोषित वर्ग को इनके प्रति अगाह करते हुए अपनी कविताओं के माध्यम से कर्म में रत रहने की प्रेरणा देता है तथा उनके कल्याण की बात करता है। कवि को पूर्ण विश्वास है कि देश की संस्कृति और सभ्यता का सच्चा संवाहक किसान है और इस नाते हिंदी साहित्य में ग्रामीण चेतना व लोक संवेदना को यथोचित स्थान मिलना ही चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

१. कवितावली, गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ट न. ११६

२. डॉ. रामविलास शर्मा, मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण –२००२, पृष्ठ संख्या–३०

३. केदारनाथ अग्रवाल, 'किसान से' कविता, केदारनाथ अग्रवाल संचयन, पृष्ठ संख्या –५३

४. केदारनाथ अग्रवाल, 'धरती' कविता, केदारनाथ अग्रवाल संचयन, पृष्ठ संख्या–३६, ३७

५. केदारनाथ अग्रवाल, 'किसान स्तवन' कविता, केदारनाथ अग्रवाल संचयन, पृष्ठ संख्या–२६१

६. डॉ. अशोक त्रिपाठी, कहे केदार खरी–खरी की भूमिका से, प्रथम संस्करण २००६, साहित्य भण्डार प्रकाशन, इलाहबाद, पृष्ठ संख्या–६

७. लेखक–शम्भुनाथ, लेख–क्रांन्ति में खिड़कियाँ, आलोचना त्रैमासिक पत्रिका, सम्पादन अरुण कमल, सहस्त्राब्दी, अंक–४२, जुलाई सितम्बर–२०११ पृष्ठ संख्या–२४

८. केदारनाथ अग्रवाल, 'किसानों का गाना' कविता, केदारनाथ अग्रवाल संचयन, पृष्ठ संख्या –२६

९. केदारनाथ अग्रवाल, हम जियें न जियें दोस्त, कविता, केदारनाथ अग्रवाल संचयन, पृष्ठ संख्या–६६

मो .9628668548

ई.मेल –pappuy983@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 249-252
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गाँव' में नारी की स्थिति

-श्रीमती रीता कुमारी देवरा
शोध छात्रा, रामनिरंजन झुनझुनवाला महाविद्यालय घाटकोपर, मुंबई।

सदियों से प्रताड़ित होती आई नारी को त्याग और ममता की मूर्ति माना जाता है। भारतीय समाज में स्त्री की छवि पुरूष के पीछे चलने वाली अबला की रही है। पुरूष प्रधान समाज होने के कारण स्त्री को जन्म से ही पुरूष की दासी बनकर जीने का पाठ पढ़ाया जाता है। बचपन में पिता और विवाह के बाद पति की आज्ञा का पालन करना ही उसका कर्तव्य माना जाता है। प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री को पढ़ाई–लिखाई से दूर रहकर केवल घर का कामकाज सिखाया जाता था। घर की मान–मर्यादा की रक्षा करना और चुपचाप सब कुछ सहते रहना ही आदर्श नारी की पहचान मानी जाती थी।

डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गाँव' में नारी के जीवन की विविध झाँकियाँ देखने को मिलती है। वह पुत्री, बहन, पत्नी, माँ, चाची, दादी आदि सभी रिश्तों को बखूबी निभाती नज़र आती है। उपन्यास में दर्शाया गया है कि समाज में पुरूषों का वर्चस्व होने के कारण नारी को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यह स्थिति किसी एक गाँव या प्रांत की न होकर लगभग सभी भारतीय स्त्रियों की है। राही उपन्यास में प्रत्यक्षदर्शी के रूप में निरंतर मौजूद रहते हैं। गंगौली की मुस्लिम स्त्रियों के माध्यम से भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं कि वास्तव में नारी की अपनी कोई पहचान नहीं होती। वह सदैव पिता, पति और पुत्र के नाम से पहचानी जाती है। अपना सम्पूर्ण जीवन परिवार के प्रति समर्पित करने वाली स्त्री आजीवन अपना अस्तित्व तलाशती रहती है। जैसा कि उपन्यास में दृष्टव्य है–

''बेनाम होना तो बहुओं की तकदीर है। फ़र्क़ बस इतना हो जाता है कि वह अच्छे घरानों में 'बो' की ज़िल्लत से बच जाती है, वह या तो बहू कही जाती है या दुल्हन या दुलहिन।''[1]

लेखक ने तत्कालीन समाज में शिया सैय्यदों द्वारा नारी को भोग–विलास का साधन समझे जाने का सशक्त चित्रण किया है। गंगौली में जिसके पास भरपेट खाने के लिए भी नहीं है, वह सय्यद भी एक से अधिक स्त्रियाँ रखने का शौक पूरा कर लेता है। समाज में छुआछूत का दिखावा करने वाले उच्च जाति के पुरूषों को निम्न जाति की स्त्रियों के साथ यौनाचार से परहेज़ नहीं है। नारी की दयनीय स्थिति को स्पष्ट करते हुए लेखक ने स्पष्ट किया है कि ऐसी स्त्रियों की समाज में कोई इज़्ज़त नहीं करता है। उसके बच्चे भी नाजायज़ माने जाते हैं, जबकि पुरूष की शान में कोई कमी नहीं आती। नारी की मार्मिक स्थिति को उपन्यास में इस प्रकार दर्शाया गया है–

''दूसरा ब्याह कर लेना या ऐसी ऐरी–गैरी औरत को घर में डाल लेना बुरा नहीं समझा जाता था। शायद

ही मियाँ लोगों का कोई ऐसा खानदान हो जिसमें कलमी लड़के और लड़कियाँ न हों।''[2]

भारतीय समाज में अनेक बदलावों के बावजूद नारी की स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार नहीं हो पाया है। सदियों से पुरूष प्रधान समाज की मानसिकता जल्दी बदल पाना आसान नहीं है। वर्तमान समय में भी बेमेल विवाहों का होना इस बात की प्रत्यक्ष गवाही देता है कि समाज में आज भी पुरूषों का वर्चस्व है। किसी भी युग का साहित्य स्त्री की पीड़ा से अछूता नहीं है। मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में भी बेमेल विवाह की समस्या देखने को मिलती है। 'सेवा सदन' उपन्यास में सुमन जैसी सुन्दर स्त्री का विवाह प्रौढ़ गजाधर के साथ हो जाता है। 'निर्मला' उपन्यास में निर्मला का विवाह बूढ़े तोताराम से कर दिया जाता है। स्त्री की इच्छा–अनिच्छा को समाज में कोई जानना नहीं चाहता, उसे तो गाय के समान किसी भी खूँटे से बाँध दिया जाता है। वास्तव में बेमैल विवाह की समस्या पूँजीवादी समाज व्यवस्था का प्रमुख दोष है जिसमें पुरूष स्त्री को अपनी वैयक्तिक संपत्ति समझता है। नारी को लेकर पुरूष की परंपरावादी दृष्टि में वांछनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। भारत में धार्मिक संगठनों ने भी स्त्री को पुरूष से हीन समझा है जिसके कारण समाज में उसे उचित आदर–सम्मान प्राप्त नहीं हो पाया है। जैसा कि डॉ. चन्द्रकान्त लिखते हैं–

''भारत में अनमेल विवाह की समस्या के विशेष गहन बनने का कारण यह भी था कि नारी की ओर उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से देखने में अनेक धार्मिक संप्रदायों ने भी योग दिया।''[3]

राही मासूम रज़ा ने उपन्यास में बूढ़े मौलवी बेदार की तेरह–चौदह वर्ष का बछनिया से विवाह की इच्छा को उजागर किया है। बछनिया से विवाह करने के लिए मौलवी बेदार इतने उतावले हो जाते हैं कि उसकी निम्न जाति और कम उम्र को भी अनदेखा कर देते हैं। यद्यपि बछनिया के गर्भवती हो जाने और अपने प्रेमी सरिफ़वा के साथ भाग जाने के कारण यह विवाह नहीं हो पाता। यह बेमेल विवाह के प्रति लेखक के तीव्र विरोध को प्रकट करता है। वस्तुतः समाज में गरीबी और दहेज रूपी दानव नारी के जीवन को दुखमय बनाने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। 'आधा गाँव' उपन्यास में बदरून की शादी उसकी सहमति के बिना ही अपाहिज मुईनुद्दीन से कर दी जाती है। बदरून के सारे स्वप्न क्षण भर में चूर–चूर हो जाते हैं। शादी की पहली रात को वह उदास होकर सोचने लगती है–

''मुमकिन है कि माँझे में खास इसलिए लड़कियों से फाका करवाया जाता हो कि अगर नौशा एक टाँग का हो या बहुत बदसूरत हो, तो दुल्हन एहतजाज़ न कर सके।''[4]

'आधा गाँव' उपन्यास में देखने को मिलता है कि पुरूष स्त्री को अपनी दासी समझता है। उपन्यास के पात्र जावेद मियाँ ने अपनी वासना पूर्ति के लिए बिना शादी किए ही रहमान बो को घर में रखा हुआ है। रहमान–बो का नाजायज़ कहा जाने वाला बेटा कमलुद्दीन और जवाद मियाँ दोनों ही उसकी इज़्ज़त नहीं करते। कमलुद्दीन कभी अपने माँ से नफरत करता है तो कभी उस पर तरस खाता है, जबकि जवाद मियाँ रहमान–बो को अपने पैर की जूती समझते हैं। दासी का जीवन व्यतीत करने वाली रहमान–बो को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है। यदि वह कुछ कहने का प्रयास करती है तो उसे प्रताड़ित और अपमानित किया जाता है। नारी की लाचारी और बेबसी को उपन्यास में इस प्रकार दर्शाया गया है–

''जवाद मियाँ ने लात मारी। वह पलँग से लुढ़क गयी। जवाद मियाँ उसे गालियाँ देने लगे।''[5]

यद्यपि नारी की स्थिति को सुधारने के लिए कई कानून बनाए जा चुके हैं परंतु केवल कानून बनाने से

स्त्री का उद्धार संभव नहीं है। जब तक समाज का नज़रिया नहीं बदलेगा स्त्री असहाय और लाचार मानी जाती रहेगी। यदि वह कोई क्रांतिकारी कदम उठाना चाहती है तो समाज उसके रास्ते में रूकावटें उत्पन्न कर देता है। अन्याय के खिलाफ बगावत करने का अधिकार स्त्री को नहीं दिया जाता। मर्यादा की बेड़ियाँ उसके पैरों में डाल दी जाती हैं और उसे पति की प्रताड़नाओं को झेलते हुए उसी के साथ रहने के लिए मजबूर कर दिया जाता है। यशपाल के 'देशद्रोही' उपन्यास में चन्दा अपने पति राजेश के द्वारा अपमानित किए जाने पर खन्ना के साथ रहना चाहती है, तब खन्ना स्त्री की बेबसी से उसका परिचय कराते हुए कहता है–

''तुमने अपने आपको बलिदान कर सब सहा, अब उसके प्रति विद्रोह भी करो तो क्या कर सकती हो, जब तक जीवन के संघर्ष में अपने पैरों पर खड़े होने का साधन तुम्हारे पास न हो।''[6]

भारतीय समाज की विडंबना यह है कि एक नारी ही दूसरी नारी की पीड़ा को समझना नहीं चाहती। पुरूषों के अहंकार को बढ़ावा देते हुए सास बहू को प्रताड़ित करती रहती है। गलती चाहे बेटे की हो परंतु वह बहू को ही दोष देने लगती है। ग्रामीण समाज में बेटी और बेटे में अत्यधिक भेदभाव देखने को मिलता है। स्त्री को ही बेटी पैदा करने के लिए उलाहनें दिए जाते हैं, जबकि विज्ञान इस बात को नकारता है। यदि एक के बाद एक कई बेटियाँ हो जाएँ और बेटे की चाहत अधूरी रह जाए तो स्त्री का जीना मुश्किल कर दिया जाता है। सकीना को भी कई बेटियाँ पैदा करने के कारण अपनी सास रव्वन से हर समय ताने सुनने को मिलते रहते थे। अब जबकि उसकी बड़ी बेटी सलमा का पति तन्नू उसे छोड़कर पाकिस्तान चला गया है तो सकीना का गुस्सा बात–बात पर सलमा पर उतरने लगता है। सलमा जैसी स्त्रियाँ पति के बिछोह और परिवार के आक्रोश की दोहरी मार झेलती रहती हैं और उनका अस्तित्व पिंघलता रहता है। सलमा के अन्तर्द्वन्द को उपन्यास में इस प्रकार दर्शाया गया है

''सकीना सल्लो पर बरस पड़ी। सल्लो हक्का–बक्का अपनी माँ का मुँह देखती रह गयी। उसकी समझ में यह बात नहीं आयी कि शद्दों के अब्बा, जो पाकिस्तान चले गये, तो ओमें हमरा कौन कसूर है?''[7]

आज की नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही है। वह पुरानी दकियानूसी रूढ़ियों से आजाद होना चाहती है। घर और बाहर दोनों में तालमेल बिठाकर वह पुरूष के कंधे से कंधा मिलाकर चलना चाहती है। परंतु वर्तमान समय में भी पुरूष नारी के स्वच्छंद आचरण को सहन नहीं कर पाता है। भारतीय पति स्वयं सभी बंधनों से आजाद रहना चाहता है, परंतु अपनी पत्नी का आधुनिक होना उसे अखरने लगता है। आज की शिक्षित नारी समाज का दोगला व्यवहार सहन करने के पक्ष में नहीं है। वह भी खुली हवा में साँस लेना चाहती है। यदि पुरूष अनैतिक यौन संबंध बना सकता है तो उसे भी यह अधिकार दिया जाना चाहिए। स्त्री के आक्रोश और क्रांति को इस प्रकार प्रकट किया गया है–

''मैं न तो विवाह–पूर्व सम्बन्धों को बुरा मानती हूँ, न विवाह के बाद। जब पुरूष अन्य लड़कियों से सम्बन्ध रख सकता है, तब लड़की क्यों न रखे।''[8]

ग्रामीण समाज में लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलवाना और उनसे नौकरी करवाना पसंद नहीं किया जाता। बेटी की कमाई खाने वाले परिवार को समाज में हेय दृष्टि से देखता है। इसीलिए ग्रामीण समाज में लोग लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाहर नहीं भेजते। गंगौली में भी लड़कियों को पढ़ाना आवश्यक नहीं समझा जाता है। परंतु सईदा के पिता समाज की परवाह न करते हुए उसे पढ़ने के लिए अलीगढ़ भेजते हैं।

जो ग्रामीण परिवेश की बदलती हुई मानसिकता को दर्शाता है। सईदा का बाहर जाकर पढ़ाई करना नारी की स्थिति में होने वाले सकारात्मक परिवर्तन की ओर संकेत करता है। जैसा कि दृष्टव्य है–

''नहीं साहब, कोई न कोई तब्दीली जरूर हुई है। सईदा अलीगढ़ में पढ़ रही है।''[9]

इस प्रकार राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गाँव' में नारी–जीवन के विभिन्न पक्ष देखने को मिलते हैं। यद्यपि समाज की संकीर्ण मानसिकता में परिवर्तन हो रहा है, परंतु ग्रामीण समाज में स्त्रियों की स्थिति में अभी भी अधिक सुधार नहीं हो पाया है। कानून बनाए जाने के कारण स्त्री को सरपंच अवश्य बना दिया जाता है परंतु सारा काम उसका पति ही देखता है, उसे घर से बाहर जाने की अनुमति नहीं है। नारी के साथ अत्याचार और अनाचार की घटनाएँ वर्तमान समय में भी हो रही हैं। नारी के प्रति पुरूषों के दृष्टिकोण में अभी अत्यधिक बदलाव लाने की आवश्यकता है। स्त्रियों को शिक्षित और आत्मनिर्भर होकर अपना अस्तित्व तलाशना होगा। समाज को भी स्त्री और पुरूष दोनों के प्रति निष्पक्षता का भाव रखना होगा। तभी स्वस्थ समाज का निर्माण संभव है। समाज के दृष्टिकोण में बदलाव ही राष्ट्र की प्रगति का परिचायक है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. 'आधा गाँव', राही मासूम रज़ा, राजकमल प्रकाशन, (पेपरबैक्स) 2017, पृ. 23
2. वही, पृ. 17
3. हिन्दी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन', डॉ. चन्द्रकान्त महादेव बांडिवडेकर, कृष्ण ब्रदर्स, 1959, पृ. 193
4. 'आधा गाँव', राही मासूम रज़ा, राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक्स), पृ. 168
5. वही, पृ. 234
6. देशद्रोही, यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, 2009, पृ. 268
7. 'आधा गाँव', राही मासूम रज़ा, राजकमल प्रकाशन (पेपर बैक्स), पृ. 301
8. शीर्षक लेख– 'स्वच्छन्दता का औचित्य' प्रेम विवाह और सेक्स, श्रीमती बीना कुमारी, पृ.22 (साहित्यिक हिन्दुस्तान, 6–12 सितम्बर, 1981)
9. 'आधा गाँव', राही मासूम रज़ा, राजकमल प्रकाशन (पेपरबैक्स), 2017, पृ. 203

ई–मेल : reeta.singh0530@gmail.com

मोबाइल नं. : 8879328848

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 253-256
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कफ़न कहानी में सामाजिक दृष्टिकोण

-संयोगिता मौर्या,
गार्डन सिटी विश्वविद्यालय, सहायक प्राध्यापक, बंगलोर 93

कफन कहानी में दलित जीवन में आए अनेक उतार–चढ़ाव है। इसमें सामाजिक और मानसिक दोनों तरीके का उत्पीड़न दिखाया गया है जीवन का यथार्थ एवं स्वाभाविक चिंतन का उद्देश बना है। विद्वानों ने कहानी को कई तरीके से समीक्षा किया है। कहानी का उद्देश्य है सामाजिक आर्थिक विषमता जिस समाज में हम रह रहे हैं। वहां बड़े–धनी लोग अपने आराम से जिंदगी जी रहे हैं और निर्धन मजदूर दिन रात मेहनत करके भी दोनों समय की रोटी जुगाड़ कर पाने में उसे बड़ी मुश्किल होती है घीसू और माधव दोनों के माध्यम से कहानीकार ने कामचोर हो जाने की मनोदशा दिखाया है। यहां किसानों को जगाने का प्रयास किया है आर्थिक शोषण के विरुद्ध भी क्रांति भावना भरना लेखक का उद्देश्य रहा है। गरीब व्यक्ति को किस स्तर तक उसे गरीबी संवेदनशील और जड़ बना सकते हैं। घीसू और माधव के माध्यम से इस कहानी को ज्वलंत दिखाया गया है। किसी भी सभ्य समाज को आर्थिक स्थिति की ऐसी विषमता चिंतनशील प्राणी को सोचने पर अवश्य मजबूर कर देगी।

"कहानी कहना सुनना–मनुष्य की नैसर्गिक आवश्यकता रही है तथा इसके माध्यम से उनसे अपनी सामाजिकता का विकास भी किया है क्योंकि कहानी ने यदि उसका मनोरंजन किया है तो उसे जीवनोपयोगी उपदेश भी दिया है। कहानी वाचिक परंपरा की दें है किन्तु जब हम कहानी के आधुनिक स्वरूप को देखते है तो पाते है की कहानी घटनाओं का संयोजन मात्र ही नहीं है बल्कि मानव जीवन की जतिलाताओ, विद्रूपताओं तथा उसके अंतर्विरोध को व्यक्त करने का सशक्त साहित्यिक रूप है।"[1]

प्रेमचंद की कहानी :-

साहित्य इतना विशाल, व्यापक एवं विस्तृत है कि इसमे समूचा एक युग आ गया है, उन्होंने लगभग चार सौ कहानियाँ लिखी है। एक तरह से वह अपने में स्वयं एक युग था। जिसमे हिंदी कहानियो को सच्चे तत्व विकसित हुए और भारतीय समाज की अनेक पहलुओं का कहानियों के माध्यम से समाज के समझ प्रस्तुत करने में उनका अमुल्यावन योगदान रहा।

प्रेमचंद की कहानी 'कफ़न' उनके उत्कर्ष काल की रचना है। इस कहानी के सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव ने कहा है– "यह कहानी शिल्प और वस्तु के स्तर पर प्रेमचंद की कहानी–कला का चरम विकास प्रस्तुत करती है। कफ़न कहानी में समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रेमचंद ने दिखाया है जो समाज का आइना प्रस्तुत करता है और समाज को दोषी भी बनाता है। अगर समाज में इतनी कुरीतियाँ नहीं होती तो सायद माधव और घीसू

भी इस तरह के असंवेदनशील भी नहीं होते।

भूख :-

इन्सान भूखा होने पर जानवर हो जाता है वह सही गलत का फैसला नहीं कर सकता है प्रेमचंद जी ने अपनी कफ़न कहानी में माधव और घीसू के साथ भी ऐसा ही दिखाया है कि वह इतने भूखे है कि उन्हें घर में तड़पती हुई औरत का दर्द नहीं सुनाई पड़ रहा था। माधव को लग रहा था कि अगर वह अन्दर अपनी औरत को देखने गया तो घीसू तो सारा आलू खा जायेगा। इसीलिए वह बोला–"मुझे वहाँ जाते डर लगता है।' डर किस बात का है, मैं तो यहाँ हूँ ही।''तो तुम्हीं जाकर देखो न?'[2] इससे लगता है जीवन में इन्सान को अपने अलावा किसी की परवाह नहीं होता है। दोनों इतने भूखे थे कि वह "कल से कुछ नहीं खाया था। इतना सब्र न था कि ठण्डा हो जाने दें। कई बार दोनों की जबानें जल गयीं। छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा जबान, हलक और तालू को जला देता था और उस अंगारे को मुँह में रखने से ज़्यादा खैरियत इसी में थी कि वह अन्दर पहुँच जाए। वहाँ उसे ठण्डा करने के लिए काफ़ी सामान थे। इसलिए दोनों जल्द–जल्द निगल जाते। हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकल आते।"[3]

आलस्यपन और गरीबी :-

आलस्य इन्सान को निकम्मा बना देता है अगर जीवन में कोई काम नहीं कर सकता है तो वह पृथ्वी पर नर पशु के समान जीवन जी रहा है। कफ़न कहानी में प्रेमचन्द जी ने घीसू और माधव के माध्यम से भारतीय समाज की सच्चाई को उजागर किया है वे बताते है की हमारे देश की गरीबी का कारण राजनेता या सामंती व्यवस्था नहीं है बल्कि हम सब इसके जिम्मेदार खुद है इसका एक उदहारण वह कफ़न में घीसू और माधव का बताते है कि "घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम करता। माधव इतना काम–चोर था कि आध घण्टे काम करता तो घण्टे भर चिलम पीता।"[4] यहि कारण है कि गरीबी कभी भी ख़त्म नहीं हो सकता है जब लोग अपने ही पैरो पर कुल्हाड़ी मारने को तैयार है तो भगवान भी उनका कुछ नहीं मदद कर सकता है। जिस समाज में लोग रात–दिन जीतोड़ मेहनत कर रहे हो और आराम तलब लोग उनकी मेनहत के बलबूते मौज उड़ा रहे हो, एक उदाहरण देखिये किस तरह प्रेमचंद के पात्र जीवन का मजाक बनाये हुए है – 'आलू खाकर दोनों ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़कर पांव पेट में डाले सो रहे। जैसे दो बड़े–बड़े अजगर गेंडुलिया मारे पड़े हों।'

यहाँ तक आते–आते हमारे चरित्र नायक संत कवि मलूक दास जी याद दिलाते हैं–

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।

ऐसा लगता है कि घीसू सच्चे अर्थों में मलूकदास का चेला है।"

अन्धविश्वास :-

आदमी के पास खाने को भले ही न हो, लेकिन अंतिम संस्कार के लिए उन्हें इंतजाम करना ही होता है अशिक्षा इतना है कि लोगों को यह समझ नहीं पाते है कि क्या सही है। कफ़न कहानी में माधव के इस बात से पाता चलता है वह कहता है "कि दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बाँभनों को हजारों रुपये क्यों दे देते हैं? कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं!"[5] इससे साफ पता चलता है कि वह अंतिम संस्कार में खर्च नहीं

करना चाहते थे, लेकिन दुनिया के इस नियम के चलते उन्हें करना पड़ रहा था। प्रेमचंद अपने पत्रों के माध्यम से जो समाज में चली आ रही प्रथा थी उसे माधव और घीसू के द्वारा उसका मजाक बनाते है "भगवान्, तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला वह कभी उम्र–भर न मिला था।"[6] दोनों कफ़न के पैसे का भोजन और शराब पीते है समाज के किसी भी नियम का पालन करने से ज्यादा उन्हें अपना पेट भरना जरुरी लगा। सच है भूखे को पहले भोजन ही दिखाई देता है बाद में समाज के नियम, यह कफ़न कहानी में प्रेमचंद जी ने साफ कर दिया है।

किसानों की दशा :–

भारतीय समाज में किसानों की दशा को लेखक बहुत ही नजदीक से देखा और समझा था इसीलिए उनके कहानी में समाज के हर तरह के शोषण को देखा जा सकता है। कफ़न कहानी में समाज में किसानों की दशा बहुत अच्छी नहीं थी इस बात का पाता लेखक की इस बात से चल रहा है– "जिस समाज में रात–दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज़्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।"[7] किसान कितना भी मेनहत करता है फिर भी उन्हें दोनों समय का भोजन मिलना बहुत मुश्किल होता हैं यह बात माधव और घीसू बहुत अच्छी तरह से समझ रहे थे शायद इसी लिए दोनों काम करना गरूरी नहीं समझते थे। और उनके आगे पीछे कोई नहीं था जिसके लिए वे दोनों कमाकर रखे। किसान की बदहाली आजादी से पहले जैसी थी आजादी के बाद और ख़राब ही होती चली गयी। अगर किसानो की तरफ सरकार जरा भी ध्यान देती तो आज हमारा समाज घीसू और माधव की तरह नहीं सोचते।

शोषण व्यवस्था :–

हमारे समाज का सामाजिक ढांचा ही ऐसा बनाया गया है कि लोग उसी में फंसे रहे और उनके निकलने का रास्ता न मिले। ऊँच–नीच, जाति–पाती, अमीर–गरीब, सामंत, साहूकार, बनिया, पंडित, ये सब एक उदाहरण है समाज को बाटने का काम करते है। जिस समय प्रेमचंद कहानी लिख रहे थे। उस समय किसानों की हालत बहुत अच्छी नहीं थी। न ही मजदूरी तय थी न ही काम का समय ही निश्चय था। इसीलिए माधव और घीसू अपने काम के तरीके को ही बदल दिया थे। उन्हें पता था की मजदूरी तो मिलनी ही है जितना मिलता है, फिर क्यों ज्यादा मरा जाये। वह अपने हिसाब से काम करने लगे। इसीलिए जब लोगो को कोई नहीं मिलता तभी लोग उन्हें बुलाते थे। प्रेमचन्द के इस बात से साफ पाता चल जाता है की उनके पात्र समाज में हो रहे शोषण को बहुत ही अच्छी तरह से समझ रहे थे।

वे कहते है कि "उस पर सारा गांव उंगली उठाता था। फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम–से–कम उसे किसानों जैसी जी–तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती, और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फायदा तो नहीं उठाते!"[8] प्रेमचंद इस बात को अच्छी तरह से समझते है इसीलिए वर्णव्यवस्था श्रम मूल्यों –संस्कारों पर कुठाराघात करते है दलित जीवन पर लिखकर वर्नाश्रामी मूल्यों की समीक्षा की है "गांधी मानते थे कि वर्ण व्यवस्था अपने आदर्श रूप में ठीक रही होगी। जरूरत इसकी विकृतियों को दूर करने की है। जबकि अम्बेडकर का मानना था कि सनातनी हिन्दू व्यवस्था के मूल में ही गड़बड़ी है इसलिए इसे पूरी तरह बदल देना जरुरी है। प्रेमचन्द का दलित जीवन पर केन्द्रित लेखन प्रमाणित करता है।

कि वे वैचारिक रूप से अम्बेडकर के साथ खड़े हैं। इसीलिए वे सतानती हिन्दू समाज में आमूलचूल परिवर्तन की कोशिश करते दिखाई पड़ते हैं। दलित जीवन पर केन्द्रित प्रेमचन्द का लेखन इसी कोशिश का हिस्सा है।"[9] कहानी के शुरू में ही बुधिया को तड़प–तड़प कर मरते दिखाया गया है। क्योंकि गरीब और छोटी जाति के लोगों के पास कोई साधन नहीं होता था, कि वह अपने इलाज और दुसरे साधनों का इंतजाम कर सके।

निष्कर्ष :-

कफ़न कहानी भी समाज के उस तपदे को लेकर लिखी गयी है जिसे हमारा समाज आज भी अपने से अलग समझता है कहानीकार का ज्यादा ध्यान दलितों पर रहा है, कि जब दलितों को सभी लोग नकार देते है तो उन्हें भी सामाजिक मान्यताओं को लेकर कितना क्रोध है। प्रेमचंद के कहानी कफ़न में जब बुधिया को कठिनाई हो रही थी, तो कोई उसे सहारा देने नहीं आया, और जब उसकी मृत्यु हो जाता है तो उसके ही जाति के लोग उसे देखने आते है। दुःख जताते है। शायद यहि दुःख प्रेमचंद जी को भी था इसीलिए उनके पात्र जगह–जगह संस्कारो का मजाक बनाते है। संस्कार हमारे लिए जीवन को सुधारने का काम करता है न कि जीवन को जीने में कठिनाई पैदा करे। हम कितना भी आधुनिक विचारों से युक्त हो, लेकिन संस्कार हमें अपनो से बांधें रखता है। और आने वाली पीढ़ी के लिए एक उदहारण होता है इसी से हमारी पहचान है।

प्रेमचन्द की कहानियों पर यह आरोप लगते रहे है कि उनमें मनोवैज्ञानिकता का अभाव है। पर "मैं कहानी कैसे लिखता हूँ" शीर्षक निबंध में प्रेमचन्द ने स्पष्ट लिखा है– "मेरे किस्से किसी न किसी प्रेरणा अथवा अनुभव पर आधारित होते है। मगर घटना मात्र का वर्णन करने के लिए मै कहानी नहीं लिखता। मैं उनसे किसी दार्शनिक और भावात्मक सत्य को प्रकट करना चाहता हूँ। लेकिन कोई घटना कहानी नहीं होती जब तक कि वह किसी मनोवैज्ञानिक सत्य को व्यक्त न करे।

सन्दर्भ सूची :-

1. https:@@www.selfstudys.com/uploads/pdf/7m5DeYK2XD90FÛQY1cW1.pdf
2. कफ़न कहानी https:@@wp.nyu.edu/virtualhindi/premchand-kafan/
3. वही से
4. वही से
5. वही से
6. वही से
7. वही से
8. वही से
9. https://samkaleenjanmat.in@kafan-a-story-with-multiple-dimensions.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 257-260
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महिलाओं के नाटको में नारी विमर्श

-डॉ. शंकर दळवी
राजर्षी शाहू कला तथा वाणिज्य महाविद्यालय, रुकडी, तहसिल–हातकणंगले, जिला– कोल्हापूर (महाराष्ट्र)

नारी की संघर्ष यात्रा आज की नहीं है वह तो सदियों से चली आ रही है। किसी भी प्राणीमात्र का जीवन इस संसार में, आसान नहीं होता। हर एक के लिए यहाँ संघर्षरत रहना ही पड़ता है। 'जीवों जीवस्य जीवनम्' यही प्रकृति का नियम प्राणीमात्र में होता है। यहाँ हर जीव अपनों से ताकतवर तथा बड़ों से अपने आपको बचाना तथा सुरक्षित रखना चाहता है। और छोटों पर अत्याचार कर अपना पेट पालने का काम करता है। यही प्राणीमात्र की जीवन श्रृंखला होती है परंतु मनुष्य प्राणी इन सबसे अलग है। मनुष्य में अपनी भाषा, विचार, विवेक तथा चिंतनशीलता के कारण संसार में अमिट छाप निर्माण की है। मानव ने अपने बौद्धिक बल से सारे संसार को एकसूत्र में बांध दिया है। परंतु मानव जीवन में भी स्त्री पुरुष यह भेदभाव होने के कारण यहाँ भी जिनके पास ताकत, सत्ता, संपत्ति होती है वही लोग एक–दूसरे को दबाने तथा अत्याचार करने का प्रयास करते हैं।

संसार में स्त्री पुरुष संघर्ष भी आज का नही हैं। वह भी सदियों से पुराना है। नारीवाद या नारी विमर्श यह आधुनिक युग की उपलब्धि है। नारी जैसे–जैसे पढ़ती–लिखती गई वैसे–वैसे अपने उपर होने वाले अन्याय और अत्याचार से सजग होती चली गई। सदियों से होने वाले अन्याय और अत्याचार को संत, महंत, विचारक, समाज सुधारक तथा साहित्यकारों ने स्त्रियों को बल तथा समाज मान्यता देने का काम किया। पश्चिमी सभ्यता के कारण स्त्री सजग होकर अपने हक्क तथा अधिकार के लिए आधुनिक युग में लड़ रही है। इसे ही हम आज नारी जागरण, नारी वाद, स्त्री मुक्ती या नारी विमर्श के रूप में संबोधित करते हैं।

साहित्य, समाज, सत्ता तथा सिनेमा के क्षेत्र को जनजागरण के लिए बहुत बडा बल मिला है। नारी विमर्श में साहित्य और शिक्षा ने बहुत अहम भूमिका निभाई। साहित्य के विविध विधाओं ने नारी शोषण, उत्पीड़न, अन्याय तथा अत्याचार को अभिव्यक्ति दी है। नाट्य, साहित्य तो सदियों से नारीजन जागरण का काम करता आ रहा हैं। आधुनिक काल में महिला नाटककार भी इसमे पीछे नही हैं। महिला नाटककारों ने अपने भुक्तभोगी जीवन को चित्रित कर नारी विमर्श को मजबूत और प्रगल्भ बनाया है। इसमें हम आधुनिक महिला नाटककारों ने अपने नाटकों में किस प्रकार नारी विमर्श का चित्रण किया है यह देखेंगे।

पुरुष प्रधान भारतीय संस्कृति में पुरुषों ने पहले से ही नारी पर कई बंधन तथा जिम्मेदारियाँ देकर वह मुक्त हो गये थे। इस संबंध में मैथिली शरण गुप्त जी ने अपने काव्य में बहुत सटीक बात कही है :–

'नर कृत शास्त्र के सभी बंधन है नारी ही को लेकर,
अपने लिए सभी सुविधाए पहले ही कर बैठा है नर।'

नारी घर :–

परिवार, नौकरी, काम–काज के चक्रव्यूह में एक बार फस जाती है तो उससे बाहर निकलना उसके लिये मुश्किल हैं। अबला को बला समझकर उस पर अन्याय–अत्याचार, दमन तथा उसे निम्न स्थान देकर उसे नरकीय यातनाए भोगने के लिए विवश किया जाता है। महिला नाटककारों ने नारी की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा मानासिक समस्याओं का सशक्त चित्रण अपने नाटकों में किया है।

नारी अपने पारिवारिक जीवन को सफल बनाने के लिए कई जिम्मेदारियाँ निभाती है। इन्हीं जिम्मेदारियों के कारण वह अनेक समस्याएँ भी मोल लेती है और फंस जाती है। मन्नू भंडारी जी के नाटक 'बिना दिवारों के घर' की नायिका शोभा मातृत्व, पत्नीत्व और नौकरी में ठीक तरह से ताल मोल न बिठा पाने के कारण गृहस्थी जीवन से अलग हो जाती है। नारी का मातृत्व उसके जीवन की सार्थकता तथा पूर्णत्व माना जाता है। प्रकृति द्वारा दिया गया मातृत्व का वरदान नारी के लिए कभी–कभी शाप भी बन जाता है। अवैध मातृत्व, अकाली मातृत्व, अनचाहा मातृत्व, बार–बार थापा जाने वाल मातृत्व भी नारी के लिए पीड़ादायक तथा नरक यातना भोगने के लिये मजबूर कर देता है। कुसुम कुमार लिखित नाटक 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' की कि नायिका सुषमा बार–बार थोपे जाने वाले मातृत्व से परेशान है। उसकी शारीरिक तथा मानसिक क्षमता न होने पर भी उसे और एक बच्चे की जिम्मेदारी का बोझ उठाने के लिए मजबूर किया जाता है।

नारी पर सबसे ज्यादा अत्याचार नाते–रिश्तेदार, संगे–संबंधी तथा जान–पहचान वाले लोग ही करते हैं। यही लोग उनके लिए सबसे बड़ी मुसीबत और असुरक्षा का कारण बनते हैं। विभा रानी जी का 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो ''नाटक' की अंकित अपने भाई तथा पिताजी के हवस का शिकार बनती है। वह परिवारवालों के अत्याचार का विरोध तक नहीं कर सकती। जिन हाथों पर सुरक्षा के लिए राखी बाँधी थी और जिनके पितृछाया में, पली खिली थी वही संकट का कारण बनते हैं। मीराकांत के नाटक 'अंत हाजीर हो' में परिवार के अत्याचारोंसें त्रस्त लड़कियाँ चित्रित है। छोटी बहन अपनी बड़ी बहन अनुदीदी पर बाप और भाई द्वारा किये गये अत्याचारों से भयभीत होकर कहती है जी चाहता है। जी चाहता है किसी से भी न मिलूं। किसी से भी नहीं। शरीर को कहीं रख दूँ। सबकी नजरों से बचाकर अपने को आलमारी में बंद कर दूँ या फ्रिज में या फिर कोई सीढ़ियों के नीचे सुनसान अंधेरे में.... जहाँ कोई आता जाता ना हो, कोई झाँकता ना हो।[1]

समाज तथा घर परिवार में नारी को भोगवादी दृष्टि से देख जाता है। उसे षड्यंत्रों तथा तिकड़मबाजी में फँसाकर अत्याचार का शिकार बनाया जाता है। नारी की असहयता या बेबसी का फायदा उठाकर 'संस्कार का नमस्कार' नाटक में चित्रित समाजसेवी संस्कारचंद अपने अनाथालय की लड़कियों का यौन शोषण करता है। मृदल गर्ग जी का नाटक 'एक और अजनबी' में चित्रित शानी का पति ही अपने बॉस को खुश कर पदौन्नती पाने के लिए पत्नी का इस्तेमाल करता है। इस बात पर अपना पल्लू पकड़कर पद तथा प्रतिष्ठा की सिढीयाँ चढ़नेवाले अपने पति जगमोहन को शामी डाँटते हुए कहती है– 'मैं नहीं चाहती यह गर्म सांसों से भरी कमरों में बंद जिंदगी। सिफारिशों से पायी होनहारी और सिफारिशों के बल पर होती तरक्की में खुली हवा में जीना चाहती हूँ और चाहती हूँ तुम भी खुली हवा में जियो अपने बल पर।[2] महिला नाटककारों ने नाते के बीच पिसती नारी के कँधे पर बैठा था शाप दिल्ली उंचा सूनती है, सुनो शेफ़ाली लश्कर चौक 'अंत हाजीर हो' नेपथ्यराग, 'सकुबाई जी', जैसे 'आपकी मर्जी' अंधेरे से आगे तथा 'दहेज' जैसे नाटको मे खुब हुआ है।

हमारे समाज में परित्यक्ता तथा विधवा नारी कि अवस्था घायल पंछी के समान होती है। अपने तथा समाज के गिद्ध दृष्टि उसे नोच–नोच कर और भी घायल करती है। सुंदर और जवान परित्यक्ता हो तो रिश्तेदार तथा गाँव के आवारा बड़े–बड़े लोग भी अपनी हवस का शिकार बनाने का प्रयत्न करते हैं। तुम लौट आओ, अंधेरे से आगे, दिल्ली ऊंचा सुनती है। 'संस्कार को नमस्कार', 'देहरी' तथा 'बहू' जैसे नाटकों में उन नारियों का चित्रण हुआ है। पुरुष प्रधान समाज में पुरुष अकेला तथा बिना ब्याह का रह सकता है लेकिन स्त्री का रहना मुश्किल है। गिरीश रस्तोगी के नाटक 'अपने हाथ बिकानी' कि अविवाहित बिंदू अपना आक्रोश और पुरुषी मानसिकता को स्पष्ट करती हुई कहती है – 'हमारे यहाँ महिलाओं को हमेशा दूसरे स्तर का प्राणी समझा जाता है... उन पर पहले से लिए गए फैसले थोपे जाते है। ..हर वर्ग, हर क्षेत्र में हर उम्र में।[3]

उच्च शिक्षित बिंदु नारी की हिमायती है। स्त्रियों पर होने वाले अन्याय तथा अत्याचार पर अनुसंधान कर रही हैं। शादी ही उसके जीवन की बर्बादी है ऐसा उसका मानना है इसीलिए वह शादी करना नहीं चाहती। 'अंधेरे से आगे' कल्याणी की उच्च शिक्षित दीदी को पारिवारिक हिंसा और अत्याचार सहना पड़ता है। 'बिना दिवारों के घर' नाटक की शोभा पत्नीत्व के साथ–साथ अत्याचार के कारण मातृत्व का दान देते हुए कहती है जिस तरह मैंने अपने अंदर की पत्नी को निकाल दिया है। उसी तरह माँ को भी निकाल दूँगी। 'आओ, तनिक प्रेम करें' नाटक की नायिका तथा पत्नी पुरुषों की मानसिकता पर विवश होकर कहती हैं – 'जीवनभर स्त्री अपने मन की बातें पति, बेटे, भाई और बाप को सुनाने के लिए तरसती है, मगर सुनता कौन है? पुरुष की बातें स्त्री, बेटी, बहन, पत्नी, माँ बनकर सदियों से सुनती आयी हैं, 'यह कैसी विडंबना है। देह अपनी और इच्छाएँ'[4] सदियों से सभी अंदर ही अंदर दुःख, पीड़ा दुविधा तथा अपनी व्यथा को मन मसोलकर सहती रही लेकिन आधुनिक स्त्री की हुंकार वेदना से फूट ही पड़ी। मिराकांत के नाटक की खन्ना कहती है कि .. 'पुरुष स्त्री को मंच पर आने कि सुविधा नहीं देता। उन्हे अपने स्व और स्वत्व की प्रतीक्षा में कितने युग, वर्ष बीत जायेंगे पता नही है। यह नेपथ्य हैं। इस मंच पर पहुँचने में कई युग लगेंगे सम्राट विक्रमादित्य के दरबार कि विदुषी महिला तथा ज्योतिषी शास्त्र में विशारद नारी थी। उस काल से इस काल तक नारी मंच पर आ गई है।

अब वो अपने हक्क तथा अधिकार के लिये लडते हुए मृदुला बिहारी जी के 'भंवर' नाटक की नायिका अपने हक्क तथा अधिकार की बात करती है – 'अपने हक्क के लिये लड़ना पड़ता है। .... हक हासिल करने कि चीज है, माँगने कि नहीं .... लड़ाई शुरु होती है, जीत के लिये।... तुम आजाद हो, आज हजारों औरतें नौकरी कर रही है.... नौकरी ने उन्हे इकॉनॉमिक इंडिपेडन्स ही नहीं कुछ घंटो के घर की घुटन से मुक्ति भी दी है। आज की नारी आर्थिक रूप से ही सक्षम हो रही है ऐसा नहं है। वह आधुनिक काल में भी अपनी पहचान बनाना चाहती है। पुरुष प्रधान समाज में तथा सत्ता में बराबरी का अधिकार और हक्क भी चाहती है। भँवर नाटक की नायिका सीमा को उसकी सहेली मीरा बगावत के लिए उकसाने के लिये कहती है – 'इस बंधन के खिलाफ बगावत करो. .....तुम्हारी भी कोई हैसियत है.....वजुद है..... अपने वजुद को मत नकारो ... यहि तो मुक्ति है.... औरत जागी है ... आदमियों को जगाना है जो पूर्वग्रह की चादर ढाँपे सो रहे है। इस तरह से नारी आज आत्मनिर्भर हो रही है।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि आज के आधुनिक युग में नारी अपने हक तथा अधिकारों के लिये सजग हो गई है। आत्मनिर्भर महिलाएँ उन्हें जगाने तथा प्रेरित करने का काम कर रही है। हिंदी के महिला नाटककारों ने भी अपने भुक्तभोगी जीवनानुभवों से उन्हें सचेत किया और मजबूती से लड़ने के लिये बल दिया है। नारी का

प्रेम कभी भी बंधन, जाती, धर्म, प्रांत, भाषा, या देश, के सीमा में नहीं बंधता, वह वैश्विक होता है। नारी का प्रेम तथा वात्सल्य किसी पिंजरे, कटघरे, सलाखे तथा सीमा में नही बांधा जा सकता वहा मुक्त होता है। कुसुम कुमार के 'लश्कर चौक' नाटक में हिंदू मुस्लिम सांप्रदायिक दंगो से प्रभावित सभी धर्मो की महिला इकट्ठी हो कर अपने हक्क तथा मानवतावादी की लड़ाई लड़ती दिखाई देती है।

'हम सिर्फ अपना हक जताने आई है कि तुम हमारे हो ...तुम पर हमारा हक है....हमने तुम्हें खून पिला पिलाकर बड़ा किया है...हम तुम्हारे सिर फूटते हुए नहीं देख सकती.. जो जायेगा, बिगड़ेगा, हमारा बिगड़ेगा, किसी का क्या जाएगा, जो बीतेगी हम पर बितेगी।' नारी विमर्श, नारी जागरण, महिला मुक्ति आंदोलनों ने आज सारे विश्वकोष को प्रभावित किया है। नारी आज विश्वकोष के पटल पर प्रकाशमान हो रही है। आज नारी नें अपने बलबूते पर परिवर्तन कर अपनी अलग पहचान बनाई है।

आधार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अंत हाजिर हो–मीरा कांत पृ. सं. 401
2. एक और अजनबी. मृदुला गर्ग– पृ. सं. 44
3. अपने हाथ विकाणी–गिरीश रस्तोगी. पृ. सं. 22
4. नेपथ्य राग मीरा कांत, पृ. सं. 57
5. भंवर मृदुला बिहारी. पृ.सं. 23/24
6. भंवर मृदुला बिहारी. पृ. सं. 25/26
7. लष्कर चौक कुसुम कुमार पृ. सं. 84/85
8. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी महिला नाटककारों के नारकों में सामाजिक चेतना – डॉ. श्रीमती विनोद जैन के.के. पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
9. साठोत्तरी हिंदी नाटको में नारी की दिशा और दशा डॉ. मीना पंड्या, भावना प्रकाशन, दिल्ली।
10. हिंदी नाटक विमर्श डॉ. जया परांजपे, अतुल प्रकाशन, कानपुर।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 261-265
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी विमर्श और निर्मला पुतुल का काव्य

-शशिबाला देशमुख

शोधार्थी, हिन्दी, बरकतुल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल।

समकालीन हिन्दी साहित्य में आदिवासी, स्त्री, दलित और अल्पसंख्यक समाज की स्थिति पर चिंतन होने लगा है। साहित्य और समाज में ये समुदाय लम्बे समय से हाशिए पर रहे हैं। संविधान के प्रावधानों के कारण इन शोषित वर्गों के लोगों में अपने संघर्षों के खिलाफ विस्तृत रुप में संघर्ष करने का ज्ञान विकसित हुआ हैं। जिसे आज समकालीन समाज में ''विमर्श'' के नाम से जाना जाता है। हिन्दी साहित्य भी इसके बदलते स्वरूप से अछूता नही है जैसे– स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, और आदिवासी विमर्श आदि लेखन इसका उदाहरण है। आदिवासी लेखन हिन्दी के अस्मितावादी विमर्शों में नया नहीं हैं, परन्तु वर्तमान में प्रत्येक विधा में आदिवासियों की शोषणपूर्ण स्थिति का चित्रण किया जा रहा है जैसे–कविता, कहानी, उपन्यास, नाट्य आदि। आजादी के सात दशकों बाद भी आदिवासी साहित्य को हाशिए मुख्यधारा से दूर रखा गया लेकिन आज आदिवासियों के साहित्य नए नवीन रूप में उभरकर सामने आ रहा है।

संसार में समस्त देशों में आदिवासी निवास करते हैं। यह देश के मूल एवं प्राचीनतम निवासी है। ये प्रारंभ से ही जंगलों एवं निर्जन स्थानों पर निवास करते आए हैं। आदिवासी जंगली परिस्थितियों में अपना जीवनयापन करते दिखाई देते हैं। विश्व के अधिकांश देशों में आदिवासी निवास करते हैं। विश्व में सबसे ज्यादा कबीले अफ्रीका में है। आदिवासी एक सामान्य प्रकार का समूह है, जिनके सदस्य एक सामान्य बोली का प्रयोग करते हैं। युध्द जैसे सामान्य उद्देश्यों के लिए या शत्रु का सामना करने के लिए साथ मिलकर कार्य करते हैं। इनकी अपनी एक विशिष्ट भाषा, संस्कृति, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था और परंपराएँ होती है। आदिवासी साहित्य, वन–जंगलों में रहने वंचितों का साहित्य है। आदिवासी साहित्य के माध्यम से देश तथा विश्व की आदिवासी भावनाओं को समझने तथा उनसे संबंध स्थापित कर इन समूहों को दूर–दूर तक ले जाना ही इस साहित्य का महत्व है।

आदिवासी का अर्थ यह है कि यह एक ऐसी स्थानिय जनजातीय समूहों का समुदाय है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करते हैं, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं, इनकी एक सामान्य संस्कृति होती है। भारतीय समाज को आधुनिक समाज बनाने में इन आदिवासी जनजातियों का महत्वपूर्ण योगदान है। गाँवों में रहन–सहन की अव्यवस्था, बिजली–पानी की अव्यवस्था, कुप्रथाएँ, अंधविश्वास, छल–कपट, चापलुसी, धोखेबाजी, ऊँच–नीच आदि का व्यापक प्रभाव बना हुआ है। आदिवासी हमारे देश के प्राचीन और मूल निवासी है।

आदिवासी संस्कृति की पहचान और उसे प्रतिष्ठित करने का जो संघर्ष है वह निरन्तर आगे बढ़ रहा है आज सारी दुनियां में आस्तित्व के संघर्षं में हारी हुई जातियाँ अपनी अस्मिता को खोज रही हैं। आदिवासी विमर्श

से पहले आदिवासी कौन है यह विचार करना आवश्यक है। आदिवासी शब्द दो शब्दों आदि+वासी से मिलकर बना है आदि का अर्थ प्राचीन (मूल) और इसका अर्थ मूल निवासी है। आदिवासी मुख्य रूप से भारतीय राज्यों उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंन्धप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल में अल्पसंख्यक हैं। जबकि भारतीय पूर्वात्तर राज्य में यह वहुसंख्यक हैं जैसे मिजोरम भारत सरकार ने इन्हें भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची में अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता दी है।

निर्मला पुतुल का जन्म एक आदिवासी परिवार में 1972 ई. में दुमका (झारखंड) में हुआ था। इनका आरंभिक जीवन बहुत संघर्षमय रहा। घर में शिक्षा का माहौल होने (पिता और चाचा शिक्षक थे) के बावजूद रोटी की समस्या से जूझने के कारण नियमित अध्ययन बाधित होता रहा।

इन्होंने आदिवासी समाज की विसंगतियों को तल्लीनता से उकेरा है–कड़ी मेहनत के बावजूद खराब दशा, कुरीतियों के कारण बिगड़ती पीढ़ी, थोड़े लाभ के लिए बड़े समझौते, पुरुष वर्चस्व, स्वार्थ के लिए पर्यावरण की हानि, शिक्षित समाज का दिक्कुओं और व्यवसायियों के हाथों की कठपुतली बनना आदि वे स्थितियाँ हैं जो पुतुल की कविताओं के केंद्र में हैं। वे आदिवासी जीवन के कुछ अनछुए पहलुओं से कलात्मकता के साथ हमारा परिचय कराती हैं और संथाली समाज के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं को बेबाकी से सामने रखती हैं। संथाली समाज में जहाँ एक ओर सादगी, भोलापन, प्रकृति से जुड़ाव और कठोर परिश्रम करने की क्षमता जैसे सकारात्मक तत्त्व हैं, वहीं दूसरी ओर उस समाज में अशिक्षा, कुरीतियाँ और शराब की ओर बढ़ता झुकाव भी है। निर्मला पुतुल की प्रमुख रचनाएँ रू नगाड़े की तरह बजते शब्द, अपने घर की तलाश में।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व आदिवासी समाज में सभी कार्य स्त्री और पुरूष समान रूप से करते थे, संपत्ति का अधिकार समान होता था। वह उनके आगमन के पश्चात् संपत्ति के अधिकार से स्त्रियों को वंचित रखने तथा पुरूष वर्चस्व की दृष्टि से उन्हें हल चलाने, घर का छप्पर छाने या तीर–धनुष चलाने जैसे कामों से वर्जित कर दिया गया। आदिवासी स्त्री एक ओर वर्तमान बाज़ारवाद के कारण मुख्यधारा के समाज से शोषित है तो दूसरी ओर स्त्री होने के कारण अपने ही समाज में शोषित है। इस दोहरे शोषण के दर्द में भी वह अपनी अस्मिता और अस्तित्व को नहीं भूलना चाहती है। निर्मला पुतुल डंके की चोट पर नगाड़े की तरह शब्दों को बजाते हुए इस अन्याय का विरोध करती है। वह अपने समाज की स्त्रियों के साथ हो रहे अन्याय को बखुबी जानती है। वह लिखती हैं कि – "जानती हूँ कि अपने गाँव बागजोरी की धरती पर/जब तुमने चलाया था हल/ ... /पता है बस्ती की नाक बचाने ख़ातिर/तब बैल बनाकर हल में जोता था/जालिमों ने तुम्हें/खूँटे में बाँधकर खिलाया था भूसा/ ... /भरी पंचायत में सरेआम/नाच न दी जाओ नंगी 'पकूल मराण्डी' की तरह/बस रहने दो।"

निर्मला पुतुल का काव्य–जगत एक अलग संसार खोलता है। तात्विक और वैचारिक के भेद को यहां प्रबलता से महसूस किया जा सकता है। अक्सर स्त्री–कविता की पहचान पुरूष प्रधान सत्ता से मुक्ति की आकांक्षा में पढ़ी जाती है किन्तु यहां पर आदिवासी समाज का मुख्यधारा से अलग रह जाना। दूसरे शब्दों में कह सकते है, कि कुछ लोगों का समाज के विकास में शामिल न होना हैं। इसके कई कारण हो सकते है जैसे भाषा के आधार पर या रीति–रिवाजों के आधार पर या अल्पसंख्यक होने के कारण आदि। वे मुख्यधारा से अलग हो जाने के कारण गरीब रह जाते हैं। जिस कारण वे संसाधनों के अवसर का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाते। स्वतन्त्रता के लगभग सत्तर (70) वर्षों के बाद भी यह जन–समाज राष्ट्र की मुख्यधारा में सक्रिय रूप से सम्मिलित नहीं हो

पाया हैं। राजनीति और बाजार ने उनकी असुरक्षा को और बढाया हैं। विकास के नाम पर षड्यंत्रो का शिकार होते हुए इन आदिवासियों को अनेक बार विस्थापन का डंक झेलना पड़ा हैं।

'अपने ही समाज द्वारा इस प्रकार के व्यवहार को सुनकर किसी के भी रोंगटे खड़े होना स्वाभाविक है। पुतुल की लड़ाई तथाकथित 'सभ्य' समाज के विरूद्ध ही नहीं बल्कि अपने समुदाय में पनप रहे महाढोंगियों के विरूद्ध भी है।'

अपने ही समाज में उसे एक भोग की वस्तु भर समझा जाता है। वह पुरूष के चंगुल में कैसे फँसी? रमणिका गुप्ता के शब्दों में – "मनुष्य के मौलिक जीन्स से भी अधिक मनुष्य की भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थितियों और परिवेश पर ही मनुष्य का विकास आधारित है। स्त्री पर भी यही लागू होता है। बावजूद इसके, एक साझी व्याख्या तो स्त्री की समझ में आ ही गई है कि पुरूष ने उसके मन को गुलाम बनाने से पहले उसे परिवार, ब्याह, संतान और समाज की लक्ष्मण रेखाओं के बाड़े में कैद करके उसके शरीर को गुलाम बनाया और उसे सभी अधिकारों से वंचित किया। पुरूष को जब जरूरत हो प्यार, अलिंगन व चुंबन के हथियार का इस्तेमाल कर या उसके रूप का बखान कर उसे गौरवान्वित किया–सर्वोत्तम करार दिया, लेकिन उसके सब अधिकार छीन लिए ताकि वह उसी के प्रति समर्पित रहे।"

आदिवासी स्त्री विवाह के लिए अपनी इच्छा से वर चुनती थी, स्वछंद प्रेम करती थी। पर आज उसके वह सभी अधिकार छीन लिए गए हैं। आज उसे अपने बाबा से गुहार लगाना पड़ रहा है कि– "बाबा! मुझे उतनी दूर मत ब्याहना / ... / मत ब्याहना उस देश में / जहाँ आदमी से ज्यादा / ईश्वर बसते हों / जंगल नदी पहाड़ नहीं हो जहाँ / वहाँ मत कर आना मेरा लगन।"

पुरूष ने स्त्री के तन के अंदर झाँककर देखने की तक कभी कोशिश नहीं की है। ऐसे में निर्मला पुतुल जानना चाहती है कि पुरूषों के लिए हम स्त्रियां आखिर हैं क्या? कभी पुरूषों के कदम से कदम मिलाकर चलने वाली आदिवासी स्त्री अब उसके लिए घर के उपयोगी वस्तुओं के बराबर मात्र रह गयी है। वह पूँछती है– "क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए...?/एक तकिया/कि कहीं से थका–मांदा आया और सर टिका दिया/ ... /या ख़ामोशी–भरी दीवार/कि जब चाहा वहाँ कील ठोक दी/ ... /क्यूँ? कहो, क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए?

निर्मला पुतुल अपनी कविताओं में आदिवासी समाज के आंतरिक द्वंद्व को उकेरते हुए यथास्थिति के प्रतिकार के लिए कविता का अभियान छेड़ती हैं। निर्मला जी अपने आदिवासी बहनों और भाइयों को विद्रोह के वीर इतिहास की याद दिलाती हैं। बार–बार उन्हे यह स्मृति जागरित करने को कहती हैं कि अपने शोषण को पहचानों एवं उदासीन समर्पण की राह छोड़कर संघर्ष की राह चुनों। उसके इस गुहार में इतनी वेदना है कि उससे किसी भी सहृदय मनुष्य का हृदय पिघल जाना स्वाभाविक है।

वह अपनी संस्कृति को बनाए रखना चाहती है। उसे वही जंगल, नदी, पहाड़ अच्छे लगते हैं जो अपने बाबा के घर में हैं। वह अंदर ही अंदर सहमी हुई है कि जहाँ उसे ब्याहा जाएगा क्या वहाँ यह सब कुछ मिल पाएगा? क्या उसे प्यार करने वाला पति मिल पाएगा? आज वह जानने लगी है उसके खिलाफ होने वाले षड्यंत्र को। चाहे वह आंतरिक हो या बाहरी। "वह इस छदम् को पहचान गई है। आज वह घर, परिवार, पुरूष का सुरक्षात्मक छाता, रिश्तों की भावनात्मक बेड़ियां– सभी को नकार अपनी अस्मिता के निर्माण के लिए जूझने लगी है।"

यहाँ निर्मला जी चुड़का सोरेन के माध्यम से संपूर्ण आदिवासी समाज को सजग करना चाहती है। उन्हें अपने अस्तित्व और अस्मिता की याद दिलाती है। इन्हीं बाहरी लोगों की घुसपैठ की वज़ह से हो रहे दैहिक शोषण के दर्द को उघारते हुए पुरूषों को ललकारती हुई 'अगर तुम मेरी जगह होते' कविता में लिखती हैं– "बताओं न कैसे लगता? / जब पीठ थपथपाते हाथ / अचानक माँपने लगते माँसलता की मात्रा / फोटो खींचते, कैमरा के फोकस / होंठो की पपड़ियों से बेखबर / केंद्रित होते छाती के उभारों पर।"

आदिवासियों के अस्मिता और अस्तित्व के संकट के पीछे सबसे बड़ी समस्या विस्थापन की है। जल, जंगल और जमीन से बेदखली आज आदिवासियों को कई प्रकार की समस्याओं के सम्मुख खड़ा करता है। रमणिका गुप्ता ने इस सन्दर्भ में लिखा, "उसकी समस्या है– जमीन से बेदखली, विस्थापन, पलायन। उसकी चाहना है – जमीन की वापसी और पुनर्वास।"

साम्राज्य विस्तार हो या फिर उद्योग–खदानों का विकास, उसकी कीमत आदिवासियों को विस्थापित हो कर चुकाना पड़ा है। विस्थापन आदिवासी इतिहास का एक प्रमुख पहलू रहा है। विस्थापन का चरित्र प्रत्येक आदिवासी समाज में अलग–अलग प्रकार का है। आदिवासी समाज के विकास के नाम पर गैर–आदिवासी समाज उनका शोषण करता रहा है। निर्मला जी इससे वाकिफ़ है। वे चुड़का सोरेन से कहती है– "उस दिलवार सिंह को मिलकर ढूँढों चुड़का सोरेन/जो तुम्हारी ही बस्ती की रीता कुजूर को/पढ़ाने–लिखाने का सपना दिखाकर दिल्ली ले भागा/और आनन्द–भोगियों के हाथ बेच दिया।'

निर्मला पुतुल अपनी कविताओं के द्वारा नगाड़े की तरह चोट करने वाले ऊँचे स्वर में सामाजिक न्याय की गुहार कर रही हैं। जो हर बार षोषण और न्याय के सवालों को उठाती हैं। उन्होंने स्त्री व्यथा अपनी कविताओं में बार–बार बलात्कार का शिकार होती या फिर घरेलू श्रम की मंडी में बेच दी जाती है। आदिवासी लड़कियों की पीड़ा को साकार रूप देकर कविता में उन लड़कियों की मन की व्यथा या टीस को बखूबी पिरोया हैं।

हिन्दी साहित्य की मूर्धन्य, विरला महिला साहित्यकारों में निर्मला पुतुल का नाम उल्लेखनीय हैं। स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को अपने साहित्य का आधार बनाने में निर्मला पुतुल की अलग पहचान हैं। निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी समाज की वेदना और वैभव दोनों का बहुत ही मार्मिकता के साथ चित्रण किया गया है। उनकी कविताओं में झारखण्ड के सांस्कृतिक सामाजिक जीवन की धड़कने बोलती है। उन्होनें शोषण और विस्थापन की ऐतिहासिक पीड़ा या (दुःख को) विडंबना के शब्द दिए है। उनकी कविता झारखण्ड के सांस्कृतिक और समकालीन जीवन के प्रमाणिक पाठ एवं सत्यता के साक्ष्य की तरह आती है जिसका एक पाठ स्त्री संवेदना एवं संघर्ष के विस्तार के रूप में झलक पड़ता हैं।

निर्मला पुतुल की कविताएँ सिर्फ आदिवासियों की दयनीय दशा की व्याख्या मात्र नहीं हैं बल्कि अच्छे भविष्य की उम्मीदों से भी भरी है। तमाम समस्याओं एवं चुनौतियों के बावजूद, उनका स्वरूप आशावादी है। वे लिखती है :–

''आओ, मिलकर बचाएँ
कि इस दौर में भी बचाने को
बहुत कुछ बचा है, अब भी हमारे पास''।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि पुतुल की कविताएँ आदिवासी मन की उपज है, जो इस दुनिया को बेहतर और खुशहाल रूप में देखना चाहती हैं।

संदर्भ :-

1. Kavitakosh.org (कुछ मत कहो सजोनी किस्कू! (कविता), नगाड़े की तरह बजते शब्द – निर्मला पुतुल) निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी जीवन (आदिवासी साहित्य :विविध आयाम) – संतोष तुकाराम टेलकीकर, पृ. 64
2. संपादकीय, खरी खरी बात – युद्धरत आम आदमी, संपादक – रमणिका गुप्ता, पूर्णांक–108, विशेषांक, 2011 (स्त्री–मुक्ति आंदोलन पर केन्द्रित कविता विशेषांक, भाग–1)
3. Kavitakosh.org (उतनी दूर मत ब्याहना बाबा (कविता), नगाड़े की तरह बजते शब्द – निर्मला पुतुल)
4. Kavitakosh.org (क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए (कविता), नगाड़े की तरह बजते शब्द – निर्मला पुतुल)
4. संपादकीय, खरी खरी बात – युद्धरत आम आदमी, संपादक – रमणिका गुप्ता, पूर्णांक–108, विशेषांक, 2011 (स्त्री–मुक्ति आंदोलन पर केन्द्रित कविता विशेषांक, भाग–1)
5. Kavitakosh.org (अगर तुम मेरी जगह होते (कविता), नगाड़े की तरह बजते शब्द – निर्मला पुतुल) (रमणिका गुप्ता, आदिवासी लेखन : एक उभरती चेतना, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 122)
6. Kavitakosh.org (चुड़का सोरेन से (कविता), नगाड़े की तरह बजते शब्द – निर्मला पुतुल) कलम को तीर होने दो (झारखण्ड के आदिवासी हिन्दी कवि), रमणिका गुप्ता (सम्पादिका), वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 266-272
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'वृद्धजन' विमर्श : समकालीन परिदृश्य

-डॉ. भाऊसाहेब नवनाथ नवले

अध्यक्ष तथा शोध-निर्देशक, हिंदी विभाग
लोकनेते डॉ. बालासाहेब विखे पाटील (पद्मभूषण उपाधि से सम्मानित)
प्रवरा ग्रामीण शिक्षण संस्था का, कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, सात्रल
तहसील-राहूरी, जिला-अहमदनगर पिन-413711

सारांश :-

वृद्धजन विमर्श का हमकालीन परिदृश्य चिंता की अपेक्षा चिंतन के लिए बाध्य करता हुआ परिलक्षित होता है। गौरतलब है कि प्रेमचंद से लेकर आज तक के हिंदी साहित्य में इस विमर्ष की दृष्टि से रचनाकारों की प्रतिबद्धता दृष्टिगत होती है। हिंदी साहित्य की कहानी, उपन्यास तथा काव्य में प्रस्तुत विमर्श पर काफी बहस परिलक्षित होती है। फिर भी आज के परिवेश के अनुरूप यह विमर्श व्यापक धरातल की माँग करते हुए उसके चरितार्थ की अपेक्षा रखता है। विवेचित कवि आज के प्रातिनिधिक कवि के रूप में लिए गए है। बुजुर्गों तथा वृद्धजनों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है जो नई तथा युवा पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक एवं पथदर्शक रहा है। भारतीय युवाओं को पाश्चात्य अंधानुकरण से प्रभावित होने की अपेक्षा भारतीय संस्कृतिगत विरासत से भली-भाँति परिचित होना आवश्यक प्रतीत होता है।

विषय संकेत : वृद्धजन, बुजुर्ग, विमर्श, अंधानुकरण, प्रेरणास्रोत, दबाव, आधुनिकता, पीढ़ी, अपनापन, कैरियर।

शोध विस्तार :-

वास्तव में वृद्धजनों के ऐतिहासिक परिदृश्य का लेखा-जोखा देखने के पश्चात किया जा सकता है कि महाभारत तथा रामायण में भी बुजुर्गो के महत्व को रेखांकित किया गया है। यदि महाभारत युद्ध के समय भीष्म पितामह के साथ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि की सूचनाओं का अनुपालन कौरवों से होता तो महाभारत का युद्ध न होता। दूसरी ओर रामायण में भी राजा दशरथ की आज्ञा का अनुपालन राम से न होता तो पारिवारिक कलह तथा मूल्य समाप्त होते, इस सच्चाई को नकारा नहीं जा सकता। बावजूद इसके हमकालीन समाज में वृद्धजनों को विमर्श के केंद्र में रखने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है, यह बात विचारणीय प्रतीत होती है। 21वीं सदी विमर्शकेंद्री सदी के रूप में सर्वपरिचित है। इसी सदी में स्त्री-विमर्श, बाल विमर्श, किसान विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श तथा युवा विमर्श आदि को व्यापक धरातल पर अभिव्यक्ति मिली है। कहना सही होगा कि इसी सदी में 'वृद्धजन' विमर्श ने भी अपनी दस्तक दी हुई परिलक्षित होती है। वास्तव में वृद्धजन विमर्श व्यापक पृष्ठभूमि में अध्ययन एवं अनुसंधान की मांग करता है। आधुनिकता के चलते वृद्धजन चिंता की अपेक्षा चिंतनीय परिलक्षित होता है। आधुनिकता एवं भूमंडलीकरण के दौर में रिश्ते-नाते, छोटे-बड़े, युवा-बुजुर्ग आपसी

संघर्ष आदि ने आम आदमी को सोचने के लिए मजबूर किया है। दिवस मनाने के सिलसिले में जीवित होते हुए भी बुजुर्गों को दिवस का शिकार बनाने की साजिश रची जा रही है। निश्चित ही इस साजिश के जड़ों तक पहुँचना समय एवं समाज की आवश्यकता बनी हुई है। प्रस्तुत शोधालेख में हमने वृद्धजन विमर्श से संबंधित विभिन्न पहलुओं को केंद्र में रखा है।

वृद्धजनों का वर्तमान परिदृश्य :-

परिवार में आज वृद्धावस्था के शिकार जन को लाचारी एवं मजबूरी का जीवन जीना पड़ रहा है। सभी धरातलों पर बुजुर्गों एवं वृद्धजनों की काफी उपेक्षा होती नजर आती है। समाज के वृद्धजनों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं हो रहा है। गौरतलब है कि जहाँ अपने कहे जानेवाले परिवार के लोग बेटे–बेटियाँ भी अपने माता–पिता को, सास–ससुर को वृद्धाश्रमों की यात्रा के लिए मजबूर करते परिलक्षित होते हैं। कहना न होगा कि आधुनिकता तथा उत्तर आधुनिक सोच एवं मानसिकता ने पारिवारिक मूल्यों के विघटन को काफी हद तक बढ़ावा दिया है। परिवार से होते हुए व्यापक समाज तक वृद्धजनों को तिरस्कार एवं घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। परिवार में जहाँ एक ओर बुजुर्गों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, वहाँ व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य अस्पताल, बस अड्डे, बस, बिलों के भुगतान के दौरान तथा बाजार में भी उन्हें दुर्व्यवहार का शिकार होना पड़ रहा है।

बुजुर्ग तथा वृद्धजन इन समस्याओं एवं परेशानियों का शिकार क्यों है? इस बात पर विचार करना समय की आवश्यकता है। हम इस बात से भली–भाँति परिचित है कि एक समय था जब परिवार में बुजुर्गों तथा बड़ों का काफी हद तक आदर एवं सम्मान किया जाता था। घर–परिवार के हर निर्णायक समय में बुजुर्गो एवं वृद्धों से सलाह मशविरा किया जाता था। उनके बगैर कोई भी महत्त्वपूर्ण निर्णय नहीं होते थे। कहना न होगा कि वृद्धजनों को सभी जगह पर अन्याय, उपेक्षा, शोषण, शर्मनाक व्यवहार तथा आर्थिक अभावों का पर्याप्त मात्रा में शिकार होना पड़ रहा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बुजुर्गों की होती उपेक्षा के बारे में गांधीवादी विचारक तथा चिंतक डॉ. रजी अहमद ''पुरानी परंपराओं के पतन को जिम्मेदार मानते हैं। ... बेटी एवं बहू में फर्क करने की पारिवारिक व्यवस्था भी इसके लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है।''[1] द्रष्टव्य कथन से स्पष्ट होता है कि पुरानी परंपराओं के पतन के कारण तथा बेटा–बेटी भेदभाव करने की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण बुजुर्गों को इस प्रकार की संकुचित मनोवृत्ति का शिकार होना पड़ रहा है।

विचारणीय है कि हम बार–बार दुहाई देते हैं कि पुरानी परंपराओं के चलते राष्ट्र तथा समाज का विकास नहीं होगा। लेकिन यहाँ प्रस्तुत बात गंभीरता से सोचने के लिए मजबूर करती है। डॉ. ऋषभदेव शर्मा बुढ़ापे को एक नई दृष्टि से देखने की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं'' एक ऐसी दृष्टि से जिसमें संवेदना हो और बूढ़ों के लिए आदर व सम्मान हो। जीवन देने की आकांक्षा हो।''[2] स्पष्ट है कि वृद्धजन तथा बुजुर्गों के प्रति नए सिरे से सोचने की आवष्यकता प्रतीत होती है। आम जनों में उनके प्रति सम्मान एवं आदर के साथ संवेदना का स्वर उभरकर आना समय एवं समाज की दृष्टि से आवश्यक है। हमारा दायित्व बनता है कि वृद्धजनों को नया जीवन देने का सामर्थ्य हम सभी में हों। हमारे दिमाग में बुढापा शब्द के कहने पर ही तुरंत बुढ़ापे के शिकार व्यक्तित्व की छवि उपस्थित होती है। सामान्य रूप से हम यह सोचने लगते हैं कि बुढ़ापा अर्थात जो मात्र निकम्मा है, जो किसी काम करने लायक न हो, जो मात्र परिवार के लिए बोझ है, आर्थिक अभावों में भागीदार है, जिसे

परिवार से कुछ लेना–देना नहीं है, ऐसे तरह–तरह के विचार घर करते हैं। स्वाभाविक रूप से बुजुर्गों के प्रति हमारे मन में आस्था एवं आत्मीयता की भावना पनपना मुश्किल होता है। वास्तव में बुढ़ापा नई पीढ़ी के लिए प्रेरणास्रोत एवं दिशा–निर्देशक होता है।

साहित्य में वृद्धजन विचार :-

हिंदी तथा अन्यान्य प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य में वृद्धजन को केंद्र में रखकर विचार अवश्य हुआ है। लेकिन साहित्य में चित्रित बुढ़े व्यक्तित्व को न दिशादर्शक के रूप में न आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, बल्कि अधिकतर साहित्य में बुजुर्गों का चित्रण मात्र युवा और बुजुर्ग के आपसी संघर्ष के रूप अभिव्यक्त होता नजर आता है। सही रूप में बुढ़ापे में काफी क्षमता होती है। जिसका जायजा हम महात्मा गांधी जी के नेतृत्व से ले सकते हैं। यह वह व्यक्तित्व था जिसने युवाओं को साथ लेकर अपनी असीम शक्ति का परिचय देते हुए अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए मजबूर किया था। यदि हम कुछ नया करना चाहते हैं तो उसके सूत्र हमें बुजुर्गों से ही प्राप्त हो सकते हैं। किसी भी रचनात्मक कार्य में बुजुर्ग हमारे लिए पथदर्शक तथा दिशादर्शक के रूप में भूमिका अदा करते हैं। ''बूढ़ों या पुराने के अनुभवों से बहुत कुछ श्रेष्ठ, सकारात्मक मूल्यों को आत्मसात करके प्रकट होने व रचनाशीलता ही भविष्य की दीपशिखा प्रज्ज्वलित करने में सक्षम होती है।''[3]

द्रष्टव्य कथन से विदित होता है कि नव सृजन का मुख्य आधार बूढ़े तथा पुराने मूल्य ही होते हैं। बुजुर्ग दीपशिखा के रूप में दायित्व वहन करते हुए दिखाई देते हैं। वृद्धावस्था में बुजुर्ग अक्सर स्वयं पर कोसते नजर आते हैं। अपनी पूरी जिंदगी वे अपने घर, परिवार, बच्चे, नौकरी तथा समाज के लिए काटते अवश्य है, लेकिन जैसे ही वे अपनी सेवा से निवृत्त होते हैं और आय के स्रोत कम होते हैं, तो उनके प्रति परिवारवालों का नजरिया भी बदलता हुआ दिखाई देता हैं। हिंदी साहित्य में वृद्धावस्था केंद्री पहल कम मात्रा में क्यों न हो, दृष्टिगोचर होती है। हिंदी साहित्य की उपन्यास, कहानी तथा कविताओं में बुजुर्गों का चित्रण मिलता है। प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी', उषा प्रियम्वदा की 'वापसी', जैनेंद्रकुमार की 'सुख', मनिशा कुलश्रेष्ठ की 'प्रेतकामना', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' सुषम बेदी की 'गुनाहगार', अमरीक सिंह दीपक की 'तीर्थाटन', कृष्णा अग्निहोत्री की 'यह क्या जगह है दोस्तों' तथा ममता कालिया के 'दौड़', अनामिका के 'तिनका तिनके पास' आदि उपन्यासों के साथ–साथ काव्य साहित्य में भी पर्याप्त मात्रा में वृद्धावस्था की विवश जिंदगी के जीते बूढ़ों का विवेचन मिलता है। डॉ. रमेश सोनी की 'गाँव पर माँ, निशा माथुर की 'एक दुआ हमारे बुजुर्ग', संजय वर्मा की 'आधुनिक', डॉ. कुमारेंद्र सिंह सेंगर की 'वृद्धावस्था', विलियम बटलर येटस् की 'वृद्धावस्था में झगड़े', डॉ. अवंतिका शेखावत की 'पागल बुढ़िया', प्रभुदयाल श्रीवास्तव की 'वृद्धाश्रम', सुमित प्रताप सिंह की 'घर में बुजुर्ग होने का अर्थ' आदि रचनाओं में भी वृद्धजन विमर्श की पर्याप्त हिमायत मिलती है।

असीम प्रेरणा का स्रोत है बुजुर्ग :-

निशा माथुर अपनी रचना 'एक दुआ हमारे बुजुर्ग' में बुजुर्गों के अतुलनीय योगदान पर प्रकाश डालती है। बुजुर्ग ही वह सहारा होते हैं जो अपनी दुआओं से नई पीढ़ी के लिए संबल बन जाते हैं। जब भी आज की पीढ़ी भ्रम का शिकार तथा दिशाहीन हो जाती है उस अवसर पर बुजुर्ग ही पथदर्शक के रूप में दायित्व वहन करते

दृष्टिगोचर होते हैं। 'हमारा जूनून, हमारी ख्वाहिश, ताकत बन जाते हैं, हमारे बुजुर्ग।
...मरते हुए के लिए उस पल आशीर्वाद बन जाते हैं, हमारे बुजुर्ग।
दिये की तरह टिमटिमाते जलते हैं।''[4]

द्रष्टव्य उद्धरण इस बात की पुष्टि करता है कि जिन बुजुर्गों को आज की पीढ़ी परिवार के लिए मात्र बोझ समझती है, उन्हें बुजुर्गों के असीम योगदान पर विचार करना होगा। नई पीढ़ी के लिए बुजुर्ग सबसे बड़ी ताकत के रूप में होते हैं। किसी भी प्रकार के संकट के समय बुजुर्ग ही अपने अनुभवों के आधार पर नई पीढ़ी के लिए आधार बन जाते हैं। थोड़े हम कह सकते हैं कि बुजुर्ग युवाओं के लिए दीये की तरह स्वयं जलकर दूसरों को सदा के लिए प्रकाश दे देते हैं। इसलिए स्वयं जलकर दूसरों के लिए प्रकाशदायी बननेवाले बुजुर्गों के प्रति भी अपना कुछ दायित्व बन जाता है, इस बात पर विचार करने के लिए कवयित्री बाध्य करती है। 'घर में बुजुर्ग होने का अर्थ' कविता में सुमित प्रताप सिंह ने घर में बुजुर्गों का साया किसी वटवृक्ष से कम नहीं है। घर में बुजुर्गों का होना व्यापक अर्थों में लिया जा सकता है। घर तथा परिवार के लिए बुजुर्ग पाठषाला की भाँति होते है। कवि का कहना है ''घर में बुजुर्ग का होने का अर्थ है, जीवन की एक विशेष पाठशाला का होना,.. हमारे परिवार के चारों ओर, एक मजबूत चारदीवारी का होना''[5]

स्पष्ट है कि परिवार की दृष्टि से बुजुर्गों का अनन्य साधारण महत्व होता है। वे किसी पाठशाला से कम नहीं होते है। क्योंकि परिवार का हर कोई उनके मार्गदर्शन का जब चाहे लाभ उठा सकता है। परिवार की कड़ी सुरक्षा भी उन्हीं के बूते पर होती है। इसलिए परिवार में बुजुर्गों का होना जरूरी है। जो अपने व्यापक तजुर्बे। से नई पीढ़ी को हर समय लाभान्वित होने का अवसर प्रदान करते है।

आधुनिकता के प्रभाव में दबता बुजुर्ग :-

संजय वर्मा 'दृष्टि' अपनी कविता 'आधुनिक' में बुजुर्गों का महत्त्व तथा आधुनिकता के कारण आए बदलाव एवं उसमें दबते बुजुर्गों का लेखा–जोखा प्रस्तुत करते हैं। भागदौड़ भरी जिंदगी और रोजी–रोटी की तलाश में व्यक्ति अपने परिवार की आधारशिला को ही नजर अंदाज करता दिखाई देता है। संजय वर्मा अपनी रचना में कहते हैं–

''बूढ़े पग नहीं दबाए जाते अब क्यों, क्या जिंदगी आधुनिक हो गई
बूढ़ों को संग ले जाने में शर्म हुई पागल अब क्यों?...
भागदौड़ भरी दुनिया में उनके पास बैठने का समय कहाँ?''[6]

आधुनिकता की चक्काचौंध ने आदमी की आदमियत मानों लापता हुई है। आधुनिकता के छत के नीचे दबी युवा पीढ़ी की जिंदगी अपने ही बुजुर्गों का खयाल रखने में असमर्थ दिखाई देती है। कवि कहता है कभी एक जमाना था, जब घर के बेटे घर के बुजुर्गों के पैर दबाते थे, यहाँ तक कि किसी अवसर पर बूढ़ों को भी अपने साथ ले जाते थे लेकिन आज स्थितियाँ बिल्कुल इसके उल्टी दिखाई देती है। बेटों को अपने माता–पिता के पैर दबाने के लिए समय नहीं है, न ही वह अपने साथ उन्हें ले जाने में गौरव महसूस करता है और न ही वह अपने माता–पिताओं के पास बैठने के लिए समय दे पाता है। आर्थिक अभावों के कारण हों, या आधुनिकता

की हवा में बह जाने के कारण क्यों न हो आज की पीढ़ी अपने पारिवारिक दायित्वों से खुले आम विमुख होती जा रही है। स्वाभाविक रूप से बुजुर्ग आधुनिकता की चक्की के पाटों में पिसता जा रहा है। इसलिए कवि बजुर्गों का आदर तथा सम्मान करने की पुरजोर अपील करता है। आज की पीढ़ी को सोचना होगा कि यदि घर में बुजुर्ग नहीं है तो उनके लिए बच्चों की कहानियों का कोई मतलब नहीं है।

पीढ़ियों के अंतर का शिकार बुजुर्गों की जिंदगी :-

डॉ. कुमारेंद्र सिंह सेंगर 'वृद्धावस्था' कविता में बुजुर्गों आत्म विवश जिंदगी को प्रस्तुत किया है। बुजुर्गों को इस बात का एहसास है कि वे स्वयं तो थक चुके ही हैं, जैसी भी हो उम्र काटनी ही है। लेकिन बुजुर्गों को दुःख इस बात का होता है कि जिन बच्चों को उन्होंने अपनी उँगली पकड़कर चलना सिखाया, वही बच्चे आज बड़े होने बर उन्हीं उँगलियों से ठेंगा दिखाते जा रहे हैं। कवि का कहना है ''कल तलक जो थाम कर चले थे उँगली हमारी, आज वो ही उँगली दिखा रहे हैं। हमें समझ कर एक बेकार, नाकार वस्तु, किसी कोने में कबाड़खाने में लगा रहे हैं।''[7] कहना सही होगा कि कवि ने अपने ही परिवार से अपेक्षित किंतु उपेक्षित जिंदगी के शिकार वृद्ध की दयनीयता का परिचय दिया है। जिन बच्चों के महत्वपूर्ण आधार के रूप में बुजुर्गों ने अपनी भूमिका अदा की, यहाँ तक कि अपने बच्चों के बहुआयामी विकास के लिए सदा प्रयत्नशील रहें, उन्हें ही आज कबाड़खानें की बेकार वस्तु समझा जाने लगा है।

उनका मानना है कि ''अब आज के युवाओं को हमारी चाहत नहीं, उन्हें हमारे अनुभवों और तजुर्बों की जरूरत नहीं। वे जीना चाहते हैं, आज की तेज रफ्तार की जिंदगी को।''[8] स्पष्ट है कि आज के युवाओं में बुजुर्गों के प्रति किसी भी प्रकार की चाहत नहीं है। उन्हें बुजुर्गों के समृद्ध अनुभवों की भी आवश्यकता नहीं समझते। वे आधुनिकता की तेज रफ्तारवाली जिंदगी जीना चाहते हैं। बुजुर्गों के उन्हें किसी प्रकार के समझाने पर उन्हें पीढ़ियों के अंतर की दुहाई देने की साजिश करते हैं। कहना सही होगा कि पीढ़ियों के अंतर के नाम पर बुजुर्गों की अभिव्यक्ति को मुखिरित होने नहीं दिया जाता।

अपनेपन को तलाशती बूढ़ों की जिंदगी :-

डॉ. अवन्तिका शेखावत ने 'पागल बुढ़िया' शीर्षक कविता में कचरा विनती पागल बुढ़िया की दर्दभरी वाणी को प्रस्तुत किया है। पागल बुढ़िया भारतवर्ष में कचरा बीनती संपूर्ण बुजुर्ग पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है, जो विवषता की जिंदगी का षिकार है। कवयित्री कहती है ''हम बदल गये हैं, हमारी रफ्तारें तेज हो गयी हैं, बड़ी खुदमिजाज है, कहती हाथ फैलाये जिंदगी पार नहीं होती, ये लो कोई कहता कमसिन बुढ़िया, कोई कचरेवाली बुढ़िया, हम तथाकथित षिक्षित पीढ़ी की अम्मा कहने की बात नहीं होती।''[9] कहना सही होगा कि आज की पीढ़ी तेज रफ्तार को ही अपनी जिंदगी मान रही है। बुजुर्गों के प्रति अपने कर्तव्य निभाने की अपेक्षा बुढ़ापे की शिकार कचरा बीननेवाली औरतों को ही काई कमनसीब मानता है, कोई कचरेवाली मानता है। लेकिन आज की शिक्षित समझनेवाली पीढ़ी का कोई भी माई का लाल अम्मा कहने का साहस नहीं जुटा पाता है। पागल बुढ़िया की आँखे कचरे के ढेर में तथा शिक्षित समाज में अपनापन तलाशती हुई अपनी जिंदगी के दिन काटती है। बुढ़िया के सवालों का किसी के भी पास कोई उत्तर नहीं है। कवयित्री निश्चित ही पाठकों को सोचने के लिए बाध्य करती है।

पश्चिमी प्रभाव में वृद्धाश्रम का शिकार : –

भारतीय संस्कृति अपने अनुठेपन के कारण दुनिया की आदर्श संस्कृति रही है। भारतवर्ष अपनी संयुक्तिक कुटूंबव्यवस्था के कारण बहुचर्चित रहा है। पश्चिमी देशों में वृद्धाश्रमों में माता–पिताओं का होना आजकल मानों प्रतिष्ठा का ही विषय बना है। पश्चिमी देशों के अंधानुकरण के कारण हम अपनी विरासत को किनारे करते जा रहे हैं। एल्विन टॉफ्लर का कहना है ''पश्चिमी देशों में वृद्धों का सम्मान कम है। यहाँ के लोग उन्हें आउट डेटेड मानकर घर से बाहर कर देते हैं। इसलिए यहाँ वृद्धाश्रमों की संख्या बढ़ती जा रही है।''[9] इस कथन से स्पष्ट होता है कि हमने आधुनिकता के सकारात्मक अनुकरण की अपेक्षा अंधानुकरण को अत्यधिक महत्व दिया। जिससे हम अपनी संस्कृति को भी किनारे फेंकते जा रहे हैं। प्रभुदयाल श्रीवास्तव 'वृद्धावस्था' शीर्षक रचना में वृद्धाश्रमों में जाने वाले वृद्धजनों की परेशानियों एवं तकलीफों के कारणों की तलाश करते हुए कहते हैं–''दुर्बल–निर्बल जेठे–स्याने, वृद्धाश्रम में रहते क्यों हैं ? दूर हुए क्यों परिवारों से, दुःख तकलीफें सहते क्यों हैं ?... पश्चिम का भारत आना है, पश्चिम ने तो मात–पिता को केवल एक वस्तु माना है।''[10] द्रष्टव्य पंक्तियाँ इस बात की पुष्टि करती है कि भारतीय परिवार पश्चिम की हवा के कारण अपनी सांस्कृतिक जड़ों अर्थात् विरासत से कटते जा रहे हैं। पश्चिम में जहाँ माता–पिता को मात्र वस्तु माना जाता है, जिन्हें पुरानी हो जाने पर बाहर फेंकने की बात की जाती है। उसी पश्चिम का हम अंधानुकरण करते जा रहे है, जो तर्कसंगत नहीं है। पश्चिम से कितना प्रभावित होना है? इस बात पर विचार करने के लिए कवि मजबूर करता है।

करियर के पीछे दौड़ता बेटा और गाँव पर माँ :–

अपने करियर तथा रोजी रोटी की तलाश में भी आज के युवाओं को अपने माता–पिता की ओर ध्यान देने के लिए फुरसत नहीं है। जहाँ एक ओर अपने परिवार के प्रति दायित्व से युवा अवश्य प्रतिबद्ध है। लेकिन अपनी मजबूरी एवं करियर के कारण वह गाँव में रहती अपनी माँ से मिल भी नहीं सकता। डॉ. रमेश सोनी 'गाँव पर माँ' कविता में बेटा अपन घर छोड़कर दूर शहर में चला जाता है। करियर तथा अत्यधिक पाने की लालसा में वह बहुत कुछ खो भी देता है। कवि कहता है ''वह तमाम उम्र, बॉस के लिए लिखता रहा चिट्ठियाँ, करता रहा सही। गाँव पर उसकी माँ, तमाम उम्र, अपने बेटे की एक चिट्ठी के लिए तरसती रही।''[12] द्रष्टव्य पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि कवि ने करियर तथा नौकरी के कारण माँ तथा बेटे के टूटते रिश्ते और स्नेह के अभाव में दम तोड़ती माँ की दर्दभरी दास्तान उजागर की है। बेटे को अपने बॉस के सारे काम करने के लिए काफी समय है, लेकिन जन्मदात्री माँ को एक चिट्ठीभर लिखने के लिए उसके पास समय नहीं है। माँ, बेटे की चिट्ठी की प्रतीक्षा के लिए तरसती रहती है। लेकिन एक दिन प्रतीक्षा तथा बेटे की चिट्ठी की आकांक्षा के साथ–साथ गुजर जाती है।

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त विवेचन–विश्लेषण के पश्चात् कहा जा सकता है कि वृद्धजन विमर्श से संबंधित उक्त पहलु निश्चित ही पाठकों को सोचने के लिए मजबूर करते हैं। वर्तमान में वृद्धजन विमर्श चिंता की अपेक्षा चिंतन के लिए बाध्य करता है। गौरतलब है कि प्रेमचंद से लेकर आज तक के हिंदी साहित्य में इस विमर्श की दृष्टि से

रचनाकारों की प्रतिबद्धता दृष्टिगत होती है। हिंदी साहित्य की कहानी, उपन्यास तथा काव्य में प्रस्तुत विमर्श पर काफी बहस परिलक्षित होती है। फिर भी आज के परिवेश के अनुरूप यह विमर्श व्यापक धरातल की माँग करते हुए उसके चरितार्थ की अपेक्षा रखता है। विवेचित कवि आज के प्रातिनिधिक कवि के रूप में लिए गए है। बुजुर्गों तथा वृद्धजनों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है जो नई तथा युवा पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक एवं पथदर्शक रहा है। भारतीय युवाओं को पाश्चात्य अंधानुकरण से प्रभावित होने की अपेक्षा भारतीय संस्कृतिगत विरासत से भली–भाँति परिचित होना आवश्यक प्रतीत होता है। युवा पीढ़ी को उनके सम्मान एवं आदर को अपने जीवन के केंद्र में रखना समय की आवश्यकता परिलक्षित होती है।

संदर्भ संकेत :–

1. http://m.dw.com/hi/बुजुर्गों
2. शर्मा ऋषभदेव (सं.) – वृद्धावस्था विमर्श, 2016, पृष्ठ–20, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद।
3. http:www.jansatta.com 9 sept. 2018
4. http:www.webdunia.com /hindi-poems/poem-11509
5. www.sumitpratapsingh.com/2017/10/blog-post.html
6. hindi.webdunia.com/hindi-poems/poem-116060800034_1.html
7. http://kavita-sangrah.blogspot.com/2009/03/blog-post_08.html
8. वही।
9. http://hindipoems.org/tag/
10. http://vimarshmedia.blogspot.com/2011/10/blog-post.html
11. http://hindi.webdunia.com/hindi-poems/senior-citizen-poems-117021000029_html
12. तळेकर (डॉ.) सुभाष (सं.) – काव्यायन, पृष्ठ–72, 2014, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 273-275
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

घुमंतू जनजाति की सामाजिक उपेक्षा, इतिहास लेखन के सन्दर्भ में

–डॉ. भारत भूषण

इतिहास विभाग, माधव विधि महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

घुमंतू का अर्थ इधर उधर घूमने वाला, किसी निश्चित स्थान पर न रहकर इधर–उधर घूमते हुये अपना जीवनयापन करने वाला समूह घुमंतू समुदाय कहलाता है।

भारत में घुमंतू जनजाति की आबादी 15 करोड़ के आसपास है। 2011 की जाति के आधार पर हुई जनगणना के आधार पर है, लेकिन वर्तमान समय में इनकी संख्या 20 करोड़ तक पहुँच गई है।

घुमंतू जनजाति जनसंख्या के हिसाब से आजाद भारत में एक महत्वपूर्ण भागीदारी रखती है, लेकिन सामाजिक न्याय व विकास से घुमंतू जनजाति आजादी के 75 वर्ष बाद भी सामाजिक विकास से कोसो दूर है। घुमंतू जनजाति की सामाजिक उपेक्षा आजाद भारत में चिंता का मुद्दा है।

1871 में ब्रिटिश सरकार ने आपराधिक जनजाति अधिनियम बनाया था इस अधिनियम के तहत घुमंतू समुदाय को जन्मजात अपराधी घोषित कर दिया एवं इनके सभी कामों पर रोक लगा दी एवं उनकी जाति पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया, 1947 में भारत को आजादी मिली लेकिन घुमंतू जनजाति को 31 अगस्त 1952 को इस कानून से आजाद भारत में आजादी मिली।

आजाद भारत में भी घुमंतू जनजाति को पूरा न्याय नहीं मिला इस जनजाति को आजाद भारत में भी आजादी 5 साल बाद मिली, घुमंतू जनजाति को आजादी तो मिली लेकिन भारत सरकार घुमंतू जनजाति पर दूसरा अभ्यस्त अपराधिकता अधिनियम लागू कर दिया यह अधिनियम अंग्रेजों के अधिनियम से थोड़ा हल्का था। इस कानून से भी घुमंतू जनजाति विकास और प्रगति से वंचित रह गई। यह घुमंतू जनजाति पर अभ्यस्ता, अपराधिकता अधिनियम आज तक लागू।

आजादी के बाद भारत सरकार ने 1972 में वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम पारित किया इस अधिनियम के बाद सांप पकड़ने, भालू, बंदर का खेल दिखाने पर रोक लगा दी और जंगल पर रोक लगा दी गई।

1982 में नट समुदाय के द्वारा रस्सी पर करतब दिखलाने पर भी रोक लगा दी। बाजारों से नमक बेचने का अधिकार भी 1995 में छीन लिया गया। यू.पी.ए. सरकार ने 2005 में घुमंतू जनजाति के सामाजिक विकास के लिए रैनके आयोग का गठन किया इस आयोग के अध्यक्ष बालकृष्ण रैनके थे।

रैनके आयोग का मुख्य कार्य घुमंतू जनजाति का पता लगाना और उत्थान व विकास हेतु सुझाव देना था। रैनके आयोग ने 2008 में घुमंतू जनजाति के सन्दर्भ में अपनी रिपोर्ट तत्कालीन केन्द्र सरकार के पटल पर

सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय को सौंपी। किन्हीं कारणवश रैनके आयोग की रिपोर्ट को संसद के समक्ष बहस के लिए नहीं रखा जा सका।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में 2014 में नई सरकार आयी। एन.डी.ए. को नई सरकार ने भीखूराम इदाते की अध्यक्षता में एक बार फिर एक नए आयोग का गठन किया गया। इस अयोग ने 2019 में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी। भीखूराम इदाते आयोग ने अपनी रिपोर्ट का आधार रैनके आयोग की रिपोर्ट को बनाया, परन्तु दोनों आयोगों की रिपोर्ट के बाद भी परिणाम कुछ नहीं निकला। केन्द्र सरकार ने 2019 के बजट में एक बार फिर एक नया आयोग बनाया। इस बार कुछ उम्मीद की किरण दिखी। केन्द्र सरकार ने राज्य में घुमंतू बोर्ड बनाये जाने की घोषणा एवं नीति आयोग के अंतर्गत घुमंतू समुदायों के उत्थान एवं विकास हेतु एक नया पद बनाया और उस पद का अध्यक्ष भीखूराम इदाते को नियुक्त किया गया, लेकिन वर्तमान समय में इस आयोग ने घुमंतू जनजाति के विकास के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया।

राजस्थान में जब गहलौत सरकार आयी तो इस सरकार ने घुमंतू बोर्ड बनाया। इस जनजाति के लिए 50 लाख रूपये बजट भी रखा, परन्तु गहलौत सरकार के बाद वसुंधरा सरकार आयी एक अध्यक्ष और सदस्य बनाये और अध्यक्ष को मंत्री का दर्जा भी दिया गया, परन्तु विकास के लिए बजट नहीं दिया गया। राजस्थान की कुल जनसंख्या 7 करोड़ है। घुमंतू जनजाति की संख्या 60 लाख के आस–पास है। फिर यह समुदाय विकास व प्रगति की चमक से कोसों दूर है।

मध्य प्रदेश में 61 घुमंतू समुदाय निवास करते हैं जिनकी जनसंख्या लगभग 70 लाख है। उत्तर प्रदेश–बिहार में इस समुदाय की संख्या 50 लाख के आस–पास है। फिर भी सामाजिक उपेक्षा का जीवन जीने के लिए मजबूर है।

भारत के लड़ाकू वीरों को अंग्रेज शासकों ने जन्मजात अपराधी घोषित कर दिया। क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट इन्क्वायरी कमेटी (अय्यगर कमेटी–1949–50) ने अपनी रिपोर्ट पेश की, इस रिपोर्ट में क्रिमिनल ट्राइब्स को दो भागों में बांटा गया, पहले भाग वह लोग थे जो एक ही स्थान पर निवास करके अपना जीवन–यापन करते थे, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर युद्ध भी किया करते थे। दूसरे वे लोग थे जो घूम–घूमकर एक स्थान से दूसरे स्थान जाते थे इसी क्रम में वे अपना जीवन–यापन करते हैं। जैसे– नट, कंजर, सासी आदि थे ये लोग घुमंतू कहलाये।

घुमंतू जनजाति के लिए ईमानदारी एवं सक्रियता से कार्य करने वाली प्रमुख संस्थाओं में से एक मुक्ति धारा के सचिव रतन कात्यांगनी के अनुसार ब्रिटिश राज से पहले घुमंतू जनजातियों का जीवन सरल व संपन्न एवं सम्मान जनक हुआ करता था। बंजारे, गाड़िया, लोहार, बावरिया, नट, काल्बेलिया, भोपा, सिकलीचर, सिंगीवाल, कुचबंदा, कलंदर आदि सभी समाज के मुख्य अंग थे।

मुक्तिधार संस्था द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से इन तमाम घुमंतू जनजातियों एवं इनके पारंपरिक व्यवसायों के बारे में प्रमुख जानकारी मिलती है, जो निम्न प्रकार है :–

बंजारे पशुओं पर माल ढोने, नमक, मुलतानी मिट्टी का काम किया करते थे गाड़िया लोहार जगह–जगह जाकर औजारों का निर्माण करते थे व बेचते थे।

बावरिये जानवरों का शिकार और उनके अंगों का व्यापार भी किया करते थे। नृत्व व करतब नट दिखाते

थे सांपों का खेल कालबेलिया (सपेरा) दिखाते थे।

भोपा समुदाय स्थानीय देवी देवता के गीत गाते थे सिकलीगर समुदाय धारदार हथियारों पर धार लगाते थे। वन औषधियों का ज्ञानदाता सिगीवाल को समझा जाता था सिगीवाल लोग हिरन के टूटे हुये सींग से बीमार लोगों का इलाज करते थे, मिट्टी के खिलौने का काम कुचवदा लोग करते थे नहर एवं जमीन को समतल बनाने का काम ओढ समुदाय के द्वारा किया जाता था। मनुष्यों की पीढ़ियों का लेखा जोखा जागा समुदाय करता था, जैसे–जैसे ज्ञान, विज्ञान व तकनीक आयी जनजातियाँ अपने पारंपरिक व्यवसाय से दूर होती चली गयी। वर्तमान समय में जनजातियों के पारंपरिक हुनर को विकसित करना परम आवश्यक है।

निष्कर्ष :–

एक रोशनी की तलाश में आज भी घुमंतू जनजाति के लोग सरकार की ओर आँखे लगाये देख रहे हैं और उम्मीद करते हैं कि सरकार उनकी स्थिति को बेहतर करने के लिए कुछ प्रयास करेगी। घुमंतू जनजाति के सामाजिक विकास के लिए सरकार को प्रयास करने की आवश्यकता है।

घुमंतू जनजाति के लोगों को सामाजिक, शिक्षा, रोजगार, राजनीति में भागीदारी मिलनी चाहिए तब घुमंतू जनजाति राष्ट्र के विकास में अपनी भागीदारी निभायेगी तभी राष्ट्र प्रगति करेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. घुमंतू समाज से सरकारी विश्वासघात के 70 साल, अश्वनी शर्मा, 22 जुलाई 2020
2. वही
3. वही
4. घुमंतू जनजातियां – राहुल कोटियाल, 7 फरवरी 2020
5. Forward Press, B.K. Lodhi, 17 March, 2019
6. दवायर– वी.के., लोधी, 18 फरवरी 2019
7. drishti IAS
8. drishti IAS

मोबा.–8358917250

ई–मेल : drbb0448@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 276-280
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कोरोनाकाल में लॉकडाउन के दौरान पर्यावरण में हुए परिवर्तन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

–अमृता हल्दकार

जबलपुर।

सारांश :–

आधुनिकीकरण और प्रौद्योगिकीकरण से न केवल वैश्विक बदलाव हो रहे है, बल्कि पर्यावरण में भी परिवर्तन हो रहे है। वर्तमान समय में कोरोना वाइरस से मानव जीवन बुरी तरह से प्रभावित हुआ है, परंतु अगर दूसरे पहलू को देखे तो कोरोना वाइरस की रोकथाम हेतु लगाये गये लॉकडाउन से पर्यावरण स्वच्छ हुआ है। शहरों से लेकर गॉवों तक, सागरों से लेकर नदियों तक, जमीन से लेकर आसमान तक सभी में परिवर्तन दिखाई दिये है। पिछले साल दो महीने से अधिक समय तक लॉकडाउन चला,जिसकी वजह से सभी कामकाज बंद रहे ना तो कारखानें खुले है और न ही किसी प्रकार की आवाजाही थी। समाज और अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचाने वाला कोरोना वाइरस पर्यावरण के नजरिये से संजीवनी बनकर आया है। पर्यावरण को सुकुन देने वाली खबरें सामने आई है जैसे– दिल्ली एनसीआर समेत तमाम महानगरों में प्रदूषण लेबल कम होने, गंगा तथा अन्य नदियों के साफ हो जाने और नाइट्रोजन उत्सर्जन की कमी के चलते ओजोन परत के रिपेयर होने की खबरे सामने आयी है!

वैज्ञानिको के अनुसार लॉकडाउन के बाद पृथ्वी में कंपन पहले की तुलना में बहुत कम हो गया है! कोरोनाकाल में लॉकडाउन के दौराने पर्यावरण बदला है, लेकिन सवाल यह है कि क्या प्रदूषण को मनुष्य की महामारी के बहाने नहीं बल्कि अपने स्तर पर, अपनी आदतो में सुधार कर संरक्षण करते हुए नहीं बचा सकता? क्या पर्यावरण को बचाने के लिए प्रदूषण पर हमेशा के लिए लॉकडाउन नही लगा सकते? अधिक देर हुई तो प्रकृति ने कही अपने तेवर दिखलाये तो क्या होगा? क्यो न हम ऐसे ठोस कदम उठाये कि हम पर्यावरण को संरक्षित कर आने वाली पीढ॰ को उसके हानिकारक दुष्प्रभाव से बचा सके? क्या कोरोना संघर्ष के दौरान जो ऑक्सीजन सिलेंडरो में भरकर खरीदी है, भविष्य में भी उन सिलेंडरो का बोझ लेकर हमें घूमना है? पर्यावरण में प्राकृतिक संसाधनों के विशाल भंडारो के तेजी से हो रहे दोहन के फलस्वरुप पर्यावरण में असंतुलन हो रहा है जिसे नियंत्रित करने की नितांत आवश्यकता है।

प्रस्तावना :–

कोविड–19 महामारी ने संपूर्ण विश्व को काफी परेशान किया और इसने न केवल मानव जीवन का महत्व समझाया बल्कि पर्यावरण पर इसका सकारात्मक असर दिखाई दिया है।

'पर्यावरण' का अर्थ :–

''पर्यावरण दो शब्दो 'परि+आवरण' से मिलकर बना है जिसका अर्थ है परि–चारो तरफ, आवरण– घेरा यानि प्रकृति में जो भी हमारे चारों ओर परिलक्षित होता है। वायु, जल, मृदा, पेड.–पौधे, प्राणी आदि सभी पर्यावरण के अंग है और इन्हीं से पर्यावरण की रचना होती है।''[1]

'कोविड–19' का अर्थ :–

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोरोना का नाम कोविड–19 (COVID-19) रखा है, जहॉ। 'को' का अर्थ है कोरोना, 'व' का अर्थ है वाइरस, 'आई' का अर्थ है आइडेन्टिफॉइड '19' का अर्थ है साल 2019 यानि जिस वर्ष यह बीमारी पैदा हुई थी। सबसे पहले इस घातक वाइरस को 'चीन के 'वुहान' प्रांत में देखा गया था जो धीरे–धीरे संपूर्ण विश्व में मौतो का कारण बन रहा है।

बढती जनसंख्या और औद्योगिकीकरण के कारण सुख–सुविधाओं की चाहत में वृक्षो को काटकर सडक का निमार्ण, नगरों का विस्तारीकरण, फ्रीज एयरकंडीशन का, पॉलीथीन का और वाहनो के अत्याधिक उपयोग द्वारा वायुमंडल में अनेक हानिकारक गैसों का निकास जारी है। कोरोना वाइरस को रोकने हेतु लॉकडाउन लगाने से लोग अपने घरो में बंद रहे, स्कूल, कॉलेज, सभी कार्यस्थल, उद्योग–धंधे और परिवहन आदि कई महीनो तक बद रहे जिससे जल,वायु और ध्वनि प्रदूषण में काफी कमी आई है।

अध्ययन के उद्देश्य :–

क. कोरोनाकाल में पर्यावरण परिवर्तनो का अध्ययन करना।

ख. पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के कारणो का पता लगाना।

ग. पर्यावरण संरक्षण के लिए किये जाने वाले विभिन्य प्रयासो का वर्णन करना।

कोरोनाकाल में वायुमंडल पर प्रभाव :–

पृथ्वी के वातावरण में अनेक गैसे जैसे नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन–डाई–आक्साइड आदि मौजूद है। मानवीय हस्तक्षेप के कारण वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों में वृद्धि हो रही है। ''कोरोनाकाल में लॉकडाउन के कारण सभी कारखाने, ऑफिस, आद्योगिक इकाईयॉ और यातायात बंद होने से 22 मार्च को वायु गुणवत्ता इंडेक्स 101 से 250 के बीच था, जहरीली गैसे नाइट्रोजन और सल्फर के ऑक्साइडो, दिल्ली के कुछ क्षेत्रो में 34 और 51 प्रतिशत की कमी अंकित की गई।''

आकड़ों की बात करे तो जहां दिल्ली–एनसीआर जो देश का सबसे प्रदूषण जो कि देश में सबसे प्रदूषित शहर माना जाता है। यहॉ लॉकडाउन के बाद हवा साफ हुई तो आसमान भी साफ दिखने लगा। केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड के मुताबिक लॉकडाउन 22 मार्च से 18 मई के बीच वायु की गुणवत्ता काफी बेहतर हुई क्योकि दिल्ली में पीएम 2.5 'हवा में मौजूद 2.5 माइक्रोमीटर या इससे महीन व्यास के कण'' 2019 की तुलना में 50 फीसदी तक घट गये। 'मानव जीवन और पर्यावरण एक दूसरे के पर्याय है। जहां मानव का अस्तित्व पर्यावरण से है, वहीं मानव द्वारा निरंतर किए जा रहे पर्यावरण के विनाश से हमें भविष्य की चिंता सताने लगी है। हमारे प्राचीन वेदो ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अर्थववेद में पर्यावरण के महत्व को दशार्या गया है।'[2]

जलस्रोतो पर लॉकडाउन का प्रभाव :–

जल ही जीवन का एक मुख्य आधार है परंतु आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य इस बात को भूलता जा रहा है। ''कई जिलो में पानी की जांच से पता चला है कि नलकूप से आने वाला पानी पीने लायक नही है। भोजपुर जिले में आर्सेनिक की मात्रा बहुत अधिक पाई गई है, जिसका सेवन स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक है।''[3]

लॉकडाउन में वायुप्रदूषण ही नहीं जल प्रदूषण में भी भारी कमी आई है। दो– चार महीने पहिले सरकार जहॉ गंगा नदी को स्वच्छ बनाने हेतु 20 हजार करोड़ रुपये के प्रावधान से ''नमामि गंगे'' अभियान चला रही थी। देश में पिछले 60 दिन के लगे लॉकडाउन से प्रदूषण में पचास प्रतिशत की कमी आई है साथ ही गंगा नदी में बायोकेमिकल ऑक्सीजन डिमांड में भारी गिरावट आई है और ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ी है। जलीय जीवों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। यमुना के प्रदूषण में भी तैंतीस प्रतिशत कमी दर्ज की गई है। गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय की रिर्पोट के मुताबिक लॉकडाउन में उद्योगों और सीवरेज वेस्ट का गंगा में आना कम हुआ है जिसकी वजह से इसकी शुद्धता में बढ़ोत्तरी हुई है, यही हॉल अन्य नदियों का भी है।

ध्वनि पर लॉकडाउन का प्रभाव :–

ध्वनि प्रदूषण भी एक गंभीर समस्या है जिसका मुख्य कारण उद्योग में मशीनो की आवाज, परिवहन, निमार्ण कार्य, ध्वनि विस्तारक यत्र, जनसंचार, हवाई अड्डे आदि है। ''वायु प्रदूषण हो या जल प्रदूषण, प्लास्टिक प्रदूषण हो या ध्वनि प्रदूषण, इनका खामियाजा केवल मनुष्यों को ही बल्कि धरती पर विद्यमान प्रत्येक प्राणी को भुगतना पड़ता है।''[4] केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड की अध्ययन रिपोर्ट के मुताबिक ध्वनि प्रदूषण में लॉकडाउन के दौरान 5 से 10 डेसीबल की कमी आई है। दिल्ली के भीड़भाड़ वाले इलाके में दिन के समय ध्वनि प्रदूषण का सामान्य स्तर 55 और रात में 45 डीबी था। लॉकडाउन में सभी कारखाने व उद्योगों की मशीने बंद, परिवहनो के हार्न को शोर बंद, शादी–विवाहो में डीजे का शोरगुर बंद, जनसमूहों का एकत्रीकरण बंद थे अतः ध्वनि प्रदूषण में गिरावट आयी है।

वनस्पतियों एवं वन्यजीवों पर कोरोनाकाल का प्रभाव :–

''अर्थव्यवस्था और पर्यावरण का बहुत घनिष्ट संबंध है। सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यो को पूरा करने के लिए जो भी कार्यान्वित किया जाता है उसका प्रभाव वातावरण पर निश्चित रुप से पड़ता है।''[5] लॉकडाउन के कारण जिंदगी में एक ठहराव सा आ गया है और इसके साथ ही पौधो को पनपने, बढ़ने और अधिक ऑक्सीजन उत्पादन करने का मौका मिल रहा है। लॉकडाउन में मछली पकड़ने के क्रम में गिरावट देखा गयी। जो जानवर कभी सामने आने की हिम्मत नहीं करते थे, नेशनल पार्क और चिड़ियाघर आदि के बंद होने से सभी को स्वच्छंद विचरण करते देखा गया। एसटीआर में बुलबुल आदि चिड़ियो की चहचाहट काफी साफ हो गयी, पार्क में भी तरह–तरह की तितलियो को मंडराते देखा गया। नेनीताल के चिड़ियाघर में बाघ धूप सेकने के लिए पेड़ो पर चढ़ जाते तो भालू को भी गुफा के बाहर देखा गया।

कोरोना का मानवजीवन पर प्रभाव :-

मानव प्रकृति का एक अभिन्न अंग है ''सार्वजनिक और सार्वभौमिक तथ्य है कि हमारी सृष्टि का कुशल संचालन एक स्वनिर्धारित प्रक्रिया, नियम और क्रमशः परिवर्तनो के अनुसार हो रहा है। इस सुनिर्धारित व्यवस्था में कुछ भी हेर–फेर, हस्तक्षेप, अव्यवस्था होती है तब ही पर्यावरण संतुलन विचलित हो जाता है।''[6]

कोरोना वाइरस प्रकृति में मानव हस्तक्षेप का ही परिणाम है। कोरोना नामक महामारी को रोकने के लिए लगाए गए लॉकडाउन से देश की अर्थव्यवस्था को बहुत अधिक नुकसान हुआ है। जो मजदूर रोजमर्रा के काम द्वारा अपना पेट पालते थे उनके सामने आजीविका की समस्या हो गई। अनेक परिवारो ने अपनो को खो दिया, कुछ लोगो को घरो में बंद रहकर डिप्रेशन और चिडचिड़ापन महसूस किया। परंतु लॉकडाउन के दोरान लोगो ने अपने परिवार, बुजुर्गो और बच्चो के साथ अनमोल पल बिताए और रिश्तो की कड़वाहट को मिटाई। रामायण, महाभारत जैसे पौराणिक सीरियलो का आनंद लिया। कुछ लोगो ने अपनी दबी हुई इच्छाओ जैसे पाककला, नृत्यकला, गायन और पेंटिंग में मन लगाया।

''मानव के स्थूल भौतिक शरीर का विनिर्माण जिन पॉच तत्वों से हुआ है,वे प्रकृति के ही मूलभूत अंग है। अतः मानव मन में प्रकृति के प्रेम अनैसर्गिक नही है। प्रकृति से विनिर्मित होकर, उसके तत्वो से पोषित होकर अंत में उसी में विलीन होना मानव जीवन की नियति है।'' डॉ मारिया के मुताबिक ''अगर देशो में प्रदूषण का उच्च स्तर होता है तो कोविड–19 से उनकी लड़ाई में इस पहलू पर भी विचार करना ज़रुरी है, क्योंकि वायु प्रदूषण के चलते कोविड–19 के मरीजो की मृत्युदर में इजाफा होने की आशंका है।''

पर्यावरण संतुलन हेतु सुझाव :-

''धरती मां की गोद मे रहकर हम अपने आपको सुरक्षित महसूस करते है परंतु उसका विकराल रुप भी देखा है जब प्राकृतिक विपदाओ जैसे बाढ, और सूखे के सामने हम अपने आपको लाचार और विवश पाते है।''[8] पर्यावरण संतुलन हेतु कुल भूभाग का 33 प्रतिशत वनस्पतियो से ढका होना चाहिए। पहले भारत की 70 प्रतिशत भूमी वनो से अच्छादित थी जो अब 22 प्रतिशत ही बची है, अतः वनो की कटाई को रोकने हेतु कठोर नियम बनाने की आवश्यकता है। विश्व में हर साल कुछ दिन संपूर्ण लॉकडाउन पर्यावरण के हित में लगाया जाए। हमें अपनी आदतो में भी कुछ सुधार करने की आवश्यकता है जैसे खुद को हफ्ते में एक दिन लॉकडाउन में रखना या सप्ताह में एक दिन गाड़ी की बजाय साइकिल, पैदल या सार्वजनिक वाहन का उपयोग करना। कुछ ऐसी व्यवस्था की जाए कि हफ्ते में दो दिन वर्क फ्रॉम होम कर दिया जाए।

विकसित और विकासशील देशो में जो काम बैठे–बैठे ऑनलाइन निपटा देते है उसी काम को करने के लिए आम भारतीय को सरकारी ऑफिसो, बैंको, राशन की दुकानो पर चक्कर लगाने पड़ते है। समाचार पत्रो, नोट, विज्ञापन पत्रो आदि का निर्माण वृक्षो से किया जाता है अतः हम पेपररहित लेनदेन करे और अन्य लोगो को भी इसके लिए प्रेरित करे। पर्यावरण जागरुकता के विकास में 'शिक्षा' एक अहम भूमिका निभा सकती है। छात्रो को पौधें लगाने और उनकी रक्षा हेतु फिल्म दिखाना, भ्रमण पर ले जाना, सामूहिक क्रियाओ के अवसर देना आदि के द्वारा जागरुकता लाना। स्नातक की डिग्री प्राप्त करने हेतु पेड़ लगाना आवश्यक हो ऐसी व्यवस्था हमारे देश में भी लागू करने की आवश्कता है जिससे प्राकृतिक संतुलन बना रहे।

निष्कर्ष :–

अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हमारी प्रकति को सुरक्षित करने हेतु धरती का हर एक प्राणी को अपना योगदान देना होगा। आज हम पर्यावरण के प्रति जागरुक होंगे तो ही आगामी दुष्परिणामों से बच पायेगें, इसके लिए हमें प्राकृतिक संसाधनों का समय–समय पर मूल्यांकन करना होगा। हमें पेड–पौधो को हमारे पुत्र, पुत्री, मां, पिता और अन्य रुप में सेवा करनी होगी। लॉकडाउन के बाद अब अपने नियंत्रित और संयमित व्यवहार द्वारा प्राकृतिक संसाधनो की सुरक्षा करना होगा। केवल 5 जून को ही नही बल्कि हर दिन पर्यावरण दिवस की तरह प्रकृति के लिए कुछ करना होगा, तभी हम अपने पर्यावरण के साथ–साथ मानव जाति का अस्तित्व बचाने में सफल हो पायेंगें।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. 'आधुनिक जीवन और पर्यावरण', दामोदर शर्मा व हरिशचंद्र व्यास।
2. 'हिंदी साहित्य में पर्यावरण चेतना', डॉ प्रेमकुमारी सिंह,दिल्ली वि.वि.हिंदी विभाग।
3. कुइयांजान', नासिरा शर्मा, प्रकाशन वर्ष 2005, समायिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. प्रदूषण मुक्त सांसे', योगेश कुमार गोयल, हिंदी अकादमी दिल्ली।
5. 'पर्यावरण और सतत विकास', पी.एन.पांडे, गिरी विकास अध्ययन संस्थान, लखनऊ।
6. 'पर्यावरण कितने जागरुक हैं हम', रश्मि अग्रवाल 2015।
7. 'हिंदी काव्य में पर्यावरण चेतना', डॉ. राजेन्द्र कुमार सिंघवी, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
8. 'पर्यावरण, प्रदूषण और हम : मुस्कुराइए कि अभी आपका अस्तित्व है पहला संस्करण', प्रतिभा सिंह, किंडल संस्करण, उ.प्र.।
9. 'मीठी नीम', कुसुम कुमार, प्रकाशन वर्ष 2012, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. अमर उजाला समाचार पत्र 22 अप्रैल 2020।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 281-283
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श

–मा. जाधव अनिल मनोहर
विठ्ठलराव शिंदे कला महाविद्यालय, टेंभूर्णी तहसिल–माढा जिला–सोलापुर।

प्रस्तावना :–

दलित विमर्श जाती आधारित अस्मिता मूलक विमर्श है। दलित विमर्श एक भारतीय है क्योंकि भारत में भारतीय समाज की बुनियादी सरंचना है इस सरंचनाओं में से एक है। इस विमर्श ने भारत की अधिकांश भाव्याओं में दलित साहित्य को जन्म दिया है। हिंदी में दलित साहित्य विकास की दृष्टि से आज बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

दलित कौन है? यह प्रश्न् अत्यंत महत्त्वूपर्ण हैं। वर्ण–व्यवस्था में जिसे अस्पर्श, अछूत, जिसे संविधान ने अनुसूचित जाति, जनजाति कहा है, वही दलित है। दलित साहित्य के संदर्भ में अनेक विचारको नें कहा है कि दलित साहित्य कठोर अनुभवों पर आधारित साहित्य है। दलित साहित्य में मुख्यतः आक्रोश या विद्रोह की भावना है। दलित शब्द का प्रयोग 19 नवंबर 1928 ई. में 'बहिष्कृत भारत' नाम पत्रिका में डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर जी ने किया था।

'दलित साहित्य' का मूल संदर्भ अस्पर्श जाति है, जो वर्ण व्यवस्था के कारण गांव के बाहर रहती थी, जो पीडित और शोषित थी, इसलिए इसे विद्रोही, नकारात्मक साहित्य कहा जाने लगा। 'दलित साहित्य' नया जीवन दर्शन, नया विचार, प्रखर वैचारिकता नई आत्मनिष्ठा अभिव्यक्त कर रहा है। दलित साहित्य की पृष्ठभूमि चिंतनशील है। उस में भूतकाल की शोषण–परंपरा, स्मृति ग्रंथ, वर्ण–व्यवस्था स्वार्थ का विषय है। इतना ही नहीं सांस्कृतिक एंव मानवता की सत्ता से दूर रखने का बहुत बड़ा षडयंत्र है, इसका पर्दाफाश करने का सफल प्रयत्न साहित्य है। साहित्य क्षेत्र में दलित विमर्श प्राचीन काल से जमाए हुए है। दलित चेतना को दार्शनिक एंव वैचारिक आधार भगवान गौतम बुद्ध के समय से मिला है। उन्होंने सबसे पहले वर्ण–व्यवस्था के खिलाफ चुनौती दी और कालानुरुप युगो–युगों तक दलित चेतना का मार्ग अवलोकित किया। इसके बाद वर्ण–व्यवस्था, रुढी–परंपरा, जाति–व्यवस्था के विरोध में सिद्धों और नाथों ने प्रतिरोध किया और उसका विकास हिंदी संत साहित्य परंपरा में दिखाई देता है।

जैसे–भक्ति आंदोलन के कबीरदास, रैदास, सेना आदि कवियों की वाणी में दलित साहित्य के तत्व दिखाई देते है। उसके प्रमाण भी मिलते है। दलित साहित्य परंपरा मराठी साहित्य या अन्य साहित्य में भी मिलती है, परंतु हिंदी साहित्य में इस परंपरा को उस को वाणी मिली है। दलित कहानीकारों ने दलित समाज के यथार्थ की कहानी का विषय बनाया है। हिंदी में प्रकाशित दलित लेखकों की अधिकांश कहानियाँ इस यथार्थ को स्पष्ट करती हैं कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलित जाति में जन्म लेने के कारण जन्म लेने वालों को किस प्रकार की यातना का शिकार होना पड़ता है, उनके सभी मानवीय अधिकार छीन लिए जाते हैं। मे सभी कहानियाँ सवर्णों

को आत्म परिक्षण के लिए उजागर करती हैं।

भारतीय साहित्य में दलित आत्मकथा लेखन की शुरुआत मराठी साहित्य में सबसे पहले हुई है। हिंदी की पहली दलित आत्मकथा अपने–अपने पिंजरे मोहनदास नैमिशराय ने लिखी है। उसके बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' आत्मकथा ने हिंदी दलित आत्मकथा को प्रतिष्ठित किया। उसके बाद अनेक आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई।

जैसे–दोहरा अभिशाप, तिरस्कृत, नागफणी, घुटन, शिकंजे का दर्द, मेरा बचपन मेरे कंधो पर, झोपड़ी से राजभवन तक, गाँव का कुआँ आदि।

दलित आत्मकथाएँ दलित जातियों के जीवंत सामाजिक दस्तावेज हैं। हिंदी दलित नाटकों पर मराठी दलित नाटकों का प्रभाव दिखाई देता है कारण मराठी दलित नाटकों पर डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर के विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। भारतीय समाज में सदियों से दलितों पर होने वाले अन्याय–अत्याचार शोषण को अभिव्यक्त करने हेतू अत्यंत महत्त्वपूर्ण विधा मानी जाती है। अतः नाटक के माध्यम से दलित पीड़ाओं की चेतना जागृत करने का काम नाटककार करते हैं।

हिंदी में दलित उपन्यास आरंभिक अवस्था में है। इनमें से अधिकतर उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखे गए है। प्रमुख दलित उपन्यास है–'मिट्टी की सौगंध', बुधन मुक्त, मुक्तिपर्व, अमरज्योति, छप्पर, काली रेत, दूध का कर्ज, नागपर्व डूब जाती है नदी आदि।

दलित उपन्यास की सबसे बडी विशेषता है, दलित समाज की वास्तविक समस्याओं की पहचान और उनके समझाने के लिए किए जा रहे प्रयत्न या प्रयास। अधिकांश उपन्यासकारों ने दलित समाज के यथार्थ का पूरी गहराई के साथ चित्रण किया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य अनेक संभावनाओं से युक्त साहित्य है।

अतः सभी भारतीय भाव्याओं में दलित लेखकों ने अपने–अपने प्रांत की दलित परिस्थिति को अपने लेखन के माध्यम द्वारा साहित्य में स्वामी अछूतानंद जी ने आगे बढाने का काम किया है। वे संत थे, समाज–सुधारक थे, पत्रकार, कवि भी थे। अतः अछूतानंद आधुनिक हिंदी दलित साहित्य के जनक माने जाते है। इसके उपरान्त भदंत आनंद, स्वामी शंकरानंद आदि रचनाकारों ने अपनी रचना के द्वारा दलित प्रबोधन, परिवर्तन करने का कार्य किया। इस काल में साहित्य में प्रतिरोध का स्वर बहुत धीमा है। संघर्ष के स्वर नहीं के बराबर है। ये रचनाएँ दलित समाज को सिर्फ संबोधित करती हैं। इसका मतलब यह होता है कि उस काल का साहित्य अमानवीय, क्रुर व्यवस्था के विरोध नहीं लिखा गया।

आधुनिक काल में 1900 ई.से. इस समय के आगे हिंदी दलित साहित्य डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों से प्रभावित हुआ है। इसी काल में डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर के जीवन कई प्रबंध काव्य हिंदी में प्रकाशित हुए हैं। अतरू 1950 सं दलित लेखन का जोर दिखाई देता है। इसी काल में दलित रचनाकारों ने दलितों पर होने वाले अत्याचारों के विरोध में लेखन शुरु किया है। इसी समय अनेक राज्यों में दलित एत्रिकाएँ निकलने लगी।

जैसे–'निर्णयक भीम पत्रिका' 1981 में संचेलन मासिक 'सारिका' आदि सारिका पत्रिका के माध्यम द्वारा विभिन्न मराठी साहित्यकारों का परिचय कराया है। इन पत्रिकाओं के कारण हिंदी दलित साहित्यकारों को नई प्रेरणा, उर्जा मिली है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि, 1970 से हिंदी में दलित साहित्य की बिभीन्न विधाएँ

प्रमाणित होने लगी हैं। जैसे कविता–कहानी, आत्मकथा, नाटक, उपन्यास आदि।

1990 के बाद हिंदी दलित साहित्य् प्रतिरोध का स्व्र लेकर आया हुआ दिखाई देता है। उसमें दलित कविता अन्याय–अत्याचार के विरोध में आक्रमक रुप धारण करती है। इस काल के सभी कवित अपनी कविताओं, परंपरा, प्रथा, प्रवृत्तियॉ, संस्कृति आदि को विरोध करते हैं।

इस काल के प्रमुख कवित ओमप्रकाश वाल्मीकि, कर्मशील भारती, जयप्रकाश कदम, सुशिला टाकमोरे आदि। हिंदी में दलित कहानी लिखने की शुरुआत आठवें दशक में होती है। उस कामल की प्रारंभिक कहानियाँ वचनबद्ध, सबसे बड़ा सुख, अंधेर बस्ती आदि हैं। हिंदी साहित्य में दलित लेखकों के प्रकाशित कहानी संग्रह भी है। सुरंग, अपना गॉव और आवाजें, नया ब्राह्मण, सलाम, नौ बारनंगा सत्य और सिलिया, लटकी हुई शर्त, घुसपैठिये आदि। वे संपूर्ण कहानी संग्रह दलित जीवनपर लिखे हुए हैं। पूँजीवादी वर्ण–व्यवस्था और जाति–रुढी परंपरा के चक्रव्यूह में फसा हुआ दलित किस प्रकार अपनी अस्मिता एंव अस्तित्व की लढाई लढता है। उतारने का प्रयास किया हैं। भारत में दलित साहित्य का जन्म मराठी है। इस के मूल में महात्मा फुले, राजर्षि शाहू महाराज, डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर के महान कार्य महत्त्वपूर्ण है।

उनके साहित्य की प्रेरणा ही दलित साहित्य की प्रवाहमयी धारा होती है।

संदर्भ :–

1) हिंदी साहित्य : दलित विमर्श – दिव्य डिस्ट्रीब्युटर्स प्रकाशन एवं पुस्तक विक्रेता 125/79 एल–गोविंद नगर, कानपुर 208006
2) दलित विमर्श के आलोक में – डॉ. रश्मि चतुर्वेदी सरस्वती प्रकाशन, कानपुर–21
3) सलाम कहानी संग्रह – ओम प्रकाश वाल्मीकि।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 284-289
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी महिला कथा लेखन परंपरा और महुआ माजी का कथा साहित्य

-डॉ. भावना ठक्कर
आसिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एन.एस. पटेल आर्ट्स कॉलेज, आणंद।

विद्या की देवी सरस्वती, धन की अधिदात्री लक्ष्मी, शक्ति की दुर्गा, सौंदर्य की देवी रति, यह सभी नारी के आदर्श प्रतिमान है। वैदिक युग में स्त्री–पुरुष दोनों को समान अधिकार थे। महाभारत, रामायण काल तक आते–आते यह पुरुष के अधीन बन गई, मुसलमान शासन में पर्दा प्रथा ने नारी को पत्नी, बहू, देवदासी, गणिका या रखैल बना दिया। जीवन दात्री नारी ही धीरे–धीरे जीवन हिन हो गई। बाल विवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा, दहेज व विधवाओं की दुर्दशा ने नारी चेतना को उदित किया। 19वीं शताब्दी समाज सुधार आंदोलन के साथ–साथ स्त्रियों के सुधार का आंदोलन भी था। हिंदी लेखिकाएं तथा उनका कथा साहित्य इस नारी चेतना से अछूता नहीं रहा। मीरा से लेकर महादेवी तक की लेखिकाओं ने अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति दी है। बंग महिला, सुभद्रा कुमारी चौहान, चंद्रकिरण सौनरिक्सा, शिवानी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, चंद्रकांता, ममता कालिया, सूर्यबाला, मृणाल पांडे, प्रभा खेतान, महुआ माजी, अनामिका, सुशीला टाकभौरे आदि लेखिकाओं ने अपने साहित्य में नारी जीवन की पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक स्थितियों व बदलते समय की समस्याओं को रेखांकित किया है।

आरंभिक दौर की महिला कथाकारों में बंग महिला श्रीमती राजेंद्र बाला घोष का नाम महत्वपूर्ण है। इनका जन्म 1982 वाराणसी में हुआ था। बचपन में इन्हें 'रानी' और 'चारूबाला' के नाम से जाना जाता था। बंगला में यह 'प्रवासिनी' नाम से लिखती थी। हिंदी की प्रथम कही जाने वाली कहानियों में इनकी 'दुलाईवाली' का नाम लिया जाता है, जो 1907 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। 'चंद्रसेन से मेरी बातें' उनका महत्वपूर्ण निबंध है। इनके लेखन में नया युग करवट लेते दिखाई देता है। इन्होंने अपने आक्रमक लेखन द्वारा पुरुष सत्तात्मक समाज की नसे कमजोर कर दी थी तथा नारी को रूढ़िवादी व जड़ परंपरा के शिकंजे में जकड़नेवाली शास्त्रीय व्यवस्था का विरोध करते हुए नए तेवर के साथ नारी मुक्ति का अभियान चलाया। इन्होंने नारी द्वारा स्वयं पति का चुनाव करना, तलाक देना व पत्यंतर करने के अधिकार की भी मांग की अर्थात् इनके जीवन और कृतित्व में समकालीन नारी लेखन के सभी मुद्दे अंतर्भूत है।

स्त्री सरोकारों से जुड़े साहित्य को लिखने वाले आजादी पूर्व की प्रथम लेखिका अर्थात् सुभद्राकुमारी चौहान। गांधीजी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने वाली यह प्रथम भारतीय महिला थी। 'मुकुल' और 'त्रिधारा' इनके प्रमुख काव्य संग्रह है। 'सीधे–सादे चित्र', 'बिखरे मोती' और 'उन्मादीनी' इनके प्रमुख कहानी संकलन है। इनकी रचनाओं में एक तरफ नारी हृदय की सुकोमलता व उसके मार्मिक भावों की व्यंजना पाई जाती है वहीं दूसरी ओर पद्मिनी के जौहर की भीषण ज्वाला के दर्शन भी होते हैं। 'झांसी की रानी' इनकी प्रसिद्ध काव्य रचना

है। स्त्री की निजी स्वाधीनता एवं उससे जुड़े यथार्थ की अभिव्यक्ति करने के लिए इन्होंने अपनी कविता व कहानियों में छायावादी भाषा का भी विद्रोह किया।

चंद्रकिरण सौनरिक्सा हिंदी की प्रमुख महिला कथाकार है। साहित्य की अनेक विधाओं में इन्होंने अपनी एक पहचान बनाई है। इनके प्रथम कहानी संग्रह 'आदमखोर' का कथा जगत में बहुत गर्मी के साथ स्वागत हुआ था। चंदन चांदनी, वंचिता, और दिया जलता रहा, कहां से कहां नहीं आदि प्रमुख उपन्यास एवं हिरनी, वे भेड़िये, सौदामिनी, दूसरा बच्चा आदि प्रमुख कहानी–संग्रह है। इन्होंने 'मर्द' कहानी में सुशीला नामक सुंदर किंतु अशिक्षित नारी की करुण कथा को वाचा दी। नारी जीवन का यथार्थ, उनकी विसंगतियां एवं उलजनों को इन्होंने अपना विषय बनाया है।

साठोत्तरी हिंदी कथा साहित्य की एक चर्चित कथाकार है गौरा पंत शिवानी। (जन्म 17 अक्टूबर 1923) इनका कथा साहित्य नारी केंद्रित है। इन्होंने जिलाधीश, अपराजिता, उपहार, नींद, निर्वाण आदि कहानियों में नारी जीवन की विवशता को चित्रित किया है। चिर स्वयंवरा, मास्टरनी, विप्रलब्धा, गूंगा, शायद आदि कहानियों में प्रेम व्यापार की विफलता से पीड़ित नारी मन की पीड़ा को अंकित किया है। अमादेर शांति निकेतन, वातायन, जालक जैसे संस्मरण प्रमुख है। कुल मिलाकर शिवानी ने अपने कथा साहित्य में नारी व्यथा और उनके सामाजिक बंधनों को अच्छे से उभारा है। इसके जरिए पाठक नारी पात्रों के दुःखों के साथ अपना तादात्म्य जोड़ सकते हैं।

हिंदी की मशहूर लेखिका कृष्णा सोबती इन्होंने फिक्शन (आख्यायिका) के रूप में लंबी कहानियों का निर्माण किया है, जिसमें डार से बिछुड़ी, मित्रो मरजानी, यारों के यार, तीन पहाड़, ए लड़की मुख्य है। सूरजमुखी अंधेरे के, जिंदगीनामा, दिलोदानिश, समय सरगम उनके प्रमुख उपन्यास है। बादलों के घेरे इनका प्रमुख कहानी–संग्रह है। अपनी इन रचनाओं के माध्यम से लेखिका ने महिलाओं पर होने वाले विभिन्न तरह के अत्याचारों व उनकी समस्याओं को चित्रित किया है, एक अखंड, दबंग नारी की एकांतिक तस्वीर को बयां किया है।

उषा प्रियंवदा एक प्रवासी हिंदी लेखिका है। वनवास, कितना बड़ा झूठ, जिंदगी और गुलाब के फूल, मेरी प्रिय कहानियां आदि इनके कहानी–संग्रह है। पचपन खंभे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा, अंतरवर्शी, भया कबीर उदास, नदी आदि प्रमुख उपन्यास है। देसी और विदेशी परिवेश में जीवन बिताने के कारण प्रियंवदा जी के उपन्यासों की नायिकाओं में दोनों ही सभ्यताओं का प्रभाव पाया जाता है। पचपन खंभे लाल दीवारें की सुषमा, मीनाक्षी, मिस शास्त्री; रुकोगी नहीं राधिका की राधिका, विद्या; शेष यात्रा की अनु, दिव्या; अंतर्वशी सारिका आदि मध्यमवर्गीय नारी पात्रों के द्वारा परंपरा और रूढ़िवादिता के द्वंद्व में फंसी आधुनिक नारी की अस्मिता को खोजने का प्रयास किया है। कुल मिलाकर इनका साहित्य नारी स्वातंत्र्य को प्राधान्य देता है। साठोत्तरी हिंदी महिला कथाकारों में मालती जोशी का स्थान महत्वपूर्ण है। पटाक्षेप, सहचारिणी, राग–विराग, निष्कासन, ऋणानुबंध, विश्वास गाथा आदि प्रमुख उपन्यास तथा आखिरी शर्त, मध्यांतर, एक घर सपनों का, मोरी रंग दी चुनरिया, पीया पीर न जानी आदि कहानियों में लेखिका ने समकालीन सामाजिक परिवेश, नारी जीवन की संवेदना तथा नारी विद्रोह को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त कर अपनी सृजन प्रतिभा का परिचय दिया है। विधवा, कलंकिता, बांझ, अकर्मण्य पुरुष की पत्नी, पति से तिरस्कृत, रसोई में कैद दुहाजू की पत्नी अर्थात् नारी का शायद ही कोई ऐसा रूप होगा जिस पर इन्होंने अपनी कलम न चलाई हो। वे स्वयं कहती है 'शोषण नारी की

नियति बन गया है। आदिम युग से आज तक नारी पिसती चली जा रही है। पहले यह शोषण केवल शारीरिक या भावनात्मक स्तर पर ही होता था किंतु वर्तमान युग में अर्थतंत्र भी नारी की गर्दन पर सवार हो गया है। अब वह केवल भोग्या या बच्चे जनने की मशीन ही नहीं रह गई है बल्कि रुपया कमाने का यंत्र भी बन गई है। उसकी अर्जन क्षमता को भी भरकर निचोड़ा जा रहा है।'[1]

अपने साहित्य के माध्यम से प्रवक्ता और संघर्षशील नारी का निर्माण करने वाली लेखिका बनाम मृदुला गर्ग। उनका स्वयं का जीवन काफी संघर्षशील रहा है। एक स्थान पर वे स्वयं कहती है कि 'एकांत दूर की बात है, मेज पर मुतवातिर आधा घंटा बैठ पाना भी मुहाल था। कब क्या जरूरत पड़ जाए और मेरे लिए गुहार मच उठे। इन हालात में लेख और कभी कभार कहानी लिख लेती थी पर उपन्यास शुरू करने से खौफ खाती थी।'[2] इनका वंशज उपन्यास जहां स्त्रियों के उत्तराधिकार की बात करता है वहीं इन्होंने कठ गुलाब में भारतीय नारी की स्थिति, बाल मजदूरी के प्रश्न व स्त्री–पुरुष के संबंधों पर प्रकाश डाला है। कुल मिलाकर लेखिका ने अपने कथा साहित्य के जरिए यौन प्रश्नों व कुंठाओं के संदर्भ में नारी की मानसिकता को वास्तविकता के धरातल पर उतारने का प्रयास किया है।

चंद्रकांता हिंदी की प्रसिद्ध लेखिका है। 'खून के रेशे' इनकी प्रथम कहानी तथा 'अर्थान्तर' प्रथम उपन्यास रहा है। नारी विषयक विभिन्न संदर्भ उनकी कहानियों का मुख्य विषय बना है। जैसे– 'नानी तुम' कहानी में लड़कियों पर की पाबंदियों का, 'खुदरकुनी ओसा' में सती प्रथा का महिमा मंडन, 'गंगा से गंगोत्री' में बेटी जन्म पर शोक, 'कल के लिए' में पुलिस द्वारा स्त्री का शोषण, 'अनार के फूल' में ठेकेदार द्वारा स्त्री मजदूरों का आर्थिक शोषण व यौन उत्पीड़न पाया गया है। राष्ट्र की प्रथम महिला श्रीमती विमला शर्मा द्वारा इन्हें सम्मानित किया गया था।

इसी क्रम में अगली लेखिका ममता कालिया कि जिन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध, पत्रकारिता साहित्य की प्रत्येक विधाओं में हस्तक्षेप किया है। उनका उपन्यास 'बेघर' व 'एक पत्नी के नोट्स' एक मध्यमवर्गीय पढ़ी लिखी महिला की त्रासदी को बयां करती है, जहां पति के द्वारा उसे योग्य सम्मान नहीं मिलता तथा व्यंग्योक्ति का शिकार होना पड़ता है। यह सीधे रूप से पढ़े लिखे वर्ग को बेनकाब करती है।

'प्रभा खेतान हिंदी भाषा की प्रतिष्ठित उपन्यासकार, कवयित्री, समाज सेविका तथा नारीवादी चिंतक है। ये प्रभा खेतन फाउंडेशन की संस्थापक अध्यक्षा रही है। जहां इन्हें नारीवादी चिंतक होने का गौरव प्राप्त है वहीं इनकी नारी विषयक कार्यों में सक्रिय भागीदारी रही है। इन्हें प्रतिभाशाली महिला पुरस्कार तथा टॉप पर्सनालिटी अवार्ड भी प्रदान किया गया है। 'अन्या से अनन्या' लेखिका की चर्चित आत्मकथा रही है। इन्होंने सिमोन द बोउवा का विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'द सेकेंड सेक्स' का हिंदी अनुवाद किया था। इनके 'छिन्नमस्ता' और 'पीली आंधी' उपन्यास कुमारीका जीवन की विसंगतियों को दर्शाते है।

समकालीन कथा साहित्य में सूर्यबाला का लेखन अपना विशिष्ट महत्व रखता है। इन्होंने मेरे संधि पत्र, सुबह के इंतजार तक, अग्निपंखी, यामिनी कथा, दीक्षांत आदि उपन्यास; एक इंद्रधनुष, दिशाहीन, थाली भर चांद, पांच लंबी कहानियां, सूर्यबाला की प्रेम कहानियां आदि कहानी संग्रह तथा कुछ व्यंग्य भी लिखे हैं। अपने अंतर्मन को चोट पहुंचाने वाली संवेदनाओं को अपनी लेखनी के माध्यम से लिपिबद्ध किया है। समाज, परंपरा, आधुनिकता एवं उनसे जुड़ी समस्याओं को इन्होंने मुक्त रूप से वाचा दी है।

चित्रा मुद्गल हिंदी की वरिष्ठ कथा लेखिका है। 'आवां' उपन्यास के लिए इन्हें 2003 में व्यास सम्मान मिला। इनका साहित्य अनायास ही पाठकों को अपनी ओर खींचता है। एक तरफ इन्होंने मानवीय संवेदनाओं को चित्रित किया है वहीं दूसरी ओर नए जमाने की रफ्तार में फंसी नारी जिंदगी की मजबूरियों को भी वाचा दी है।

नारी जीवन के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण अपनाने वाली मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कहानी संग्रह चिन्हार, ललमानियां, गोमा हंसती है द्वारा तथा उपन्यास इदन्नमम्, बेतवा बहती रही, चाक, झूलानट, अल्मा कबूतरी, त्रिया हट आदि द्वारा जन्म से ही नकारे जाने वाले नारी पात्र की अस्मिता व अधिकार को कायम रखने का कार्य किया है। इन्होंने सती प्रथा, व्यभिचार, दहेज, बलात्कार आदि मुद्दों पर प्रकाश डाला है। खास करके स्त्री को गुलाम बनाए रखने वाली पितृसत्ता की महान संस्कृति के खिलाफ आवाज उठायी है।

मेहरून्निसा परवेज भारत की समकालीन महिला कथाकार है। इनका प्रथम उपन्यास 'आंखों की दहलीज' 1969 प्रकाशित हुआ था, बाद में कोरजा, अकेला पलाश, समरांगण और पासंग जैसे उपन्यास लिखें। आदम और हव्वा, सोने का बेसर, टहनियों पर धूप, अयोध्या से वापसी, अम्मा और समर, कानी बाट इनकी प्रमुख कहानियां है। इन्हें सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है। इनका उपन्यास 'कुरजा' आदिवासी परिप्रेक्ष्य में स्त्री जीवन की त्रासदी है।

प्रसिद्ध लेखिका व उपन्यासकार गौरा पंत शिवानी की पुत्री तथा लेखिका, पत्रकार एवं टेलीविजन के क्षेत्र में ख्यात साहित्यकार अर्थात् मृणाल पांडे। इन्होंने आजादी के बाद के भारतीय परिवेश को अपने साहित्य का आधार बनाया है। श्आदमी जो मछुआरा नहीं थाश उनका लोकप्रिय नाटक है। बचुली चौकीदारिन की कढी, एक स्त्री का विदा गीत, अपनी गवाही, हमका दियो परदेस आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। इनके कथा साहित्य में नारी का वह आधुनिक विश्व है, जिसमें उसके स्वाभिमान और स्वतंत्रता के प्रश्न अनेकों बार उत्पन्न होते रहे हैं। इन्होंने एक तरफ समाज की बाह्य व्यवस्था को उजागर किया है वहीं महिलाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण भी अपनाया है।

नासिरा शर्मा हिंदी की प्रमुख लेखिका है। सात नदियां एक समंदर, शाल्मली, ठीकरे की मंगनी, पारिजात, कागज की नाव इनके प्रमुख उपन्यास है। इन्होंने अपने कथा साहित्य में न केवल स्त्री समस्याओं को उजागर किया बल्कि उनका समाधान भी दिया है। पंकज कुमार कहते हैं 'नासिरा शर्मा उन रचनाकारों में है जिन्होंने महिला मुद्दों को अपनी कलम का निशाना बनाया है।'[3] इनके कथा साहित्य में नारी की संवेदनाओं तथा भावनाओं का इतना मार्मिक वर्णन पाया जाता है कि पाठक वर्ग उन पात्रों में स्वयं की झलक देखता है।

आधुनिक हिंदी महिला लेखिकाओं में अनामिका एवं सुशीला टाकभौरे का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अनामिका जहां अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिए तथा स्त्री मन को समझने के लिए सूफी परंपरा से प्रभावित होने की वजह से खुसरो के पास जाती है वहीं सुशीला टाकभौरे दलित लेखिका होने की वजह से अंबेडकरवादी विचारधारा से जुड़ने के लिए प्रेरित करती है।

इन्हीं सभी लेखिकाओं के क्रम में एक और नाम जुड़ता है महुआ माजी का। महुआ माजी 21वीं सदी की युवा पीढ़ी की लेखिका है। शोषित व पीड़ितों के प्रति संवेदनशीलता एवं सहानुभूति जैसे गुण उनके व्यक्तित्व में पाए जाते हैं। यह एक सामाजिक कार्यकर भी है। इनका व्यक्तिगत जीवन देखें तो काफी संघर्षमय रहा है। एक

मध्यमवर्गीय परिवार में 10 दिसंबर 1964 रांची के बिहार में इनका जन्म हुआ था। यह झारखंड महिला आयोग की अध्यक्षा भी रह चुकी है।

महुआ माजी ने अपनी प्रथम कहानी 'मोइनी की मौत' में गर्भवती महिलाएं मृत्यु के बाद डायन बन जाती है, यह बताकर वहां प्रचलित डायन कुप्रथा पर प्रकाश डाला है। इसके जरिए ग्रामीण समाज के अंधविश्वासों के बीच किस तरह नारी अपने जीवन एवं बच्चों के लिए संघर्ष करती है यह दर्शाया है। इनकी अन्य प्रमुख कहानियों में झारखंडी बाबा, ताश का घर, जमीन और सितारे, सपने कभी नहीं मरते, उफ! ये नशा कालिदास!, चंद्रबिंदु आदि का समावेश होता है। कहानी के साथ–साथ उपन्यास के क्षेत्र में भी उनका योगदान अभूतपूर्व है। 'मैं बोरीशाइल्ला' (2006) और 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' (2012) उनके महत्वपूर्ण उपन्यास है।

मैं बोरीशाइल्ला का 2008 में अंग्रेजी अनुवाद हुआ, जिसे 2010 में यूरोप के सबसे बड़े विश्वविद्यालय इटली में स्थित 'सापिएन्जा यूनिवर्सिटी ऑफ रोम' के मॉडर्न लिटरेचर इं.. के कोर्स में शामिल किया गया, यह उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। लेखिका ने इसमें केस्टो नामक पात्र के बचपन की कहानी द्वारा बांग्लादेश की मुक्ति गाथा के बारे में चर्चा की है। साथ ही इस ओर भी इशारा किया है कि सांप्रदायिक लड़ाईयों का केंद्र धर्म नहीं किंतु सत्ता एवं उसके पीछे छिपा मनुष्य का स्वार्थ है। एक स्थान पर लेखिका बताती है – 'धर्म के नाम पर जो लोग दंगे–फसाद कर रहे हैं वह धर्म की लड़ाई है ही नहीं। उसकी लड़ाई सत्ता के लिए है। ... अगर धर्म ही महत्वपूर्ण होता तो एक ही धर्म के लोग एक दूसरे से नहीं लड़ते और बांग्लादेश नहीं बनता।'[4]

महुआ माजी ने अपने दूसरे उपन्यास 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' में झारखंड राज्य के सिंहभूम में स्थित मरंग गोडा एवं सारंडा के 'हो' तथा 'संताल' जाति के आदिवासियों की संस्कृति, त्यौहार रीति–रिवाज, उनके जीवन की समस्याएं एवं संघर्ष को चित्रित किया है। साथ ही आदिवासी महिलाओं को उनके अधिकारों के लिए जागरूक भी किया है। अपने एक इंटरव्यू के दौरान वे स्वयं कहती हैं कि 'मेरा उपन्यास 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' झारखंड राज्य के आदिवासी समाज का दर्पण है। अपने राज्य की महिलाओं की स्थिति से मैं परिचित हूं। मैं समस्याओं की जड़ जानती हूं, मेरा मानना है कि महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना बहुत जरूरी है।'[5]

'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' में महुआ माजी ने विकिरण की वजह से शारीरिक एवं सामाजिक समस्याओं से पीड़ित 'हो' आदिवासी स्त्रियों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। इस उपन्यास में बांझपन, डाइन, कुप्रथा, यौन शोषण आदि समस्याओं से पीड़ित नारी की वेदना को वाचा दी है। यूरेनियम की खदानों ने मरंग गोडा की स्त्रियों के जो हालात किए थे उस पर लेखिका कहती है कि 'जिन्हें बार–बार गर्भपात होता, उनसे भी ज्यादा वह औरतें दुःखी दिखती जिनके बच्चे जन्म लेने के 24 घंटे, 3 दिन या 7 दिन तक जिंदा रहने के बाद मर जाया करते थे। शारीरिक विकृतियों के साथ जन्मे बच्चों की माताओं का दर्द तो उनसे भी ज्यादा चुभा कैमरे के साथ–साथ फिल्मकार की आंखों में।'[6] लेखिका ने आदिवासी स्त्रियों की समस्या के जरिए जापान जैसे विकसित देश की स्त्रियों की त्रासदी को भी उजागर किया है। जापानी स्त्री पात्र 'मोमोका' के जरिए नारी के साथ हो रही छेड़खानी की समस्या को भी सामने रखा है।

महुआ माजी नारी जीवन और उनकी समस्याओं के प्रति काफी चिंतित है। इन्होंने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में स्त्रियों की सामाजिक समस्याओं को उठाया है। आर्थिक दृष्टि से निम्न समाज की स्त्रियों को

स्वावलंबी बनाने के संदर्भ में वे कहती हैं 'स्त्रियों को प्रशिक्षण से जोड़कर उन्हें आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाना चाहिए, ताकि स्त्रियों के खिलाफ होने वाले अपराधों को कम किया जा सके।'[7]

आज नारी अपने अस्तित्व के बचाव के लिए परंपरागत मूल्यों से लड़ रही है। इन लेखिकाओं की नारियां 'आंचल में है दूध और आंखों में है पानी' के भाव को नहीं अपनाती बल्कि अपने अस्तित्व एवं अधिकारों के लिए विद्रोह भी कर रही है, हर कदम पर संघर्ष कर रही है। इसलिए कह सकते हैं कि यह सदी नारी के अस्तित्व की, नारी के व्यक्तित्व विकास की सदी है।

संदर्भ सूची :-

1. मोरी रंग दे चुनरिया, मालती जोशी, आवरण पृष्ठ।
2. रमणिका गुप्ता, बहू जुठाई कहानी संग्रह, पृष्ठ 25
3. पंकज कुमार, जिंदगी के असली चेहरे, आजकल पत्रिका
4. BBC hindi.com संवाददाता वंदना
5. www.parbhatkhabar.com.
6. मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, महुआ माजी, पृष्ठ 182
7. www.Prabhat khabar.com,, JharkhandA

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 290-296
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विवाह संस्था में पिसती नारी जीवन का यथार्थ

-दीपांजली देवदास

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालटी।

भारतीय समाज की परंपरागत व्यवस्था में महिलायें आजीवन पिता, पति और पुत्र के संरक्षण में जीवन व्यतीत करने को बाध्य हैं। संविधान में पुरुष एवं महिलाओं को समान दर्जा और अधिकार दिया जाने के बावजूद भी इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि विकास और सामाजिक स्तर की दृष्टि से महिलायें अभी भी पुरुषों से काफी पीछे हैं। भारतीय समाज में महिलाएं आज भी कमज़ोर वर्गों में शामिल है।

पुरुष ने उत्पादन के साधनों पर कब्जा करने के साथ ही स्त्री को भी अपनी संपत्ती मानना शुरु कर दिया। अपनी संपत्ति को दुनिया की नज़रों से बचाने के लिए तरह–तरह की बंदिश लगाई गयीं। जिसके कारण उन्हें जीवन में आगे बढ़ने एवं व्यक्तित्व का समुचित विकास करने का अवसर नहीं मिलता। दक्षता, योग्यता और कुशलता युक्त होते हुए भी ऐसी कई चुनौतियों एवं समस्याओं के कारण आज भी महिलाएं न तो सार्वजनिक क्षेत्र में अपना योगदान कर सकती है, न उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकती है और न उच्च संस्थानों में नौकरी कर सकती है। आधुनिक युग में भी महिलाओं को पुरुष वर्ग के साथ खानपान पर भी प्रतिबंध झेलनी पड़ती है। इस नवीन वैश्वीकृत दुनिया में विवशतापूर्ण ज़िदगी घर की चहारदीवारी के अंदर व्यतीत करनेवाली महिलाओं की संख्या कम नहीं है। सामाजिक कुरीतियों का उसे शिकार होना पड़ता है।

एक सामाजिक प्राणी होने के बावजूद भी उसे कई तरह के परीक्षणों का सामना करना पड़ता है। समाज ने उसके लिए कई अलिखित नियम बनाए हैं। जिन्हें सामाजिक मर्यादा के लिए ज़रूरी बताया गया। सुरक्षित परिस्थितियों को खड़ा करने के नाम पर समय के साथ समाज ने स्त्रियों के लिए जितने भी नियम–कानून बनाए, सब वास्तव में स्त्री के खिलाफ है। उसके अस्तित्व को न्योच्छावर करने के योग्य है।

इसमें सबसे प्रथम आते है, विवाह। विवाह हर एक स्त्री का सबसे बड़ा भाग्य समझा जाता है। विवाह के बाद की ज़िंदगी को स्त्री कैसे अनुभव करती है इस बात का समाज को कोई अंदाजा नहीं। "विवाह घर और परिवार को स्त्री को सुरक्षा प्रदान करने वाले साधन माना जाता रहा है किंतु इसी घर और परिवार में उसे कैद कर उसकी इच्छाओं, आकांक्षाओं की समाधि बना दी जाती है। स्त्री वास्तविकता से अनभिज्ञ, भ्रम की अवस्था में ही जीती रहती है।" विवाहित स्त्री के चारों ओर परिवार एवं पति अपना अधिकार जमाता रहता है। परिवार एवं पति के प्रति सारे कर्तव्यों को बिना किसी संकोच के पूरा करनेवाली औरत समाज की नज़रों में अच्छी गृहिणी बन जाती है और उसका अस्तित्व मात्र घर संभालने तक सीमित रह जाती है।

विवाह के साथ–साथ उसे ज़िम्मेदारियों का बोझ भी प्रात हो जाता है। सुबह से लेकर देर रात तक मात्र उसे बिना विश्राम के खत्म करने के लिए बनाए गए ज़िम्मेदारियां। इसका खुला चित्रण करनेवाली ममता थापा

की कहानी है 'कमला'। कहानी की नायिका कमला एक भारतीय गृहस्थी चलानेवाली औरत है। हर उस भारतीय महिला जैसे उसका भी सुबह रसोई से शुरु होता है और घर का काम करते करते दिन गुज़रता है। कमला को खून की बहुत कमी है, और ब्लड़ प्रेशर भी काफी नीचे है। इस वजह से वह काफी थकी रहती है लेकिन उसे आराम करने का समय ही नहीं मिलता।

कमला के ससुराल में किसी को उसके बीमार होने से कोई चिंता नहीं है। परिवार के सदस्यों का सारा काम भी उसे ही करना पड़ता है। बात–बात पर कमला को आवाज़ देती सास का चित्र कहानी से मिलता है। ऊपर से उसे माहवरी के समय अपने ही घर में अछूतों की तरह अपमानित होकर रहना भी पड़ता है। "अगर उसे माहवरी के दौरान अंदर आने की अनुमति होती तो वह सब काम खुद करती।" माहवरी के समय उस अछूतों की तरह सबसे दूर रहने के लिए विवश रखने का जिक्र ऐसे मिलते है। ज्यादातर विवाहित महिलाएं ससुराल में नौकरानी का दर्जा ही निभाती है। जो सुबह से देर रात तक दूसरों के लिए काम करती रहती है, बदले में अपमान एवं डांड पाती है।

परिवार के और सदस्यों की तरह अपने लिए वक्त निकालने के साथ विश्राम करने का और समय पर अच्छे भोजन का अधिकार उसे भी है। लेकिन अधिकतर भारतीय बहुओं के लिए यह भी अप्राप्य है। कमला सोचती है कि "जब खूब काम करूँ सब खुश रहते हैं। मैं बीमार हो जाऊँ, तो मुझे भी तो प्यार और देखभाल की ज़रूरत है।" यहां उसकी व्यथा व्यक्त हो जाता है। लेकिन अपनी अवस्था पर आक्रोश करने की बजाय एक साधारण भारतीय महिला की तरह वह मौन धारण करना ठीक समझती है। क्यूँकि अपनी अधिकारों की मांग करने वाली औरत समाज के नज़रों में नैतिक मूल्यों से भ्रष्ट, अहंकार से भरी और दुष्चरित्र वाली बन जाती है।

इससे भिन्न विवाह के पश्चात बार–बार ससुराल में अपमानित होने पर आक्रोश करनेवाली स्त्री की अवस्था शरद पगारे की 'यशोदा मां' नामक कहानी में व्यक्त किया है। शिक्षित एवं कामकाजी नायिका मानसी का पीयुष के साथ प्रेम विवाह के बाद सास की अस्वीकृति से परेशान होने वाली नायिका का चित्र कहानी में उभर कर आते हैं। मानसी का दूसरी जाति का होना और नौकरी पेशा होना, मांस–मछली खाना सब उसे ससुराल में तिरस्कृत बनाती है।

विवाह के पहले दिनों में अम्मा जी का अजीब व्यवहार वह समझ नहीं पाती है। बाद में जब समझ गई तो पीयुष को खुल कर बता देती है कि "अपने ही घर में अछूत बनकर नहीं रहूँगी।" लेकिन पीयूष इस बात को समझ नहीं पाता। उल्टा वह मानसी को समझता है "अम्मा पुराने विचारों की रूढिवादी हैं। उस पर ध्यान मत दो। फिर तुम्हें क्या, सब कुछ हाथ में मिल रहा है। काहे को परेशान होती हो?" लेकिन मानसी इस अपमान के सामने झुकने को तैयार नहीं थी। बाद में मामला कोर्ट तक पहूँच जाती है तो मानसी का आत्म सम्मान के साथ खड़ी रहना न्यायाधीश को भी परेशान कर देता है। अपनी पत्नी, बहु एवं माँ का दायित्व अच्छे से न निभाना, बच्चे का देखभाल करने के लिए आया को रखना सब न्यायाधीश के सामने उसे एक पराजित गृहिणी बना देता है। संविधान में समान दर्जा प्राप्त स्त्री और पुरुष में जब कोई गृहस्थी संबंधित समस्या आती है तो समाधान देने वाला न्यायाधीश भी मात्र स्त्री को दोषी ढहराते है तो समाज कितना पुरुष वर्चस्व होगा इस बात का अंदाजा लगा सकते हैं।

उच्च शिक्षा प्राप्त, आर्थिक रूप से संरक्षित महिलाएं भी समाज के नैतिक चिंताधारा का शिकार है। समाज

का नियम भी बहुत विचित्र है। यहां पत्नी का नैकरी पेशा होना परिवार की बेहतर ज़िदगी के लिए आवश्यक है। लेकिन उसके लिए स्त्री घरेलु काम भूल जाए या व्यस्तता के कारण घर में सहायता के लिए नौकर रखे तो वह स्वीकार्य नहीं। ऐसी स्थिति में घरेलू हिंसा का शिकार बनती स्त्रियां भी कम नहीं है।

शताब्दियों से परिवार में महिलाओं के साथ अत्याचार होता आया है। मारना–पीटना, गाली देना, ताने मारना, उसे अपना वेतन व्यय करने का अधिकार न देना, भूखा रखना जैसे अनेक समस्यायें है जिनकी जड़ें अतीत में है और आज भी सशक्त रूप में खड़े हैं। दहेज के लिए मारना–पीटना से लेकर मौत के घाट में उतार देने तक तो आज कल एक साधारण सी बात बन गयी है।

स्त्री के प्रति घरेलू हिंसा का सबसे प्रथम कारण यह है कि पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था में मर्द स्त्री को इनसान मानने की बजाय इज्जत, संपत्ति और लूट का माल अधिक माना है। इसलिए स्त्री का शरीर उसके लिए एक विनोद की वस्तु है। जिसके ऊपर थूकना भी उसे मजाक ही महसूस होता है। 'कुल्ला' नामक कहानी में मधु कांकरिया यह व्यक्त करती है।

हमारी सामाजिक व्यवस्था पुरुष केंद्रित है और स्त्री के प्रति किसी भी समाज में प्रगतिशील दृष्टिकोण नहीं रहा। स्त्री की गुलामी उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक उसका पीछा नहीं छोड़ती। कहानी की नायिका प्रमीला जिसे 'अतिसुंदर' विशेषित किया गया है, वह पति को परमेश्वर मानती है। विवाह को लेकर उसके कई सपने थे। लेकिन जो प्राप्त हुआ उसमें संतुष्ट रहने की पूरी कोशिश वह करती है। एक सामान्य भारतीय महिला की तरह सारे वृत, उपवास, धर्म पूजा, रीति–रिवाज़ तथा परिवार की अखंड़ता केलिए किये जानेवाले लोक अनुष्ठान भी संभालने वाली एक उत्तम गृहिणी होते हुए भी पति की नज़रों में उसका कोई सम्मान नहीं होता। ज्यादातर महिलाओं की स्थिति ऐसी ही है।

स्त्री चाहे कितना ही घरवाली या मालकिन कहकर संबोधित किया जाता रहा हो पर घर के बड़े निर्णयों में उसकी भागीदारी न के बराबर है। उसे प्रसन्न करने के लिए भले ही रोजमर्या की सुविधाएं दे दी गई हो लेकिन सम्मान देना तो दूर की बात है। यहां प्रमीला को बराबरी का दर्जा भी नहीं मिलता। परिवार की मर्यादा और सम्मान के खातिर वह सब झेलती है।

एक दिन रसोई में खाना पकाते खड़ी नायिका की पीठ पर पति जूठा कुल्ला थू देता है। जैसे कि वह कोई कूड़ा–कचरा हो। किसी पर भी थूकना जितना अपमानित कार्य अपने ऊपर नायिका सह नहीं पाती है। पति को परमेश्वर के समान पलकों पर रखकर सेवा करनेवाली नायिका अचानक रूप बदलकर प्रतिशोध करती दिखाई पड़ती है। "उसकी आवाज तन गई, "यह जूठा कुल्ला आपने थुका मेरी पीठ पर?" उसके आवाज़ उठने पर पति का वीर दर्प जाग जाता है और वह कहता है "कुल्ला तो जूठा ही होगा। मज़ाक में थूक दिया, क्या हो गया? इतनी लाल–पीली क्यों हो रही हो?... तू मज़ाक के भी काबिल नहीं।" पति के लिए यह प्रवृत्ति सिर्फ मज़ाक है। प्रमीला का प्रतिशोध करना उसके 'अहं' भाव को और ज्यादा कर देता है और वह वापस चिल्लाकर बात करता है। फिर वहां से मूंह फेरकर चला जाता है जैसे कि सबके सामने आवाज़ उठाकर प्रमीला ने कोई गलती किया हो।

आज भी जब घरेलू हिंसा, शोषण या स्त्री स्वतंत्रता की बात करते है तो सवर्ण समाज की स्त्री को ध्यान में रखते है जो भारत की अधिकांश स्त्रियों से बेहतर जीवन जी रही है। दलित समाज जिसमें स्त्री पुरुष से कंधे

से कंधे मिलाकर मज़दूरी करती है, उसके बारे में यह भ्रम है कि वहां स्त्री स्वतंत्र है पर ऐसा नहीं है। "दलित पुरुष भी घर में उतना ही सामंत है, जितना सवर्ण। दलित पुरुष स्त्री के प्रति उतना ही निर्मम है जितना सवर्ण।" एक भद्र समाज की तरह दलित और आदिवासी समाज भी स्त्री के ऊपर नैतिक मूल्यों के बोझ को डाल देता है। नैतिक मूल्य आदमी को गर्व करने का अधिकार देती है और औरत को दबाकर पुरुष के अधीन में रखता है।

आदिवासी समाज में स्त्री की स्थिति को व्यक्त करनेवाली सत्यनारायण पटेल की कहानी है 'भेम का भेरू मांगता कुल्हाड़ी ईमान'। कहानी में एक आदिवासी स्त्री की त्रासद स्थिति को व्यक्त किया है। आदिवासी लोग जो हमेशा 'सभ्य समाज' के शोषणों का शिकार बनता रहा है, जिसके पास पर्याप्त मात्रा में आर्थिक संसाधन नहीं होता, जो मांगकर खाता है और खुली बंजर ज़मीन पर डेरे में सोता है, वह भी अपनी स्त्री के प्रति निर्मम हो सकता है।

कहानी का नायक कालूनाथ और नायिका सकीना बचपन से एक साथ खेले–कूदे बड़े हुए है और अब पति–पत्नी है। कहानी का आरंभ ही सकीना की पिटाई से होती है। कालूनाथ सकीना के ऊपर आरोप लगाता है कि उन्हीं के बचपन के दोस्त बनानाथ के साथ सकीना का गलत रिश्ता है। इस गलतफहमी में आकर कालूनाथ सकीना को गाली देता है, उस की पिटाई करता है जिसे देखकर शरीर कांप जाये। "ले... ले... छिनाल, थारा मूत का डोबना में बहुत खुजाल मची है, तो ले...। एक से इकी खुजाल नी मिटती है, तो ले... और ले... और ले... सकीना के नंगे बदन पर कालूनाथ कभी डंडे और कभी रस्सी से मारता, कचकची खाता बड़बड़ा रहा था।" सकीना सारे पिटाई को सहती है। लेकिन कालूनाथ मार–पीट से तृप्त नहीं होता वह सकीना को पंचायत में लाकर खड़ा कर देता है और घोर अपमान करता है।

बचपन में एक समान पलने वाले, एक साथ बड़े होने वाले दो व्यक्ति पति और पत्नी होने के बाद कैसे बदल जाते है इस यथार्थ को यहां व्यक्त किया गया है। इस पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री को कहीं भी बराबरी का दर्जा नहीं मिलता ऊपर से उसका अपमान करने का कोई कसर नहीं छोड़ता।

एक ओर इस प्रकार पत्नी का किसी और मर्द के साथ गलत रिश्ता होने का आरोप लगाया जाता है तो दूसरी ओर अपने पत्नी के साथ बलात्कार किया जाता है। वैवाहिक जीवन का यह एक कटु यथार्थ है कि ज्यादातर स्त्रियों के साथ सामाजिक मान्यता प्राप्त बलात्कार ही होता है। इस कटुता को चित्रित करने वाली एक कहानी है प्रत्यक्षा की 'फूलपूर की फुलवरिया मिसराइन'। कहानी की नायिका है फुलवरिया, जो नव वधु है, जिसने विवाह एवं सुहाग रात को लेकर कई सपने बुने थे। लेकिन विवाह के पहली रात में ही पति रामावतार उस पर आक्रमण करके शारीरिक संबंध बना लेता है। "सामने ब्याही पत्नी सिमटी सिकुड़ी बैठी थी और ... टूट पड़े पत्नी पर...। फुलवरिया घूंघट में सपने भरे लजाई संकुचाई बैठी थीं।... पति को टूटते देख हक्की बक्की रह गयी कुछ क्षण। फिर दर्द का तेज़ आवेग हुआ, एक उबकाई सी आयी और मूंह से चीख निकल गयी। रामावतार का चौड़ा बलिष्ठ पूंजा मूंह पर, होठों को, चीख को दबा गया। रामावतार के मन की पूरी हुई। पर हथेलियों पर दांत के दो गहरे निशान रह गये।" इन दृश्यों से पत्नी पर बलात्कार जैसी घटना निकलकर आती है। गृहस्थ जीवन में ऐसी अनेक स्त्रियां है जिनकी इच्छा के विरुद्ध देह संबंध स्थापित होते हैं। क्यूंकि विवाह संबंधों में पति की इच्छा ही सर्वोपरी होती है।

चाहे पत्नी के इच्छा के अनुसार हो या विरुद्ध शारीरिक संबंध के बाद उसका गर्भवति होने की संभावना को पुरुष बिल्कुल नज़र अंदाज करते हैं। जब गर्भवती हो जाती है तो वह कुछ पुरुषों के लिए अनचाहा बन जाता है। फिर गर्भपात के लिए स्त्री पर ज़ोर डालता रहता है। मधु कांकरिया की कहानी 'पोलिथिन में पृथ्वी' में ऐसे ही अनचाहे गर्भपात के कारण डिप्रेशन में जानेवाली स्त्री का चित्रण किया है। गर्भपात के बात बिल्कुल मौन हो जाती नायिका डॉक्टर के सामने अपनी व्यथा का खुलासा करती है। कहानी में नायिका का पति अमीर दिखने को बेताब है। वह मारुति कार और निजी फ्लैट का सपना ले रहा है तो अपनी गर्भवती होने की खबर वह पति से चुपा लेती है। क्यूंकि उसे पता है कि एक बच्चे के होने पर पति दूसरा बच्चा नहीं चाहता। जब पति को इसका खबर मिलता है तो वह गर्भपात के लिए जिद्ध करता है। उसकी बार–बार मना करने पर पति उसे सोनोग्राफी करने के लिए कहता है। बच्चा लड़का है तो रखने का और लड़की हुई तो गर्भपात करने का निर्णय भी पति ही लेता है।

सोनोग्राफी में बच्चा लड़की मालूम होता है। फिर भी पत्नी गर्भपात के लिए मना करती है। बाद में पति का क्रूर स्वभाव बाहर आ जाता है। अनचाहा बच्चे को गर्भ में ही खत्म करने का सारा प्रयत्न वह करता है। पत्नी डॉक्टर को बताती है "एक बार उसने जान–बूझकर बाथरूम में साबून के छोटे–छोटे टुकड़े बिखेर दिये जिससे मेरा पांव फिसल जाए और मेरा गर्भपात हो जाए। इस घटना के बाद मैंने सरेन्डर कर दिया। अपनी डोर वापस खींच ली। किसके बल पर पंगा लेती में! जब इन्हें ही बाप बनने की ख्वाहिश नहीं तो मैं अकेली कर भी क्या लूँगी। मैं कहीं भाग भी नहीं सकती थी, क्योंकि प्रियंका छोटी थी। आखिर मैं राज़ी हो गयी।" यहां उसकी विवशता व्यक्त होता है।

पति के बुरे व्यवहार पर यदि कोई प्रतिक्रिया करे तो समाज में ही नहीं बल्कि अपने घर में भी स्त्री अनभिमत बन जाती है। शरद पगारे की 'एक मुट्ठी ममता' कहानी में ससुराल में शोषण से ग्रस्त बेटी को माय़के में वापस आते देख माता–पिता की प्रतिक्रिया पराये लोगों से भी बुरे होते है। एक तो उसके मर्जी के खिलाफ उसकी शादी करवाते हैं ऊपर से पति और ससुराल वालों की आज्ञाकारी बने रहने का आदेश भी देते हैं।

नायिका नंदी को 'बदसूरत' होने के गुना पर ससुराल से निकाल देते हैं। उसका छोटा बच्चा मुन्ना को वह लोग उसे नहीं देते। जब वह बच्चे के मुकदमेबाज़ी की बात करती है तो उसके पिता कहते हैं कि "यदि मुदमेबाज़ी के चक्कर में पड़ गए तो समझौते के दरवाज़े सदा के लिए बंद हो जाएंगे?... और...सुन..." बाबुजी अम्मा के पास सरक आए, "बच्चे को वही रहने दे। यहां लाकर और खर्च बढ़ाकर क्या करेगी? वैसे, ही शादी के बाद भी नदी यही लौट आई, सो अलग। नंदी फिर भी गले का फंदा बनी है। और यह फंदा डाल कर क्या करेगी?" यहां नंदी की व्याकुलता कोई नहीं समझता। उस घर में तिरस्कृत की तरह वह दिन गुज़ारती है।

भारतीय पारिवारिक ढ़ांचा बहुत विचित्र है। यहां लड़कियों को स्वावलंबी बनने के बजाय दूसरे घर में जाने के लिए और पति चाहे कितने भी दुश्चरित्र हो लेकिन उसके साथ जीवन काटने को बाध्य बनाकर बड़ा करती है। क्यूँकि आज भी हमारे समाज में तलाकशुदा महिला को अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता है।

मधु कांकरिया की 'दाखिला' नामक कहानी में नायिका सुकीर्ति एक 'सिंगल मदर' है। बिना किसी कारण के पति उसे छोड़कर जाता है। वह कॉलेज में पढ़ाती है। उसका एकलौता बेटा है विक्रम। विक्रम को एक अच्छे स्कूल में दाखिला करवाने की जी तोड़ कोशिश करती नायिका को पूरी कहानी में देख सकते हैं। लेकिन पिता

का साथ में न होने की वजह से कहीं भी उसका दाखिला नहीं हो पाता। यहां व्यक्त है कि समाज चाहे कितनी भी प्रगति का दावा करे, परिवार संबंधि विषयों में प्रधान तो पुरुष ही होता है। 'सिंगल मदर्स' को मान्यता प्राप्त नहीं होता। "शुरु में बड़े आत्मविश्वास के साथ उसने अकेले ही मोर्चा लिया... अपनी समस्याओं के हल के लिए। मैं स्वयं समुद्र बनूँ... वाली मानसिकता। पर जब कई जगह से रिग्रेट लेटर आ गए... कहीं इसी वजह कि साक्षात्कार के दौरान पति साथ में नहीं थे तो कहीं किसी ओर वजह से...।" तब वह पति के रूप में भाई को प्रस्तुत करने की राह सोचती है। यह उसकी विवशता है। एक परित्यक्ता नारी की पीड़ा यहां व्यक्त होता है। आत्म–सम्मान के साथ जीने की उसकी दृढ़ निश्चय पर पानी फेरने जैसे समाज की प्रवृत्तियों को दर्शाता है।

उसी तरह दिनेश कर्नाटक की कहानी 'कितने युद्ध' में गोपाल की मां 'वार विडो' है। उनके फौजी पति के शहीद हो जाने के बाद वह अकेली ही परिवार को संभालने लगती है। सासू मां और तीन बच्चों के साथ खेती–बाड़ी भी संभाला नहीं जाता है तो वह सहायता के लिए एक पुरुष को रख देता है। तब तक जो लोग उसकी कष्टताओं पर सहानुभूति करते रहे वे अपने सही स्वभाव बाहर निकालना शुरु कर देता है। माँ और थुप्पीका को लेकर कई तरह की गंदी बातें करने लगते हैं। लोगों के कुसुर–फुसुर के बारे में गोपाल मां से पूछता है तो उनकी प्रतिक्रिया बड़ी सरल होती है। "मां कहती, बेटा ये लोग हमें दो रोटी खाते हुए नहीं देख सकते, तू उनकी बातों में ध्यान मत दिया कर।" समाज में एक अकेली स्त्री का सिर उठाकर जीना लोगों के नज़रों में अनैतिक है। गोपाल की मां लोगों की इस व्यवहार से वाकिफ थी। उन्हें अपनी परिवार एवं बच्चों की चिंता रहती है, न कि सामाजिक–नैतिक मूल्यों का। वैसे भी सामाजिक मर्यादाओं का पालन कर के घर के अंदर बैठ जाती तो कोई भी उनकी और बच्चों की भूख मिटाने के लिए नहीं आता। समाज की तरफ उनकी प्रतिक्रिया यथार्थ का खुलासा करता है। "सुनना तो सीता को भी पड़ा था, फिर मेरी क्या बिसात?"

वैवाहिक जीवन के कटु यथार्थों को समझकर विवाह से इनकार करती महिलाएं भी कहानियों में चित्रित है। जैसे कि डॉ. कुमुदिनी नौटियाल रचित 'रजनीगंधा की महक' की नायिका। शादी का प्रस्ताव रखनेवाले दोस्त को समझाकर वह कहती है "विनय! तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करते? मैं तुम्हारे साथ हंसती, बोलती हूँ, मेरा यह खुला व्यक्तित्व तुम्हें भाता है, किंतु मेरा जो व्यक्तित्व पत्नी के रूप में तुम्हारे लिए अदृश्य हो जाए, तब अपने सहकर्मियों के साथ मेरा सहज व्यवहार तुम्हे स्वीकार्य नहीं होगा तब तुम मुझे चार दीवारी में कैद कर देना चाहोगे, जिससे तुम आकर्षित हुए हो। लेकिन, तब मेरा वह व्यक्तित्व कहां रह जाएगा जिसने तुम्हें आकर्षित किया है?" आज नारी सिर्फ अबला नहीं, बल्कि सबला बनकर चार दीवारी में बंद होने की मानसिकता को तोड़ना चाहती है। वह स्वयं का अधिपत्य स्थापित करना चाहती है।

आज के प्रगतिशील दौर में परिस्थितियों के अनुरूप बदलती नारी की प्रतिनिधि है मधु कांकरिया की 'लेडी बॉस' कहानी की नायिका। वह एक सफल कैरियरिस्टिक महिला है जो अपनी प्रतिभा और प्रयत्न से कंपनी को ऊँचाई तक पहूँचा देती है। मैडम की शब्दों में "माई कंपनी इज़ माई चाइल्ड। माँ जिस प्रकार अपने बढ़ते बच्चे को देखकर खुश होती है उसी प्रकार अपनी कंपनी को बढ़ते देखकर मैं... आई फील सो फुल...।" परिवार को देने वाले समय भी कंपनी को देने की वजह से पति का उसे छोड़ कर दूसरा विवाह करना, उसके कारण लोगों का कुसुर–पुसुर, कंपनी के कर्मचारियों का उन्हें नापसंद करना, कुछ भी उसे पीछे नहीं खींचती। वह पूरे आत्म सम्मान के साथ खड़ी होती है। इस प्रकार उद्योग, व्यापार, पत्रकारिता, राजनीति, समाज सेवा, शिक्षा, विज्ञान,

चिकित्सा जैसे पारंपरिक तौर पर पुरुष प्रभाव वाले क्षेत्र में भी महिलाओं ने विजय प्राप्त किया है।

किसी भी क्षेत्र में सफलता पाने की प्रतिभा स्त्री में होती है। जब वह सफल बन जाती है तो पुरूषी अहंकार को ठेस पहुँच जाती है। तो पुरुष सत्तात्मक समाज उसे देवी, पूजनीय, महान बना देते हैं। ताकि वह एक मूर्ति की तरह दया, माया, करुणा, स्नेह, सहानुभूति से विभूषित होकर चहारदीवारी मंदिर नामक घर में सिकुड़ी बैठी रहे। पुरुष चाहते है कि उसकी प्रतिभा से वह सफल न बन जाए और सदा ही पुरुष की उपभोग वस्तु बनी रहे। क्यूंकि परिवार का ताना–बाना स्त्री की गुलामी और अस्मिता–विहीनता की बुनियाद पर खड़ा है और परिवार संस्था के बगैर पुरुष का जीवन–यापन कष्ट हो जाता है।

संदर्भ :–

1. शांति कुमार स्याल, 'भारतीय नारी और पश्चिमीकरण', आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली 2013, पृ. 149
2. ममता थापा, 'कमला', उत्तरा (महिला पत्रिका), जनवरी–मार्च 2014, पृ. 40
3. वही, पृ. 40
4. शरद् पगारे, 'यशोदा मां', 'नारी के रूप में' (कहानी संग्रह), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वि.सं. 2010, पृ. 84
5. वही, पृ. 85
6. मधु कांकरिया, 'कुल्ला', 'स्त्री मन की कहानियां'(कहानी संग्रह), साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2015, पृ.38
7. वही, पृ. 38
8. सूरज पालीवाल, 'इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 135
9. सत्यनारायण पटेल, 'भेम का भेरू मांगता कुल्हाड़ी ईमान' प्रत्यक्षा, 'फूलपूर की फुलवारिया मिसराइन'
10. मधु कांकरिया, 'पोलिथिन में पृथ्वी', 'स्त्री मनकी कहानियां' (कहानी संग्रह), साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2015, पृ. 120
11. शरद पगारे, 'एक मुट्ठि ममता', 'नारी के रूप' (कहानी संग्रह), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वि.सं.2010, पृ. 92
12. मधु कांकरिया, 'दाखिला', 'स्त्री मन की कहानियां' (कहानी संग्रह), साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2015, पृ. 78
13. दिनेश कर्नाटक, 'कितने युद्ध', 'उत्तरा' (महिला पत्रिका), जनवरी–मार्च 2014, पृ. 47
14. वही, पृ. 47
15. डॉ. कुमुदिनि नौटियाल, 'रजनीगंधा की महक'।
16. मधु कांकरिया, 'लड़ी बॉस', 'स्त्री मन की कहानियां' (कहानी संग्रह), साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2015, पृ. 60

फोन 8592989502, ईमेल deepanjalidevadas123@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 297-299
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'निर्मला' उपन्यास नारी जीवन की करूण गाथा

-डॉ. लावणे विजय भास्कर
शोध निर्देशक, महात्मा गांधी महाविद्यालय, अहमदपुर, त. अहमदपुर, जि. लातूर, महाराष्ट्र।

हिंदी साहित्य में कहानी नाटक, कविता, रेखाचित्र, जीवनी और उपन्यास आदी कई विधाए है उनमें से सबसे ज्यादा स्पष्टता से लेखन का अवसर मिलता है उपन्यास में क्योंकि छोटी सी घटना भी स्पष्ट करने का पुरा मौका उपन्यास में मिलता है। और हिंदी साहित्य में और वह भी प्रेमचंद के उपन्यास बडे महत्वपूर्ण है प्रेमचंद ने हर उपन्यास में नारी के विविध रुप समाज के सामने लाए हैं। प्रेमचंद ने सदियों से इस देश में चल रही दहेज प्रथा किस तरह गलत है और उसके बूरे परिणाम नारी को ही किस तरह भुगतने पड़ते है यह दिखाया है। गलत परंपरा के कारण नारी ''भूत वर्तमान और भविष्य को सोचती हुई वह बेचारी आजन्म सिसकती रहती है और अपने पहाड़ जैसे जीवन को बिना जवाब खोले ही पल–पल करके काटती रहती है।''[1] कभी–कभी माता–पिता के आर्थिक हालत के कारण दहेज रुपी राक्षस के कारण वह जिंदगी भर के लिए नरक में ढकेली जाती है। अपने जीवन के हर मोड़ पर उसे निराशा का सामना करना पडता है। और यही सारी बाते निर्मला उपन्यास की नायिका निर्मला के जीवन में घटीत होती है।

निर्मला उदयभानु की बड़ी पुत्री थी उसका विवाह भालचंद्र सिन्हा के बड़े पुत्र भुवनमोहन सिन्हा से निश्चित होता है। पर अचानक उदयनभानु की मृत्यु होती है। तब धन के लोभी भालचंद्र सिन्हा शादी से इनकार करते है। निर्मला की माँ विधवा नारी परिस्थिति से परेशान थी। दुनिया की हर माँ भूखी रह सकती है, बर्तन साफ कर सकती है रुखा सूखा खा सकती है, फटे वस्त्र पहन सकती है पर एक जवान लड़की को घर में नहीं देख सकती थी। उसने कई जगह रिश्ते के लिए बात चलाई पर दहेज के कारण बात आगे गयी नहीं परिणाम स्वरुप निर्मला की मॉ ने बहुत छानबीन करके तीन पुत्रों के बाप वकील तोताराम जी से लोग मुंशी तोताराम कहते थे उसके साथ निर्मला का अनमोल विवाह हो गया।

मुंशी तोताराम सावले रंग के मोटे थे उम्र चालीस के पास थी। बाल पके थे व्यायाम न करने के कारण तोंद निकल आयी थी। देह स्थूल था। हर रोज कोई न कोई शारीरिक शिकायत रहती थी। उनका बडा लड़का सोलह वर्ष का था, मंझला जियाराम ग्यारह और सियाराम सात वर्ष का था। घर में वकील सहाब की पचास साल की विधवा बहन रुक्मिणी भी रहती थी।

मुंशी तोताराम निर्मला को खुश करने के लिए कई तरीकों का प्रयोजन करते मेवे मिठाइया लाते पर निर्मला को पिता के उमर के आदमी के साथ वह बोलने में संकोच महसूस करती वह मुंशी को प्रेम की जगह सम्मान देना चाहती थी। पर प्रेम प्रदर्शन में मुंशी बाबू कोई कमी नहीं रखते थे। मुंशी तोताराम ने घर की लक्ष्मी, स्वामिनी के रुप में निर्मला को अधिकार दिए पर निर्मला और तोताराम में प्यार की बाते कभी होती ही नहीं थी। रुक्मिणी

बच्चों से उसका मेल मिलाप नहीं होने देती थी। रुक्मिणी हमेशा बच्चों को लेकर निर्मला को ताने देती थी। मुंशी तोताराम ने बहन रुक्मिणी को डाटा भी था। निर्मला इस परिस्थिति के लिए खुद को ही जिम्मेदार मानने लगी। कुछ ही दिनों में निर्मला परिवार बच्चों में व्यस्त रहने लगी मुंशी तोताराम से बोलने में उसे संकोच अरुचि तथा अनिच्छा होने लगी। निर्मला ने पती सूखी संसार का जो सपना देखा था उसमें से उसे यहा कुछ भी नहीं मिला वह हमेशा परेशान रहने लगी। लड़कों को लगने लगा की पिता पुत्र के प्रेम में बाधा लाने वाली विमाता ही है। रुक्मिणी को लगा पहले घर में मेरा अधिकार चलता था अब निर्मला का अधिकार चलने लगा इस कारण वह हमेशा बच्चों और निर्मला में हमेशा तनाव करने का प्रयास करती थी। नवयौवन निर्मला मुर्झाने लगी थी। उसका सपना चूर–चूर हो गया था।

निर्मला जीवन की इस विषमता को भूलने के लिए बच्चों से जी बहलाने का प्रयास करने लगी और बड़ा लडका मंसाराम उसे अंग्रेजी सिखाने लगा पर रुक्मिणी ने तोताराम के मन में जहर भरना शुरु किया। बडे लड़के पर मुंशी शक करने लगे उसे छात्रालय में रखने का निर्णय हुआ तब से उसने खाना छोड दिया वह दिन ब दिन दुबला पतला होता गया। एक दिन निर्मला ने उसे ममता वात्सल्य से विनय से खाना खाने के लिए बुलाया तब मंसाराम को अपनी माँ की याद आयी ''जब वह रुठ जाता था तो वे भी इसी तरह मनाने आया करती थी और जब तक वह न जाता था वहा से न उठाती थी।''[२] निर्मला के कहने पर उसने खाना खाया। पर मुंशी तोताराम ने अलग ही नजर से देखा।

निर्मला का जीवन दहेज के कारण बरबाद हुआ था। मनुष्य तो पैसे के बलबुते पर बुढ़ापे में विवाह करते है पर निर्मला के मन में मंसाराम के प्रति पाप न था। दोनों के विचार में एकता थी इसी कारण साथ–साथ बाते करते थे तो घर वालों के दूषित विचार उन्हें पाप करार देते है। बेचारा मंसाराम और दुबला–पतला होता है। छात्रालय में मंसाराम की हालात बहुत बिगड़ गई तब निर्मला बोली उसे घर ले आईए मैं मैंके चली जाऊंगी, इस वाक्य से उसका मातृहृदय दिखाई देता है। मंसाराम की हालत बिगड़ रही थी। एक दिन निर्मला अस्पताल गई तब मंसाराम अचानक उठ खडा हुआ निर्मला के पैरों पर गिरकर रोते हुए बोला ''मैं आपका स्नेह कभी न भूलूंगा ईश्वर से मेरी यहीं प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आपके गर्भ से हो, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण हो सकू।''[3] इस वाक्य से मुंशी तोताराम और सबके मन का मैल साफ होता है। वह मंसाराम करे खून देने के लिए तैयार होती है पर कुछ लाभ नहीं होता मंसाराम दूनिया छोडके चला जाता है। हर वक्त निर्मला तुटती ही है।

जियाराम बुरी आदत के कारण विमाता निर्मला के गहने चुराता है चोरी पकड़ी जाने पर आत्महत्या करता है। बाद में निर्मला का बर्ताव कुछ बदल ही जाता है। परिणाम स्वरुप छोटा लड़का सियाराम किसी साधू के साथ हमेशा के लिए भाग जाता है। सारा दोष निर्मला के माथे लगाया जाता है। मुंशी तोताराम की वकालत नहीं चलती परेशान होकर वे सियाराम को खोजने चले जाते है। घर में निर्मला बिमार होती है। तब निर्मला के जीवन में नया मोड आता है। पत्नी की अनुपस्थिति में डॉ. भुवन सिन्हा निर्मला से छेड़छाड़ करतें है जब यह बात उनकी पत्नी को मालूम होती है तो वह भी आत्महत्या करता है निर्मला के कारण ही उसका भी अन्त होता है। निर्मला इन सभी हादसों को सह नहीं पाती। निर्मला एक बच्ची को जन्म देती है पर निर्मला की बीमारी लगातार बढती है तब रुक्मिणी का बडा प्यार उमड़ता है निर्मला के लिए वह उसे अस्पताल ले जाना चाहती है। पर निर्मला न करती है और छोटी बच्ची की तरफ देखते आखरी सांस लेते समय रुक्मिणी से कहती है मैने इसे सिर्फ जन्म

दिया है जीवीत रही तो '' चाहे क्वांरी रखियेगा। चाहे विष देकर मार डालियेगा, पर कुपात्र के गले न मढियेगा इतनी ही आपसे विनय है।''[4] आगे पती को सेदेश देती है कि मुझे क्षमा करना मेरी छाया जिस पर पड़ी उसका सर्वनाश ही हुआ मैं चली और चौथे दिन निर्मला इस दूनिया से हमेशा के लिए चली गयी।

निर्मला सामाजिक कुरीतियों का पर्दा उठाती है। इस देश की दहेज प्रथा के कारण उसे अधेड़ पुरुष से शादी करनी पड़ती है। तब निर्मला का जीवन नर्क बन जाता है। पुरुष पैसों के बलबूते पर किसी भी बालिका से शादी कर सकता है पर उसकी भावना कोई भी कद्र नहीं करता। बेचारी माँ–बाप के नाम पर रोने के सिवा कुछ नहीं करती परिस्थिति को संभलाना चाहती है पर निर्मला के जीवन में शादी उपरांत एक भी क्षण सूख का नहीं आता प्रश्न समस्या जटिल होती जाती है। निर्मला मुंशी तोताराम के परिवार में रात दिन दीप–शिखा के समान जलती रहती है पर उसके ऊपर कोई दया नहीं दिखाता।

निर्मला सहनशीलता की मूर्ती है। अनमोल विवाह होने कारण वह परिस्थिति से हर बार संघर्ष करती है। बच्चों से लाड–प्यार भी है पर रुक्मिणी हमेशा ताने देती ही रहती है। मुंशी तोताराम निर्मला के चरित्र पर उंगली उठाता है। निर्मला की परिस्थिति पंख विहिन पंछी की तरह है संकट को देख सकती थी पर उसे रोक न सकती थी न विरोध कर सकती थी। जीवन के आखरी क्षण तक निर्मला को परिस्थिति से समझौता करना पड़ा है। घर में उसने हमेशा बच्चों को पहले खाना खिलाया बाद में उसने खाना खाया है। आखरी समय उसे इसी बात की चिन्ता थी कि मेरी माँ ने मेरे साथ जो दहेज के कारण किया वह मेरी बच्ची के साथ न हो उसका हमेशा मातृत्व ही सामने आता है। हर परिस्थिति में वह परिवार का साथ देती है। पर आखिर टूट ही जाती है। प्रेमचंद ने निर्मला के द्वारा नारी जीवन का करुणा भरा अध्याय समाज के सामने लाने का प्रयास किया है।

संदर्भ :–

1. प्रेमचंद और उनकी उपन्यास कला/रघुवर दयाल/सरस्वती पुस्तक सदन/प्रथम संस्करण 1970/पृष्ठ 97
2. निर्मला/प्रेमचंद/भारती भाषा प्रकाशन/प्रथम संस्करण 1987/पृष्ठ 57
3. निर्मला/प्रेमचंद/भारती भाषा प्रकाशन/प्रथम संस्करण 1987/पृष्ठ 76
4. निर्मला/प्रेमचंद/भारती भाषा प्रकाशन/प्रथम संस्करण 1987/पृष्ठ 126

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 300-303
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संजीव की कहानियों में नारी विमर्श

–डॉ. बाळासाहेब पगारे

बी. एन.एन. महाविद्यालय, भिवंडी, जि. ठाणे।

समकालीन हिंदी कथा साहित्यकारों में संजीव अपनी अलग पहचान रखते है। उनकी कहानियां स्वतंत्र भारत की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करती है। उनकी कहानियां सामाजिक होने के कारण समाशास्त्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है। उनकी कहानियों में नारी की उपस्थिति कई रुपों में मिलती है, इनमें अधिकतर कहानियां मध्य वर्ग तथा आदिवासी स्त्रियों के शोषण पर प्रकाश डालती है।

मुख्यतः संजीव के 'तीस साल का सफरनामा', 'आप यहाँ है', 'भूमिका और अन्य कहानियां', दुनिया की सबसे हसीन औरत', 'प्रेरणा स्रोत और अन्य कहानियां' आदि कहानी संग्रह में नारी चित्रण मिलता है। 'अपराध' कहानी आजाद भारत के भ्रष्ट और शोषणकारी व्यवस्था पर करारा प्रहार करती है। कहानी की नायिका संघमित्रा वैदकशास्त्र की छात्रा है। वह उच्च मध्य वर्ग परिवार से है। वह अपने मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित भाई का साथ देती है। बेगुनाह होने के बावजूद उस पर बड़े–बड़े इल्जाम लगाकर जेल में बंद किया जाता है। जेल में पुलिस संघमित्रा के साथ अंत्यत घटिया व्यवहार करती है। यहां कानून के रक्षक ही भक्षक बन जाते है। इस कहानी के माध्यम से संजीव ने न्याय व्यवस्था को कटघरे में खडा किया है। असल में आज अपराध को जन्म देनेवाली व्यवस्था अपराधी है। 'अवसाद' कहानी कावेरी प्रशांत चटर्जी की हवस की शिकार हो जाती है। तो 'टीस' कहानी की मताई के साथ गांव का पुजारी जबरन संबंध कायम करने की कोशिश करता है। 'भूखेरीछ' कहानी की रजिया को पति द्वारा बेचे जाने का डर सताता है। 'जस्सी बहू' चमार जाति की दलित महिला है, जिसे गावं का हर आदमी अपनी चपेट में करना चाहता है, परंतु वह गावं वाले का डटकर मुकाबला करती है। 'कठपुतली' कहानी की कल्याणी को पिताजी आर्थिक अभाव के कारण सेठ को बेच देता है।

यहां संजीव ने निम्न वर्ग की स्त्रियो के शोषण को प्रस्तुत करते हुए उनके प्रति सहानुभूति जताकर, उनको अपने अन्याय का मुकाबला करने के लिए प्रेरित किया है। 'आप यहां है' कहानी की हिंदिया आदिवासी है। अपने परिवार की जरूरते पूरी करने हेतु वह आदिवासी बस्ती से शहर काम करने रोज आती है। मि. वर्मा का उच्च शिक्षित परिवार उसका मजाक उडाता है। जब मिसेस वर्मा के खतरनाक जंगली जानवर के बारे में पुछने पर हिंदिया कहती है, "साफ कपडा पहनकर हस–हस के बतियानवाले मानुष से कौन जानवर ज्यादा खतरनाक है मेमसाहब?"[1] मि. वर्मा हिंदिया के साथ बदसलूकी करते है और पत्नी द्वारा पकड़े जाने पर उस पर

चोरी का आरोप लगाते है। संजीव ने स्पष्ट किया है कि लहू–पसीना एक कर मेहनत करने वाले भोले–भाले आदिवासी को मेहनत और ईमानदारी के बदले बदनामी और अत्याचार मिलता है। 'घर चलो दुलारीबाई' कहानी की नायिका दुलारीबाई अपने ही परिवार के सदस्यों द्वारा सताई जाती है। ससुराल और मायके की जमीन उसकी मुसीबत बन जाती है। जायदाद के लिए परिवारवाले उसके पति और बेटे की हत्या कर, उसे घर से बाहर निकालते है। फिर भी दुलारीबाई बेटे और पति को न्याय देने हेतु परिवार के साथ न्यायालयीन लड़ाई लड़ती है।

संजीव के लिए अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध करनेवाली औरत दुनिया की सबसे हसीन औरत है। दुनिया की सबसे हसीन औरत' कहानी की नायिका अशिक्षित है। बिना टिकट सफर कर रही पढी–लिखी औरतें आदिवासी महिला के पास टिकट होने के बावजूद उसे तंग करती है। उसकी गरीबी का फायदा उठाकर उसे जलील करती है। तो पुलिस सिपाही मुफ्त में ही सब्जी लेते है। आदिवासी महिला के माथे पर तीन गोंदने है, जो रानी सीनगी का मुगल सेना के खिलाफ तीन बार हारकर भी चौथी बार लडती है। चेहरे पर दिये दाग को शृंगार का प्रतीक मानती है। वस्तुतः संजीव अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने को बहादुरी समझते है। यहां लडना महत्वपूर्ण है। इस बारे वे लिखते है, "जुल्म की मुखालफत ही बहादुरी है और जरूरी नहीं कि बहादुरी महज जीत की ही बाईस बने, उसकी हार भी सिंगार है। यही बताते है आपके तीन गोंदने"।[2] संजीव ने यहां सौंदर्य की परिभाषा ही बदल दी है।

'मानपत्र' कहानी दो पीढ़ियों की जीवन धारणाओं को स्पष्ट किया है। वीणा परंपरागत नारी है, तो कला उसकी बेटी नव संस्कारगत नारी है। वह आधुनिक विचारधारा से प्रभावित होने के कारण नारी जीवन की दुर्दशा करनवाले परंपरागत ढकोसलों को ठुकराते हुए कहती है, "विवाह प्रथा जो किसी को बिहड और बंजर बना दे, उसे जूती की नोंक पर रखती हूं।" (पृ. 56) कला आज की आधुनिक नारी की प्रतीक है, जो किसी भी किमत पर समझौता करना नहीं चाहती है। 'फैसला' कहानी इस्लाम धर्म की तलाक संबंधी उलझनों पर प्रकाश डालती है। अहमद अपनी पत्नी मुसन्नी को गुस्से में तलाक देता है। यह मामला पंचायत से अदालत पहुंचता है। फैसला सुनानेवाली जज मेहरूनिस्सा के सामने समस्या खडी हो जाती है कि फैसला किसके पक्ष में सुनाया जाए। वह पुरुष प्रधान संस्कृति के बारे में कहती है कि, "हजारो साल का चिकटाया देश, हजारो साल की चिकटाई रवायते और उस पर फफुंद के फैलाव–सा यह गिजगिजा पुरुष प्रधान समाज.....फैसला जानने को सभी उत्सुक है। मगर सुनना चाहता है, सिर्फ अपने मन का फैसला.... ।"[3]

स्पष्ट है कि पुरुष प्रधान समाज चाहे किसी भी धर्म का हो नियमों को तोड़–मरोड़कर अपने हित में बनाता है। मेहरूनिस्सा दो फैसले लिखती है। वह मुसन्नि की जगह खुद को रखकर तलाक के बाद उसकी बेटी का क्या होगा इस बारे में सोचती है। यहां लेखक ने स्पष्ट किया है कि एक औरत ही औरत की भावनाओं को समज सकती है। वह मजबूरी की दीवार तोड़कर इंसाफ की धारा प्रवाहित करना चाहती है, परंतु सफल नहीं हो पाती है। इस बारे में वह कहती है, "औरत तुझे तो मरना ही है, कोई फर्क नहीं पडता, तेरा नाम मुसन्नि न होकर

मेहरूनिस्सा न होकर, कुछ औ रहो।"[4] इससे तलाक जैसी पेचीदा समस्या पर एक स्त्री की आंतरिक छटपटाहट और पुरुष वर्ग की धर्म की आड़ में की जाने वाली स्वार्थ और चालाकी स्पष्ट होती है। 'माँ' कहानी की माँ भारतीय स्त्री की प्रतिनिधि बनकर हमारे सामने आती है। वह अपने परिवार के लिए समूचा जीवन बिता देती है और बदले में कुछ नहीं चाहती है। जब वह किसी बीमारी की शिकार होती है, तब परिवार का कोई सदस्य उसकी सेवा तथा इलाज नहीं कर पाता है। समय पर इलाज न होने से शरीर के एक–एक अवयव कांट दिये जाते है। अस्पताल में कोई प्रेम, स्नेह जता नहीं पाता, परंतु मरने के बाद सभी झुठा स्नेह दिखाते है।

कहानी माँ का परिवार के प्रति दायित्व और समर्पन और बदले में परिवार की निष्ठुरता को रेखांकित करती है। 'अंतराल' कहानी बाल विवाह और समाज के प्रेम विरोधी संकुचित दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। नायिका लाली की शादी बचपन में रामकुमार के साथ हुई थी। बड़ी होने पर मेले में वह रामकुमार से मिलती है और उसे घर आने में देर होती है तो उसके चरित्र पर शक किया जाता है। रामकुमार परिवार के सामने बताने की हिम्मत जुटा नहीं पाता है। रामकुमार की दूसरी की जाती है। कुछ साल बाद दुबारा लाली मिलने पर वह भाग चलने के लिए कहता है। तब लाली कहती है, 'औरत होते तो समझते मेरी मजबूरी! एक पौधे को कितनी बार उखाडकर रोपेगा? उसकी भी जडे होती है कि नहीं? सबकुछ छोडकर कैसे चल दू तुम्हारे साथ.....? औरो ने क्या अपराध किया है उनको हमारी सजा मिले?"[5] यहां नारी को खिलौना समजनेवाले समाज की मानसिकता पर करारा प्रहार किया है।

बीसवीं सदी के अंत में भारत में उच्च मध्य वर्ग में उपभोक्तावाद का उदय हुआ। इस युग के बाजारवाद ने भौतिक सुविधा प्राप्त करने हेतु एक भयानक स्पर्धा को जन्म दिया है। इस अंधी दौड़ में मानव जाति का भविष्य खतरे में पड़ गया है। भौतिक साधनों द्वारा व्यक्ति ऐशों आराम की जिंदगी जीना चाहता है। संजीव ने "ब्लैकहोल' कहानी के द्वारा उपभोक्तावाद के दुष्परिणाम को स्पष्ट किया है। कहानी की नायिका अलका एक सामान्य गृहिणी है। मिसेस ग्रेवाल के घर की टीवी, फ्रीजर आदी भौतिक वस्तु देखकर उसके मन में भी पड़ोसी की तरह लखपति बनने की महत्वाकांक्षी दौड़ में शामिल होती है। अपनी महत्वाकांक्षा बेटे पर लाद देती है। बदलते वक्त की तेज रफ्तार से संतुलन स्थापित करते हुए परिवार को भी बदलना चाहती है। आधुनिकता के प्रभाव में अलका अपने पति परमेश्वर प्रसाद को पी. पी. और बेटे अंकुर को अंक कहती है। मिसेस ग्रेवाल की नकल करती है। सफल होने के लिए बेटे पर कडा अनुशासन लागती है। माँ के दबाव के कारण अंकित रात–रात पढता है। वह बेटे से कहती है, "अब तुम पर डीपेंड करता है, अंक कि तुम अपने दिमाग को 'बिगबैग' बनने देना पसंद करोगे या 'ब्लैकहोल'।"[6] इससे स्पष्ट होता है कि यहां किताबी ज्ञान हावी हुआ है। किसी भी छात्र का असफल होना ब्लैक होल नहीं है। अंक परीक्षा का दबाव झेल न पाने से परीक्षा हाल में उसकी मृत्यु हो जाती है। अलका के माध्यम से सुविधा पाने की आंधी दौड़ और उसके दुष्परिणाम से मानव का भविष्य किस तरह असुरक्षित हो रहा है यह स्पष्ट किया है।

निष्कर्ष रूप में संजीव की कहानियों में नारी जीवन के अनेक रूप मिलते है। उनकी कहानी की नारियां

साहसी, स्वाभिमानी, पति धर्म निभाने हेतू अपनी इच्छाओं का गला घोटनेवाली, शोषण, तलाक, भुखमरी, बाल विवाह की समस्या से ग्रस्त है, फिर भी प्रतिकूल परिस्थिति में संघर्ष करती नजर आती है। संजीव आज की नारी की स्थिति को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते हुए नारी पर होने वाले अत्याचार की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। नारी को संघर्ष के लिए उकसाते हैं। वे अपनी कहानी के माध्यम से एक उचित समाज का गठन करना चाहते है।

संदर्भ :-

1. आप यहां है–––––पृष्ठ 156
2. दुनिया की हसीन औरत–––––– पृ. 41
3. मानपत्र–––––––पृ. 428
4. फैसला–––––––पृ. 397, 398
5. अंतराल–––––––पृ. 233
6. ब्लैकहोल–––––––पृ. 260
7. संजीव की कथा–यात्र–––––– पहला पडाव, संजीव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008.
8. संजीव की कथा–यात्रा–––––––दूसरा पडाव, संजीव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008.
9. संजीव की कथा–यात्रा––––– तिसरा पडाव, संजीव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008.
10. कथाकार संजीव––––– संपा. गिरीश काशिद।

Pagare.bt@gmail.com (9082027010)

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 304-307

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मलयालम फिल्मों में अभिव्यक्त तृतीय लिंगी विमर्श न्जान मेरिक्कुट्टी एवं ओडुम राजा आडुम रानी के विशेष सन्दर्भ में

-डॉ. इन्दू के वी

सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग, दूरशिक्षा संस्थान, केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम, केरला।

थामस अल्वा एडीसन ने 1894 ई. में फिल्म का आविष्कार किया। प्रारम्भ में मूक फिल्में होती थीं। फिल्मों में आवाज नहीं होती थी। भारत में चलचित्र का प्रारम्भ 1913 के लगभग हुआ। सर्वप्रथम दादा साहेब फाल्के ने 'हरिश्चन्द्र' नामक एक मूक फिल्म बनायी। सन् 1931 में 'आलम आरा' नामक पहली बोलती फिल्म का निर्माण हुआ। सिनेमा की लोकप्रियता में जितनी तीव्रता से वृद्धि हुई वह सर्वविदित है। आज जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जिस पर फिल्मी प्रभाव न हो। पहले केवल पौराणिक और धार्मिक विषयों पर फिल्में बनती थीं। आज कोई भी विषय फिल्मों से अछूता नहीं रहा है। जीवन के हर पहलू पर फिल्में बन चुकी हैं। बड़ा परदा मनोरंजन का सबसे सस्ता व सुलभ साधन है। मनोरंजन के अतिरिक्त भी फिल्मों के अपने फायदे हैं। फिल्मों के सदुपयोग द्वारा शिक्षा प्रसार तथा समाज सुधार के कार्यों में बहुत अधिक सफलता प्राप्त की जा चुकी है। फिल्मों के माध्यम से देश विदेश का ज्ञान एवं उसके इतिहास, सभ्यता व संस्कृति की पहचान बड़ी आसानी से हो जाती है। आजकल विभिन्न विमर्शों पर चर्चाएँ ज़ारी हैं जिनसे साहित्य के समान फिल्म भी अछूता नहीं रहा। यहाँ मलयालम फिल्मों में अभिव्यक्त तृतीय लिंगी विमर्श पर आगे चर्चा करेंगे।

किन्नर विमर्श पर आधारित समकालीन मलयालम फिल्मों सबसे अधिक चर्चित फिल्म है 'न्जान मेरीकुट्टी'। इस फिल्म की विशेषता यह हैं कि इसमें तृतीय लिंगी लोगों के शारीरिक चेष्टाओं को न दिखाकर उन्हें समाज में अपना अस्तित्व बनाये रखने का रास्ता दिखाता है। यहां मेरीकुट्टी समाज में अपना अस्तित्व ढूँढ़ने वाले और उसके लिए निरंतर प्रयास करने वाले तृतीय लिंग के लोगों का प्रतिनिधि हैं। रंजीत शंकर के न्जान मेरीकुट्टी में मेरीकुट्टी का किरदार मलयालम फिल्म के प्रमुख अभिनेता जयसूर्या निभाता है। मेरीकुट्टी स्वयं से अपने व्यक्तिव से प्यार करने वाली है। दूसरों के मदद से नहीं बल्कि अपने मेहनत से जीविका कमाने वाली व्यक्ति है। मेरिकुट्टी का जन्म एक पुरुष के रूप में हुआ था, लेकिन वह महिला बनने की प्रक्रिया में थी। उसके कई सपने थे। वह एक पुलिस अधिकारी बनने की ख्वाहिश रखती है। लेकिन उसे एक तृतीय लिंगी होने के नाते अपने मंज़िल तक पहुँचने के लिए कई अड़चनों का सामना करना पड़ता है। पर किसी भी कठिन परिस्थिति में मेरीकुट्टी अपने आपको कोसता नहीं है, वह अपने सपनों को छोड़ता नहीं, अपने बस्ती से भागता भी नहीं, वह हर कोई मुजीबत को टटकर सामना करने की धीरज रखती नज़र आती है। पूरे फिल्म इस तृतीय लिंगी अस्तित्व गढ़न पर बल देते हैं।

कहानी की शुरुआत में मैथ्यूकुट्टी, जो ट्रांससेक्सुअल है और अपने शरीर के लिंग को संरेखित करने के लिए सर्जरी करवाना चाहती है। एक पुरुष के रूप में जन्म लिए मैथ्यूकुट्टी सर्जरी के बाद मेरीकुट्टी बन जाती है। अपने घर वापस आने पर उसकी परेशानियां शुरू हो जाती हैं। सामान्यतः जिस प्रकार तृतीय लिंगी लोगों के जीवन में जो घटित होता है वही मेरीकुट्टी के परिवार में भी होता है। उसके परिवार उसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। लेकिन वहां के फादर उसे अपनी मधुर वाणी के माध्यम से उसे सांत्वना और प्रेरणा देते हैं। उनके एक इंस्पेक्टर बनने के दृढ निश्चय को शक्ति देता है। वह परीक्षा की तैयारी के लिए एक कोचिंग सेंटर में जुड़ जाता है। पढ़ाई के बीच वह चर्च द्वारा संचालित एक चौनल में रेडियो जॉकी के रूप में भी काम करता है। उनके इलाके में उसे काफी प्रशंसा प्राप्त होते हैं। उस इलाके के पुलिस अफसर मेरीकुट्टी को बहुत अधिक तंग करता है। मगर वह अपने यहाँ के कलेक्टर एवं अपने दोस्तों के मदद से अपनी मंज़िल तक पहुँच जाती है। एक पुलिस इंस्पेक्टर बन जाने से मेरिकुट्टी को समाज में एक हैसियत एवं आदर प्राप्त होती है। साथ ही फिल्म बताते है कि जेंडर जो कुछ भी हो मेरीकुट्टी की तरह जी तोड़ मेहनत करने पर किसी की भी सपने यथार्थ में परिवर्तित हो जायेंगे।

मेरीकुट्टी इस फिल्म में एक तृतीय लिंगी व्यक्ति है। लेकिन अन्य फिल्मों की तुलना में इसमें ट्रांसजेंडर को एक हैसियत प्रदान कर दिया है। मेरीकुट्टी अपने सपनों को सच बनाने के लिए हर पल परिश्रम करती है। तृतीय लिंगी होने पर भी वह अपने आपको छिपाते नहीं बल्कि वह सर्जरी के बाद अपने बस्ती लौटती है। 'मैं लिंग से पुरुष हूँ पर जेंडर से स्त्री हूँ।' मेरीकुट्टी इसे लोगों बीच स्थापित करने की कोशिश करती है। क्योंकि मेरीकुट्टी अपने आइडेंटिटी को समाज के सामने खुलकर बताना चाहती है। अपने जैसी तृतीय लिंगी लोगों की प्रेरणा बनाना चाहती है। जो लोग उनके प्रति घृणा भाव रखती थी वे बाद में उन पर खुश होती है। मेरीकुट्टी अच्छी तरह जानती थी कि उसे सभी से आदर प्राप्त करने के लिए समाज में अपना जगह बनाना ज़रूरी है। इसलिए वह पुलिस बनना चाहती है। कई मुसीबतों को पार करके फिल्म के अंत में वह पुलिस बन जाती है। मेरीकुट्टी समाज में अपना जगह बना लेती है और जो लोग उनसे मुंह मोडते थे वे सब उसे मान सम्मान देने लगते है।

मैथ्यूकुट्टी जब मेरीकुट्टी के रूप में बदल जाती है तब वह साड़ी ज्यादा पहनने लगी। उसके कपड़े एकदम कॉटन और दूसरों को उसके प्रति सामान करने वाला रहा। वह चेहरे पर ज्यादा मैकअप नहीं लगाती है। केवल छोटी सी बिंदी लगाती है। बाल कटे हुए है, मगर उसमे वह खूबसूरत दिखी। प्रस्तुत फिल्म ट्रांसेक्सुअल व्यक्ति को एक आम व्यक्ति के रूप में पेश किया है। इसलिए उसे आम व्यक्ति की तरह सजा–धजाया है।

फिल्म में मेरीकुट्टी की शारीरिक भाषा एकदम स्पष्ट एवं सशक्त है। वह सबके साथ सर उठाकर बात करती है। वह बड़ी धैर्य के साथ अपने बातों को पेश करती है। मेरीकुट्टी रोती है लेकिन हारती नहीं। मेरीकुट्टी कभी–कभी थक जाती है मगर गिरती नहीं। वह अपने आपको संभालने की क्षमता रखती है। ईश्वर के प्रति असीम प्रेम और श्रद्धा भाव रखती है। अपने आप पर विश्वास रखकर वह सभी मुसीबतों का सामना करती है। वह केवल तृतीय लिंग के लोगों के लिए नहीं बल्कि सभी को एक नमूना बन जाते हैं।

न्जान मेरीकुट्टी फिल्म एक ऐसी कहानी है जो लिंग भेद के मापदंडों को तोड़ती है। तृतीय लिंग के व्यक्ति

के चित्रण के माध्यम से समाज की मानसिकता पर सवाल उठाती है। यह फिल्म जेंडर की दृष्टी से दमित लोगों को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। ज़िंदगी में बार–बार पराजय आने पर भी हार न मानकर आगे बढ़ने की आह्वान देती है। वस्तुतः प्रस्तुत फिल्म समाज को नई दिशा दिखाने के साथ लोगों की नजरिया बदलने की कोशिश भी करते हैं।

'ओडुम राजा आडुम रानी' फिल्म तम्पुरु की कहानी है। वह एक समलैंगिक है, जो एक असंवेदनशील समाज में अपना जगह खोजने के लिए संघर्ष करता है। प्रस्तुत फिल्म के माध्यम से ट्रांसजेंडर की ज़िंदगी का यथार्थ स्वरुप अंकित किया गया है। इस फिल्म का संवाद एवं स्क्रिप्ट काफी प्रशंसनीय है। विजु वर्मा का 'ओडुम राजा आडुम रानी' फिल्म समाज में तृतीयलिंग के व्यक्ति को अपना अस्तित्व बनाये रखने की प्रेरणा देती है।

प्रस्तुत फिल्म के प्रमुख पात्र तम्पुरु और वेंकिडी हैं। तम्पुरु एक ऐसा व्यक्ति है जो पुरुषों के प्रति आकर्षित होता है। वेंकिडी एक मोटा और दिलदार आदमी है। वह अपने दोस्तों से मिलकर शराब पीते हैं, महिलाओं के साथ शारीरिक संबंध रखते हैं। तम्पुरु, वेंकिडी के घर में साथी के रूप में आता है, वह न शराब पीता है, न वह महिलाओं से शारीरिक संबंध रखता है। वह वेंकिडी के लिए खाना बनता है, घर की साफ़–सफाई करता है और वह खुद अपने आप को महिला के रूप में सजाकर रखना भी पसंद करता है। तम्पुरु यह सब गुप्त रूप से करता है। तम्पुरु, वेंकिडी से प्रेम करता है। वेंकिडी पहले इस पर खुश होता है पर उसके दोस्तों की मज़ाक से वह परेशान हो जाता है। दोस्तों के निर्देशानुसार वेंकिडी माला नामक औरत को घर में ले आता है। माला घर का सारा काम करता है और वेंकिडी के साथ लेटता भी है। इससे तम्पुरु अस्वस्थ होता है और स्वयं को उपेक्षित महसूस करता है। वह जब झगड़ा करता है तब वेंकिडी उसे घर से बाहर निकालता है। लेकिन तम्पुरु उसे छोड़कर नहीं जाता है। बीच में माला तम्पुरु से ज्यादा प्रेम दिखाने लगता है। तम्पुरु अपना नारी स्वरूप माला के सामने खुलता है। माला उसे नारी जैसा तैयार होने के लिए मदद करती है। लेकिन ये सब माला की चाल थी। वेंकिडी और माला मिलकर तम्पुरु को हमेशा के लिए घर से निकलता है। तम्पुरु अपने आप को कुत्ते से भी कम समझता है। तम्पुरु अपने इस हालत को कोसने लगा। पर वह अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहा। इसलिए वह वेंकिडी के घर छोड़कर हिजड़ों के बीच जाता है। वह विश्वास करता है कि अपने जैसे लोगों के बीच रहने से आदर और सम्मान प्राप्त होंगे।

समलैंगिक व्यक्ति अपना असली स्वरुप किसी से बताना पसंद नहीं करता है। क्योंकि वह समाज से डरता है। असलियत बताने से उसे अपने घर से और समाज से कई यातनाएं सहनी पड़ती है। तम्पुरु अपने समलैंगिकता को छिपाकर शादी करता है। शादी के बाद भी वह पत्नी के साथ सुखमय जीवन नहीं बिता सकते हैं। घर में उसका भाई ने जो मानसिक रोगी है तम्पुरु की पत्नी को बिस्तर में बांधकर उसका शारीरिक शोषण करता है जिससे पत्नी उसे छोड़कर अपनी मायके चली जाती है। तम्पुरु अपने गांव हमेशा के लिए छोड़कर दूसरे जगह चला जाता है। लेकिन तम्पुरु को सभी जगह से घृणा का पात्र बनना पड़ता है। तम्पुरु की कहानी जानकार वेंकिडी और माला की दिल पिंघल जाते हैं। वे तम्पुरु को सब कहीं ढूंढता है। अंत में तृतीयलिंगी लोगों के बीच उसे पाते है। उनके बीच नारी स्वरुप में तम्पुरु को वे खुश पाते हैं। उन्हें भी इससे बड़ी खुशी महसूस होते हैं। वे तम्पुरु को अपने साथ ले जाना चाहते हैं, बार–बार पुकारने पर भी तम्पुरु जाती नहीं। माला वेंकिडी को समझाता है कि वह इन लोगों के बीच खुश है उसे यही पर छोड़कर जाना चाहिए। अंत में वेंकिडी और माला

वहां से चले जाते हैं। लेकिन मीडियावालों की सवालों से बचकर जाने वाली तम्पुरु को कैमरा पीछा करता है। वह गुस्से से उन्हें गाली देता है। उसे अकेला छोड़ने के लिए वह उन लोगों से विनती करती है। यहाँ एक तरह नहीं तो दूसरी तरह तृतीय लिंग के व्यक्ति को समाज छोड़ते नहीं हैं। प्रस्तुत फिल्म इसका मिसाल है और समलैंगिक लोगों के प्रति समाज के मानसिक दृष्टिकोण का खुला चित्रण भी इसमें विद्यमान है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष के रूप में बता सकता है कि 'ओडूम राजा आडुम रानी' फिल्म में तृतीय लिंग के लोगों की ज़िंदगी का चित्रण जैसे का तैसा दर्शाया है। इसके साथ–साथ तृतीय लिंग के व्यक्ति के साथ होने वाले मानसिक एवं शारीरिक तौर के अत्याचारों पर भी प्रकाश डाला गया है। यह फिल्म बताता है कि तृतीय लिंग की व्यक्ति होना एक गलत बात नहीं, वह एक व्यक्ति के व्यक्तिगत चाहत पर आधारित है। इस पर समाज को कोई लेना देना नहीं। अगर समलैंगिक व्यक्ति को अपने बस्ती मान–सम्मान दे दे तो उसे कभी भी अपने घर और अपने जगह छोड़कर नहीं जाना पड़ता है। इसलिए तृतीय लिंग के व्यक्ति को कोसने के बदले उनके प्रति प्रेम भावना रखने का प्रयास हर कोई व्यक्ति को करना चाहिए, ताकि वे भी हमारे बीच अपना स्वस्थ जीवन बिता सकें।

Mob- No: 919497457004
E-mail: indukvku@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 308-318
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में दलितवाद का उदय और उसकी प्रासंगिकता

–डॉ. ममता

प्रोजेक्ट फेलो, ICSSR नई दिल्ली।

भारत पुरातन काल से वर्ण व्यवस्था पर आधारित रहा है, वैदिक काल में भारतीय समाज में चार वर्ण थे, जिन वर्णों का संस्थापक मनु को माना जाता है। मनु को भारत का प्रथम संहिताकार माना गया है। 'मनु ने चतुर्वर्ण व्यवस्था को स्थापित कर जातियों को अनेक भागों में विभक्त कर दिया है। मनु के अनुरूप 'जातियां' अनेक हैं। वर्ण केवल चार है, इन वर्णो के नाम तथा क्रम इस प्रकार हैं– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। इन वर्णों में से पहले तीन वर्णों को द्विज भी कहा जाता है, क्योंकि इनको यज्ञोपवीत ग्रहण करने का अधिकार होता है, ये यज्ञोपवीत संस्कार द्वारा संस्कारित होते हैं। चौथे वर्ण को यज्ञोपवीत ग्रहण करने का अधिकार नहीं है। सभी जातियों की स्थिति इन्हीं चार वर्णों की व्यवस्था के अंतर्गत निश्चित होती थी। चतुर्वर्ण व्यवस्था के पदानुक्रम में मनु ने ब्राह्मणों को प्रथम स्थान दिया है, जबकि क्षत्रियों द्वारा इस स्थिति को स्वीकार नहीं किया गया। शास्त्रों, उपनिषदों, महाभारत, रामायण एवं पुराणों में ऐसे अनेक आलेख उपलब्ध हैं, जो ब्राह्मण को श्रेष्ठ दर्शाता है और शूद्र को निम्न अन्य शब्दों में वर्ण व्यवस्था वैदिक युग की देन है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्ण व्यवस्था आर्य समाज मूलक रही है, कालांतर में इस वर्ण व्यवस्था में परिवर्तन आए और वर्ण यथा जाति मिलकर एक व्यापक पदानुक्रमी व्यवस्था का रूप ले बैठी।

'आर्ययुगीन समाज के बारे में उपलब्ध प्रमाण दर्शाते हैं कि इस व्यवस्था में ब्राह्मण और क्षत्रिय राजन्य नामक दो प्रमुख पद थे। इन दो पदों को छोड़ शेष प्रजा का एक तीसरा पद विष नाम से जाना जाता था। यही नाम आगे चलकर 'वैश्य' में बदल गया। इन पदों के देवता तथा कर्मकांड समान थे।'

प्राचीन भारतीय साहित्य में भी वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति संबंधी विविध उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें सर्वप्रथम इसे दैवी व्यवस्था मानने का सिद्धांत है, जिसका प्रतिपादन ऋग्वेद, महाभारत, गीता आदि में मिलता है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में चारों वर्णों को विराट पुरुष के चारों अंगों से उत्पन्न कहा गया है। तदनुसार 'मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघे से वैश्य तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई।' चतुर्वर्ण व्यवस्था का यह प्राचीनतम उल्लेख है। यहां संपूर्ण सामाजिक संगठन एक शरीर के रूप में कल्पित किया गया है, जिसके विभिन्न अंग समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मुख वाणी का स्थान, अतः ब्राह्मणों की उत्पत्ति मानव जाति के शिक्षक के रूप में हुई। भुजाएं शौर्य एवं शक्ति का प्रतीक है, अतः क्षत्रिय का कार्य हथियार ग्रहण करके मानव जाति की रक्षा करना है। जंघा शरीर के निचले भाग का प्रतिनिधि है।

इससे तात्पर्य सम्भवतः उस भाग से हो सकता है जो अन्न ग्रहण करता है, अतः वैश्य की उत्पत्ति मानव जाति को अन्न प्रदान करने के लिए है। पैर शरीर के भार वाहक हैं, अतः शुद्र की उत्पत्ति समाज का भार वहन

करने तथा अन्य वर्णों की सेवा करने के निमित्त हुई है। ऋग्वेद की वर्ण विषयक अवधारणा श्रम–विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है। जिसमें प्रत्येक वर्ण के कार्य का महत्व है। इसे दैवी आधार प्रदान करने के पीछे यह मान्यता रही है कि ईश्वर की शक्ति से डरकर सभी इसके अनुसार आचरण करेंगे तथा कोई भी इसका उल्लंघन करने का साहस नहीं करेगा।

शूद्रों की स्थिति धर्म सूत्रों के काल (ईसवी पूर्व 600 से 300) में सर्वाधिक दयनीय हो गई तथा उन्हें पूर्णतया द्विजों की मर्जी पर छोड़ दिया गया। उनकी तुलना पशु से की गई तथा उनका एकमात्र कार्य उच्च वर्णों की सेवा करना बताया गया।

समाज में अस्पृश्यता का उदय हुआ तथा शूद्र को अछूत माना जाने लगा। आप स्तम्ब के अनुसार 'शूद्र द्वारा स्पर्श किया गया अन्न ब्राह्मण के लिए त्याज्य है।' इसी काल में जैन तथा बौद्ध धर्म का उदय हुआ। महावीर तथा बुद्ध ने छुआछूत का विरोध करते हुए मानव मात्र की समानता का उपदेश दिया। इससे शूद्रों की स्थिति में कुछ सुधार तो हुआ लेकिन वर्ण व्यवस्था के प्राचीन ढांचे में कोई खास परिवर्तन नहीं आया। निम्न वर्ण की स्थिति यथावत बनी रही। शूद्रों को सेवक रखने पर किसी को आपत्ति नहीं हुई। स्वयं बुद्ध का झुकाव भी कुलीन वर्ग की ओर था। वह वैश्य या शूद्र को क्षत्रिय वर्ण के ऊपर रखने को प्रस्तुत नहीं थे। इसी काल के अंत तक वैश्यों के शूद्रों में मिल जाने से उनकी संख्या और अधिक बढ़ गई।

मौर्यकाल तक आते–आते हम शूद्रों की स्थिति में सुधार के कुछ चिन्ह देखते हैं। अर्थशास्त्र में उनका धर्म द्विजातियों की सेवा के साथ ही साथ 'वार्ता' अर्थात कृषि, पशुपालन और वाणिज्य भी बतलाया गया है। 'शूद्रकर्षक का भी उल्लेख मिलता है, जिसका अर्थ है शुद्र किसान। स्पष्ट है कि मौर्य काल में शूद्र वार्ता व्यक्ति द्वारा भी अपना जीवन निर्वाह करते थे। वे विभिन्न शिल्पों का अनुसरण करते थे। कौटिल्य ने उन्हें सेना में भर्ती होने की भी छूट दी। उन्हें संपत्ति रखने का भी अधिकार था। मनुस्मृति से भी पता चलता है कि शूद्र संपत्ति रखते थे।

रोमिला थापर, रामशरण शर्मा जैसे विद्वान मौर्यकालीन समाज में शूद्रों की स्थिति के अत्यंत दयनीय होने की बात करते हैं। उनके अनुसार मौर्य काल में राजकीय नियंत्रण अत्यंत कठोर था। प्राकृतिक साधनों के अधिकाधिक उपयोग की लालसा से राज्य में शुद्र वर्ण को रोमिय हैलाटों की स्थिति में ला दिया। यह अर्थशास्त्र के प्रमाण से स्पष्ट हो जाता है।

यह माना जाता है कि प्राचीन भारत में शूद्र शिक्षा से वंचित नहीं थे। ब्राह्मणों का सबसे अधिक जोर केवल कर्म कांड पर था और वेदों पर अनन्य अधिकार था। इसलिए वे नहीं चाहते थे कि वेद का ज्ञान किसी अब्राह्मण को न हो, विशेषतः शुद्र को मिले। ब्राह्मण ग्रंथों में इस विषय पर कठोर विधान मिलते हैं।' भारत में वैदिक संस्कृति, वर्णवादी थी, शुद्र आर्थिक सामाजिक रुप से ब्राह्मण व्यवस्था द्वारा प्रताड़ित रहा है। ब्राह्मण वाद से पूर्व शुद्र बड़ी अच्छी हालत में थे, उन्हें पगार मिलती थी, वह गरीब ब्राह्मणों से यज्ञ कराकर उन्हें धन देते थे। महाभारत में ऐसे ब्राह्मण को शुद्र कहा गया जो वेदज्ञ, तपस्वी आदि न हो और तपस्वी, विद्वान, धर्मज्ञ शुद्र ब्राह्मण हो सकता है।

धर्मशास्त्रों में शुद्र के प्रताड़ना करने उन्हें पशु वत स्थिति में रखने अमानवीय कष्ट सहने और हर तरह के धार्मिक सामाजिक अधिकारों से वंचित रखने के आदेश थे।

इसी प्रकार दलितों को शिक्षा से भी वंचित रखा गया। समाज से तिरस्कृत होकर शुद्र को नीच समझा जाने लगा। इस दशा में शुद्र वर्ण का अन्य तीनों वर्णों के द्वारा सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया और इन बहिष्कृत लोगों को अछूत, अवर्ण, अतिशूद्र, अन्तर्यान आदि नामों की संज्ञा दी जाने लगी। ये लोग हिंदू होते हुए भी हिंदुओं के कुओं से पानी नहीं भर सकते थे। हिंदुओं के घरों तथा मंदिरों में प्रवेश नहीं कर सकते थे। हिंदुओं के मोहल्लों में बनाई गई पाठशाला में पढ़ने तथा कुछ सड़कों पर तथा रास्तों पर इन्हें चलने का अधिकार नहीं था। अछूतपन के कारण जीवन निर्वाह के साधन अत्यधिक सीमित होने से यह लोग दरिद्रता के जाल में बुरी तरह फंस गए और दरिद्रता तथा अशिक्षा के कारण इनका जीवन स्तर सामान्य से काफी नीचे चला गया जिसके कारण इनमें हीनता की भावना पैदा हुई। इस स्थिति में शिक्षा तथा साहित्य में सहभागिता भला कैसे संभव हो पाती और दलितों को हिंदू धर्म में कोई सम्मानजनक स्थान न मिल पाने के कारण भी दलितों में अनेक परिवर्तन हुए।

दलितों की इसी दयनीय स्थिति का वर्णन पहली बार रैदास ने हिंदी साहित्य में किया। रैदास ने पहली बार वर्णाश्रम के अहंकारियों पर चोट की थी कुछ विद्वानों के विचार से रैदास को ही पहला दलित कवि माना जा सकता है। दलित साहित्य पर चल रहे शोध–कार्य से इनसे पहले भी अनेक दलित कवि सहित्यकार हो सकते हैं। (1376 से 1527 गुरु रविदास काल) रविदास ने उस समय सच को सच कहा तब दलितों के पढ़ने लिखने पर भी प्रतिबन्ध था।

मराठी दलित कवि/साहित्यकारों ने सच को स्वीकार करने की हिम्मत जो आजादी के दूसरे दशक में आत्मकथाओं के रूप में जुटाई थी।गुरु रविदास ने उस समय सच को सच कहा था तब दलितों के पढ़ने लिखने पर भी प्रतिबंध था। रविदास जी की जाति चमार थी। इस तथ्य को उन्होंने बार–बार अपनी रचनाओं में कहा है :–

'नागर जन्स मेरी जाति विख्यात चमार
कहि रैदास खलास चमार।'

यही नहीं रैदास ने अपनी वाणी में खुलकर अपने पेशे और जाति का वर्णन किया है।

''जाके कुटुम्ब के ढेढ सभ ढोर ढोत
फिरहिं अजुह बनारसी आस–पास।''

इस प्रकार रैदास को दलित चेतना का पहला कवि भी माना जा सकता है। स्वामी अछूतानंद की कविताओं को भी दलित जागरण के बीच महत्वपूर्ण कड़ी माना जा सकता है। उन्हीं के समकक्ष बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु। उन्होंने कविता, नाटक, लेख, आलोचना तथा अनुवाद प्रत्येक विधा में दलित साहित्य को समृद्ध बनाया।

हिंदी साहित्य में दलित समस्या को लेकर पहली रचना 1914 में देखने में आती है। यह है, 'सरस्वती' पत्रिका में छपी हरिओम की कविता 'अछूत की शिकायत'। इसके बाद हरि औद्य, क्षेही, चंडी प्रसाद, ह्रदयेश तथा अन्य कवियों ने भी इस विषय पर कलम चलाई। आगे के कवि और कविताएं दलितों के दुख दर्द पीड़ा से जुड़ते गए। हिंदी में ऐसे बहुत से उपयोग हुए प्रयोगवादी कविता से लेकर छायावादी, प्रगतिवादी, रहस्यवादी क्षमता वाले तथा जनवादी दलितों को लेकर लिखी गई दलित कविता। साहित्य में छुआछूत के बारे में दलित चिंता की राय

अलग है।

स्वर्णों के अधिकांश कवि दलित को भाग्य तथा अंधविश्वास दोनों से जोड़ते रहे। उनमें नागार्जुन, निराला, रामकुमार वर्मा, गजानन माधव 'मुक्तिबोध' रहे हों या दिनकर, शमशेर बहादुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती या अज्ञेय आदि। इनमें से अधिकांश ने मानव की दयनीय अवस्था का चित्रण तो किया, पर इसके भीतर चेतना के स्वर जागृत करने में सफलता कम प्राप्त की। साथ–साथ उनकी श्रेष्ठता का गुणगान भी करते रहे। कितने कवि ऐसे हैं जिन्होंने 'डॉक्टर अंबेडकर के उस कार्य का औचित्य ठहराया जब उन्होंने 25 दिसंबर, 1927 को मनुस्मृति का दहन किया था। वेद पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों के अमानवीयता के पहलू के खिलाफ एक शब्द भी शायद लिखा हो। कितने कवियों ने हिंदू धर्म की वर्ण–व्यवस्था पर चोट की। अधिकांश तो पोथी लिख–लिख कर भी माथे पर तिलक लगाते रहे और जनेऊ भी धारण करते रहे। क्या ऐसे सवर्ण कवियों के लिखे गए साहित्य को दलित साहित्य कहना उचित होगा।'

आरंभिक दौर में दलित जातियों के संतों ने समाज और अध्यात्म के दोनों स्तरों पर श्रमिक को प्रतिष्ठा दिलाई। वे अपने–अपने पेशे को अच्छा बताने में लग गए। उन्होंने अपनी सामाजिक हीनता नष्ट कर दी थी। रविदास उनमें से एक महत्वपूर्ण कड़ी रहे। डॉ. धर्मवीर का कहना है कि रैदास की परंपरा शंबूक और एकलव्य की परंपरा है। रैदास की संभावना डॉ अबेडकर और उनका आंदोलन है। स्वयं डॉक्टर अंबेडकर ने भी अपनी पुस्तक 'अनटचेबल्स' रैदास को समर्पित की है।

कुछ कवियों ने दलितों को केंद्र बिंदु मानकर ऐतिहासिक तथा पौराणिक आधार पर रचनाएं की हैं। उनमें डॉक्टर जगदीश गुप्त का 'शंबूक', डॉ रामकुमार वर्मा का 'एकलव्य', नरेश मेहता का 'शबरी', सुधार का 'भीम चरित्र मानस', आरडी निमेश की 'भीम कथा अमृतम', अनेग दास का 'भीम चरित मानस', राजपाल सिंह राज की 'अंबेडकर भजनावली', रसिक बिहारी मंजूल का 'अंबेडकर अग्नि शतक', श्याम सिंह 'शशि' का 'एकलव्य' और अन्य कविताएं' आदि में साहित्य की परंपरागत शैली में दलितों की व्यथा का चित्रण किया गया।

उत्तरी भारत के लोक गीतों के माध्यम से दलितों से संबंधित गीत गांव–कस्बों में आज भी गूंजते हैं। उनमें सांग, राग–रागिनी, ढोला तथा गीतों के रूप में अनेक विधाओं का विकास हुआ है। इसमें विशेष बात यह है कि इन के गीत लेखक तथा गायकों में अधिकतर दलित जातियों से ही हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जिनके नाम लोगों को आज भी याद है उनमें विशेष–इंदरगढ़ी (गाजियाबाद) से सोहनलाल, जो होली आल्हा गाते थे। वहीं से देबिया राम जो सांग तथा लोकनाट्य में रहे लौटी गांव (मेरठ) से बंसी राम मुसाफिर जिन्होंने जाटव वंशावली की रचना की थी। घासबंदी पर रचनाएं की। जाहिदपुर मेरठ से बख्शी दास, मेरठ से ही गंगा दास मुल्की राम तथा मोदीनगर से जी राम हरियाणा से मांगेराम और चंद्र नट आदि प्रमुख सांगी रहे हैं। इनके अलावा भी स्वयं दलित समाज के बहुत सारे कवि तथा गीतकारों ने लोकगीत तथा लोक नृत्य, नाटक में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्रेमचंद प्रथम भारतीय लेखक हैं जो अवर्णों और सवर्णों के बीच रोटी–बेटी का संबंध स्थापित करते हैं। रोटी का संबंध 'कर्मभूमि' में और बेटी का 'गोदान' में स्थापित होता है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के 'निरूपमा' आचार्य चतुरसेन के 'गोली' मानवीय अधिकारों से वंचित दास–दासियों पर आधारित रंगे राघव का 'कब तक पुकारूं' फणीश्वर नाथ रेणु का 'मैला आंचल' यादवेंद्र चंद्र का 'पत्थर के आंसू' तथा 'हजार घोड़ों का सवार',

शिवप्रसाद सिंह के 'अलग–अलग वैतरणी' जगदीश चंद के 'धरती धन न अपना' शैलेश मटियानी के 'बा गोपुली–गफूर' आदि में दलित मानव की पीड़ा का चित्रण मिलता है।

आठवें दशक में उभरे नवोदित लेखकों ने मधुकर सिंह रचित तीन उपन्यासों 'सबसे बड़ा छल' (1975), 'सोनभद्र की राधा' (1976), 'सीताराम नमस्कार' (1977) में दलित वर्ग का चित्रण हुआ है। अन्य उपन्यासों में गोपाल उपाध्याय का 'एक टुकड़ा इतिहास', दयाशंकर मिश्र का 'छोटी बहू', बृजभूषण का 'मंगलोदय' रामकुमार 'भ्रमर' का 'मोतिया' मन्नू भंडारी का 'महाभोज', भीष्म साहनी का 'बसंती', गिरिराज किशोर का 'यथा प्रस्तावित' तथा 'परिचित'।

1975 में प्रकाशित गोपाल उपाध्याय का यथार्थवादी उपन्यास 'एक टुकड़ा इतिहास' एक दलित महिला चन्दी देवी उर्फ चनुली की संघर्ष गाथा है।

अछूतों के साथ किए जाने वाले अमानुशिक अत्याचार के बड़े ही मार्मिक चित्र प्रेमचन्द ने 'ठाकुर का कुआं', 'सद्गति', 'घासवाली', 'मंदिर', दूध का दाम आदि कहानियों में प्रस्तुत किए हैं।

मई 1927 में 'चांद' पत्रिका ने दलित समस्या की प्रासंगिकता को मध्य नजर रखते हुए एक विशेषांक 'अछूतांग' नाम से प्रकाशित किया था। जिसमें इन विषयक कविताओं के साथ प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'मंदिर' भी छपी। इनके अलावा 'जहूर बख्श', निर्वासित तथा चंडी प्रसाद ह्रदयेश की कहानियां छपी। इस दौर की अन्य प्रमुख कहानियों में परिपूर्णनन्द वर्मा की 'तीन दिन' रामेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव की 'अछूत' जनार्दन राय की 'रोजे' इंद्र नारायण झा इंद्र की 'अछूत' विशेष है।'

शिवपूजन सहायक की 'देहाती दुनिया', निराला की 'चतुरी चमार' तथा रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' और 'डुगडुगी' आदि कहानियों ने प्रेमचंद युग के दलित विषयक साहित्य को आगे के साहित्य से जोड़ने में पुल का काम किया। मधुकर सिंह की 'लहू पुकारे आदमी', रमेश उपाध्याय की 'प्रौढ़ पाठशाला', ज्ञानप्रकाश विवेक की 'प्रीतिभोज' आदि विशेष हैं।

19वीं सदी के अंतिम दशक में उपन्यास–लेखन की ओर उन्मुख होने वाले उपन्यासकारों में पंडित किशोरी लाल गोस्वामी और पंडित लज्जाराम मेहता प्रमुख हैं जिन्होंने सनातन धर्म को बनाए रखने के लिए वर्ण व्यवस्था और छुआछूत का समर्थन करके कट्टरपंथ का परिचय दिया। इस समस्या पर उन्होंने प्रसंगवश ही विचार किया, इसलिए उनके उपन्यासों में नाम मात्र के लिए ही दलित विमर्श हुआ। इसलिए कहा जा सकता है कि 19वीं शताब्दी में भी दलित को लेकर अधिक साहित्य नहीं लिखा गया, जैसा कि किशोरीलाल गोस्वामी 'अंगूठी का नगीना' उपन्यास में नव जागरण की प्रगतिशील–सुधारवादी परम्परा का विरोध किया और जातिगत भेदभाव और छुआछूत का समर्थन किया। इस उपन्यास के पात्र बतासिया और नौकरानी लक्खी के प्रसंग में दलितों के प्रति घृणा का भाव साफ झलकता है।

दलित साहित्य को लेकर पहली बार कथा साहित्य के विकास में गोदान ब्राह्मणों के सामने चुनौती पूर्ण प्रस्ताव रखता है। 'जैसा कि हम या तो आज मातादीन को चमार बना देंगे या उनका और अपना रक्त एक कर देंगे..... तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते तो मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं।' प्रेमचंद इस उपन्यास के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि ब्राह्मण दलितों को ब्राह्मण नहीं बना सकते थे, क्योंकि उन्होंने माना ब्राह्मण में वह सामर्थ्य नहीं है, जो दलितों में है। इसी प्रसंग में दलित कहते हैं तो फिर तुम चमार बन जाओ इस तरह प्रेमचंद

ब्राह्मण मातादीन का ब्राह्मणत्व नष्ट करके दलित बना देंगे। ऐसा ही प्रेमचंद के 'कर्मभूमि' उपन्यास में वर्गीय आधार पर दलित विमर्श की प्रक्रिया अपनाते हुए दलितों की काफी वकालत की थी और दलित एकबद्ध होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का रास्ता चुनते हैं।

जिस तरह वर्तमान में सवर्णों के सामाजिक, राजनीतिक, संगठन दलितों, पिछड़ों को जातियों में बांट कर अपनी राजनीति चला रहे हैं। ठीक उसी तरह साहित्य में उग्र–समग्र दलित एकता की बजाय भंगी जाति को ही संगठित करने का जोर देते थे। ऐसा ही एक उपन्यास चतुरसेन शास्त्री का 'बगुला के पंख' उपन्यास में जातिगत भेदभाव छुआछूत की समस्या को दूसरे ढंग से उठाया है। लेखक भंगी जाति के जुगनू को कायस्थ बनाकर मिनिस्टर के पद पर पहुंचा देता है और जब संभ्रांत परिवार में उसकी शादी होने लगती है तो एन वक्त पर उसकी जाति का भंडाफोड़ करके जुगनू को भागने के लिए मजबूर कर देता है।

दूसरी तरफ 'कब तक पुकारूं' में रांगेय राघव ने सारा प्रयास एक दलित सुखराम को ठाकुर साबित करने में ही लगाया है इसलिए सुखराम को दलित होने की हीनभावना से ग्रस्त दिखाया गया है। इस उपन्यास में ब्राह्मणों की उत्तर वादी विचारधारा का दूसरा रूप है जो छदम प्रगतिशीलता के आवरण में प्रस्तुत किया गया है। ऐसा ही भगवती चरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में राष्ट्रीय आंदोलन में दलितों की भूमिका के संदर्भ में गलत निष्कर्ष निकालते हैं। पहले लेखक दलित गेंदालाल द्वारा यह कहलवाता है कि राष्ट्रीय आंदोलन सवर्णों की चीज है तो वह इस पर अपनी स्थिति स्पष्ट करता है कि 'हमें तो जन्म जन्म तक आप लोगों की गुलामी करनी है' तो अनुभवी ज्ञान प्रकाश उत्तरवाद दिखाता हुआ बताता है कि आप लोगों का जो गला घोंटा गया है और जो अत्याचार किए गए हैं उसके परिणाम स्वरुप आज हमारे देश का बच्चा–बच्चा अछूत है।

इसी संदर्भ में गिरिराज किशोर द्वारा लिखित उपन्यास 'यथा प्रस्तावित' और 'परिशिष्ट' को लिया जा सकता है। यथा प्रस्तावित का चौथी श्रेणी का कर्मचारी बालेसर अपने सहकर्मियों द्वारा अपमानित और परिष्कृ त किया जाता है कि वह अपना मानसिक संतुलन खोकर पागलों जैसी स्थिति में पहुंच जाता है। निष्कर्ष रूप में बालेसर की पत्नी द्वारा उद्घाटित किया जाता है कि जांच काहे की हो चुकी उनके दिमाग की या दफ्तर की। साहिब इन दोनों में से किसी न किसी में तो गड़बड़ है। एक तरफ तो 'यथा प्रस्तावित' का पात्र बालेसर सामान्य कर्मचारियों द्वारा पागल होने की स्थिति में पहुंचा दिया जाता है और दूसरी तरफ 'परिशिष्ट' के दबंग और शक्तिशाली तथा मेधावी छात्र रामउजागर को सवर्णों के द्वारा तरह–तरह के आरोप लगाकर जिसमें संस्था के पदाधिकारी और प्रोफ़ेसर आदि मिलकर उसका मानसिक संतुलन बिगाड़ कर आत्महत्या के लिए मजबूर कर देते हैं।

अंततः हिंदी साहित्य में दलित वाद के उदय के साथ सवर्णों की दलितों के प्रति जातिगत द्वेष की भावना उभर कर सामने आने लगी। गिरिराज किशोर ने परिशिष्ट उपन्यास की भूमिका में लिखा है 'पिछले 4–5 वर्षों के दौरान अनुसूचित होने की मानसिकता के प्रति संवेदना का निर्माण हो जाने पर कदम उठाने का साहस हुआ सच पूछिए तो जाति 'अनुसूचित' नहीं होती मानसिकता.... होती है। मानना और समझना दोनों।' यह लेखक की रचना प्रक्रिया वह आधार भूत तर्क है जिसमें उसे दलित पर लिखने के लिए मानसिक स्तर पर दलित होना पड़ा। अमृतलाल नागर ने भी 'नाच्यो बहुत गोपाल' की रचना प्रक्रिया के संबंध में यही तर्क पेश किया था कि गिरिराज किशोर जाति को मानसिक स्थिति मानते हैं, सामाजिक स्थिति नहीं।

कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में दलितवाद के उदय के साथ हिंदी उपन्यासकारों, कहानीकारों आदि ने दलित वाद को एक गहन मुद्दा बनाकर साहित्य में उतारने का प्रयास किया है। उन्होंने दलितों के साथ हो रहे निम्न प्रकार के अत्याचारों एवं दुर्व्यवहारों आदि का चित्रण अपने साहित्य में किया है।

राजनीति में दलित वाद की ही तरह साहित्य में भी दलित वाद की भी धूम है। जिस प्रकार दलित राजनीति के पैरोकार राजनीति में स्थिरता, नैतिकता और प्रजातांत्रिक मूल्य की अवहेलना कर गाहे–ब–गाहे शिखर नेताओं की भर्त्सना करते रहते हैं, उसी प्रकार दलित लेखक शीर्ष साहित्यकारों को खरी–खोटी सुनाने से परहेज नहीं करते। जैसे गांधी, जयप्रकाश, नेहरू या दूसरे नेता दलित वादी राजनीति के निशाने पर रहते हैं, ठीक वैसे ही प्रेमचंद, निराला या नागार्जुन सरीखे लेखक दलित वादी लेखकों के लिए कोई खास महत्व नहीं रखते। यह स्थिति बहुत खतरनाक है और खेल प्रतिक्रिया के बूते पर सृजनशीलता की स्वस्थ परंपरा को जीवित नहीं रखा जा सकता यह ठीक है कि अनुभूति का अपना महत्व है, पर अनुभवाश्रित संवेदना को भी झुठलाया नहीं जा सकता।

यह दिलचस्प तथ्य है कि दलित राजनेता और लेखक अपने आचरण में उसी परंपरा का अनुसरण करते आ रहे हैं जो सवर्णों द्वारा पोषित है यह दूसरे प्रकार का सवर्णवाद है जो हाशिए पर रहने वाले लोगों के लिए कुछ भी करने में कोई रुचि नहीं लेता। दलितवादी राजनेताओं को जैसे सवर्णों की तरह रहने और सम्मान पाने की हड़बड़ी है,वैसे ही दलित लेखक अपने लिए ऐसे सुरक्षित स्थान को खोजने में व्यस्त हैं, जहां उनके सिक्के के चलने में कोई गतिरोध न हो। 'खेद की बात है की राजनीति और साहित्य में उन लोगों को प्रतिनिधित्व हासिल नहीं हैं जो सचमुच शोषित और उत्पीड़ित हैं। सरकारी सेवाओं में आरक्षण का लाभ सामान्य दलित को नहीं मिल पाता। राजनीति में सामान्य दलित की भागीदारी एक सपना है तो सामान्य दलित लेखक की दलित साहित्य में कोई पूछ नहीं है। इस स्थिति में हाशिये पर रहने वाली जनता की दुर्दशा में कोई सुधार होगा इसमें संदेह है।'

साहित्य में दलित वादी दृष्टि का दुखरूद पक्ष यह है कि वह किसी भी स्वर्ण द्वारा लिखित रचना या आलोचना को स्वीकार नहीं करती। उसके लिए प्रेमचंद की कहानी 'कफन' दलित विरोधी रचना हो जाती है तो निराला की 'कुकुरमुत्ता' 'कुल्ली भाट' या दूसरी रचनाएं दया भाव की उपज मात्र। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा किया गया कबीर का मूल्यांकन गलत करार पाता है तो आचार्य शुक्ल के अधिकतम निष्कर्ष झूठे निकल कहलाते हैं। ऐसे में यह समझना कठिन हो जाता है कि सही मायने में दलित वादी लेखन का लक्ष्य क्या है। इस दृष्टि का सीधा तर्क यह है कि दलितों द्वारा लिखित साहित्य ही दलित साहित्य है।

दूसरे व्यक्ति द्वारा लिखी दलित रचना इसलिए दलित साहित्य नहीं हो सकती क्योंकि वह दया और सहानुभूति वश लिखी गई है, उसका मुक्त यथार्थ से कोई संबंध नहीं है। इस आधार पर अगर निर्णय होने लगे तो साहित्य के हश्र का अनुमान करना कठिन नहीं रह जाता। यह सर्वमान्य तथ्य है कि हिंदी साहित्य में दलित लेखन की एक पुष्ट परंपरा रही है। इस परंपरा में दलित और दूसरे लेखकों की भागीदारी होती आयी है जिससे साहित्य की निरंतर श्रीवृद्धि हुई है, पर जो हाल के वर्षों में स्थिति पैदा हुई है उससे साहित्य को खेमों में बांटना साहित्य को खंड–खंड करना है और उसकी मूल चेतना को ध्वस्त करना है।

दलित वादी लेखक यह तर्क देते नहीं थकते कि पहले का साहित्य जो दलित पर उपलब्ध है वह दलित साहित्य नहीं है...सही मायने में वह अब शुरू हुआ है। इस घोषणा में प्रतिक्रिया और घृणा का इतना जबरदस्त

जोर है कि यह तय करना कठिन हो रहा है कि साहित्य की सार्वजनिक जीवन में स्थापित भूमिका का क्या होगा। हमें यह उम्मीद क्यों रहती है कि वह सब को लेकर साथ लेकर चलने का प्रयास करें और चाहे कि नए विषय के साथ देश का निर्माण करें मराठी और गुजराती में दलित लेखन की बड़ी सशक्त परंपरा रही है और वह किसी भी प्रकार से प्रचलन का शिकार नहीं रही है। मराठी में जितने दलित लेखक हैं, उन्हें पढ़ते हुए या महसूस करते हुए प्रतिक्रिया या घृणा के तत्व नहीं दिखाई देते, पर जब हिंदी में दलित साहित्य को पढ़ा जाता है तो यह साफ दिखाई देता है कि उसमें घृणा और प्रतिक्रिया की इतनी बहुतायत है कि उससे किसी स्वस्थ दृष्टि का विस्तार नहीं होता।

'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की निंदा का अभिनय उसी दृष्टि से जुड़ता है। इसलिए जब दलित वादी लेखक गैर दलितों द्वारा लिखित साहित्य को नकारते हैं तब यह समझने में मुश्किल नहीं होती कि वे एक विशेष किस्म की कार्यसूची पर काम कर रहे हैं। यह कार्य सूची अपने को सही सिद्ध करने और दूसरों को नीचा दिखाने की भावना पर आधारित है और यही कारण है कि इस वाद ने अपने को जन्म से ही विवादास्पद बना डाला है।'

हिंदी में दलितवादी लेखन की परंपरा पुरानी नहीं है और अपने अल्प वय में ही इसने कई उल्लेखनीय रचनाएं दी हैं, पर इस दलित वाद की कठिनाई यह है कि विरोध और प्रतिक्रिया की बहुलता के कारण इसने प्रायःउन सबको संदेह की दृष्टि से देखना शुरू कर दिया है जिन्होंने दलित शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाई है और हर संभव तरीके से उसका प्रतिरोध किया है। इस सृजनात्मक आंदोलन की एक मुश्किल यह भी है कि इसका दायरा महानगरों और कुछ विशेष नगरो तक सीमित है। 'दलित वादी लेखन में वही लेखक सक्रिय और मुखर हैं जो किसी न किसी कारण से सवर्ण वादी व्यवस्था के समानांतर व्यवस्था बना सकने में समर्थ है। इस स्तर पर देखने के बाद यह लगने लगता है कि इस 'वाद' का कोई तात्कालिक उद्देश्य तो नहीं है? अगर साहित्य के केंद्रीय स्तम्भों से टकराकर अपनी जगह सुरक्षित कराने की प्रवृत्ति ही दलित लेखन का उद्देश्य हो, तो इन लेखकों का चाहे जो भला हो,इस आंदोलन का कोई सुपरिणाम शायद ही निकले।'

सवर्ण लेखकों की दलितों पर लिखी रचनाओं को जिस हड़बड़ी में 'तटस्थ' या 'सहानुभति' जैसे जुमले उछाल कर उन्हें दरकिनार करने की कोशिश होती है, उसमें भी यह भावना संप्रेषित होती है कि अपने बंद किले में इस धारा को किसी के झांकने की अनुमति नहीं है। साहित्य जैसे एक वर्ग विशेष का खेल हो जिसे खेलने का अधिकार स्वयं उसी वर्ग के व्यक्ति को हासिल हो। यह प्रवृत्ति खतरनाक है और इससे अंततः इस आंदोलन को कोई फायदा पहुंचाने वाला नहीं है। साहित्य के लिए यह विभाजन कहीं से भी स्वास्थ्य कर नहीं है और साहित्य में ऐसी स्तिथियाँ भेद को बढ़ाती ही है, मिटाती नहीं। दलितवादी लेखन में आक्रोश का होना स्वाभाविक है, पर जब वह सबके तिरस्कार की भावना से प्रेरित हो तब वरेण्य नहीं रह जाता। आक्रोश में भी सन्तुलन की दरकार होती है।

भारत में दलित साहित्य की गूंज छ्ठे दशक से सुनाई देने लगी। दलित वर्ग अब समस्त समाज को अपनी वाणी से परिचित और उद्वेलित कर रहा है। आजादी के पश्चात नया संविधान 1950 में लागू हुआ और लोकतंत्र की स्थापना हुई। लोकतंत्र के अंतर्गत धर्म, जाति, लिंग और वर्ण से परे समतामूलक समाज का निर्माण और सामाजिक न्याय तक प्रत्येक भारतीय की पहुंच की आकांक्षा के साथ दलितों के मसीहा डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के नेतृत्व में नए भारत के लिए नए संविधान का निर्माण हुआ। इसके साथ ही नए युग का सूत्रपात

भी हुआ। डॉक्टर अंबेडकर ने बीसवीं सदी के पूर्वोत्तर में भारतीय राजनीति के मंच पर सक्रिय भूमिका में पहली बार समाज के एक बड़े हिस्से की लड़ाई की शुरुआत की जो दलित था, शूद्र था, अस्पृश्यता और प्रताड़ित होने के साथ दास की भूमिका में जीवन यापन करने के लिए अभिशापित था। डॉक्टर भीमराव अंबेडकर का नारा था 'शिक्षित बनो संघर्ष करो और संगठित रहो' इसी वाक्य को दलित समाज ने अपने जीवन का मूल मंत्र बना लिया यह कहना व्यर्थ न होगा कि संपूर्ण दलित साहित्य डॉक्टर अंबेडकर से ही वैचारिक ऊर्जा ग्रहण करता है। दलित साहित्य में दलितों की व्यथा, कष्ट, भोगा हुआ और अनुभवों का यथार्थ चित्रण है।

संपूर्ण भारतीय दलित साहित्य में दलितों ने अपने दुख संताप को व्यक्त किया है। दलितों का दुख भी एक जैसा है और अभिव्यक्ति के स्तर पर भी एक जैसा ही है आक्रोश और नकार दलित साहित्य के मुख्य दो मुद्दे हैं दलित लेखन की बात की जाए तो इस क्षेत्र में काव्य सृजन अधिक हुआ है। कविता का मूल स्वर वर्ण व्यवस्था से पीड़ित समुदाय की वेदना व अत्याचार और शोषण का इतिहास है। भारतीय दलित कविता वर्ण व्यवस्था के सामाजिक, सांस्कृतिक राजनैतिक वर्चस्व के खिलाफ एक मोर्चा है। भारतीय दलित साहित्य में परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा तो है ही साथ ही साथ ही दलित साहित्य में नकार और विद्रोही स्वर को भी देखा जा सकता है।

कहा जा सकता है कि दलित साहित्य को समझे बिना संपूर्ण हिंदी साहित्य को समझना गलत होगा। साहित्यकारों का बड़ी संख्या में दलित लेखन करना लेखन के लिए प्रेरित होना इससे यह स्पष्ट होता है कि यहां भी कम चेतना नहीं है। आधुनिक समय में दलित विमर्श हिंदी ही नहीं हिंदी की सीमाओं से बाहर बड़ा स्वरूप ले रहा है जिसका मूल उद्देश्य दलित जीवन की बुनियादी समस्याओं को जनता के सामने लाना है। संपूर्ण भारतीय भाषाओं में दलित लेखन तेजी से हो रहा है। बहुचर्चित 'हंस' पत्रिका में छपने वाली ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' सन 1997 में इसे राजकमल प्रकाशन ने आत्मकथा के रूप में प्रकाशित किया जो बहुचर्चित हुआ। यहीं से दलित साहित्य विमर्श का मुद्दा बन गया। दलित साहित्य के माध्यम से दलित साहित्यकार अपने जीवन में भोगे हुए कटु अनुभवों को व्यक्त करते हैं और समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। विख्यात दलित चिंतक कंवल भारती ने कहा 'दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को व्यक्त किया है। अपने जीवन संघर्ष में जिस यथार्थ को भोगा है दलित साहित्य उनका उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।' हिंदी साहित्य में दलित विमर्श की समस्याओं को आरंभ से ही उठाया जाता रहा है।

आजादी से पहले प्रेमचंद, यशपाल, निराला आदि कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में दलित की समस्याओं को मजबूती से प्रस्तुत किया, वहीं आजादी के बाद भारत के समाज में राजेंद्र यादव, ओमप्रकाश वाल्मीकि, अमरकांत मारकंडेय, पुणे सिंह, प्रेम कपाड़िया, डॉ दयानंद बटोही, बाबूलाल खंडा, रामचंद्र, डॉक्टर तेज सिंह आदि रचनाकारों ने दलितों की समस्याओं को मजबूती से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। महिला कथाकारों में भी मैत्रेई पुष्पा, सुभद्रा कुमारी, उषा चंद्र, रमणिका गुप्ता, रजत रानी जैसे अनेक ऐसे नाम है। दलित साहित्य का विस्तार हिंदी साहित्य में आने के बाद ही हुआ है। 'अपने अपने पिंजरे' 'जूठन' 'मुर्दहिया' 'मणिकर्णिका' 'मैं भंगी हूं' 'दोहरा अभिशाप' जैसी आत्मकथा ने बड़ी संख्या में पाठकों को अपनी तरफ खींचा। आत्मकथा जहां पाठक को अपने आप से जोड़ती हैं वही उसको सोचने पर विवश करती हैं। दलित लेखन का आरंभ सबसे पहले

मराठी भाषा में हुआ। मराठी भाषा में 200 से अधिक आत्मकथाएं लिखी जा चुकी हैं। मराठी दलित साहित्य का आधार डॉ अम्बेडकर की वैचारिकी और उनका जीवन संघर्ष को माना जाता है। 'दलित लेखक समानता, सम्मान और अपनी आजादी के लिए लिख रहे हैं। जाति या रंग के आधार पर हो रहे भेद को वह खत्म करना चाहते हैं।' दलित साहित्यकार चाहता है कि 'समाज में धर्म, दर्शन तथा जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति के श्रेष्ठता घोषित न की जाए। संपूर्ण रूप में देखें तो यह जाति की मुक्ति का साहित्य है 'जाति एक ऐसा राक्षस है जो आप का रास्ता काटेगा, जब तक आप इस राक्षस को नहीं मारते तब तक आप न तो कोई राजनीतिक सुधार कर सकते हैं और न हीं आर्थिक सुधार कर सकते हैं।'

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में दलित साहित्य लेखन का कार्य तेजी से आरंभ होता है जिसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, कालीचरण, रूपनारायण सोनकर, रतन कुमार सांवरिया, शिवराज सिंह बेचौन, सुशीला टाका भोरे आदि ऐसे नाम हैं, जिन्होंने दलित साहित्य को आगे बढ़ाया है। युवा कहानीकारों में कैलाश वानखेड़े,अजय नावरिया, अनीता भारती आदि का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। दलित कहानी केवल दलित जीवन की ही अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि अपने आसपास के समाज का भी चित्रण करती है।

दलित साहित्य को समृद्ध बनाने में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। जितने भी दलित साहित्यकारों ने समाज और साहित्य में अपना सम्मानित स्थान बनाया है, सभी ने शिक्षा के बल पर यह स्थान प्राप्त किया है। शिक्षा दलित समाज को बुनियादी तौर से मजबूत करती है। शिक्षा के द्वारा ही दलितों और स्त्रियों को अपने अधिकार और अस्मिता को समझने की चेतना जागृत हुई है। अंबेडकर का मानना था कि 'प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित किया जाना चाहिए हर एक व्यक्ति में अपनी रक्षा की क्षमता होनी चाहिए। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह बहुत जरूरी भी है। शिक्षा के माध्यम से दलित समाज में जागरूकता आई है। दलित समाज साहित्य के साथ राजनीति में बढ़–चढ़कर अपनी भागीदारी अंकित कर रहा है। दलित लेखन में पुरुष वर्ग एक नए रूप में उभर कर आ रहा है लेकिन दलित साहित्य में महिला लेखिकाओं की अभी बहुतायत कमी देखी जा सकती है। दलित लेखन में महिलाओं को उतना स्पेस नहीं मिल पा रहा है जितना पुरुष वर्ग को मिल रहा है। दलित महिलाएं कविता, विधा में लेखन कर रही हैं। दलित महिलाओं को आंदोलन से जुड़े बिना साहित्य आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए दलित महिलाओं की बढ़–चढ़कर दलित साहित्य में भागीदारी उपस्थित कराने आवश्यक है।

दलित कहानियों ने मात्र 20 से 25 वर्षों में साहित्य में अपना सम्मानजनक स्थान बना लिया। दलित साहित्यकारों ने दलित जीवन की बुनियादी समस्या को मजबूती से उठाया है। आज जिस मात्रा में दलित साहित्य लिखा जा रहा है भविष्य में उसका स्वतंत्र इतिहास लिखने की आवश्यकता होगी। दलित साहित्य का संपूर्ण इतिहास दलित साहित्य को सही मायने में नई दिशा प्रदान करेगा। दलितों की स्थिति भारत में प्रत्येक भूभाग में एक जैसी है। इसीलिए उनका स्वर भी एक जैसा है। आधुनिक दलित कविता मराठी से लेकर गुजराती, पंजाबी, उड़िया, कन्नड तथा हिंदी तक में अपना वर्चस्व स्थापित कर रही है पंजाबी के गुरुदास राम हो या फिर उड़िया के विचित्र आनंद नायक हो दया पवार या फिर गुजराती के परमार या फिर हिंदी के ओमप्रकाश बाल्मीकि इस प्रकार दलित साहित्य भारत के प्रत्येक भू–भाग में अपना वर्चस्व बढ़ा रहा है।

भारत देश अनेकता में एकता का प्रतीक है। इसलिए भारत को महाशक्ति बनाने के लिए समाज के सभी वर्गों को एक साथ आना हो और समाज के इस बड़े तबके को मुख्यधारा से जोड़कर उनकी सुरक्षा, समान अधिकार, राजनीति में भागीदारी, आर्थिक मजबूती आदि के माध्यम से इस वर्ग को सशक्त और समृद्ध बनाना होगा। साहित्य का जीवन दीर्घ होता है क्योंकि वह अपने समय और समाज की हलचल और चिंता और संघर्षों को भविष्य के परिणामों में देखता है हिंदी में इसकी जरूरत और भी अधिक हो जाती है क्योंकि वह अनेक भाषाओं बोलियों और विविध संस्कृतियों की भाषा है। हिंदी साहित्य और साहित्यकारों ने आधुनिक दलित साहित्य और दलित साहित्यकारों का स्वागत किया है। जिस कारण हिंदी साहित्य से जुड़ते ही दलित साहित्य व्यापक स्तर पर चर्चित होने के साथ इसकी पहुंच भी बड़ी हो गई है। दलित साहित्य को मिल रही उसकी पहचान और बढ़ते वर्चस्व का मुख्य कारण दलित साहित्यकारों का साहित्य में आना और सत्य को आत्मसात कर उसका वर्णन करना। जिस कारण दलित अब विश्व स्तर पर विमर्श का मुद्दा बन गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. विजय कुमार पुजारी– डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर, जीवन दर्शन, भारतीय बौद्ध महासभा, दिल्ली प्रदेश, बुध विहार, अंबेडकर भवन, नई दिल्ली।
2. पुष्पा कैड़ा– अनुसूचित जातियों की समस्याओं का संवैधानिक समाधान प्रतियोगिता दर्पण, सितंबर 1997
3. पुखराज जैन– बीएल फडीया, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
4. डॉ0 श्योराज सिंह बेचौन – गांधी अंबेडकर हरिजन जनता, गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली।
5. दलित और अश्वेत साहित्य– कुछ विचार सं0– चमनलाल कथाक्रम दलित विशेषांक नवंबर 2000
6. कथाक्रम अप्रैल–जून 2001
7. बाबा साहेब, बाबा भीमराव अंबेडकर, हिंदी पॉकेट बुक्स।
8. डॉक्टर भीमराव अंबेडकर, एक विवेचन हिंदी पॉकेट बुक्स।
9. ओमप्रकाश बाल्मीकि –बस्स–बहुत हो चुका।
10. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका– मैनेजर पांडे।
11. ओमप्रकाश बाल्मीकि–दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन।

मेल– a.bhadana@rediffmail.com
mamatabhadana901@gmail.com
फोन– 7678207412

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 319-322
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भीमा नदीखोर्‍यातील जल प्रदूषण एक पर्यावरणीय समस्या

–डॉ. अरविंद दळवी

भारत महाविद्यालय, जेऊर ता. करमाळा, जि. सोलापूर (महाराष्ट्र)

प्रस्तावना :–

विज्ञानयुगातील मानवाच्या बौद्धिक प्रगतीमुळे यांत्रिकीकरण आणि उद्योगीकरणास चालना मिळाली। मानवी जीवन विकास आणि राष्ट्रहीत साधण्याची ती प्रगतीची परिणामे बनलीत। त्यातून विकासाची गती वाढली आणि पर्यावरणाकडे कानडोळा झाला। पर्यावरण स्थितीकडे लक्ष देण्यासाठी कुणाकडे वेळ शिल्लक राहिला नाही। त्यामुळे त्याच्या विपरीत परिणामाचा सामना करणे क्रमप्राप्त झालेले आहे। उद्योगधंद्यासाठी आवश्यक त्या कच्च्या मालाचे अतिशोषण, वृक्षतोड, पाण्याचा बेहिशोबी वापर, शेतीसाठी उपयोगात आणली जाणारी विषारी औषधे, रसायनिक खते, कारखान्यातील केरकचरा, सांडपाणी, अणुचाचण्या, स्फोटके इत्यादी कितीतरी प्रकारच्या बेशिस्त कार्यवाहीने पर्यावरण प्रदूषित होत आहे। प्रदूषणाचा वाढता वेग लक्षात घेता भविष्यकाळात पृथ्वीवरील जीवसृष्टीस धोका पोहचल्यशिवाय राहणार नाही। प्रदूषणाला आळा घालणे त्वरित गरजेचे असल्याने सर्वच देशात पर्यावर्णासंदर्भात जागृती होत आहे।

जल प्रदूषण :–

मानवी जीवनात हवेप्रमाणेच जल आत्यावश्यक आहे। पाण्याच्या आशेनेच मानवी संस्कृतीचा विकसही नदी काठावर झालेला आहे। परंतु हळूहळू लोकसंख्या वाढली। शहरीकरण झाले आणि उद्योगधंद्याची वाढ झाली। परिणामतः वसाहती आणि कारखानदारीतून दूषित पाण्याचा प्रश्न निर्माण झाला। शहरवासीयांनी विसर्जित केलेली घाण, गटारातील सांडपाणी, केरकचरा, वाहितमल आणि औद्योगिक प्रकल्पातील त्याज्य पदार्थ, वस्तू आणि किरणोत्सर्जित बाबी यामुळे पाण्यातील दूषितपणा वाढला म्हणजे जल प्रदूषणाची महान समस्या निर्माण झाली। आज पृथ्वीवरील एकूण जल साठयापैकी ९९ टक्के साठा सागर आणि बर्फाच्या रुपात आहे। सरोवरे, नदया आणि भूमिगत पाण्याच्या (विहिरी) स्वरुपात केवळ १ टक्के साठा आहे। मानवास त्या १ टक्के साठयाचाच उपयोग करावा लागतो। मात्र प्रत्येक व्यक्तीस दररोज सरासरी १०० लिटर पाण्याची आवश्यकता असते।

जलप्रदूषणाची कारणे :–

नैसर्गिक जल शुद्धीकरणाच्या क्षमतेतील उणिव, लोकसंख्यावाढ, रासायनिक खते, किरणोत्सर्गी कचरा, धार्मिक स्नान, खनिज तेल गळती, शहरातील सांडपाणी, जंतूंनाशके व कीटकनाशके, औष्णिक जल प्रदूषण, औदयोगिक सांडपाणी, साखरकारखाने, तृणनाशके, इतर कारखान्यातील घाण व सांडपाणी, कचरा व त्याज्य पदार्थ, मृतदेह पाण्यात सोडल्यामुळे तसेच पाण्यात अस्थी विसर्जन करण्याची भारतीय संस्कृतीतील परंपरा त्यामुळे जल प्रदूषणासारखी गंभीर समस्या निर्माण होते। जल प्रदूषणाची समस्या प्राचीन काळापासून असली तरी आज

जल प्रदूषणाची तीव्रता प्रचंड प्रमाणात वाढलेली आहे। नदी प्रवाह किंवा वाहत्या पाण्याचे शुद्धीकरण प्राचीन काळापासून सुरूच आहे। परंतु त्या पाण्याचा वापर आणि त्यामध्ये सोडलेली घन एवढया प्रचंड प्रमाणात आहे की नैसर्गिक जलशुद्धीकरणाची क्षमता त्यापुढे कमी पडत असते। लोकसंख्येची वाढ आणि पर्यावरणाचे असंतुलन त्यामुळे नैसर्गिक क्षमता कमी झालेली आहे।

भीमा नदी खोरे :-

भीमा ही कृष्णा नदीची एक प्रमुख उपनदी आहे। भीमा नदीचा उगम सह्याद्रीमध्ये भीमाशंकर येथे झाला आहे। ही नदी सहा जिल्ह्यातून आणि ३५ तालुक्यातून १६ उपनद्यांचा गोतावळा घेऊन पुढे वाहत जाते। भीमा नदी खोर्‍याचे एकूण क्षेत्र ४५.३३ लाख हेक्टर असून त्यापैकी ३८.१० लाख हेक्टर लागवडी योग्य क्षेत्र आहे। भीमा नदी पुणे, सोलापूर, अहमदनगर, सातारा, सांगली, बीड आणि उस्मानाबाद या जिल्हयांची तहान भागवते। या नदी खोर्‍यातील २०११ सालची लोकसंख्या सुमारे २ कोटी आहे। या नदीची एकूण १९७ पाणलोट क्षेत्रे असून भीमा नदी खोरे प्रामुख्याने आग्निजन्य अशा कठीण खडकांनी बनलेले आहे, त्यामुळे यामध्ये पाणी फारच कमी मुरते।

सह्याद्रीच्या पूर्वेकडील नदी खोर्‍यात शेतीयोग्य जमीन मोठया प्रमाणावर असल्याने तेथे प्रामुख्याने ऊस, केळी, गहू, मका, भुईमूग, डाळी, भाज्या, व इतर फळांचे व कोरडवाहु प्रदेशात कापूस तर उंचावरील जास्त पर्जन्य प्रदेशात भातशेती होते। फक्त पश्चिम भाग सोडला तर इतर ठिकाणी पुरेसा पाऊस नसल्याने शेतीही बेभरवशाचीच आहे. मुळा, मुठा, कुकडी, मिना, मोशी, इंद्रायणी, घोड, पवना, सीना, नीरा, भोगावती, माण इ. भीमा नदीच्या उपनद्या आहेत. सहा हजारांपेक्षा जास्त सिंचन प्रकल्प या नदी खोर्‍यात आहेत। उजनी, नीरा–देवधर, वीर भाटघर, पानशेत, खडकवासला, कुकडी, व घोड इ। प्रमुख धरणे आहेत. या धरणातून शेतीसाठी व गावांना पाणीपुरवठा केला जातो।

भीमा नदीची आजचे स्वरूप :-

वाढणारी प्रचंड लोकसंख्या आणि उदासिनता यामुळे नद्यांचे अस्तित्वच धोक्यात आहे। जमिनीतील पाण्याचा उपसा वाढल्याने भूगर्भातील पाण्याची पातळी झपाट्याने खालावत आहे। भीमा नदी सह्याद्रीतून पठारावर येते, खर तर तिथे वसलेल्या वाडया–वस्त्यातूनच तिचे प्रदूषण सुरू होते, कारण कोणत्याच ग्रामपंचायतीत कचरा व सांडपाण्यासाठी वेगळी यंत्रणाच उभी केलेली नाही। मात्र भीमेची खरी दुरावस्था ही पुणे आणि आसपासच्या गावांनी केली आहे. पवना नदी ही मलमूत्र वाहून नेणारे गटारच आहे। पिंपरी–चिंचवड, कासारवडीतून पावनेत मोठया प्रमाणावर मैला येतो। मोशी गावाजवळही हीच स्तिथी आहे. इंद्रायणी काठीही पाणी पिण्याजोगे राहिलेले नाही। प्रामुख्याने नदीकाठ हा कचरा फेकण्याचे हक्काचे ठिकाण झाले आहे। त्यातूनच नदी पात्रात जाणारा कचरा अतिशय घातक असे लिचेट निर्माण करतो। त्यामुळे पुणे या सांस्कृतिक राजधानीमध्ये मुळा–मुठेच्या पात्रात संगम होतो आहे तो घाणीचा, प्रदूषणाचा आणि उदासीनतेचाही।

पुण्यातील बंडगार्डन, थेऊर आणि मुंढवा पूलाजवळील पाण्यावर कोणतीही प्रक्रियाच केली जात नाही। प्रक्रिया करूनही ते पाणी पिण्यास अयोग्य ठरले आहे। इतके भयानक प्रदूषण त्यात आहे। शिक्रापूरजवळील वेळ नदी आणि शिरूरजवळील घोडनदी येथे नदीत सोडल्या जार्णाया सांडपाण्यावर कोणतीही प्रकर्ध्य केली जात नाही, नव्हे अशी व्यवस्थाच इथे नाही। या नदया भीमेला मिळाल्यावर कोरेगाव पूल, पारगाव, दौंड इथेही निर्जंतुकीकरणाची यंत्रणा नसल्याने लोकांना दूषित पाणीच वापरावे लागते। दौंड रेल्वे कारखान्यातील डिझेलमिश्रित

काळे पाणी भिमेट येते आणि नदीच्या वरच्या टप्प्यातले घाणीचे, प्रदूषणाचे पाप शेवटी उजनी जलाशयात साठून सोलापूरसह आजूबाजूच्या हजारो गावात हजारो हेक्टर शेतात, माणसांच्या शरीरात शिरून संपूर्ण परिसरची बरबादी करते।

पुण्यातील केशवनगर– मुंढवा परिसर, कुरकुंभ औदयोगिक वसाहतीमधील उद्दोगांनी नदीच्या पात्रात सोडलेल्या घाणीमुळे परिसरातील भूगर्भातील पाणीही प्रदूषित झाले आहे, जे स्वच्छ करणे अशक्य असते। पुणे शहरातील कचरा, सांडपाणी, मैलापाणी शेवटी भीमेतच येते। भिमेच्या काठावर वसलेल्या सर्वच गावांसाठी नदी आणि विहिरी हाच पिण्याचा पाण्याचा स्त्रोत आहे। एकविसाव्या शतकाकडे झेप घेताना आपण जीवनाचा आधार असणार्ध्या पाण्याकडे अक्षम्य दुर्लक्ष करतोय।

जलप्रदूषणाचे परिणाम :–

जलप्रदूषणाचे दुष्परिणाम अत्यंत गंभीर स्वरूपाचे असतात। प्रदूषित पाण्याच्या सेवनामुळे पचनसंस्थेचे व चेतसंस्थेचे विकार होतात। भारतामध्ये तर एकूण रुग्णाच्या सुमारे ६५ ते ७० : रुग्ण प्रदूषित पाण्याच्या सेवनामुळे आजारी पडतात। जलप्रदूषणाचे परिणाम पुढीलप्रमाणे आहेत।

– पिण्याच्या पाण्याच्या दूषित अवस्थेमुळे विविध प्रकारचे पचनाचे आजार उदभवतात।
– प्रदूषित पाण्यामुळे त्वचेचे आजार संभवतात।
– प्रदूषित जळतील विषाणूमुळे पटकी, क्वालरा ,अमांश, टायफाइड, पोलिओ, कावीळ, खरूज,नायटा, नारू इत्यादि रोग उद्भवतात।
– जल प्रदूषणामुळे अनेक लोक आजारांना बळी पडून मृत्यूमुखी पडतात।
– समुद्रातील जलचर, मासे जल प्रदूषणाची शिकार बनतात।
– दूषित पाण्यामुळे वनस्पतींची वाढ पूर्ण होत नाही।
– जल प्रदूषणामुळे जमीन नापीक बनण्याची शक्यता असते।
– दूषित पाण्यामुळे पक्ष्यांचे मोठ्या प्रमाणात स्थलांतर होते।
– दूषित पाण्यामुळेच अनेक महान नद्यांचे पावित्र्य धोक्यात आलेले आहे।
– जल प्रदूषणाचा परिणाम म्हणून आम्लवर्षा होत असते।
– जल प्रदूषणामुळे गोड्या पाण्यातील आणि खार्ध्या पाण्यातील मासे मरतात।
– जल प्रदूषणामुळे हृदय, नर्व्हस सिस्टीम, यकृत व किडनीवर विपरीत परिणाम होतात।
– प्राणी व वनस्पती जीवनावर परिणाम होतो।
– जलपरिसंस्था धोक्यात येते।
– पर्यावरणाचे संतुलन बिघडते।
– जमीनीत क्षारांचे प्रमाण वाढते।
– शेतीयोग्य जमीन नष्ट होते।
– काविळीचा प्रादुर्भाव होतो।

उपाययोजना :–

– नदीचे संरक्षण घरापासूनच करू, घरातला ओला–सुका व प्लास्टीक कचरा वेगळा करू आणि ओला कचरा शक्यतो घराभोवती कुंडयातच जिरवू।

– उघड्यावर शौचाला न बसता शौचालयाचा वापर करावा।
– सांडपाणी, कचरा, मैला नदीत जाणारच नाही याची काळजी घ्यावी।
– औदयोगिक वसाहती, उद्योगातील व्यक्तींनी आपणहूनच सांडपाणी प्रक्रिया केंद्रे उभारली पाहिजेत अन्यथा कडक कायदे करून त्याची व्यवस्थित अमलबजावणी सरकारी कर्मचार्ध्यांनी करायला हवी।
– मूर्ती, निर्माल्य, मृतदेहाची राख, नैवेद्य इ। गोष्टी नदीत विसर्जन न करता वेगवेगळी विसर्जन कुंडे बांधून त्यांचा वापर करावा।
– घनकर्चयासाठी तसेच जैववैद्यकीय कर्चयासाठी स्वतंत्र केंद्रे उभरावीत।
– पाण्याची नासाडी होणार नाही याची काळजी घेत पाण्याचा काटकसरीने वापर करावा।
– मैला – सांडपाणी, कचरा या सर्वांसाठी पुनःप्रक्रिया करून ते पाणी पुन्हा उपयोगात आणता येईल।
– नदीकाठलगत उतारावर गवताचा एक हिरवा पट्टा असावा व त्याला लागून एक मोठया झाडांचा पट्टा राखून ठेवल्यास पुरामुळे नुकसान होणार नाही।
– स्मार्टसिटीचा आराखडा तयार करतानाही नदीचे क्षेत्र संरक्षित करून झाडांची लागवड काठानजिक करावी।
– स्वतःच्या आर्थिक फायद्यापेक्षाही निसर्गाची जपणूक जास्त महत्वाची आहे हे लक्षात ठेवून येणारा विनाश थोपवावा।
– नदीकाठी होणारे पार्किंग, जनावरे, कपडे, वाहने धुणे व आंघोळ करणे यासाठी ही प्रत्येक गावात वेगळी व्यवस्था आवश्यक आहे।
– अभ्यासक्रमात "नदी" विषयाचा सखोल अभ्यास असावा तसेच निवडणूकातही 'शाश्वत विकास' हे धोरण ठेवून 'नदया' हाच केंद्रबिंदू असावा।
– राजकीय पक्षांनी ही मतांच्या राजकारणासाठी, स्वार्थासाठी भीमाईचा बळी देवू नये।
– नदीच्या प्रश्नावर उत्तरे शोधण्याआधी त्या समस्या काय आहेत, हे प्रत्येकानेच समजावून घेतले पाहिजे। त्यासाठी डोळे उघडे ठेवून आजूबाजूला पाहिले पाहिजे, लोकांना नदीपर्यंत घेवून जाऊन, तिचे भीषण रूप बघत, भीमाईचा आक्रोश समजून घ्यायला हवा।
– केवळ सरकारचे हे काम नाही तर शासन, संस्था, समूह, संघटना, गट, पक्ष, मंडळ, शैक्षणिक संस्था, माध्यमे आणि व्यक्ती या सर्वांचीच ही नैतिक जबाबदारी आहे।

संदर्भ :-

1. पर्यावरण शास्त्र : प्रा. ए. पी. चौधरी व सौ. अर्चना चौधरी
2. पर्यावरण विज्ञान : अहिरराव व अलिझाड
3. पर्यावरण भूगोल : डॉ. विठ्ठल घारपुरे
4. पर्यावरण शास्त्र : डॉ. प्रकाश सावंत
5. वेध पर्यावरणाचा : निरंजन घाटे
6. पर्यावरण प्रदूषण : डॉ. रविंद्र भावसार
7. Environmental Impact Assessmaent : M. G. Chitkara
8. 'Aquatic Biodiversity and pollution' : Pawan Kumar Bharti and etl
9. 'Water quality Analysis' : Abbasi S.A.

Email : arvind.dalavi@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 323-326
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी नारी के बदलते आयाम

-किर्ती काशिनाथ होसुरकर
शोधछात्र, हिंदी विभाग, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा, विश्वविद्यालय, औरंगाबाद–431004

भारतीय संस्कृति एवं इतिहास में आदिवासियों का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी समाज विगत अनेक शताब्दियों से तीव्र संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। वर्तमान में कोई भी आदिवासी समुदाय गैर–आदिवासियों के संपर्क से अछूता नहीं रहा है। यहाँ तक कि बीहड़ एवं अगम्य प्रदेशों में रहने वाले आदिवासी भी बाह्य संपर्क के परिणामस्वरूप न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य प्रभावित रहा है। सभ्य समाज का सबसे अधिक प्रभाव आदिवासी महिला पर हुआ।

आदिवासी कथा साहित्य में आदिवासी महिलाओं का चित्रण यथार्थ रूप में किया गया है। इनकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति का चित्रण किया गया है। वर्तमान समय में इनकी जल, जंगल, जमीन से जुड़े मुद्दों का मूल्यांकन किया जा रहा है। आदिवासी महिला के जीवन संघर्ष को केन्द्रित करते हुए उसकी अस्मिता के प्रश्न पर अध्ययन करने का प्रयास किया है।

भारत सांस्कृतिक विविधताओं का देश है। यहाँ पर विभिन्न जातियाँ निवास करती है। जिनमें आदिवासियों का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी हमारी प्राचीन संस्कृति के परिचायक है, जो समाज से अलग रहने के कारण पिछड़ गये है। आज आदिवासी समाज संकट के कठिन दौर से गुजर रहा है। जल, जंगल और जमीन की समस्या, लोक संस्कृति की समस्या, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्त्रियों से जुड़ी समस्याएं दिनो–दिन गंभीर होती जा रही है। आदिवासी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, आदि और वासी। आदि का अर्थ 'मूल' और वासी का अर्थ 'निवासी' है। अतः आदिवासी से तात्पर्य धरती के मूल निवासी से हैं, जो घने जंगलों, ऊँचे पर्वतों और दुर्गम घाटियों में निवास करते हैं। आदिवासी उन्हें कहते हैं जो सभ्य जगत से दूर पर्वतों और जंगलों में दुर्गम स्थानों पर निवास करते हैं, समान जनजातीय बोली का प्रयोग करते हैं तथा अधिकांशतया माँस–भक्षी तथा अर्द्ध–नग्न अवस्था में रहते हैं। आदिवासी का शाब्दिक अर्थ है आदिकाल से देश में रहने वाली जाति। भारत में आदिवासियों को अनेक नामों से पुकारा जाता है ऐबोरिजिनल, इंडिजिनस, देशज, मूल निवासी, जनजाति, वनवासी, जंगली, गिरिजन, बर्बर आदि।

आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के परिणाम स्वरूप आये परिवर्तनों से आदिवासी स्त्री भी वंचित नहीं रही है। बदलते समय में आदिवासी महिला में भी बदलाव आया है। शिक्षा के प्रचार के कारण देश और समाज में आये नवीन परिवर्तनों ने आदिवासी नारी की जीवन शैली और जीवन दृष्टि को सर्वथा नवीन आयाम प्रदान किया है, आदिवासी नारी पर बदलते समय में जो प्रभाव हुआ है, उसका चित्रण किया गया है। नारी सृष्टि का आधार मानी जाति है। किसी भी देश की आधी आबादी स्त्री है। यदि देश की आधी आबादी अर्थात स्त्री को

घर की चार दीवारी के अंदर बंद कर दिया जाएगा तो देश की प्रगति भी आधी ही रह जाएगी। स्त्री के बिना राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं है। जिस राष्ट्र में उसकी स्वाभिमान की रक्षा नहीं होगी, वहाँ उन्नति नहीं होगी। स्त्री का केवल स्वतंत्र होकर निर्णय लेना या आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाना ही उसकी अस्मिता नहीं है। स्त्री अस्मिता का अर्थ है स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव, जिसमें स्त्री का स्वयं का दृष्टिकोण भी शामिल हो। धीरे–धीरे इनमें बदलाव आ रहे है। आधुनिकता का प्रभाव स्त्री पर भी दिखाई देने लगा है।

आदिवासी लेखक माया बोरसे के अनुसार– "आदिवासी समाज ऐसा समाज है जिनके नाम में ही उसकी पहचान छिपी हुई है। आदिवासी शब्द के लिए 'मूलनिवासी' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है अर्थात आदिवासी समाज इस भूमि का मूल निवासी है और वही इस भूमि का उत्तराधिकारी भी है।"[१] इन्होंने आदिवासियों को भारत का मूल निवासी माना है।

डॉ. मजूमदार ने कहा है कि– "आदिवासी जनजाति परिवारों तथा पारिवारिक वर्गों का एक समूह है, जो सामान्य नाम धारक किए हुए हैं। इसके सभी सदस्य एक ही भूमि पर निवास करते हैं और एक भाषा–भाषी, विवाह कि प्रथाओं तथा कारोबार संबंधी एक ही नियम का पालन करते हैं। वे आदान–प्रदान संबंधी पारस्परिक व्यवहार को विकसित करते हैं। साधारणतः आदिवासी जनजाति आन्तर्विवाह सिद्धांत का समर्थन करती है और उसके सभी सदस्य अपनी ही जनजाति के अंतर्गत विवाह करते है। कई गोत्र मिलाकार मिलकर आदिवासी जनजाति कि रचना करते हैं। प्रत्येक गोत्र के सदस्यों का परस्पर रक्त–संबध जुड़ा होता है। इनमें या तो अनेक लघु वर्ग एक वृहत वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं, अन्यथा उनका वंश परंपरागत सरदार होता है। इस तरह आदिवासी जनजाति को एक राजनीतिक संघ भी माना जाता है।"[२]

डॉ. रमणिका गुप्ता के अनुसार– "बिना जंगल, जमीन, अपनी भाषा, जीवन शैली, मूल्यों के बिना आदिवासी, आदिवासी नहीं रह सकता। आदिवासी इस देश का मूल निवासी है।"[३] जैसे–जैसे समय आगे बढ़ रहा है, लोगों के सोच में भी परिवर्तन आता जा रहा है। आदिवासी नारियों पर इसका प्रभाव विशेषकर हो रहा है।

आदिवासी महिलाएँ अब अपने अधिकार पहचानने लगी है। वह किसी से भी ठगना नहीं चाहती। वह अपना हक चाहती है। अब वह मजदूरी करने भी जाती है तो निडर होकर। रमणिका गुप्ता के कहानी संग्रह 'बहू–जुठाई' कि परबतिया भी अब किसी से नहीं डरती। "मजदूर उसकी बहादुरी का लोहा मानने लगे थे। अब वह मजदूरों के मामले लेकर प्रायः हर रोज ठीकेदार बाबू से झगड़ने लगी थी। मजदूरों ने परबतिया को अपना लीडर चुन लिया। उन दिनों ठीकेदारों के खिलाफ केदला में हड़तालों का ज़ोर था। यूनियन के साझा नेतृत्व में मजदूर, लठैतो–पहनवालों का मुक़ाबला करते हुए कुछ कर गुजरने पर उतारू थे। वे ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिए तैयार थे। परबतिया इन सब में सबसे आगे रहती थी। वह मर्दों के दंगल की सरदारिन बन गई और यूनियन में अपनी पोखरी की प्रतिनिधि।"४ आदिवासी नारी घर के चार दीवारी में बंद नहीं रहती। वह पुरुषों के बराबर काम करती है। आधुनिक समय में आदिवासी स्त्री हर क्षेत्र में कार्य कर रही है। जैसे परबतिया सबकी सरदारिन बन गई थी।

आदिवासी समाज को अधिकतर मातृसत्ताक माना जाता है। आदिवासी स्त्री एवं पुरुष में काम के क्षेत्र पर

अधिक अंतर नहीं माना जाता। आदिवासी स्त्री–पुरुष दोनों ही सभी काम मिल–जुलकर कर लेते है। जितना काम पुरुष करता, वही औरत भी कर सकती थी। आदिवासी स्त्री घर और बाहर का काम दोनों को अच्छे से संभाल पाती है। इतना सब कुछ करके भी उसे जो स्थान घर में मिलना चाहिए वह नहीं मिलता। मातृसत्ता का जो मूल अर्थ है वह खरा नहीं उतरता। आज भी आदिवासी स्त्री शोषण, प्रताड़ना और अस्तित्व की जंग लड़ रही है। यह खत्म कब होगी इसका कोई उत्तर नहीं। आदिवासी स्त्री की व्यथा इक्कीसवी सदी की प्रत्येक आदिवासी कहानी में रेखांकित की गई है। वर्तमान समय में वह शिक्षित हो रही है। फिर भी उसे उसका मान–सम्मान पूरा नहीं मिल पाता, जैसे 'अर्जुन' कहानी में दीगा को मिला था।

'भूक से बढ़कर कोई पढ़ाई नहीं होती' कहानी में चुन्नी कोटल, जो आदिवासी की पहली लड़की थी जो अनेक कठिनाइयों का सामना करके अपनी बी. ए. की डिग्री पूर्ण कर चुकी थी। लेकिन किसी भी औरत के लिए समाज में आगे बढ़ना इतनी आसान बात नहीं होती। यही विपदा का सामना करती चुन्नी कोरल आगे की पढ़ाई करना चाहती थी लेकिन सवर्ण समाज के यह गले नहीं उतरता और किसी तरह वह चुन्नी की पढ़ाई रोकना चाहते थे। इसलिए उस पर आरोप करते हुए कहते है– "हॉस्टल की अधिक्षिका के पद पर काम करने वाली वह पिछड़ी जाति की पहली औरत थी।"[५]

शहरी लोगों का प्रभाव आदिवासी स्त्रियों पर ज्यादा हुआ है। शहरियों के संपर्क में आने पर पुरुषों की सोच में स्त्रियों को लेकर बदलाव आया है। रमणिका गुप्ता के 'बहू–जुठाई' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'जिरवा और जिरवा–माय' में जिरवा–माय का पति उसे छोड़कर शहर चला जाता है। शहर में दर–दर की ठोकरे खाने के बाद वह लौट आता है, परंतु इस बार स्त्रियों को लेकर उसके सोच में परिवर्तन आ जाता है। रमणिका गुप्ता ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है– "जिरवा–माय का पति, जिसे अपने गाँव और समाज से विरासत में औरत को देखने का सामंती नजरिया मिला था, समाज के उस पक्ष को भूल चुका था जो ऐसे मामले में औरत के प्रति उदार था, जिससे उसका नजरिया अत्यधिक संकीर्ण हो गया था। ग्रामीण समाज में, परदेस में रहने वाले पतियों की औरतों के लिए दी जाने वाली छूट और ढीले नियम अब उसे गँवारू लगने लगे थे। अब वह मध्यमवर्गीय छदम अहम के कारण शर्म से सिर गड़ाए बैठा था।"[६]

वर्तमान समय में संस्कृतिक विखंडन हो रहा है। आदिवासी स्त्रियाँ शहरी महिलाओं के संपर्क में आने पर उनके जैसा बर्ताव करने लगती है। शहरी सभ्यता को अपनाने लगी है। आदिवासी स्त्रियाँ अब खेत–खलिहानों से निकलकर फैक्ट्रियों में काम करने लगी है। फैक्ट्रियों में काम में आगे होने के साथ–साथ वह आंदोलनों में भी भाग लेने लगी है। आधुनिक समाज का प्रभाव अब इनके जन–जीवन पर भी हो रहा है। इनमें भी अब जागृति आने लगी है। वो समय अब दूर नहीं, जब इन नारियों के जीवन में भी पूरा सवेरा होगा। आदिवासी जंगलों में निवास करते है। अब इन जंगलों पर पूँजीपतियों की आँखे जम गई है। इन दिकुओं के प्रवेश से आदिवासियों सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन होने लगे है। इनके संपर्क में आने से आदिवासी अपनी मौलिकता खोते जा रहे है। इनके रीति–रिवाजों और संस्कारों का अब घालमेल शुरू हो गया है।

आदिवासी स्त्रियों को अपने हक की लड़ाई अकेले लड़नी होगी। कोई उन्हें राह नहीं दिखाएगा, उन्हें स्वयं अपनी राह बनानी होगी। अकेले साहस करना होगा अपनी पहचान बनाने के लिए। इसी तरह एक स्त्री को आगे बढ़ना है। अपनी जमात में एकता लानी है। संगठित होकर अपनी लड़ाई लड़नी है। तभी उन्हें सम्मान

मिलेगा। जिसकी वे हकदार है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष में पहुँचते है कि आदिवासी नारियों पर भी आधुनिकता का प्रभाव हो रहा है। वे हर क्षेत्र में अपने कदम बढ़ा रही है। आदिवासी समाज शुरू से ही अंधविश्वासों में जकड़ा हुआ है। इसका प्रमुख कारण है। इनमें कुरीतियाँ, उनका शोषण, अज्ञानता इसी अशिक्षा के कारण है। समय के साथ–साथ इनमें भी जागृति आई है। अब ये भी पढ़ने लगे है। स्त्री–शिक्षा के क्षेत्र में वृद्धि तो हुई है, लेकिन वह इतनी नहीं हुई की उन्हें जागृत किया जा सके। आदिवासी महिलाएँ जितनी साक्षर होगी, वह समाज उतनी ही ज्यादा प्रगति करेगा। शिक्षा के अभाव के कारण ये स्त्रियाँ सशक्त नहीं हो पाएगी। आदिवासी समाज में लड़कियों को पढ़ाने की उपेक्षा की जाती है। लड़की को ये इसलिए पढ़ाना नहीं चाहते कि ये पराये घर जाकर चूल्हा फूंकेगी। लेकिन अब समय बदल गया है। आदिवासियों की लड़कियां भी पढ़ने लगी है।

इन महिलाओं को अब ये समझ में आने लगा है कि शिक्षा के अभाव में ये आगे नहीं बढ़ सकती। इसलिए अब ये अपने बच्चों को पढ़ने के लिए शहर भेजने लगी है। जिससे आने वाले समय में इनको परेशनियों का सामना न करना पड़े। जमाने के बदलने के साथ–साथ इनमें में भी परिवर्तन होने लगे है। गैर आदिवासियों ने इनके उद्योग, व्यापार, संचार और शिक्षा माध्यमों पर प्रभुत्व कायम कर लिया है। सभ्य समाज के लोग इन्हीं आदिवासी महिलाओं के चित्र बनाते हैं और उन्हें ऊँचे दामों में प्रदर्शनियों में बेच देते है। इसके लिए जागरूक इन्हें ही होना पड़ेगा।

'महुआ का फूल' यह प्रसिद्ध आदिवासी लेखक मंगलसिंह मुंडा की कहानी है। "प्रस्तुत कहानी में लेखक ने राधिका नामक पात्र के माध्यम से आदिवासी स्त्रियों के जीवन संघर्ष को उजागर किया है। राधिका एक शिक्षिका है जो अपने आदिवासी समाज को जागृत करने का कार्य करती है। उनमें शोषण, जुल्म का विरोध करने की चेतना का संचार करती है।"[७]

सभी आदिवासी नारी को पढ़ना चाहिये। जिससे वे समाज की कुरुतियों को समाप्त कर सके। इसलिए अब ये भी पढ़–लिखकर आगे बढ़ने लगी है। विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएँ, पुरुष से बराबरी के अधिकार के साथ अपनी गिनती कराने लगी है। दफ्तरों में, उद्योगों में, शिक्षण संस्थानों में और सार्वजनिक समाजसेवा तथा राजनीति में भी उनकी स्थिति उत्साहवर्द्धक है।

संदर्भ :-

१. सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन राधाकृष्ण, पृ. सं. ८६
२. डॉ. एस. के सोनी राजस्थान के आदिवासी, पृ. सं. ६
३. डॉ. रमणिका गुप्ता, आदिवासी कोन, पृ. सं. २७
४. डॉ. रमणिका गुप्ता, बहू–जुठाई, शिल्पायन, पृ. सं. ७४
५. औरत की कहानी, सुधा आरोड़ा, पृ. सं. १७
६. डॉ. रमणिका गुप्ता, बहू–जुठाई, शिल्पायन, पृ. सं. ७६
७. महुआ का फूल, आदिवासी कहानियाँ, संपादन, केदारनाथ प्रसाद मीना, पृ. सं. ८२

मो. 07249658179, ईमेल hosurkarkirti849@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 327-330
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श

-क्षत्रिय दीपिका जे.
पी.एच.डी. शोधार्थी, श्री गोविंद गुरु विश्वविद्यालय, गोधरा (गुजरात)

प्रस्तावना :-

साहित्य ही वह दर्पण है जिसमें समाज का वास्तविक प्रतिबिंब देखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि विमर्श उभर कर आये। इनके अतिरिक्त जब समाज में परित्यक्त वर्ग को लेकर चिंतन किया जाने लगा तब किन्नर विमर्श साहित्यिक आंदोलन के रूप में प्रकट हुआ। समाज का एक ऐसा वर्ग जो पौराणिक काल से हमारे समाज का हिस्सा होने के बावजूद भी आज तक अपने अस्तित्व की तलाश में भटक रहा है। समाज ने पुरुष और नारी दो ही लिंगों को मान्यता प्रदान की और तृतीय लिंग यानि की किन्नरों को इस कदर दरकिनार किया कि उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया।

किन्नर शब्द की अवधारणा : कि+नर के योग से बना 'किन्नर' शब्द स्वयं में ही परिभाषित है। किन्नर उस समुदाय के लोगों को कहा जाता है जो न तो पूर्ण रूप से पुरुष है और न ही पूर्ण रूप स्त्री। यूं आधा अधूरा होना ही इनके लिए अभिशाप बन जाता है। यह समाज जब शारीरिक दृष्टि से विकलांग लोगों को स्वीकार कर लेता है तो किन्नरों को क्यों ठुकरा देता है? किन्नर को साधारण जन की भाषा में हिजड़ा कहा जाता है। हिजड़ा नाम सुनते ही हमारे नेत्रों समक्ष एक विचित्र प्रकार के व्यक्ति का चित्र उपस्थित हो जाता है एक ऐसा व्यक्ति जो कद काठी से पुरुषों की भांति है किन्तु उसका रहन–सहन, आचार–व्यवहार, चाल–ढाल स्त्री स्वभाव से मेल खाता है। हिजड़ों को परिमार्जित भाषा में किन्नर कहा जाता है। किन्तु मात्र किन्नर कह देने से इनकी पीड़ा कम नहीं हो जाती। किन्नर शब्द हिमाचल प्रदेश के किन्नौर निवासियों के लिए प्रयुक्त किया जाता था। किन्नर वह है जिसमें स्त्री एवं पुरुष दोनों के गुण समाहित होते है इस दोहरेपन का दुष्परिणाम इन्हें सर्वत्र भुगतना पड़ता है। स्त्री स्वभाव की अधिकता होने के कारण इनका यौन शोषण सर्वाधिक होता है। यह समाज चाहे कितना भी आधुनिक क्यों न हो जाये किन्तु पुरुष प्रधान समाज इस बात को कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि कोई पुरुष स्वयं को स्त्री समझे। इसलिए आज तक ये अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे है।

वैदिक साहित्य के अंतर्गत मानव लिंग व्यवस्था को पुरुष, स्त्री एवं तृतीय प्रकृति इन तीन भागों में विभक्त किया गया है। (स्वेत वस्त्र उपनिषद, गल्वा १०८) तृतीय प्रकृति के लोगों को नपुंसकलिंग नाम से अभिहित किया गया है। नपुंसकलिंग पुनः पाँच उपभेदों में नामित किए गए– १) बच्चे २) वृद्ध ३) नपुंसक ४) अविवाहित ५) तृतीय प्रकृति। वैदिक परिभाषाओं के मतानुसार इन सभी को नपुंसक की संज्ञा दी गयी।[१] 'रामचरितमानस' में किन्नरों का उल्लेख मिलता है। इस कथा के अनुसार जब प्रभु श्रीराम पिता की आज्ञानुसार वनवास हेतु चित्रकूट आ गये थे तब उन्हें मनाकर पुनः अयोध्या ले जाने के लिए भरत सहित समस्त अयोध्यावासी वहाँ आये थे और इनके

साथ किन्नर भी वहा उपस्थित थे किन्तु प्रभु श्रीराम ने उनके इस विनम्र निवेदन को अस्वीकार करते हुए समस्त नर–नारियों को पुनः लौट जाने का आदेश दिया किन्तु किन्नरों को कोई आदेश नहीं दिया। किसी प्रकार का आदेश न मिलने के कारण वे चौदह वर्षो तक वही प्रभु श्रीराम के लौटने की प्रतीक्षा करते है। अपना वनवास पूर्ण करके जब प्रभु श्रीराम चित्रकूट आते है तो किन्नरों को प्रतीक्षा करते हुए पाते है। प्रभु श्रीराम उनकी इस प्रतीक्षा का कारण पूछते है तब किन्नर उत्तर देते हुए कहते है कि भरत और समस्त आयोध्यावासियों सहित वे भी उन्हें मनाने आए थे तब आपने कहा था–

"जथा जोगु करि विनय प्रनामा, बिदा किए सब सानुज रामा।
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे, सब सनमानि कृपानिधि फेरे।।"[२]

(रामचरितमानस, अयोध्याकांड)

इससे प्रसन्न होकर प्रभु श्रीराम इन्हें वरदान देते है कि कलयुग में तुम लोग राज करोगे, जिन्हें अपना आशीर्वाद दोगे उनका कभी अनिष्ट नही होगा। आज भी हम देखते है कि किन्नर लोगों के प्रत्येक शुभ कार्यो से जुड़े हुए है। लोग इनसे शुभकामनाओं की अपेक्षा रखते है जबकि लोगों के द्वारा ही इनका जीवन अभिशाप बना दिया गया है। लोगों के प्रत्येक शुभ कार्य से जुड़ा हुआ किन्नर का स्वयं का जीवन शुभकामनाओं से वंचित है।

महाभारत में किन्नर के रूप में द्रुपद पुत्र शिखंडी का उल्लेख मिलता है। शिखंडी का जन्म कन्या के रूप में हुआ था किन्तु जन्म के समय आकाशवाणी होती है कि उसका लालन–पालन एक पुत्री की तरह नही बल्कि एक पुत्र की तरह किया जाए। अतः स्वभाव से स्त्री एवं शारीरिक स्तर पुरुष की तरह लालन–पालन हुआ जो इतिहास में 'किन्नर' की तरह जाना गया। शिखंडी भीष्म पितामह की मृत्यु का कारण बना। महाभारत के युद्ध के दौरान शिखंडी को अपने समक्ष देखकर भीष्म पितामह कहते है कि वे एक नपुंसक के साथ युद्ध नही कर सकते और यह कहकर वे अपने शस्त्र नीचे डाल देते है।

पांडव जब भीष्म पितामह से उनको पराजित करने का उपाय पूछते है तो इस संबंध में वे कहते है– "शिखंडी समरामश, सुरश्वस्रमितिंजयः यथा भवत्स्त्री पूर्व पश्चात पुंस्त्वं समागता"[३] अर्थात तुम्हारी सेना में जो महारथी द्रुपद पुत्र प्रायः शत्रुओं से विजय प्राप्त करता है वह पहले स्त्री था और पीछे से पुरुष हो गया। पाणिनी कृत अष्टाध्यायी के खिल भाग में लिंगानुशासन में किन्नरों का भेद स्पष्ट किया गया है– "स्तनकेशवती स्त्री स्याल्लोमशः पुरुषः स्म तः। उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुंसकम।"[४] अर्थात स्तन और केशवाली को स्त्री तथा रोएंवाले को पुरूष कहा जाता है जिसमें इन दोनों गुणों का अभाव होता है उसे नपुंसक कहा जाता है।

हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श :– हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श की बात करे तो इसका आरंभ निराला के उपन्यास 'कुल्लीभाट'(१६३६) से ही हो गया था ऐसा कहा जाए तो यह गलत नहीं होगा। शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ बहाव वृत्ति एवं बिंदा महाराज किन्नरों की स्थिति और उनकी पीड़ा पर आधारित महत्वपूर्ण कहानी है। शारीरिक दृष्टि से विकलांग इन लोगों को समाज और इनका स्वयं का परिवार स्वीकार नही करता। सामाजिक उपेक्षा की भय से परिवार वाले इनका त्याग कर देते है। महेंद्र भीष्म के उपन्यास 'किन्नर कथा' (२०११) में एक किन्नर बच्चे के माता–पिता की दयनीय स्थिति का वर्णन किया गया है। इस उपन्यास में महेंद्र भीष्म ने उस माँ की पीड़ा को चित्रित किया है जिसे मजबूरीवश अपने बच्चे से दूर होना पड़ता है। संतान चाहे

कैसी भी हो वह अपने माता–पिता के लिए सदैव प्यारी ही होती है किन्तु समाज में अपनी झूठी शान, मान–मर्यादा के कारण वे अपने किन्नर बच्चे से मुक्ति पाना चाहते है। समाज की यही अस्वीकार्यता इनके जीवन की सबसे बड़ी और गंभीर समस्या है। किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष पर आधारित महेंद्र भीष्म का उपन्यास 'मैं पायल'(२०१६) किन्नर विमर्श के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'मैं पायल' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है इस उपन्यास के केंद्र में पायल और समाज के परित्यक्त वर्ग की यातना और संघर्ष है।

प्रदीप सौरभ द्वारा रचित 'तीसरी ताली' (२०१४) भी किन्नर जीवन में सामाजिक अस्वीकार्यता की समस्या को उजागर करता है। 'तीसरी ताली' का पात्र गौतम अपने पुत्र विनीत को लोगों की दृष्टि से बचाने का प्रयत्न करता है किन्तु अंततः सामाजिक उपेक्षा के भय के आगे वह हार जाता है और उसे अपने बच्चे का त्याग करना पड़ता है। चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. २०३ नाला सोपारा'(२०१६) में एक माँ की ममता को दिखाया गया है जो अपने ममत्व के कारण अपने बच्चे को किन्नरों से बचाने की कोशिश करती है। इस उपन्यास में लेखिका ने विनोद उर्फ बिन्नी के माध्यम से किन्नर जीवन के कटु यथार्थ से समाज को अवगत कराया है। 'ज़िंदगी ५०–५०' (२०१७) भगवत अनमोल का महत्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास का नायक अनमोल के भाई हर्षा को किन्नर होने का दंश झेलना पड़ता है। अनमोल अपने पुत्र सूर्या को अपने भाई की पीड़ा से गुजरने नही देना चाहता। उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने इस बात की और इशारा किया है कि किसी भी सामान्य व्यक्ति का जीवन पूर्ण नही होता तो फिर सिर्फ किन्नरों को ही तिरस्कृत दृष्टि से क्यों देखा जाता है? किन्नरों को भी सामान्य व्यक्ति की तरह जीवन जीने का अधिकार है।

सुभाष अखिल द्वारा कृत 'दरमियाना' (२०१८) उपन्यास किन्नर समुदाय के यथार्थ से परिचित करवाता है। यह उपन्यास किन्नर अपना जीवन किस प्रकार से व्यतीत करते है, इनके भीतर मातृत्व भाव होता है या नहीं आदि प्रश्नों का जवाब देता है। आधुनिक युग में किन्नरों के जीवन पर आधारित कई उपन्यास एवं कहानियों का सृजन किया जा रहा है। किन्नर सिमरन के जीवन पर आधारित मोनिका देवी का उपन्यास 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' (२०१६) में लेखिका ने किन्नर समाज के वास्तविक जीवन, उनके रीति–रिवाज, समस्याओं एवं उनके मूलभूत अधिकारों का वर्णन करता है साथ ही समाज में किन्नरों के प्रति लोगों को जागृत करने का प्रयास किया है। 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' उपन्यास में किन्नर समुदाय की सामाजिक समस्या को स्पष्ट करते हुए उपन्यासकार लिखती हैं – "किन्नर पैदा तो हो जाता है उसको रखना सबसे बड़ी समस्या है समाज की। इस समस्या को बड़ी बीमारी बनाने वाले कुछ तो रिश्तेदार और कुछ पड़ोसी ही होते हैं।"[५]

मुक्ति शर्मा कृत 'श्रापित किन्नर' (२०१६) उपन्यास किन्नरों को अपने अधिकारों के प्रति जागृत करता है। नरगिस, हिना और जावेद समाज के साथ संघर्ष करके समाज के मध्य अपना स्थान स्थापित करते है और 'श्रापित हूँ' के दाग को मिटा देते है। नीना शर्मा द्वारा रचित उपन्यास 'मेरे हिस्से की धूप' (२०२०) समाज के उपेक्षित वर्ग को समाज में स्वीकृति दिलाने, समाज का हिस्सा मानने तथा उन्हें अपनी अस्मिता के साथ स्वाभिमान और सम्मान का जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है। इस उपन्यास में एक स्थान पर किन्नरों के साथ होने वाले अन्याय का वर्णन किया गया है– "इस समाज में कपूत बेटे के लिए परिवार में जगह है नाकारा बेटी के लिए जगह है लेकिन किन्नरों के लिए कोई जगह नहीं है।"[६] किसी भी व्यक्ति के लिए उसके रिश्ते बहुत महत्वपूर्ण होते है फिर चाहे वह साधारण व्यक्ति हो या कोई किन्नर। महज किन्नर हो जाने से उनकी भावनाएँ समाप्त नहीं

हो जाती। आज बदलते वक़्त के साथ किन्नरों के प्रति लोगों की मानसिकता में परिवर्तन आ रहा है और किन्नर भी अपने अधिकारों के प्रति जागृत हो रहे है वे भी पढ़–लिखकर समाज के मध्य अपना स्थान बना रहे है इनमें लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, शबनम मौसी, ज्योतिमंडल आदि किन्नर समुदाय के लिए आदर्श बन गए है। समाज के लोगों की किन्नरों के प्रति जो मानसिकता है उसमें परिवर्तन आएगा तभी किन्नरों के जीवन की समस्याओं का अंत होगा।

संदर्भ–ग्रंथ :–

१. 'वैदिक साहित्य एवं तृतीय लिंगी'– डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह– सब लोग (राष्ट्रीय मासिक पत्रिका) २२ जुलाई/२०१६
२. तुलसीदास, रामचरितमानस– अयोध्या काण्ड–पृष्ठ (५/३६८)
३. महाभारत २६ श्लोक, ४५३ सं.पं. (उनहत्तरवा सर्ग) भीष्म पर्व– भाषानुवाद सहित, ऋषि कुमार सनातन धर्म यंत्रालय।
४. लिंगानुशासन, संस्कृतभाषी.....(शब्दों के लिंग ज्ञान करने का शास्त्र)
५. अस्तित्व की तलाश में सिमरन– डॉ. मोनिका देवी– पृष्ठ सं.–६८
६. 'मेरे हिस्से की धूप'–नीना शर्मा–पृष्ठ सं.–२८–२६

Email : deepikasin30@gmail.com
मोबाइल नं.–६६२५५१७७३१

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 331-334
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर समुदाय और उनकी समस्याएँ

-प्रा.डॉ. नंदादेवी बोरसे
क्रां. व्ही. एन. नाईक शिक्षण प्रसारक संस्था का, कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, कैंनडा कॉर्नर, नासिक

आज का युग विमर्शों का युग है। स्त्री, दलित, आदिवासी, किसान, अल्पसंख्यंक समुदाय अपनी परिधी को छोड़कर केंद्र में आ चुके है और अपने मूलभूत मानव अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे है। किन्नर समुदाय भी अपनी हाशिए की जिंदगी को छोड़कर अपने अस्तित्व के लिए, अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है। यह समुदाय समाज के बीच उपस्थित होकर भी उसका कोई अस्तित्व नहीं है। वैदिक काल, रामायण, महाभारत काल से ही समाज में किन्नरों की उपस्थिति दर्ज है किंतु यह समुदाय सभ्य समाज में तिरस्कार और उपेक्षा झेलने के लिए विवश है, समाज में उपहास का पात्र बना है लेकिन उनकी वेदना, उनकी पीड़ा को कोई नहीं समझता।

किन्नर विमर्श की शुरुआत सन २००० के बाद ही हुई है। आज किन्नरों पर कई कथाएँ और उपन्यास लिखे जा रहे है तथा विश्वविद्यालयों में उनपर शोधकार्य भी हो रहा है। किन्नरों पर लिखे गए साहित्य के माध्यम से उनकी समस्याओं, उनकी संवेदनाओं की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया गया है। किन्नरों की परिवार में तथा समाज में होनेवाली उपेक्षा, उनकी जीविका का प्रश्न तथा उनका मानसिक संघर्ष उनके साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

प्रकृति में नर–नारी के अलावा एक अन्य वर्ग भी है, जो न पूरी तरह नर होता है और न नारी, जो लैंगिक विकलांग है– जिसे लोग किन्नर, खोजा, लौंडा, बृहन्नड़ा, मौसी, छक्का, हिजड़ा, तृतीय पंथी या फिर 'ट्रांसजेंडर' के नाम से संबोधित करते है। ये शारिरिक रुप से किसी भी प्रकार की त्रुटियों के साथ जन्म लेता है इसलिए समाज उसे विचित्र दृष्टिकोण से देखता है और उन्हें हीनभावना का सामना करना पड़ता है। 'हिजड़ा' यह मूल उर्दू शब्द है तथा हिजड़ा शब्द 'हिजर' शब्द से आया है। 'हिजर' का मतलब है– स्त्री–पुरुषों के समाज से अलग रहकर स्वतंत्र समाज बनाकर रहनेवाला गुट। वैदिक काल में तृतीय पंथियों के लिए 'क्लिबा' शब्द प्रचलित था। इनका अस्तित्व वेद, रामायण, महाभारत इन ग्रंथो में भी मौजूद है। महाभारत में 'शिखंडी' तथा 'बृहन्नड़ा' का उल्लेख है। अर्धनर– नटेश्वर के रुप में शंकर तथा पार्वती अर्थात पुरुष तथा प्रकृति इनका संगम है, ऐसी भावना आज भी है। यह वर्ग हमेशा से ही समाज की घृणित, उपेक्षित दृष्टि का शिकार रहा है। लेकिन वास्तविकता तो यही है की किन्नर समुदाय निरंतर अपने अस्तित्व के लिए, अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है। संविधान में इन्हें इंटरसेक्स, ट्रांससेक्सुअल और ट्रांसजेंडर के नाम से जाना जाता है और इनकी पहचान को थर्ड जेंडर में, ट्रांसजेंडर श्रेणी में रखा गया।

प्राचीन काल में तृतीय पंथियों को मान तथा प्रतिष्ठा प्राप्त थी, उन्हें समाज मान्यता थी। वात्सायन के 'कामसूत्र' में किन्नर समुदाय को 'तृतीय प्रकृति' कहा गया है। ब्रिटिशों की आधुनिक संस्कृति में 'हिजड़ा'

संकल्पना को मान्यता न मिलने के कारण ब्रिटिश काल में उनके विरोध में कठोर कायदे किए गए। इसके साथ ही राजेशाही के अस्त के कारण तृतीय पंथियों के सम्मान से जीने के सभी मार्ग लगभग बंद हो गए और इसके आगे के काल में उनका 'नाचना' तथा 'गाना' इस कला के आधार पर जीने का संघर्ष शुरू हुआ। कला के माध्यम से अपने–आप को प्रस्तुत करते हुए तथा भीख माँगते हुए सभ्यता की कुछ मर्यादाओं को कुछ प्रसंग में उन्होने जरुर तोड़ा होगा किंतु समाज में हाथों को कुछ काम नहीं, समाज का प्रतिसाद नहीं ऐसी दुविधा मनस्थिति में वे अपनी परिधि में जीने लगे। ऐसी परिस्थिति में इन तृतीय पंथियों को देह–व्यापार की दलदल में फँसने के लिए मजबूर होना पड़ा तथा उन्हें बाहर जाना पड़ा और तब से तृतीय पंथी समाज से बाहर होने की प्रक्रिया शुरु हुई और आज भी वह वैसे ही है यह अत्यंत खेद की बात है।

किन्नरों के लिए सबके मन में अजीब भावना होती है इसलिए – सिग्नल पर, बाजार में, रेल के डिब्बे में, स्टेशन पर या सार्वजनिक स्थान पर किन्नरों के व्यवहार से त्रस्त व्यक्ति उनके अधिकारों के बारे में सोचना तो दूर उन्हें देखते ही भागने का प्रयास करता है। जो शारीरिक रुप से विकलांग होते है उन्हें परिवार अपनाता है क्योंकि उनके लिए समाज में कई तरह की सुविधाएँ उपलब्ध है लेकिन किन्नरों को तो उनका अपना परिवार भी नहीं अपनाता और सामाजिक अवहेलना से बचने के लिए ऐसे बच्चों को त्याग दिया जाता है या जन्म के उपरांत मार दिया जाता है।

वैसे लिंग यह शरीर रचना का एक हिस्सा है और लिंग भाव एक मानसिक प्रक्रिया है। कुछ व्यक्तियों में पुरुष का लिंग लेकिन स्त्री का लिंगभाव तो कुछ व्यक्तियों में स्त्री का लिंग किंतु लिंगभाव पुरुष का होता है। इसमें मानव का कोई दोष नहीं होता, अगर दोष होता है तो वह निसर्ग का। किंतु वास्तव में निसर्ग की यह गड़बड़ परिवार या समाज समझता नहीं। वैज्ञानिक कारणों की वास्तविक जानकारी के अभाव में समाज में ऐसे लोगों का जीना मुश्किल हो रहा है और यह बात हमारे ध्यान में भी नहीं आती। कोई व्यक्ति किन्नर है यह पता चलनेपर समाज द्वारा उन्हें मिलनेवाली उपेक्षा, उनके साथ होनेवाला अयोग्य बर्ताव, नित्य होनेवाला अपमान, उत्पन्न का कोई साधन नहीं, शिक्षा नहीं, नौकरी तथा कोई काम नहीं और इस दुष्चक्र में जीने के केवल दो ही रास्ते उनके सामने खुले होते है और वो है– भीख माँगना तथा सेक्सवर्ड। यह लैंगिक शोषण किन्नरों के लिए शाप बन चुका है। इससे उत्पन्न होनेवाला भय, ताण–तनाव, द्विधा मनस्थिति, एच.आय.व्ही बाधित होना, दुःख भुलाने के लिए व्यसनों से दोस्ती करना ऐसा जीवन जीने के लिए वे विवश होते है। किन्नरों की शारीरिक बदलाव की प्रक्रिया, मानसिक तथा सामाजिक संघर्ष को समाज द्वारा मनुष्यता के नाते सहजता के साथ स्वीकार किया जाना बहुत जरुरी है।

किन्नरों की कई ऐसी समस्याएँ है, जिन्हें समझना भी बहुत आवश्यक है।

किन्नर और उनकी समस्याएँ –

परिवार में होनेवाला अत्याचार :–

बेटा या बेटी को जन्म से अपने परिवार की पहचान मिलती है लेकिन वे ही बच्चे जब युवावस्था में प्रवेश करते है, तब उन्हें अपनी असली पहचान होने लगती है, वे अपने–आप से परिचित होने लगते है, अपने–आप को समझने लगते है। ऐसे समय में जब परिवारवालों को जब पता चलता है की उनका बेटा बेटा नहीं या बेटी बेटी नहीं है बल्कि एक किन्नर है, तो परिवार के सदस्यों द्वारा उन्हें उपेक्षा, अपमान, मार–पीट आदि समस्याओं

से जूझना पड़ता है। कई लोग उन्हें बाबा, मांत्रिक, फकीर या मनोचिकित्सक के पास ले जाते है या घर में बंद कर देते है। इस प्रकार अपने ही परिवार द्वारा इन किन्नरों को अत्याचार का सामना करना पड़ता है।

शिक्षा में भेदभाव :–

जब ये लड़के स्कूल में, खेल–कूद के समय या दोस्तों से बातें कराते समय लड़कियों–सा आचरण करने लगते है तब स्कूल के बच्चे उनका मज़ाक उड़ाते है, उन्हें अपमानित करते है, उन पर अत्याचार करते है, झगड़ा–मारपीट भी करते है। जिससे यह बच्चे भयभीत और आतंकित होते है। कई बच्चे तो आत्महत्या भी करते है या फिर अपमानित या लज्जित होने की बजाय स्कूल–कॉलेज जाना ही छोड़ देते है।

परिवार से बेदखल कर देना :–

प्रत्येक परिवार को इज्जत प्रिय होती है और अपनी इज्जत बचाने के लिए वे कुछ भी कर सकते है। जिस परिवार में किन्नर बेटा या बेटी पैदा होती है ऐसा परिवार अपने आप को समाज में मुँह दिखाने के काबिल नहीं समझता और ऐसे लड़के–लड़कियों को परिवार से बेदखल किया जाता है। समाज में उपेक्षा या अपमान न हो इसलिए ऐसे बच्चों को घर में कैद करके रखा जाता है, उनको मार पीट करना या भूखा रखना तो आम बात है। किसी भी पारिवारिक या सामाजिक उपक्रम में उन्हें सम्मिलित नहीं किया जाता और समाज में बदनामी के डर से ऐसे बच्चों को घर से बेदखल कर दिया जाता है।

शारीरिक शोषण :–

घर से निष्कासित होने के बाद जब यह तृतीय पंथी रास्ते पर जीवन गुजारते है, तो उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आवारागर्दी करनेवाले गुंडे–मवाली उनका शारिरिक शोषण करते है। उन्हें भीड़ में धक्का देना, बाल खींचना, चिमटी काँटना, गाली–गलौच करना, वस्त्र खींचना आदि समस्याओं का उन्हें सामना करना पड़ता है। इसी कारण किन्नर अकेले न रहकर समूह में रहते है। इस प्रकार अकेले रहना उनके लिए परेशानी का कारण बनता है।

स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ :–

किन्नरों को स्वास्थ्य संबंधी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। तबीयत खराब होने पर डॉक्टर के पास जाने में उन्हें हिचकिचाहट महसूस होती है। लैंगिक समस्या तथा एच.आई.वी. एडस जैसे असाध्य रोगों से भी वे ग्रस्त रहते है।

रोजगार/नौकरी का अभाव :–

कुछ किन्नर पढ़े–लिखे होने के बावजूद भी कोई भी उन्हें काम पर नहीं रखना चाहता या नौकरी नहीं देता। उनको रोजगार के लिए नकार सुनना पड़ता है। वैसे सरकार ने मनरेगा जैसी योजनाओं में उनके लिए रोजगार का प्रबंध किया है किंतु वास्तव में ऐसे योजनाओं के ठेकेदार उन्हें काम नहीं देते। उनके पास किन्नर होने का पहचान पत्र न होने के कारण उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

अन्न–सुरक्षा हक से वंचित :–

भारत में २०१३ में अन्न–सुरक्षा अधिनियम कायदा लागू कर दिया गया। इसके अंतर्गत समाज के गरीब वर्ग को अन्न–सुरक्षा का हक प्राप्त हुआ है। इस अधिनियम के अंतर्गत कोई भी गरीब इन्सान भूखा न रहे ऐसा प्रावधान किया गया है। किन्नर भी गरीबी की व्याख्या में सम्मिलित है किंतु इस सुविधा का लाभ लेने के लिए

जरुरी दस्तावेज़ उन्हें उपलब्ध नहीं हो पाते। इसके फलस्वरुप अन्न–सुरक्षा अधिनियम से उन्हें कोई लाभ नहीं मिलता और इसी कारण वे अनेक योजनाओं के फायदे से वंचित रह जाते है। इस प्रकार वे अपने हक से वंचित रह जाते है।

इस प्रकार किन्नर समाज को हमेशा हाशिए पर रखा गया और उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया गया। सदियों से समाज में उनकी मौजूदगी के प्रमाण होने के बावजूद भी इस समुदाय के नाम का कोई मंदिर, कोई मूर्ति, कोई बस्ती या कब्रिस्तान नहीं मिलता। समाज में शासन–प्रशासन बदलते रहे लेकिन किन्नर समुदाय और उनकी समस्याएँ नहीं बदली। किन्नरों का प्राचीन काल से आजतक लगातार इस्तेमाल जारी है। उनके हित की बात तब भी नहीं की गयी थी और न अब की जा रही है। किन्नर विमर्श को आज तक विमर्श के रुप में नहीं बल्कि बहस के रुप में देखा गया है। समाज को किन्नरों के अंदर हुए बदलाव को समझकर उनके साथ सहानुभूति से पेश आना चाहिए तभी समाज और किन्नरों के बीच का भेदभाव कम होगा। किन्नरों को उनके शैक्षिक पात्रता के अनुसार शासकीय सेवा में समाहित किया जाना चाहिए, नौकरी में उन्हें आरक्षण मिलना चाहिए तथा उनको समाज का एक घटक मानकर उनके जीवन को सुधारने का मौक़ा मिलना चाहिए।

अतः कहा जा सकता है की जिन किन्नरों के बारे में सोचा–समझा नहीं जाता था आज उनकी ओर कम से कम मानवता की दृष्टि से देखा तो जा रहा है। प्राकृतिक दृष्टि से अलिंगी होने के कारण विद्वान उनके बारे में खुलकर चर्चा नहीं करते। समाज उन्हें हेय दृष्टि से देखता है। सामान्य व्यक्ति की तरह ही उनमें भी दया, मानवीय प्रेम, सहानुभूति, अपमान, मान–सम्मान, भाव–भावनाएँ होती है यह बात जब सामान्य व्यक्ति भी समझने लगेगा तब सही अर्थो में यह चर्चा सफल होगी।

संदर्भ ग्रंथ :–

१. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह/रविकुमार गोड, भारतीय समाज एवं समाज में तृतीयलिंगी विमर्श, अमन प्रकाशन २०१६
२. महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, सामयिक बुक्स २०११
३. विजेंद्र प्रताप सिंह, हिंदी उपन्यासों के आइने में थर्ड जेंडर, अमन प्रकाशन, कानपुर २०१७, संचार माध्यम इंटरनेट
४. वाङ्मय, जनवरी–मार्च २०१७, संपादक – एम. फिरोज अहमद

मोबाइल नंबर ९८२२७६२३४६

ईमेल – nandadeviborse@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 335-338
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी समकालीन साहित्य में स्त्री-विमर्श

-प्रा. पूर्णिमा उमेश झेंडे

हिन्दी विभाग प्रमुख, भोसला मिलिटरी कॉलेज, रामभूमी – नाशिक

प्रस्तावना :-

साहित्य में समकालीन यह शब्द समय सूचक है। विमर्श का अर्थ है निरंतर संवाद। स्त्री–विमर्श अर्थात अंग्रजी में फेमिनिज्म है। स्त्री–विमर्श अर्थात स्त्री जीवन के छुए–अनुछुए पल, अनजाने पीड़ादायक स्थिति का उदघाटन करते हुए उनके कारणों की खोज करना है, जो जीवन में स्त्री की दुय्यम दर्जे की स्थिति के लिए उत्तरदायी है। स्त्री का व्यक्ति के रुप में प्रकाशित हो सकना और अपनी संपूर्णता में जी सकने का रास्ता भी स्त्री–विमर्श खोजता है। स्त्री–विमर्श साहित्य का केन्द्र बिंदू स्त्री की अस्मिता होता है। जिसके अंतर्गत सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक बराबरी के लिए संघर्ष करती तथा मुक्ति के लिए प्रयास करती स्त्री है। स्त्री से मुक्ति का तात्पर्य पुरुष बनना या पुरुष को अपमानित करना, या पुरुषों से मुक्ति पाना ऐसा कदापि नहीं है बल्कि स्त्री का खुलकर बाहर आकर स्त्री समस्याओं का डटकर सामना करके मनुष्यत्व की दिशा में अग्रसर होना ही स्त्री–विमर्श है। जिसका सबसे बडा माध्यम है साहित्य।

स्वामी विवेकानंद जी ने भी नारी की महता को व्यक्त करते हुए कहा है कि – ''स्त्री पूजन से ही समाज की प्रगति होती है, जिस देश में अथवा समाज में स्त्री पूजन नहीं होता है, वह देश अथवा समाज कभी ऊँचा नहीं उठ सकता''।

स्त्री-विमर्श साहित्यकार :-

समकालीन हिन्दी साहित्य में उषा प्रियम्वदा, अमृता प्रीतम, कृष्णा सोबती, मन्नु भंडारी, शिवानी मैत्रीय पुष्पा, मृणाल पांडे, कात्यायनी, क्षमा शर्मा, अनामिका, दिव्या जैन, प्रभा खेतान, मनीषा, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्दगल, तसलीमा नसरीन, मृदुला गर्ग, सुधा अरोडा, सरला माहेश्वरी, अर्चना वर्मा, नीलम कुलश्रेष्ठ आदि स्त्री लेखिकाओं का साहित्य स्त्री मन के अंर्तद्वंदो एवं आप बीती घटनाओं को उदघाटित करता नजर आता है। जो आज स्त्री विमर्श का ज्वलंत मुद्दा बना है। वैसे वो छायावाद काल की महादेवी वर्मा की श्रृंखला की कड़िया नारी सशक्तिकरण का एक सुंदर उदाहरण है।

स्त्री लेखिकाओं के अलावा पुरुष लेखकों ने भी अपने वक्त की नब्ज पहचानते हुए देश की आधी आबादी अर्थात स्त्री की दशा का गहनता से अध्ययन–मनन किया। स्त्री के दौयम दर्जे की स्थिति के कारण को खोजा

और उसके निदान का प्रयास किया। समकालीन स्त्री–विमर्श साहित्यकारों में कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, उपेन्द्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, अरविंद जैन, फणीश्वरनाथ रेणू, जगदीश्वर चतुर्वेदी, लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, राजकिशोर, डॉ. धर्मवीर, सुधीश पचौरी आदि साहित्यकारों की भूमिका महत्वपूर्ण रही। वैसे तो प्रेमचंद के साहित्य में भी नारी शोषण की समस्याओं को उठाया गया है ।

समकालीन आत्मकथा – स्त्री–विमर्श :–

आत्मकथा में परकाया प्रवेश नहीं, स्वकाया प्रवेश होता है। स्त्री लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से स्त्री शोषण उत्पीड़न, पीड़ा, व्यथा, रुढि परंपराओं के जकड़नों में फंसी स्त्री व्यथा, पुरुष निर्मित पितृसत्ताक पद्धती से सहमी स्त्री इन सकबे परिणाम स्वरुप आए जागरण को ही अपनी रचना के केन्द्र में रखा है।

कुसुम अंसल द्वारा लिखित ''जो कहा नहीं गया'' आत्मकथा में एक ऐसी स्त्री की जीवन कथा है जो अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए जीवनभर जूझती रही। पितृसत्ताक पद्धति की शिकार कुसम अंसल जी ने लडके को बीना देखे ही पिता के कहने पर ब्याह कर लिया।

''क्यों लगा दिए, दीवारों पर
इतने सारे चित्र, जानती हूँ – इनके साथ
तुम मुझे भी नुमाइश बनाकर
जताना चाहते हो, कितना चाहते हो मुझे।''[2]

वैवाहिक जीवन की विफलता और अपनी मनोदशा को कविता के रुप में कुसूम अंसल जी ने व्यक्त किया। आखिरकार पति से अलग होकर कुसुम अंसल ने अपने जीवन के खालीपन को साहित्य लेखन द्वारा भर कर अपनी नयी पहचान बनायी। सुनिता जैन की 'शब्दकाया' आत्मकथा में स्त्री को पारिवारिक जिम्मेदारियॉ निभाते हुए अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए कितने त्याग और संघर्ष करने पडते है। इसका मार्मिक चित्रण किया है।

कृष्णा अग्निहोत्री की पहली आत्मकथा 'लगता नहीं है दिल मेरा' पितृसत्तात्मक नैतिक प्रतिमानों की धज्जियॉ उडाकर रख देती है। जिसमें पुत्र के सामने पुत्री को अस्तित्वहीन बना दिया है। बेटी होना एक अपराध की भावना निर्माण कर देता है। उन्हीं की दूसरी आत्मकथा 'और.... और .... औरत' में जिसमें कृष्णा अग्निहोत्री जी निरंतर संघर्ष करके जीने वाली पुरुष अहं और स्वार्थ से पीड़ित नारी होने के बावजूद सशक्त महिला के रुप में सामने आती है।

मैत्रीय पुष्पा की 'कस्तुरी कुण्डल बसे' आत्मकथा मॉ–बेटी के रिश्ते से दो पीढी की नारियों के विचार विकार मूल्य संकल्पनाएं, धर्म, जाति आदि धारणाएं प्रकाशित हो रही है। नारी आधुनिक हो गई अर्थात स्त्री ने अपने ढंग से जीने का रास्त ढूँढ लिया है। लेकिन पुरुष वर्चस्वीय सामाजिक बंधन में स्वतंत्र और आत्मनिर्भर होने के प्रयास में स्त्री को किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, स्त्री के इस संघर्षमयी जीवन का आख्यान इस कृति में मिलता है।

रमणिका गुप्ता द्वारा रचित चार भागों में विभाजित 'हादसे' इस आत्मकथा में उनके एक–एक संघर्ष की दासता है। रमणिका अपनी जिद की पक्की इरादों मे दृढ, अन्तर्जातीय विवाह करने में सफल रही है और उस जमाने में यह विवाह करिश्मा ही रहा होगा। हादसे में वर्णित रमणिका जी की जीवन यात्रा बहुत रोमांचक भी है, प्रेरणापद भी है और साहस के लिए प्रशंसा का भाव भी दर्शाती है।

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' जिसमें उन्होंने खुलकर अपनी जीवन की गतिविधियों के बारे में लिखा है। मन्नु भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' मन्नुजी की जीवन स्थितीयों में मॉ, बेटी, पत्नी इनके बीच खंडिता लेखकीय रूप के संघर्ष के साथ उनके दौर की कई साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों पर भी रोशनी डालती है।

रामकालीन उपन्यास स्त्री विमर्श :–

रामकालीन साहित्य में नारी जीवन को केंद्र में रखकर बहोत सारे साहित्यकारों ने उपन्यास लेखन किया। चित्रा मुद्दगल जी के उपन्यास 'एक जमीन अपनी', 'ऑवा', 'गिलिगडु' नारीवादी सरोकार के साक्ष्य है। पुरूष प्रधान समाज व्यवस्था में नारी के अधिकारों को छीना जा रहा है साथ ही पुरूष समाज उसे केवल स्वार्थ एवं वासनापूर्ति की वस्तु मानता है। केवल पुरुषों के द्वारा ही स्त्रियों का शोषण नहीं होता है बल्कि महिलाएँ भी महिलाओं का शोषण करती है। इन सब परिस्थितियों से अवगत होकर चित्रा मुद्दगल जी ने अपने उपन्यासों में नारी की विभिन्न समस्याओं को समाज के समक्ष प्रत्यक्षतः प्रस्तुत करके नारी चेतना का अत्यंत सराहनीय कार्य किया है।

मैत्रीय पुष्पा द्वारा लिखित आदिवासी नारी की समस्या पर केंद्रीत 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास सोचने के लिए विवश कर देता है।

कमलेश्वरती के उपन्यासों में उच्च कोटी का स्त्री विमर्श देखा जा सकता है। उनके चौदह उपन्यासों में प्राय स्त्री ही केन्द्र बिंदू रही है। 'एक सडक सत्तावन्न गलियॉ' में उन्होंने विद्रोहिणी स्त्री बंसिरी का सृजन किया। 'लौटे हुए मुसाफिर' की सलमा पति के समलैगिक संबंध से तनावग्रस्त अवस्था में पितृसत्तात्मक समाज के खिलाफ जाकर पति को छोडना, पुरुष द्वारा छली जाना का चित्रण समाज में स्त्री पक्ष को सामने लाता है। 'डाक बंगला' की इरा पाश्चात्य स्त्री विमर्श से सराबोर चरित्र है। 'आगामी अतीत' में कमलेश्वर ने चंदा और चॉदनी के जीवन के द्वन्दों एवं चॉदनी की स्वतंत्र जीवन जीने की इच्छा को सजीव रुप से चित्रित किया है। कृष्णा सोबती का उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के' बचपन बलात्कार की समस्या पर आधारित है।

उषा प्रियंवदा पचपन खंबे लाल दिवारे रुकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा नारी चेतना का उत्तम उदाहरण है। राजेन्द्र यादव तथा मोहन राकेश की रचनाओं में स्त्री की घुटन तथा अंर्तद्वंद को बहुत मार्मिकता से चित्रित किया है।

निष्कर्ष :–

हिन्दी साहित्य की गद्य हो या पद्य विधा स्त्री–विमर्श से अछूती नहीं रही है। कहानी, उपन्यास, कविता,

नाटक, आत्मकथा हर एक विधा में स्त्री हो या पुरुष सभी साहित्यकारों ने स्त्री की भौतिक और भावात्मक उपस्थिती उसकी नियति, उसकी संवेदना, आत्मसंघर्ष, उसकी अस्मिता और स्वतंत्र विचार तथा मुक्ति की चेतना को हमारे युग के संघर्षमय जीवन में समझने का बखुबी प्रयास किया है। स्त्री–विमर्श की सफलता इसी में है कि वह स्त्री की विभिन्न समस्याओं का ठोस और सकारात्मक हल प्रस्तुत करे। नारी विमर्श से स्त्रियों में आत्मविश्वास बढा है, अपनी अस्मिता के प्रति जागरुकता निर्माण हुई। नारी शिक्षा का महत्व समझा गया। पुरुष वर्चस्व तोड़कर समानाधिकार की और स्त्री अग्रसर होने लगी। मानवाधिकार के प्रति सजग होती दिखाई दे रही है। स्त्री मुक्ति का मतलब न तो विरोध पुरुषों से है और ना ही विवाह संस्था से बल्कि सामाजिक मर्यादाओं का पालन करते हुए समानाधिकार के साथ पुरुष का स्वीकार करना है।

संदर्भ सूची :–

1. ''भारतीय नारी'' (अनु. श्री इंद्रदेवसिंह आर्य) – स्वामी विवेकानंद पृष्ठ 99
2. ''जो कहा नहीं गया'' – आत्मकथांश कुसुम अंसल – पृष्ठ 105
3. ''इक्कीसवी सदी का हिन्दी साहित्य'' – रविन्द्रनाथ मिश्र – 181

मो.नं. 9860060448

Mail Id : poonam.zende1973@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 339-341
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी उपन्यास में वृद्ध विमर्श

-सौ. रोहिणी गुरूलिंग खंदारे
सहायक अध्यापिका, न्यू होरायझन स्कूल, ओरनाळ, तह.गडहिंग्लज, जि. कोल्हापुर।

21 वी सदी का भारत विकास की तरफ जा रहा है ऐसा कहा जाता है लेकिन आज यहॉ वृद्धों की बुरी हालत को देखकर ऐसा लगता है,'' क्या यह सचमुच सुसंस्कृत भारत है? ''आज मनुष्य के पास सुख, सुविधाओं का सुकाल है। उसके पास टी.वी. सेट है, डिनर सेट है, टी सेट है, सोफा सेट है फिर भी उनका मन अपसेट है। आज आधुनिक तथा संगणक युग में मनुष्य रिश्तों को भूल रहा है, दूरदर्शन की धून में चलना भूल रहा है, ए.सी. की धून में पेड़ो की छाया भूल रहा है और बाहर का चटपटा चायनीज खाने में अपने मॉ के हाथ की रोटी खाना भूल रहा है। आज घर में कुत्तों को बड़ा स्थान है। उसके लिए अलग घर बनवाया जाता है। उसे गाड़ी में बिठाकर घूमा लाते है लेकिन जिन्होंने उनको जन्म दिया उन बूढ़े मॉ–बाप के लिए दिल में और घर में भी स्थान नहीं हैं। आज वृद्धों को घर में मान–सम्मान नहीं मिल रहा है। व्यक्ति से परिवार और परिवार से समाज बनता है। परिवार को संरचनात्मक रूप प्रदान करनेवाला व्यक्ति ही घर के बडे बुजुर्ग होते हैं। पूरे परिवार पर बरगद की तरह छॉव फैलानेवाला व्यक्ति वृद्धावस्था में अकेला, असहाय एवं बहिष्कृत जीवन जीता है। जीवनभर अपने मन, कर्म और वचन से रक्षा करनेवाला, पौधों से पेड़ बनानेवाला व्यक्ति घर में एक कोने में उपेक्षित पड़ा रहता है या वृद्धाश्रम में अपने मौत की प्रतीक्षा करता रहता है।

प्राचीन तथा मध्यकाल में बुर्जुगों का बड़ा मान सम्मान किया जाता था। भगवान राम अपने पिताजी के आज्ञा का पालन करने के लिए बिना हिचकिचाए 14 साल वनवास गए। श्रवण कुमार अपने वृद्ध माता–पिता की सेवा करके आदर्श पुत्र बन गया। पांडवों ने बुजुर्गो की बात सुनने के कारण वे सफल हो गए लेकिन दुर्योधन बुजुर्गो की बात न सुनने के कारण उनका विनाश हो गया आज समाज में संयुक्त परिवार से ज्यादा एकल परिवार को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है। मराठी में कहा जाता है कि,

आम्ही दोन, आमचे दोन
हा झाला चौकोन
ना आत कोण ना बाहेर कोण।

इसी मानसिकता के कारण आज वृद्धाश्रमों की संख्या बढ़ती जा रही है। इसी वास्तविकता को देखकर हमारे हिंदी साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से वृध्दों का विमर्श समाज के सामने प्रस्तूत करने का प्रयास कर रहे हैं। अपनी–अपनी दृष्टि से अपनी रचनाओं के माध्यम से वृद्धों के प्रति अपने चिंतन को प्रस्तुत कर रहे हैं।

चित्रा मुदगल जी द्वारा लिखित ''गिलिगडु'' उपन्यास में जसवंत सिंह के माध्यम से वृद्धाओं की समस्याओं

को प्रस्तुत किया है। जसवंत सिंह का बेटा नरेंद्र और बहु सुनयना इन दोनों का दिल इतना कठोर है कि वे हमेशा पिताजी का अवमान और तिरस्कार करते हैं। जसवंत सिंह अपने बेटे की पढ़ाई के लिए बहुत सारा पैसा खर्चा कर दिया था। जसवंत सिंह की पत्नी के मौत के बाद बेटी ने पिताजी को अपने बेटे के पास दिल्ली जाने की सलाह देती है। दिल्ली आने पर जसवंत सिंह की रहने की व्यवस्था कुत्ते टॉमी के साथ बाल्कनी नुमा कमरे में की जाती है। लिफ्ट का दरवाजा बंद न करने पर, लाईट चालू रखने पर बहु हमेशा डॉटती थी। जसवंत सिंह के साथ बातचीत करनेवाला घर में कोई नहीं था। उनके पोते मलय–निलय हमेशा कंम्प्यूटर गेम्स में उलझे रहते हैं। बैटा नरेंद्र भी अपने पत्नी की बात को ही सही मानकर पिताजी को हमेशा डॉटता रहता है।

जयवंत सिंह पोता मलय के जन्मदिन पर पार्टी में शामिल होना चाहते थे लेकिन लाडला पोता बोलता है कि, ''न न दादू अपने साथ हम किसी भी बड़े को नही ले जाएंगे। पार्टी बोरिंग हो जाएगी।''[1] लड़का नरेंद्र भी पार्टी में जाने के लिए मना कर देता है। जसवंतसिह बहुत दुःखी हो जाते हैं। एक दिन उनकी बेटी शालिनी फोन पर बोलती है कि, ''आप कानपूर वाला लॉकर सरेंडर क्यों नहीं कर देते ?''[2] मॉ के जो भी गहनें, साडियॉ है वह बॉटकर लेना चाहती थी। बेटा नरेंद्र भी अमेरिका में स्थित होकर पिताजी को हरिद्वार के किसी आश्रम में रखना चाहता है। नरेंद्र, सुनयना और शालिनी को सिर्फ जेवर, जायदाद ही अधिक प्यारा है। पिताजी से उन्हे कुछ लेना देना नहीं है। जिन्होंने अपना पूरा जीवन खून–पसीना एक करके अपने बच्चों को पाला–पोसा, पढ़ाया –लिखाया, बडा किया, नौकरी लगा दी, शादी कर दी अब वे ही बच्चे अपने पिताजी की उपेक्षा करने लगे हैं।

कृष्णा सोबती जी द्वारा लिखित ''समय सरगम'' इस उपन्यास में दमयंती इस पात्र के माध्यम से विधवा मॉ की दुर्दशा को चित्रित किया है। दमयंती का बेटा और बहु हमेशा उसका अवमान करते हैं। विधवा दमयंती के पास सब कुछ होते हुए भी वह अकेली और दुःखी है। वह कहती है कि, ''मैं तुम्हारी तरह अकेली होती तो क्यों परेशान होती। बच्चे साथ रह रहे हैं। मेरे घर में मेरा किचन चल रहा है, खर्चा मैं कर रही हूँ और मैं अपने कमरे में अकेली पड़ी रहती हूँ। बिना मेरी इजाजत मेरा सामान इधर से उधर करते रहते हैं– मैं अपने बच्चों से वैर विरोध क्यों करुँगी।[3] इससे पता चलता है कि दमयंती किस प्रकार दुःख को सहती हुई अपने जीवन के बचे दिन काट रही हैं।

दूसरा अभागा पात्र है – प्रभुदयाल। जिसको घरवालों ने ही मारा था। बेटा और बहु ने उसका गला घोट दिया था। उपन्यास में प्रभुदयाल के माध्यम से परिवार का एक अलग रूप समाज के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। ''लड़के ने सूत में पिरोई ताली गले से उतार ली। बाप का इससे बड़ा अपमान भी क्या हो सकता हैं ?''[4] इस उपन्यास में तिसरा अभागा पात्र है – आरण्या। वह अकेली रहती है। जब वह किराए का मकान ढूँढने निकलती है तब उस अकेली, असहाय औरत को देखकर पूछा जाता है कि, ''यह बताएँ कि आपकी जिम्मेदारी कौन लेगा? आप अकेली रहेगी कि कोई और भी साथ में रहेगा। आपकी जन्म तारीख किस सन की है? कल को चली चलाई को कुछ चक्कर हो तो हम झमेले में क्यों पढ़ें?''[5] इस प्रकार समाज का भी वृद्धाओं की तरफ देखने का दृष्टिकोण बदल गया है।

ममता कालिया जी द्वारा लिखित ''दौड़'' इस उपन्यास में वृद्धों की समस्याओं को समाज के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। रमेश और रेखा पाण्डे जी को दो बच्चे हैं। दोनों उच्च शिक्षित हैं। रेखा एक स्कूल अध्यापिका है तो रमेश स्थानीय साप्ताहिक वृत्तपत्र में आलेख लेखन का काम करते हैं। इतना सुशिक्षित और

सुसंस्कृत परिवार होने के बावजूद भी घर में बच्चों का मॉ–बाप के साथ अच्छा बर्ताव नहीं रहता। दोनों बच्चों का माता–पिता के प्रति व्यवहारवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है। अहंवादी भावनाओं के वे पोषक हैं। जिसके कारण माता–पिता के मन में असुरक्षा का भाव उभर जाता है। मिस्टर और मिसेस सोनी विदेश में बड़ी कंपनी में काम करनेवाला बेटा सिद्धार्थ के लाचार बूढें मॉ–बाप हैं। जब दिल के दौरे से मिस्टर सोनी की मौत हो जाती है तब अमेरिका में स्थित सिध्दार्थ अपनी मॉ से कहता है कि, ''हम सब तो आज लूट गए ममा। लोग बता रहे है मेरे आने तक डैडी को रखा नहीं जा सकता। आप ऐसा किजिए इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर दाह–संस्कार क्रिया कर्म करवाईए। मेरे लिए तेरह दिन रूकना मुश्किल होगा।[6] करिअर की दौड में बच्चे अपने कर्तव्य को भूल रहे हैं।

निष्कर्ष :-

सारांश रूप में देखा जाए तो आज समाज में वृद्धों की बुरी हालत हो रही है। वैसे देखा जाए तो बुर्जुग ही परिवार की नींव होते है और इसी नींव पर पूरा परिवार खड़ा रहता है लेकिन आज इसी नींव को घर से बाहर निकाला जाता है। जिन्होंने अपने मॉ–बाप की बुरी हालत कर दी उनको भी वे दिन देखने पडेंगे। इसलिए जैन मुनी तरूणसागर महाराज कहते हैं कि, ''पंछी जब तक जिंदा होता है तब तक चीट्यिों को खाता है, और जब पंछी की मौत होती है तब चीटीयॉ उसे खाते है। समय और हालत कभी भी बदल सकती है इसलिए जीवन में कभी भी किसी को कम नहीं समझना चाहिए अथवा किसी को भी दुःख दर्द नही पहुॅचाना चाहिए। आज आप शक्तिशाली होंगे लेकिन ध्यान में रखिए समय आपसे भी अधिक शक्तिशाली है।[7]

मॉ–बाप की ऑखों में दो बार ऑसू आते हैं – पहली बार जब लड़की अपना मैका छोड़कर ससुराल जाती है तब और दूसरी बार जब लड़का अपना घर तथा मॉ–बाप को छोड़कर जाता है। पसंद से तो पत्नी मिल सकती है लेकिन मॉ–बाप तो पुण्य से ही मिलते हैं इसलिए पसंद से मिली पत्नी की खुशी के लिए पुण्य से मिले मॉ–बाप को खोना नहीं चाहिए। जब बेटा छोटा होता है तब वह अपनी मॉ की शय्या को गीला करता है और जब वह बड़ा होता है तब वह अपनी मॉ की ऑखों को गीला कर देता है। इस भूमि पर जब हमने पहली सॉस ली तब मॉ–बाप हमारे साथ थे इसलिए आज वह हमारा परम कर्तव्य है कि अपने माता–पिताजी के अंतिम सांस के वक्त हमें उनकी सेवा करनी चाहिए। यह शुभ संदेश हमारी आदर्श भारतीय संस्कृति देती है।

संदर्भ सूची :-

1. गिलिगडू – चित्रा मुदगल – पृ. 33
2. गिलिगडू – चित्रा मुदगल – पृ. 94
3. समय –सरगम – कृष्णा सोबती – पृ. 74
4. समय –सरगम – कृष्णा सोबती – पृ. 110
5. समय –सरगम – कृष्णा सोबती – पृ. 122
6. दौड – ममता कालिया – पृ. 65
7. दे. सकाळ –जैन मुनी तरूण सागर जी के सुविचार

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 342-344
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'वसीयत' उपन्यास में अभिव्यक्त वृद्ध जीवन की विसंगतियाँ

-डॉ. संध्या.एस

पोस्ट डोक्टरल फेलो, कुसाट।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य ने ही समाज का निर्माण किया है। वह जन्म से मृत्यु तक कई सामाजिक संबंधों के साथ यात्रा करता है। इक्कीसवीं सदी में खास तौर पर हिंदी साहित्य में अनेक विमर्श हम देख सकते हैं। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, किन्नर विमर्श, किसान विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि। ये सब युगीन परिस्थितियों की देन हैं। कहीं जाति को लेकर, कहीं अवस्था को लेकर, कहीं लिंग को लेकर अन्याय या अत्याचार हो रहे हैं। वहाँ साहित्य अपनी आवाज़ विमर्श के द्वारा उठा रहा है। वृद्ध विमर्श आज की परिस्थिति में चर्चित विमर्श के रूप में ऊपर है, आज के समय में वृद्धों की दशा और परिस्थिति को लेकर विचार विमर्श हो रहा है। वृद्ध होना पाप नहीं है यह जीवन का अंतिम पडाव है, अंतिम अवस्था है जो अटल है जो प्रत्येक व्यक्तिक के जीवन में आती है। यह समझने का प्रयास वृद्ध विमर्श कर रहा है। वृद्ध विमर्श बुजुर्गों के मान–सम्मान की बात करता है। उन्हें घर का फालतू सामान, कबाड़ा ना माना जाए, उन्हें मनुष्य माना जाए यह वृद्ध विमर्श की मांग है।

बुढ़ापा मनुष्य जीवन की अंतिम अवस्था होती है। इस अवस्था में व्यक्ति का आचरण कुछ बच्चों जैसा हो जाता है। जब बुजुर्ग व्यक्ति को अपने परिवारवालों की सबसे ज्यादा जरूरत होती है तभी उन्हें अकेला कर दिया जाता है। हम भूल जाते हैं कि वे हमारे लिए अपना यौवन और खुशियों को कुर्बान किया है। भारतीय समाज में जहाँ माता–पिता को ईश्वर माना जाता है वहीं आज वृद्धाश्रम की बाढ़ सी आ गई है। समकालीन रचनाकारों ने वृद्धों की समस्याओं का संवेदनशील चित्रण प्रस्तुत किया है। सूरज सिंह नेगी द्वारा रचित 'वसीयत' ऐसा ही एक उपन्यास है।

डॉ. सूरज सिंह नेगी का जन्म उत्तराखंड स्थित अल्मोड़ा जिले में 17 दिसम्बर 1967 को हुआ। हाई स्कूल तक की शिक्षा पैतृक गाँव में लेने के उपरांत वर्ष 1983 में जयपुर आए। कॉमर्स कॉलेज, जयपुर से 1987 में प्रथम श्रेणी में स्नातक के उपरांत वर्ष 1989 में राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबंध विभाग से प्रथम श्रेणी में एम कॉम, 1991 में प्रथम श्रेणी में एम फिल एवं 1994 में 'A Critical appraisal of Industrial Development of Rajasthan' विषय पर पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त की। बचपन से ही शिक्षा में प्रथम स्थान पर रहते हुए अव्वल रहे। उनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं– 'पापा फिर कब आओगे (कहानी संग्रह प्र.2016)', 'रिश्तों की आँच (उपन्यास हिंदी–2016 (उर्दू 2017)'।

'वसीयत' उपन्यास में समाज में वर्तमान दौर में गिरते जीवन मूल्य, जीवन आदर्श. संस्कारों के अभावों के अलावा बूढ़े होते माँ–बाप के सामने उत्पन्न होने वाली चुनौतियाँ, पलायन के कारण खाली होते गाँव और दूसरे

की मनःस्थिति को न समझ पाने के कारण उत्पन्न समस्या को रेंखाकित करने का प्रयास किया गया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र 'विश्वनाथ' यौवन की दहलीज पर पाँव रखते हुए पिता से उच्च शिक्षा पाने के लिए विदेश भेजने की जिद करता है। पिता कोई सकारात्मक उत्तर नहीं देता, इससे वह रूठ जाता है। जीवन भर एक गाँठ बाँध लेता है परिणाम स्वरूप एक योग्य व्यक्ति बनने परे भी वह पीछे मुड़कर नहीं देखता है। इधर बूढे हो चले माँ–बाप हमेशा तीज त्यौहार या अन्य विशेष अवसरों पर उसके वापस घर लौटने की आशा करते हैं। लेकिन उनका इतंज़ार जीवन भर इंतज़ार ही रह जाता है। एक दिन उसकी माँ अत्यधिक बीमार हो जाती है। पिता उसे यह खबर देता है। विश्वनाथ को सरकार द्वारा विदेश भेजने का प्रस्ताव मिला था। इसलिए वह बीमार माँ से मिलने के बजाए विदेश चला जाता है। विश्वनाथ के बेटे भी उससे ऐसा व्यवहार करता है। बेटे राजकुमार जाने माने सर्जन है। माँ–बाप से मिलने के लिए उनके पास भी समय की कमी है।

समय परिवर्तित होता है, सेवानिवृत्ति के पश्चात् उसकी आँखें अपने बेटे जो कि प्रसिद्ध सर्जन है, उसकी सूरत देखने को तरस जाती है। वह मन ही मन घुटता रहता है जैसे ही वह बेटे के विषय में सोचता है उसका अतीत उसे याद आ जाता और उसे झकझोर देता है। वृद्धावस्था में मानव शरीर शिथिल हो जाता है। आधुनिक युग में प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति अवश्य हुई है किंतु उन्नति पाने केलिए मनुष्य अपनों से दूर होता जा रहा है। आज मनुष्य का जीवन भाग–दौड से भरा जीवन है। इस भाग–दौड़ में उसे अपने रिश्तों–संबंधों के लिए समय नहीं मिल पाता है। बूढ़े माता–पिता व्यस्त बच्चों से बात करने के लिए तरस जाते हैं। कुछ लोग आर्थिक उन्नति केलिए विदेश जाते हैं। वहां से उनमें सभ्यता का ऐसा नशा चढ़ता है कि वे वहीं पर बस जाते हैं। वहीं के होकर रह जाते हैं। विश्वनाथ के बेटे भी ऐसा एक व्यक्ति है। वे अपने परिवार के साथ दिल्ली में रहना पसंद करता है। व्यवस्तता के बावजूद वे भी माँ–बाप से मिल नहीं पाता है। बेटे के विवाह भी हो चुका है माँ–बाप अभी तक बहु को देखा तक नहीं है। ये सारी बातों को सोचकर विश्वनाथ बहुत अधिक चिंतित है। विश्वनाथ के जीवन में अचानक एक बदलाव आता है। उसे अपने पिता की वसीयत मिलती है। जहाँ से उसके जीवन में अनेक परिवर्तन आते हैं। इसे पढ़कर जन्मभूमि के प्रति उसके मन में प्रेम उत्पन्न होता है और साथ ही उसे कर्तव्य पालन भी याद आती है। विश्वनाथ के जीवन में प्रत्येक स्थिति में उसके साथ खड़ी रहती है उसकी पत्नी सुधा। सुधा ने विश्वनाथ को सही दिशा में बढ़ने में सहयोग दिया है। यहाँ तक कि कालांतर में उसके विचारों को परिवर्तित करने में भी एक हद तक सफल हो जाती है। उनके बेटे राजकुमार को आधुनिक चकाचौंध ही सब कुछ है। उपन्यास के प्रमुख पात्रों में विश्वनाथ के माँ, बाबूजी, दादाजी और गाँव में उसकी चनुली दीदी है इसी प्रकार सेवानिवृत्ति के पश्चात का जीवन जी रहे शर्मा, अवस्थी, त्रिपाठी, चित्रा, प्रभाविष्ट और कपूर जैसे कुछ पात्र है, जिनकी कहानी वर्तमान दौर में वृद्धावस्था का दंश झेल रहे वृद्धों का प्रतिनिधित्व करती है।

सेवानिवृत्ति से जुड़ी असुरक्षा :–

व्यक्ति अपने जीवन के बीस–तीस साल कमाने में, घर बनाने में, बच्चों के भविष्य बनाने में लगा देता है। व्यक्ति के जीवन गाडी पति–पत्नी नामक दो पहियों पर आसानी से चलती है। वृद्धावस्था में जब इनमें से कोई एक दूसरे का साथ छोड़कर चला जाता है तब इस स्थिति में जीवित वृद्ध की अवस्था और दयनीय हो जाती है। जब तक पति–पत्नी दोनों जीवित रहते हैं कम से कम वे एक दूसरे के सुख–दुःख को कह सुन लेते हैं किंतु किसी एक के साथ छोड़ने से वह कहा सुनी भी बंद हो जाती है। वे हर पल घुटते रहते हैं। इसी घुटन में अपना

जीवन त्याग देते हैं।

मनुष्य अपना पूरा जीवन संतान की सुख–सुविधाओं के लिए संघर्ष में बिता देता है। संतान की शिक्षा–दीक्षा से लेकर उनके विवाह तक की सारी जिम्मेदारियों से निवृत्त होकर ही चैन की साँस लेना चाहता है। 'वसीयत' उपन्यास के शर्मा जी की अवस्था भी बहुत दर्दनाक है। शर्मा जी के पोते विशाल का जन्मदिन था, शहर के होटल में ही कार्यक्रम रखा गया था। सभी रिश्तेदार, मित्रगण खुशी के इस मौके पर सम्मिलित होने के लिए एकत्रित होने लगे। बेटे पिता को पार्टी में आने से रोकते हैं। पिता तो बहुत खुशी से उनके साथ चलने के लिए जाते वक्त बहू रोककर कहती है – "बाबूजी आप भी ना! अभी तक बचपना गया नहीं है, आप अधिक देर तक बैठ नहीं पायेंगे, यहीं घर पर ही आराम कीजिए।"[1] बेटे भी पिता को साथ ले जाना नहीं चाहते हैं। वह कहता है कि – "छोडो बाबूजी! जिद मत करो, वह ठीक ही तो कह रही है, फिर आप भी चले जायेंगे तो घर पर कौन रहेगा भला? अरे सुना नहीं आजकल चोर खाली घरों को निशाना बना रहा है। इतना कहते हुए कार में बैठा और गुस्से में कार का गेट बंद करते हुए तेज़ी से कार दौडाकर चला गया।"[2] इसमें एक वृद्ध पिता के जीवन की त्रासदी हम देख सकते हैं। युवा पीढ़ी की इसी सोच ने वृद्ध होते लोगों में निराश्रित होने की आशंका को बढ़ावा दिया है। आए दिन समाज में बच्चों द्वारा वृद्ध माता–पिता को घर से निकालने की घटनाएँ सामने आती रहती हैं।

इस उपन्यास के और एक वृद्ध कथापात्र है 'त्रिपाठी जी'। वह सेवानिवृत्त आदमी है। पूरी ज़िंदगी घरवालों के लिए बितायी है। त्रिपाठी जी भी अतीत के बारे में अपने मित्रों से बातें करते हैं। बडे अरमान से घर बनवाया था। बीमा, जी.पी.एफ एवं रिश्तेदारों से ऋण लेकर रुपयों का इंतज़ाम किया था। उसे बचपन से ही पढ़ने का शौक होने से उसके पास देश–विदेश की अनेकों पुस्तकों का संकलन था। घर बनाते समय एक कमरे को पुस्तकालय का रूप दे दिया गया था। पत्नी की मृत्यु के बाद वे हर समय उसी कमरे में समय काटते थे। बेटे और बहु पुस्तकों को बाहर रख देने के लिए कहते हैं। वे लोग इसे तुच्छ वस्तु मानकर बाहर करना चाहते हैं। त्रिपाठी जी को बहुत दुःख महसूस होता है। वे सारी पुस्तकों को उठाकर पासवाले लाइब्रेरी में सौंप देते हैं। एक समय था जब बच्चे माता–पिता के चरणों में अपना स्वर्ग मानते थे। उनकी सेवा में जीवन की सार्थकता समझते थे। समाज की उन्नति के साथ–साथ मानवीय मूल्यों का पतन होने लगा है। प्रस्तुत उपन्यास में कई वृद्ध पात्र हमारे पास मौजूद हैं। ये पात्र तो केवल काल्पनिक पात्र नहीं मौजूदा समाज का प्रतिबिंब हम इनमें देख सकते हैं। जिंदगी के सुनहरे पल केवल बच्चों या परिवार वालों के लिए बिताने वाले व्यक्ति को बुढ़ापे में किस प्रकार की बुरी हालत होती है इसका जीता जागता चित्रण इसमें हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि इस उपन्यास हमें कई सबक देते हैं। हम किस प्रकार हमारे माँ–बाप के साथ व्यवहार करते हैं उसी प्रकार कल हमारे बच्चे भी हमारे साथ व्यवहार करेंगे।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. वसीयत, सूरज सिंह नेगी पृ. 78
2. वहीं – पृ. 79

ई.मेल : sandhyasuresh30@gmail.com, 7012285534, 9747834988

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 345-346
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वामनदादा कर्डक के गीतों में आंबेडकरवादी विचारधारा

-संघमित्र अनंतराव गायकवाड़
शोध–छात्र, पी.एच.डी, पुण्यलोक अहिल्यादेवी होलकर, सोलापुर विश्वविद्यालय, सोलापुर (महाराष्ट्र)

भीम के नाम, जिनके जन्म ने लाखों दलित वंशो को बचाया, उनकी क्रांति, प्रति–क्रांति जीवन, काम और दर्शन को पुरी तरह से वंदना द्वारा आत्मसात किया गया। भीम की आवाज और लेखन को उनके द्वारा समझा गया था। वामनदादा ने भीम के कार्यों और प्रतिक्रियाओं के भौतिक रुप से उसके वैचारिक रुप से समझा। बाबासाहेब के महान व्यक्तित्व और समाज पर उस व्यक्तित्व के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, और सांस्कृतिक प्रभाव को स्पष्ट रुप से वामनदादा के लिए जाना जाता था। कुछ अपवादों के साथ, दादा जो समय–समय पर किताबें पढतें थे, उन किताबो से अंबेडकर के गादिमों के चेहरे को आसानी से पढ सकते थे। वामनदादा को भीम के अस्तित्व मे अधिक रुचि थी, जो बाबासाहेब के बच्चों की प्रगति का प्रतीक, साड़ी–मादी–गादी की तुलना मे वंददा को भीम के अस्तित्व मे अधिक दिलचस्पी थी, जिसे माई–मौली ने तेजी से ओट मे संरक्षित किया था।

"मेरे जिवन का गीत" यह 1996 में प्रकाशित वामनदादा की आत्मकथा है। किताब के एक बिंदु पर, वामनदादा कहते हैं, "भाषण से पहले, बाबासाहेब के रंग उनकी मानसिक स्थिति के अनुसार बदल रहे थे। एक पल में, वह एक चमकतें सितारे की तरह लग रहे थें, एक पल में, वह शांत दिखे। अपनी प्रतिभा की शान्ति के साथ, वह बाबासाहेब उनके विचारों, उनकी क्रांति को शब्दों में पिरो सकते थे।

वामनदादा ने अपने लंबे जीवन में लगभग पाँच से छँह हजार मराठी और हिंदी गीत लिखे है। बाबासाहेब आंबेडकर के व्यक्तित्व, जीवन, कार्य, दर्शन, आंदोलन पर केवल पाँच हजार गीत लिखे गए है। उन्होंने हजारों ऐसे गीतों के माध्यम से बाबासाहेब के सभी पहलुओं को चित्रित किया है। यह आश्चर्यजनक है, कि वामनदादा जिन्होंने अपने जीवन में कभी कोई स्कूली कदम नहीं बढ़ाया हैं, वे स्थानीय और विदेशी भाषाओं मे सर्वोच्च डिग्री हासिल की है।

भीम के वर्णन को आसानी से समझना चाहिए, "चंद्रमा की छाया, कापरा का शरीर, मौली का प्यार, भीमकाया" वामनदादा की शब्द संरचना आसानी से पढे–लिखे लोगो में से सभी को समझ में आती है जो भीम को श्रोताओं को पढाने के लिए किताबों से पढतें है।

मेरे भीम ने न अपना जीवन जीवा को दान कर दिया। मेरे भीम ने अपने जीवन का बलिदान कर दिया। मैंने कोलम्बिया से पीएचडी की उपाधी प्राप्त की और एक उच्च विदेशी देश से बैरिस्टर लिया। मैंने कानून का बहुत अच्छा काम किया। उसी समय "संकट के समय में भी भीमराया आपके साथ था, गिनती मेरा गुलाम था। जीवन मेरा उद्धार था, आपने आज गुलामी की बेड़ियों को तोड़ दिया, आप ऐसें ही लडने वाले थे श्व्।"

वामनदादा कर्डक ने हजारो गीतों में डॉ. बाबासाहेब के व्यक्तित्व के ऐसे विभिन्न पहलुओं का खुलासा

किया है। उसी प्रकार कवि हिंदी गीतों मे स्वयं को अभिव्यक्त करता हुआ प्रतित होता है।

"सर झुकाने वाले तेरा सर क्या है सर में तेरे भीम का असर पैदा हो''।

वामनदादा इस समाज में बाबासाहेब के अस्तित्व की प्रशंसा करते है। लेकिन वे बाबासाहेब के व्यक्तित्व से अधिक सक्रिय आंबेडकरवादी व्यक्तित्व चाहते है। अज्ञानता, बौद्धिक क्षमता की कमी के कारण किसी के सामने सिर झुकाना पडता है। लेकिन कवि कहता है कि बाबासाहेब के विचारो का प्रभाव आपके दिमाग में पैदा होना चाहिए।

"औरों के सर हम क्या जाने, भीम हमारे सर में है,
भीम नगर के पूत कहेंगे, भीम हमारे घर में है श्वे''।

जो लोग बाबासाहेब को दुसरो का अनुयायी मानते है। उन पर भीम के विचारों को सबसें पहले दिमाग मे रखने की बड़ी जिम्मेदारी होती है। घर में भीम सुंदर हो सकता है। लेकिन सिर में भीम स्वाभिमान का संरक्षक जरुर होता है। बाबासाहेब ने स्वयं कहा था, "मेरी पूजा करने के बजाय मेरे विचारों को आत्मसात करें "व्यवस्था के खिलाफ कड़ा संघर्ष करने वाले डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने समाज के लिए आरक्षण के माध्यम से पिढीयो से सब्जियाँ और रोटी उपलब्ध कराई है।

"भीम, अगर आपकी राय में पाँच लोग है", तो तलवार उनका एकमात्र अंत है। वाणी में भीम है, कार्य में भीम है। यह दुःख हमेशा वामनदादा द्वारा व्यक्त किया गया था। क्योंकि बाबासाहेब के उड़ो–उड़ो के कोलाहल में उनके विचार सक्रिय होने से दूर रहे। बाबासाहेब के बच्चों से उम्मीदें पुरी नही हो सकीं।

जुनुनी भीम के बारे में बात करने के बजाय कारवाई की जरुरत है। वामनदादा ने कारवाई पर जोर दिया। क्योंकि पिछले कुछ वर्षों में भीम को अपने सिर मे रखने के बजाय आपसे भीम को छुड़ांने की प्रक्रिया जोरों पर है। यह स्थिति और भी खराब है। वामनदादा महान प्रतिभा वाले कवि है, और उनमें ईमानदारी और विनम्रता है। "मैं भीम के चरणों की धूल हूँ। मैं नदी नही हूँ, लेकिन मैं एक धारा हूँ"।

निष्कर्ष :–

1. दलितों मे आत्मसम्मान है।
2. ईमानदारी और विनम्रता है।
3. सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विचार है।
4. दलितों मे नवचेतना है।
5. शिक्षा की समस्या है।
6. गुलामी की बेड़ियों को तोड दिया है।
7. परिवर्तनवादी विचार है।
8. संयमता है।
9. दलितों के जीवन में बाबासाहेब का व्यक्तित्व का और जीवन कार्य प्रभाव है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. आंबेडकरी प्रतिभेचा महाकवि – वामनदादा कर्डक
2. धरती हमारी है – वामनदादा कर्डक के हिंदी कवितांओं का संकलन।
3. दिल्ली दूर नहीं।

मो.नं. 9890806856

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 347-348
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'रमा मराठी कविता में' का भाषा सौंदर्य एक विश्लेषण

–डॉ. संघप्रकाश दुड्डे

प्रस्तावना :–

'रमाई अर्थात डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी की धर्मपत्नी, जिनके कारण डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर एक युगपुरुष बन गए। 'इस संदर्भ में 'रमाई' के केंद्र में रखकर मराठी भाषा में लिखी हुई कविताओं का हिंदी में अनुदान करके, हिंदी भाषियों के लिए एक नया वैभव प्राप्त करने का काम अनुवाद कवि डॉ. युवराज सोनटक्के जी ने किया है। इसे कविता संग्रह का भाषिक सौंदर्य अनुसंधान की दृष्टि से करने का संकल्प करके, रमाई के प्रति कृतज्ञता का भाव भी प्रकट करता है।

'रमाई' का जीवन ही सही माने में एक जीता जागता संघर्ष है। अपने परिवार के प्रति स्नेह, प्यार, जीवन के हर पड़ाव पर संघर्ष करना यह कार्य रमाई से हम सीख सकते है, जीवन का श्रेष्ठ नम प्राप्त करना स्वयंम अनपढ होते हुवे डॉ. आंबेडकर जी को पढाई के लिए विदेश भेज देना स्वयंम का त्याग परिवार समाज को जागृत करने की असिम निष्ठा हमे रमाई मे दिखाई देती है। विषय परिस्थिति में भूख प्यास के साथ संघर्ष करना बड़ा कठिन होता है। इसलिए रमाई लिए पूज्य है वंदनीय है, उसका जीवन हमारे लिए प्रेरणादायी है।

डॉ. युवराज सोनटक्के कहते है 'मराठी भाषा का साहित्य परिपक्व है और उसे अन्य भाषा में अनुदित करना वांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी है, ताकि पाठक उसका लाभ उठा सके। इन विचारों को ध्यान में रखते हुए 'रमाई संबंधी मराठी भाषा में लिखी हुई कविताओं का मैने हिंदी में अनुवाद एवं संपादन किया है।''

रमाबाई आंबेडकर नाम से ही एक संचार मर जाता है, वह अर्धांगिनी है, धर्मपत्नी है डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की, इस अर्थ में रमाई का जीवनपुरे मनुष्य जाति के लिए आदर्श बना है। एक गरीब की बेटी एक तुफान की पत्नी बनी और उस तुफान की आग में तपकर–विश्वकर 'रमाई' हुई है।

रमाबाई आंबेडकर एक सुशील, स्वाभिमानी, कर्तव्य–परायण, विनम्र, बुद्धिमति, महिला थी, जो बहुत सुनियोजित तरीके से घर की देखभाल करती थी। वह अपने परिवार के बावजूद अपने ज्येष्ठ के परिवार को भी संभालती थी। उसके साहस के साथ प्रत्येक संकट का सामना किया था। दरिद्रता, और अभावग्रस्त दिन भी धैर्य के साथ गुजारे, परंतु जीवन संघर्ष में हिम्मत नहीं हारी। जहाँ तक रमाई को व्यक्तित्व की बात है उस में हम अद्‌भुत साहस, असीम धैर्य और सुदूर सहजता पाते है। अपने परिवार और लक्ष्य के प्रति वह इतनी आस्थावान दृढ थी कि अपने अंतर्मन की आवाज को, हृदय के क्रंदन को मन के उल्हास को, भावनाओं के आवेग को और अपनी अनुभूतियों के प्रवाह को झेलने व सहने में विचलित नहीं हुई। स्त्री का स्तीत्व उन्हें कृत्रिमता के आचरण को धारण करने में बाह्य नहीं कर पाया। उन्होंने एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया है जो नारी को नई सदी

में अपना इतिहास स्वयं रचने की एक नयी ऊर्जा विश्वास और ताजगी प्रदान करने में सहायक सिद्ध हो सकती है। डॉ. आंबेडकर जब अमेरिका गए तब रमाई ने बिना किसी शिकवा–शिकायत के बडी मर्दानी के साथ बहुत ही दुखभरे दिन गजारे डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर प्यार से रमाई को 'रामू' कहकर पुकारने थे। इसी कारण डॉ. आंबेडकर जी ने 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' (पाकिस्तान पर विचार) नामक अपना लिखा हुआ ग्रंथ रमाई को उसके मन की सात्विकता, मानसिक सद्‌वृत्ति, सदाचार, की पवित्रता और मेरे साथ दुःख झेलने में अभाव व परेशानी के दिनों में जब की हमारा कोई सहायक न था, अतिव सहनशीलता और सहमति दिखाने की प्रशंसा स्वरूप समर्पित करता हूँ।

रमाई नें सकंट काल में अपने पाते डॉ. भीमराव आंबेडकर का किस प्रकार साथ निभाया और डॉ. बाबसाहेब के दिल में उन के प्रति कितना आदर प्यार था। रमाई अपने पति के प्रयास से कुछ पढ़ना–लिखना भी सीख गई थी। डॉ. भीमराव आंबेडकर एक ऐसे महान पुरूष थे जिन्हें रमाई जैसी बहुत निष्ठावान विश्वसनीय और आज्ञाकारी जीवन संगिनी का साथा मिल दरिद्रता और दुःखों के समय डॉ आंबेडकर जी के साथ मिल कर संकटों से संघर्ष करती रही थी। और जब कुछ सुख पाने का समय आया तो 27 मई 1935 को इस दुनिया से चली गई। डॉ. आंबेडकर जी को विश्वविख्यात महापुरूष बयाने मे रमाई का सराहनीय योगदान था। 27 वर्षो तक रमाई सुसंस्कृत ह्रदय की ववी रमाई ने बाबासाहब की गृहस्थी बड़ी कुशलता से निभाई। 1899 से 1935 इन दोनों महान जीवन साथी का सफर चलता रहा आखिर रमाई उन्हें छोड़कर चली गई उस वक्त दुःख का पहाड़ डॉ. आंबेडकरजी पर पड़ा था। डॉ. युवराज सोनटक्केजी ने 'रमाई' इस कविता संग्रह में मराठी के कुल 152 रचनाकारों की अनुदित कविताओं को संपादित किया है।

भाषा सौंदर्य :– अनेक प्रतिभाशाली कवियों की कलम से रमाई के मातृत्व की महानता, उनके दुःख की तीव्रता, करुणा की कोमलता और उस के कपद जीवन की यथार्थता कविता में उगाजर हुई है। इन रचनाओं में भाषा सौंदर्य सर्जको की सृजनात्मकता के विविध रंगो को दर्शानी है। इस में गीत, गजले, तथत्त लोक काव्य का खुमार है। दुःख में धीरज, सुख में ताजगी और संकट में दूभर स्थिति से उबारने की शक्ति आदि का एहसास 'रमाई की कविताएँ' कराती है। रमाई द्वारा किए गग मानसिक, पारिवारिक सामाजिक समस्याओं को संघर्ष ही कविता का विषय बना है। अनेक रचनाकारों ने रमाई के जीवन के अत्यंत ह्रदयस्पर्शी दृश्यों को सह्रदयता से करुणापूर्ण व ह्रदयद्रावक तरीके से कविताओं के चित्रित किया है। उन्होंने रमाई के व्यक्तीत्व संबंधी 'आँखो देखा हाल' बनाकर अपनी कुछ अनुभूतियों को मनोवेग की तीव्रता से पालकों तर पहुँचाया है। और करुणा का असीम रुदन बनी रमाई के प्रति अपनी संवेदनाएँ प्रकट की है।

निष्कर्ष :–

1. रमाई त्याग की मूर्ती है, उसका जीवन प्रेरणा का स्त्रोत है।
2. रमाई व्यक्ती वही जीवन संघर्ष हे, तुफान है।
3. रमाई महिला को आदर्श पारी का प्रमाण है।
4. रमाई के कारण ही डॉ. आंबेडकर महान महापुरुष बने।
5. रमाई मराठी कविता में– डॉ. युवराज सोनटक्के, शाश्वत प्रकाशन, बेंगलोर।

smdudded@gmail.com, Mob. 9766997174

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 349-354
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी साहित्य की अवधारणा

-डॉ. संजय नाईनवाड
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, एस. बी. झाडबुके महाविद्यालय, बार्शी, तहसील – बार्शी, जि सोलापुर
-प्रा. डॉ. संध्या ठाकुर
हिंदी विभाग, नेताजी सुभाषचंद्र बोस महाविद्यालय, तारासिंह मार्किट, नांदेड, जिला–नांदेड।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को समझने के पूर्व आदिवासी शब्द की विवेचना करना अनिवार्य हो जाता है। 'आदिवासी' शब्द का निर्माण 'आदि' और 'वासी' दो शब्दों के योग से हुआ है। आदि का अर्थ होता है पहला, मूल या प्राचीनतम। और 'वासी' शब्द का अर्थ है निवासी, बसा हुआ या रहने वाला। आदिवासी अर्थात किसी देश या प्रांत के प्राचीनतम मूल निवासी। आदिवासियों के लिए विज्ञानियों ने विभिन्न संज्ञाओं का प्रयोग किया है। मार्टिन, ए. वी. ठक्कर एवं सैडविक आदि विद्वान इन्हें 'एबोरिजनल' या 'आदिवासी' कहते हैं। इनके विचारानुसार आदिवासी किसी देश के आदि मनुष्य हैं। जबकि हट्टन एल्विन एवं बेंस जैसे विद्वान इन्हें 'प्रिमिटिव ट्राइब्ज' कहते हैं। इनके अनुसार 'प्रिमिटिव ट्राइब्ज' यानी किसी भूप्रदेश के ज्ञात इतिहास के सबसे प्राचीन निवासी।

आजकल आदिवासियों को इंडिजिनस पिपुल अर्थात देशी मूल के लोग या देशज भी कहा जाता है। आदिवासियों के लिए 'जनजाति' शब्द का भी प्रचलन है। भारतीय संविधान में आदिवासियों को 'अनुसूचित जनजाति' कहा है। डॉ. डी.एन. मजुमदार के विचारानुसार ''एक जनजाति परिवारों या परिवार समूहों का एक संकलन होती है, जिसका एक नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू–भाग पर रहते हैं, सामान्य भाषा बोलत हैं, विवाह, व्यवसाय उद्योग के विषय में कुछ नियमों का पालन करते हैं तथा एक निश्चित तथा उपयोगी परस्पर आदान–प्रदान की व्यवस्था का विकास करते हैं।''[1]

उपरोक्त विवेचन के उपरांत आदिवासी शब्द की अवधारणा स्पष्ट हो जाती है। अब आदिवासी साहित्य के प्रेरणास्त्रोतों पर विस्तार से विचार करना आवश्यक है।

आदिवासी साहित्य के प्रेरणास्त्रोत :-

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के दौर में आदिवासी इलाकों में भारी मात्रा में सामुदायिक क्षेत्रों का निजीकरण और सामुदायिक संपत्ति, जमीन में स्थायी सेटलमेंट कर दी गई। अधिकांश क्षेत्र रिजर्व फॉरेस्ट, प्रोटेक्टेड फॉरेस्ट और रेवेन्यू लॅड में तब्दील कर दी गई। नतीजा आदिवासी वन अधिकार से बेदखल कर दिए गए। अंग्रेजों द्वारा निजीकरण को बढावा देने के चलते आदिवासी क्षेत्रों में दिकुओं की बाढ–सी आ गई। ब्रिटिश उपनिवेश और

उसके बाद की वन नीतियों ने राज्य का वनों में एकाधिकार बढता गया। 1947 के बाद ब्रिटिश भारत से चले गए किंतु आजादी के बाद नए किस्म का आंतरिक उपनिवेशवाद आदिवासी क्षेत्रों में बसना शुरू हुआ। जिसके तहत ''देश में अंधाधुंध बडी–बडी फैक्ट्रियाँ बैठायी जाने लगीं। इसके साथ साथ शहरीकरण भी शुरू हुआ.....छोटा नागपुर में खदान, हाईड्रो–इलेक्ट्रिक सिंचाई परियाजना आदि शुरू की गई.....निजी कंपनियों को कथित पिछड़े क्षेत्र भी फैक्ट्रियाँ लगाने के दी गयी। परिणामस्वरूप भारी मात्रा में आदिवासियों की जमीन, कानूनी और गैर कानूनी ढंग से हड़प ली गई। समूचे क्षेत्र में औद्योगिकीकरण ने आदिवासियों से उनकी आजीविका के साधन ही नही छीने बल्कि प्रदूषण को फैलाया और पर्यावरण बिगाड़ दिया है और क्रूरता से उन्हें जमीन से बेदखल कर दिया है।''[2]

इस त्रासदी को आदिवासी समुदाय झेल ही रहा था कि 1991 से केंद्र सरकार द्वारा आर्थिक उदारीकरण की नीतियाँ अपनायी गईं जिसके चलते देश में बाजारवाद का रास्ता खुल गया। देश में मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार के नाम पर नफे और लूट का बेहरम सिलसिला शुरू हुआ। इसी का परिणाम था कि आदिवासी इलाकों में आदिवासियों की बुनियादी पहचान जल, जंगल और जमीन तथा इससे जूडी सारी चीजें दॉव पर लग गईं। केंद्र सरकार की आर्थिक उदारीकरण की नीतियों के चलते आदिवासी इलाकों में शोषण की घातक प्रक्रिया तेज रफ्तार से शुरू हुई। इस शोषण की प्रक्रिया का आदिवासियों द्वारा प्रतिरोध होने लगा। आदिवासी समुदाय से आने वाले रचनाकारों में शोषण की प्रक्रिया को लेकर जो प्रतिरोध था और गुस्सा था वह राष्ट्रीय स्तर पर अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों से उभर कर आने लगा। इसके चलते गैर आदिवासी रचनाकार भी जमीनी सच्चाई से अवगत होकर लिखने लगा।

वैसे देखा जाए तो आदिवासी साहित्य गैर आदिवासी साहित्य से कई मान्यों में भिन्न और अलहदा है। आदिवासी साहित्य में चित्रित–समाज, भूगोल, भाषा, पर्यावरण, इतिहास, संस्कृति और साहित्य उसी तरह से अलहदा है जैसा स्वयं आदिवासी समुदाय। ''दरअसल आदिवासी चेतना का लेखन, जहॉ एक तरफ अपनी पीड़ा खुद व्यक्त करने, अपने समाधान खुद ढूँढने की चेष्टा करता है, वहीं प्रस्थापितों (तथाकथित मुख्यधरा के लोगों) द्वारा उन्हें एक षड्यंत्र के तहत सभ्यता से बाहर रखने का अहसास भी करता है।''[3]

आज आदिवासी साहित्य को स्वतंत्र ज्ञानशाखा के रूप में विभिन्न विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों आदि में पढाया जा रहा है, उस पर शोध भी हो रहे हैं। आदिवासी साहित्य को भी आदिवासी समाज जैसे ही संघर्ष का सामना करना पड़ रहा है। चूँकि आदिवासी साहित्य के नाम पर आजकल जो साहित्य आ रहा है वह गैर आदिवासी साहित्यकारों की लेखनी से। इनके साहित्य का विषय तो आदिवासी होता है पर साहित्य आदिवासी दर्शन और संस्कृति के अनुरूप दिखाई नहीं देता। वंदना टेटे के अनुसार, ''आदिवासी साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जिसमें आदिवासियों का जीवन और समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त हुआ हो।''[4] यूरोप और अमेरीका में आदिवासी साहित्य को नेटिव अमेरिकन लिटरेचर, कलर्ड लिटरेचर, अफ्रीकन–अमेरिकन लिटरेचर कहा जाता है। अफ्रीकन देशों में ब्लैक लिटरेचर और ऑस्ट्रेलिया में एबोरिजिनल लिटरेचर कहा जाता है। तो अंग्रेजी में इंडीजिनस लिटरेचर, फर्स्टपीपुल लिटरेचर और ट्राइबल लिटरेचर कहा जाता है। भारत में हिंदी

और अन्यभाषाओं में आदिवासी साहित्य कहा जाता है।

आदिवासी साहित्य का स्वरूप :-

वैसे देखा जाए तो आदिवासी साहित्य की प्राचीन और समृद्ध परंपरा रही है। आदिवासी समुदायों के पास अपना हजारों सालों का साहित्य है। वह ज्यादा तर मौखिक परंपरा में रहा है। आदिवासी साहित्य का लिखित परंपरा में आना हाल ही की देन है, ऐसा गैर आदिवासी साहित्यकारों का मानना है। इसी के चलते गैर आदिवासी साहित्य की अध्ययन परंपरा आदिवासी साहित्य को दो भागों में बॉटती है – (1) वाचिक परंपरा का आदिवासी (लोक) साहित्य और (2) लिखित (शिष्ट या आधुनिक) आदिवासी साहित्य ऑरेचर (वाचिकता)। किंतु वंदना टेटे के अनुसार आदिवासी साहित्यकार गैर आदिवासियों द्वारा किए गए इस तरह के विभाजन को स्वीकार नहीं करते। उनका मानना है कि आदिवासी जीवन दर्शन किसी भी विभाजन के पक्ष में नहीं है, आदिवासी समाज में एकरूपता और समानता है, अतः आदिवासी साहित्य को विभाजित नहीं किया जाए। वह एक ही है। इसे आदिवासी साहित्यकार 'ऑरेचर' कहने के पक्ष में हैं। ऑरेचर यानी ऑरल लिटरेचर। आदिवासी साहित्यकारों की मान्यता है कि आज का उनका जो लिखित साहित्य है वह भी उनकी वाचिक अर्थात पुरखा साहित्य की परंपरा का ही साहित्य है।''[5] ऑचेचर की अवधारणा युगांडा के आदिवासी रचनाकार पियो जिरिमू ने प्रस्तुत की थी, जिसे विश्व के ज्यादातर आदिवासी और गैर आदिवासी लेखकों ने अपनाया। बावजूद इसके गैर आदिवासी साहित्यकार और अकादमिक जगत में अभी भी वाचिक साहित्य यानी लोक साहित्य की ही स्वीकार्यत ज्यादा है।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को लेकर तीन तरह के दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं – (1) आदिवासी विषय पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है (2) आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है और (3) आदिवासीयत (आदिवासी दर्शन) के तत्वों वाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। पहली मान्यता गैर आदिवासी साहित्यकारों की है। किंतु इसके समर्थन में कुछ आदिवासी साहित्यकार भी हैं। दूसरी मान्यता उन आदिवासी साहित्यकारों की है जो जन्मना स्वानुभूति के आधार पर आदिवासियों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानने के पक्ष में हैं। तीसरी मान्यता उन आदिवासी लेखकों की है, जो आदिवासियत के तत्वों का निर्वहन करने वाले साहित्य को ही आदिवासी साहित्य मानने के पक्ष में हैं। ऐसे लेखकों और साहित्यकारों के भारतीय आदिवासी समूह ने 14–15 जून, 2014 को रांची में आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में इस अवधारणा को प्रस्तुत किया जिसे आदिवासी साहित्य का रांची घोषणापत्र के नाम से जाना जाता है। जो अब आदिवासी साहित्य विमर्श का केंद्रीय बिंदु बन गया है।

आदिवासी साहित्य का राँची घोषणापत्र :-

14–15 जून, 2014, राँची में आयोजित 'आदिवासी दर्शन और समकालीन आदिवासी साहित्य सृजन' विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन सत्र में अपने वक्तव्य में वंदना टेटे ने आदिवासी दर्शन पर आधारित आदिवासी साहित्य का 15 सूत्री राँची घोषणापत्र प्रस्तुत किया जिसे देश भर से आए आदिवासी रचनाकारों ने नगाडा और मेज बजारक पारित किया। प्रस्तुत घोषणापत्र के में लिखा गया है ''आदिवासी साहित्य की बुनियादी शर्त उसमें आदिवासी दर्शन का होना है जिसके मूल तत्व हैं :–

1. प्रकृति की लय–ताल और संगीत का जो अनुसरण करता हो।
2. जो प्रकृति और प्रेम के आत्मीय संबंध और गरिमा का सम्मान करता हो।
3. जिसमें पुरखा–पूर्वजों के ज्ञान–विज्ञान, कला–कौशल और इंसानी बेहतरी के अनुभवों के प्रति आभार हो।
4. जो समूचे जीव जगत की अवहेलना नहीं करें।
5. जो धनलोलुप और बाजारवादी हिंसा और लालासा का नकार करता हो।
6. जिसमें जीवन के प्रति आनंदमयी अदम्य जिजीविषा हो।
7. जिसमें सृष्टि और समष्टि के प्रति कृतज्ञता का भाव हो।
8. जो धरती को संसाधन की बजाए मां मानकर उसके बचाव और रचाव के लिए खुद को उसका संरक्षक मानता हो।
9. जिसमें रंग, नस्ल, लिंग, धर्म आदि का विशेष आग्रह न हो।
10. जो हर तरह की गैर–बराबरी के खिलाफ हो।
11. जो भाषाई व सांस्कृतिक विविधता और आत्मनिर्णय के अधिकार के पक्ष में हो।
12. जो सामंती, ब्राह्मणवादी, धनलोलुप और बाजारवादी शब्दावलियों, प्रतीकों, मिथकों और व्यक्तिगत महिमामंडन से असहमत हो।
13. जो सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता और सामंजस्य को अपना दार्शनिक आधार मानते हुए रचाव–बचाव में यकीन करता हो।
14. सहानुभूति, स्वानूभूति की बजाए सामूहिक अनुभूति जिसका प्रबल स्वर–संगीत हो।
15. मूल आदिवासी भाषाओं में अपने विश्वदृष्टिकोण के साथ जो प्रमुखतः अभिव्यक्त हुआ हो।''[6]

आदिवासी साहित्य का भाषायी मानचित्र :–

आदिवासी साहित्य वाचिक स्तर पर अपनी मूल आदिवासी भाषाओं में बहुत समृद्ध और विपुल है। भारत में लिखित आदिवासी साहित्य की शुरूआत 20 वीं सदी के शुरूआती दौर में हुई जब औपनिवेशिक दिनों में आदिवासी आधुनिक शिक्षा के संपर्क में आए। खासकर झारखंड, और उत्तर–पूर्व की जनजातियाँ तब से लेकर आज तक अंग्रेजी, हिंदी, बांग्ला, उडिया, असमीया, मराठी आदि अन्य भारतीय भाषाओं में आदिवासी साहित्य लेखन निरंतर प्रगति पर है और प्रति वर्ष सैकडों आदिवासी साहित्यकारों द्वारा रचित पुस्तकें सइल रकब पुथि सेंटर, कोलकाता, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, राँची, आदिवाणी कोलकाता, दाबांकी प्रेस, जमशेदपुर सहित दर्जनों प्रकाशन संस्थाएँ आदिवासी साहित्य छाप रही हैं।''[7] आदिवासी साहित्य पाँच भाषा परिवार की भाषाओं में वाचिक और लिखित रूप में प्राप्त होता है जो निम्न प्रकार है :–

1. आष्ट्रो एशियाटिक भाषा परिवार :–

इस आदिवासी भाषा परिवार की भाषाएं मुख्यतः भारत में झारखंड, छत्तीसगढ, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के अधिकतर हिस्सों में बोली जाती हैं। संख्या की दृष्टि से इस परिवार की सबसे बड़ी भाषा संथली है। इस

परिवार की अन्य भाषाओं में हो, मुंडारी, खडिया, सावरा आदि मुख्य भाषाएँ हैं।

2. चीनी-तिब्बती भषा परिवार :-

इस परिवार की भाषाएं ज्यादातर भारत के भारत के सात उत्तरपूर्व राज्यों में असम, मिज़ोरम, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा में बोली जाती हैं। जिनमें नागा, मिजो, म्हार, मणीपुरी, तांगखुल, खासी, दफला एवं आओ आदि प्रमुख भाषाएँ हैं।

3. द्रविड भाषा परिवार :-

यह भाषा परिवार भारत का दूसरा सबसे बड़ा भाषायी परिवार है। इस परिवार की सदस्य गैर–आदिवासी भाषाएँ अधिकतर दक्षिण भारत में बोली जाती हैं। जिसमें कन्नड, मलयालम और तेलगु भाषाएं आती हैं। किंतु द्रविड़ परिवर की आदिवासी भाषाएं पूर्वी, मध्य और दक्षिण तक के राज्यों में बोली जाती हैं। गोंडों की गोंडी, उरांव, किसन और धागर समुदायों की कुडुख और पहाड़िया की मल्तों या मालतों द्रविड़ परिवार की प्रमुख आदिवासी भाषाएं हैं।

4. अंडमानी भाषा परिवार :-

जनसंख्या की दृष्टि से यह भारत का सबसे छोटा आदिवासी भाषायी परिवार है। इस भाषा परिवार में अंडमान–निकोबार द्वीप समूह की भाषाएं समाविष्ट की जाती हैं। जिनमें अंडमानी, ग्रेट अंडमानी, ओंगे और जारवा आदि मुख्य भाषाएं हैं।

5. भारोपीय आर्य भाषा परिवार :-

भारत में दो तिहाई से भी अधिक गैर आदिवासी समुदाय हिंदी आर्य भाषा परिवार की कोई न कोई भाषा विभिन्न स्तरों पर प्रयोग करते हैं। जिसमें संस्कृत, हिंदी, बांग्ला, गुजराती, कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी, उडिया, असमिया, मैथिली, भोजपुरी, मारवाडी, गढवाली, मराठी, कोंकणी आदि भाषाएँ आती हैं। राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में भीलों की भीली, भिलाल और वागडी, झारखंड, पश्चिम बंगाल, ओडिसा, असम आदि राज्यों में बोली जाने वाली सदरी, सादरी, सदानी अथवा नागपुरी भाषाएँ भाषाएँ इसी भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत आती हैं।''[8]

संबंधित पत्रिकाएं :-

आदिवासी साहित्य आंदोलन को निम्न पत्रिकाओं द्वारा पत्रिकाओं गति प्राप्त हुई है :–

पत्रिका का नाम	प्रकाशन स्थल	संपादक
आदिवासी साहित्य	नई दिल्ली	गंगा सहाय मीणा
अरावली उद्घोष	उदयपुर	बीपी वर्मा पथिक
आदिवासी सत्ता	दुर्ग, छत्तीसगढ	के आर शाह
झारखंडी भाषा साहित्य, संस्कृति अखाड़ा	राँची	वंदना टेटे
युद्धरत आम आदमी	दिल्ली, हजारीबाग	रमणिका गुप्ता

संक्षेप में मौजूदा दौर में आदिवासी साहित्य ने आज मुकम्मल आंदोलन का रूप लिया है। आदिवासी अब

अपने दुःख को दूसरों के द्वारा व्यक्त करने के बजाए स्वयं व्यक्त करने की चेतना लेकर साहित्य सृजन कर रहे हैं। वे अब खामोश रहना नहीं चाहते सदियों से उन पर प्रस्थापितों द्वारा लादी गई बंदिशों और दायरों को तोड़कर अपनी संस्कृति, अपनी भाषा, अपना समाज, अपना इतिहास अपना भूगोल आदि जानने समझने उसे अभिव्यक्त करने के इरादे से लिखने लगे हैं।

संदर्भ :-

1. उमेशकुमार वर्मा, जनजातीय समाजशास्त्र, जानकी प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, 2008 पृ. 6
2. हेरॉल्ड एस. तोपनो, उपनिवेशवाद और आदिवासी संघर्ष, विकल्प प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2015, पृ55
3. रमणिक गुप्ता, आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013 पृ. 15
4. सं. वंदना टेटे, आदिवासी दर्शन और साहित्य, विकल्प प्रकाशन, सोनिया विहार, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015 पृ. 10
5. वहीं, पृ. 11
6. सं. गंगासहाय मीना, आदिवासी साहित्य (पत्रिका) वर्ष 1, अंक 1, जनवरी–मार्च, 2015, पृ. 95
7. वंदना टेटे, वाचिकता : आदिवासी साहित्य एवं सौंदर्यबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा लि, दिल्ली, संस्करण 2016 पृ. 25
8. सं. वंदना टेटे, आदिवासी दर्शन और साहित्य, विकल्प प्रकाशन, सोनिया विहार, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015 पृ. 13–14

मोबाइल – 9881440316, मो 7020908221

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 355-360
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सूर्यनाथ सिंह के साहित्य में चित्रित आदिवासी जीवन

-डॉ. सतीश कृष्णात पाटील-कोले
श्री संत गाडगेबाबा महाविद्यालय, कापशी, शाहुवाडी।

भूमिका :-

संसार में विभिन्न जनजातीय समुदाय मिलता है। उस पर अनेक मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रियों ने अध्ययन किया है साथ ही हर भाषा के साहित्यकारों ने साहित्य लिखा है। भारत में बहुभाषीय समाज मिलता है और उसमें भी बहुजातियों का वर्गीकरण किया है। प्रत्येक जाति की अपनी पद्धति, रीति–रिवाज और कायदे–कानून होते हैं। आदिवासी समाज भी इसमें से एक महत्त्वपूर्ण समाज है। परंपरा से यह समाज जंगलों में तथा दुर्गम भागों में रहनेवाला तथा समाज की नयी विचारधारा से दुर्लक्षित रहा है। यहाँ आदिवासी समाज की परिस्थिति, उनके नियम, कानून तथा जात पंचायत और आज की बदलती परिस्थिति में सरकार द्वारा उनके लिए बनाए गए कार्यक्रमों को सूर्यनाथ सिंह जी ने अपने साहित्य में चित्रित किया है। आदिवासियों के बदलते जीवन मूल्य तथा उनके लिए बनाई गयी योजनाएँ और विकास कार्यक्रमों को यथार्थवादी दृष्टि से सरोकार किया है। यह चित्रण बिहार, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश के इलाकों में स्थित आदिवासियों का चित्रण है। भूमंडलीकरण और बाजारवाद के कारण उन्हें सामाजिक प्रवाह में लाया गया। यहाँ आदिवासी शब्द का अर्थ तथा परिभाषाएँ देना अनिवार्य होगा।

आदिवासी शब्द का अर्थ तथा परिभाषाएँ :-

आदिवासी शब्द का अर्थ अलग–अलग शब्दकोशों में भिन्न प्रकार से दिया है– "आदिवासी– पु. (सं.कर्म. स.) – किसी देश या प्रांत के वे निवासी जो बहुत पहले से वहाँ रहने आए हो और जिनके बाद और लोग भी वहाँ आकर बसे हों। आदिम निवासी।" 'समाजशास्त्रीय विश्वकोष' में आदिवासी की परिभाषा करते हुए कहा है कि "किसी देश प्रदेश के वे लोग, जो आदिकाल से वहाँ निवास कर रहे हैं, उन्हें उस देश–प्रदेश का आदिवासी कहा जाता है। आदिवासी उस देश–प्रदेश के मूल निवासी होते हैं।"

अतः स्पष्ट है कि जो समाज जंगलों तथा पहाड़ों में आदिकाल से निवास करता है तथा सामाजिक व्यवस्था से दूर रहनेवाला या सामाजिक व्यवस्था से वंचित रहे समाज को आदिवासी कहते हैं।

भारत में आदिवासी समाज का स्वरूप :-

भारत में आदिवासी समुदाय को मूल निवासी कहा गया है। मध्य तथा दक्षिण भारत में इनकी संख्या ज्यादा पायी जाती है। भारत की प्राकृतिक रचना में विभिन्नता है इसी कारण कहीं समतल प्रदेश हैं तो कहीं पर्वत

एवं दुर्गम प्रदेश है। इन्हीं दुर्गम प्रदेशों, पर्वतों तथा वनों में आदिवासी समाज सालों से रहता आया है। आदिवासी समाज किसी विशिष्ट भूप्रदेश पर रहकर वहाँ अपनी संस्कृति का संवर्धन करता है। उनकी भाषा प्रदेश के अनुरूप एक जैसी होती है। अलग–अलग प्रदेशों में अलग भाषा तथा सांकेतिक आवाजों का भी प्रयोग करते हैं। अपनी संस्कृति तथा परंपरा के नियमों के अधीन रहकर पालन करते हैं। आदिवासी समाज का रहन–सहन तथा खानपान वहाँ के प्रदेश के अनुरूप होता है। वनों तथा पर्वतों में रहनेवाले आदिवासी लोग जंगली जानवरों का मांस और फलों का सेवन करते है। यह समाज अंधविश्वास, रूढ़ि–परंपरा, अज्ञान और व्यसनाधिनता के कारण नागरी समाज तथा संस्कृति से दूर रहा है। आदिवासी समाज को प्राकृतिक आपदाओं का सामना हमेशा करना पड़ता है क्योंकि उनके मकान स्थिर नहीं होते। भारी बारिश और तूफानों में इनके मकानों का भारी नुकसान होता है। इनका जीवन नदी, पेड़, पर्वत, प्राणी तथा पक्षियों के बीच ही गुजरता है। आदिमानव अपना शरीर पेड़ों की खाल तथा पत्तों से ढक लेते थे किंतु आज जमाना बदल चुका है। इस समाज का संचालन जात–पंचायत के अधीन होता है। उनके नियम तथा कायदे–कानून समाज द्वारा बनाए गए होते हैं। समय के साथ इसमें भी बदलाव होता दिखाई दे रहा है।

आदिवासी समाज का वर्तमान :–

आज का आदिवासी समाज वनों तथा पर्वतों की बजाय समाज के नियमों का पालन करता दिखाया दे रहा है। उनके बच्चे शिक्षा हासिल कर रहे हैं। आधुनिक जीवन प्रणाली का उपयोग कर रहे हैं। आदिवासियों के लिए सरकार द्वारा नई–नई योजनाओं का ऐलान किया जा रहा है। झोपड़ियों के बजाय पक्के मकानों में रहते दिखाई देते हैं। मांस–मच्छली के बजाय रोटी–चावल खा रहे हैं। आदिवासी जात–पंचायत के नियमों को छोड़कर संविधान द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन रह रहे हैं। सरकार द्वारा उन्हें समाज के प्रवाह में लाने का प्रयास हो रहा है। आदिवासी बहुल प्रदेशों में प्राकृतिक रचना का अध्ययन करके उसके अनुरूप वहाँ बड़े–बड़े कारखानों तथा उद्योगों का निर्माण हो रहा है। शिक्षा, नौकरी तथा राजनीति में उन्हें स्थान मिलता दिखाई दे रहा है। आदिवादी समाज का जीवन कष्टमय तथा संघर्षमय रहा है। बदलते भौतिक परिवेश के अनुसार उनकी जीवन पद्धतियाँ और सामाजिक संरचना भी बदलती नजर आ रही है। शिकार करने के बजाय वो खेलों में काम करता दिखाई देता है साथ ही वहाँ का युवावर्ग कारखानों या खादानों में मजदूरी करता है। परंपरागत रूढ़ियों, परंपराओं, अंधविश्वासों तथा व्यसनाधिनता को छोड़कर आधुनिक तकनीकी का इस्तेमाल कर रहे हैं। इक्कीसवीं सदी के आदिवासी समाज में सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक उन्नति होती दिखाई दे रही है। यह बदलाव शिक्षा व्यवस्था का और नयी बनाई सरकारी योजनाओं का और दृष्टिकोण का है।

सूर्यनाथ सिंह द्वारा चित्रित आदिवासी समाज :–

'देवता घर गए' कहानी में 'मुसहरा' आदिवासी समाज का चित्रण किया है। यहाँ 'मुसहरा' आदिवासी समाज का रहन–सहन, खान–पान, उद्योग, कार्य आदि का विस्तार से वर्णन किया है। मुसहरा जाति कन्द–मूल, फूल तथा कोई–न–कोई शिकार करके अपना जीवन बिताते हैं। पत्तल दोने बनाकर, साँप–स्थाही, चूहे–मेंढक मारकर वे अपना गुजारा करते थे। बदलते समय के अनुसार वे हल चलाते थे। तो नवयुवक नकबमारी करते

थे। वे समाज से इतने बाहर थे कि उन्हें आजादी क्या है यह भी मालूम नहीं हुआ। लेखक कहता है "देश आजाद हुआ, जश्न मना मगर मौंझरपुर के मुसहरों को इसकी खबर तक न मिली। आज तक किसी ने न उनसे पूछा और न खुद उन्होंने जानने की कोशिश की कि आजादी का मतलब क्या है। जमाना बदलता रहा, मगर वे वैसे ही रहे जैसे रहते आए थे।" प्रस्तुत कहानी में मुसहर आदिवासी समाज के बैंगा का परिवार चित्रित है। इस जाति में वो पहला आदमी है जिसने अपने बेटे को पढ़ाकर सरकारी नौकरी के लिए पात्र किया था। मुसहर जाति में बदलाव की शुरुवात बैंगा के परदादा अलगोझा से हुई थी। जो जमींदार के यहाँ हलवाई का काम करने लगा था। बैंगा का परिवार परिवर्तन का काम करनेवाला था। इसी तरह मुसहर आदिवासी समाज का चित्रण यहाँ चित्रित है।

'धधक धुआँ धुआँ' इस कहानी में मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिले के कुछ स्थानीय प्रदेशों में आदिवासी जनजाति पायी जाती है। यह प्रदेश देवरा–मँगरा गाँव के आदिवासी लोगों के लिए परिचित है। इस कहानी में इन लोगों के जात–पंचायत को चित्रित किया है। इसमें इन लोगों के नियम, कायदे–कानून को बताने का प्रयास किया है। शिवपुरी जिले के कई भागों में आदिवासी जनजाति मिलती है। परंतु सरकार के उनके प्रति देखने का नजरियाँ अलग है। कुछ अग्रवादी आदिवासियों को माओवादी या नक्सलवादी घोषित कर उन्हें जान से मार दिया जाता है। इन लोगों को समाज के प्रवाह में लाने के लिए जिला प्रशासन ने कई कार्यक्रमों का आयोजन किया है तथा सेवभावी संस्था, एन.जी.ओ. संस्था आदिवासियों के विकास के लिए कार्य कर रही है। यहाँ का जीवन अशांत है। कभी–कभी गोली–बारी होती है। लोगों के मन में अशांति, आतंक का भय और डर हमेशा बना रहता है। सरकार ने आदिवासियों की जमीन बेकायदा लेकर उद्योगपतियों को दे रखी है। इसी वजह से वहाँ के लोग प्रशासन के खिलाफ थे। इसी समस्या से बाहर निकालने के लिए जिला प्रशासन ने मेले–महोत्सव का आयोजन करके आदिवासियों द्वारा निर्मित वस्तुओं तथा चीजों को वहाँ बाजार का निर्माण किया था। जिससे बाहरी दुनिया से उनका परिचय हो।

शिवपुरी के जिलाध्यक्ष निर्मलेंदु कहते हैं "बनोपज के विपणन, आदिवासी कलाओं की खरीद और उनका प्रदर्शन किया जाता है। राज्य के हर पर्यटन केंद्र पर हम यहाँ के आदिवासियों द्वारा बनाए अचार, बड़ी, लकड़ी के खिलौने, दरियाँ, सजावटी समान वगैरह डिस्प्ले करते हैं। फिर साल में एक बार राज्य की राजधानी में और एक बार दिल्ली में आदिवासी मेले का आयोजन करते हैं।" यहाँ उत्तर प्रदेश में होनेवाले परिवर्तन को दिखाया है। ज्यादातर आदिवासी नक्सलवादी और माओवादी बनते हैं। फिर भी प्रशासन के स्तर पर उनके उन्नती और विकास के लिए कुछ कार्यक्रमों का आयोजन करके उन्हें समाज की रेहड्डी पर लाने का प्रयास हो रहा है। उन्हें शिक्षा व्यवस्था के साथ जोड़ना अनिवार्य है। उन्हें शिक्षा और नौकरी में आरक्षण की पूर्ति की है। आदिवासी युवक अपने पुराने व्यवसाय छोड़कर नए उद्योग आर व्यवसाय के पीछे भागने के लिए परावृत्त हो जाये। वहाँ के प्रदेशों में कारखानों का निर्माण करके युवाओं के लिए रोजगार के अवसर खुलेंगे। उन्हें देश दुनिया के बारे में जानकारियाँ देना, जड़ मान्यताओं से दूर करके उन्हें समाज व्यवस्था के मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किस प्रकार प्रशासन कर रहा है, इसका वर्णन किया है।

कई जगह इसके विपरीत परिस्थिति है। राजस्थान में आदिवासी समाज के हर एक घर में कम–से–कम एक सदस्य प्रशासकीय सेवा में ऊंचे पद पर कार्य कर रहे हैं। यह परिस्थिति आज राजस्थान की है। आदिवासी समाज बदल रहा है। बच्चों को स्कूलों में भर्ती कराया जा रहा है। बेरोजगार युवाओं के हाथों में काम आ चुका है। इसके लिए वहाँ के स्थानीय लोग जिला प्रशासन और राज्य के अधिकारी काम कर रहे हैं। इस कहानी में आदिवासी जीवन की दयनीय स्थिति को चित्रित किया है। सोच बदलनी चाहिए, तभी समाज बदलेगा।

स्पष्ट है कि सूर्यनाथ सिंह के साहित्य में आदिवासी जीवन की गाथा चित्रित की है। बदलते समय के अनुसार किस तरह आदिवासी समाज बदल रहा है इसका वर्णन मिलता है। आदिवासी समाज की जीवन पद्धति तथा उनकी परंपरागत मान्यताओं को व्यक्त किया है। लेखक आदिवासियों के जीवन को स्पष्ट करने में काफी हद्द तक सफल हुआ है। कुछ कमियों की भी नींव दिखाई देती है। आदिवासियों की समस्याएँ तथा उनके समाज को बहिष्कृत रहने के कारण नहीं बताए हैं। आदिवासियों के जमीन में कारखाने तो खुले हैं परंतु उसी से नौकरी मिलने से समस्या खत्म नहीं होती। उनके सर्वांगीण विकास के लिए क्या करना चाहिए, यह नहीं बताया है।

आदिवासी जात-पंचायत के नियम :-

सूर्यनाथ सिंह ने आदिवासी समाज जीवन के जाति–पंचायत के नियम, रूढ़ि परंपरा, संस्कार को स्पष्ट किया है। सूर्यनाथ जी ने अपने साहित्य में आदिवासी जीवन के नियम बताने का प्रयास भी किया है। समाज व्यवस्था से दूर फिर भी अनुशासित समाज के रूप में आदिवासी जन–जाति की तरफ देखा जाता है। यहाँ संविधान द्वारा बनाए गए नियम बताने का प्रयास नहीं है बल्कि सिर्फ कहानियों के माध्यम से दृष्टित नियमों को बताना अनिवार्य है कारण आदिवासी समाज की संकल्पना और स्वरूप उन नियमों के अधीन बंधा हुआ है। वे नियम जाति–पंचायत द्वारा बनाए गए हैं। पी. आर. नायडू कहते हैं "आदिवासियों का गाँव पंचायत में बहित महत्व है वे माल मिलकीयत का, जमीन का, पारिवारिक झगड़ों का धार्मिक विवाद आदि का फैसला स्वयं करती हैं। पंचायत गाँव के बुजुर्गों से बनती है। यह महत्त्वपूर्ण है कि पराधीन भारत में ब्रितानी न्यायालयों की स्थापना से पहले आदिवासी समाज में पंचायत खून का बदला खून से देती थी। चोर पीटा जाता था। जाति बहिष्कार और अर्थदण्ड भी सामान्य सजाएँ थी। पंचायत का दायित्व होता था उस समुदाय की एकता और प्रतिष्ठा को बनाए रखना।" इसी तरह आदिवासी समाज अपने–अपने कानून के अधीन था।

आदिवासियों के जमीन के संदर्भ में कानून है। 'धधक धुआँ धुआँ' कहानी में मैनेजर अशरफ मियाँ को बताता है "यहाँ कानून है कि किसी आदिवासी की जमीन कोई बाहरी आदमी नहीं खरीद सकता कोई आदिवासी ही खरीद सकता है।" यह उनका अलिखित नियम है। वो जमीन किराए पर दे सकता है परंतु आदिवासी समाज के बगैर किए नहीं बेच सकता। आदिवासी की जमीन कारोबारी लालच देकर या घुस देकर किसी से खरीद नहीं सकता।

'देवता घर गए' कहानी में मुसहरों के नियमों को बताया है। मुसहर आदिवासी जनजाति है। नकबमारी उनके युवाओं का काम है। उनका नियम है कि अपने पास के गाँव में नकबमारी नहीं करनी है। इन नियमों के अधीन अपना जीवन बिताना है। एलकिन बैंगा का परदादा इस कानून के नियमों को नहीं अपनाता क्योंकि

आदिवासी जीवन में परिवर्तन आ रहा था। आदिवासी जीवन के और एक नियम है कि "मुसहर समुदाय अपने घर–परिवार के मसले जाति के पंचायत में निपटाते हैं।" मुसहर आदिवासी समुदाय अपने निजी मसले उनके द्वारा बनाई जात–पंचायत में मिटाते हैं। बिचली जतियों में जात–पंचायत सर्वोच्च मानी जाती है। ये नियम स्वातंत्र्यपूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काम में भी थे परंतु समय के बदलाव से यहाँ भी परिवर्तन दिखाई दे रहा है।

सूर्यनाथ सिंह ने आदिवासी समाज जीवन के नियम, उसूल और कायदे–कानून बताने का प्रयास किया है। साथ ही बदलती सामाजिक परिस्थिति या समय के अनुरूप उसमें परिवर्तन भी दिखाया है।

सामाजिक संस्थाओं द्वारा आदिवासी समाज परिवर्तन का कार्य :-

देश की विभिन्न समाजसेवी संस्थाओं द्वारा आदिवासी जीवन में परिवर्तन करने करने के कार्य हो रहे हैं। सामाजिक संस्थाओं द्वारा शिक्षा, आरोग्य, जीवन पद्धति आदि के बारे में जानकारी दी जाती है। शिक्षा और आरोग्य के लिए ज्यादा कार्य किया जाता है। 'धधक धुआँ धुआँ' कहानी में आदिवासी युवाओं के लिए स्कूल, ट्रेनी स्कूल तथा स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रम चलाये जाते हैं। तारानंद जिस एन.जी.ओ. को चालता है उसके द्वारा आदिवासियों के लिए चलाये जा रहे कार्यक्रमों को बताता है कि "आदिवासी बच्चों और युवाओं के लिए दो स्कूल चल रहे हैं हमारी संस्था के। आदिवासी महिलाओं के लिए एक ट्रेनिंग स्कूल है। स्वास्थ्य आदि से जुड़े कुछ कार्यक्रम भी चल रहे हैं। इधर एक साल आदिवासी कलाओं, दस्तकारी, लोकगीत–संगीत आदि को बढ़ावा देने की ज़िम्मेदारी भी हमें सौंप दी गई है।" साथ ही जिला प्रशासन के जरिए चलाए कार्यक्रमों के बारे निर्मलेंदु कहते हैं "जब मैंने यहाँ ज्वाइन किया तो मेरी पहली प्रियोरिटी थी आदिवासियों के कल्याण के लिए कार्यक्रम चलाना।" इसके साथ ही इनके इलाकों में कारखानों का निर्माण करके वहाँ पर स्थित जिंक प्लांट लगाने की योजना भी की है। कारखाने खुलेंगे तो आदिवासियों को रोजगार भी मिलेगा। इस इलाके में विकास परियोजना चलाने के लिए कार्य कर रहे हैं।

तारानंद एक मैगजीन पत्रिका निकालना चाहते हैं, जिससे आदिवासियों के जीवन पद्धति को विशद किया जा सके। उस पत्रिका के माध्यम से आदिवासियों के विकास और परिवर्तन के विचार रखे जा सके। तारानंद कहता है "आदिवासियों को जागरूक बनाना। उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना। रूढ़ियों से दूर रखना।" पत्रिका का उद्देश्य होगा। पत्रिका विचारों को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। मौंझरपुर के कई इलाकों में मुसहर समुदाय रहता है। उस समुदाय को चूहे बहुत पसंद हैं। वे चूहे खाकर अपना गुजारा करते हैं। तो मुख्यमंत्री चूहे पालने का केंद्र स्थापित करने की घोषणा देते हैं। पिछड़ी–जाति तथा जनजाति के विकास के लिए सरकार द्वारा की गई घोषणा आंदोलनकारी समुदाय को शांत करने का प्रयास किया जाता है, यह चुनावी मामला है। देश में ऐसे कई मुख्यमंत्री चुनाव के पहले बड़ी–बड़ी घोषणाएँ करते हैं।

आदिवासी समुदाय के लिए जिन एन.जी.ओ. तथा सामाजिक संगठनों द्वारा किया जानेवाला कार्य उनके विकास के लिए है। साथ सरकारी योजनाओं द्वारा आदिवासी समुदाय को समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया जाता है। सूर्यनाथ सिंह जी द्वारा देश में आदिवासी समुदाय के विकास के लिए हो रहे प्रयत्नों को तथा कल्याणकारी योजनाओं को यहाँ स्थापित करने का प्रयास हो गया है। पुलिसी व्यवस्था द्वारा समुपदेशन न होने

के कारण ये लोग पुलिस और आम जनता पर गोली–बारी करते हैं। इसका वर्णन सूर्यनाथ सिंह के साहित्य में नहीं मिलता है, सिर्फ इनके लिए किए गए प्रयत्नों और योजनाओं को बताने का प्रयास किया है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि आदिवासी समाज का चित्रण तथा उनके कायदे–कानून और नियमों को उजागर किया है। सरकारी और निम–सरकारी संगठनों द्वारा आदिवासी समुदाय के लिए बनाई गयी योजनाओं को दर्शाया है। राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सामाजिक एकता बरकरार रखने के लिए इनका विकास होना अनिवार्य है। आदिवासियों के साथ–साथ ऐसे पिछड़े जन–जातियों के विकास की तरफ भी ध्यान देना आवश्यक है। लेखक द्वारा ग्रामीण इलाकों में स्थित आदिवासी समुदाय का चित्रण यथार्थवादी रूप से किया है। उनके समस्या और समाधान के कुछ नुख्से भी बताए हैं। वैश्वीकरण के इस युग में आदिवासियों के बदलते जीवन गौरव की बात कही गई है। प्रस्तुत साहित्य में आदिवासियों के जीवन की घटनाएँ, प्रसंग, विशिष्ट पात्रों द्वारा आदिवासी नायकों को कथा के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. संपादक रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश (खंड–9), (प्रयाग, हिंदी साहित्य सम्मेलन : प्र.सं., 1965)
2. हरिकृष्ण रावत, समाजशास्त्र विश्वकोश, (नई दिल्ली,रावत पब्लिकेशन्स : द्वितीय संस्करण, 2002)
3. सूर्यनाथ सिंह, धधक धुआँ धुआँ (नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन : प्र.सं. 2013)
4. आर.पी. नायडू, भारत के आदिवासी, (नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन : द्वि. सं. 2002)

satyam8212@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 361-363
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सलामी' कहानी में युवा पीढ़ी का विद्रोह

-आस्था कच्छप

शोधार्थी, हिंदी विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 80 के दशक से लिखना शुरू किया लेकिन साहित्य के क्षेत्र में वे 1997 ई. में चर्चित और स्थापित हुए। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित लेखन में अपने रचनात्मक लेखन के जरिए अपनी एक अमिट छाप बनाई है। इनकी कहानियां दलित जीवन की संवेदनशीलता और अनुभवों की कहानियां है। जो एक ऐसे यथार्थ से साक्षात्कार कराती हैं जहां हजारों साल की पीड़ा में दबे लोगों की संवेदना भी दबी पड़ी है। 'सलामी' कहानी संग्रह में दलितों के जीवन संघर्ष और उनकी बेचैनी के जीवंत दस्तावेज हैं। जीवन की व्यथा, छटपटाहट इन कहानियों में साफ–साफ दिखाई पड़ती हैं। वाल्मीकि जी द्वारा दलित जीवन से जुड़ी हुई कहानियां जिनमें दलित–जीवन के सुख–दुःख, कष्ट अपेक्षाएं कुंठा, घुटन तथा कुछ सपने तथा उनके लिए किए जाने वाले संघर्ष को उजागर किया गया सदियों से दलित जीवन का यथार्थ रहा है। समकालीन हिंदी कहानी में दलित चेतना की दस्तक देने वाले कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह कहानियां अपने आप में विशिष्ट हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा इस कहानी–संग्रह की पहली कहानी 'सलाम' है इस आधार पर इस कहानी–संग्रह का नामकरण हुआ है। इस कहानी–संग्रह में कुल 14 कहानी संग्रहित हैं। कहानी का नायक हरीश भंगी समाज से संबंधित हैं। पूरी कहानी हरीश के विवाह के चारों ओर घूमती है। हरीश का मित्र कमल उपाध्याय है जो उसकी शादी में शामिल होता है बल्कि उसके विवाह की तैयारी में भी घर परिवार के सदस्य की तरह लगा रहता है। हरीश की बारात देहरादून से मुजफ्फरपुर नगर के पास के एक गांव में पहुंचती हैं। अगले दिन सुबह कमल को चाय की तलब लगती है और वह गांव की एक चाय की दुकान पर पहुंचता है। दुकान वाला यह जानकर कि वह देहरादून एक दलित के बारात में आया है तो भंगी ही होगा। कमल को चाय देने से मना कर देता है यहां उसे अपमानजनक जान पड़ता है उस चाय वाले और कमल के बीच का संवादः– 'चमारों को मेरी दुकान पर चाय ना मिलती कहीं और जाकर पियो'।

कमल उसे उसकी जाति पूछ लेता है इस बात पर चाय वाला भड़क पड़ा :– 'मुझसे तुझे क्या लेना देना'। इसी बात पर उपाध्याय अपनी जाति का परिचय देता है और कहीं ना कहीं रूढ़िवादी का विद्रोह करते हुए भी कमल यहां सवर्णता का परिचय देता है। इस कहानी में मुख्य पात्र के रूप में दो पात्र प्रस्तुत होते हैं–हरीश जो दलित है और कमल उपाध्याय जो ब्राह्मण है। दोनों की मित्रता बहुत ही अटूट है परंतु कमल अभी का युवा होने के कारण वह इस तरीके की ओछीं मानसिकता का शिकार नहीं। परंतु एक बार जब वह हरीश को अपने घर लेकर जाता है तब उनकी माता द्वारा काफी कुछ सुनने को मिलता है। उनकी माता की मानसिकता अभी भी पुराने रूढ़ीगत विचारधारा से लिपटी हुई है। जब–जब हरीश उनके घर जाता है तो उसके लिए अलग बर्तन

की भी व्यवस्था है परंतु यह बात हरीश को पता नहीं। कमल कहानी में युवा पीढ़ी का विद्रोही के रूप में प्रस्तुत होता है वह एक ओर मित्रता के लिए अपनी माता द्वारा कहे गए बातों का खंडन करता है और जाति–वर्ण के इस खोखली व्यवस्था से दूर रहकर मानवता को चुनता है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए यही बात स्पष्ट होती है, कि हर वह व्यक्ति जो जाति–धर्म पर अपने आप को उच्चकोटि का समझता है वो खुद से भी नीचे एक जाति ढूंढ लेता है जिसे वह दमित, पीड़ित करता रहे। यहां सिर्फ विचारधाराओं का और पुरानी रूढ़ीगत मानसिकताओं का विरोध के साथ दो पीढ़ी की मानसिकता का विद्रोह है। इस कहानी में एक जाति वर्ग के लोग दूसरे वर्ग के लोगों की दो प्रकार की विचारधाराओं का विद्रोह है यहां लड़ाई एक तरफा नहीं, सिर्फ मानसिकता का विद्रोह है। यहां दलित भी मुस्लिम के हाथों का बना खाने से इंकार करता है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने दिखाना चाहा है, कि समय के बदले हुए संदर्भ में नई पीढ़ी के शिक्षित और नवयुवक इस प्रकार अपने बीच सदियों से चली आ रही रूढ़परंपरा के खिलाफ होते हैं। कहानी का मुख्य पात्र हरीश एक विरोधी पात्र के रूप में प्रस्तुत होता है। हरीश विवाह के बाद सवर्णों के घर पर जाकर सलामी देने और बक्शीश पाने की पुरानी प्रथा को खंडित करना चाहता है। सलाम को रिवाज नहीं बल्कि आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश मानता है। इस कहानी में ब्राह्मणों द्वारा सदियों पुराने परंपरा 'सलाम प्रथा' का विरोध है। वहीं दलित युवकों में आत्मविश्वास जगाती है। हरीश एक शिक्षित युवा है लेकिन यह विरोध महज एक शिक्षित युवा का विरोध नहीं है एक समूची पीढ़ी की प्रथा के खिलाफ आक्रोश है। लेखक के बहुचर्चित कहानी में दलितों की पीड़ा त्रासदी और वेदना को दिखाते हुए सलामी के पारंपरिक रिवाज को तोड़ने की चेतना को दर्शाया गया है। समाज की सलामी की अपमानजनक प्रथा से ग्रस्त समर्थन दलित समाज को मुक्ति दिलाने का काम हरीश की शादी के दौरान करता है। बारात की विदाई के पहले गांव की घर–घर जाकर सलाम करने की प्रथा से दलित वर–वधू में हीनताबोध घर कर जाता है और स्वाभिमान के टुकड़े–टुकड़े हो जाते हैं। ये सेवा सदियों से चली आ रही इस प्रथा को ठुकराता ही नहीं बल्कि उसे खारिज भी करता है उसका यह कदम दलितों में चेतना को आगे बढ़ाने का काम करता हैं। लेखक ने समाज में फैली विसंगतियों पर चोट किया है।

आलोचक हरपाल सिंह अरूस ने लिखा है कि :– 'इनकी कहानियां दलित समाज के भीतर कसमसाने वाले विरोध को उभर कर आने वाली संवेदना को और सहज मान ली गई। भारतीय जातिवादी संरचना की मनोवैज्ञानिकता को रेखांकित करता हैं।'[1]

कथाकार ने अपनी कहानियों के संबंध में स्वयं कहा है कि :– 'उनकी संवेदनशीलता और जज्बातों को गैर दलितों ने हमेशा अनदेखा किया है उनके प्रति दुर्भावनापूर्ण व्यवहार किया है। उनकी मानवीय संवेदना के प्रति साहित्य का नजरिया भी नकारात्मक ही है उनका सुख–दुख उनकी पीड़ा साहित्य के लिए त्याज्य ही रहा है लेकिन यह मेरी प्राथमिकताओं में है। समाज में स्थापित विद्रूपताओं को रेखांकित करना मैं जरूरी मानता हूं साथ ही दलित–अस्मिता की पहचान मेरे लेखक की मूलभूत जरूरत है।'[2]

इस विमर्श में उनकी हिस्सेदारी का वैशिष्ट्य इस बात में है कि विचार की अपनी जमीन पर मजबूती के साथ खड़े रहकर भी उनमें प्रतिपक्ष की विचारों को सुनने को और तर्क की जमीन पर उचित को स्वीकार करने का साहस है।

दलित कहानी के सर्वाधिक चर्चित कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि ने ने इस कहानी में युवा पीढ़ी का

आक्रोश दिखाया है और रूढ़ीगत परंपरा का भी विरोध किया है। इस कहानी में सिर्फ पात्रों का विद्रोह नहीं बल्कि पूरे युवा वर्ग का विद्रोह है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक लोकतंत्र–
   संपादक हरपाल सिंह अरूस –पृष्ठ संख्या –07
2. मुख्यधारा और दलित साहित्य– ओमप्रकाश वाल्मीकि– पृष्ठ संख्या– 19
3. कहानी संग्रह श्सलामश – ओमप्रकाश वाल्मीकि– राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

सहायक ग्रंथ सूची :-

1. दलित स्वाभिमान और ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'सलाम' –डॉ. पूरण चंद्र
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि व्यक्तित्व, विचारक और सृजक–संपादक जयप्रकाश कर्दम–
   वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

आस्था कच्छप(शोधार्थी)
पिता– तेजू भगत
पता–ग्राम+ डाकघर +थाना– बेड़ो
जिला –रांची(झारखंड)
पिन कोड –835202
दूरभाष नंबर– 9931937411

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 364-368
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शमी वृक्ष का धार्मिक अनुशीलन

–श्रवण कुमार उपाध्याय
प्रधानाध्यापक – स्कूल शिक्षा, अल्फा एड़वास स्कूल, पीपाड़ शहर, जोधपुर (राज.)

भारतीय संस्कृति देव संस्कृति है। यहाँ पर चर–अचर में ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया है। भारत भूमि में पेड़ो में देवताओं का निवास माना गया है। पेड़ों को देवता का निवास मानते हुए इनका पूजन व अर्चन किया जाता है। राजस्थान की भूमि में पाया जाने वाला वृक्ष 'शमी' जिसे 'खेजड़ी' भी कहा जाता है। यह वृक्ष बहुत ही पुराना है। इसका उल्लेख हम वेद–पुराणों में मिलता है। खेजड़ी को किन–किन नामों से जाना जाता है इसके बारे में दोहा है वह इस प्रकार है।

तमिली 'पारंबी' तवे झंड पंजाबी जांण,
'सिमरू' गुजराती सबद, तेलुगु 'जंबी' जांण
कन्नड़ मां 'बन्नी' कहै, तकड़ो दरख्त प्रेम,
मिलत 'सुन्दर' मराठियां, आदर सेजड़ येम।

संस्कृति भाषा में 'शमी' कहा जाता है, तो राजस्थान भाषा में इसे जाटी, झांटी, बोझी कहा जाता है। वनस्पति शास्त्री इसे प्रोसोपिस सिनेदेरिया कहते है। इस वृक्ष को केवल राजस्थान का वृक्ष कहना उचित नहीं होगा। यह वृक्ष राजस्थान के अलावा अफगानिस्तान, ईरान, पाकिस्तान के बलूच और सिंध, अरब देशों सहित हमारे देश के दक्षिण के प्रान्तों सहित पंजाब और गुजरात में भी मिलता है।

खेजड़ी के वृक्ष को देखने पर पता चलता है यह वृक्ष 30–40 फुट ऊँचा छायादार व कंटीला होता है। खेजड़ी की जान इसकी जड़े में होती है। खेजड़ी की जड़े भूमि में चौसठ फुट तक पहुँच जाती है। अपनी गहरी जड़ों के कारण यह मरू धरती की गर्भनाल से जुड़ जाती है। जिसके कारण यह गर्मी में भी हरी–भरी रहती है। इसकी शाखायें पतली होने के कारण नीचे की ओर झुकी हुई रहती है। इसकी पत्तियां 6 सेमी के लगभग लम्बी और चपटी होती है। गर्मी के मौसम में इस पर सफेद व पीले रंग के फूल लगते है। फूलों से फलियां जून तक पकती है। फलियों को सेंगरी भी कहा जाता है। जब फलियां पक जाती है उसे खोखा कहा जाता है। पकी हुई एक किलो फलीयों से 25000 के करीब बीज निकलते है। इनमें से 65 प्रतिषत बीजों में पुनः उगने की क्षमता होती है। फलीयों में जो गूदा होता है, जिसमें 11 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। इसकी कच्ची फलीयों को सेंगरी कहा जाता है, जिससे सब्जी बनाई जाती है। इस वृक्ष से भूमि को पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन मिलती है इसकी जड़ों की गांठे हवा से नाइट्रोजन सोख लेती है। खेजड़ी की पत्तियों को लोंग कहा जाता है, जो भेड़, बकरी, और ऊँट बड़े ही चाव से खाते है। खेजड़ी की लकड़ी कठोर व सख्त होती है जो कृर्षि के यन्त्र बनाने के साथ ही चूल्हों को ताप देने में प्रयोग ली जाती है।

खेजड़ी के वृक्ष का धार्मिक महत्व हमें भारतीय वांग्मय में मिलता है। धर्म शास्त्रों में खेजड़ी के वृक्ष को पावन व पवित्र माना गया है। धर्म सिन्धु व निर्णय सिन्धु में इस वृक्ष के पूजन का इस प्रकार का एक मन्त्र प्राप्त है।

शमी शमयते पापं शमी शत्रु विनाशिनी।
धरित्र्यर्जुन बाणानां रामस्य प्रियवादिनी।।
करिष्यमाणां या यात्रा यथाकालं सुखं मया ।
तत्र निर्विहनकत्रीं त्वं मय श्री राम पूजिते।।

मर्यादा पुरूषोतम भगवान राम ने लंका पर विजय प्राप्त करने के पूर्व शमी वृक्ष के सामने अपना शीश नवाकर अपनी विजय की प्रार्थना की एवम् विजय दशमी के दिन शमी के वृक्ष का पूजन कर वापस अयोध्या आये। इस वृक्ष का पूजन हमें अच्छाई की जीत के विश्वास को बनाए रखने की शक्ति प्रदान करता है। प्रत्येक वर्ष विजय दशमी को सांय रावण दहन के पश्चात् शमी के वृक्ष का पूजन किया जाता है।

एक दूसरी कथा शमी के पूजा की इस प्रकार की मिलती है। एक बार राजा रघु ने इन्द्र लोक पर चढ़ाई करने का विचार किया। इस पर इन्द्र को भय हो गया। इन्द्र रघु की चढ़ाई के भय से शमी की पत्तियों को स्वर्ण में बदल दिया। इन पत्तियों को स्वर्ण मुद्राओं के बराबर मान कर ही इन पत्तियों को भेंट किया जाता है। शमी की ये पत्तिया धन धान्य के प्रतिक रूप में स्वीकार की जाती है। ऐसी मान्यता है कि दशहरें के दिन भेंट की गई ये पत्तियों मिलती है, उस पर लक्ष्मी की कृपा बनी रहती है। यह पत्तियां अपनों के सुख–सम्पदा की कामना के साथ भेंट की जाती है। इससे आपसी मेल–जोल व रिश्तों में प्राग्ढ़ता आती है। इस वृक्ष का पूजन कर हम प्रकृति का शुक्रिया अदा भी करते है। वर्तमान समय में कोरोना महामारी का कारण प्रकृति की अवहेलना ही है। हमें प्रकृति के साथ सामजस्य बैठते हुए शान्त जीवन शैली को अपनाना होगा।

महाभारत के अनुसार पांडू पुत्रों ने शमी (खेजड़ी) के पेड़ में अपने शस्त्रास्त्र छुपाए थे। पाण्डू पुत्रों ने एक पुरानी खेजड़ी के खों में अपने शस्त्रास्त्र को छुप कर उसके ऊपर एक मुर्दे को बाध दिया। बाद में वे विराट (वैराट) जनपद के राजा के यहाँ गुप्त रह कर विजय के दूरगामी लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल रहे।

कुछ आदिवासियों में यह मान्यता है कि खेजड़ी के वृक्ष की परिक्रमा करने से निःसन्तान स्त्रियों को सन्तान सुख की प्राप्ति हो जाती है। यह एक धार्मिक मान्यता है।

वास्तु शास्त्र में भी खेजड़ी के महत्व को स्वीकार किया गया है। वास्तु में विश्वास रखने वाले अपने आस–पास शमी का वृक्ष लगाते है। शमी के वृक्ष को वैदिक साहित्य में सूर्य व अग्नि का प्रतीक माना गया है। वैज्ञानिक शोध से यह ज्ञात हुआ की शमी की लकड़ी में कैलोरीफिक अधिक होता है। अर्थात् इसमें अग्नि तत्व अधिक पाया जाता है।

जोधपुर के श्रीमाली समाज में खेजड़ी के पूजन को लेकर एक अनूठी प्राचीन परम्परा है। इस परम्परा के अन्तर्गत समाज की महिलाएँ द्वारा धन तेरस पर खेजड़ी की पूजा अर्चना कर उसकी टहनियाँ और मिट्टी घर लाती है। इसे महालक्ष्मी का प्रतीक माना गया है। दीपावली पर पूजन कर अगले दिन फिर टहनियों को अलमारी में रखा जाता है, और मिट्टी को तालाब में विसृजित कर दिया जाता है।

भारतीय संस्कृति में प्रथम पूजन गणपति का किया जाता है। परम्परागत रूप से गणेष की पूजा में 21

पौधे (पत्र–पूजा) अर्पित किए जाते है। शमी, भृंगी, बिल्ब, दुर्वा, बेर, धतुरा, तुलसी, सेम, अपामार्ग, भटकटैया, सिन्दुर, तेज, अगस्त्य, कनेर, कदली, अर्क, अर्जुन, देवदार, गंडारी, मरूआ, और केतकी। इन पत्र पूजा में प्रथम नाम शमी का आता है।

धार्मिक संस्कृत वांग्मय में शमी के नाम इस प्रकार मिलते है। शमी, शक्तफला, शिवा, शक्तफली, शान्ता, लक्ष्मी, तशनतनया, केशमखनी, ईशानी, तुंगा, कचरिपुफला, इष्टा, शुभकरी, मेध्या, दुरित–दमनी, शक्तफलिका, समुद्रा, मंगल्या, सुरभि, पापशमनी, भद्रा, शंकरी, शिवाफली, सुखदा, सुपत्ना आदि।

शमी के पत्ता से हरि प्रबोधिन एकादशी (देव उठणी इग्यारस) को हरि (विष्णु) का पूजन किया जाता है। इसकी पूजा करने से यमलोक नहीं जाना पड़ता है ऐसी मान्यता है।

राजस्थान में किसी की मृत्यु होने पर अस्थियों को जब हरिद्वार विसर्जन के लिए जाते है तब पंथवरी माता का पूजन किया जाता है। पंथवारी माता को शुभकरी माता भी कहा है। पंथवारी माता के पूजन के पीछे यह भाव है कि अस्थियों ले जाने वाले परिवार जनों का मार्ग निष्कटक हो तथा हमारे यहाँ आने वाले परिवार जनों का मार्ग भी सुगम हो इसी भाव के कारण पंथवारी का पूजन किया जाता है। यह पंथवारी पूजन खेजड़ी में किया जाता है।

''पन्थामं सुपथा रक्षेन्मार्ग क्षेमकारी तथा।

मेरे पथ की सुपथा तथा मार्ग की क्षेमकरी रक्षा करें। पंथवरी माता को संस्कृत साहित्य में क्षेंमकारी माता भी कहा जाता है।

विश्नोई समाज का खेजड़ी के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान है। विश्नोई समाज के प्रर्वतक गुरू जम्भेश्वर जी महाराज का जन्म वि.सं. 1508 में भादो वदि अष्टमी वार सोमवार को पीपासर गाँव में हुआ। गुरू जम्भेश्वर महाराज ने संमराथल में वि.सं. 1542, को कार्तिक वदी अष्टमी को कलश की स्थापना करके विश्नोई पंथ की स्थापना की।

उणतीस धर्म की आखड़ी, हिरदै धरियो जोय।
गुरू जाम्भोजी किरपा करी, नाम बिश्नोई होय।।

विश्नोई धर्म के प्रवर्तक गुरू जाम्भो जी ने विश्नोई धर्म की स्थापना के साथ उनतीस नियम दिये। यह नियम विश्नोई धर्म की आधार संहिता है। यह उनतीस नियम केवल विष्नोई धर्म मानने वालों के लिए ही उपयोगी नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के लिए उपयोगी है। आज विश्व में व्याप्त नशा खोरी, पर्यावरण प्रदुषण, आतंकवाद, हिंसा एवं भ्रष्टाचार आदि समस्याओं का निवारण हो सकता है। ये उनतीस नियम पूर्णतः वैज्ञानिक और व्यवहारिक है।

गुरू जाम्भोजी के उनतीस नियमों में से चार नियम पर्यावरण सुरक्षा के है। जो 14, 15, 16, 17 क्रम से है।

जीही राखो सब मन आठी।

अर्थ जीवों के प्रति उद्धार (दयालु बनो) ये तुम्हारे सभी कष्टों का हरण कर लेगें।

ब्रह्मा रूप जान सब समष्टि।

अर्थ वृक्ष आदि सब भगवान ब्रह्मा इस सृष्टि के रचियता के रूप है।

नियम – 16 इंनभ नाना जीव विरोज, चेतन रूप सकल नपु छाजे।

अर्थ इन जगलों में कई प्रकार के जीव है इन्हे रहने दे, परेशान मत करो।

नियम–17, बिना विचारें नहीं इन्हे हरना कांट छांट नहीं घर में धरना।

अर्थ – बिना सोचे, समझे, और विचार किया वृक्षों को नहीं कटना तथा घर में एकत्रित नहीं करना चाहिए।

विश्नोई धर्म में हरे वृक्ष काटने की पूर्णतया मनाही है। गुरू जाम्भोजी महाराज ने राजस्थान में खेजड़ी के वृक्ष का रोपण किया तथा इसकी सुरक्षा हेतु अपने अनुयायियों को जागृत किया।

राजस्थान की भूमि पर खेजड़ी की रक्षा के लिए अनेक बलिदान हुए। खेजड़ी वृक्ष रक्षा के लिए जोधपुर के रामासनी गाँव में वि.सं. 1661 की जेष्ठ वदी दूज शनिवार को घटित हुई इसमें दो महिलाएँ करमां और गौरां ने खेजड़ी के वृक्ष को बचाने हेतु अपना सिर कटवाकर खेजड़ी के वृक्षों को बचाया। रामासनी की घटना के कुछ समय पश्चात् जोधपुर के तिलासनी गाँव में घटित हुई जिसमें श्रीमती खींवणी खोखर, श्री मोटाजी खोखर, श्रीमती नेतु नेण ने अपना प्राण खेजड़ी वृक्ष के लिए न्योछावर कर दिये। नागौर जिले के मेड़ता परगने के ऐचरा पोलावास गांव में वि.सं. 1700 चैत्र वदी तीज को बूचाजी ने खेजड़ी वृक्ष के लिए अपना बलिदान देकर अमर हो गये।

खेजड़ली की रक्षा के प्राण का बलिदान करने की रोमांचकारी एवं विश्व प्रसिद्ध घटना खेजड़ी की है। खेजड़ली ग्राम जोधपुर से 25 किलोमीटर दूर है। खेजड़ली का बलिदान खेजड़ली के खड़ाणें के नाम से जानी जाती है। खेजड़ली के बलिदान की घटना सन् 1787 ई. की है। जोधपुर के तत्कालीन महाराजा अभयसिंह जी को महल के निर्माण में काम आने वाले चूने को पकाने के लिए लकड़ियों की आवश्यकता हुई। इस समय खेजड़ली गांव ऐसा था जिसमें खेजड़ी के वृक्ष का धना जंगल था। महाराजा जोधपुर के हाकिम गिरधारी दास भण्डारी के आदेश पर जब सैनिकों को उस क्षैत्र में जाकर पेड़ों को काटना आरम्भ किया तो विश्नोई समाज ने इसका विरोध किया। हाकिम विरोध की ओर ध्यान नहीं देकर खेजड़ी के वृक्षों को काटना निरन्तर जारी रखा। जब इस बात की सूचना अमृता देवी को हुई तो वह वृक्ष की रक्षा हेतु खेजड़ी के चिपक गई तो सैनिक ने उसे काट दिया। आस पास के चौरासी गाँव के लागे एकत्रित हो गये और खेजड़ी के पेड़ से चिपकना आरम्भ कर दिया और सैनिकों ने उनको पेड़ के साथ काटने लगे। जब इस घटना की जानकारी महाराजा को हुई तो उन्होने कटाई रूकवा दी। विश्व की वृक्ष रक्षा की अनोखी घटना में 363 व्यक्तियों ने अपना अद्भूत बलिदान दिया। खेजड़ली के बलिदान में 69 महिलाएं और 294 पुरूषों ने गुरू जोम्भोजी के जयकारें के साथ अपना जीवन खेजड़ी वृक्ष के लिए न्योछावर कर दिया। इस घटना की पूर्णाहुति वि.सं. 1787 की भादों सुदी दशमी मंगलवार को हुई।

विश्व के इतिहास के इस विलक्षण दिन को याद रखने के लिए सन् 1978 ई. को विश्नोई समाज द्वारा 363 शहीदों को श्रद्धाजंली देने के लिए भादवा सुदी दशमी को खेजड़ली में मेला भरता है। इस खेजड़ली ग्राम में एक दो सौ वर्ष पुराना जाल का वृक्ष है जो कि 363 शहीदों का साक्षी है।

इस घटना के बारे में सुन्दरलाल बहुगुणा पर्यावरण विद् ने कहा था ''मैंने जब पहली बार खेजड़ली की घटना को सूना तो चकित रह गया। जब हिमालय के वृक्षों को बचाने के लिए हमने चिपको आन्दोलन शुरू किया तो इसके पीछे खेजड़ली की ही प्रेरणा थी।''

विश्नोई धर्म के गुरू जाम्भोजी का मन्त्र था ''सिर सांटे रूंख रहे तो भी सस्तो जाण'' अर्थात् यदि एक सिर की कीमत पर भी एक पेड़ को बचा लिया जाए तो भी बुरा नहीं है।

गुरू जम्भेश्वर पर्यावरण संरक्षण शोधपीठ एवं जयनारायण विश्व विद्यालय जोधपुर के संयुक्त तत्वावधान में विश्व पर्यावरण दिवस (2021) पर आयोजित बेवीनार में डॉ. वन्दना शिवा (पर्यावरण विद्) ने कहा कि ''वृक्षों की रक्षा के लिए हम सभी को अमृतादेवी बनना होगा।''

आधार ग्रन्थ सूचि :-

1. पर्व, परम्पराएँ और पर्यावरण – डॉ. ओ.पी. जोशी, डॉ. किशोर पंवार।
2. कल्पवृक्ष जैसा एक वृक्ष – अशोक राही – सहारा समय 2008
3. प्राकृतिक सम्पदा के रक्षक – जलते दीप, जोधपुर 6 अगस्त 1991
4. पर्यावरण रक्षक समाज – डॉ. हरिशंकर त्रिवेदी एवं आशा बोथरा, राजस्थान पत्रिका, जोधपुर 26 अगस्त 1990
5. प्रकृति से प्यार करो – महेन्द्र सिंह लालस, राजस्थान पत्रिका, जोधपुर 30 अप्रेल 2006
6. तपते रेगिस्तान में भी हरा–भरा रहता है ये पेड़–डॉ. किशोर पंवार दैनिक भास्कर रसरंग, 23 फरवरी 2020
7. मरूधरा का गौरव : श्री बालीजी – राजेन्द्र कृष्ण जोशी ''फोजी''।
8. विश्नोई पंथ और साहित्य – डॉ. बनवारी लाल साहु।
9. वृक्ष रक्षा और खेजड़ली बलिदान – डॉ. बनवारी लाल साहु।
10. वैविध्यपूर्ण भारतीय संस्कृति एक अवलोकन – डॉ. धीरजसिंह।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 369-370
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृष्ण बलदेव वैद के नाटकों में चित्रित वृद्ध समस्या

–डॉ. कार्तिका.एस.के

असिस्टन्ट प्रोफेसर, नॉनजिल कॉतोलिक कॉलेज आफ आट्र्स आण्ड साईन्स
वी.आर.भवन निरप्पुकोणम्, उरूट्टम्बलम, तिरुवनन्तपुरम, केरला–695507

बहुमुखी प्रतिभावाले कृष्ण बलदेव वैद जी हिंदी साहित्य का सशक्त हस्ताक्षर है। उनका रचना–संसार बहुत विस्तृत है। उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, अनुवाद, आलोचना, साक्षात्कार आदि अनेक विधाओं में उनकी गति रही है। वैद जी का व्यक्तित्व अपने आंच में तपे व्यक्तित्व है। वैद जी ने कुल आठ नाटक लिखे– भूख आग है (1998), हमारी बुढ़िया (2000), सवाल और स्वप्न (2001), परिवार अखाडा (2002), मोना लिज़ा की मुस्कान (2003), कहते हैं जिसको प्यार (2004), अन्त का उजाला (2012), पार्क के पीर (2015)।

वैद जी अपने नाटकों के द्वारा मानवजीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। प्रतिदिन बढ़ती हुई व्यक्ति की निराशा, संवेदन शून्यता आदि को वैदजी ने अपनी रचना का विषय बनाया। मानव अपने जीवन में अकेलापन, निराशा, कुंठा आदि से त्रस्त होकर जीते हैं। उनको कहीं से सहारा नहीं मिलेगा तो ज़िंदगी अस्तव्यस्त हो जाएगी। यही वैदजी अपने नाटकों के द्वारा समाज को दिखाना चाहते हैं।

एक मनुष्य अकेलापन, निराशा, कुंठा आदि से ग्रस्त होकर जीनेवाला समय वृद्धावस्था ही है। वैद जी के नाटकों में हमारी बुढ़िया, अन्त का उजाला आदि में वृद्ध जीवन में गुज़रनेवालों की कई समस्यायें प्रस्तुत किया है।

'हमारी बुढ़िया' में प्रस्तुत वृद्ध जीवन की समस्याएँ :–

हमारी बुढ़िया में गठरी लेकर बैठी हुई एक बुढ़िया का चित्रण है। गोद में अपनी गठरी लेकर एक खंडहर के चबूतरे पर पड़े पलंग पर बैठती है। वह गांव में रहती थी लेकिन अपने बच्चे जो शहर में आ गये थे उनकी खोज में वह इस अनजान शहर में फटक रही है। माता–पिता छोटी आयु में हमें पाल पोसकर बड़े बनाते हैं। अपनी गलतियों को समझाते हैं। लेकिन बच्चे बडे हो गया तो मां–बाप की गलतियों को क्षमा करना नहीं जानते। वह किसी भी तरह उन्हें अपनों से दूर कराते हैं। उस बूढ़ी माँ के प्रति कई तरह की सवाल जवाब उडता है। पहला सवाल यह था कि यह कौन है? उसका वहाँ बैठने के कारण का वे लोग अनुमान करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि उस बुढिया का सारा सामान इस गठरी में ही होगी। उस गठरी क्या है इसका भी कई अनुमान होता है।

इसी तरह की वार्तालाप के बीच वे यह भी सोचते हैं अगर वह हमारी माँ है? सच में वे लोग यह भी नहीं जानता है कि अपनी माँ घर पर है या नहीं। यही आज की स्थिति है। हमारे अपनों के बीच में क्या हो रहा है यह भी हम नहीं जानते हैं। हम सब भागते हैं पैसे के पीछे। वैद जी ने हमारे अस्त–व्यस्त शहरी सडक के किनारे

खंडहर में पडी पलंग पर एक गठरी लेकर बैठती बुढ़िया के माध्यम से आधुनिक सामाजिक समस्याओं का प्रस्तुतीकरण किया है। वृद्धावस्था सबके पास आनेवाली अवस्था है यही सोचकर हम सतर्क रहना चाहिए।

'अन्त का उजाला' में प्रस्तुत वृद्ध जीवन की समस्याएँ :-

अन्त का उजाला 2012 में वैद जी द्वारा लिखित नाटक है। प्रस्तुत नाटक में बूढापे में ठहरे पति–पत्नी की मनोदशा को एक अनौपचारिक भाषिक उपक्रम में व्यक्त करता है। बच्चे अपने–अपने कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं तब बूढ़े माँ–बाप की याद भी न करते। प्रस्तुत नाटक में पत्नी हमेशा अपने बच्चों का फोन या ईमेल करने केलिए वृद्ध पति को मज़दूर करती है। लेकिन वह कहता है :–

"मेरा मन न करता।
जब मेरा मन कहेगा तब करूँगा।"[1]

नाटक में मियाँ–बीवी द्वारा बूढे माँ–बाप का चित्रण है। बूढ़ापे में अपने बच्चों का प्रेमपूर्ण व्यवहार उनके लिए अंधेरे की रोशनी ही है। लेकिन बच्चे कभी न समझ पाता है। मियाँ और बीवी अपने अंत की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मियाँ कहता है :–

"अब हो ही क्या सकता है
अंत के अलावा।"[2]

दोनों अपने जीवन आगे बढाने के लिए कहानियाँ कहते हैं। हर समय एक ऐसी कहानी मियाँ बीवी को सुनाती है उसमें कुछ न कुछ जोड़ता रहता है। उसमें ज़िंदगी आगे बढाने की क्षमता भी है। आजकल दवाओं के कारण आगे बढने वाली ज़िदगी का इशारा भी है। वह कहती है :–

"बूढ़ापे लम्बे होते जा रहे हैं
नई–नई दवाओं के कारण ...।"[3]

अंत तक वे किसी की प्रतीक्षा करती रहती है। अंत में स्वयं अपने को समझने के लिए मियाँ कहता है–

"तो हम मान लेंगे वे हम से ऊब गये।
और अब हम दोनों को उनके बगैर जीना मरना है।"[4]

इसी तरह वास्तविकता को स्वीकार करने केलिए वे लोग तैयार हो जाते हैं।

वृद्धावस्था ऐसी एक दशा है उसी अवसर में हम सबको अपने ही पास चाहते हैं। लेकिन हमें अपने बच्चों के पीछे जाना पड़ेगा। ऐसे जाने वाले लोगों की दशा ही वैद जी हमारी बुढिया की बुढिया के द्वारा दिखाता है। अपने बच्चों की राह देखकर चुपचाप अखिरी साँस की इंतज़ार में रहने वाले अनेकों के प्रतीक के रूप में अन्त का उजाला के दम्पतियों को चित्रित किया है। हम आगे की पीढी ऐसा न होना चाहिए। हमें संभालने वाले माँ–बाप को संभालने की क्षमता हमेशा हमें होना चाहिए।

सहायक ग्रंथ सूची :-

1. अन्त का उजाला – कृष्ण बलदेव वैद पृष्ट सं 16
2. अन्त का उजाला – कृष्ण बलदेव वैद पृष्ट सं 20
3. अन्त का उजाला – कृष्ण बलदेव वैद पृष्ट सं 68
4. अन्त का उजाला – कृष्ण बलदेव वैद पृष्ट सं 106
5. हमारी बुढिया।

फोन 9633398456

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 371-378
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्त्री अस्मिता के नए पहलू (सन्दर्भ- 'क्वीन')

-डॉ. मनीषा अरोड़ा

श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

इस शोध–आलेख की केंद्रिय समस्या पर बात करने से पूर्व, यह स्पष्ट करना जरूरी है कि यहाँ स्त्री–अस्मिता के नए पहलू का यह अर्थ कतई नहीं है कि यह स्त्रीवाद की विभिन्न शाखाओं से अलग कोई नई चीज है। दरअसल यहाँ नए पहलू से आशय स्त्रीवाद की विभिन्न शाखाओं के अंतर्विरोधों और सीमाओं की चर्चा करते हुए 'अस्मिता' की तलाश को नए ढंग से देखने–समझने से है। स्त्रीवाद की दर्जन–भर शाखाएँ मूलतः 'उदारवादी' और 'उग्रवादी नारीवाद' का ही विस्तार है। इसमें भी आज 'रेडिकल फेमिनिज्म' के इर्द–गिर्द ही अस्मितावादी बहसें चल रही है। 'स्वायत्त स्त्री' इसकी केन्द्रीय परिकल्पना है, जो स्वजीवन में अपने चयनित रास्ते पर आगे बढ़ती है। स्त्रीवाद की यह शाखा स्त्री–केन्द्रित परिवार–व्यवस्था, आर्थिक स्वावलंबन, चयनित एवं स्वायत जीवन, अपनी देह पर अपना अधिकार, चयनित प्रजनन का हक तथा पुरुषवादी यौनता के नकार को अपने केन्द्रीय मूल्य के रूप में प्रस्तावित करती है।

अगर हम स्त्रीवाद को परिभाषित करने के विभिन्न प्रयासों को टटोलें, तो पाते हैं कि 'नारीवाद का विश्वकोश' के अनुसार "नारीवाद समाज द्वारा प्रवृत्त दोहरे दर्जे के व्यवहारों के विपरीत उद्‌भूत स्त्रियों की वैचारिक प्रतिक्रिया है।"[1] 'पेंग्विन डिक्शनरी ऑफ़ सोशियोलॉजी' में बताया गया है कि "नारीवाद उस वैचारिक दर्शन का नाम है, जो आधुनिक समाज में स्त्री व पुरुषों को समान अधिकार देने की मांग करता है।"[2] ई. पोर्टर ने अपनी किताब 'विमेन एंड मोरल आइडेंटिटी' में नारीवाद को "यौन–अस्मिता के कारण स्त्रियों के साथ होने वाली समस्त प्रकार की उपेक्षा, उत्पीड़न, असमानता और अन्याय से मुक्ति का रास्ता खोजने का वैचारिक दर्शन "[3] बताया है। यह बताने की ज़रूरत नहीं कि इन परिभाषाओं में कहीं अव्याप्ति दोष है तो कहीं अतिव्याप्ति। कुल मिलाकर देखें तो यह विमर्श पुरुष–प्रभुत्व के इर्द–गिर्द निर्मित समस्त सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संरचनाओं को ध्वस्त करने की प्रस्तावना करता है।

इस ध्वंस को अनिवार्य मानते हुए स्त्रीवादी आलोचक सुधा सिंह लिखती हैं– "स्त्रीवादी साहित्यालोचना का लक्ष्य है समाज में पुंसवादी प्रभुत्व की समाप्ति करना। ऐसा करने के लिए उसे संस्कृति की संरचना को ध्वस्त करना होगा, जिसमें हम जानते हैं कि कलाएँ आती हैं, धर्म आते हैं, इसके क़ानून आते हैं, वे सभी इमेज, संस्थाएँ, संस्कार और आदतें आती हैं, जो यह बताती हैं कि औरतें किसी काम की नहीं होतीं, अर्थहीन हैं, अदृश्य पीड़ित हैं।"[4] स्त्रीवाद से सम्बद्ध इन मतों के बरक्स मेरे जैसे नए पाठक के लिए यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो उठता है कि क्या समग्र ध्वंस ही एकमात्र विकल्प है? सभ्यता के चक्र को उलटकर क्या पुनः शून्य से आरम्भ किया जाए? एक सवाल यह भी उठता है कि क्या स्त्रीवाद उपर्युक्त मतों से परे जीवन जीने का एक ढंग भी है? समाज–

निर्मित लिंगभेद को खारिज करने के क्रम में क्या यहाँ 'सहजीवन की कामना' के लिए कोई स्पेस है? अस्मिता की इस तलाश का प्रस्थान–बिंदु पितृसत्ता का विरोध होगा या पुरुष–विरोध? एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि अपनी पहचान का सारा संघर्ष 'स्व' से बाहर है या उसके भीतर भी है? प्रस्तुत आलेख में मेरा प्रयास है कि स्त्रीवाद की विभिन्न शाखाओं में स्त्री–अस्मिता को जिन रूपों में देखा और व्याख्यायित किया गया है, 'क्वीन' स्त्री–पहचान की उन व्याख्याओं से किस रूप में भिन्न व आगे है, इसे समझा जाए।

जहाँ तक हिंदी सिनेमा में स्त्री–अस्मिता के प्रश्नों और उसके जीवन–सरोकारों की अभिव्यक्ति का मसला है, यहाँ हमें दो ध्रूवांत दिखाई पड़ते हैं। हिंदी सिनेमा ने अपने अधिकांश में एक तरफ 'भीगी–भागी लड़की' को सिल्वर स्क्रीन पर प्रोजेक्ट किया है तो दूसरी ओर 'सुपर वुमन' को। हालाँकि, किसी जल्दबाजी में इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता कि हमारा सिनेमा अपने अधिकांश में स्त्री–विरोधी है, किन्तु वह 'टाइप' गढ़ने की प्रवृत्ति से मुक्त नहीं रहा है। 'हंटरवाली' से लेकर 'मदर इंडिया', 'पाकीज़ा' 'उमराव जान' तक टाइप गढ़ने और 'ब्लैक एंड वाइट' के सांचे में प्रोजेक्ट करने की पुनरावृत्ति दिखाई देती है।

इक्कीसवीं सदी में हिंदी सिनेमा का परिदृश्य भी बदला है और तमाम सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक मंचों पर स्त्री की उपस्थिति व भागीदारी भी बढ़ी है। इसी परिदृश्य की उपज है– 'फायर', 'डोर', 'फ़ैशन', 'सात खून माफ़', 'मातृभूमि' आदि। फिल्मों की इस सूची के साथ कोई दर्शक/पाठक 'क्वीन' को भी रख सकता है, किन्तु मैं विकास बहल की 'क्वीन' को इस सूची में इसलिए नहीं रख रही, क्योंकि स्त्री–चरित्र और उसकी भावनाओं–आकांक्षाओं के साथ बिल्कुल अलग ढंग का ट्रीटमेंट है यहाँ। यह फिल्म स्त्री–चरित्र के तक़रीबन सभी प्रचलित मानकों का अतिक्रमण करती है। फिल्म की नायिका न तो पारंपरिक अर्थों में विद्रोहिणी है, न ही उन अर्थों में समाज–व्यवस्था से पीड़ित, जैसे कि 'मदर इंडिया', 'उमराव जान', 'फ़ायर' आदि की नायिकाएँ हैं। क्रमशः विकसित होते इस चरित्र में किसी तरह का 'टाइप' नहीं ढूँढा जा सकता।

ऐसा लगता है जैसे इस चरित्र का विकास और इसकी नियति, दोनों ही पूर्वनिर्धारित नहीं है। मेरी समझ में स्त्री–केन्द्रित सिनेमा के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण व नया पहलू है। एक मध्यवर्गीय पंजाबी परिवार की लड़की, जो अपने विवाह के लिए बेहद उत्साहित है। जो यह यह मानती है कि लड़की को विवाह से एक दिन पहले घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए। जिसके लिए छोटी स्कर्ट पहनना और वेंकटेश्वर कॉलेज के लड़कों को घूरना चारित्रिक पतन का पर्याय है। जो विवाह के लिए मना करने वाले अपने मंगेतर के सामने गिड़गिड़ाती है। राजौरी गार्डन की इस लड़की में विद्रोहिणी की छवि दूर–दूर तक नहीं दिखाई पड़ती। दरअसल यह फिल्म की कमजोरी नहीं, उसकी ताकत है। एक आम मध्यवर्गीय लड़की की प्रतिक्रिया ऐसी स्थिति में वही होगी जो रानी की थी। फार्मूलाबद्धता से अलग, कहानी के साथ यह निर्देशक का यथार्थवादी ट्रीटमेंट है। इसलिए स्त्री–विमर्श के पारंपरिक टूल्स से इसे समझने में मुश्किल हो सकती है।

यह लेखक–निर्देशक की उपलब्धि है कि वह फिल्म के इस मोड़ पर स्त्री–चरित्र को 'टाइप' में परिणत होने से बचा ले जाता है। यहाँ दो तरह के टाइप की संभावनाएँ थीं, पहली यह कि एक बेबस, लाचार, जार–जार आँसू बहाने वाली मध्यवर्गीय लड़की का सांचा गढ़ा जाता, दूसरी संभावना थी उसे विद्रोहिणी के सांचे में ढालने की। मज़ेदार बात यह है कि ये दोनों ही परिणतियाँ यथार्थ–विरोधी नहीं होतीं। किन्तु इसके बरक्स 'क्वीन' की रानी अकेले हनीमून पर जाने की इच्छा व्यक्त करती है। निर्देशक ने यहाँ भी यह सावधानी बरती है

कि नायिका का यह कदम स्वाभाविक लगे, न कि 'सुपर वुमन' की छवि गढ़ी जाए। टाइप को तोड़ना एक बात है और टाइप होने से बचना दूसरी बात। यह दूसरी बात अस्मिता की बहस को एक नया पहलू देती है।

अस्मिता–विमर्श की एक बड़ी सीमा यह है कि यहाँ बहसें अंतिम छोरों पर होती रही हैं। इस सन्दर्भ में स्त्रीवादी लेखिका प्रमीला के.पी. का मत है कि "पुरुष को 'अतिपुरुष' बनाने के क्रम में कई रचनाएँ स्त्री को 'अतिस्त्री' भी बना देती हैं।"[5] इस तरह के 'हादसे' रमणिका गुप्ता से लेकर मैत्रयी पुष्पा, प्रभा खेतान आदि की आत्मकथाओं में खूब हुए हैं। पितृसत्ता–विरोध और पुरुष–विरोध के अंतर की पहचान यदि अस्मिता–विमर्श के प्रस्थान–बिंदु पर नहीं की गई, तो इस तरह के हादसे होते रहेंगे। इस अंतर की सटीक पहचान 'क्वीन' की एक उपलब्धि है। यहाँ हमारा साक्षात्कार एक नए ढंग के पिता से होता है, जो अपनी अविवाहित बेटी को अकेले हनीमून पर न सिर्फ जाने देता है, बल्कि स्वयं उसे एयरपोर्ट छोड़ने आता है। यह वह पिता है, जिसके भीतर का पुरुष रिस गया है, बचा रह गया है सिर्फ पिता। पवन करण की कविता 'एक खूबसूरत बेटी का पिता' को यहाँ याद कर सकते हैं –

"सिर्फ भय ही नहीं एक खूबसूरत बेटी का पिता होने का
जो उल्लास होना चाहिए मेरे भीतर
वह मेरे भीतर है और दोगुना है
फिर भी मेरी चिंता में मेरी बेटी की खूबसूरती
शामिल है और शामिल है यह दृढ़ता
यदि इस सबके बावजूद भी उससे कोई गलती होती है तो हो जाए
उसके पीछे उसे उबारने के लिए मैं खड़ा हूँ तत्पर।"[6]

'ऑनर किलिंग' वाले समय में पिता का यह चरित्र हमारे पुरुष–समाज के भीतर निरंतर घटित होने वाले उस परिवर्तन का सूचक है, जिसे अस्मितामूलक विमर्शों की राजनीति अपने पूर्वाग्रहों के कारण नकारती रही है।

यह फिल्म अस्मिता–विमर्श के जिस अगले महत्वपूर्ण प्रश्न से टकराती है, वह है वर्जनाओं से मुक्ति का प्रश्न। 'मैंने होठों से लगाई तो हंगामा हो गया', इस गीत के साथ रानी अपनी मध्यवर्गीय वर्जनाओं से बाहर निकलती है। यहाँ यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि वर्जनाओं से मुक्ति का यह संघर्ष अनिवार्यतः अपने से बाहर होगा, या अपने भीतर भी होगा। फिल्म में अपने भीतर के संघर्ष को अधिक महत्व दिया गया है। स्त्रीवादी चिन्तक जूलिया क्रिस्तोवा का मत है कि "वर्जनाएँ बाहर से आरोपित होती हैं, किन्तु पीढ़ी दर पीढ़ी इसकी निरंतरता स्त्री के 'इनर सेल्फ' को 'हाइजैक' कर लेती है। अतः वर्जनाओं से बाहर आने के लिए स्त्री को पहला मोर्चा अपने भीतर लेना पड़ता है और इस मोर्चे पर सबसे ज़रूरी हथियार है स्त्री का आत्मविश्वास।"[7] डिस्कोथेक में मुक्त होकर नाचती रानी के चेहरे पर पीड़ा और आत्मविश्वास का जो मेल दिखाई देता है, वह इसी भीतरी संघर्ष की परिणति है। 'गुड गर्ल–सिंड्रोम' से बाहर आने की यह प्रक्रिया दरअसल व्यक्तित्व के पुनःनिर्माण की प्रक्रिया है। एक पारंपरिक मध्यवर्गीय लड़की अपने भीतर और बाहर जूझते हुए क्रमशः यहाँ तक पहुँचती है।

फिल्म में वर्जनाओं से मुक्ति के बाह्य आधार भी हैं। मुक्त होकर नाचना, व्यक्तित्व की चरम मुक्ति और चरम आनंद की अवस्था है, अपनी सुध खोकर अपने को पाने का आनंद, जो बेहद करीब है ऑर्गेज़्म के। स्वाभाविक है कि पितृसत्ता में इसकी वर्जना होगी। फ्लैशबैक के जरिए यह दिखाया जाता है कि मंगेतर विजय को रानी का

नाचना कतई गवारा नहीं। उसका संवाद है– 'तुम पागलों की तरह नाच रही थी, मेरी इज्ज़त का तो ख्याल कर लेती।' जैसे ही स्त्री इज्ज़त के इस आरोपित बोझ को उतार फेंकती है, वह मुक्ति की ओर बढ़ जाती है। नैंसी मिलर लिखती हैं– "पितृसत्ता हमारी मूल प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर निर्णायक पराधीनता को जन्म देती हैं।"[8] भय, भूख और काम की तरह आनंद के क्षणों का नृत्य भी मनुष्य की सहजात वृत्ति है। विकास बहल ने इस फिल्म में स्त्री के नाचने के दृश्य का एकाधिक बार बेहद ही सृजनात्मक व प्रतीकात्मक फिल्मांकन किया है। नाचना, वर्जनाओं से मुक्ति की अभिव्यक्ति है, जीत की अभिव्यक्ति है।

ऐसे ही 'लिप–टू–लिप किस' हिन्दुस्तानी लड़की के लिए एक बड़ी वर्जना है। फिल्म के तीन–चौथाई से अधिक हिस्से तक यह वर्जना बनी रहती है, फिर टूटती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि निर्देशक ने विद्रोह की पूर्वनिर्धारित भाव–भंगिमा से इस प्रसंग को भी बचाया है। रानी का पहला चुम्बन कोई प्रतिशोधात्मक कार्रवाई नहीं है, वह ऐसा करती है, क्योंकि वह ऐसा करना चाहती है। यहाँ चुम्बन के लिए संबंधों के ताने–बाने या किसी नैतिक आधार की ज़रूरत नहीं पड़ती। इस दृश्य के फिल्मांकन में कुछ भी सेंसेशनल–सेंसुअल नहीं है। अब आप हिंदी की स्त्री–आत्मकथाओं के ऐसे प्रसंगों को याद करें, नया पहलू साफ़ नज़र आएगा।

ऐसे ही पब्लिकली डकार लेना स्त्री के लिए एक वर्जना है। रानी जब कहती है– 'हमारे यहाँ, इंडिया में तो लड़कियों का डकार लेना भी मना है', तो उसकी मासूमियत से भरी इस संवाद अदायगी में पीढ़ियों का दर्द चेहरे पर सिमट आता है। डकार पर पाबन्दी 'नेचर्स कॉल' पर पाबंदी जैसा है और इस पाबंदी को दो लड़कियाँ हँसते–खिलखिलाते हुए जी भर कर तोड़ती हैं। रानी और विजयलक्ष्मी का जानबूझकर बार–बार डकार लेना, सिर्फ वर्जनाओं को तोड़ना भर नहीं है, यह उन वर्जनाओं का उपहास भी है। फिल्म की यह सबसे बड़ी खूबसूरती है कि यहाँ मुक्ति के क्रांतिकारी तेवर और पितृसत्तात्मक निर्मितियों के ध्वंस के बड़े दावे नहीं हैं। छोटी–छोटी डिटेल्स में मुक्ति के सन्दर्भ खुलते चले जाते हैं। ऐसा ही एक सन्दर्भ है स्त्री के गाड़ी चलाने का। एक लड़की अनजान शहर में, एक हाथ में स्टीयरिंग, दूसरे हाथ में एम्स्टर्डम का नक्शा, पीछे की सीट पर बेहोशी की हालत में पड़े उसके तीन पुरुष मित्र, स्त्री के आत्मविश्वास और उसकी मुक्ति का अद्‌भुत चित्र है यह, जो ख़ामोशी से परदे पर उभरता है, मुक्ति के नारों के शोर के बिना। यहाँ एक और नया पहलू यह है कि अस्मिता–विमर्श ने बाज़ार और तकनीक को निरंतर स्त्री–विरोधी बताया है। गैस चूल्हे से लेकर कार के पावर स्टीयरिंग तक, तकनीक के दूसरे, कहीं अधिक मानवीय पक्ष से हमारा परिचय कराते हैं। स्त्री–मुक्ति में तकनीक के मूल्यांकन के लिए एक पूर्वाग्रह रहित दृष्टिकोण ज़रूरी है।

वर्जनाओं से मुक्ति का सन्दर्भ प्रकारांतर से देहमुक्ति से जुड़ता है। देहमुक्ति के तीन सन्दर्भ हैं फिल्म में। पहला रानी से सम्बद्ध है, जिसकी चर्चा हम कर चुके। दूसरा सन्दर्भ पेरिस में रानी की दोस्त बनने वाली विजयलक्ष्मी से जुड़ा है। होटल स्टाफ विजयलक्ष्मी एक आत्मनिर्भर आधुनिक स्त्री है। सेक्स और देह की वर्जनाओं से मुक्त, जिसे बच्चे पैदा करने के लिए पति की ज़रूरत नहीं। जिसका सुख निर्भर नहीं करता पुरुष के दान पर। सिमोन ने लिखा है– "स्त्रियों को तो वही मिला, जो पुरुषों ने इच्छा से देना चाहा। इस स्थिति में भी पुरुष दाता के रूप में और स्त्री ग्रहीता के रूप में हमारे सामने आई है।"[9] 'क्वीन' की विजयलक्ष्मी ने ग्रहीता की अपनी भूमिका को अस्वीकार कर दिया है। जॉन स्टुअर्ट मिल ने भी इस तथ्य को रेखांकित किया है कि "अपने सुख के लिए पुरुषों पर निर्भरता स्त्री को कमोडिटी के रूप में रिड्यूस करती है।"[10] आर्थिक स्वावलंबन

इस देहमुक्ति का प्रमुख आधार है, जिसकी चर्चा बारबरा कुक ने की है– "देह अपनी तभी हो सकती है, जब अपने पैर उसका बोझ उठाने में सक्षम हों। यहाँ स्त्री के सामने दो विकल्प होते हैं– पहला, सांचे के आसानीपन का स्वीकार और दूसरा, उसका नकार।"[11] यह नकार ही देहमुक्ति की पूर्वपीठिका है।

फिल्म में देहमुक्ति का एक तीसरा सन्दर्भ रुख़्सार उर्फ़ रोक्सेट के चरित्र से जुड़ा है। उन्नत देशों के चमकते बाज़ारों ने देहमुक्ति के नारे के साथ तीसरी दुनिया की औरतों को अपनी ओर आकर्षित किया है। लेकिन मुक्त करने की जगह वह स्त्री को 'सर्विस प्रोवाइडर' की भूमिका में सीमित कर देता है। रिसेप्शन और मसाज पार्लर से लेकर ब्रोथल्स तक स्त्री, देह–बाज़ार की कमोडिटी का रूप में सीमित हो जाती है। यह स्त्री की देहमुक्ति नहीं, उसका पण्यीकरण है। हम देखते हैं कि जहाँ विजयलक्ष्मी की देहमुक्ति चयनित है, उसका आधार उसके व्यक्तित्व में है, वहीं ग्रेजुएट पाकिस्तानी लड़की पर यह बाहर से आरोपित है, जिसका आधार उसकी पारिवारिक–आर्थिक हैसियत और 'रिसेशन' का दौर है। यहाँ एक और नए पहलू को उभारने में निर्देशक सफल हुआ है। रानी के लिए देह–मंडी एक असहज करने वाली जगह है, किन्तु जिस ढंग से वह रुख़्सार के दर्द से जुड़ती है, उसके साथ नाचती है, उस सहज आत्मीयता में स्त्रीवाद के दायरे विस्तृत होते हैं।

देहमुक्ति का एक सन्दर्भ 'मातृत्व' के प्रश्न से भी जुड़ता है। जिसको यह फिल्म 'साइलेंटली' हमारे सामने रख देती है। हिंदी के स्त्री–लेखन और सिनेमा में अब तक इस पर बहस की विशेष गुंजाइश नहीं बनी है। जहाँ इसकी चर्चा है भी, वहाँ इसके प्रति अभिभूत होने और इतराने का भाव ही प्रबल है। सारा कोफ्मान के अनुसार "परंपरागत अर्थ में इस तरह इतराना मातृत्व को पुरुषाधिकार के लिए शोषण का औज़ार बनाता है।"[12] सिमोन ने भी मातृत्व से मुक्ति पाने का आह्वान किया था, क्योंकि उनके अनुसार, वही स्त्रियों पर सबसे अधिक दबाव डालने वाली जैविक स्थिति है। लूइस इरिगरे इसके शोषणमूलक पक्ष से जुड़े मानसिक अनुकूलन पर बात करती हैं– "माता कौन है ? तयशुदा निष्कर्षों के अनुसार कार्य करने वाली, जिसकी अपनी कोई भाषा या अस्मिता नहीं होती? .....एक वाक्य में कहें तो हमें अपने साथ, समस्त माओं को मुक्त कर देना चाहिए। पितृत्व के वर्चस्वों से मुक्ति पाने के लिए यह एक अनिवार्य पूर्वशर्त है।"[13] फिल्म में इसके सन्दर्भ दो बार आते हैं। पहली बार, जब रानी अपनी विवाहित दोस्त सोनल से फ़ोन पर बात कर रही होती है। सोनल कहती है– 'तू पेरिस में मज़े कर, मैं बच्चे की पॉटी धोने जा रही हूँ।' दूसरा सन्दर्भ है, विजयलक्ष्मी के मातृ–रूप का। 'सिंगल मदर' के रूप में यहाँ मातृत्व के महिमामंडन की तमाम संभावनाएँ थीं, जिससे निर्देशक ने फिल्म को बचाया है और बहस के लिए एक नया पहलू हमारे सामने रखा है।

'यूनिवर्सल सिस्टरहुड' आज के स्त्री–विमर्श का महत्वपूर्ण सन्दर्भ है, जिसकी परिधि का अभूतपूर्व विस्तार इस फिल्म ने किया है। एक मध्यवर्गीय लड़की को अपनी वर्जनाओं से बाहर निकलने में एक दूसरी स्त्री सहयोग करती है। पीड़ा से उल्लास तक की जो यात्रा रानी पेरिस में तय करती है, वह विजयलक्ष्मी की अनुपस्थिति में संभव नहीं था। 'वैश्विक बहनापे' की ज़रूरत को रेखांकित करते हुए सिमोन लिखती हैं– "स्त्री कहीं भी झुण्ड बनाकर नहीं रहती, वह पूरी मानवता का आधा हिस्सा होते हुए भी पूरी एक जाति नहीं। गुलाम अपनी गुलामी से परिचित है, एक काला आदमी अपने रंग से, पर स्त्री घरों, अलग–अलग वर्णों एवं भिन्न–भिन्न जातियों में बिखरी हुई है।"[14] फिल्म में यह बिखराव समाप्त होता है। आइफ़िल टावर को विजय के साथ देखना रानी का सपना था, जो पूरा होता है विजयलक्ष्मी के साथ। दो लडकियाँ एक–दूसरे की हथेली थामे अपने सपने को पूरा

कर रही हैं, कोई संवाद नहीं है, नेपथ्य में कोई संगीत नहीं है, बस दो स्त्रियों के उड़ान भरते उल्लासपूर्ण साबुत अस्तित्व हैं। इस दृश्य का क्राफ्ट शानदार है। विकास बहल यहाँ फिल्म को लाउड होने से बचाते हैं और यह 'दृश्य' पर भरोसे के कारण संभव हो सका है।

फिल्म का यह दृश्य 'लेस्बियनिज़्म' के एक नए पहलू को भी खोलता है। दीपा मेहता की 'फ़ायर' हो या विभिन्न भाषाओं का अधिकांश स्त्री–लेखन, लेस्बियनिज़्म को ज्यादातर 'दैहिक तादात्म्य' के स्तर पर ही देखा गया है। इसे स्त्री की यौन इयत्ता तक सीमित किया गया है। 'क्वीन' के इस दृश्य में भी इस सीमित दृष्टिकोण की संभावनाएँ थीं, संभवतः एक आम दर्शक की अपेक्षा भी इस दृश्य से इसी प्रकार की रही होगी, कमर्शियल दृष्टिकोण से भी यह फायदे का सौदा होता। निस्संदेह निर्देशक ने यहाँ एक परिपक्व दृष्टि का परिचय देते हुए लेस्बियनिज़्म का अर्थ–विस्तार कर दिया है। एड्रिन रिच के हवाले से इस अर्थ–विस्तार को रेखांकित करते हुए अनामिका लिखती हैं– "लेस्बियनिज़्म अपने मूल अर्थ में दैहिक तादात्म्य से कहीं ऊपर की चीज है। एड्रिन रिच ने इसे 'लेस्बियन कॉन्टिन्यूअम' (सखी भाव–परिविस्तार) के रूप में देखते हुए, इसका सम्बन्ध विश्व भर की महिलाओं के अन्तश्चेतनागत साहचर्य से जोड़ा है।"[15]

'यूनिवर्सल सिस्टरहुड' के जिस अर्थ–विस्तार की बात मैंने पहले की है, वह एम्स्टर्डम के दृश्यों में दिखाई देता है। एक मध्यवर्गीय लड़की डोरमेट्री में तीन लड़कों के साथ रहती है। तीनों उसके अनन्य मित्र बन जाते हैं। पेरिस में जो भूमिका विजयलक्ष्मी निभाती है, यहाँ उस भूमिका को टीम, ताका और ओलेक्जेंडर निभाते हैं। रानी की मुक्ति, उसके आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, उसके व्यक्तित्व के पुनःनिर्माण में इन तीनों युवाओं का योगदान उल्लेखनीय है। इन तीनों के साथ रानी का एम्स्टर्डम की सड़कों पर उड़ान भरना, रॉक शो में थिरकना यूनिवर्सल सिस्टरहुड को एक नया व अभूतपूर्व आयाम देता है। 'वैश्विक बहनापे' के दायरे में इससे पहले कभी पुरुषों को रखा गया हो, इसके उदाहरण कम से कम मुझे तो अब तक नहीं मिले। यह अकेला उदाहरण 'समग्र ध्वंस' के आह्वान को नकारने के लिए काफी है।

यहाँ स्त्री–अस्मिता के दायरे में एक और नया पहलू जुड़ता है। ताका, जो एक जापानी युवा है, एक परमाणु त्रासदी में अपने परिवार को खो चुका है, उसकी पीड़ा के साथ रानी के दर्द का जो तादात्म्य है, वह स्त्रीवाद के दायरे का विस्तार करता है। रानी द्वारा ताका को गले लगाना, दरअसल स्त्री–चिंतन की परिधि में दुनिया के तमाम उपेक्षित, शोषित, वंचित तबकों को समेट लेना है। स्त्री–चिंतन के इस परिधि–विस्तार की चर्चा करते हुए अनामिका लिखती हैं– "दुनिया के सारे अनादृत समूहों, गरीबों, दलितों, विकलांगों, बूढों को सहज भाव से स्त्रीवाद अपने आँचल में समेट रहा है, इस दृष्टि से विचार किया जाए तो स्त्री–मुक्ति में सबकी मुक्ति है।"[16] यहाँ जॉन स्टेनबेक के उपन्यास 'द ग्रेप्स ऑफ़ राथ' के एक प्रसंग का जिक्र किया जा सकता है, जिसमें भूखमरी का हृदयविदारक चित्रण है। एक औरत जिसने एक मरे हुए बच्चे को जन्म दिया है, जब वह एक अनजान आदमी को भूख से मरते हुए देखती है, तब उसे अपनी छाती का दूध पिलाकर उसकी जान बचा लेती है। यह है युद्ध और हिंसा के बीच शोषित–पीड़ित तबकों के प्रति स्त्री की प्रतिबद्धता, जिसमें उसकी वर्जनाएँ आड़े नहीं आती।

यहाँ दुनिया के चार अलग–अलग देशों के युवाओं की पीड़ा के तादात्म्य में एक और नया पहलू सामने आता है। भारत की रानी, जापान के ताका, रूस के ओलेकजेंडर और फ्रांस के टीम की मित्रता, राष्ट्रवाद की संकीर्ण खोल में निरंतर सिमटती जा रही दुनिया का एक प्रतिरोध भी है। हमें यह याद रखना चाहिए कि इस

सार्वभौमिकता को स्त्री–चिंतन ने हमेशा ज़रूरी समझा है।

स्त्री–अस्मिता का एक बिल्कुल नया पहलू फिल्म के आखिरी दृश्य में उभरता है। नायिका रानी एम्स्टर्डम से दिल्ली लौटकर अपने मंगेतर विजय से मिलती है, जिसने उसे 'रिजेक्ट' किया था, पर अब रानी के नए रूप 'क्वीन' से विवाह करना चाहता है। रानी उसे अंगूठी वापस करती है, 'थैंक यू' बोलती है, दो बार गले लगती है और मुस्कुराती हुई वापस निकल पड़ती है या कहना चाहिए, आगे बढ़ जाती है। 'स्त्री–विजय' के दृश्य के साथ ऐसा निर्देशकीय ट्रीटमेंट समूचे हिंदी सिनेमा में संभवतः कहीं और नहीं है। कोई प्रतिशोध नहीं, प्रतिक्रिया नहीं, आक्रोश नहीं। अनामिका का निष्कर्ष है कि "स्त्री–आन्दोलन प्रतिशोध पीड़ित नहीं है। .....स्त्री–आन्दोलन की समर्थक मानवीयाँ हैं, मादा ड्रैकुलाएँ नहीं। इन्हें न्याय चाहिए पर ये जानती हैं कि अन्याय का प्रतिकार अन्याय नहीं है, एक दमन–चक्र का जवाब दूसरा दमन–चक्र नहीं है। स्त्री आन्दोलन की समर्थक स्त्रियाँ पुरुष नहीं बनना चाहतीं।"[17] फिल्म के अंत में एक गीत है– 'किनारे हम हैं', 'हम' यानी स्त्री स्वयं। किनारे उसे अपने भीतर ही मिलते हैं, खुद को खुद के भीतर ढूँढने की प्रक्रिया में।

निर्देशक विकास बहल की 'क्वीन' स्त्री–अस्मिता के जिन नए पहलुओं को खोलती है, उसमें एक पहलू स्त्री की अपनी भाषा का भी है। स्त्री–भाषा को पाने की कोशिश हिंदी के स्त्री–लेखन में जारी है, पर अभी अपने मुकाम तक नहीं पहुँची है। भाषा लिंग–निरपेक्ष नहीं होती। साहित्य व कला के सभी क्षेत्र अब तक पुरुष–केन्द्रित भाषा व संरचना से परिचालित रहे हैं। फ्रेंच नारीवादी लूइस इरिगरे स्त्री–भाषा की ज़रूरत को रेखांकित करते हुए लिखती हैं– "एक बच्ची जब बोलना शुरू करती है, तब उसे खुद पर या खुद से बोलना संभव नहीं होता है। वह पुरुष–भाषा में सीमित रहती है और स्वाभिव्यन्जना से वंचित रह जाती है।"[18] फिल्म के आरंभिक दृश्यों में अपने मंगेतर के सामने गिड़गिड़ाती रानी की भाषा में हम यह सीमा देख सकते हैं। एड्रिन रिच ने ठीक लक्ष्य किया है कि "अपनी भाषा नहीं होने के कारण पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के पास पुरुष–निंदा के लिए शब्दावली नहीं है। जो अभिव्यक्ति–स्वरूप उपलब्ध हैं, वे स्त्री–निंदा के उपकरण हैं।"[19] इसलिए हिंदी साहित्य और सिनेमा में मर्दाना गालियों का स्त्री–पात्रों द्वारा प्रयोग आरंभिक समय की 'हाइजैकिंग' प्रवृत्तियाँ थीं। हालाँकि बदलते समय के साथ 'स्त्री–भाषा' की ज़रूरत को महसूस किया गया है।

वर्जिनिया वूल्फ ने सबसे पहले स्त्री–वाक्य को परिभाषित करने का प्रयास किया। भाषिक–संरचना के भीतर स्त्रीपक्षीय तत्वों के समावेश को उन्होंने मुख्य रूप से प्रतिपादित किया। उनके अनुसार स्त्री–भाषा में वाचन या पढंत को खोलने की संभावना होनी चाहिए, उसकी शैली आत्मा की कचोट को वहन करने वाली होनी चाहिए।[20] स्त्री–भाषा अनिवार्यतः 'मुक्ति की भाषा' होगी। वह वर्चस्व को नकारेगी। हेलेन सिक्सु लिखती हैं– "स्त्री का 'आत्म' उसकी अभिव्यक्ति में 'नग्न' होगा, उसकी भाषा 'नियंत्रण' में नहीं 'प्रवाहमयता' में पूर्णता प्राप्त करेगी। उस भाषा का आधार पूर्वनिर्धारित 'स्ट्रक्चर' का विरोध होगा।"[21] 'क्वीन' में रानी और विजयलक्ष्मी की भाषा में जो प्रवाहमयता है, किसी भी तरह के वर्चस्ववादी नियंत्रण का जो अभाव है, वही उनकी भाषा को 'मुक्ति की भाषा' बनाती है। स्त्री–भाषा का अभाव स्त्री–विषयों को पण्य बनाता है। हिंदी के एक प्रमुख प्रकाशन समूह के अनुसार 'सबसे ज्यादा पाठक हैं महिला रचनाकारों के।'[22] ऐसा इसलिए नहीं है कि स्त्री–सरोकारों में पाठकों की रुचि बढ़ गई है, ऐसा इसलिए है कि वहाँ जिस भाषा में स्त्री अपने 'आत्म' को खोलती है, उसमें पाठक को 'नग्नता' का आनंद भोगने की संभावना बनी रहती है। उदारीकृत युग के सिनेमा और साहित्य में यह खूब हुआ है। विकास

बहल ने अपने विषय को अगर कमोडिटी होने से बचाया है, तो इसका एक बड़ा श्रेय फिल्म की भाषा और उसके दृश्यांकन को भी जाता है।

समग्रतः हम कह सकते हैं कि 'क्वीन' अपने ढंग की एक अलग और अपने समय से थोड़ी आगे की सिनेमाई अभिव्यक्ति है। यह स्त्री–अस्मिता के मूल प्रश्नों से तो टकराती ही है, उसके नए पहलुओं को भी हमारे सामने खोलती है। स्त्री के देह–मन की नई समझ के साथ यह नए पुरुष से भी हमारा परिचय कराती है। एक तरफ यह स्त्रीवाद से सम्बद्ध विभिन्न सिद्धांतों का अर्थ–विस्तार करती है, तो दूसरी ओर दुनिया के समस्त वंचित–पीड़ित तबकों को स्त्री–आँचल में समेट लेती है। इस फिल्म का सबसे नया पक्ष यह है कि यहाँ स्त्री न विनयशीलता–आज्ञाकारिता की प्रतिमूर्ति है, न प्रतिशोध की धधकती भट्ठी। अपनी पहचान को अपने भीतर तलाशती, पाती और बाहरी संघर्ष के लिए तैयार होती एक मजबूत और साबुत स्त्री हमें फिल्म के अंत में मिलती है, जिसका आत्मविश्वास नया, पर लबालब है। परदे पर इस स्त्री का विकास क्रमशः होता है, चमत्कारिक ढंग से नहीं। क्रांति और मुक्ति के लाउड प्रोजेक्शन की जगह यहाँ परिवर्तन का एक मद्धम संगीत उभरता है– 'किनारे हम हैं।'

सन्दर्भ–ग्रन्थ :–

1. नारीवाद का विश्वकोष, पृष्ठ– 07
2. पेंग्विन डिक्शनरी ऑफ़ सोशिओलॉजी, पृष्ठ– 128
3. ई. पोर्टर, विमेन एंड मोरल आइडेंटिटी, पृष्ठ– 102
4. सुधा सिंह, जगदीश्वर चतुर्वेदी; कामुकता, पोर्नोग्राफी और स्त्रीवाद, पृष्ठ– 18–19
5. प्रमीला के. पी., स्त्री अध्ययन की बुनियाद, पृष्ठ– 133
6. पवन करण, स्त्री मेरे भीतर, पृष्ठ– 21
7. जूलिया क्रिस्तोवा, रेवोल्यूशन इन पोएटिक लैंग्वेज, पृष्ठ– 78
8. नैंसी मिलर, सब्जेक्ट टू चेंज : रीडिंग फेमिनिस्ट राइटिंग, पृष्ठ– 64
9. सिमोन दा बोउवार, स्त्री–उपेक्षिता, (अनु.– प्रभा खेतान), पृष्ठ– 25
10. जॉन स्टुअर्ट मिल, स्त्री और पराधीनता, (अनु.– युगांक धीर), पृष्ठ– 26
11. बारबरा कुक, वुमन राइटिंग नेचर : अ फेमिनिस्ट व्यू, पृष्ठ– 108
12. सारा कोफ़्मान, द एनिग्मा ऑफ़ वुमन इन फ्रायड्स राइटिंग्स, पृष्ठ– 83
13. लुइस इरिगरे, द इरिगरे रीडर, पृष्ठ–137
14. सिमोन दा बोउवार, स्त्री–उपेक्षिता, (अनु.– प्रभा खेतान), पृष्ठ– 19
15. अनामिका, स्त्री–विमर्श का लोकपक्ष, पृष्ठ–196
16. वही, पृष्ठ– 30
17. वही, पृष्ठ– 194
18. लुइस इरिगरे, स्पैकुलम ऑफ़ द अदर वुमन, पृष्ठ–179
19. प्रमीला के. पी., स्त्री अध्ययन की बुनियाद, पृष्ठ– 96
20. वर्जिनिया वूल्फ, अपना एक कमरा, पृष्ठ– 18
21. हेलेन सिक्सु, एस्केपिंग टेक्स्ट, पृष्ठ– 47
22. राजकमल प्रकाशन समाचार, अक्टूबर– 2011, पृष्ठ– 01

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 379-383
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शारीरिक अक्षमता से अभिक्षिप्त-किन्नर समुदाय : एक अध्ययन

-डॉ. समता जैन

सहा. प्राध्यापिका, श्री वैष्णव प्रबंध संस्थान, इन्दौर

शोध सारांश :-

आज विश्व भर में मानव समाज अस्मिताओं के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक सक्रिय है और यह बौद्धिक संचेतना का सुफल है कि विश्व समुदाय से होते हुए आज भारतवर्ष में भी तमाम वंचितों के अधिकारों की बात उठने लगी है, ऐसा ही उपेक्षित और वंचित समुदाय है – 'किन्नर (हिजड़ा) समुदाय।'

'साहित्य समाज का दर्पण है।' यह कथन शब्दशः सत्य साबित होता है क्योंकि साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों के निवारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। किसी भी वंचित इकाई को अपना हक और अधिकार दिलाने में भी साहित्य की अहम् भूमिका होती है परंतु किन्नरों पर हिंदी साहित्य जगत् में प्रचलित विमर्शों की तुलना में थोड़ा ही लेखन कार्य परिलक्षित होता है। हालांकि भारत का बुद्धिजीवी वर्ग निरंतर इस दिशा में भी प्रगति कर रहा हैं। विमर्शों के दौर में किन्नर विमर्श अपेक्षाकृत नया पड़ाव है। किन्नर समुदाय किस प्रकार शारीरिक अक्षमता का बोझ ढ़ोते हुए होते तिरस्कृत जीवन जीने के लिए विवश है। किन्नर समाज की प्रतिकूलताओं को इस अध्ययन में बखूबी बताने का प्रयास किया गया है। हाशिए पर रखें किन्नर समुदाय की जीवन की विडंबनाओं, विसंगतियों एवं विद्रूपताओं का अंकन करते हुए यह शोधालेख समाज को उनके (किन्नर समुदाय) अधिकार एवं हक दिलाने की पुरज़ोर वकालत करता है। यह शोध अध्ययन उन अनछुए पहलुओं पर भी चिंतन की नवीन दिषा प्रदान कर मानवीय संवेदनाओं को झंकृत कर उन्हें ''मंगलमुखी'' संज्ञा से सम्बोधित करने की प्रेरणा प्रदान करेगा।

कुंजी शब्द- उपेक्षित, किन्नर, हाशिए, समुदाय, तिरस्कृत।

प्रस्तावना :-

मानव समाज में दो प्रकार के प्रमुख लिंग देखे जा सकते हैं। एक तो पुरुष और दूसरा स्त्री। पर इससे भिन्न और एक वर्ग का अस्तित्व भी हमारे समाज में प्राचीन काल से विद्यमान है। जिसे समाज हमेशा एक घृणित एवं तिरस्कृत दृष्टि से देखता है। जो आज ट्रान्सजेंडर नाम से जाना जाता है। समाज की इस संकीर्ण मानसिकता के कारण यह 'लैंगिक विकलांग' वाला किन्नर समुदाय प्राचीनकाल से आज तक अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है। वर्तमान परिवेश में किन्नर समुदाय पर भी कतिपय बुद्धिजीवियों द्वारा खुलकर बेबाक राय व्यक्त की जा रही है। आज विश्व धरातल पर मानव के अधिकारों की चर्चा ने आंदोलन का रूप ले लिया है। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। यह बात आज के साहित्य के संदर्भ में भी अक्षरशः सत्य साबित होती है क्योंकि साहित्यकार सद्साहित्य के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं विकृतियों के निवारण

में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। भारत का बुद्धिजीवी वर्ग निरंतर उन सामाजिक समूहों के अस्तित्व और अधिकारों की दिशा में प्रगति कर रहा है। किसी भी वंचित इकाई को अपना हक और अधिकार दिलाने में भी साहित्य की अहम् भूमिका होती है। किन्नर विमर्श समकालीन साहित्य को एक दिशा की ओर ले जाता है। हिंदी साहित्य जगत् की बात करें तो किन्नर समुदाय के जीवन से जुड़ी विसंगतियों पर गद्य विधा उपन्यास साहित्य में अब तक आठ उपन्यास थर्ड जेण्डर में केन्द्रित प्रकाशित हो चुके हैं, जिसमें चार महिला कथाकारों द्वारा और तीन पुरुष कथाकारों द्वारा। जिनमें से समकालीन उपन्यासकारों में एक प्रतिभावान साहित्यकार हैं – श्री महेन्द्र भीष्म। 'मैं पायल' महेन्द्र भीष्म जी द्वारा लिखित उपन्यास है जिसमें 'किन्नर' वर्ग के जीवन की व्यथा को एक गीत के माध्यम से अभिव्यक्त किया है –

''अधूरी देह क्यों मुझे बनाया?
बता ईश्वर! तुझे यह क्या सुझाया?
किसी का ना प्यार हूँ, न वास्ता हूँ।
न तो मंजिल हूँ मैं, ना रास्ता हूँ।
कि अनुभव पूर्णता का हो न पाया।
अजब खेल यह रह रह धूप–छाया।''

इस तरह महेन्द्र भीष्म द्वारा रचित यह उपन्यास वस्तुपरक ढंग से बेहद गहराई से और पूरी पारदर्शिता के साथ किन्नरों के जीवन की दुखमय, त्रासद, पीड़ादायक और अमानवीय यातनाओं को बेबाक ढंग से हमारे सामने प्रस्तुत करता है। चूंकि यह जीवनीपरक उपन्यास है, अतैव कल्पना के इंद्रजाल इसके कथ्य में नहीं है, वहाँ तो एक किन्नर का भोगा हुआ कटु यथार्थ ही वर्णित है। 'मैं पायल' उपन्यास किन्नर समुदाय के जीवन के विविध अनछुए पहलुओं की ओर भी संकेत करता है। 2011 में प्रकाषित महेन्द्र भीष्म का 'किन्नर कथा' में हिजड़ों की विविध समस्याओं को उठाया गया हैं। किन्नर बच्चों की त्रासदी जन्म से ही आरंभ हो जाती है। परिवार उनका त्याग कर देता है। ऐसे बच्चों को विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। परंतु परिवार इन्हें कलंक मानता है। मां की ममता पर तो किसी ने प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया है परंतु ऐसे व्यक्तियों से माँ भी लोकलाज के भय से अपना संबंध उजागर नहीं करती है। निवेदिता झा अपनी कविता ''किन्नर'' में लिखती हैं कि –

''कोख तो तुम्हें भी जन्म देती है
अघोर प्रसव पीड़ा के बाद
पहली ही गोद तिरस्कार से फेर लेती है मुंह
मान गले से फिर भी लगाती है
सबसे राजदुलारे।''

किन्नर पीड़ा को बयां करने वाले महेन्द्र भीष्म के उपन्यास में एक माँ की ममता और दर्द को व्यक्त करने का एक मर्मस्पर्शी प्रसंग मिलता है – सोना उर्फ चंदा (किन्नर पात्र) के राज़ को उसकी जननी कई दिनों तक सबसे छुपा कर रखती है। लेकिन भेद प्रकट होने पर उसके पिता द्वारा उसे मारने का हुक्म दिया जाता है तो एक माँ की भावनाओं को अपने शब्दों में बांधकर भीष्म जी कहते हैं कि ''संतान कैसी भी हो, उसमें शारीरिक, मानसिक कमी क्यों न हो, माता–पिता को अपनी संतान हर हाल में भली लगती है, प्यारी होती है फिर भले ही

वह हिजड़ा ही क्यों न हो, फिर भी सामाजिक परिस्थितियाँ, खंडन की इज्ज़त–मर्यादा, झूठी षान के सामने अपने हिजड़े बच्चे से उसके जन्मदाता हर हाल में छुटकारा पा लेना चाहते हैं। यह कटु सत्य है।''

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महिला उपन्यासकारों में चित्रा मुद्गल एक ऐसा नाम है जो सदैव उपन्यास विधा के क्षेत्र में चर्चित रहता है। लेखिका चित्रा मुद्गल जी ने किन्नर विमर्ष पर ''पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा'' उपन्यास शीर्षक से किन्नर समुदाय की पीड़ा को पत्रात्मक शैली में प्रस्तुत कर साहित्य जगत में कीर्तिमान स्थापित किया है। यह उपन्यास किन्नर समुदाय को मनुष्य मानने और उनके प्रति सहज मानवीय संवेदना रखने का संदेष देता है। यह उपन्यास माँ–बेटे के पत्रों के माध्यम से जीते जी परिवार के लिए मर चुके युवक विनोद के व्यक्तित्व को नए ढ़ग से प्रस्तुत करता है। मुख्य पात्र विनोद जो समाज से दया करुणा की याचना नहीं करता अपितु अपने पैरों पर खड़े होने के लिए संघर्ष करता दिखाई देता है उसका मानना था कि–''जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है किंतु यह कोई ऐसी विकलांगता नहीं है कि अपनी मेहनत की रोटी इज्ज़त से न कमाई जा सके।'' किन्नर जीवन की संवेदनाओं और विड़म्बनाओं को अपनी शब्द राशि से पाठकों के सम्मुख रखते हुए लेखिका किन्नर वर्ग के लिए लिखती है कि – ''अपने श्रम पर जीओ; मनोरंजन की दक्षिणा पर नहीं। हिकारत की दक्षिणा जहर है, जहर तुम्हें मारने का, जहर तुम्हें समाज से बाहर करने का।''

यह उपन्यास चित्राजी की उनके (हिजड़ों) प्रति सहज मानवीय संवेदना तो प्रकट करता दिखाई देता है, लेकिन इससे कहीं यह प्रतीत नहीं होता कि वे थर्ड जेंडर या किन्नर विमर्श की अंधभक्त है। उपन्यास का नायक स्वयं ही किन्नर होकर किन्नर समुदाय की दुर्गति के लिए स्वयं किन्नरों को ही ज़िम्मेदार ठहराने का प्रयास करता है क्योंकि किन्नर बिरादरी मुख्यधारा हिजड़ों पर थोपे गए हिज्ज़गिरी के लक्षण से स्वयं को मुक्त करने के लिए हाथ पैर नहीं मानते। भीख के अपमानजनक पेशे को उतार नहीं फेंकते। इस उपन्यास में किन्नरों के अधिकार तथा मानवाधिकार के पक्ष को संवैधानिक रूप से लेखिका द्वारा बेबाकी से प्रस्तुत किया गया है। किन्नरों के वजूद तथा उनके जीवन की समस्याओं को लेकर लिखा गया यह उपन्यास साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत है।

सन् 2018 में अमन प्रकाशन कानपूर द्वारा प्रकाशित सुभाष अखिल कृत उपन्यास ''दरमियान'' में लेखक के अनुभव से उत्पन्न एक कहानी को बताया गया है। बालपन में लेखक को एक लड़के के द्वारा अपशब्द के रूप में 'तेरी माँ हिजड़ा है।' कह दिया गया था। और तब से लेखक के मन में हिजड़ा शब्द रहस्य बन कर उनके विचारों को उद्वेलित करके लगता है। परिणामस्वरूप विचारों के ऊहापोह से कुछ प्रश्न उठते हैं – जैसे ''उसने ऐसा क्यों कहा कि मेरी माँ हिजड़ा है? क्या होता है, हिजड़ा होना?.....क्या यह हमसे अलग होते होंगे? ''लेखक की इन तमाम प्रश्नों के उत्तर जानने की जिज्ञासा ही उन्हें किन्नरों के प्रति आकर्षित करती है और परिणामस्वरूप कहानी के पल्लवन से इस उपन्यास की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। किन्नर विषय पर लिखी गई इस कहानी को समकालीन साहित्यकारों ने हिंदी पहली कहानी माना।

लेखक ने इस कहानी को विस्तार पूर्वक पाँच शीर्षकों 'तारा और रेशमा की संगत', 'संजय से संध्या होने तक', 'जिस्म और ज़ज्बात का संतुलन', 'कातिल अदाओं का कत्ल' और कथा 'दया की दया का अंत' में प्रस्तुत करते हुए कथानक को आगे बढ़ाया और उपन्यास विधा में स्थापित किया है। जिसे हम संस्मरणात्मक उपन्यास की श्रेणी में रख सकते है। यह कृति समाज को किन्नर समुदाय के प्रति सहानुभूति की भावना से भरने में सफल होती है। इसी प्रकार गरिमा संजय दुबे की कहानी 'पन्ना बा' में किन्नर समुदाय के प्रति फैली नफरत भरी

मानसिकता को रेखांकित किया है। किन्नर विमर्श की कड़ी में कहानी 'शीर्षक 'ई मुर्दन का गाँव' में लैंगिक विकृति से पीड़ित लोंगो की व्यथा को कुसुम अंसल ने अपनी पैनी दृष्टि से उजागर किया है। इस कहानी में किन्नर गुरु जया कहती है –''बाँझ औरतें हमारे पास बच्चे की कामना से आती है और ताज़्जुब, हमारा आशीर्वाद फलता भी है, किसी भी बच्चे का जन्म हमारे नाच–गाने के बिना पूरा नहीं होता। आशीर्वाद देने है तो गंदे–गंदे अल्फाज़ फूहड़ से गाने भी गाते है।'' अर्थात् किन्नरों को खुशी के मौके पर शुभ मानते है उनका आशीर्वाद प्राप्त करते है फिर भी उनके नफ़रत करते है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। लेकिन ज्यादातर लोग किन्नर समुदाय को हेय दृष्टि से देखते है ; उन्हें इंसानियत के तकाज़े में नहीं तौलते बल्कि पग–पग पर ज़लील करते है, धिक्कारते है। इस संदर्भ में सपना मांगलिक की कविता ''हिजड़े की व्यथा'' को देखा जा सकता है, जिसमें किन्नर जीवन की विडंबना का मार्मिक अंकन है –

लिंग त्रुटि क्या दोष माँ मेरा, काहे फिर तू रूठी
फेंक दिया दलदल में लाकर, ममता तेरी झूठी।
मेरे हक, खुशियाँ, सब सपने, में माँग रहा हूँ कब से
छीन लिया इंसाँ दर्ज़ा, दुआ मांगते मुझसे।

उपर्युक्त अध्ययन से ज्ञात है कि साहित्यकार का प्रमुख दायित्त्व, उपेक्षित एवं प्रताड़ित मनुष्य की मौन कथा को मुखरित करना है। समकालीन साहित्य के क्षेत्र में किन्नर–विमर्श अपने घुटनों पर रेंगने का साहस प्रारंभ कर चुका है। अन्य विमर्श की तरह इस विमर्श की पैठ साहित्य में तुलनात्मक रूप से तो कम है किन्तु वर्तमान हिंदी साहित्यकारों उद्योन्मुख क्रांतिकारी परिवर्तन का शंखनाद कर दिया है। कतिपय उल्लेखित रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किन्नर समुदाय के जीवन में व्याप्त संघर्ष को यथार्थ के आलोक में उद्घाटित करने का साहस पूर्ण, सफल कार्य किया है; जो सराहनीय है। किन्नर लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की अंग्रेजी में आत्मकथा 'मी हिजड़ा मी लक्ष्मी' शीर्षक से आई है, जिसमें उन्होंने अपने जीवन के संघर्षों का खाका खींचा है। इसका हिन्दी अनुवाद 'मैं हिजड़ा, मैं लक्ष्मी' नाम से हाल ही में प्रकाशित हुआ है। किन्नर लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी के संघर्ष और जद्दोजहद के परिणामस्वरूप ही विगत 15 अप्रैल, 2015 में उच्चतम न्यायालय ने किन्नरों को तीसरे लिंग की मान्यता प्रदान की और सभी आवेदनों में तीसरे लिंग का उल्लेख अनिवार्य कर दिया। इतना ही नहीं उच्चतम न्यायालय ने इन्हें बच्चा गोद लेने का अधिकार भी दिया और इन्हें चिकित्सा के माध्यम से पुरुष या स्त्री बनने का भी अधिकार दिया। लेकिन आज भी समाज में इन्हें अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता। कोई इन्हें न तो अपने घर पर बुलाना पसंद करता है और न ही कोई इनसे सामाजिक सम्पर्क रखना चाहता है। उलटे जिस दिन किसी शुभ अवसर पर ये किसी परिवार में बधाई देने आते हैं, तो गृहस्वामी जल्द से जल्द इन्हें मुंहमांगी रकम देकर इनसे पिंड छुडाना चाहता है। आज समाज को आवश्यकता है कि वह उपेक्षित किन्नर समुदाय की पीड़ा से रूबरू होने की।

उपसंहार एवं सुझाव :–

अध्ययन के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि समाज की मानसिकता में अभी भी किन्नर विमर्श अपरिपक्व तथा पूर्वाग्रहपूर्ण अवस्था में है, समाज की वैचारिकी अभी इन्हें स्वीकार करने में हिचक रही है। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि दिन–प्रतिदिन खुल रहे और विकसित हो रहे समाज ने अब इन्हें भी

थोड़ा–सा ही सही स्थान देना शुरू कर दिया है और शीघ्र ही हम वह दिन भी देखेंगे, जब ये भी समाज में सामान्य लोगों की भांति अपने मानवाधिकारों के साथ जीवन–यापन कर सकेंगे। वर्तमान समाज को किन्नरों के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलना होगा समाज के बुद्धिजीवी वर्ग खासकर साहित्यकार, समाज–सेवक, आलोचकों एवं मीडिया कर्मी को इस दिशा में चिंतन मनन कर सक्रीय भूमिका अदा करनी होगी। लोगों में उपेक्षित समाज के प्रति विवेक जागृत करने हरसंभव प्रयास करने होंगे। किन्नर समाज के प्रति मानवीय संवेदनाओं से सामाजिक समरसता को प्रसारित करना होगा; अस्तित्व में लाना होगा। इसके लिए परंपरागत सामाजिक ढ़ांचे बदलना जरूरी ही नहीं अपितु अपरिहार्य है। यह अध्ययन किन्नर समुदाय के प्रति समाज के नज़रिए को बदलने में, चितंन के नवीन आयाम प्रस्तुत कर सकने में कारगार सिद्ध होगा।

हिंदी साहित्य में सन् 2002 में प्रकाशित नीरजा माधव का 'यमदीप' उपन्यास हिजड़ों पर रचित पहला स्वतंत्र उपन्यास माना जा सकता है। लेखिका द्वारा रचित इस उपन्यास सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें किन्नरों की सांकेतिक भाषा का जो उल्लेख किया गया है, वह अन्य कृतियों में कहीं दिखाई नहीं देता है। यह लेखिका की सबसे बड़ी उपलब्धि है। नीरजा माधव ने किन्नरों के बीच जाकर उनके समाज का गहनता से अध्ययन किया और उनकी समस्त समस्याओं को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। वह हिन्दी साहित्य में पहली लेखिका है जो किन्नर समाज को सभी पाठकों के समक्ष रखती है। प्रस्तुत पुस्तक में यमदीप उपन्यास को आधार बनाकर लेखों का संकलन किया गया है। इन आलोचकों के दृष्टिकोण की विविधता को बनाए रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है।

प्रत्येक लेखक ने किन्नर जीवन का रेखांकन अपने–अपने दृष्टिकोण से किया है, परंतु उनके लेखन में एक तथ्य सामूहिक रूप से उभर कर आया है कि समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जिसे समाज अपना नहीं मानता है। मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति में किन्नर समुदाय किस प्रकार शारीरिक अक्षमता का बोझ ढ़ोते हुए होते तिरस्कृत जीवन जीने के लिए विवश है। यह शोध अध्ययन किन्नरों की दयनीय स्थिति के खिलाफ आवाज़ उठाने और समाज में किन्नरों के अस्तित्व को बनाने की कोशिश की सार्थक पहल हैं।

भारत सदैव ही वसुदेव कुटुंबकम की बात करता रहा वसुधैव कुटुंबकम संपूर्ण विश्व को एक परिवार मानकर विश्व में भाईचारे प्रेम सौहार्द की बात कही जाती है।

संदर्भ एवं लेख सूची :–

1. इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श (सन् 2010 से अब तक), संपा. डॉ. माधव राजप्पा मुंडकर।
2. हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श, प्रा. डॉ. सुगंधा हिंदुराव घरपणकर।
3. किन्नर विमर्श : समाज और साहित्य, सं. प्रदीप प.पाटकर, विद्या प्रकाशन, कानपुर।
4. https://drpuneetbisaria.blogspot.com/2016/05/blog-post_31.html
5. rrjournals.com/wp-content/uploads/2019/04/118-120_RRIJM190404028.pdf

Email : samta.2015@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 384-389
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आंबेडरवादाचा मराठी दलित कवितेवरील प्रभाव

-डॉ. संजय पांडुरंग चौधरी
मराठी विभाग, भारत महाविद्यालय, जेऊर, ता. करमाळा, जि. सोलापूर।

समकालीन जीवनातील ज्वलंत समस्यांची सोडवणूक करण्यास आणि मानवी जीवनाला चिरंतन उपकारक ठरणाऱ्या गोष्टींचा शोध घेण्यासाठी त्या त्या कालखंडातील विचारवंत आपापल्या वकूबाप्रमाणे काही विचारसूत्रांची मांडणी करत असतात. समाजातील विषमता दूर व्हावी आणि मानवाच्या उत्थानाला बाधा आणणारी कुरूपता नाहीशी व्हावी म्हणून परिवर्तनवादी तत्वज्ञ प्रयत्नशील असतात। या विचारवंतांच्या जडणघडणीनुसार आणि त्यांच्या युगभानानुसार वेगवेगळया विचारप्रणाली तयार होतात। या विचार प्रणालीला 'वाद' म्हटले जाते। हे वेगवेगळे वाद म्हणजे वेगवेगळे तात्वीक दृष्टीकोन असतात। हे वाद कधी मूल्यांच्या नावाने किंवा विशिष्ट दृष्टीकोनाच्या नावाने ओळखले जातात तर कधी ते वाद जन्माला घालणाऱ्या नावाने ओळखले जातात। उदा. मार्क्सवाद, गांधीवाद, आंबेडकरवाद इ.पैकी आंबेडकरवादाची संकल्पना आणि स्वरूप आपण पाहू।

आंबेडकरवाद संकल्पना व स्वरूप :-

बाबासाहेब आंबेडकर हे विसाव्या शतकातील सांस्कृतिक संघर्षाचे महानायक होते। भारतातील लोकायत, चार्वाक आणि बुध्द या निरीश्वरवादी परंपरेतील जडवादी आणि समतावादी तत्वज्ञानाशी आंबेडकरवादाचे अत्यंत जवळचे नाते आहे। जडवादाची परंपरा मान्य करणारे आंबेडकर 'विश्व ही ईश्वराची निर्मीती नसून ते उत्क्रांत झाले आहे असे मानतात। 'आंबेडकरवादाने ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म आणि परलोक या गोष्टींना संपूर्ण आणि स्पष्ट नकार दिला आहे त्यामुळे विश्वाच्या मूळाशी चिद्‌तत्त्व नसून जडत्व आहे। विश्वाचा नियंता कोणी ईश्वर नसून ते कार्यकारणभावाच्या नियमाने चालते असे आंबेडकरवाद मानतो।''[1]

माणूस हा आंबेडकरवादाच्या केंद्रस्थानी आहे. माणसाला कान, नाक, जीभ, डोळा आणि त्वचा या पाच इंद्रियाबरोबर 'मन' हे सहावे इंद्रिय असल्याचे आंबेडकरवाद मानतो। संपूर्णपणे इहवादी आणि विज्ञाननिष्ठ परिवर्तनवादी विचारसरणी असलेला आंबेडकरवाद विषमतेचे तत्वज्ञान केवळ नाकारत नाही तर ते उद्‌ध्वस्त करतो।

ऐहिकनिती आणि बंधुता या गोष्टींना आंबेडकरवादाने अनन्यसाधारण महत्व दिले आहे। इतर ''धर्मामध्ये जे स्थान ईश्वराला आहे ते आंबेडकरवादात नीतीला आहे।''[2] माणसाने माणसावर प्रेम करावे असा मानवाच्या ऐहिकनीतीचा बुध्दीप्रामाण्यवादी आग्रह आंबेडकरवाद धरतो।

इ.स.1956 साली आंबेडकरांनी धर्मांतर करून बौद्धधर्म स्वीकारला असला तरी बुध्दाला देव करून त्याची भक्ती करणे आंबेडकरांना मान्य नव्हते। ''आंबेडकरवादाचा बुद्ध जडवादी आदिबुद्ध आहे। लोकायत, बुद्ध आणि मार्क्स या जडवादी विचारधारेप्रमाणेच आंबेडकरवाद दैववाद व धार्मीकतेला नाकारतो तसेच निष्क्रियतेला नाकारून

प्रयत्नवादाचा जोरदार पुरस्कार करतो।

आंबेडकरवादाचा मार्क्सच्या ध्येयवादाला विरोध नाही पण ध्येय साध्य करण्याची आंबेडकरवादाची पद्धती मार्क्सवादापेक्षा वेगळी आहे। याविषयी डॉ.यशवंत मनोहर लिहीतात, ''मानसिक प्रबोधन, वैचारिक क्रांती, बंधुता या मार्गाने समता, स्वातंत्र्य आणि सामाजिक न्याय असलेला बुध्दीप्रामाण्यवादी इहवादी आदर्श समाज निर्माण करणे हेच आंबेडकरवादाचे ध्येय आहे।''[3] जाती जातीत विभागलेला समाज राष्ट्र होऊ शकत नाही म्हणून आंबेडकरवाद एकजीव सेंद्रिय समाजाची अपेक्षा करतो। मात्र हे करताना मार्क्सवादापेक्षा आंबेडकरवादाची दिशा वेगळी आहे त्याविषयी यशवंत मनोहर म्हणतात, ''रक्ताचा एखादा थेंबही सांडणार नाही या पध्दतीने आर्थीक आणि सामाजिक क्रांती हा आंबेडकरवादाचा प्रस्ताव मोलाचा आहे। तो मानसिक प्रबोधनाला आणि इष्ट त्या परिवर्तनाला प्रमाण माणणारा आहे।''[4]

आर्थीक आणि सामाजिक विषमता नाकारणाऱ्या आंबेडकरवादाने आर्थीक लोकशाहीला आपला आदर्श मानले आहे। लोकशाही ही केवळ एक शासनप्रणाली म्हणून महत्वाची नसून ती एक जीवनशैली आहे असे आंबेडकरवाद मानतो। त्याचबरोबर अधिकाधिक चांगलेपणाकडे जाण्यासाठी विचारांची मोकळीच देतो. परिवर्तनाची भूमिका घेताना स्थितीवाद नाकारून नित्यनूतन पुनर्रचनेचे तत्त्व स्वीकारतो. महापुरूषाने आपल्या अनुयायांना जागृत करावे, त्यांना मार्गदर्शन करावे, प्रेरणा द्यावी पण आपले निर्णय आपल्या अनुयायांवर लादू नयेत ही आंबेडकरवादाची भूमिका आहे। मानसिक प्रबोधन करण्याआधीच जर निर्णय लादले तर सदृढते ऐवजी अपंगत्व येते ही या मागची धारणा आहे। गुलामाला त्याच्या गुलामीची जाणीच करून द्या म्हणजे तो बंड करून उठेल असे बाबासाहेब आंबेडकर म्हणतात। त्यामागची भूमिका ही अशी मानसिक प्रबोधनाची आहे हे लक्षात घ्यावे लागते। अशा प्रकारे जीवनातील नानाविध प्रश्नांशी भिडण्याचे सामर्थ्य आणि त्यासाठी आवश्यक असणारी वैचारिक शस्त्रे देण्याचे काम आंबेडकरवाद करतो।

आंबेडकरवाद आणि दलित साहित्य :-

इ.सन 1956 साली आपल्या लाखो अनुयायांना बाबासाहेब आंबेडकरांनी बौद्धधम्माची दिक्षा दिल्यावर या देशातल्या समाज जीवनाचा तळ ढवळून निघाला। आंबेडकरांच्या कार्यकर्तृत्वाने आणि व्यक्तिमत्वाने प्रभावित झालेल्या इथल्या नवशिक्षितांनी आपल्या प्रतिभेचा अंगार फुलविला। कविता, कथा, नाटक, कादंबरी, आत्मकथने या विविध वाङ्मय प्रकाराद्वारे प्रकट झालेला हा दलित साहित्याचा सशक्त हुंकार जीवनवादी भूमिकेतून आणि आंबेडकरांच्या प्रेरणेनेच प्रवाहीत झाला। या सर्व वाङ्मय प्रवाहात दलित कविता अत्यंत ताकदीने आणि विद्रोहाच्या अंगाराने तप्त होऊन व्यक्त होत होती। माणुसकीची विटंबना करणाऱ्या इथल्या धर्माला, परंपरांना, संस्कृतीला, रूढींना, धर्मग्रंथाला, संप्रदायांना नकार देत ही कविता दडपलेल्या माणसांचे दुःख सांगू लागली। आंबेडकरवादाची सूत्रे स्वीकारून सर्व प्रकारच्या अमानुषतेची मीमांसा करू लागली। ही कविता जडवादी तत्वज्ञानाशी नाते सांगू लागली। आंबेडकरवादी कविता म.फुले यांच्या पासून आपल्या पूर्वपरंपरेचे नाते सांगते असे असले तरी निखळ आंबेडकरवादी कविता फुले आणि केशवसुत यांच्या कवितेपेक्षा अधिक प्रखर स्वरूपाची आहे त्याचे स्वरूप पुढील प्रमाणे आहे। दलित कवितेतील सर्वच कवींचा संदर्भ देणे शक्य नसल्याने येथे प्रातिनिधीक स्वरूपात काही महत्वाचे कवी आणि त्यांच्या कवितांचा येथे कालानुक्रमे थोडक्यात परामर्श घेतला आहे।

लोकशाहीर अण्णा भाऊ साठे यांनी आंबेडकरांनी सांगितलेल्या जीवनध्येयाला अनुसरून आपले जीवन

समर्पीत केले आणि तीच परिवर्तनाची भूमिका आपल्या काव्यातून व्यक्त केली :

''जग बदल घालुनी घाव, सांगून गेले मला भीमराव
गुलामगिरीच्या या चिखलात, रूतून बसला का ऐरावत
अंग झाडुनि निघ बाहेरी, घे बिनीवरती धाव।।''

या काव्यरचनेतून आंबेडकरवादाचा ध्येयवाद व्यक्त केला आहे। तर वामनदादा कर्डक या कवितेत दैववाद नाकारणाऱ्या कविता रचल्या। बाबूराव बागूल आपल्या कवितेतून वर्ण–जाती, देव–देवळे यावर आधारलेली संस्कृतीने माणसाला मातीमोल केल्याचे सांगितले। बागूल आपल्या 'वेदाआधी तू होता' या कवितेत आंबेडकरवादी भूमिकेतूनच सर्व सांस्कृतिक व्यवहाराचे नायकपण माणसाला देतात। माणसाच्या महानतेचा गौरव करतात।

''हे माणसा
तूच सूर्याला सूर्य म्हटले
आणि सूर्य सूर्य झाला
आणि चंद्र चंद्र झाला
अवघ्या विश्वाचे नामकरण तू केलेस।''

मनुवादाला नकार देणाऱ्या कवीने आपल्या कवितेतून ''आंबेडकरवादी कवितेची दार्शनिक पायाभरणी केली। या कवीने देव, अध्यात्म या गोष्टी नाकारल्या।''[5] आहेत. त्याचप्रमाणे चार्वाक, बुद्ध, मार्क्स आणि आंबेडकरांच्या जडवादी समाजक्रांतीशी आपली नाळ जोडली आहे। वामन निंबाळकर हे कवीने ''हातात हात घालून सारे सामर्थ्याचे गीत गा'' या कवितेत सामर्थ्याची प्रेरणा प्रदान केली आहे। दु:खाच्या पलिकडे नेहणारी प्रेरणा बाबासाहेब आंबेडकरांनी दिली आहे त्यामुळे त्याला पहाटेची स्वप्ने पाहण्याची आस लागली आहे।

''उद्याचा इतिहास आमचा आहे
आणि इतिहास लिहणाराही (गावकुसाबाहेरील कविता : पृ. 2)

असा विश्वास व्यक्त करणारा कवी आपली आंबेडकरवादी दृष्टी स्पष्ट करतो. आंबेडकरवादी दार्शनिकता स्पष्ट करताना निंबाळकर लिहतात।

''आता बंद करा
हे देव, धर्म, मंदिरे सारी
त्यामुळे माणसाच्या डोक्यात
फिरू लागलीत गिधाडे – घारी
मांस, रक्ताची त्याला लागली चटक
माणूसच माणसाचा झाला शिकारी'' (महायुद्ध : पृ.72)

खरेतर हताश व्हावे अशी परिस्थिती असतानाही तो हताश न होता इतर सहकाऱ्यांनी ही हताश होऊ नये अशी अपेक्षा करतो।

नामदेव ढसाळ :–

गोलपिठा (1972), मूर्ख म्हाताऱ्याने डोंगर हलविला (1975), तूही यत्ता कंची (1981), आमच्या इतिहासातील एक अपरिहार्यपात्र प्रियदर्शीनी (1976), खेळ (1983), गांडू बगीचा (1986) आणि या सत्तेत जीव रमत नाही

(1995) या सर्वच कविता संग्रहामधील लक्षणीय कवितांमधून ढसाळांनी आपला जीवनानुभव बाबासाहेबांना जोडून घेऊन व्यक्त केला आहे।

''सूर्यफले हाती ठेवणारा फकीर हजारो वर्षानंतर लाभला
आता सूर्यफुलासारखे सूर्योन्मुख झालेच पाहिजे'' (गोलपीठा :पृ. 12)

डॉ.बाबासाहेब आंबेडकरांबद्दलची कृतज्ञता व्यक्त करतानाच परिवर्तनासाठीची सिध्दता करण्याचे आव्हान कवी येथे स्वीकारतो।

यशवंत मनोहर :-

'उत्थान गुंफा' (1978), 'डॉ. आंबेडकर : एक चिंतन कथा (1982), 'मूर्तिभजन' (1985) हे तीन कविता संग्रह लिहणाऱ्या डॉ. यशवंत मनोहर यांची आंबेडकरवादाची वैचारिक बैठक इतकी पक्की आहे किंबहुना त्यांनीच आंबेडकरवादाच्या चौकटीला एक सैद्धांनिक रूपात एक प्रारूप बहाल केले आहे। यशवंत मनोहरांच्या उपरोक्त तीनही काव्यसंग्रहात आंबेडकरवादाचा प्रभाव स्पष्ट दिसतो। या कवितेविषयी कवी कुसुमाग्रज म्हणतात, ''अग्नीरसाचा हा दाहक आविर्भाव मराठीत अपूर्वच म्हणावा लागेल। ही कविता क्रांतीची मागणी करते।'' यशवंत मनोहरांच्या कवितेविषयी डॉ. भा.ल. भोळे लिहीतात, ''ही कविता सर्वार्थांनी विद्रोहाची कविता आहे। पण ती केवळ विध्वसंक नाही। तिला काहीतरी क्रांतिकारी निर्मायचे आहे।'' मनोहरांव्या 'उत्थानगुंफा' या कवितासंग्रहातील परिवर्तनवादी आणि आंबेडकरवादी कवितेने पुढील कवितेपुढे एक विधायकरूपात आंबेडकरवादाचे प्रारूप उभे केले।

दया पवार :-

'कोंडवाडा' (1974) आणि 'पाणी कुठवर आलं गं बाई (1998) या दोनही कवितासंग्रहातील कवितेतून आंबेडकरवाद स्पष्ट दिसते। रामराज्याची स्तुती गाणाऱ्या महाकवी वाल्मीकीची झाडाझडती घेताना दया पवार म्हणतात –

''हे महाकवे
तुला महाकवी तरी कसे म्हणावे!
हा अन्याय, अत्याचार वेशीवर टांगणारा
एक जरी श्लोक तू रचला असतास.....
..... तर तुझे नाव काळजावर कोरून ठेवले असते.''(कोंडवाडा : पृ.15)

या कवितेत शोषितांच्या, सर्वहारा वर्गाच्या व्यथा वेदनांना साहित्यातून वाचा फुटली पाहीजे अशी अपेक्षा कवी व्यक्त करतो। दया पवार यांची कविता क्रांतीसन्मुख वातावरणाचे भरण–पोषण करताना दिसते। मूल्यनिष्ठ आणि बांधीलकी व्यक्त करणारी ही कविता आंबेडकरवादाचे प्रतिनिधित्व करते।

त्र्यंबक सपकाळे :-

यांच्या 'सुरूंग' या कविता संग्रहात नागवले गेल्याची वेदना व्यक्त होतेय पण त्याचवेळी व्यवस्थेला प्रश्न विचारण्याचे काम ही कविता करते।

''नाळ तोडल्यावर
तू आपल्या जीवनप्रवाहापासून मुक्त केले
हे भारतमाते! त्वां मला प्रेमवात्सल्य केव्हा दिले?

या काळप्रवाहात मी कर्ण न होता।
इडिपस होऊन तुझ्या शय्येवर आलो तर मी काय करू?''
विलक्षण विद्रोहाची अभिव्यक्ती करणारी ही कविता आहे।

'उत्खनन' या कवितासंग्रहात केशव मेश्राम व्यक्तिगत संवेदना व्यक्त करतात मात्र त्यांची ही संवेदना आंबेडकरवादी जाणीव व्यक्त करीत नाही।

ज.वि.पवार आपल्या 'नाकेबंदी' या कवितासंग्रहामध्ये संघर्षाची भाषा बोलून आगामी प्रक्षोभाचे पूर्व संकेत देतात।

'समतेचं वारं प्यालेली पाखरं त्यांना असं डांबू नका
तुरूंगासह ती उडून जाणार नाहीतच अशा भ्रमात राहू नका''

असे सांगून महापुरूषांशी ईमान राखण्याची निष्ठा व्यक्त करतात।

अर्जुन डांगळे – 'छावणी हलते आहे' या कवितासंग्रहामध्ये

''तू गात रहा भर चौकात,
इथल्या सप्तसुरात न बसणारे तुझे गाणे बाजूला ठेव
कशाला हवाय तुला त्यांच्यासारखा साजबाज''

असे सांगून धार्मिकांच्या आणि देव मानणाऱ्यांच्या गाण्यापेक्षा आपले गाणे वेगळे असल्याची जाणीव संपूर्णतः वेगळे असल्याचे आवर्जून सांगतात। अर्जुन डांगळे यांची कविता ही कार्यकर्त्याची कविता आहे। चळवळीची कविता आहे. आंबेडकरवादाचा विचार सांगणारी कविता आहे।

मराठी कवितेत आंबेडकरवादाचा पुरस्कार करणाऱ्या कविता जशा दलित कविंनी लिहल्या तशा त्या कवयित्रींनीही लिहल्याचे दिसते।

डॉ.बाबासाहेब आंबेडकरांनी स्त्रीमुक्तीचा जाहीरनामा कायद्याच्या पातळीवरून सुरू केला होता। 'शिका, संघटीत व्हा आणि संघर्ष करा' या युगवाक्याने चैतन्य निर्माण झाले होते। यातूनच अनेक स्त्रिया शिकल्या आणि साहित्य निर्मितीत सहभागी झाल्या त्यापैकी महत्वाच्या कवयित्री पाहू।

हिराबाई बनसोडे यांचे 'पौर्णिमा' (1970) आणि 'फिर्याद' (1981) हे दोन कविता संग्रह आहेत। यात हिराबाई या देशातील स्त्रीयांच्या गुलामीविरूद्ध बंड उभारतात. त्या लिहीतात,

''ही माझी फिर्याद
आमच्या कर्मठ संस्कृतीवर आहे
जिने आम्हाला बंद कोठडीत कैद केले आहे
जिथे आम्हाला बहिस्कृत आयुष्याचे दान आहे''

ही फिर्याद करून हिराबाई पुढे म्हणतात,

''क्रांतीची बिजली पेरली आहे
प्रत्येक घायाळ हृदयात
ही लढाई अटळ आहे..... अटळ आहे''

अशी युद्धाची अटळता व्यक्त करणारी कविता पराजित इतिहास बदलण्यासाठी बलदंड हाताची मागणी

करते। सुगंधा शेंडे यांनीही 'विरतं धुकं, आम्रपाली भावपल्ली' व 'अग्निशिखा' या कवितासंग्रहात आंबेडकरवादाची ज्योत पेटती ठेवली आहे. ज्योती लांजेवार यांच्या कवितेत आंबेडकरवादाचे रूप ठिकठिकाणी दिसते।

''बाबासाहेब
कोणीच हिसकावू शकणार नाही
आमच्या भविष्याच्या ओठावरची गाणी
अंधार जाळीत उगवणाऱ्या
प्रलयकारी सूर्याची मी निशाणी''

अशा प्रकारची संतप्त आणि निर्वाणीच्या भाषेत नवजाणिवेचे रूप व्यक्त होते. प्रज्ञा लोखंडे यांचा 'अंतस्थ!' हा कवितासंग्रह आंबेडकरवादी कविता प्रवाहातील एक अत्यंत महत्वाचा कवितासंग्रह आहे।

मराठी दलित कवितेमधील आंबेडकरवादाचा प्रभाव असा सर्वस्पर्शी जाणवत राहतो त्याच्या परिशीलनातून काही निष्कर्ष हाती येतात ते पुढीलप्रमाणे आहेत।

1. मराठी दलित कवितेचे आंबेडकरवादाशी जैवीक नाते आहे।
2. मुक्तछंदातून व्यक्त होणाऱ्या या कवितेने क्रांतीचे वादळ उभे केले।
3. वर्ण–जातीच्या अनुषंगाने येणाऱ्या सामाजिक आणि आर्थीक शोषणाला नकार देणारी ही कविता संपूर्ण परिवर्तनाची मागणी व्यक्त करते।
4. ईश्वर, अध्यात्म, धर्म, पूर्वजन्म – पुनर्जन्म या कल्पनांना हास्यास्पद ठरवून स्वातंत्र्य, समता, बंधुता या मूल्यांचा ही कविता जोरदार पुरस्कार करते।
5. या कवितेने आंबेडकरी चळवळीला बळ देणारी सकस भूमी तयार केली।

संदर्भ :–

1. यशवंत मनोहर : आंबेडकरवादी मराठी साहित्य, युगसाक्षी, नागपूर प. आ. 1999, पृ. 43
2. तत्रैव : पृ. 47
3. तत्रैव : पृ. 50
4. तत्रैव : पृ. 118
5. यशवंत मनोहर : नि. पृ. 186

भ्रमणध्वनी – 7350226897

ई.मेल– chaudharisp71@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 390-393
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी विमर्श

-Nisha Sahani

Mata Gujri Khalsa College of Education, 9 Z, Sri Ganganagar (Rajasthan)

शोध संक्षेप :-

उत्तर औपनिवेशिक विमर्शों में स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के साथ–साथ आदिवासी विमर्श भी आज साहित्य व समाज के लिए चर्चित विषय बना हुआ है। इक्कीसवीं सदी के विमर्श में आदिवासी विमर्श केन्द्र में है। जहां कुछ विमर्श राजनीति में पले तो कुछ अस्मिता व अस्तित्व को लेकर वाद, विवाद के विषय रहे, वहीं आदिवासी विमर्श में राजनीति और अस्मिता दोनों का समावेश है।

आदिवासी विमर्श भी आदिवासी अस्मिता की पहचान, उसके अस्तित्व सम्बन्धी संकटों और उसके खिलाफ जारी प्रतिरोध का साहित्य है। यह देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति भेदभाव का विरोधी है। यह जल, जंगल, जमीन और जीवन की रक्षा के लिए आदिवासियों के 'आत्मनिर्णय' के अधिकार की माँग करता है।

भारतीय संस्कृति एवं इतिहास में आदिवासियों का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी समाज विगत अनेक शताब्दियों से तीव्र संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। वर्तमान में कोई भी आदिवासी समुदाय गैर–आदिवासियों के सम्पर्क से अछूता नहीं रहा है।

आदिवासी विमर्शकार राजाराम भादू ने भी कहा है, ''आदिवासी साहित्य के उद्‌भव और परिप्रेक्ष्य निर्माण में मराठी के दलित साहित्य के सम्बन्ध को जोड़कर रखा गया है, जो सही भी है, लेकिन आदिवासी अस्मिता और उनकी संघर्षधर्मी चेतना के विकास और प्रतिरोध संगठनों के निर्माण में नक्सलवादी आंदोलन के प्रेरणा प्रयासों को वहां लगभग नजरअंदाज कर दिया गया है, जबकि तेलंगाना–तेभागा आन्दोलन से ही आदिवासी स्त्री–पुरुषों की गोलबंदी आरम्भ हो गयी थी। यह प्रक्रिया नक्सलवादी श्रीकाकुलम, दण्डकारण्य और भोजपुर में आगे परवान चढ़ी और भयंकर दमन और उत्पीड़न के बावजूद आज भी आदिवासी आँचलों में फैलती जा रही है।''

भूमिका :-

'आदिवासी' शब्द से तात्पर्य है – आदिवासी, वनवासी, जंगली या आदिम। शब्दकोशों में 'आदिवासी' शब्द आदिकाल से निवास करने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्रयुक्त होता रहा है। 'आदिवासी' देश के मूल निवासी माने जाने वाले तमाम आदिम समुदायों का सामूहिक नाम है।

आदिवासी का शाब्दिक अर्थ है – आदिम युग में रहने वाली जातियां। मूलतः यह वे जातियां हैं जो 5000 वर्ष पुरानी भारतीय सभ्यता को संजोये हुए है।

आदिवासी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, 'आदि' और 'वासी'। 'आदि' का अर्थ 'मूल' और 'वासी' का

अर्थ 'निवासी' है। अतः आदिवासी से तात्पर्य धरती के मूल निवासी से है, जो घने जंगलों, ऊँचे पर्वतों और दुर्गम घाटियों में निवास करते हैं। समान जनजाति बोली का प्रयोग करते हैं तथा अधिकांशतया माँस–भक्षी तथा अर्द्ध–नग्न अवस्था में रहते हैं। आदिवासी का शाब्दिक अर्थ है आदिकाल से देश में रहने वाली जाति।

भारत में आदिवासियों को अनेक नामों से पुकारा जाता है – ऐबोरिजिनल, इंडिजिनियस, देशज, मूल निवासी, जनजाति, वनवासी, जंगली गिरिजन, बर्बर आदि।

क्रोबर के अनुसार, ''आदिम जनजातियां ऐसे लोगों का समूह होता है, जिनकी अपनी एक सामान्य संस्कृति होती है।''

सदियों से आदिवासी समाज को एक पिछड़ा समाज माना गया। उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया गया, किन्तु भूमण्डलीकरण के दौर में आज का शिक्षा का प्रचार–प्रसार होने से आदिवासी समाज में भी जागृति आई है। आज वे अपने जीवन एवं साहित्य को प्रमुख रूप से जनता के समक्ष लाना चाहते हैं। आदिवासी समाज के लोगों का अन्य समाज के लोगों से मिलना–जुलना बढ़ा है। आज आदिवासी साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है, जिससे आदिवासियों के प्रति लोगों का नजरिया बदल रहा है। 'साहित्य समाज का दर्पण होता है।' इसलिए जैसा समाज होगा, उसी प्रकार का साहित्य रचा जाएगा।

औपनिवेशिक युग के पूर्व आदिवासियों की अपनी स्वतंत्र सत्ता थी। जल, जंगल, जमीन और प्रकृत्ति के संसाधनों पर उनका अधिकार था, परन्तु जैसे–जैसे साम्राज्यवादी ताकतें बढ़ती गईं, औपनिवेश सत्ताएँ मजबूत होती गईं, वैसे–वैसे आदिवासियों का शोषण और उन पर अत्याचार बढ़ता गया। उनके संसाधनों पर जबरन कब्जा किया जाने लगा, उन्हें अपनी जमीन से बेदखल किया जाने लगा। यहां तक कि अपनी स्वायत्ता और अस्मिता के लिए जितना और जिस व्यापक पैमाने पर आदिवासियों ने विद्रोह किया, उतना देश के किसी अन्य तबके ने नहीं किया।

आदिवासी लोगों ने सदियों से लाभ–लोभ की प्रवृत्ति से दूर रहकर अपने जीवन को एक नई दिशा प्रदान की है। वे जंगलों में कंद–मूल खाकर तथा पोखरों, झरनों का पानी पीकर अपना जीवनयापन किया करते थे। पूरे आत्माभिमान सहित अपनी भाषा सहित और जीवन–शैली को जिन्दा रखते हुए अपनी जिंदगी जीते थे लेकिन लगातार शोषणा और विस्थापन का शिकार होने के कारण ही इस समुदाय में आक्रोश का भाव तीव्र होता रहा। जैसे–जैसे आदिवासी वर्ग शिक्षा और नागरी परिवेश से परिचित हुआ, उसे अपने मूल्य और वजूद का अहसास सालने लगा। आदिवासी अपने को छला हुआ, विकास की मुख्यधारा से वंचित और समाज का बहिष्कृत हिस्सा समझने लगा। उसमें अपने शोषण का बोध जैसे–जैसे बढ़ता गया, वैसे–वैसे उसने सभ्य जातियों के अत्याचार के विरूद्ध बगावत का रास्ता अख्तियार किया। आदिवासी साहित्य में विद्यमान वेदना, पीड़ा, आक्रोश का भाव इसका प्रतीक है।

आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। यह ऐसा विमर्श है, जिससे इस समुदाय की परम्परा, रूढ़ियां, संस्कृति, अन्याय, अत्याचार, अपमान, शोषण सभी कुछ बयान हो रहा है। लोककला, संगीत, नृत्य, संस्कृति, भाषा बोली, लिपि आदि विभिन्न धरातलों पर आदिवासी लेखन एक व्यापक विमर्श का हिस्सा बन रहा है। चूंकि इसकी लिपि और भाषा को लम्बे अरसे तक पहचान ही नहीं मिल सकी, इसलिए उनका संरक्षण और विकास भी बाधित हुआ।

प्रतिष्ठित मराठी आदिवासी साहित्यकार वाहरू सोनवणे का यह कहना ठीक है कि लिखित ही केवल साहित्य होता है, यह कहना ही आदिवासियों की दृष्टि से असंगत है।

साहित्य और कला, साहित्य और जीवन के बीच जो दीवारें समाज में खड़ी हैं, उन दीवारों का आदिवासी समाज में कुछ भी स्थान नहीं है। इन व्याख्याओं को बदलना जरूरी है क्योंकि आज आदिवासी समाज में कई प्रथाएँ, लोकगीत और नाटक तथा अनेक अन्य कलाएं विद्यमान हैं, जिसे शब्दबद्ध नहीं किया गया है।

आदिवासी अपने स्वभाव से ही कलाप्रिय होते हैं। नृत्य–गान तो उनके खून में ही शामिल होते हैं। वे अपने शरीर, घर और उपयोगी वस्तुओं को बहुत ही कलात्मक ढंग से संजाते–संवारते हैं तथा स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने शरीर पर गुदना चित्र भी गुदवाते हैं। भारत की जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत (10 करोड़) जितना एक बड़ा हिस्सा आदिवासियों का है। पुरातन लेखों में आदिवासियों को 'अत्विका' और 'वनवासी' भी कहा गया है (संस्कृत ग्रंथों में)। महात्मा गांधी ने आदिवासियों को 'गिरिजन' (पहाड़ पर रहने वाले लोग) कहकर पुकारा है।

भाषा मानव की सबसे बड़ी ताकत है। भाषा की ताकत मनुष्य को पशु–जगत से पूर्णतय अलग करती है। आदिवासियों की भी अपनी भाषाएँ हैं, अपने त्योहार हैं, वे अपने त्योहारों को मनाकर अपने देवी–देवताओं को प्रसन्न करते हैं। त्योहारों के समय से अच्छे–अच्छे पकवान बनाकर देवी–देवताओं को भोग लगाते हैं तथा अपने सारी परम्पराए निभाते हैं जैसे जन्म, विवाह, मृत्यु।

आदिवासी समाज की वर्तमान स्थिति में निरंतर परिवर्तन आ रहा है। अब वहां शिक्षा केन्द्र खोले जा रहे हैं, ताकि अधिक से अधिक लोग शिक्षित होकर अपनी स्थिति को सुधार सकें। ..... अभी भी आदिवासी समाज अपनी पृथक सांस्कृतिक पहचान बनाए हुए है। यह रूप उनके लोकनृत्यों और लोक–संगीत में झलकता है। आदिवासी समाज पर विज्ञान के चमत्कारों का भी प्रभाव पड़ रहा है। वहां यातायात के साधन पहुंच रहे हैं, डाक व्यवस्था में सुधार आया है। इसी के साथ–साथ आदिवासी समाज में फैली बेरोजगारी की समस्या पर नियंत्रण पाने के प्रयास किये जा रहे हैं। इससे वहां के युवकों की आर्थिक स्थिति में सुधार आ रहा है।

आदिवासी विमर्श केन्द्रित उपन्यासों की एक परम्परा रही है – ''आदिवासियों के जटिल जीवन चित्र को अंकित करने के लिए लेखक कहीं मोटी रेखाएँ खींचता है, कहीं पतली, कहीं अवकाशों को भरने के लिए दो–चार बिन्दु अपनी तूलिका से जड़ देता है। अनेक पर्वों, उत्सवों, परम्पराओं, विश्वासों, व्यथा के अवसरों, गीतों, संघर्षों, प्रकृत्ति के रंगों, पुराने–नए जीवन–मूल्यों से लिपटा हुआ आदिवासियों का जीवन अभिव्यक्ति के एक नए माध्यम की अपेक्षा करता है।''

आदिवासी विमर्श को दृष्टि में रखकर सर्वप्रथम उपन्यास जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का सन् 1899 में प्रकाशित 'बसंत मालती' माना जाता है। इस उपन्यास में मुंगेर जिले के मलयपुर क्षेत्र के आदिवासी मल्लाहों के जीवन का वर्णन किया गया है।

मशहूर कवि हरिराम मीणा अपनी कविता में आदिवासियों की समस्याओं को चित्रित करते हुए लिखते हैं कि उन्होंने अब तब अपने लिए न कोई घर बनाया है और उन्हें इस बात का कोई अफसोस भी नहीं है –

''हमें पता नहीं
हम बन्दर की औलाद हैं
या भगवान की मंसा

मगर पैदा आदम–जात ही हुए
नहीं छेड़ी हमने हिफाजती मुहिम
मौसमों के खिलाफ घर नहीं बनाये
मगर बेघर महसूस नहीं किया
रहे अपरिग्रही फिर भी धनी .....।''

इसी के साथ–साथ आदिवासी स्त्रियों की पीड़ा का बहुत ही सुन्दर तथा बेबाक वर्णन 'निर्मला पुतुल' की कविताओं में दिखाई पड़ता है। ''आदिवासी लड़की की पीड़ा को मुखर करती हुई निर्मला पुतुल कहती हैं कि कोई भी आदिवासी लड़की किसी शहरी लड़के से ब्याहना पसंद नहीं करती, इसके कई कारण है – जैसे वह शहरों में बसता है, बाँसुरी की धुन से अपरिचित है, घर के सामने आंगन नहीं आदि–आदि पर इन सबमें एक कारण अहम है, जो उसकी दशा और मनोदशा की कहानी कह सकता है –

''बापू। मुझे उतनी दूर मत ब्याहना
वहां मुझे मिलने आने की खातिर
घर की बकरियां बेचनी पड़ें तुम्हें''

भूण्डलीकरण के इस दौर में आदिवासियों की स्थिति ना घर की ना घाट की हो गई है। एक ओर भारत सरकार के सुनहरे सपने और दूसरी ओर अपनी मुट्ठी से खिसकती जमीन के बीच यह पिसते जा रहे हैं।

'वामन शेलके' आदिवासी की इस स्थिति को अपनी कविता में इस प्रकार दर्शाते हैं –

''सच्चा आदिवासी
कहीं पतंग की तरह भटक रहा है .....
कहते हैं हमारा देश
इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ रहा है।''

प्रत्येक समाज को आगे बढ़ने के लिए केवल बाहरी बुराइयों से ही नहीं लड़ना पड़ता बल्कि उसे अपने अन्दर की बुराईयों से भी लड़ना होता है। आदिवासी समाज भी इन बुराईयों से लड़ रहा है। उन्होंने अपने पारम्परिक हथियार तीर और कमान को छोड़कर कलम उठा ली है तथा अन्य समाज की भांति अपनी संस्कृति एवं परम्पराओं को सुरक्षित रखते हुए उन्नति के मार्ग पर निरंतर अग्रसर है।

अंततः निष्कर्ष रूप में यही कहेंगें कि सरकार की नई उदारीकरण की नीतियों के कारण आदिवासी समाज के शोषण की प्रक्रिया अत्यंत तेज हो गई है। विकास के नाम पर जंगलों को तोड़ा जा रहा है। जो आदिवासी जंगलों में रह रहे थे, आज उनकी जमीन उनसे छीनी जा रही है। इस विकास प्रक्रिया ने आदिवासियों का जल, जमीन और जंगल का अधिकार ही खत्म कर दिया है, लेकिन आदिवासी समाज आज अपने अस्तित्व को बचाने के लिए सजग हो गया है। वह अपनी भाषा, संस्कृति, कला, मान्यताएँ आदि की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहा है। आज के इस समसामायिक युग में अपनी आदिवासी पहचान कायम रखने के लिए जो सामूहिक अनुभूति का साहित्य लिखा जा रहा है, वही है आदिवासी साहित्य। यह आदिवासी साहित्य विमर्श हाशिए के समाज को मुख्य प्रवाह में लाने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

E-mail ID : nishacharaya001@gmail.com, Mobile No. : 8875332338

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 394-397

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गिरिराज शरण अग्रवाल की कहानियों में "दलित जीवन"

-कल्पना गौतम

Block- R6D Navy Nagar 104 Area, Marripalem Pin 530018

कई युगों से भारत में दलितों का जीवन बड़ा ही दु:खदाई रहा हैं। आजादी के 70 साल बाद भारत जैसे देश में लोकतांत्रिक देश की यह स्थिति बनी हैं कि सदियों से लेकर अब तक दलितो के जीवन में कोई सुधार नही आया हैं। समाज ने इन लोगो को कोई न तो पहचान दी, न समाज में ये उठ–बैठ सकते और न कोई आवाज उठा सकते, ये लोग अपनी सारी सुख–सुविधा से वंचित रहे क्योकि ये दलित हैं इसलिये इन्हे स्कूलों में भी ज्ञान के अभाव से रखा गया। किसी भी शादी–समारोह में दलित को सम्मिलित नहीं किया जाता हैं। समकालीन युग में जाति–पाति, उँच–नीच, शोषण और छुआछूत की बीमारी अभी कही–कही दिखाई दे रही है दलितो की परेशानी, गुलामी, परिवारिक विघटन, गरीबी, भुखमरी आदि ये लोग अपने जीवन से सबंधित परेशानियों से पीड़ित हो रहे है। भारत के संविधान में अनुसूचित जाति, जनजाति आरंक्षण के लिये प्रावधान किया गया। परन्तु इस आरंक्षण का अधिका–अधिक दुरुपयोग हो रहा हैं। रोटी, कपड़ा और मकान की प्राथमिक सुख सुविधाओ लिये दलितों को बड़ा ही संघर्ष करना पड़ रहा हैं। बड़े दुर्भाग्य की बात हैं कि – देश के नेतागण चुनाव के समय इन लोगो से वोट तो ले लेते हैं परन्तु इन लोगो से जीत कर अधिकार प्राप्त करने पश्चात उनके कल्याण के लिये कोई उपयुक्त कोई कार्य भी नही करते हैं। उनकी शिक्षा, दलित के परिवार, उनके रोजगार और जीवन संबंधी उनकी अन्य जरुरते बिल्कुल पूरी नही हो पा रही हैं। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से इस देश को बचने के लिये श्री गिरिराज शरण अग्रवाल की जैसी कहनीयों का कटबद्ध हैं ।

डॉ. गिरिराज शरण जी ने अपनी कहानियों में ऐसे प्रयोग किये है जिनके द्वारा समसामयिक मनुष्य दलितो को मानवतावादी द्रष्टि से देखते हुऐ उनके कल्याण के लिये प्रयास कर पा रहे हैं। उनकी कुछ कहानी विवेचन इस प्रकार है :–

"धुआँ बनती जिंदगी" एक गाँवो से दो फर्लान की दूरी पर फूस की झोपड़ियों का एक टोला था। टोले के सभी लोग बड़े किसाने के खेते पर काम करते थे, उनके जानवरो की सेवा–टहल करते थे और बदले में उन्हे इतना भी नहीं मिलता था कि वे अपने बच्चों का पेट भर सके। इन लोगो कि इतनी दयनीय स्थिति हैं कि तालाब का पानी पी–पीकर सभी लोग बीमार रहते थे। जिला अधिकारी ने उनकी स्थिति को देखकर एक हैडपम्प लगवा दिया। वह हैडपम्प टोले कि लड़ाई का एक हिस्सा बन गया। एक दिन सूरज की मौसी और बुधुआ कि बुआ में घमासान संग्राम हुआ। औरतो की लड़ाई में आदमियों ने भी लाठीयाँ चलाई। लोगो के सिर फूट ने लगे। इन

लोग़ो के लियें पानी ही जीवन है जीवन के लिये अपनी–अपनी बाजी लगा रहे थे। सूरज अपनी और टोले के लोगो की गरीबी और विवशता पर दुखी होने लगा कि ये साफ पानी ह्म लोगो को एकजुट नही होने दे रहा दुर्भाग्य यह कि नल ह्म दलित के मन को दूषित कर रहा हैं यह सोचते हुए खेतों पर घुमने निकल गया। वहाँ कुँबर सिंह से प्रणाम करके सूरज एक तरफ हो गया। कुँबर सिंह ने सूरज से पूछा मैंने सुना हैं कि शहर में पढ़ाई करने जाते हो तो सूरज ने 'हा सहाब' मैंने सोचा है कि पढ़–लिख कर कुछ बन जाउगा तो माँ और बापू को शहर ले जाउँगा इस गाँव से मुक्ति मिल जाये। सूरज की बात सुकर कुँबर सहाब ने सूरज के बापू मधूवा को बुलाया और कहने लगा कि आज तेरा बेटा हम से जुमान लड़ा रहा था। तुम लोग़ो हम लोगो के पैंरो की जूती हो जो कितना भी पढ़–लिख लो लेकिन हमारी बराबरी कभी नही कर सकते हो। कुँबर मधुवा को बुरा–भला सुनाकर चला गया। मधुआ ने एक बड़ा फैंसला लिया सूरज के प्रति वह मेरी तरह सेवा–टहल और हरवाही नही करेगा चाहे मुझे अपना तन क्यो नही बेचना पड़े। सूरज अवश्य पढ़ने जायेगा। कुँबर से टोले के सभी लोग डरते थे न जाने सिंह की हत्यो को कितना सहन कर रहे थे?

"अस्वीकृति" इस कहानी में विक्रम दलित परिवार से था। वह बहुत गरीब था। उसने बड़ी मेहनत लगन से एम. ए. की परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त की। विक्रम के अध्यापक ने उसकी परेशानियों, कष्टों में पूरी सांत्वना दी, आँसूओ को अपनी धोती से पोंछा और शीत में गहरे विश्वास की उष्मा दी। अध्यापक की दो बेटी विवाह योग्य हो गई थी। वह समाज सेवा में इतना विलीन हो गया कि अपनी बेटियों की उम्र का पता नही चला। नेहा शोध करना चाहती थी और विक्रम किसी कम्टीशन में दोनों मिलकर तैयारियाँ कर रहे थे। विक्रम का आई.ए.एस में सिलेक्शन हो गया और अपने गुरू के पास पहुँचकर कहने लगा, "सर आपका आर्शीवाद चाहिये। सर ने कहा मैंने तुम्हे कभी पराया तो नही समझा मेरा आर्शिवाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं। विक्रम ने हिम्मत करके फिर से बोला सर मैं नेहा से विवाह करना चाहता हूँ। यह सुनकर सर ने जोर से चिल्ला और बोला क्या बदतमीजी हैं मैंने कूडे के ढेर से उठाकर सही जगह पर बैठा दिया हैं तो कुछ भी बोलेगा आज तुने मेरे घर की दिवारों पर छेद कर दिया। तुने ऐसे कैसे सोच लिया तुझे शर्म नही आई ये सब कहने में! कम से कम गुरू का तो लिहाज कर लिया होता।

"ठंडी पकौडियाँ " इस कहानी में त्रिमोचन एक माध्यमिक स्कूल के सामने पकौड़ियों और चाट का ठेला लगाता था। रोज के 70– 80 रुपये कमाकर आता था। अब त्रिमोचन घर में 10–5 रुपये भी नहीं कमाकर लाता हैं। त्रिमोचन की पत्नी रामदुली के पाँच बच्चे वह सभी का पेट कैंसे भरे? आमदनी न होने के कारण बेचैन होने लगी। पति–पत्नी दोनो में झगड़ा होने लगा। तीन दिन से पड़ोसियों से उधार माँग–माँगकर बच्चों का पेट भर रही थी। एक दिन चाट बिक्रेता यूनियन का नाथ त्रिमोचन के घर पहुँच गया। त्रिमोचन अपनी परेशनियाँ उसे बताने लगा भाई मेरा खोमचा बंद हो गया हैं। एक फूटी कौड़ी की आमंदनी नही हो रही हैं रोज घर में कलेश को रहा हैं अब तो कोई भी उधर देने के लिये भी तैयार नही है। सरेद्रनाथ ने कहा,"भाई तेरा ये हाल नही पूरे शहर का ही यही हाल हैं। बच्चो के अभिभावको ने अपने बच्चों को पौकेट खर्च देना बंद कर दिया है क्योकि उनका बजट गड़बड हो गया हैं। सब्जियाँ मंहगी हो गई हैं। चाट खाने वाले लोग मध्य वर्ग के बच्चे होते है,

उच्च वर्ग के लोग होटलो में खाते हैं और निम्न वर्ग के लोग सूखी रोटी खाते हैं। त्रिमोचन ने दुःखी होकर कहने लगा कि इन लोगो ने चाट विक्रेता की रोजी रोटी छिन ली और बच्चों का स्वाद भी। रामदुलारी अपना मन मार दुखी होकर भगवान को कोसने लगी।

"मालिक लोग" सुनील का विवाह कुसुम के साथ हुआ था। कुसुम जल्दी ही एक बेटे की माँ बन गई। सुनील अपने कार्यालय से घर लौटते समय बस की चपेट में आकर उसके दोनो पैर कुचल गये। परिवार का बोझ कुसुम के कंधो पर आ गया। इस परिस्थिति में इतना उलझ गई कि जो सपने सोचे वे सब टूट गये। परिस्थितियाँ आदमी को तोड़ देती हैं और ऐसे पेशे में की तरफ धकेल देती हैं जो हमारी योग्यता, स्वभाव और रुचि न होने के कारण पेट की मजबूरी के लिये ऐसे काम करने पड़ जाते हैं। जिन्हे नही करना चहाते वो करने पड़ जाते हैं।

कुसुम अच्छी पढ़ी–लिखी होने के बावजूद उसे बडी–बड़ी कोठियों में खाना बनाना पड़ता था। उसने अपनी गृहस्थी चलाने के लिये सुबह से लेकर शाम के 10 बजे तक खाना बनाती थी लेकिन वह काम से नही थकती थी मालिक लोगो के ताड़ना और शिकायतो से थक जाती थी। सब्जी में नमक अधिक डाल दिया है, खाना नही आता है बनाना, रोटी सेकनी नही आती, गैस कम खर्च कर, बात–बात पर मालिक लोग ताने और आलोचना करते है। इन बड़े लोगो में बात करने तमीज नहीं है वे काम करने वाले लोगों को अपनी हीनता एवं भय से दबाकर रखना चहाते है। मलिकों के ताने सुनकर एवं परेशान होकर कुसुम ने अपनी मित्र सुनिता से कहा, "बहन मेरी कुछ मदद कर। मैने निर्णय ले लिया हैं अब मै ये कम नही कर सकती। मलिक लोगों की मानसिकता बन गई हैं कि मै कितना अच्छा काम कर लूं? लेकिन ये मुझे प्रताड़ना करते रहते है। कुसुम के चेहरे पर विवशता और लाचारी का भाव था।

"ये चिट्ठी मेरी है" नामक कहानी जग्गी अपने भाई के साथ गाय और भेड़ चराने काम करता था। गाँव से शहर जाकर प्रकाश बाबू के घर पर नौकर का काम करता था। प्रकाश बाबू का बेटा अपनी नानी के यहाँ गया था वहाँ से अपने पिता को चिट्ठी लिखी, प्यारे डैड हम कल हम जू देखने गये थे जू में बड़ा मजा आया था। आप भी होते तो कितना मजा आता? जग्गी आपको परेशान तो नही करता हैं। जग्गी ने प्रकाश बाबू को पूछा बाबू जी भैया ने कुछ मेरे लिये लिखा है क्या? हां लिखा उसे एक थप्पड़ लगा। यह सुनकर सोचने लगा कि भैया जी ऐसा क्यो बोला? उनका समय–समय पर जूतो की पॉलिश, उनकी देखरेख, स्कूल को छोड़ना, लेकर आना, मालकिन का हाथ घर के कामों में बंटाता हूँ, बाबू जी का सारा काम करता हूँ। जग्गी के मन में पढ़ने के लिये उमंग उठने लगी। जग्गी आज दोपहर को घर का सारा काम निबटाकर कर छुप–छुपकर कॉपी किताब लेकर बैठ जाता था। तभी मालकिन अमिता चिल्लाकर बोली अरे! जग्गी कहाँ जाकर मर गया? तेरे बाबू जी ऑफिस से आ रहे होगे। मेंज पर पानी के गिलास रख दे, अच्छे कपड़े पहन ले क्योकि साथ में दोस्त आ रहे हैं। जग्गी ने बाबू जी के दोस्तो को चाय–नाश्ता करवाया। तभी एक दोस्त ने कहा, "ये बच्चा कितना शरीफ हैं? तो दूसरे ने कहा ये प्रकाश का नौकर है। यह शुक्र जग्गी को ऐसा महसूस हुआ कि किसी ने उसके गाल पे ऐसा तमाचा मार दिया हो कि उसे पूरी रात बेचैनी होने लगी। बाबू जी तो मुझे इतना प्यार करते है। उन्होने

अपने दोस्तो से कुछ भी नही कहा क्यों? सुबह उठकर जग्गी ने प्रकाश बाबू को चाय बनाकर दी। तभी दरवाजे पर घंण्टी बजने लगी। उसे लगा पोस्टमैंन काम रोज का हैं लेकिन आज कौन–सी नई सूचना लाया हैं? पोस्टमैंन ने कहा ये चिट्ठी बैरंग़ है अपने बाबू से दस रुपये लेकर आओ। बाबू जी ने चिट्ठी लेने इन्कार कर दिया। जग्गी ने चिट्ठी को पहचान किया और कहने लगा बाबू जी ये चिट्ठी मेरी है। प्रकाश बाबू के क्रोध भरे चेहरे को देकर जग्गी रोने लगा और कहने लगा अब नहीं लिखूगा, मुझे माफ कर दो।

निष्कर्ष :-

कहा जाता हैं कि गिरिराज शरण अग्रवाल ने अपनी कहानियों में वर्तमान युग में दलितों की दयनीय स्थिति और उनके जीवन का चित्रण करते हुए कैसे उन परिस्थितियों से लड़कर उनका सामना करे? ये लोग मेहनत–मजदूरी करके अपना सुखी जीवन जी सकते हैं। सभी क्षेत्र में दलित लोगों को अधिकार दबाकर रखा जाता हैं। बड़े लोग उन्हे ऊपर उठने नहीं देते हैं।

Mob. 9789013078

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 398-402
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मराठी साहित्यातील देवदासीचे चित्रण

-प्रा. डॉ. सुनिता श्रीपती कांबळे
मराठी विभाग प्रमुख, भारत महाविद्यालय, जेऊर, ता. करमाळा, जि. सोलापूर।

साहित्य हा समाजाचा आरसा आहे असे म्हटले जाते कारण साहित्यात समाजात घडणाऱ्या घटनांचे पडसाद उमटतात। मराठी साहित्य हे विविध विषयांनी समृद्ध आहे। अनेक विषय, समस्या, जाणिवा या साहित्यातून आविष्कृत होताना दिसतात। विविध प्रवाहांनी मराठी साहित्य समृद्ध झाले आहे। यामध्ये दलित साहित्य, ग्रामीण साहित्य, स्त्रीवादी साहित्य, आदिवासी साहित्य, मुस्लिम साहित्य या अनेक प्रवाहांनी साहित्य समृद्ध झाले आहे। साहित्यामधून समाजातील अनेक श्रद्धा–अंधश्रद्धा, प्रथा–परंपरा यांचेही वित्रण आले आहे। अशीच एक प्रथा म्हणजे देवदासी प्रथा या प्रथेचे चित्रणही मराठी साहित्यात आले आहे। यामध्ये अनेक कांदबरी, कथा, कविता, नाटक यामधून देवदासीचे चित्रण आले आहे। ही प्रथा फक्त महाराष्ट्रात नाही तर भारतामध्ये अनेक भागात ही प्रथा दिसून येते। पाश्चात्य देशातही ही प्रथा दिसून येते।

'देवदासी' ही प्रथा खूप जुन्या कालखंडापासून अस्तित्वात आहे। देवाची सेवा करण्यासाठी देवाला वाहिलेल्या मुली किंवा देवाबरोबर लग्न झालेल्या मुलींना देवदासी असे म्हणतात। स्त्रियांप्रमाणेच पुरूषानांही देवाला सोडण्याची प्रथा आहे। प्रांतपरत्वे या देवदासीचे विविध नामोल्लेख येतात। महाराष्ट्रात, कर्नाटकामध्ये बेळगाव जिल्हयात सौंदत्ती येथे रेणुका देवीचे मंदिर आहे। तेथे ही प्रथा अधिक प्रमाणात दिसते। गोव्यातही याचे अधिक प्रमाण आहे। आजही अनेक भागात ही परंपरा टिकून असल्याचे दिसते। याविषयीचे अज्ञान आजही समाजामध्ये टिकून आहे। त्यामुळे काही भागात आजही ही प्रथा अस्तित्वात असलेली दिसते। ही प्रथा टिकून राहण्याची अनेक कारणे पुढीलप्रमाणे सांगता येतील।

अपत्यप्राप्ती :-

एखादया स्त्रिला अनेक मुले होऊन ती जगली नाहीत किंवा एखादया स्त्रीला मूल होत नसेल तर देवाला नवस करून होणारे पहिले अपत्य तुला वाहीन असा नवस करून त्या देवीला ते अपत्य वाहिले जाते।

अज्ञान :-

आज एकविसाव्या शतकात विज्ञान युगातही समाजातील लोकांच्या मनातील अज्ञान गेलेले नाही। खेडयातील आजही अशिक्षित, अज्ञान असलेली माणसे अज्ञानपणाने बळी जातात। अस्वच्छतेमुळे मुलांच्या – मुलींच्या डोक्यात केसांचा गुंता झाला तर देवीची 'जट' आहे म्हणून तिची पूजा केली जाते. त्याला हळदी – कुंकू, तेल वाहिले जाते। तो मुलगा किंवा मुलगी हे देवीचे झाड आहे असं मनाशी कल्पून किंवा कुणाच्या तरी अंगात देवी येते व ते झाड देवीच आहे असं सांगते आणि त्या मुलांचा – मुलीला देवीला सोडले जाते।

देवीची भीती/कोप :–

अनेकवेळा अंगावर खरूज, नायटा किंवा काही त्वचाविकार असेल तर तो देवीचा कोप आहे अशी समजूत होते आणि यल्लमा ही जागृत देवी आहे असा समज करून या भीतीपोटी देवीला देवदासी सोडण्याची प्रथा आहे।

आर्थिक अडचण :–

काहीवेळा घरी कोणी मिळवत नसेल, आर्थिक अडचण असेल तर मुलींना देवीला सोडले जाते ती जोगवा मागून तिचा व कुंटुंबाचा उदरनिर्वाह करेल किंवा वेश्याव्यवसाय करून कुंटुंबाची आर्थिक अडचण सोडवेल।

पंरपरा :–

देवदासी ही प्रथा टिकून राहण्याचे आणखी एक महत्वाचे कारण म्हणजे घरात पिढयान् पिढया ही परंपरा चालू असते. ही परंपरा बंद केली तर घरातील मुले जगणार नाहीत किंवा कुंटुंबाचा सर्वनाश होईल या भीतीपोटी ही परंपरा जपली जाते आणि कुंटुंबातील एका व्यक्तिकडून ती दुसऱ्या व्यक्तिकडे संक्रमित होते त्यामुळे ही प्रथा अधिक टिकून आहे।

नकारात्मक भावना :–

कुंटुंबामध्ये मुलीच होत असतील आणि मुलगा होण्यासाठी एका मुलीला देवीला सोडले जाते। मुलगी अपंग असेल किंवा तिचे लग्न होत नसेल तर देवीचा कोप समजून मुलीला देवीला सोडले जाते।

अज्ञानी लोकांची फसवणूक :–

पूर्वी देवीवर श्रद्धा आहे म्हणून मुलीला देवीला सोडले जात होते। कालांतराने गावातील प्रतिष्ठित लोकांनी ही प्रथा अधिक घट्ट केली। तळागाळातील समाजातील मुली देवीच्या नावावर स्वतःला वापरता याव्यात या हेतूने ही प्रथा चालू ठेवली त्या कुंटुंबातील मुली देवीला सोडाव्यात यासाठी त्या कुंटुंबातील लोकांना प्रवृत्त करून त्यांना खर्चासाठी पैसेही पुरवत आणि वेश्याव्यवसायासाठी त्या मुलींची विक्रीही या लोकांनी सुरू केली।

धार्मिक श्रद्धा :–

पूर्वी लोकांमध्ये धर्मभोळेपणा अधिक होता आणि आजही तो टिकून आहे। देवदासी होण्यासाठी लोकांची धार्मिक श्रद्धा व परंपरा अत्यंत कारणीभूत आहे। अनेक लोक कथांच्या माध्यमातून लोकांवर इतके चुकीचे धार्मिक संस्कार केले आहेत की त्यातून तो आपली सुटका करू शकत नाही इतके त्याला बंदिस्त करून टाकले आहे। अनेक देव–देवतांच्या कथा तो ऐकतो ते सर्व खरेच आहे असा ठाम विश्वास त्याच्या मनावर बसतो त्यातून आपल्या कुंटुंबाला वाचविण्यासाठी तो घरातील मुलगा किंवा मुलगी देवाला सोडतो।

अशा अनेक कारणांनी आजही काही भागामध्ये देवदासी ही प्रथा अजूनही आहे। देवदासी म्हणजे देवीची सेवा करण्यासाठी देवाला वाहिलेली स्त्री या देवदासींची प्रथा अनेक भागात आहे। परंतु प्रांतपरत्वे त्यांना वेगवेगळया नावांनी संबोधले जाते ते पुढीलप्रमाणे पाहता येईल।

जोगतिण :–

काही भागामध्ये ज्या मुली स्त्रिया देवीला सोडल्या जातात त्यांना 'जोगतिण' असे संबोधले जाते। यामध्ये दक्षिण महाराष्ट्र व इतर कर्नाटक या भागामध्ये महार, मांग, चांभार, ढोर, वडार या जातीतील मुलींना देवीला वाहिले जाते। या मुलींना रेणुकादेवीला (यल्लम्मा) वाहिले जाते। बेहगाव जिल्हयात असणाऱ्या उरळगोहच्या सौंदत्ती डोंगरावर यल्लम्मा देवीचे मंदिर आहे तेथे जाऊन घटप्रभा नदीवर तिला आंघोल घातली जाते तिच्या

अंगावर कोणतेही वस्त्र न ठेवता लिंब नेसवून तीन किलोमीटर देवीच्या देवळापर्यंत तिला दंडवत घालायला लावतात व विशिष्ट विधी करून तिचा विवाह ताम्हणात तांब्यावर श्रीफळ ठेवून त्या श्रीफळाला देवीचे प्रतिक मानून श्रीफळाशी तिचा विवाह केला जातो।

या देवदासीचा रेणुकाशी विवाह झाल्यामुळे तिला पुरूषांशी लग्न करता येत नाही। तिने दर मंगळवारी, शुक्रवारी गावातील पाच घरे जोगवा मागून आपला उदरनिर्वाह करावा लागतो। देवदासी झाल्याचे प्रतिक म्हणून त्या जोगतिणीच्या हातात बाबूंची 'परडी', 'कवडयाची माळ' दर्शन म्हणजे पांढऱ्या–लाल मण्यांची माळ हा देवदासीचा शिक्का असतो. अनेक जोगतिणीच्या आणि जोग्यांच्या मेळयात तिला आपलं आयुष्य घालवावं लागतं।

भावीण :–

जोगतिणीप्रमाणेच भावीण हा प्रमार काही भागात आहे। ही प्रथा कोकणात म्हणजे गोवा, मालवण, सावंतवाडी या भागात आढळते। या प्रथेमध्ये मराठा आणि भंडारी जातीतील मुली रवळनाथ मंगेशीला 'भावीण' म्हणून वाहतात।

विशिष्ट प्रथा परंपरांच्या माध्यमातून तसेच पूर्वी श्रीमंत सरदारांच्या व्यभिचारातून जन्माला आलेली अपत्य धर्माच्या नावाखाली मंगेशीला वाहण्याची प्रथा होती. विशिष्ट विधीच्या माध्यमातून या मुलींचे मंगेशी देवीशी लग्न लावले जाते।

मुरळी :–

मुरळी हा देवदासीचाच प्रकार आहे। महाराष्ट्रातील खंडोबा देवीची उपासिका म्हणजे 'मुरळी' होय। तिचे लग्न खंडोबाशी झाल्यामुळे देवदासी, भावीण, जोगतीण याप्रमाणे अविवाहित राहून देवाच्या सेवेत आपले आयुष्य घालवावे लागते।

नन्स :–

हिंदूधर्मातील देवदासीप्रमाणे ख्रिश्चनधर्मातही ही प्रथा आहे। त्या ख्रिस्तवधू समजल्या जातात। त्यांनी देवदासीप्रमाणे जन्मभर अविवाहित राहून चर्चमध्ये येशूख्रिस्ताची पूजा करतात। अशा या नन्स कोणत्याही कॉन्व्हेंटमध्येही संन्यासिनी म्हणून राहतात।

स्त्रियांप्रमाणे पुरूषांनाही देवीला किंवा देवाला सोडण्याची प्रथा आहे। त्यांचाही देवाशी–देवीशी विवाह केला जातो। यल्लम्मा देवीला वाहिलेल्या मुलांना 'जोग्या' किंवा 'जोगता' म्हणतात। गोव्यातील मुलांना रवळनाथ देवाला वाहिले जाते. त्यांना 'देवळी' म्हणतात। खंडोला वाहिलेल्या मुलाला 'वाघ्या' म्हणून संबोधले जाते. 'आराधी', 'भुत्या' अशा नावांनीही संबोधले जाते।

मराठी साहित्यातील देवदासींचे चित्रण :–

मराठी साहित्यात जोगतिण, भावीन, मुरळी, नन्स अशा देवदासी स्त्रियांचे चित्रण काही कादंबऱ्या, कथा, कविता, नाटक यामधून चित्रित झाले आहे। पुढीलप्रमाणे काही साहित्यकृतीचा उल्लेख करता येईल।

'वर आभाळ खाली धरती' :– महादेव मोरे

या कादंबरीतून देवदासीचे चित्रण आले आहे की कादंबरी 1973 ला प्रकाशित झाली। या कादंबरीत देवदासी म्हणून सोडलेल्या 'चंपा' या मुलीच्या आयुष्याची झालेली परवड समाजाकडून झालेली उपेक्षा आणि शेवटी वेश्या म्हणून जगावे लागणारे जीवन याचा वेध या कादंबरीतून घेतला आहे।

'नापत' – बळवंत कांबळे :–

ही कांदबरी 1984 ला प्रकाशित झाली। 'नापत' कांदबरीतून 'पारू' या देवदासीचा संघर्ष चित्रित केला आहे. 'नापत' म्हणजे पत नसलेल्या समाजातील घटक या कांदबरीतील इनामदार व प्रतिष्ठित समाज स्वतःच्या भोगवासनेसाठी गावात यल्लम्मा देवीचे प्रस्त माजवतात व महार, मांग, लोकांची गळचेपी करून त्यांना मुलींना देवीला सोडायला लावतात आणि आपल्या वासनेची शिकार बनवून त्यांना वेशामार्गाला लावतात। 'नापत' या कादंबरीतील पारू इनामदाराच्या भूलथापांना फसली जाते। या सूड भावनेतून पेटलेली पारू दलित स्त्रीच्या वेदनेचा स्फोट करते आणि परिस्थितीतून मार्ग काढून आपल्याला न्याय मिळविण्याच्या दृष्टिने प्रयत्न करते।

चौंडकं – राजन गवस :–

1985 मध्ये प्रकाशित झालेली ही कांदबरी देवदासी प्रथेतील अघोरीपणा चित्रित करते। देवदासींच्या जीवनातील दुःख व्यक्त करणारी ही कादंबरी आहे। या कादंबरीतील सुलीच्या च्या निमित्ताने देवदासींच्या जीवनातील दुःख आणि समाजातील अंधश्रध्दा याचे चित्रण या कांदबरीतून राजन गवस यांनी केले आहे।

सुलीच्या डोक्यात 'जट' आली आणि अजाणवयातच सुलीला 'देवाचे दासत्व' लाभते आणि तिच्या जीवनाची होणारी वाताहत या कांदबरीतून चित्रित होते।

राजन गवस यांनी 'भंडार भोग' ही कांदबरीही लिहिली आहे। त्यातून त्यांनी जोग्यांचे चित्रण केले आहे। जोग्यांना देवदासीपेक्षाही अधिक लाचारीने जीवन जगावे लागते. देवाला सोडलेला माणूस असूनही त्याला तिरस्कृत केले जाते, पुरूष असूनही त्याला स्त्रीवेशात फिरावे लागते याचे विदारक चित्रण या कादंबरीत येते।

भावीण – बा.भ.बोरकर :–

ही कांदबरी 1950 मध्ये प्रकाशित झाली। गोवा, सावंतवाडी, रत्नागिरी या भागात भावीण ही प्रथा आहे। या कादंबरीत भावीणीच्या घरी जन्माला आलेली 'शेवंती' स्वतःचे आयुष्य सामाजिक कार्यात घालवू पाहते त्यावेळी शेवंतीकडे कामवासनेमुळे मनोरूग्ण झालेल्या ऋषीला समाजसुधारक असलेला केशव बरे करण्यासाठी घेऊन जातो. शेवंती त्याला आजारातून बरे करते। काही दिवसांनी आजारातून बरे झालेला तोच ऋषी शेवंतीशी प्रेमविवाह करू इच्छितो याचा शेवंतीला मनस्ताप होतो। शेवंती याला विरोध करते व स्वतःला डोहात उडी टाकून संपविते। त्याग, भोग व प्रेम या सर्वांतून मार्गक्रमण करताना तिच्या आयुष्याची झालेली वाताहत या कादंबरीतून व्यक्त होते।

जोगीण – सुभाश्र भेंडे :–

'जोगीण' ही कादंबरी 1984 ला प्रकाशित झाली। या कादंबरीतून जोगतिणीच्या जीवनातील समस्या मांडल्या आहेत। या कांदबरीतून गोव्यातील ख्रिस्ती लोकांच्या आचार – विचारांचे व वातावरणाचे तपशीलवार चित्रण केले।

रॉकीचा ताप बरा व्हावा म्हणून वडिलांनी येशू चरणी 'धाकटया मुलीला तुझ्या सेवेसाठी जोगीण म्हणून सोडेल' असा नवस केलेला असतो। त्या नवसाखातर वडिलांच्या मृत्यूनंतर इच्छा नसताना आपल्या मनाला, भावनांना मुरड घालून वडिलांच्या आत्म्याला शांती मिळावी म्हणून या कांदबरीतील नायिका 'बर्नी' जोगीण होते। याला तिच्या भावाचाही विरोध असतो। परंतु तिची काही चूक नसताना तिला भोगावा लागणारा आयुष्याचा वनवास आणि तिचे उध्वस्त होणारे आयुष्य या कादंबरीच्या अनुषंगाने चित्रित होते।

महानंदा – जयवंत दळवी :–

ही कांदबरी 1970 ला प्रकाशित झाली या कांदबरीत कल्याणी ही भावीण आहे। आपली मुलगी महानंदानेही आपल्यासारखे भावीण म्हणून आयुष्य घालवावे अशी अपेक्षा तिची आई कल्याणी करते। भावीणीची मुलगी असूनही महानंदा इतर तरूणीप्रमाणे सुखी संसाराची स्वप्ने पाहते परंतु संसार थाटण्यापूर्वीच तिची स्वप्ने आई व समाजातील घटक उधळून लावतात. कल्याणी स्वतःच्या अज्ञानपणामुळे ती स्वतःच्या मुलीला महानंदाला भावीणीच्या प्रथेपासून परावृत्त करत नाही याचे चित्रण या कांदबरीतून येते।

देवदासी ही प्रथा अनेक भागात वेगवेगळया प्रगथेच्या माध्यमातून दिसते। याचे मराठी साहित्यामध्ये अनेक लेखकांनी चित्रण केले आहे। यामध्ये महादेव मोरे यांची 'वर आभाळ खाली धरती' सुभाष भेंडे यांची 'जोगीण' बळवंत कांबळे यांची 'जोगव्याचे दिवस' राजन गवस यांची 'चौंडक', 'भंडारभोग', उत्तम बंडू तुपे यांची 'झुलवा' या कादंबऱ्या शंकरराव खरात यांची 'जागतिण' ही कथा चारूता सागर यांची 'दर्शन' ही कथा बळवंत कांबळे यांचा 'गावभोग' हा कविता संग्रह प्रेमानंद गज्वी यांचे 'देवनवरी' हे नाटक, नारायण अतिवाडकर यांचे 'देवदासी' हे नाटक अशा अनेक कलाकृतीतून देवदासी या विषयावर लेखन झाले असले तरी आजही हा विषय दुर्लक्षित राहिलेला जाणवते।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ.वंदना नढे – 'महाराष्ट्रातील देवदासी', स्नेहवर्धन प्रकाशन, पुणे।
2. डॉ.प्रमोद पडवळ – 'मराठी कादंबरीतील देवदासी', स्नेहवर्धन प्रकाशन, पुणे।
3. महादेव मोरे – 'वर आभाळ खाली धरती', करवीर प्रकाशन, कोल्हापुर।
4. बळवंत कांबळे – 'जोगव्याचे दिवस' प्रियदर्शिनी प्रकाशन, कोल्हापुर।
5. उत्तम बंडू तुपे – 'झुलवा' मॅजेस्टिक प्रकाशन, मुंबई।
6. राजन गवस – 'चौंडक', 'भंडारभोग', मेहता पब्लिकेशन हाऊस।
7. नारायण अतिवाडकर – 'देवदासी' प्रमोद प्रकाशन, बेळगाव।

भ्रमणध्वनी – 8605985359

ई.मेल– s.s.kamble72@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 403-407
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान परिप्रेक्ष में नारी विमर्श

-डॉ. खरटमोल मदन नामदेव
हिंदी विभाग, सौ. सुवर्णलता गांधी महाविद्यालय, वैराग, जिला सोलापुर।

नारी और पुरूष समाज की दो मूलभूत एवं मुख्य इकाई है जिनसे मिलकर समुह, परिवार, समाज एवं राष्ट्र बनता है। जिनकी हर पहचान, स्तर उसका स्व उपर्युक्त की समृद्धि अथवा अधोगति के लिए जिम्मेदार होता है। आज चर्चा के केंद्र में नारी विमर्श यह विषय अपना स्थान बना चुका है। यद्यपि यह बात स्पष्ट नही है कि स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को कभी स्वीकारा नहीं गया है। जहाँ तक हमारा हिंदी साहित्य से संबंध है,वहाँ तक अपने हजार वर्षों के इतिहास में किसी न किसी रूप में अकेली नारी की उपस्थिती को स्वतंत्र रूप में महसूस ही नही करती है। आज के भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी साहित्य समाज में नारीवादी विमर्श ने केंद्रिय स्थान पाकर अपने महत्व एवं विशिष्टता को प्रतिपादीत किया है। इस विमर्श ने पितृसत्तात्मक मूल्यों, दोहरे मानदंडों, लिंगभेद की व्यवस्थाने और उसके राजनीति एवं सामाजिक संरचना के अंतर्विरोधों पर उंगली रखी है। नारीवादी रचनाओं का कहना है कि इस नारी विरोधी बर्बर व्यवस्थाने सदियों तक नारी को कदम–कदम पर रौंदा है। उसके व्यक्तित्व को नकारते हुए, उसकी गरिमा का हनन किया है–"साहित्य मनुष्य के सुरम्य चिंतनो और संचित अनुभवों की हदयस्पर्शी भाषाई, अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। वह विगत युगों के मानवीय संघर्षों को जानने का तथा मानव संस्कृति और सभ्यता को उसके सही हालत में पहचानने का सशक्त साधन भी है।"[1]

पुरूषवादी वर्चस्व समाज ने नारी के गले में सतीत्व, मातृत्व, नारीत्व के इस सुनहरे फंदे में लटकाकर उसे अपना गुलाम बनाया है। इस गुलामी से निजात पाने के लिए नारी को अपने आपको पहचानना, जानना जरूरी हो गया है। उसे अब आत्मवलोकन करना ही होगा और उन तमाम मान्यताओं, नियमों, वर्जनाओं और प्रतिमानों को पुनःपरखना होगा। इतना ही नही बल्कि उन्हें निष्काशित करना होगा। जो कि उन पर पुरूष सत्ता ने अपने मनमाने रीति से उस पर थोपा गया है। नारी–मुक्ति के इस कूट प्रश्न को पुनःपुन परिभाषित कराकर उसे नयी परिभाषा से गढ़ना होगा। तभी तो वह हाशियाकृत स्थिति से वह निजात पाकर अपना पूर्व स्थान प्राप्त कर सकेगी। नारी विमर्श की इस नैतिक आचरण की पैतृक मर्यादाओं और उसकी खोखली व्यवस्था को उसे तोड़ना जरूरी बन जाता है। उसके ऊपर इस पुरूषसत्ताक व्यवस्था ने जो निरंतर दबाव डाला गया था। उसे अब समझने की आवश्यकता बन गयी है। समाज के सारे कानून पुरूषों के ही लिए बनाए गए थे। उसे अब वह अच्छी तरह से समझ रही है। इस संदर्भ में डॉ. उषा यादव कहती है – "समाज में घिसी–पिटी रूढ़ियाँ जड़ संस्कार और मृतप्रायः मान्यताएँ भी पारिवारिक जीवन के लिए अभिशाप बन जाती है।"[2]

आज की पुरूषसत्तामक समाज व्यवस्था ने पुरूषों को मुक्त छोड़ दिया है। परंतु नारी के मन में ड़ाली गयी मर्यादाओं की ड़ोर अब उसे स्वंय को ही निकालनी पड़ेगी। तभी तो संभव है कि वह सिर्फ अपने लिए ही

जियेगी और समाज के इस दोगले नीति के दोहरे मापदण्ड से मुक्त होगी। नारी को प्रकृति का सुंदर उपहार मिला है जिसके कारण वह सारे सृष्टि का आधारबिंदु सिद्ध हुई है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक नारियों के बदलते गए स्वरूप की चर्चा करनी हो तो स्पष्ट होता है कि, वैदिककाल में घर में उसका स्थान कुटुंब प्रमुख का था। उस समय घर के सारे सदस्य उसके सृजनात्मक क्षमता का लोहा मानकर उसका महत्व आंका जाता था। नारीवादी चिंतक डॉ. रतनकुमार पांडेय इस संदर्भ में अपने मत को स्पष्ट करते हुए लिखते है 'अपनी समस्त शक्तियों से पूर्ण महिमामयी महिला के सम्मुख किसी का मस्तक आदर से नत हुए गिना नही रह सकता, यह अनुभव की वस्तु है, तर्क की नही।' परन्तु कालान्तर में जैसे–जैसे मानव संस्कृति और सभ्यता के क्षेत्र में परिवर्तन या बदलाव आये वैसे–वैसे उसकी उस स्थान में गिरावट दर्ज होती हुई नजर आती है– "साहित्य में स्त्री की जो छवि अंकित होती है, चाहे वह पुरूष करे अथवा स्त्री,उसका प्रभाव समाज में स्वीकृति छवि पर पड़ता है। बहुत धीरे–धीरे मन्थर और नामालूम गति से और परोक्ष रूप में, पर पड़ता जरूर है। स्वंय स्त्री का लेखन जब स्थापित या स्वीकृति छवि का विखंडन करके, नई छवि गढता है,तो उसका प्रभाव पुरूष के विखंडन से पृथक और अधिक प्रबल रूप में पड़ता है। क्योंकि वहां, स्त्री का नए तरह का लेखन कर पाना भी अपने में एक नई छवि का प्रतिपादन करता है,उसे पुष्ट करता है।"[3]

एक ओर वह अपने साहस का परिचय दे देती है। वह अपने जीवन की यात्रा जारी रखती है। तो दूसरी ओर वह पुरूषों से साहसपुर्ण मुकाबला कर अपने विकास की ओर अग्रसर होती है। अर्थात उसका वैदिक काल में जो एक स्थान था उस स्थान को पाकर वह अपनी और अपने वर्ग विशेषता को पीछे छोड़ देती है। अब वह अपने को पुरूष से बराबरी का स्थान पाने का प्रयास करती है। लेखिका कृष्णा सोबती जैसी नारीवादी रचनाकार का नजरिया उनके समय सरगम उपन्यास में वह प्रतिनिधी बनकर अपने विचारों को इस तरह प्रकट करती है–"प्रकृति के यह दो मूल पक्ष अब आगे पीछे नहीं, आमने–सामने खड़े है ताकि साथ–साथ कदम मिला सकें। मात्र अनुकरण और नेतृत्व से ही नहीं–एक दूसरे की बराबरी में। सांझेपन में।"[4]

नारी–पुरूष का पारिवारिक और सामाजिक संबंध पति–पत्नी के रूप में विवाह संस्था जैसी सामाजिक संस्था के माध्यम से पूरी होती है। वह उसे अपने सहजीवन के बंधन में बंधकर उसे स्वीकृत करती हैं। परंतु देखा जाता है कि समय–समय पर उसमें अनेक विघातक विचार जुड़ गए है। जिनमें दहेज प्रथा, बालविवाह और अनमेल विवाह जैसी अनेक कुप्रथाओं के कारण उसमें कई प्रकार की समस्या उभरती हुई दिखाई देती है। वर्तमान समय में वह विवाह विच्छेद, परस्पर तालमेल का अभाव, प्रवृत्ति भेद, अस्वस्थ यौन संबंध आदि समस्याओं के बावजूद नीरस यौन जीवन के परिणाम से स्वतंत्र काम संबंध या अप्राकृतिक यौनाचारण जैसी घातक, त्रासद और विस्फोटक बातों का प्रचलन आज समाज में हो रहा है। प्राचीन काल से भारत में नारी को देवी, धरित्री एवं धरती के रूप में चित्रित किया गया था। इस कारण उसकी ओर अराध्य के रूप में उसे मान्यता दी गई। उसे एक आभूषण एवं निरंतन भोगने की वस्तु के रूप में उसे स्वीकारा गया था। वह केवल र्निजीव वस्तु एवं पैतृक संपत्ति का ही एक रूप धारण कर चुकी थी। समाज में नारी को लेकर इस प्रकार की अनेक गलत धारणाएँ एवं अर्नगल बाते रूढ हो गयी थी। कृष्णा सोबती जी ने अपनी उपन्यास समय सरगम में अपने इस विचार को प्रकट करते हुए लिखती है –"धर्म, श्रृद्धा इस देश का गहनतम प्रवाह है। वह सिर्फ जीवन शक्ति का ही स्त्रोत नहीं, राजनैतिक शक्ति का भी विस्तार है।"[5]

उसी प्रकार से एक ओर दर्शनिक पटल पर उसके उदात्त रूप को स्थापित किया गया था। तो दुसरी ओर उसे अनेक प्रकार की गलत धारणाओं में उसे बंद करते हुए, इन सारी भ्रांतियों में उसे लिपट कर रखा गया था। इस संदर्भ में प्रसिद्ध छायावादी लेखिका महादेवी वर्मा लिखती है, 'नारी को परिवार, संतानोत्पत्ति और वर्ण्यवस्तु बनाने के पीछे वेद कालीन परंपरा कम दोषी नही है।' भारतीय नारी को लेकर होने वाली वास्तविकता को भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की धरोहर कहीं जाने वाले रामायण और महाभारत जैसी कालजयी साहित्यों में नारियों की इस दशा का चित्र अंकित किया गया है। हम उन रचनाओं को भारतीय साहित्य की धरोहर के रूप में स्विकृत करते है। यहाँ देखा जाता है कि वैदिक काल में भी मैत्रेयी और गार्गी जैसी विदुषी नारियाँ केवल पुरूषों का क्षेत्र समझे जाने वाले शास्त्रार्थ विद्या में भी वह अपनी निपुनता एवं कुशलता का परिचय पहले से जमकर दे चुकी थी। मैत्रेयी और गार्गी इन जैसी प्रभूतियाँ उस समय भी मैजुद थी। वह भी अपने तप, त्याग, यज्ञ, पति–परायण और अनुष्ठान आदि गुणों से संप्रक्त बनी उच्च विद्या विभूषित नारियाँ थी। जो अपने संपूर्णता का परिचय देती हुई नजर आती है। वह अपनी इस श्रेष्ठाता को सिद्ध करती है। एक ओर जिस रामायण काल में सीता अवहृत हुई थी। उसने अपने को कठोर अग्नि परीक्षा से परीक्षित होकर अपने स्वत्व का प्रमाण दे देती है और अन्त में वह अंतसधाम में निर्वासित हो जाती है।

यह बात संपूर्ण नारियों के लिए गैरवान्वित करने वाली सिद्ध होती है। तो दूसरी ओर महाभारत में द्रौपदी/पांचाली का चित्र छिछलेदार नारी के रूप में किया गया था। पहले तो उसे पाँच पतियों के साथ वचनों की मर्यादाओं बंधकर उसे जुड़कर रहना पड़ा। पश्चात् उसे जेष्ठ पति द्वारा जुएँ में दाँव पर लगाया गया। तद्नंतर उसे भरी कुरूसभा में निर्वस्त्र करके केवल उसे अपमानित ही नहीं बल्कि संपुर्ण नारियों को लज्जित किया गया। देखा जाता है कि नारी की प्रशंसा में या उसके स्तुति में बहुत सारे श्लोक लिखे हुए मिलते है। परंतु उसके शोषण, दोहन, दमन, संघर्ष और उत्पीड़न की बातों को लेकर बहुत कम मात्रा में लिखा गया है। अर्थात वह नहीं के बराबर पाया जाता है– "स्त्री इस संज्ञा पर दुख का गहरा प्रकोप रहा है। हम उसी को स्त्री मानते है, जिसे त्रासदी और पीड़ा का सम्मोहन हो। पर ध्यान रहे–स्त्री शरीर में एक घोड़ा बँधा रहता है। भक्तजनों, उसे काबू में रखना जरूरी है। असल बात यह कि स्त्री देह है। इसलिए उसे मार्मिक अनुभूतियाँ बिछौने से ही मिलती है। विचार उसका क्षेत्र नहीं। इसीलिए वह आत्मदया से ग्रस्त है।"[6]

हमारे देश में यह वास्तविकता है कि नारी की यह बड़ी विड़म्बना है वह जिसके संबंध में भरी सभा, गोष्ठियों में बहुत जादा सहानुभूति जतायी जाती है। परंतु देखा जाता है की यह एक बडी विडम्बना है। वास्तव में उसे अपने सुधार का एक भी अवसर नहीं दिया कि है– "भारत में नारी जीवन जितना असुरक्षित, अपमानित और पीड़ामय है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रतिदिन के समाचार पत्रों की उन सुर्खियों से लगता, जिनमें हम तीन या पाँच वर्ष की बच्ची के साथ बड़ी निर्ममता के साथ उस पर अत्याचार करते है और उसके सबुत को मिटाने के लिए उसकी हत्या के समाचार को पढ़ते है।"[7]

हिंदी साहित्य की अनेक नारी कथाकारों की एक सशक्त परंपरा मिलती है। उनमें मन्नू भंडारी, शशि प्रभा शास्त्री, कृष्णा अग्निहोत्री, मंजुला भगत, मृदुला गर्ग, उषा प्रियवंदा, नासिरा शर्मा, मेहरूनिसा परवेज, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुदगल, ममता कालिया, चंद्रकांता, प्रभा खेतान और कृष्णा सोबती आदि अनेकानेक नारी लेखिकाओं ने नारियों के बदलते तेवर को अपनी अनेक कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

इन नारी कथाकारों के द्वारा नारियों की अनेक वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक समस्याओं का जिक्र करते हुए इनकी समस्याओं पर प्रकाश ड़ाला है। जैसे अवैध संबंधों, रखैल की, परिवार नियोजन की, विधवा, विधवा माँ की, कुंवारी माँ की, विवाह विच्छेद, नामर्द पति की, ठंडी पत्नी की, अपराधी जातियों के स्त्रियों की, वेश्याओं की समस्या आदि अनेक समस्याओं के अलावा और भी अनेक समस्याओ का जिक्र उनके साहित्य के केंद्र में पाया जाता है। परंतु उन्होंने इन सारी समस्याओं के होने के बावजूद अपने जीवन के प्रति होने वाली सकारात्मक सोच का भी अपनी अनेक रचनाओं के माध्यम से प्रकट करती हुई नजर आती है। साथ ही साथ उन्होंने पुरूषों एवं समाज को यह भरोसा दिया कि वह अकेली पुरूष से कटकर जीना नहीं चाहती बल्कि वह उनके साथ मिल–जुलकर और समेटकर रहना चाहती है।

वह अपना जीवन साथ मिलकर जीना चाहती है। उसी में ही उन दोनों की भलाई है। यह बात वह अच्छी तरह से जानती है। इस कारण वह उनसे मिलकर एक दूसरे के अनुरूप बनकर आपना जीवन व्यथित करती है। ऐसा करने से उन दोनों का ही कल्याण है। इस बात की वह मूक संम्मती दे देती है। इस कारण वह प्रकृति के इन दो मूल पक्षों कों अब आगे पीछे नहीं बल्कि आमने–सामने खड़े होने के बजाय साथ में कदम से कदम मिलाकर चलने का संकल्प करा कर अपना जीवन चलाती है। इस बात को वह स्वीकृत कर अपनी सुझबूझ और समझदारी का परिचय दे देती है। परंतु देखा जाता है कि अनुकरण और नेतृत्व से ही नहीं एक दूसरे की बराबरी में और उनके सांझेपन से ही वह सफल हो सकते है।

अब नारियों की समस्या देश की एक प्रमुख समस्या बनती जा रही है। जो नारी युगों–युगों से शोषित और पिड़ित बनकर आपना जीवन जी रही है। वह सभी युगों मे पुरूषसत्ताक प्रवृत्ति का शोषित होती आ रही है। जैसे वह क्रमशः अपने जन्म से पिता, पति, बेटा के अनुशासन से शासित होती आ रही है। उसका कहीं पर भी स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। वह केवल वैदिक काल में पुरूष के साथ आपना बराबरी का स्थान पाती है। इसका कारण यह था कि, उस काल में मानव सभ्यता और संस्कृति की चरम सीमा पर आसीन था। इस कारण उस समय समाज में आचरण के उच्च कोटि के आदर्श एवं नैतिक मूल्य मैजुद थे। उस समय पति–पत्नी के स्वतंत्र अस्तीत्व के बजाय एक दूसरे के पोषक बनकर रहना ही उन्हें जादा पसंद था। वस्तुतः इस काल के अपवाद को छोड़कर बाकी पूरे समय में नारियाँ समाज के शोषण का ही शिकार होती हुई नजर आती है। इस शोषण व्यवस्था के पीछे केवल पुरूष सत्ता की ही बहुत बड़ी साजिश दिखई देती है। यह बात इतिहास में आए अनेक उदाहरणों से स्पष्ट होती है। नारी को उस के मर्यादावादी रूप ही उसे गलत पथ पर जाने से उसे रोकते है। स्वार्थी से स्वार्थी नारी भी निःस्वाथ, निष्कलुष प्रेम करनें का कार्य करती है। कृष्णा सोबती जी ने अपनी उपन्यास समय सरगम में अपने इस विचार को प्रकट किया है।

इसके अलावा नारी की अशिक्षा, साधनहीनता, वर्गभेद, जातीयता, आर्थिक परावलंबत्व, छद्म पारिवारिक वर्जनाएँ, बंधन, कुरीतियाँ, ढोग–ढकोसले, अंधविश्वास, प्रतिबद्धताएँ यह सारी समस्याएँ/त्रासदीयाँ नारी जीवन की बाधाएँ बनी हुई थी, जिनका बेड़ा उसे पार लगाना था। जन्म से लड़के लड़कियों में भेदभाव के कारण नारियों का संपूर्ण विकास संभव नही हो पाता है। उसके साथ किए जाने वाले भेदभाव पूर्ण आचरण एवं व्यवहार से उनके मन में असुरक्षा की भावना पनपती है। उसे अपने पिता और पति के सम्पत्ति पर होने वाले अधिकार से उसे वंचित रखने की साजिश रची जाती है। इसके अलावा भी कई अनेक कारण है जिससे वह प्रताड़ित,

अपमानित, विवंचित, असहाय, बेवस, लाचार, कमजोर और शोषित एवं दमित ही दिखाई देती है। इस बात को लेकर अनेक नारी कथाकार मिलती है जिन्होंने अपनी अनेक कथाओं के माध्यम से इस गली सड़ी परंपरा का घोर विरोध करते हुए अपनी अनेक कहानियाँ लिखी है।

निष्कर्षतः :–

हम कहेंगें की नारी की असमर्थता को उसकी कमजोरी समझना और उसे मामूली, अनपढ़, गंवार कहकर उसके महत्व को कम आकना यह वास्तव में नारी के अस्तित्व को ही ठुकराने जैसा ही है। समाज में नारी के प्रति जो दोहरे मापदण्ड अपनाकर उसे समाज की पुरूषसत्ताक व्यवस्था ने उसके स्वतंत्र जीवन जीने तथा उसके विकास के मार्ग को अपना कर वह अपना योगदान देना चाहती है। वह समाज के द्वारा दी गई अपनी इस गहरी चोट का मुँहतोड़ जबाब जरूर खामोशी से दे देती है। परंतु वह चाहती है कि, युगो से चली आ रही इस गलत परंपरा का समय के चलते अब दोहन करना जरूरी हो गया है। समय से चली आ रही नारी–पुरूष के सम्बधों में अपने देश, अपने समाजने अपनी संकिर्णगत सोच से कहीं न कहीं उसके विकास के मार्ग को संकीर्णताओं से अवरूद्ध कर दिया है।

वह अब अपनी लिंगीय पहचान के साथ अपने स्वअस्तित्व की पहचान करना चाहती है। वह अपने इस मानसिक गुलामी से मुक्ति पाकर अपने स्वस्थ्य जीवन के साथ–साथ स्वस्थ्य परिवार एवं समाज का निर्माण करने की बुनियादी बातों का भी दृढ संकल्प करती है और आपनी अलग पहचान वह बनाना चाहती है। नारी को अब इस दासता से एवं अमानवीय रूढ़ियों की गुलामी से निजात पाना चाहती है। अब नारियों को अश्वासित करना होगा कि वह अब किसी भी भय, यौन शोषण, घरेलू हिंसा, आर्थिक विपन्नता और अशिक्षा जैसी परंपरागत विचारों से मुक्त करा कर उन्हें स्वतंत्र करना जरूरी बन गया है। तभी तो वह स्वाधिन होकर आपने कदमों पर खडा होकर अपने समान अधिकारों की अधिकारनी बनेंगी। तब वह अपने जीवन में आपना बराबरी का स्थान पायेगी और अपने को आगे बढ़ाकर अपनी प्रगति स्वंयकर वह मुक्त एवं स्वतंत्र महसूस करेगी। आज की नारी दप्तर की कामकाजी नारीबन गई है। वह अपने खुद के फैसले खुद करने लगी है। वर्तमान काल में नारियों के जीवन मूल्यों में भी बदलाव आ रहे है। विगत काल में विश्व स्तर पर जो वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी तथा आर्थिक परिवर्तन आ रहें हैं। उसके परिणाम सेआज के वर्तमान समय में उसमें पारिवारिक और सामाजिक जीवन स्तर में भी शिघ्रता से परिवर्तन आ रहें है। जिसमें पुरूषों की पुरानी सोच और उसकी पुरानी व्यवस्था में बदलाव आना आम बात बन गयी है। जिसके परिणाम स्वरूप आजनारी के दृष्टिकोण में भी यथावत् परिवर्तन आने लगा है। जो समय की मागँ के अनुसार परिवर्तन आ रहें है। अब नारियाँ अपने खुद की अस्मिता की पहचान अब वह बन रही है।

संदर्भ सूची :–

1. कृष्णा सोबती व्यक्ति एवं साहित्य : डॉ. ब्रिजिट पॉल–पृष्ठ नं. 86
2. हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना : डॉ. उषा यादव–पृष्ठ नं. 164
3. आदर्श नहीं यथार्थ : कृष्णा सोबती का साहित्य : डॉ. सरिता बहुखंडी–पृष्ठ नं. 120
4. अनभै : संपादक रतनकुमार पाण्डेय–पृष्ठ नं. 60
5. समय सरगम : कृष्णा सोबती – पृष्ठ नं. 108
6. समय सरगम : कृष्णा सोबती – पृष्ठ नं. 109
7. हिंदी कथा साहित्य में नारी शोषण : डॉ. राजनारायण पाण्डेय–पृष्ठ नं. 6

चलभाष 9420782710, ईमेल –kharatmolmn@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 408-412
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी तथा मराठी कवयित्रियों की इक्कीसवीं सदी की कविता में विधवा एवं अकेली स्त्री का चित्रण

-भाईदास रघुनाथ पाटील

शोध छात्र, खोपोली,

प्लैट नं. 301 मधुवन अपार्टमेंट, श्रीराम नगर, लौजी, खोपोली, ता. खालापूर जि. रायगढ़–410216

इक्कीसवीं सदी की स्त्री विमर्श की कविता में स्त्री जीवन से संबधित अनेक सुक्ष्म–अति सुक्ष्म बातों का, उनकी भावनाओं का चित्रण किया गया है। भारतीय पुरूष प्रधान समाज व्यवस्था में स्त्री को परिवार तथा समाज में दोयम स्थान दिया गया है। इसी कारण स्त्री सदियों से इस व्यवस्था में शोषित, पीड़ित और प्रताड़ित होती रही है। इसीलिए हिंदी तथा मराठी कवयित्रियों की कविता में परंपरागत, जीवनयापन करनेवाली स्त्री, कामकाजी स्त्री, अविवाहित लडकी, अत्याचार, पीड़ित स्त्री, व्यवस्था को चुनौती देनेवाली विद्रोही स्त्री, पति द्वारा प्रताड़ित स्त्री, वेश्या स्त्री, जैसे चित्रणों के साथ ही विधवा एवं अकेली स्त्री का चित्रण भी किया गया है।

अपने परंपरागत परिप्रेक्ष्य में हम जब ''अकेली स्त्री'' की बात करते हैं, हमारी दृष्टि में उनकी तीन श्रेणियॉ होती है। एक अविवाहित दूसरी विधवा और तीसरी श्रेणी वह जो आज हाल में बढते संबध विच्छेदों के चलते बडी तेजी से उभर कर आयी है वह है परित्यक्ती स्त्री अर्थात तलाकशुदा स्त्री। तीनों श्रेणियों में निर्णायक तत्व है ''विवाह'' अर्थात एक पुरूष सापेक्ष अस्तित्व पुरूष प्रधान समाज में स्त्री की औकात पुरूष से उसके जुड़ाव से ही बनी हुई है विशेषकर पति से इसी औकात की प्राप्ति हेतु 'विवाह' स्त्री के लिए उसके व्यक्तित्व के अन्य अनेक आयामों के विकास के बावजूद 'अपरिहार्य' बना रहा वैसे तो घर–परिवार और गृहस्थी की आवश्यकता एक पुरूष को भी उतनी ही है, जितनी कि एक स्त्री को। इसी विवाह और विवाहिता की स्थिति को इतना मान तथा महत्व है कि अविवाहिता होना प्रतिष्ठा विहीन होना है। यह अकेली स्त्री आज भी समाज में अपनी प्रतिष्ठा के लिए जुझ रही है। और दूसरी गंभीर और चिंतनीय बात अकेली या विधवा स्त्री के संदर्भ में यह है कि अकेली स्त्री की ओर समाज बुरी निगाहों से देखता है। पुरूषों की निगाहों से उसकी कामुक नजरों से बचना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। तो कभी विधवा या अकेली स्त्री के लिए अपना अकेलापन भी असहय हो जाता है। जीते जी मरन यातनाएँ वह भुगत रही होती है। ऐसी स्थिति में जीवनयापन करने वाली विधवा और अकेली स्त्री का चित्रण निम्नलिखित कविताओं में किया गया है।

''अकेली औरत
खुले मैदान में भी खुल कर सांस नही ले पाती
हरियाली के बीच ऑक्सीजन ढूंढती है।

फेफड़ों के रास्ते तक
एक खोखल महसूस करती है
जिसमें आवाजाही करती सांस
सांस जैसी नही लगती।
नाक को पीछे धकेल
मुंह से हवा भीतर खींचती है
और अपने जिन्दा होने के अहसास को
छू कर देखती है।''[1]

कवयित्री सुधा अरोड़ा ने अपनी कविता के माध्यम से अकेली औरत की व्यथा को व्यकत किया है। समाज में अकेली औरत का रहना कितना दर्द भरा जीवन हैं, यही चित्रण कविता में किया है। ये स्त्री घूंट–घूँट कर जीती है। इसीलिए इसकी घुटन को व्यक्त करने के लिए लिखा है कि खुले मैदान में भी अकेली औरत खुली सांस नही ले पाती वह हरियाली के बीच ऑक्सीजन ढूँढती है। उसका मन पूरी तरह से मर चुका है केवल शरीर की सांस शुरू है और वह अपने जिन्दा होने के एहसास को छूकर देखती है। इस प्रकार की स्थिति या उसके मन की भावना को कविता में व्यक्त किया गया है।

''कुणाच्याच मालकीची नसलेली बाई
पहावत नाही कोणत्याच मालकाला
वस्तु आहे, तिचा वापर व्हायला हवा
पडून गंजून सडून कुजून वाया जायची.....
मग हळूहळू सगळयांची मते
एकत्रित येतात – एकसारखीच।
आणि मालक नसलेल्या बाईवर
शिक्कामोर्तब केले जाते
सार्वजनिक मालमत्ता म्हणुन।''[2]

कवयित्री कविता महाजन ने अपनी कविता के माध्यम से अकेली स्त्री के प्रति पुरूष दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला है। पुरूष सत्तामक समाज में एक अकेली स्त्री का रहना भी कितना भयावह है इसी बात को यहां व्यक्त किया गया है। जब कोई जवान परित्यक्ता स्त्री अपना अकेला जीवनयापन करती है तो पुरूष जाति को वह सहा नहीं जाता वे बेचैन हो जाते है कि किसी मालिक के बगैर कोई स्त्री कैसे रह पाएगी। क्योंकि वह एक उपभोग्य वस्तु है। उसका उपयोग नहीं हुआ तो व्यर्थ ही जाएगी। इसीलिए सब पुरूष इस निर्णय पर पहुंचते है कि बिना मालिक की यह स्त्री सार्वजनिक संपत्ति हो सकती है। इस प्रकार स्त्री के प्रति पुरूषों का उपभोग्यवादी दृष्टिकोण को यहॉ अजागर किया गया है।

''पिता जब गए
मॉ अपने यौवन के चरम पर थी
कहा पड़ोसियों ने कि

नहीं ठहरेगी यह अब
उड जाएगी किसी सफेद पंख वाले कबूतर के साथ
निकलते लोग दरवाजे से तो
झॉकते थे घर के भीतर तक, लेकिन
दरवाजे पर ही टंगा दिख जाता
मॉ की लाज शरम का परदा।''[3]

कवयित्री ज्योति चावला ने अपनी कविता के माध्यम से एक जवान विधवा स्त्री के प्रति पुरूष समाज के दृष्टिकोण का चित्रण किया है। कवयित्री लिख रही है कि पिता की मृत्यु जब हुई थी तब मां जवान थी। मां दु:ख में डुबी थी मॉ के समक्ष अनेक समस्याएं थी अपने छोटे–छोटे बच्चों के भविष्य की चिंता थी। किंतु समाज वह जवान विधवा अब क्या करेगी कैसे किसी के साथ भाग जाएगी। इस प्रकार शंका कुशंकाएँ व्यक्त कर रहे है। इतना ही नहीं आस–पास पड़ोस के पुरूष आते–जाते उस विधवा के घर में भीतर तक ताक–झाक करते है। किंतु वह विधवा अपनी लाज बचाए बच्चों की फिक्र में जी रही है। इस प्रकार जवान विधवा का चित्रण यहा किया गया है।

''पण आजही
मी नाकारलं तुझ अस्तित्व
किंवा अव्हेरलं
तुइयातल्या आदिम जनावराला
तर अन्मत्त होऊन
फेडतोस माझी वस्त्रं
भर बाजारात
नगवं करून धिंड काढतोस माझी
मुक्त बाई म्हणजे
दहा पुरूषांना अंगावर घेणारी रांड
म्हणुन घालतोस घाला माइया चरित्रावर।''[4]

कवयित्री नीरजा ने अपनी कविता के माध्यम से विवाह विच्छेद के बाद अकेला जीवन जी ने वाली स्त्री की करूण दशा का चित्रण किया है। परिवार में प्रताड़ित स्त्री को जुल्म सहना जब मुश्किल हो जाता हैं। तब वे यातनाओं को झेलते हुए ही जीवन जीती है। तो कोई स्त्री इस यातनाओं से मुक्ति पाने का आंतिम मार्ग खुदकुशी को स्वीकार करती है। किंतु कुछ विद्रोही स्त्रियां होती जो इन यातनाओं को सहना जब मुश्किल हो जाता है। तब वे अकेला जीवन जीना पसंद करती है। या जब औरत को परिवार से प्रताड़ित या बाहर कर दिया जाता है तब वह आत्मनिर्भर होकर जीवनयापन करती है। किंतु ऐसी स्त्रियां भी समाज की नजरों में खटकती है। उनके चरित्र पर कीचड़ उछाला जाता है। उन पर गलत आरोप लगाए जाते है। इस प्रकार के पति द्वारा किए गए व्यवहार के उपरात एक अकेली परित्यक्ता स्त्री विद्रोह की भावना यहां कविता में व्यक्त करती नजर आती है।

''गॉव–घर का हाल तो जानते ही हो
जिसका मरद साथ नहीं होता
उसे कैसे – कैसे सताते है
गोतिया–भाय–आस–पड़ोस के लोग
वह जो तुम्हारे साथ–आता–जाता था
ईंट–भठठे्वाला
अभी भी आ जाता है अनचाहे
करता है तुम्हे लेकर भदा मजाक
उसकी नीयत कुछ ठीक नही लगती मुझे।''[5]

कवयित्री निर्मला पुतुल ने अपनी कविता के माध्यम अकेली से स्त्री के प्रति पुरूष जाति का दृष्टिकोण कैसा होता है। इस भावना को व्यक्त किया है। कविता में एक स्त्री अपने पति को चिट्ठी लिखकर अपना हाल बता रही है क्योंकि पति बहुत दिनों से रोजी रोटी के लिए गांव से दूर कही शहर में गया है। किंतु वह पति से कह रही है कि तुम तो जानते ही हो गांव–घर में बिना पति की स्त्री को कितनी यातना झेलनी पड़ती है। आस –पड़ोस के लोग कैसे सताते है। इतना ही नही आपके परिचय वाला आपका दोस्त वह ईट भठठे वाला जो आपके न रहते हुए भी अनचाहे घर पर आ जाता है और भद्दा मजाक भी करता है। उसकी इन हरकतों को देखकर मुझे उसकी नीयत कुछ ठीक नही लगती। इस प्रकार की भावना कविता में व्यक्त की गई है।

फोन वाजला तषा त्या धडपडत उठल्या
काप–या काप–या आवाजात काहीबाही बोलल्या
कोणीतरी फोन करून बोलतंय आपल्याषी
याचंच केवढं तरी अप्रूप जपलं त्यांनी मनाषी
आता कित्येक दिवस झाले
दारावरची बेल वाजत नाही
कोनी फोन करत नाही
पोस्टमन सुदधा फिरकत नाही
लांबलचक उजाड़ दिवस
संपता संपत नाही
खिडकीबाहेर बघत राहता
डोळयाचे पाणी खळत नाही।[6]

कवयित्री अश्विनी धोंगडे ने अपनी कविता के माध्यम से अकेली स्त्री की घुटन का चित्रण किया है। कविता में एक ऐसी स्त्री है जो घर में अकेली रहकर उब चुकी है। जब उसके फोन की घंटी बजती है, तो कोई तो फोन पर हमसे बोल रहा है इसी बात को लेकर वह खुश होती है। किंतु कितने दिन बीत गए न घर के दरवाजे की घंटी बजी है, न फोन की घंटी और न ही पोस्टमन (डाकियां) भी इधर से कभी गया है। और दिन तो इतने बड़े लगते है कि वे ढलने का नाम ही नहीं लेते। जब वह खिड़की से बाहर देखती है तो अब उसकी

ऑखो से ऑसू भी नही बहते क्योंकि वे भी अब सूक गए है। इस प्रकार की भावना को कविता में व्यक्त किया गया है।

उपर्युक्त कविताओं का अगर भावार्थ को हम समझते है, तो निश्चित ही कहा जा सकता हैं कि इक्कीसवीं सदीं में भी पुरूष प्रधान संस्कृति का भूत जनमानस पर सवार है तथा अकेली स्त्री के प्रति समाज दृष्टिकोण का पता भी हमें चलता है। उसी प्रकार अकेली स्त्री का जीवन कितनी यातनाओं से भरा होता है। वह किस मनःस्थिति से गुजरती है। यही बात हमें समझ में आती है। इस प्रकार हिंदी तथा मराठी कवयित्रियों ने स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं को अपनी कविता में व्यक्त किया है तथा स्त्री मन की सुक्ष्म अति सुक्ष्म संवदेना और भावनाओं से समाज को अवगत कराया है।

संदर्भ :-

1. कम से कम एक दरवाजा –सुधा अरोडा – पृ. 19
2. तत्पुरूष (कविता संग्रह) कविता महाजन पृ. 37
3. मॉ का जवान चेहरा– ज्योति चावला –पृ. 64
4. मी माइया थारोळयात – नीरजा –पृ. 19
5. नगाडे की तरह बजते शब्द – निर्मला पुतुल –पृ. 41, 42
6 बाई डॉट–कॉम– अश्विनी धोंगडे – पृ. 31

मो. 8698626615

bhaidaspatil40gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 413-417
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर विमर्श

-सरोज शर्मा

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कॉलेज, होशियारपुर, पंजाब।

विमर्श :-

विमर्श से तात्पर्य है कि किसी विषय पर गहन विचार करना। विमर्श किसी भी विषय को लेकर किया जा सकताहै। जैसे– व्यक्ति, समाज, जाति, वर्ग विशेष आदि पर। विमर्श आधुनिक काल के साहित्य की देन है। समकालीन साहित्य में विभिन्न विमर्श चर्चा में हैं जैसे –आदिवासी विमर्श दलित विमर्श, बाल विमर्श, किसान विमर्श, किन्नर विमर्श आदि। वर्तमान दौर हाशिए की अस्मिताओं के विस्फोट का समय है। तमाम वंचितों के संघर्ष आंदोलन की शक्ल में बौद्धिक जगत के समक्ष प्रस्तुत हो रहे है। हाशिए पर धकेला गया वर्ग अपने अस्तित्व, अस्मिता और अधिकारों को लेकर निरंतर संघर्षरत है। आन्दोलन धर्मिता उनमें चेतना का लगातार विस्तार कर रही है। इस चेतना के व्यापक प्रसार से परम्परागत सोच प्रभावित हुई है। समानता एवं सम्मान की चाह में इन अस्मिताओं को नैतिक पहचान दिलाई है। साहित्य भी इनकी संवेदना की आंच में बच नहीं पाया। आज इन पर आधारित विमर्श उत्तर आधुनिक दौर के सर्वाधिक चर्चित विमर्श है। इन सबके साथ साथ उक्त सभी विमर्शों में शामिल किन्नर भी अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा है।

अपनी अस्मिता की लडाई में संघर्षरत विभिन्न समुदाय या वर्ग इक्कीसवीं सदी के साहित्य में मौजूद हैं। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी स्तरों पर हिस्सेदारी और अपने अधिकारों की मांग को लेकर हाशिये की अस्मिताओं का संघर्ष और स्वर उभरे हैं। वर्ग, जाति, वर्ण, लिंग, सांस्कृतिक पहचान, विस्थापन आदि को आधार बनाकर नई अस्मिताएँ सामने आयी हैं। उनमें स्त्री, दलित, आदिवासी, किन्नर आदि आते हैं। इन्होंने समानता, न्याय, हिस्सेदारी और आत्मसम्मान के लिए प्रतिरोध, आन्दोलन और संघर्ष को अपने मुक्ति पथ घोषित किया है। साहित्य के क्षेत्र में वर्तमान समय में बहिष्कृत किन्नर समुदाय पर चिंतन और चर्चा तेज हुई है। वे भी हर मनुष्य की तरह समाज के हर क्षेत्र में अपने लिए एक जगह और सम्मानजनक जीवन के लिए संघर्षरत हैं। इनके अलग समाजों और भाषाओं में विविध नाम हैं। हिन्दी में इनके लिए हिजडा, शिखंडी, छक्का, किन्नर इत्यादि नाम भी प्रचलित हैं। हिजड़ों को परिष्कृत शब्दावली में किन्नर कहा जाता है।

पौराणिक ग्रंथों में भी इनका उल्लेख मिलता है। माननीय उच्च न्यायालय ने ट्रान्सजेंडर को थर्डजेंडर की मान्यता प्रदान की है। आर्थिक अभाव, बेरोजगारी, शिक्षा का अभाव आदि किन्नरों की मुख्य समस्याएँ हैं। मनुष्य की कई मूलभूत सुविधाओं और अधिकारों से वंचित और समाज की प्रताड़ना के शिकार किन्नरों की स्थिति पर बहुत कम लोगों का ध्यान गया है।

इक्कीसवीं सदी के मशीनी युग में मनुष्य के काम चुटकियों में सम्पन्न हो जाते हैं पर उनका मन व

मस्तिष्क दकियानुसी विचारों से भरा हुआ है। साहित्य का स्थान जीवन में विशेष है साहित्य समाज की वास्तविकता का चित्रण कराता है और उपेक्षित वर्ग को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। साहित्य में उपेक्षित शोषित समाज का विचार किया जाता रहा है। वर्तमान युग विमर्श का युग है, अनेक विमर्श की चर्चा हो रही है। साहित्य में नारी विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि पर परिसंवाद गोष्ठियां हो रही हैं परन्तु लिंग निरपेक्ष समाज बहिष्कृत किन्नर समुदाय उपेक्षित रहा है। जिसे इस 21वीं सदी में विचार के केन्द्र में लाया गया है। साहित्य समाज सापेक्ष एंव सामाजिक प्रतिबध्दता के उद्देश्य से परिपूर्ण होता है। समाज में पुरूष एंव स्त्री के अलावा एक तीसरा व्यक्ति भी होता है जो न नर होता है न मादा बल्कि अलिंगी होता है। इसे परिष्कृत शब्दावली में किन्नर कहा जाता है। हिजडा शब्द किसी मर्द के लिए अपमान जनक लगता है उसे ऐसा लगता है मानो पिघला शीशा कानों में डाल दिया गया हो और हिजडे को हिजडा गाली नही लगती बल्कि उसके अंर्तमन में एक कचोट सी होती है।

भारतीय समाज में किन्नर के चार प्रकार पाए जाते हैं – बुचरा, नीलिमा, मनसा, और हंसा। इनके साथ दुनिया भर में भेदभाव होता है। किन्नर समुदाय अपने अस्तित्व को लेकर अनेक मुश्किलों का सामना कर रहा हैं। आज का समाज विमर्शों का समाज है। बहुकेंद्रितता का समाज है। यह एक सर्वाधिक तिरस्कृत और उपहासपूर्वक समुदाय रहा है। भारतीय पौराणिक कथाओं में किन्नरों का स्थान अर्ध नारीश्वर के रूप में माना जाता है। फिर भी भारतीय समाज व्यवस्था में वे तिरस्कारयुक्त जीवन जीने को विवश है। रामायण और महाभारत काल से ही समाज में इस समुदाय की उपस्थिति दर्ज है। पौराणिक ग्रंथों, वेदो, पुराणों और साहित्य में किन्नर हिमालय क्षेत्र में बसने वाली अति प्रतिष्ठित व महत्वपूर्ण आदिम जाति है। जिसके वंशज वर्तमान जनजातीय जिला किन्नौर के निवासी माने जाते हैं। किन्नर का जीवन जन्म से ही कठिनाइयों भरा होता है। जन्म होते ही माता–पिता त्याग देते हैं। बचपन में दोस्तों के साथ खेलने की उम्र में उपहास का विषय बन जाता है और हाव–भाव के कारण लोगों से डाँट–फटकार ही मिलती है। ज्यादातर माता–पिता के साथ से वंचित होकर अकेलेपन का जीवन जीते हैं। और युवावस्था तक आते–आते रोजी–रोटी कमाने की कोशिश करते हैं और वृद्धावस्था तक आते–आते तक उनके पास रह जाता है केवल अकेलापन और निराशा। सविंधान में इन्हे किन्नौरा और किन्नर से सम्बोधित किया गया है। साहित्य में किन्नर विमर्श अलग किन्तु विशिष्ट पहचान बना रहा है। इसके पीछे किन्नरों की उपेक्षित, वंचित और सदियों से अपमानित श्रृंखला का तीव्र विरोध और नवीन बौद्धिक विमर्श की सहभागिता है। हमारा उनके प्रति सोच का दायरा अति संकीर्ण रहा है।

डॉ. पुनीत बिसारिया इस सन्दर्भ में लिखते है "यह कहा जा सकता है, कि हिंदी साहित्य और समाज की मानसिकता में अभी किन्नर विमर्श बेहद अपरिपक्व तथा पूर्वाग्रहपूर्ण अवस्था में है, समाज की वैचारिकी अभी इन्हें स्वीकार करने में हिचक रही है, फिर भी यह तो मानना ही होगा, कि दिन प्रतिदिन खुल रहे और विकसित हो रहे समाज में अब इन्हें थोड़ा सा ही सही, स्पेस देना शुरू कर दिया है और शीघ्र ही हम वह दिन भी देखेंगे, जब ये भी समाज में सामान्य लोगो की भांति अपने मानवाधिकारों के साथ जीवन यापन कर सकेंगे।''

किन्नर का अस्तित्व अनंत काल से चला आ रहा है। यह समुदाय विभिन्न कलात्मक प्रतिभाओं के साथ ही साथ शैक्षिक गुणों से भी संपन्न है। इसके बावजूद ये अपनी पहचान और समाज की मुख्यधारा में शामिल होने के लिए तरस रहा। अगर इनके संसार में जाकर कुछ खोजबीन करने का प्रयास करें तो मालूम पड़ेगा, कि ये

हर प्रकार की प्रतिभाओं से कितने संपन्न है। निश्चित रूप से इनकी प्रतिभाओं का उपयोग समाज और देश हित में लाया जाना चाहिए। समाज में स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, वृद्ध और आदिवासी समुदाय परिधि को छोड़कर केंद्र में आ चुके हैं, और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहें है। किन्नर समुदाय भी हाशियापरक जीवन को छोड़कर अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है।

यह एक ऐसा समुदाय है। जो समाज के बीचों बीच उपस्थित है। विश्व समुदाय के सभी लोगों को अपने अधिकारों को प्राप्त करने का समान अवसर होता है। फिर भी किन्नर समुदाय अपने मानवीय अधिकारों से महरूम है। मानव अधिकारों से तात्पर्य मौलिक अधिकार एवं स्वतंत्रता से है। जिसके सभी मानव प्राणी हकदार है। अधिकारों एवं स्वतंत्रता के उदाहरण के रूप में जिनकी गणना की जाती है। उनमें नागरिक कानून के सामने समानता एवं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के साथ ही साथ सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार, भोजन का अधिकार, काम करने का अधिकार एवं शिक्षा का अधिकार अनेक सरकारी और गैर सरकारी संगठन किन्नर समुदाय को सामान अधिकार दिलाने के लिए कोशिश कर रहें है। सरकार ने भी इन्हे थर्ड जेंडर के रूप में मान्यता दी है।

नवम्बर २००० में भारत सरकार ने इनकी पुरूषों और महिलाओं से अलग पहचान को स्वीकृति दी तथा निर्वाचन सूची एवं मतदाता पहचान पत्रों पर इनका अन्य के तौर पर उल्लेख किया। १५ अप्रैल २०१५ को उच्चतम न्यायलय ने तीसरे लिंग का उल्लेख अनिवार्य कर दिया। सरकार ने इन्हे बच्चा गोद लेने का अधिकार दिया गया है। शैक्षणिक क्षेत्रों में भी किन्नरों की उन्नति के लिए सरकार अनेक कदम कदम उठा रही है। इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में भी किन्नरों को मुफ्त शिक्षा देने की पहल को गयी है। टांटिया विश्वविद्यालय श्रीगंगानगर (राजस्थान) देश का प्रथम पाईवेट विश्वविद्यालय है। जहां पर किन्नरों के लिए सभी पाठ्यक्रमों में निःशुल्क प्रवेश दिया जाता है। आज साहित्य और संगोष्ठियों एवं विविध प्रयासों के द्वारा इस वर्ग की समस्याओं पर ध्यान दिया जा रहा है। ताकि समाज में भी इन्हें उच्च स्थान प्राप्त हो सके। किन्नर समुदाय को उसका हक सिर्फ सरकारी प्रयास से ही नहीं, बल्कि तभी मिलेगा, जब सारे समाज की सोच बदलेगी। आज किन्नरों में अनेक पढ़े लिखे किन्नर समुदाय को उनका हक सिर्फ सरकारी प्रयास से ही नहीं मिल सकता, बल्कि हमें अपनी मानसिक सोच बदलनी होगी। साहित्यकार इसी समुदाय को देखते हुए अपनी लखनी को उजागर किये है। इस प्रकार ऐसी कई रचनाकार है। जिन्होने कविता, कहानी और उपन्यासों में किन्नरों को सहानुभूति की दर्जा दी जाती है।

लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी जी ने अपनी आत्मकथा "मैं हिजडा मैं लक्ष्मी", में समुदायों में से ऊपर उठाया गया है। निराला ने अपने उपन्यास "कुल्ली भाट, समलैंगिंक के बीज बो दिए है, और ऐसे कई कवि है। जो किन्नर के प्रति समाज में सन्त ुलन को बिगाड़ने से बचाया है। हम देखते है, परिवार में जब कोई विकलांग पैदा होता है। तब उस समय उन्हें परिवार में पालन–पोषण नहीं करते, क्योंकि समाज में अवहेलना के कारण उन्हें किन्नरों की टोली में छोड़ दिया जाता है। यह कैसा मानवाधिकार है। जिन्हें शामिल नहीं किया गया है। सरकार को मंथन करना चाहिए। सरकारी स्कूलों, सरकारी दफ्तरों और सरकारी कार्यालयों में नौकरी क्यों नहीं दी जाती। यह प्रश्न बार बार लेखकों ने उठाया। लेकिन इसकी समझ संवैधानिक आधार पर की जानी चाहिए। इसी कडी में महेंद्र भीष्म जी का एक उपन्यास है, "किन्नर कथा २०११ में स्पष्ट टिप्णी करते हुए कहते हैं, कि संतान कैसी भी हो,

उसमे शारीरिक, मानसिक कमी क्यों नहीं, माता–पिता को अपनी संतान हर हाल में भली लगती है, प्यारी होती है। फिर भले ही वह इंसान हिजडा ही क्यों न हो। फिर भी सामाजिक परस्थितियों, खानदान की इज्जत, मर्यादा, झूठी शान के सामने अपने हिजडे बच्चे से उसके जन्मदाता हर हाल में छुटकारा पा लेना चाहते है, यह एक कूट सत्य है। इसलिए किन्नरों को समाज उचित दर्जा देना चाहिए, और समाज में किसी भी प्रकार की हीन भावना से नहीं देखना चाहिए। हमें सभी किन्नरों के प्रति एक मान सम्मान की भावना कर्मठशील व भावपूर्ण रखना चाहिए। साहित्यिक दृष्टिकोण से उनका यह कथन सत्य प्रतीत होता है। किन्नरों पर हिन्दी साहित्य में अल्प मात्रा में काम हुआ है। साहित्य में जितना भी किन्नरों पर लिखा गया है, अपनी संवेदना और गंभीरता में महत्वपूर्ण कार्य है। हाल के वर्षो में नीरजा, माधव, प्रदीप सौरभ, निर्मला भुराड़िया, चित्रा मुदगल, महेंद्र भीष्म, पंकज बिष्ट, सूरज बड़त्या, एस आर हरनोट, पारस दासोत आदि ने महत्वपूर्ण रचनात्मक सृजनात्मक योगदान दिया है।

अगर जनसंचार के माध्यमों की बात करें, तो फिल्मों में किन्नरों का थोड़ा बहुत हास्यास्पद रोल तो दिख ही जाता था। लेकिन १९७४ में पहली बार किसी बड़े एक्टर यानि संजीव कुमार ने "नया दिन नयी रात'' में ट्रांसजेंडर का रोल किया। १९९७ में आई महेश भट्ट की तमन्ना में किन्नर बने परेश रावल पराई बेटी के लिए अपनी बेटी जैसी संवेदनायें रखते दिखाए गए हैं। "दरमियाँ इन बिटवीन में माँ किरण खेर की बेटी किन्नर हैं, और ना चाह कर भी बेटी को किन्नर समाज की अँधेरी बंद गलियों से बचा नहीं पाती, उसे सामान्य बच्चों सी परवरिश नहीं दे पाती।

दिव्या माथुर अपनी कहानी" एक शाम भर की बातें'' में ब्रिटेन के सन्दर्भ में लिखती है, होमोसेक्सुअल, हाई ट्रोसेक्सुअल लेस्वियंस और गे होना वहां की संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। टी वी कार्यक्रमों पर यही लोग छाए हुए है। स्कूल के पाठयक्रम में भी इस विषय की जानकारी देनी चाहिए, और शासन तथा पुलिसकर्मियों में भी इस विषय को लेकर सहनशीलता का परिचय देना होगा। भारतीय संविधान में भी इनको धारा ३७७ के तहत कुछ अधिकार प्रदान किये गए है, लेकिन उन अधिकारों का इनको ज्यादा फायदा नहीं है। इनके भी दिल, दिमाग, भावना एवं संवेदनाएँ होती है। इनको भी आदरपूर्वक जीने का अधिकार समाज में होना चाहिए था। इनको भी शिक्षा के बाद नौकरी प्राप्त करने का हक मिलना चाहिए। किन्नरों के लिए हिंदी साहित्य काफी सराहनीय कार्य कर रहा है।

उपन्यासों, संगोष्ठियों के माध्यम से इनकी बातों को समाज के सामने रखने के लिए पर्याप्त है। किन्नर समुदाय को हक दिलाने के लिए नेशनल लीगल सर्विस अथॉरिटी ने सुप्रीम कोर्ट में एक अर्जी दायर की। जिसमें ट्रांसजेंडरों को तीसरे जेंडर के तौर पर मान्यता के साथ ही साथ केंद्र और राज्य सरकार द्वारा किन्नरों के कल्याण के लिए सामाजिक योजनाएं तथा जागरूकता अभियान चलने की मांग की।

परिणामस्वरूप सुप्रीम कोर्ट ने किन्नरों के पक्ष में फैंसला सुनाया। सुप्रीम कोर्ट ने १५ अप्रैल २०१४ को किन्नरों को तीसरे जेंडर कहकर, समाज को इनके प्रति सोच बदलने की जरूरत है। सुप्रीम कोर्ट ने सरकार से ऐसे कदम उठाने को कहा, जिनसे ये समाज में मान सम्मान पा सकें। कोर्ट ने आपने आदेश में कहा, लोग जो डर, शर्म, डिप्रेशन और सामाजिक दबाव झेल रहे है। उसे खत्म किया जाना जरूरी है। संविधान के तहत हर नागरिक को मानवाधिकार और मौलिक अधिकारों का संरक्षण दिया गया है। ट्रांसजेंडरों को भी इनसे वंचित नहीं किया जा सकता है।

काव्य जगत में निशा माथुर की "छोटी सी खोली में," "तन्हा जीवन की तन्हाईयाँ ''तथा नीरजा मेहता की" मैं हूँ किन्नर "में किन्नर विलाप और इंसानियत की गुहार मन छू लेती है।

"हाँ मैं हूँ किन्नर, पहन लेता हूँ,
चूड़ी, बिंदी, गजरा पायल,
ओढ़ लेता हूँ चुनरी,
किन्तु खुद की देह देख,
समझ नहीं पाता,
मैं पुरुष हूँ या स्त्री,
रूप में अपनी पहचान बनाई।"

निष्कर्षतः-

यह स्पष्ट है कि मानव जाति के इतिहास से ही किन्नरों का इतिहास शुरू हो जाता है और किन्नर जाति का यह सफर आज इक्कीसवी शती के दूसरे दशक के अंतिम चरण तक आ पहुँचा है। स्त्री पुरुषेतर व्यक्तितत्व के कारण थर्डजेंडर न कभी समाज की मुख्यधारों का अंग बन सकें है, और नाहीं साहित्य का। लेकिन संघर्ष जारी है, संवैधानिक लड़ाई में बहुत कुछ जीत लिया है। लेकिन सामाजिक लड़ाई जारी है। आशा है कि, शीघ्र ही वह दिन भी आएगा जब हमारे भारतीय समाज में यह लोग भी सामान्यजनों की भांति अपने मानवाधिकारों के साथ जीवन यापन करेंगे। इसमें हम कितने सफल हुए है। इसका निर्णय आने वाला समय ही करेगा।

सन्दर्भ :-

1. हिंदी उपन्यास और थर्डजेंडर स्त्रीकाल। दिल्ली – ५३ – संस्मरण 2006 पृ सं ५४ .
2. "राजनीति और किन्नर" डॉ. रेखा सोनी।
3. भीष्म महेंद्र (अरू २०११) किन्नर कथा, नई दिल्ली सामयिक।
4. "किन्नर समाज और सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष", "शैलेन्द्र सिंह कुशवाह" जलेसर, एटा (उ.प्र).।
5. दिव्या माथुर, "एक शाम भर बातें'' हिंदी बुक सेंटर, दिल्ली 2000.
6. डॉ. पुनीत बिसारिया, विमर्श का तीसरा पक्ष, डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, रवि कुमार गोंड, अनंग प्रकाशन।
7. साहित्य समाज और किन्नर विशेषांक, बोहल शोध मंजूषा, वर्ष 2019, सं. डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट।
8. किन्नर महाविशेषांक, बोहल शोध मंजूषा, मार्च 2021, सं. डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट।

Gmail-id- saroj-diwedi06@gmail.com

Mob- No- 9815568025

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 418-422
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'मैकलुस्कीगंज' में चित्रित एंग्लो–इंडियन जीवन गाथा

–डॉ.श्रीजिना पी पी

कन्नूर जिला, केरला।

भारत में व्यापार–वाणिज्य के लिए देश–विदेश से कई विदेशी और व्यापारी आए थे। इन लोगों के संबधों से कई नस्लें भी जन्म ली हैं। उन्हें सामाजिक मान्यता भी मिली है। लेकिन कुछ नस्लें आज भी हाशिए पर खड़ी हैं। इनमें एंग्लो–इंडियन्स मुख्य हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 366(2) के अनुसार ऐसे किसी व्यक्ति को एंग्लो–इंडियन माना जाता है जो भारत में रहता हो और जिसका पिता या कोई पुरुष पूर्वज यूरोपियन वंश के हो। भारतीय संविधान में एंग्लो–इंडियन्स को 'अल्पसंख्यक' के अंतर्गत रखा है। इसके साथ राजनीति में भी आरक्षण मिला। आज़ादी के बाद –ऑल इण्डिया एंग्लो इंडियन एसोसियेशन' के प्रेसिडेंट मि.फ्रैंक. एन्थोनी की परिश्रम स्वरुप जवाहरलाल नेहरु ने भारत में रह रहे एंग्लो–इंडियन समुदाय के अधिकारों की सुरक्षा के लिए संविधान के आर्टिकल–79 के तहत इस समुदाय के दो लोगों को देश की लोकसभा में और एक–एक प्रतिनिधि को हरेक प्रांत की एसेंबली में नामजद करने का अधिकार दिया। लेकिन 2020 जनवरी में केंद्र सरकार ने इस आरक्षण को ख़त्म करने का फैसला किया है। सरकार का मानना है कि अब इस समुदाय को आरक्षण की ज़रूरत नहीं है।

भारत में व्यापार–वाणिज्य के लिए डच, पुर्तगाली, फ्रेंच, अंग्रेज़ी आए थे। इनसे उत्पन्न बच्चे जिसका बाप विदेशी और माँ भारतीय मूल की हो 'एंग्लो–इंडियन' कहलाने लगे। इसका सूत्रपात पुर्तगालियों ने ही किया था। भारत में सन 1503 में पुर्तगाली कूटनीतिक 'अलफंसो द ऐल्ब्युर्क्क' ने भारतीयों के बीच पुर्तगालियों की जडें जमाने की कोशिश की थी। उन्होंने पुर्तगाली कारिंदों को भारतीय महिलाओं से वैवाहिक संबंध रखने का आदेश दिया था। पुर्तगाली बाप और भारतीय माँ से पैदा हुआ बच्चा 'मेस्टाईस' और भारतीय पिता एवं पुर्तगाली माँ से पैदा हुआ बच्चा 'सेस्टाईस' कहलाते थे। इसके साथ पुर्तगालियों के नाजायज़ औलादें 'लूज़ो इंडियन' कहलाते थे। बाद में डच और अंग्रेज़ आए और वैवाहिक संबंध का सिलसिला चलता रहा। इस तरह भारत में 'एंग्लो इंडियन' नामक नई नस्ल का जन्म हुआ। पहले एंग्लो–इंडियन्स को 'यूरेशियन्स' कहते थे।

सन 1600 से सन 1785 तक इनकी हालत बेहतर थी। उन दिनों अंग्रेजों ने इन्हें सेना में बहाल किया था। एंग्लो–इंडियन बच्चों को पढ़ाने के लिए इंग्लैण्ड भेजते थे और ऊंची तनख्वाह वाली नौकरी भी देते थे। लेकिन सन 1786 के आदेश के अनुसार इनको पढाई के लिए इंग्लेंड भेजना बंद किया गया। इससे उन्हें अच्छी नौकरी भी मिलना कम हो गया। सन 1791 के आदेश के मुताबिक इनको कंपनी की सिविल या सैन्य सेना में बहाल करना भी बंद किया। जिनके माँ–बाप दोनों यूरोपियन नहीं है उनको सेना में छोटे–मोटे काम ही मिलते थे। इन्होंने अपने अधिकारों के लिए कई संघर्ष किए है। अंत में सन 1833 में सरकार को एक एक्ट पारित करना

पड़ा जिसके अनुसार एंग्लो–इंडियन्स को सरकारी नौकरियों में रखना पड़ा। उन्हें रेल, तार आदि में कठिनाई भरे कामों में नियुक्त करने लगा। अंग्रेजों ने भारत छोड़ा तो इनको 'भारत के नेटिव' बताकर यहीं छोड़ दिया। इस तरह वे सबसे उपेक्षित एक समुदाय बन गया। सन 1941 में मि.हेनरी गिडनी और मि, फ्रैंक एंथोनी जैसे लोगों ने इधर–उधर बिखरे पड़े एंग्लो–इंडियन्स को संगठित करने का प्रयास किया। इसी लक्ष्य के लिए 'मैकलुस्कीगंज' की भी स्थापना हुई है।

'मैकलुस्कीगंज' नामक गाँव बिहार प्रांत के दक्षिणी हिस्से में राँची से आगे बेहद खामोशी से आबाद, दुनिया का एकमात्र एंग्लो–इंडियन गाँव है। यह बिहार के घने जंगल के बीच स्थित है जहां गंझू, उरांव और मुंडा आदिवासी भी रहते हैं। सन् 2000 में अलग झारखण्ड बनने के बाद अब यह झारखण्ड में है। 'मि.अर्नेस्ट टिमोथी मैकलुस्की' ने एंग्लो–इंडियन्स के लिए सन् 1934 में यह गाँव बसाया था। उन्होंने कंका, लपड़ा और हेसालंग नामक छोटे–छोटे आदिवासी गांवों को मिलाकर गंज को साकार बनाया। प्रसिद्ध पत्रकार और लेखक विकास कुमार झा ने इस गाँव को पृष्ठभूमि बनाकर 'मैकलुस्कीगंज : दुनिया के एकमात्र एंग्लो–इंडियन ग्राम की महागाथा' शीर्षक उपन्यास लिखा है। इस उपन्यास को 2011 में अंतर्राष्ट्रीय इंदु शर्मा कथा सम्मान प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास के बारे में स्वयं लेखक ने लिखा है– "वैसे, यह कथा सिर्फ 'मैकलुस्कीगंज' की ही नहीं, भारत की वर्तमान पीढी की भी कथा है, जो पश्चिमी बाजारवाद की होड़ में अपनी जड़ों से कट कर लगातार उसकी कसक महसूस कर रही है। दरअसल, मैकलुस्कीगंज एक डर है। यह कहीं भी घटित हो सकता है।[1] इसमें एक संतप्त समुदाय के स्वत्व संघर्ष को देख सकते हैं।

एंग्लो इंडियन्स भारतीय नागरिक है। वे भारत को अपनी मातृभूमि मानते हैं। लेकिन मुख्यधारा समाज इन्हें भारतीय के रूप में अपनाने के लिए तैयार नहीं है। वे इनको संदेह भरी दृष्टी से देखते है। इनको 'लिविंग घोस्ट' और गंज को 'घोस्ट टाउन' कहकर अपमानित करते रहते है। प्रस्तुत उपन्यास में डेनिस अपने बेटे रॉबिन से कहता है–"हमारी चमड़ी में अंग्रेजों की सी गोराई थी....। हमारे ये बाल ब्रिटिश साहबों की तरह सुनहले थे...हमारी जुबान अंग्रेज़ी थी..पर रॉबिन, खून हमारा हिन्दुस्तानी था ..। भारत की मिट्टी का खून...इंडियन ब्लड..। हमारा दिमाग अंग्रेज़ था पर दिल हिंदुस्तानी..। हम अंग्रेज़ी डिशेज़ खाते थे...और इंडियन मिठाईयाँ लड्डू – पेडे भी पसंद करते थे...। हम ऊपर से अंग्रेज़...भीतर से हिन्दुस्तानी...। हिन्दुस्तानी हमें कभी अपना मानने को तैयार नहीं हुए. ..और अंग्रेजों ने तो हमें पहले ही ठुकरा दिया था..। डस्टबिन में पडी एक कम्युनिटी...का एहसास हमेशा सालता रहा..! यही फेट था एंग्लो–इंडियंस का।[2] इस अपमान से उनके अन्दर कुंठा एवं निराशा उत्पन्न होता है। मि. मिलर नामक पात्र इस अस्तित्व विहीन समाज को 'एक संतप्त नस्ल' या 'एक कर्सिड रेस' कहता है। वे हमेशा असुरक्षित महसूस करते हैं।

मुख्यधारा समाज से प्राप्त तिरस्कार के कारण गंज से कई लोग ऑस्ट्रेलिया, हांगकोंग, कानडा, न्यूज़ीलैंड, आदि विदेशी देशों में पलायन करने लगे हैं। इस प्रकार गंज में इस समुदाय की संख्या घटती जा रही है। पुरानी पीढी गंज से बहुत प्यार करते हैं। वे गंज में ही रहना और मरना चाहते हैं। लेकिन नई पीढी तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा सहन नहीं कर पाते हैं। इसलिए वे गंज से दूर चले जाते हैं। कभी–कभी वे अपने माँ–बाप को भी साथ चलने में मजबूर करते है। इनमें 'एटकिंस', 'कैबरल', 'रॉबर्ट कैस्टलरी आदि कई परिवार शामिल हैं। रॉबर्ट कैस्टलरी की दोनों बेटियां ऑस्ट्रेलिया में हैं। वह बेटियों के कहने पर अपना घर बेचकर उनके पास चला जाता

है। मि.आर.ई. थॉप साहब जो गंज से बहुत प्यार करता था। अपने बेटे 'वाल्टर' के साथ ऑस्ट्रेलिया चला जाता है। उसी प्रकार मि.पीकॉक जिसका गंज में एकड़ में फ़ैली ज़मीन है उसे बेचकर एकलौते बेटे के पास इंग्लैंड चला जाता है। इन लोगों की तरह 'डेनिस मेगावन' भी अपनी शादी के बाद अच्छी नौकरी और बेहतर ज़िंदगी की कामना लेकर होंगकोंग चला जाता है। अपने पिता की मृत्यु के बाद सालों बाद गंज आकर पुश्तैनी घर बेचने का निर्णय लेता है। गंज से बिछुड़ने पर भी वे गंज की यादों में ही खोये रहते हैं। एंग्लो इंडियन्स की इस पलायन प्रक्रिया से उनकी एकता नष्ट हो रही है। वे एक दूसरे से बिखर रहे हैं। इसके बारे में मि. मिलर बताता है–"एंग्लो इन्डियन समुदाय ने तो मुश्किलों का कभी सामना करना सीखा ही नहीं मुश्किल देखी और भागते रहे। इतना भागे कि यह मुट्ठी भर का समुदाय बुरी तरह छिन्न–भिन्न होता चला गया। आने वाले दशकों में तो यह समुदाय कहीं ढूंढे से भी नहीं मिलेगा।[3] इनके अन्दर एक घबराहट है। वे निरंतर असुरक्षा का अनुभव करते है। इसलिए वे चुनौतियों का सामना करने के बजाय पलायन को स्वीकारते हैं।

इनकी मुख्य समस्याओं में बेरोज़गारी भी है। अंग्रेजों के ज़माने में वे रेल, तार, सेना, आदि क्षेत्रों में नौकरी करते थे। लेकिन आज स्थिति बदल गई है। नई पीढी नौकरी की तलाश में विदेश चले जाते हैं। गंज में पानी, बिजली आदि की खिल्लत भी है। गंज घने जंगलों के बीच स्थित है। वहां के रास्तों पर सालों से बिजली नहीं है। आजादी के पहले गंज में लैंप पोस्ट था जो अब पूरी तरह ढह चुके थे। सरकार एवं अन्य अधिकारी वर्गों का ध्यान इस तरफ आया ही नहीं है। इस पर लेखक ने लिखा है–"अन्धकार के स्तूप बने वर्षों से ढहे–ढनमनाये ये अभिशप्त लैंप पोस्ट और यह 'गंज'? एंग्लो–इंडियन समुदाय का एक ध्वस्त लैंप पोस्ट!"[4] गंज को अँधेरे से निकालने के लिए कई सालों पहले गंज के निवासी मि.सी.एच.मैरो ने एक उपाय बताया था और वह इस प्रकार है–प्रत्येक एंग्लो–इंडियन निवासी अपने मेन गेट पर एक लैंप पोस्ट बनवाना है। उसमें लालटेन जलाने का काम प्रत्येक को संभालना है। बाद में बिजली के आने पर भी पोस्ट अभी तक बदला नहीं है। गंज में आसपास अस्पताल नहीं है। जो अस्पताल है उसकी हालत बुरी है। गंज की अनगिनत समस्याओं के बारे में 'मिसेज़ थ्रिपथाप' बताती है– 'आस–पास के इलाकों में टी.बी.के ढेर सारे मरीज़ हैं।' डॉक्टर यहाँ रहे तब न। वेटनरी डॉक्टर तक यहाँ नहीं रहते, जबकि यहाँ उसकी डिस्पेंसरी है। बिजली अक्सर गायब रहती है। टेलीफोन हरदम डेड। हाँ, बच्चों की पढाई–लिखाई के लिए गनीमत है कि कैथोलिक मिशनरी वालों ने बहुत पहले से एक स्कूल खोल रखा है।[5] आर्थिक कठिनाई के कारण गरीबी की समस्या भी गंज में है।

गंज में गंझू, उरांव और मुंडा आदिवासी भी हैं। इन लोगों के मन में पहले एंग्लो इंडियन के प्रति डर था। क्योंकि एंग्लो इंडियन में शुरू–शुरू में 'साहबी काम्प्लेक्स' था। वे सोचते थे कि उनकी रगों में अंग्रेजों का खून है, इसलिए वे 'रूलिंग क्लास' के लोग हैं। वे अंग्रेजों के सामान कपड़े पहनते थे। उनकी रहन–सहन, भाषा, संस्कृति आदि अंग्रेजों जैसा था। धीरे–धीरे उनके इस सोच में बदलाव आता है। क्योंकि एंग्लो–इंडियन की तरह आदिवासी भी मुख्यधारा से दूर थे। एंग्लो–इंडियन और आदिवासियों के बीच वैवाहिक संबंध अधिक मात्रा में होती थी। इससे उनके बीच आत्मीय संबंध होती है। इस तरह आत्मीय संबंध स्थापित होती है। 'डेनिस मेगावन' और 'बहादुर उरांव' के बीच गहरी दोस्ती है। उसकी बेटी 'नीलमणि' डेनिस को चाचा पुकारती थी। बाद में डेनिस का बीटा रॉबिन और नीलमणि की शादी भी होती है। मि.एडली चार्ल्स पेंटोनी, गिरिडीह की फिलोमिना नामक आदिवासी लड़की से शादी करती है। बाद में उनका बीटा जेम्स पेंटोनी भी सूसन नामक अदिवासी लड़की को

बीवी बनाता है। इसके बारे में लिखा है–" मि.मेरीडिथ ने एक आदिवासी से शादी की...मि.शेरार्ड ने भी अपनी आदिवासी आया सोमारी को बीवी बना लिया। चाटटी नदी के पास कोल्पाडा की सोमरी देखने में कुछ ख़ास नहीं थी। पता नहीं क्यों, मि.शेरार्ड उस पर बुरी तरह फ़िदा हो गए थे...। और मि.आर.जी स्पार्क्स की बेटी मेरी ने जब गाँव के ही एक साहू बिरादरी के लड़के राम सेवक से शादी कर ली तो दोनों तरफ से काफी चीख–पुकार मची। पर इन रिश्तों के कारण एक अच्छी बात ज़रूर हुई की गाँव में 'इन्फीरियर'..'सुपीरियर' का कंप्लेक्स बहुत कुछ खत्म हो गया.।"[6] वे कभी नौकर, मजदूर, आया बनकर एंग्लो–इंडियनों के घर में काम करने थे। मि.पार्किसन के घर में खुशिया पाहन नामक आदिवासी नौकर बनकर आता है तो वे उसे बेटे के रूप में स्वीकार करते हैं। पार्किसन की मृत्यु के बाद भी उसके बेटे उसे हर महीने पांच सौ रूपये पेंशन के रूप में भेजता है। 'मिस.बॉनर' जो बूढ़ी और अविवाहित है अपने घर में 'मरियम' नामक आदिवासी लड़की को आया बनाकर रखती है। वह मरियम की शादी के लिए गहने खरीदकर रखती है। अंत में गंज की समस्याओं से मुक्त होने के लिए आदिवासी लोग एक संगठन स्थापित करता है तो एंग्लो–इंडियन भी इसमें शामिल होते हैं। इस तरह वे एक दुसरे के साथ घुलमिल गए हैं। वे दोनों मिलकर शोषणों व तिरस्कार के खिलाफ आवाज़ उठाने लगे हैं।

एंग्लो–इंडियन का मुस्लिम के साथ भी आत्मीय संबंध हैं। मोहम्मद लत्तीफ का बेटा 'अल्ताफ' के बीमार होने पर मि.रेफेल उसे पटना ले जाता है और पोते की तरह ख्याल रखता है। बाद में पत्नी की मृत्यु के बाद रेफेल अल्ताफ के घर में उसका दादाजी बनकर रहता है। गांववाले उसे 'मोहम्मद रुबिन रेफेल' पुकारते थे। रेलवे स्टेशन पर चाय की कैंटीन चलाने वाली मिसेज़ कारनी मजीद को बेटा मानता था। अपनी मृत्यु के बाद शव संस्कार करने का अधिकार मजीद को देती है। यहीं नहीं कैंटीन और अपना साईकिल भी मजीद को देती है। दोनों के बीच के आत्मीय संबंध के बारे में लिखा है–"उसे लगता है, करनी आंटी उसकी पिछले जन्म की माँ थी। किस मज़हब का वह और किस मज़हब की कारनी आंटी..पर।[7] इस तरह हशियेकृत समाज आपस में एक दूसरे के सुख–दुःख में भाग लेकर प्यार से रहते हैं।

एंग्लो–इंडियन की संस्कृति कुछ अलग है। क्योंकि उनकी वेशभूषा, भोजन, भाषा रहन–सहन आदि सभी में अंग्रेजों का प्रभाव देख सकते हैं। इनके नाम अंग्रेज़ी ढंग के हैं जैसे– 'मि.फिल.कॉलिंस', 'मि.नोएल गार्डन', 'मि. विलियम पॉल गार्डन', मि.आर्थर जॉन थ्रिपथॉप', 'डैनी मेरिडेथ', 'एडली चार्ल्स पैंटोनी' आदि। वे ईसाई धर्मावलंबी हैं और क्रिसमस व ईस्टर धूमधाम से मनाते हैं। 2 अगस्त सन 1935 को ब्रिटीश सरकार ने एक एक्ट के ज़रिए इस समुदाय को विधिवत् मान्यता दी थी। उस दिन की याद में वे 'वर्ल्ड एंग्लो–इंडियन डे' और गंज के स्थापक मैकलुस्की की याद में 'फाउंडर्स डे' भी मनाते हैं। वे पश्चिमी ढंग के साहबी कपडे पहनते हैं। इनकी शादी अंग्रेजों की तरह चर्च में होती है। इनके जीवन में नृत्य, संगीत और शराब का मुख्य स्थान है। वे खुशियों के अवसरों पर अंग्रेज़ी दारू, महुए की शराब या कॉकटेल पीकर जश्न मनाते हैं। इनके जीवन शैली के बारे में लेखक ने लिखा है–" सचमुच, एंग्लो–इंडियनों की जीवन शैली अद्‌भुत रही है। अलमस्त और बेफिक्र निरंतर उत्सवमय...।"[8] इनकी उत्सवधर्मिता और खर्चीला स्वभाव उन्हें गरीबी की और भी ले जाते है। इस समाज में औरतें काफी स्वतंत्र थी। औरतों की वेश–भूषा के बारे में लेखक ने लिखा है–" वैसे भी एंग्लो इंडियन महिलाएं अपनी साज–सज्जा के लिए हमेशा से कुछ ज्यादा ही सचेत रही है। अश्व्..रूज़, लिपिस्टिक और आयब्रो पेंसिल कोई महिला आज अपने पर्स में लेकर चलती होगी, पर एंग्लो–इंडियन समुदाय की महिलाएं उस ज़माने से अपने

पर्स में यह सब लेकर चलती रही थीं जब भारत में महिलाओं के लिए कठोरतम पाबंदियां थीं और औरतें 'सती' बनायी जाती थी।[9] वे सुन्दर चटकीले कपडे, गाउन आदि पहनती थी। उन्हें गहने आदि अधिक पसंद नहीं हैं। ये औरतें 'बॉब कट' या 'ब्बायकट' ही रखती थी।

मैकलुस्कीगंज दुनिया के सामने एंग्लो–इंडियन के अस्तित्व की पहचान है। उसी तरह प्रस्तुत उपन्यास भी इस अल्पसंख्यक समाज की पहचान और आएअज़ बनकर खड़ा है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. मैकलुस्कीगंज – विकास कुमार झा, पृ. 5
   राजकमल प्रकाशन प्रा.लि, अशोक राजपथ, पटना–800 006, पहला संस्करण 2010
2. वहीं – पृ. 28
3. वहीं – पृ. 247
4. वहीं – पृ. 325
5. वहीं – पृ. 138–139
6. वहीं – पृ. 63
7. वहीं – पृ. 136
8. वहीं – पृ. 62
9. वहीं – पृ. 275–276

मोबाईल नं 9656212983, 9400537455

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 423-427
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्त्री विमर्श

-डॉ. सुनीता राठौर
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), शासकीय एम.एम.आर. स्नातकोत्तर महाविद्यालय चाम्पा (छ.ग.)

मध्यकालीन भारतीय समाज में नारी सदैव अपने अधिकारों से वंचित और उपेक्षित रही है, क्योंकि हिन्दू समाज पितृसत्तात्मक समाज है। हमने इस लेख में नारी की स्वतंत्रता तथा उसके अधिकारों की बात कही है। किसी भी समाज में सुसंस्कृत होने की पहचान नारी से होती है। जब–जब नारी को नीचा दिखाने का प्रयास किया गया, तब–तब नारी अपनी महत्ता को प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया है। नारी को स्वतंत्र अर्थात मुक्त (सीमा के अंदर) रहना चाहिए। नारी को छः गुणों से युक्त माना गया है :–

''काव्येषु मंत्री, कर्मेषु दासी,
भोज्येषु माता, रमणेषु रम्भा
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री
मार्य्या षड्गुण्यवती च दुर्लभा। (1)

अर्थात् एक पत्नी प्रत्येक कार्य में मंत्री के समान सलाह देने वाली सेवादि में दासी के समान काम करने वाली, भोजन कराने में माता के समान, शयन के समय रम्भा के समान सुख देने वाली, धर्म के अनुकुल तथा क्षमता जैसे गुणों को धारण करने में पृथ्वी के समान छः गुणों से युक्त स्त्री होती है।

स्त्रियों में मात्र गुण ही होता है, अवगुण नहीं ऐसा नहीं है, गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार उनमें आठ अवगुण भी है – साहस, झूठ, चंचलता, माया, भय, छल, अविवेक, निर्दयता।

नारी सुभाद्र सत्य सब कहहीं
अवगुन आठ सद उर रह ही
साहस अनृत चपलता माया
भय अविवेक असौच अदाया।। (2)

नारी की वास्तविक स्थिति को समझा जाए तो नारी को आधुनिक काल में सभी अधिकार प्राप्त है, उसे कमाने का अधिकार हे, पर उसे खर्च करने का अधिकार नहीं है। परिवार मे बच्चे पैदा करने से पालन–पोषण की जिम्मेदारी स्त्री की है लेकिन बच्चे की पढ़ाई तथा उसके शादी ब्याह जैसे निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार नारी दोहरे दर्जे की जिंदगी व्यतीत करती है।

कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, लेखक, समीक्षक और निबंध लेखक सभी ने बड़े ही सम्मान के साथ नर–नारी के सम्बन्धों को ही नहीं बल्कि नारी के जीवन से जुड़ी समस्याओं को अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया। हिन्दी साहित्यकारों ने नारी पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया है। नारी जीवन के दर्द को बहुत गहराई से उभारा

है। वैदिक काल में महाराज मनु ने स्त्री को पुरूष के द्वारा रक्षित बनाकर कहा है :

''पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने
पुत्रश्च स्थविरे भावे, न स्त्री स्वतन्त्रामर्हति। (3)

अर्थात् स्त्री बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा बुढ़ापे में पुत्र द्वारा रक्षित होती है।

आचार्य शंकराचार्य ने तो स्त्री को नरक का द्वार ही कह डाला : द्वारस्ति बरकस्म नारी। (4)

ऐसे समय में कृष्ण भक्त मीराबाई का पितृसत्तात्मक समाज के विरूद्ध जाकर अपनी निजता के अनुरूप जीवन–यापन करना बहुत आश्चर्य की बात थी, क्योंकि तुलसीदास जी ने स्त्रियों को पराधीन मानते हुए उन्हे पशुओं की तरह ताड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। शायद ही ऐसा कोमल हृदय तथा कोमल धारणा स्त्रियों के प्रति किसी अन्य कवि की रही होगी?

रीतिकाल में कवियों ने नारी के उद्गार वासनात्मक तो प्रकट किए है। मध्ययुग में तो स्त्री पति के हाथों की कठपुतली बनकर रह गई थी। स्त्रियों को रीतिकाल में आदर नहीं मिला। स्त्रियॉ सती प्रथा, बालविवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रथा, अशिक्षा, कन्यावध जैसी कठिनाइयों से जूझती रही, आधुनिक काल में तो स्त्री शिक्षित है। शिक्षित कामकाजी अधिकारों के प्रति सजग तथा आर्थिक रूप में स्वतन्त्र है, परन्तु कहीं न कहीं व मानसिक घुटन को अपने अंदर महसूस करती हैं। पुरूष प्रधान समाज ने कभी सोचा भी नहीं था कि उसका अनुगमन करने वाली स्त्री एक दिन लॉ क्लासेस चलाएगी, नारीवादी नारे लगायेगी तथा अंतरिक्ष में जायेगी। पुरूष का परंपरागत मन स्त्री के अधिकारों को स्वीकार नहीं कर पाता। स्त्री का सजग होना उसे स्वीकार नहीं है वह आज भी स्त्री में परम्परागत कुल लक्ष्मी वाले स्वरूप को ही ढूंढता है।

आधुनिक काल में साहित्य में स्त्री विमर्श के माध्यम से स्त्री उत्थान की संरचना काफी कठोर संघर्ष की मॉग करती है तथा अपने अंदर एक प्रश्न करती है। द्विवेदी जी ने नारी के पक्ष का समर्थन करते हुए लिखा है–

''पति को देवतुल्य हम माने,
बच्चो की भी दासी हैं।
सेवा सदा करें, नहिं सोचे
भूखी है या प्यासी है।।
हे भगवान! हाय तिस पर भी
उपेक्षा कैसीं पाती है।
शेष तुल्य ताड़न अधिकारी
हम बनाई जाती है।(5)

आधुनिक युग के कुछ कवियों में डॉ. गोपाल शरण सिंह की मानवी, रामनरेश त्रिपाठी के मिलन, पंथिक आदि काव्यों में इसका जिक्र मिलता है। महादेवी वर्मा द्वारा रचित श्रृंखला की कड़ियाँ जिसकी रचना सन् 1914 ई. में हुई थी। इसमें इन्होने स्पष्ट किया है कि स्त्री को केवल रमणीय भार्या ही नही बल्कि उसके पत्नीत्व, मातृत्व का भी सम्मान करना चाहिए।(6)

सन् 1975 में क्षमा शर्मा में 'स्त्री का समय' पुस्तक में कहा है कि ''घरेलू स्त्रियों को भी एक सप्ताहिक अवकाश अवश्य मिलन चाहिए।''(7)

मंजुला भगत की अनारो निम्नवर्ग की मेहनतकश महिला है, जो अपने मान–सम्मान के लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार रहती है। वह अपने मूल्यों से समझौता करती नहीं दिखती है। मैत्री पुष्पा की ''अल्मा कबूतरी'' इसी तरह की पात्र है, जो अपने जीवन में अपमान सहने के बाद भी समाज से टकाराने का साहस करती है। उसकी जीवंतता के कारण नारी चेतना जागृत होती दिखाई देती है।

आज साहित्य में भी महिला आन्दोलन द्वारा उठाए गए मुद्दे प्रमुखता से उभर रहे है। ऐसे अनेक पुरूष एवं महिला कहानीकार है जिनमें राजी सेठ, ममता, कालिया, जया जादवानी, सुधा अरोड़ा, मैगेमीर, पुष्पा, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल आदि है। इन्होने अपनी कहानियों में नारी को केन्द्र में रखकर अपनी लेखनीय कार्य किया है।

राजी सेठ की ''यह कहानी नहीं'' नामक कहानी संग्रह में 10 कहानियॉ है जिनमें पुरूष नारी के संबंधो का चित्रण किया गया है, रामधारी सिंह दिनकर की 'चोर दरवाजा' कहानी की बड़की समाज सेविका के रूप में चित्रित की गई है। सुधा अरोड़ा की कहानी ''रहोगी तुम वहीं'' की नारी उच्च शिक्षित होकर भी वह पुरूष सत्तात्मक व्यवस्था की गुलाम बनी हुई है। पहले जमाने में स्त्रियों के घरेलू काम थे, उल्टे आज के जमाने में स्त्रियों को बच्चों का ट्यूशन खुद लेना, उकने भविष्य की ओर ध्यान देना आदि काम बढ़े है, जैसे – ''अब मुझसे उम्मीद मत करो कि मैं थका मॉदा लौटकर बच्चों को गणित पढ़ाने बैठूंगा, एम.ए. की गोल्ड मैडलिस्ट हो, तुमसे अपने ही बच्चों को पढ़ाया नहीं जाता।''[8]

महिला साहित्यकार ये चाहते है, कि हम पुरूष सत्तात्मक समाज को बदलने में अपनी भूमिका निभाए।

कविवर मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के महान कवि माने जाते है, जिनकी रचनाओं में नारी भावना का विशद चित्रण हुआ है। मातृत्व भाव की प्रबलता से युक्त कैकेयी का द्वापर युग में विधृता का यशोधरा में यशोधरा का साकेत में उर्मिला की त्रासदी का चित्रण बड़े मनोयाग से किया है। गुप्ता जी नारी के सम्पूर्ण जीवन को दो पक्तियों में मार्मिकता से अभिव्यक्त करते है :–

''अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी।
ऑचंल में दूध, और ऑखो में पानी।।[9]

साहित्य मे स्त्री विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा है हिन्दी साहित्य में छायावाद काल से नारी विमर्श का जन्म माना जाता है। प्रेमचंद के गोदान में धनिया का चरित्र भारतीय ग्रामीण नारी का प्रतिनिधत्व करता है, शोषण के अबाध चक्र में पिसता हुआ होरी धनिया के बिना अधूरा है। धनिया स्नेहमयी कर्तव्यपारायण पत्नी होने के साथ–साथ ममतामयी माता भी है। दुःख और विपदा में सदैव पति का साथ देने वाली धनिया को होरी के सीधेपन पर क्रोध आता है, किन्तु जब धनिया होरी से लड़ती है तो रणचंडी बनकर जो वाग्प्रहार करती है? उससे होरी भी परास्त हो जाता है –''तू हट जा गोबर, देखूं तो क्या करता है मेरा? दरोगा जी बैठे है। इसकी हिम्मत देखूं। घर में तलाशी होने से इज्जत जाती है, अपनी मेहरिया को सारे गॉव के सामने लतियाने से इसकी इज्जत नहीं जात।''[10]

नारी के सहयोग के अभाव में पुरूष ने सदा एकाकीपन अनुभव किया है, और जहॉ भी सहयोगिनी के रूप में नारी प्राप्त हुई है वहॉ उसने अभिनव से अभिनव सृष्टि की है। नारी की इसी प्रतिभा से पराजित हो प्रसाद की श्रद्धा फूट पड़ती है –

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सही बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में।।[11]

मन्नू भंडारी का उपन्यास ''आपका बंटी'' साहित्य में नारी विमर्श के लिए एक मील का पत्थर है, जो अपने समय से आगे की कहानी कहता है, और हर समय का सच होने के कारण कालातीत भी है। शकुन के जीवन सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि व्यक्ति और मॉ के इस द्वन्द्व में वह न पूरी तरह मॉ बन पाती है, न पत्नी बन पाती है, न प्रेमिका। भारत की हजारों नारियों की यह त्रासदी है।

मृदुला गर्ग की ''चितकोबरा'' एक जमीन अपनी मेहरून्निसा परवेज का कोरजा, नासिरा शर्मा का ''एक और शाल्मली'' ठीकरे की मंगनी प्रभा खेतान की पीली ऑधी जैसे ढेरो साहित्य में स्त्री की त्रासदी के वर्णन के साथ–साथ पुरूष प्रधान सत्ता को चुनौती देते है।

''रीढ़ की हड्डी'' एकाकी में जगदीश चन्द्र माथुर ने एक लड़की के ऊपर बीतने वाली विवशता को बताया है, विवाह के समय लड़के वाले चाहे तो लड़की से कुछभी पूछ ले, इसके बाद लड़की भी निडर, साहसी होकर लड़के वालें के लिए भी गिनाती है, रीढ़ की हड्डी एकांकी की नायिका रूपा है। रूपा को जब लड़के वाले देखने आते है तो उससे बहुत कुछ प्रश्न पूछते है कि तुम्हे गाना बजाना आता है, सिलाई करनी आती है, भोजन बनाना आता है, लड़का अर्थात् शंकर और उसके पिता जी रूपा से ये सारी बातें पूछते है। रूपा की नजर लड़के अर्थात् शंकर और उसके पिता जी रूपा से ये सारी बातें पूछते है। रूपा की नजर लड़के अर्थात शंकर और उसके पिता जी रूपा से सारी बातें पूछते है रूपा की नजर लड़के अर्थात शंकर पर पड़ती है तो वह चुप हो जाती है और जब रूपा कुछ जवाब नहीं देती है तो सब लोग हक्का–बक्का रह जाते है तब रूपा कहती है कि ''क्या जवाब दूं बाबूजी जब कुर्सी मेज बिकती है तो दुकानदार कुर्सी मेज से कुछ नहीं पूछता कि तुम्हे बिकना है या नहीं, इस लड़के को देखिए अर्थात् शंकर की तरफ इशारा करके यह लड़का कैसे गर्ल्स हॉस्टल के इर्द–गिर्द चक्कर लगाता था, इसके पीछे का भाग तो देखिए बेकबोन अर्थात् इसके रीढ़ की हड्डी खिसकी है।''[12] रूपा के इतने कहने पर शंकर और उसके पिता जी चल देते है। विवाह नहीं होता है इस प्रकार रूपा के जरिए नारी शक्ति जागृत होती है।

''गदल'' कहानी रांगेय राघव की सशक्त ग्राम्य कथा है इस कहानी में नारी चरित्र को व्यवस्था से ऊपर लाने की कोशिश की गई है। ''गदल'' कहानी में गदल ही प्रमुख नारी पात्र है, गदल (नारी पात्र) की साहसिकता का वर्णन किया गया है गदल का देवर डोड़ी की मृत्युपरोन्त कम लोगों को भोजन कराने का निर्णय था, परन्तु पगंत में गदल अधिक लोगों को बैठा देती है, तो किसी के शिकायत पर दरोगा आने लगते है, इसी समय गदल के साहसी पन का वर्णन रांगेय राघव ने किया है देखिए – ''क्षणभर गदल ने सोचा। कौन होगा वह? समझ नही सकी। बोली 'दरोगा जी ने पहले नहीं सोचा था वह सब? अब बिरादरी को उठा दें? दीवान जी, तुम भी बैठकर पत्तल परोसवा लो। होगी सो देखी जाएगी। हम खबर भेज देगें, दरोगा आते ही क्यों है? वे तो राजा है।''[13]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि किसी भी समाज के उत्थान और पतन में स्त्रियों की दशा का ऑकलन किया जाता है। भारत में यह श्लोक प्रसिद्ध है – 'यत्र नार्मस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः' अर्थात् जहॉ नारी की

पूजा होती है, वहॉ ईश्वर का वास होता है, परन्तु सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, दृष्टि से विश्लेषण करने पर स्थिति ठीक उल्टा दिखाई देती है। यद्यपि स्त्री विमर्श की शुरूआत पश्चिमी देशो से हुई है परन्तु भारतीय साहित्य में सदैव स्त्री को केन्द्र में रखकर विचार विमर्श किया जाता रहा है।

वास्तव में सहित्य और समाज दोनो में ही स्त्री जीवन की समस्याओं को बताया गया है। साहित्य में नारी की ममता तथा कर्तव्य निष्ठा एवं समर्पण को विभिन्न रूपों में प्रदर्शित किया है। नारी को बार–बार परीक्षा की कसौटी से गुजरना पड़ रहा है, महिला सशक्तिकरण के माध्यम से समाज बदल रहा है। इसलिए साहित्य स्त्री विमर्श के माध्यम से संदेश दे रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. स्त्री विमर्श – विनय कुमार पाठक, भावना प्रकाशन, दिल्ली 110091, प्रथम सं. 2005, पृ. सं. 06
2. रामचरित मानस (लंकाकांड) – गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 14वॉं, संवत–2022, पृ. सं. 753
3. मनुस्मृति 9/3 अध्याय 3, पृष्ठ 479, मनोज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, सं. 2003
4. कल्याण, नारी अंक पृष्ठ 128, राधेश्याम खेमका, गीताप्रेस गोरखपुर संवत् – 2061
5. रसज्ञ रंजन, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 60, साहित्य रत्न भंडार आगरा, संवत् 1920
6. श्रृंखला की कड़िया, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 21, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2008
7. समकालीन हिन्दी पत्रकारिता में नारी संदर्भ, रमेशचन्द्र त्रिपाठी, पृ. नमन् प्रकाशन नई दिल्ली, 110002 सं. अप्रैल 2007
8. हंस पत्रिका, राजेनु यादव, पृष्ठ 15 अक्षर प्रकाशन, प्रा.लि. नई दिल्ली, 110092 मई 1999
9. मैथलीशरण गुप्त – यशोधरा, पृ. सं. 03
10. प्रेमचंद, गोदान, पृ. सं. 09
11. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ. सं. 106
12. जगदीशचन्द्र माथुर – रीढ़ की हड्डी
13. रांगेय राघव – गदल, पृ. सं. 76

मो. नं. – 9907987060

Email ID – sunitarathore1503@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 428-430
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सूरज किरण की छाँव- उपन्यास में आदिवासी विमर्श

-डॉ. बाबासाहेब शेख,
हिंदी विभाग, पूना कॉलेज, कैम्प, पुणे (महा.) 411001.

यह उपन्यास बस्तर जिले के गौंड आदिवासी जीवन पर लिखा गया सशक्त उपन्यास है। कथा के केंद्र में बंजारी नाम की गोंड आदिवासी लडकी है। गाँव का मुखिया का बेटा विलियम बंजारी को प्रेमजाल में फँसाता है। बंजारी विलियम को हृदय से प्रेम करती है। किंतु विलियम बंजारी को प्रेम की बजाय उसकी अस्मत लुटकर वह पंचायत करवाने पर मजबूर कर देता है। पंचायत में विलियम बंजारी को प्रेमिका न बताकर वह अपनी बहन बताता है। विलियम को सच मानते हुए जाति की पंचायत बंजारी को अपनी जाति से बहिष्कृत कर देने का निर्णय सुनाती है। तब बंजारी न विलियम की रहती है न अपनी जाति की। ऐसी स्थिति में गाँव का मुखिया बंजारी का विवाह इसाई युवक जोसेफ से करा देता है जो पहले गोंड आदिवासी था। वह पासवाले गाँव जाता है और वहाँ जाकर बंजारी का नाम बंजारी न रखकर मिसेज बैंजो रख दिया जाता है। कुछ दिन के पश्चात् वह अपनी पत्नी बैंजो को एक होटल में मि. कपूर के हाथ बेचकर बंबई भाग जाता है। एक दिन होटेल में अपने पूर्व प्रेमी कंगला को देखती है और उसे मुक्ति की फरियाद करती है। वह मुक्त हो जाती है। इस नारी की व्यथा को देखकर प्रकाश डालते हुए डॉ. भाउसाहेब परदेशी लिखते है ''प्रस्तुत उपन्यास आदिवासी लडकी की वेदनापूर्ण कहानी को उकेरता है। जो बंजारी से मिसेस बैंजो और मिसेस बैंजो से मिस उषा बन जाती है। भोली भाली आदिवासी लडकियों को अपने प्रभुत्व, पैसे और शादी करने का लालच देकर संपन्न व्यक्ति उसका जीवन लूट सकते है। इसका सुंदर वर्णन इस उपन्यास में किया है।''[1]

इस उपन्यास का मुख्य पात्र कंगला है जो बंजारी से एकनिष्ठ प्रेम करता है। किंतु बंजारी उस प्रेम की गहराई को न समझकर विलियम नाम के युवक के बहकावे में आती है परिणामस्वरूप कंगला का दिल टूट जाता है। झरपन उसकी दयनीय स्थिति का वर्णन इन शब्दों में करती है ''कंगला अब भी तेरी याद नहीं भूला, दिनभर रोता रहेता है, कहता है बंजारी ने धोखा दिया है तो जिंदगी कुवारी बिता दूगा।''[2] वह आदिवासी युवक होने के कारण उसमें सरलता, सहृदयता, कठोर परिश्रमी आदि गुण दिखाई देते है।

इस उपन्यास में भारतीय आदिवासी सामाजिक व्यवस्था को प्रस्तुत किया गया है। इसमें आदिवासी समाज का स्वरूप, उसकी परंपरागत रूढियों, तत्व, वर्ण और जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, पारिवारिक व्यवस्था, नारी की सामाजिक स्थिति तथा सामाजिक समस्याओं का व्यापक चित्रण अवस्थी जी ने किया है। वे कहते है ''स्वतंत्रता के बाद हिंदी में इधर कुछ आँचलिक उपन्यासों का प्रकाशन हुआ है इसी श्रृंखला में यह एक विनम्र प्रयास मात्र है, इसकी सफलता का श्रेय आंचलवासियों को और उनकी संस्कृति को देना चाहिए, दोषों के लिए लेखक उत्तरदायी है।''[3]

इस कथन से पता चलता है कि अवस्थी जी ने गोंड आदिवासी समाज के विविध पहलुओं को उद्घाटित किया है। इनकी व्यथा के बारे में भगवान स्वरूप चैतन्य जी लिखते है ''समाज में व्याप्त बुराईयाँ, भ्रष्टाचार, दहेज प्रथा, वेश्या वृत्ति, अशिक्षा, अवसरवादिता, चापलूसी, दलबदल, त्यागहीनता, चोरी, डकैती, झूठ, फरेब, भूख, गरीबी, बेरोजगारी आदि अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला है।''[4]

आदिवासी समाज में विवाह पद्धति का चित्रण किया गया है। जब बंजारी विजातीय विलियम से यौन संबंध स्थापित करती है तब गर्भ धारण करने के पश्चात उसका गाँव में रहना मुश्किल हो जाता है। वह स्वयं अपनी सामाजिक स्थिति के बारे में सोचती है। वह कहती है ''मेरे गाँव में रहना मुश्किल था, शर्म के मारे मैं अपने आप गडी जा रही थी। कंगला का पेट होता तो चिंता नहीं थी। पिछले साल सिद्धीराम की छोटी लडकी का पेट आ गया था। उसका भूल विवाह हो गया था। विलियम चाहे वह जैसा भी हो, है तो परजाता, उसका धर्म हमारा धर्म नहीं, उसका देवता हमारा देव नहीं।''[5] इसी तरह गोंड आदिवासियों में लमसेना रखने की विवाह संबंधी प्रथा का प्रचलन पाया जाता है।

गोंड आदिवासी समाज में नारी पुरुष की जुती के समान होती है। कारण शिक्षा का अभाव। जब बंजारी सभी पुरुषों की वासना का शिकार बनती है तब वह कहती है ''क्या औरत की जिंदगी में इसके सिवाय कुछ और नहीं है? यदि नहीं है तो दुनिया में औरत होना सबसे बड़ा पाप है। या तो आदमी को जन्म के साथ ही उसका गला घोंट देना चाहिए इसके सिवा उसके सामने चारा नहीं है। जब आदमी उसे जीने नहीं देना चाहता तो उसे दुहे में घुटने और तडपने देने का उसे अधिकार नहीं है। क्या औरत आदमी की धरोहर है?''[6]

भारतीय आदिवासी समाज की दो संस्थाएँ है एक जातिगत पंचायत और दूसरी सरकार। इसी तरह गोंड आदिवासी समाज व्यवस्था का मुखिया पटेल होता है, वह गाँव का सम्मानित व्यक्ति होता है। गाँव से संबंधित प्रत्येक कार्य और गतिविधियों में इसकी भूमिका अहेम होती है। वह अपने समाज की शैक्षणिक आर्थिक एवं शारीरिक विकास के लिए कार्य करता है। इसके साथ ही झगड़े तथा अन्य छोटे मोटे अपराधों का फैसला गाँव के बुजुर्गों के साथ करता है।

अवस्थी जी ने गोंड आदिवासियों की आर्थिक स्थिति का बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। ये लोग अपना उदरनिर्वाह खेतों में उगाए गये चावल, जंगल में उत्पन्न फल तथा जानवरों का खून और मांस खाकर करते है। इनका फायदा महाजन एवं संपन्न लोग उठाते है।

गोंड आदिवासी समाज में अधिकांश त्योहार संस्कार पर्व के रूप में मनाए जाते है। गोंड समाज में नारायण देव की आराधना के समय सुवर की बली चढाने की प्रथा दिखाई देती है। बली देते समय औरतें नाचती गाती है। नारायण देव का प्रसन्न होना गाँव की खुशी होती है। कभी पूर्वजों की पूजा, भूत प्रेत, देवी देवताओं में चुडैल आदि में अधिक विश्वास रखते है।

आदिवासी संस्कृति के अंतर्गत लोकनृत्य, वाद्य संगीत, गीत लोकवार्ता एवं शृंगार आदि का समावेश किया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में अवस्थी जी ने बस्तर की गोंड आदिवासी संस्कृति को बड़े व्यापक पैमाने पर चित्रित किया है। छोटे बडे प्रसंगों व त्योंहारों को वे लोग नाच गान करके मनाते है। अवस्थी जी बस्तर की आदिवासी के इस कार्यक्रम को शब्दांकित करते हुए कहते है ''सबसे पहले मैदान के आखिरी कोने में खड़े दल ने अपने ढोल जोर जोर से पीटे। रंग–बिरंगे कपडे और सिर पर जंगली भैस के सींग पहले ये बैगा आदिवासी निराले

थे। औरतें केवल कमर में लाल कपड़ा लपेटे थी। जवान बूढी सभी उमर की औरते थी वहाँ और सभी की छाती खुली थी। कौड़ियों की माला और पैर में कडे पहले आदमियों के हाथों में हाथ डाले वह दल आगे बढा। उसके बीच ढोलिए भी थे।''[7]

''ढाग–ढाग ठी–ठी ठिन–ठिन
श्रे है हे तो रे . . . रे
रे है है''।[8]

इस तरह अवस्थी जी ने जो सांस्कृतिक परिवेश उभारा है वह केवल गोंड आदिवासियों की संस्कृतियों का परिचय नहीं वरना संपूर्ण विश्व की आदिवासी संस्कृति का वर्णन है।

इस उपन्यास में संवाद योजना का भी प्रयोग किया गया है। संवादों में भावात्मकता, मनोवैज्ञानिकता, पात्रानुकूलता, संक्षिप्तता, स्वाभाविकता आदि गुण दिखाई देते है। संवादों में भावात्मकता उपन्यास को प्रभावशाली बना देती है। सफल उपन्यास के संवाद पात्रों के हृदय में व्याप्त भावों और उनके संबंधों को व्यक्त करते है। स्वयं अपने भाव व्यक्त न करके दूसरे के भाव व्यक्त करने में भी संवेदना को झकझोरते है। जैसे –''कंगला अब भी तेरी याद नहीं भूला, दिन भर रोता है, कहता है, बंजारी ने धोखा दिया है . . तो जिंदगी कुंवारी बिता दूगा।''[9]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अवस्थी जी ने संवादों को बहुत ही सहेजता से लक्षित किया है। पात्रानुकूल मार्मिक छोटे और प्रभावपूर्ण संवाद है। संवादों में पात्रों की मनस्थिति और संवादों में वाक्पटूता है इसलिए इनके संवादों में जीवंतता दिखाई देती है।

संक्षेप में हम कह सकते है कि अवस्थी जी ने आदिवासी जीवन केंद्रित उपन्यास साहित्य में आदिवासी समाज, उनकी संस्कृति, परंपरा, रूढियाँ, मान्यताएँ आदि को प्रस्तुत किया है। साथ ही वहां की गरीबी, अषिक्षा, अंधविश्वास, शोषण, रूढिग्रस्तता आदि समस्या और प्रश्नों से घिरी जिंदगी को समाज के सम्मुख रखने का प्रयास किया है।

संदर्भ :–

1. राजेंद्र अवस्थी का कथा साहित्य – डॉ. भाउसाहेब परदेशी, पृ. 163
2. वही, पृ.37
3. सूरज किरण की छॉव–राजेंद्र अवस्थी, पृ. 3
4. राजेंद्र अवस्थी का कथा संसार – डॉ. भाउसाहेब परदेशी, पृ. 181
5. सूरज किरण की छॉव–राजेंद्र अवस्थी, पृ. 22
6. वही, पृ. 190 –191
7. वही, पृ. 133
8. वही, पृ. 133
9. वही, पृ. 38

drbabashaikh@gmail.com, Mob:-9423717111

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 431-439
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

श्लील-अश्लील विषयक साहित्यिक धारणाएँ और आठवाँ सर्ग

-मीनू भाटी, शोधार्थी,
-डॉ० बीना शर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, एम०एम०एच० कॉलिज, गाजियाबाद।

शोध सार :-

भारतीय साहित्यिक आकाश में महाकवि कालिदास सबसे दैदीप्यमान नक्षत्र हैं। उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं उसके प्रतिमानों को अपने साहित्य में विभूषित ही नहीं किया है अपितु मानव एवं प्रकृति के बीच आत्मीय राग भी स्थापित किया है। यद्यपि उनकी साहित्यिक प्रतिभा किसी भी परिचय की मोहताज नहीं है तथापि उनके विषय में इतना कहना पर्याप्त है कि उनकी प्रत्येक रचना भारतीय साहित्य और संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। अपनी साहित्यिक प्रतिभा से दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त करने के पश्चात् भी महाकवि कालिदास को अपनी रचना 'कुमारसंभव' को अधूरा ही छोड़ना पड़ा था। जिसका मलाल उन्हें जीवनभर रहा। सुरेन्द्र वर्मा द्वारा प्रस्तुत नाटक आठवाँ सर्ग में महाकवि कालिदास की सृजनात्मक प्रतिभा पर तत्कालीन समाज के द्वारा लगाए गए आरोप-प्रत्यारोपों के कारणों की तलाश करने का सूक्ष्म अन्वेषण किया गया है।

मुख्य शब्द :- महाकवि कालिदास, साहित्य, श्लील, अश्लील, रचना, रचनाकार, धारणा।

साहित्य शब्द का सामान्य अभिप्राय सभी के हित से होता है अर्थात् वह लिखित रचना जो सभी के हित में हो; साहित्य कहलाती है। साहित्य की इस अवधारणा के अनुसार साहित्यकार का नैतिक कर्त्तव्य समाज को नैतिक-अनैतिक का बोध कराकर सही दिशा प्रदान करना है। साहित्यकार अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु समाज में प्रचलित मान्यताओं एवं धारणाओं को अपने साहित्य की विषय वस्तु बनाता है। वह समाज में जो देखता है, वही अपने साहित्य में चित्रित भी करता है। साहित्यकार कई बार समाज में प्रचलित विसंगतियों को साहित्यिक रूप में चित्रित करते हुए नैतिकता की सीमाएँ लाँघ जाते हैं, जिससे उनके साहित्य पर अश्लील, उत्तेजक, पतित साहित्य होने के आक्षेप लगते रहते हैं।

साहित्यिक समाज के समक्ष यह प्रश्न आज से नहीं है अपितु इसकी जड़े इतिहास में बहुत गहरी दबी हुई है। महाकवि कालिदास के द्वारा 'कुमारसम्भव' महाकाव्य की रचना के समय आठवें सर्ग में शिव-पार्वती के विवाहोपरांत प्रेमालाप एवं शृंगार सौंदर्य के साहित्यिक चित्रण को तत्कालीन समाज एवं सत्ताधीशों ने अश्लीलता का प्रत्यारोपण करके प्रतिबंधित करा दिया था। तब से लेकर आज तक यह श्लील-अश्लील संबंधी विवाद साहित्य एवं समाज के समक्ष खड़ा हुआ है। जिसे समय-समय पर और अधिक हवा-पानी देकर साहित्यकारों की स्वाभाविक रचना प्रक्रिया को बाधित किया जाता रहा है। आधुनिक हिंदी साहित्य में पाण्डेय बेचेन शर्मा 'उग्र', ईस्मत चुगतई, मंटों से लेकर सुरेन्द्र वर्मा जैसे प्रतिभासम्पन्न साहित्यकारों को भी इसी श्लील-अश्लील विषयक

साहित्यिक–सामाजिक आलोचनाओं का सामना करना पड़ा है। सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटक 'आठवाँ सर्ग' में साहित्य और समाज की इन्हीं श्लील–अश्लील विषयक सामाजिक अवधारणाओं तथा इनके कारण प्रभावित होती रचनाकार की मनःस्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। डॉ० विजयपाल इस संबंध में लिखते हैं, "महाकवि कालिदास के 'कुमारसंभव' के आठवें सर्ग को आधार बनाकर सुरेन्द्र वर्मा ने लेखकीय अभिव्यक्ति की मूल समस्याओं को उठाया है और इसलिए शासन, सत्ता और राजाश्रय की महत्त्वपूर्ण समस्याओं को लेकर लेखकीय अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य और शासन की टकराहट को प्रस्तुत किया है।"[1] वे साहित्य सृजन की प्रक्रिया में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं सामाजिक प्रतिबद्धताओं के बीच साहित्यिक लोकप्रियता को साहित्यकार की वास्तविक उपलब्धि मानते हैं। इस प्रकार यह नाटक केवल महाकवि कालिदास एवं उनके तत्कालीन समाज की साहित्य के प्रति दोहरी एवं हीन दृष्टि को ही उजागर नहीं करता अपितु समकालीन समय के साहित्यकारों के अंतर्मन की पीड़ा की भी मुखर अभिव्यक्ति करता है।

महाकवि कालिदास के महाकाव्य 'कुमारसंभव' एवं उसके आठवाँ सर्ग के प्रति साहित्य जगत् में कई जिज्ञासाएँ, कौतूहल एवं प्रश्नचिह्न विद्यमान है। यद्यपि कुमारसंभव महाकाव्य में 17 सर्ग हैं किंतु इसके पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध सर्गों में भाषाई एवं अलंकारिक दृष्टि से एकरूपता नहीं है। इसलिए इस रचना की पूर्णता पर संदेह के प्रश्न लगाये जाते हैं। स्वयं नाट्यकार सुरेन्द्र वर्मा ने नाटक की भूमिका में इस रहस्य का पटाक्षेप करते हुए लिखा है, "यों तो 'कुमारसंभव' महाकाव्य पूरा 17 सर्गों का मिलता है, लेकिन यह लगभग सर्वमान्य है कि इसके आठ सर्ग ही कालिदास–रचित हैं। आठवें सर्ग में शिव–पार्वती की केवल विलास–क्रीड़ाओं का स्वच्छंद चित्रण है। अलंकारशास्त्रियों ने इसके लिए कवि पर सुरूचिहीनता का भी दोषारोपण भी किया है। इन बातों से पता चलता है कि कद्‌ाचित कालिदास के समय में ही इस प्रकार के आक्षेप होने लगे थे।"[2] नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने इस नाटक में साहित्यकार की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा मर्यादाबोध के बीच आने वाले ऐसे ही प्रश्नों के समाधान खोजने का प्रयास किया है जोकि तब भी उठाये गए थे और आज लगाये जाते हैं।

नाटक के प्रथम अंक में महाकवि कालिदास कुमारसंभव महाकाव्य के आठवें सर्ग की रचना करके एक मास बाद राजधानी में वापिस लौटे हैं और कामोत्सव के दिन उन्हें इस सर्ग का काव्यपाठ राजसभा में करना है। तत्पश्चात् महाकवि को सम्राट चन्द्रगुप्त के द्वारा पट्‌टबंध सम्मान प्रदान किया जाएगा। 'आठवें सर्ग' की सृजन–प्रक्रिया के विषय में सेविका प्रियंवदा महाकवि के साथ गए कीर्तिभट्ट से उत्सुकतावश पूछती है–

"प्रियंवदा : (उत्सुकता से) कीर्तिभट्‌ट! आठवाँ सर्ग कब पूरा हुआ? कैसे पूरा हुआ?....तुमने तो एक–एक पृष्ठ की रचना देखी होगी?

कीर्तिभट्‌ट : तीन दिन पहले हुआ था। और जो तुम पूछती हो कि कैसे हुआ, तो समझ लो कि कीर्तिभट्‌ट के वहाँ रहने से हुआ।....सच कहता हूँ प्रियंवदा, एक सप्ताह तो कविवर ने एक शब्द नहीं लिखा, बस बैठे–बैठे पहले के सातों सर्ग पढ़ते रहे, या चुपचाप टकटकी लगाए कोरे भोजपत्र को निहराते....जैसे किसी ने जादू कर रखा हो। मैं पूछता कि आपानक लाऊँ? भोजन के लिए क्या बनाऊँ? कोई उत्तर नहीं मिलता, जैसे वाणी राजधानी में ही छोड़ आए हों!....भीतर से निकलते, तो उपवन में आ जाते, उपवन से निकले, तो बाहर वन में जा पहुँचते।....प्रातः काल देखता कि ऊषा की लाली परख रहे हैं, सायंकाल देखता कि झरने के किनारे बूँदों की बौछार में भींग रहे हैं, आधी रात को देखता की उजली चाँदनी में टहल रहे हैं। सात दिन तो मैं चुप रहा।

आठवें दिन मैंने कह दिया कि स्वामी! ऐसे कैसे चलेगा? तीन सप्ताह बाद आपको यह सर्ग पढ़ना है, आपका राजकीय सम्मान होना है। कहीं ऐसा न हो कि सर्ग–रचना न हो सके, तो सम्मान ही न मिले।"[3]

समाज एवं आलोचक जिस कृति का आस्वादन करके उसके गुण– दोष परखते हैं। उसकी रचना प्रक्रिया में लेखक किस मनोस्थिति एवं निःशब्द वेदना से गुजरता है; सुरेन्द्र वर्मा जी ने उक्त वक्तव्य से इसी ओर ध्यान इंगित किया है। अस्तु साहित्य का सृजन करना साहित्यकार की साहित्य साधना है, जिसे करते हुए वह समूची दुनिया से दूर हो जाता है। साहित्य सृजन की यह प्रक्रिया उसके लिए एक अंतहीन वेदना होती है जिसकी तृप्ति उसे उसकी रचना की पूर्णता से ही मिलती है।

साहित्यकार समाज से जो ग्रहण करता है, वही साहित्य के रूप में समाज को वापिस लौटा देता है। महाकवि कालिदास कुमारसंभव महाकाव्य के प्रथम सात सर्गों में पार्वती जन्म से लेकर शिव–पार्वती के विवाह तक का वर्णन कर चुके हैं। सातवें अंक के पश्चात् उनका विवाह राजकुमारी प्रियंगुमंजरी से हो जाता है। कुछ समय दाम्पत्य जीवन के सुख को भोगने के पश्चात् महाकवि आठवें सर्ग की रचना के लिए राजधानी से पचास मील दूर एकांतवास में चले जाते हैं। आठवें सर्ग की केंद्रीय विषय वस्तु नवयुगल के दाम्पत्य जीवन में प्रवेश एवं प्रेम प्रसंगों का सौंदर्यपूर्ण चित्रण है। इस संबंध में विजयपाल सिंह लिखते हैं "प्रस्तुत नाटक कालिदास रचित 'कुमारसंभव' के 'आठवे सर्ग' की कथा पर आधारित है, जिसमें शिव–पार्वती की विलास क्रीड़ाओं का स्वच्छंद चित्रण है। लेकिन यहाँ कालिदास के कुमारसंभव की कथा कहना नाटककार का उद्देश्य नहीं है, बल्कि लेखक की पीड़ा को अभिव्यक्ति देना है।"[4] महाकवि कालिदास इस सर्ग की रचना से कुछ समय पूर्व ही नव वैवाहिक जीवन की सुखद अनुभूतियों से निकलकर आये हैं। परिणामस्वरूप आठवें सर्ग की सृजन–प्रक्रिया में दाम्पत्य जीवन के प्रेमालाप के अनुभवों की छाप स्पष्टतः दिखलाई पड़ती है। नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने नाटक के आंरभ में ही सेविका प्रियंवदा और अनुसूया के बीच के वार्तालाप से प्रेम की इसी सौंदर्यानुभूति का विषद् वर्णन किया है–

"प्रियंवदा : द्वार के खुलते ही सुगंधि का एक झोका सा निकलेगा। एक कुमारी कन्या के नासा–रंध्रों के लिए यह गंध बिल्कुल अनजानी होगी, पर हे मेघ–से काले–कजरारे केशों वाली! तुम रूकना नहीं, भीतर चली जाना!

अनसूया : फिर

प्रियंवदा : गवाक्ष बंद, हल्का अँधेरा!....पलंग के पास कुछ खाली चसक होंगे। उन पर दो युगल अधरों के स्पर्श जैसे अभी तक कसमसा रहे होंगे।

अनसूया : ऐसा?

प्रियंवदा : कुछ देर चुपचाप उस शैया को परखना। उस पर अधखिली कलियाँ बिखरी होंगी–म्लान–दोहरी हो चुकी पंखुडियों को हल्के से छूना, तो दो शरीरों के तप्त दबाव का आभास होगा।

अनसूया : सचमुच?

प्रियंवदा : शुभ, श्वेत चादर पर यहाँ–वहाँ सिकुड़नें होंगी। एक ओर कुरंटक पुष्पों की माला पड़ी होगी–प्रगाढ़ आलिंगन में मसली हुई। सिरहाने का कर्णफल होगा, पैताने टूटी मेखला!

अनसूया : बेचारी!

प्रियंवदा : कुछ पल चुपचाप खड़ी रहना, तो धीरे–धीरे कई ध्वनियाँ उभरेंगी।

अनसूया : जैसे?

प्रियंवदा: वस्त्रों की सरसराहट....आभूषणों की झंकार....साँसों की तीव्रता...बाँहों का कसाव।"[5]

स्त्री–पुरुष संबंध सदैव से ही समाज के लिए जिज्ञासा एवं कौतूहल के विषय रहे हैं। प्रायः कहा जाता है कि प्रेम देह का नहीं नेह का विषय है। किन्तु दैहिक प्रेम के बिना सृष्टि में जनन प्रक्रिया का सुचारू रूप से गतिशील होना संभव नहीं है। अस्तु स्त्री–पुरुष संबंध मानवीय गतिशीलता का आधार है। इसलिए इनके परस्पर संबंधों में लौकिक जगत् की सुख–दुख, पीड़ा की अनुभूति है तो अलौकिक रूप से सात जन्मों तक साथ निभाने का वचन भी बंधा हुआ है। नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने प्रस्तुत नाटक में स्त्री–पुरुष संबंधों में दैहिक मिलन की अनिवार्यता एवं पूर्णता के सुख को इस प्रकार से चित्रित किया है–

"प्रियंवदा : क्योंकि ऐसा दृश्य कुमारी–कन्या के हृदय पर भारी पड़ता है, पर तुम सारा मनोबल लगाकर उन्हें नीचे से ऊपर तक परखना।

अनसूया : तो?

प्रियंवदा : तुम्हें मालूम होगा कि उनका केशकलाप बिल्कुल उलझ गया है....उनकी मंद–मंथर गति में तृप्ति का मादक आलस है।

अनसूया : ऐसा?

प्रियंवदा : तनिक सामने की ओर पहुँचना तो जानोगी कि....

अनसूया : कि?

प्रियंवदा : देह का अंगराग....माथे का तिलक....आँखों का अंजन....अधरों का लाक्षारस....कपोलों के विशेषक.....वक्ष के पत्र भंग....सब मिटे या अधमिटे हैं।

अनसूया : भला क्योंकर?

प्रियंवदा : कुछ को व्यग्र स्पर्शों ने सोख लिया। कुछ आलिंगनों की तरंगों में विलीन हुए। रहे–सहे तप्त चुंबनों में झुलस गए।

अनसूया : च्चच्च....च्चच्च....!

प्रियंवदा : कुछ पास जाना, तो देखोगी कि उनकी देह पर कितने ही दंतक्षत और नखविन्यास हैं। इसलिए उन्होंने आज हम लोगों को अपने पास से हटा दिया है....जानती हो, कहाँ–कहाँ?"[6]

सुरेन्द्र वर्मा के नाटक आठवाँ सर्ग में अनसूया और प्रियंवदा के बीच का यह वार्तालाप महाकवि कालिदास और उनकी पत्नी राजकुमारी प्रियंगुमंजरी के प्रणय–मिलन की सौंदर्यानुभूतियों को उद्घाटित करता है। महाकवि कालिदास के जीवन का यह पड़ाव उनके महाकाव्य 'कुमारसंभव' के मध्य में आया था। महाकवि इस महाकाव्य के सात सर्गों में शिव–पार्वती के जीवन के आरंभिक अवस्था से विवाह तक का वर्णन कर चुके हैं तथा आठवें सर्ग में उन्हें भगवान शिव एवं माता पार्वती के प्रणय–निवेदन को काव्यानुभूति प्रदान करनी थी। महाकवि कालिदास ने साहित्यिक कर्म के अनुसार समाज में जो देखा और ग्रहण किया है, उसी की लौकिक अनुभूतियों को आठवें सर्ग में प्रदर्शित किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'कुमारसंभव' महाकाव्य के 'आठवाँ सर्ग; की वैचारिक पृष्ठभूमि मानवीय संबंधों की लौकिक अनुभूतियों से जुड़ी हुई है। जिसमें दैवीय संबंधों को मानवीय

लोक–व्यवहार की कसौटी पर कसा गया है।

महाकवि कालिदास कुमारसंभव महाकाव्य के आठवें सर्ग की रचना के उपरांत अपने शयनकक्ष में विश्राम कर रहे हैं। साथ में उनकी प्रियसी एवं धर्मपत्नी प्रियंगुमंजरी आठवें सर्ग का रसास्वादन कर रही है। प्रियंगुमंजरी महाकवि के मुख से आठवें सर्ग को सुनकर लज्जा भाव का अनुभव करती है। वह कवि को उलाहना देती हुई कहती है कि इस सर्ग में प्रणय–संबंधों के चित्रण से, उन्होंने उनके संबंधों की निजता का हनन किया है–

"प्रियंगु : यह सर्ग पहले ही क्यों नहीं लिख लिया?....ब्याह के पहले....बाद के लिए क्यों रख छोड़ा?

कालिदास : (कृत्रिम भोलेपन से) तब मुझे इस बात का अनुभव कहाँ था कि ब्याह के बाद नवदंपत्ति का पारस्परिक....व्यवहार क्या और कैसा होता है?

प्रियंगु : (झेंपकर)....जैसे अभी तक सब कुछ तुमने अपने अनुभवों से ही लिखा हो!....कल्पना और अंतर्दृष्टि क्या किसी ने छीन ली थी?

कालिदास : लेकिन तब अनुभूति की प्रखरता कहाँ से आती?

प्रियंगु : यह क्यों नहीं कहते कि मुझे लज्जित करने का आनन्द कहाँ से मिलता?.....अब मैं कैसे जाऊँ राजमंडल में? माता–पिता, परिवार के कुल संबंधी, गुरुजन, सब सखियाँ–सहेलियाँ, निम्न और उच्च सारे पदाधिकारी, संगत और मांडलिक, संभ्रात नागरिक और उनकी धर्मपत्नियाँ, दैवारिक प्रतिहार और दासियाँ–सभा में उपस्थित एक–एक व्यक्ति समझ जाएगा कि काव्य की यह उमा (संकेत सहित) वह बैठी हैं....सामने।"[7]

प्रियंगु मंजरी कालिदास पर यह आरोप लगाती है कि कालिदास ने आठवें सर्ग की रचना में उन दोनों पति–पत्नियों की प्रणय मिलन के सौंदर्यपूर्ण क्षणों का प्रतीकात्मक रूप से चित्रण किया है। वह कालिदास को उलाहना देती हुई कहती है।

"कालिदास : (हल्की मुस्कान से) तुम इस तरह सोचोगी, यह बात मेरे मन में नहीं आई थी।

प्रियंगु : (प्रगल्भ दृष्टि से उसकी ओर देखकर) तुम स्त्री नहीं हो न, इसलिए!....(पांडुलिपि उठाकर पन्ने पलटने लगती है। रूककर मंदस्मित से) बहुत विचित्र–सा लग रहा है। (कालिदास प्रश्नात्मक दृष्टि से देखता है (कुछ क्षण सोचती–सी रह जाती है) उज्जयिनी के जिस नागरिक ने कभी राजप्रसाद के सिंहद्वार में भी पैर नहीं रखा, मुझे कभी नहीं देखा, जाना नहीं, वह इस आठवें सर्ग के पृष्ठ खोलेगा....और मेरे भवन के अंतःपुर के शयनागार के बंद द्वार खुलने लगेंगे।....मेरे बिल्कुल निजी अनुभव, मेरी नितांत व्यक्तिगत अनुभूतियाँ इस तरह उजागर हो जाएँगी, जैसे किसी प्रदर्शन में रखी हों!....मालूम नहीं था कि रचनाकार से जीवन जोड़ लेने के बाद कुछ भी गोपनीय नहीं रह जाता।"[8]

साहित्य में निजता का यह हनन केवल कालिदास एवं प्रियंगुमंजरी के निजी जीवन का ही नहीं हुआ है अपितु यह सत्य है कि साहित्यकार अपने साहित्य में धीरे–धीरे अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक अनुभवों की परतें ही खोलता रहता है। साहित्य का आमजन से जुड़ जाना ही उसकी वास्तविक सार्थकता है। महाकवि कालिदास ने आठवें सर्ग में इसी वास्तविक स्वीकार्यता को ग्रहण करके ईश्वर को भी मानव के रूप में चित्रित किया है। इसलिए शिव–पार्वती के विवाहोपरांत मधुर–मिलन की बेला की रचना करते हुए ईश्वरी जगत् सत्ता के बजाए

मानव जगत् की लौकिक रास क्रियाओं एवं उनसे फलीभूत हुई काम–क्रीड़ाओं का उन्मुक्त चित्रण आठवें सर्ग में किया गया है।

कालिदास ने 'आठवें सर्ग' को सुनकर केवल उनकी पत्नी प्रियंगुमजरी ने ही उन्हें लोकमर्यादाओं का उल्लंघन करने का दोष नहीं दिया अपितु उन पर कई और आक्षेप भी लगाए गए। इसलिए ही धर्माचार्य ने आठवें सर्ग में अपने आराध्य देव शिव–पार्वती के विषय में नैतिकता की सीमाओं को लाघने का आरोप लगाते हुए उस पर प्रतिबंध लगाने की माँग की। राजसत्ता सदैव ही धर्मसत्ता के आगे झुकती रही है। सम्राट चन्द्रगुप्त महाकवि कालिदास की प्रतिभा का बहुत सम्मान करते हुए भी धर्मसत्ता और अन्य गणमान्यों के समक्ष झुक जाते हैं। नाटक का द्वितीय अंक महाकवि कालिदास का राजसभा में आठवें सर्ग का काव्य पाठ एवं उससे संबंधित वाद–विवाद से जुड़ा हुआ है। इस संबंध में अनसूया प्रियंगु से कहती हैं–

"अनसूया : ज्यों ही वह स्थल आया कि शयनागार में उमा और महादेव एक–दूसरे को पराजित करने पर तुले हुए थे। दोनों के केश छितरा गए, चंदन पूछ गया, उमा की मेखला टूट गई, लेकिन उसके साथ....(अटक जाती है। खाँसकर) क्रीड़ा– केलि से महादेव का मन नहीं भरा....त्यों ही क्रोध से तमतमाया चेहरा लिए धर्मगुरू खड़े हो गए और गरजकर बोले कि यह सर्ग अत्यंत अश्लील है। जगत्पिता महादेव और जगत्जननी पार्वती के भोग–विलास का ऐसा उद्दाम ऐसा स्वच्छंद ऐसा नग्न चित्रण!....इसका रचयिता पापी है, इसके श्रोता पापी हैं।.....ऐसे अधर्मी और अनाचारी कवि के सम्मान में जो भाग ले, वह पापी है।"[9]

धर्मगुरु के साथ–साथ महादंडनायक तथा अन्य गणमान्यों ने भी दिया और सभी लोग इस पर मर्यादाहीन होने के कारण प्रतिबंधित करने की माँग करने लगे। राजसभा के केवल आर्य सौमित्र को छोड़कर सभी लोग धर्मगुरु के पक्ष में आ गए। यद्यपि आर्य सौमित्र कालिदास के पक्ष में तर्क रखते हैं, तथापि उनकी बात को बहुमत के पक्ष में अनसुना कर दिया गया।

"प्रियंगु : पक्ष में कोई नहीं बोला?

अनसूया : आर्य सौमित्र ने बहुत ऊँचे स्वर में कहा कि सर्ग अश्लील नहीं है। पति–पत्नी के पारस्परिक संबंध भी कहीं अश्लील होते हैं? अश्लीलता आरोप करने वालों की दृष्टियों में है, उनकी आँखों में, उनके मन में है। इसके बाद नई पीढ़ी के आठ–दस रचनाकार खड़े हुए और बोले कि इस पुरानी पीढ़ी को काव्य की समझ ही क्या है। इनकी साहित्यिक चेतना तो बाल्मीकि रामायण तक सीमित हैं। इन कट्टर, पुराणपंथियों का हस्तक्षेप हम किसी भी प्रकार सहन नहीं करेंगे।"[10]

महाराज चन्द्रगुप्त ने विवाद को रोकने हेतु एक जाँच समिति की घोषणा कर दी। जिसका कार्य आठवें सर्ग पर लगे आरोपों के आधार पर उसकी जाँच करना था। समिति कालिदास को सभी के समक्ष माफी माँगने का प्रस्ताव देती है लेकिन कवि की अंतश्चेतना यह स्वीकार नहीं कर पाती कि उसे अपनी रचना के लिए किसी से क्षमायाचना करनी पड़े। वह सम्राट चन्द्रगुप्त से कहते हैं–

"चन्द्रगुप्त : अर्थात् झुकना तुम्हें ही है, समझौता तुम्हें ही करना है, क्योंकि इसी में तुम्हारा हित है. ...और मेरा भी!

कालिदास : यदि ऐसा न हुआ, तो?

चंद्रगुप्त : कालिदास व्यर्थ की हठ मत करो। यदि लोगों का आक्रोश बढ़ता गया तो हो सकता है कि मुझे तुम्हारी सुरक्षा के लिए इस बात का आदेश देना पड़े कि तुम्हें उज्जयिनी से निष्कासित कर दिया जाए।

कालिदास : (धीमे स्वर में) 'कुमारसंभव' को मैं अधूरा ही छोड़ दूँगा। आठवें सर्ग पर....आगे नहीं लिखूँगा। इस रचना को एक प्रकार से भूला ही दूँगा। यह कभी मेरे घर से बाहर नहीं निकलेगी। किसी गोष्ठी में इसका पाठ नहीं होगा। किसी तक इसकी प्रतिलिपि नहीं पहुँचेगी।....इतने से लोग संतुष्ट हो जाएँगे। फिर तो किसी को आपत्ति नहीं होगी।

चंद्रगुप्त : (कालिदास की तरफ देखता रहता है। सहमति में सिर हिलाता है, सोचता हुआ–सा) लेकिन अधूरा छोड़ दोगे? तुमने इस पर इतना श्रम किया है।"[11]

अंततः कालिदास की यह श्रेष्ठ रचना श्लील–अश्लील की मर्यादाओं के बीच में उलझकर अधूरी ही रह गई। आठवाँ सर्ग नाटक के तीसरे अंक में घटना के तीन वर्ष पश्चात् वसन्तोत्सव के दिन 'अभिज्ञानशांकुतलम्' नाटक के स्वर्णजयंती पर महाकवि कालिदास का सम्मान समारोह हो रहा है। राज्य एवं उसकी जनता अपने महाकवि को हृदय में बिठा लेना चाहती है किंतु महाकवि के मन में इसे लेकर कोई उत्साह का भाव नहीं है। वह रंगशाला में आयोजित होने वाले सम्मान समारोह में नहीं जाते हैं। प्रियंगुमंजरी के द्वारा न आने का कारण पूछने पर वह बतालते हैं।

"कालिदास : संध्या–वेला को वन की शांति....कोविदार, कंदब और सर्ज के वृक्ष....ऊँचे! मौन....कुंद और कुरबक के पौधे! सुकुमार! निष्पाप!....पीछे शिप्रा....अपनी ही लगति पर मुग्ध प्रवाह....जल की अनवरत कलकल....सलोनी।....ऐसे पुनित सम्मोहन को छोड़कर कहाँ जा रहा हूँ मैं?. ....मैं क्या करूँगा वहाँ?....यह सम्मान मुझे क्या देगा?.....इस नाटक को जो देना है, मुझे वह दे चुका है।.....रचना का संतोष....देश के कोने–कोने से दर्शकों की साझेदारी.... भावोपलब्धि के बाद की उनकी निरंतर चलती करतल ध्वनि।"[12]

रचनाकार के लिए उसकी रचना का सबसे बड़ा सम्मान उसका जन–जन तक पहुँचना है। यही उस रचना एवं रचनाकार की सुखद उपलब्धि है। रचना की इस सार्थकता के आगे उसके अन्य सभी सम्मान एवं पुरस्कार बेमानी है। महाकवि कालिदास राज्य आश्रित मान सम्मान एवं उपलब्धि से बहुत दूर जा चुके हैं, उनकी ख्याति सुदूर देश–देशांतर तक फैल चुकी है। उज्जयिनी के सम्राट चन्द्रगुप्त के द्वारा सम्मान समारोह में न आने का कारण पूछने पर कालिदास का कथन इसकी पुष्टि करता है–

"कालिदास : शिप्रा की वर्तुल लहरे देखते–देखते अचानक तीन वर्ष पहले की याद आ गई।

....आज ही का दिन था....ऐसा ही उत्सव....ऐसा ही आह्लाद.....और तब लगा कि राज्य मेरे सम्मान के लिए इतना उतावला क्यों है....आपने अपनी अश्वमेघ यात्रा में देख लिया कि एक रचनाकार जनमानस में कितने गहरे पैठ चुका है। शासन अब क्या चाहता है?.....रचनाकार को स्वीकार करके अपने किए को अनकिया करना चाहता है? बतलाना चाहता है कि यह सचमुच सुसंस्कृत है, साहित्यिक गरिमा का पारखी....ललित कलाओं का अनुरागी. ... ।"[13]

कालिदास की रचना पर अश्लीलता का आरोपण करके जिस राज्य एवं उसकी जनता ने प्रतिबंधित किया था, आज वहीं लोग उनका एवं उनके रचनाकर्म का सम्मान करना चाहते हैं किंतु कालिदास के रचनाकर्म को उनका वास्तविक सम्मान मिल चुका है और अब उन्हें ऐसी जनता अथवा राज्य से कोई अन्य सम्मान प्राप्त करने की इच्छा नहीं है, जिसे साहित्यिक सौंदर्य की परख ही नहीं हो। साहित्य की उपेक्षा का यह क्रम अभी भी जारी है। आज का लेखक भी इन्हीं प्रश्नों से जूझता रहा है। डॉ० अशोक एम० पटेल इसी विषय में लिखते हैं, "'आठवाँ सर्ग में सुरेन्द्र वर्मा ने कालिदास की अभिव्यक्ति स्वतंत्रता की पीड़ा को व्यक्त किया है। आज का रचनाकार भी कालीदास की तरह व्यवस्था की सीढ़ियों पर एड़ियाँ घिस–घिस कर दम तोड़ने के लिए विवश है, किंतु उसकी अभिव्यक्ति को कोई समझने को तैयार नहीं है।"[14]

इस तरह नाटक सत्ता एवं समाज के आगे केवल महाकवि कालिदास की बेबसी को ही नहीं दर्शाता अपितु साहित्यिक जगत् के हर उस लेखक की व्यथा को उजागर करता है, जिसकी श्रेष्ठ रचना को श्लील–अश्लीलता का आरोप मढ़कर हाशिए पर धकेल दिया जाता है। श्लील– अश्लीलता की सीमाओं का निर्धारण करता समाज रचनाकार की वास्तविक प्रतिभा को भी नैतिकता एवं मर्यादाबोध के अंकुश में कसना चाहता है। सत्ता व समाज के मठाधीश ऐसा करते हुए यह भी ध्यान नहीं रख पाते हैं कि इससे साहित्य वास्तविकता से कोसों दूर हो जाएगा।

साहित्य समाजानुरूप ही सृजित होता है। यदि रचनाकार सृजन की इस परिधि का परित्याग कर देगा, तो उसका साहित्य समाज हित से दूर केवल मनगढ़त कल्पनाओं का पिटारा भर रह जाएगा। अस्तु कोई भी रचना श्लील–अश्लील नहीं होती है। उसके पाठक की दृष्टि ही उसे मूल्यवान और सार्थक बनाती है। साहित्यकार समाज के आगे मशाल लेकर चलता है, उसे समाज में जो दिखता है, उसी को वह अपने साहित्य के रूप में समाज को लौटा देता है। निष्कर्षतः साहित्य को श्लील–अश्लील की परिधियों में बाँटने वाले साहित्य समीक्षकों, सत्ताधीशों और धर्माचार्यों को पहले समाज से इन प्रक्रमों को हटाना पड़ेगा, तभी वह साहित्य पर दोषारोपण कर सकते हैं। कालिदास से लेकर सुरेन्द्र वर्मा तक अनेकानेक रचनाकारों को इस आक्षेप का सामना करना पड़ा है।

'आठवें सर्ग' नाटक में इन्हीं श्लील–अश्लील विषयक धारणाओं को डॉ० भानु भाई रोहित और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "'आठवाँ सर्ग' सुरेन्द्र वर्मा का बहुचर्चित नाटक है। इसमें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में श्लीलता–अश्लीलता के प्रसंग को लेखकीय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं राजाश्रय की समस्याओं के साथ उठाया गया है।"[15] प्रस्तुत नाटक में सुरेन्द्र वर्मा ने सत्ता एवं समाज के कठघरे में खड़े किए गए प्रथम साहित्यकार के साथ–साथ अपने जैसे उन सभी रचनाकारों की भी पैरवी की है, जिनकी श्रेष्ठतम साहित्यिक कृतियों को इसी श्लील–अश्लील संबंधी धारणाओं के समक्ष प्रश्नचिह्नित किया गया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'आठवाँ सर्ग' लेखकीय स्वतंत्रता एवं सामाजिक ग्राह्यता के बीच रचना की वास्तविक उपलब्धि को निर्धारित करती हुई सफल नाट्यकृति है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने रचनाकार की नैसर्गिक, उसकी सृजनदृष्टि तथा भावलोक के बीच तारतम्य को बाधित करने वाले कारकों का सूक्ष्मान्वेषण किया है। अस्तु यह नाटक साहित्य, समाज और लोक के बीच अंतर्संबंध स्थापित करते साहित्यकार की आंतरिक पीड़ा को स्वर प्रदान करता है, जिसमें उसकी साहित्यिक स्वीकार्यता के विस्तार को ही उसकी

वास्तविक उपलब्धि दर्शाया गया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सुरेन्द्र वर्मा द्वारा सृजित 'आठवाँ सर्ग' नाटक साहित्य के प्रति लोक व जनमानस में व्याप्त अवरधारणाओं को तोड़ता है। यह इतिहास व वर्तमान के बीच भविष्य को देखने की नई समझ विकसित करता हुआ, समाज निर्माण में साहित्य व साहित्यकार की निर्णायक भूमिका तय करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ० विजयपाल, सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध, नीरज बुक सेंटर, मदर डेयरी, पटपड़गंज, दिल्ली–110092, प्रथम संस्मरण, पृ० सं० 34
3. सुरेन्द्र वर्मा, लेखकीय वक्तव्य से उद्धृत, मेरे प्रिय नाटक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली–110070, प्रथम संस्करण 2015, पृ०सं० 13
3. सुरेन्द्र वर्मा, मेरे प्रिय नाटक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली–110070, प्रथम संस्करण 2015, पृ०सं० 6–7
4. डॉ० विजयपाल, सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में आधुनिकता बोध, नीरज बुक सेंटर, मदर डेयरी, पटपड़गंज, दिल्ली–110092, प्रथम संस्मरण, पृ०सं० 34
5. सुरेन्द्र वर्मा, मेरे प्रिय नाटक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली–110070, प्रथम संस्करण 2015, पृ०सं० 10
6. वहीं, पृ०सं० 11–12
7. वहीं, पृ०सं० 19–20
8. वहीं, पृ०सं० 21
9. वहीं, पृ०सं० 25
10. वहीं, पृ०सं० 26
11. वहीं, पृ०सं० 45
12. वहीं, पृ०सं० 55–56
13. वहीं, पृ०सं० 58
14. डॉ० अशोक एस० पटेल, सुरेन्द्र वर्मा और आठवाँ सर्ग, चिन्तन प्रकाशन, 3ए/119, आवास विकास, हंसपुरम, कानपुर–208021, प्रथम संस्करण, 2010, पृ०सं० 81
15. डॉ० भानू भाई रोहित, सुरेन्द्र वर्मा व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 3ए/119, आवास विकास, हंसपुरम, कानपुर–208021, प्रथम संस्करण, 2010, पृ०सं० 93

मो० 09911912572

ई–मेल : me.bhati62@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 440-443
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मन्नू भंडारी और शिवानी की कहानियों में परिवेशबोध

-सुनील कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग, एम०एम०एच०कॉलेज, ग़ाज़ियाबाद।

मन्नू भंडारी और शिवानी नई कहानी आंदोलन की महत्वपूर्ण कथाकार है। इन दोनों ही कथाकारों के लेखन का आधार स्त्री जीवन की विसंगतियाँ और विडंबनाएं हैं। स्त्री जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं पर लिखते हुए मन्नू भंडारी और शिवानी ने जिस परिवेश का निर्माण किया है उसे इनकी कहानियों के आधार पर देखा जा सकता है। नई कहानी आंदोलन का आरंभ जिस परिवेश में हो रहा था आज़ाद भारत के शुरुआती दिनों का परिवेश है जिसमें नई–नई मिली हुई आज़ादी के प्रति एक खास तरह का रागात्मक लगाव हिंदुस्तान की जनता के मन में मौजूद था। आज़ादी की लड़ाई के दौरान जो सपने देखे गए थे अब उनके पूरे होने के दिन आ गए थे। आज़ादी मिलने और संविधान लागू होने के साथ ही हिंदुस्तान ने एक नई हवा में सांस लेना शुरू किया। लेकिन यह सब बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सका। जल्द ही आज़ादी की लड़ाई के दौरान के विकसित जीवन मूल्य नष्ट होने लगे, आज़ादी झूठी लगने लगी। भारतीय लोकतंत्र और भारतीय राष्ट्र राज्य के अंतर्द्वंद्व सामने आने शुरू हो गए। कहा गया था कि आजादी मिलते ही देश की सभी समस्याएं खत्म हो जाएंगी। सबको अपना अपना हक मिल जाएगा पर असलियत में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। परिणाम निकला कि हर वर्ग की तरफ से आवाज आने लगी की है आज़ादी झूठी है। स्त्री लेखिकाओं ने हजारों सालों से द्वितीय श्रेणी की नागरिकता का जीवन जी रही स्त्रियों के हक हुकूक की बात शुरू की। मन्नू भंडारी और शिवानी की कहानियों में परिवेशगत चित्रण को इसी नजरिए से देखने की जरूरत है।

मन्नू भंडारी की कहानियों में परिवेशबोध :-

मन्नू भंडारी और शिवानी की कहानियों का परिवेशगत बोध आज़ाद भारत में स्त्री की दशा और दिशा को व्यक्त करता है। मन्नू भंडारी और शिवानी अपनी कहानियों में जिस परिवेश का चित्रण करती हैं उन्हें अगर हम उनकी कहानियों के कथानक और चरित्रों के साथ देखें तो बात ज्यादा स्पष्टता के साथ सामने आएगी। इन दोनों कथाकारों के यहाँ स्त्री अपने यथार्थ जीवन की विडंबनाओं के साथ उपस्थित हुई है। किसी तरह के आदर्शवाद के चक्कर में न फँसकर इन कथाकारों ने स्त्री जीवन को जैसे जिया, अनुभव किया और देखा वैसे ही अपनी कहानियों में दर्ज कर दिया। मन्नू भंडारी की कहानियों के कथ्य में आत्मविस्तार और संवेदना का फैलाव ही अधिक है क्योंकि अपने अत्यंत व्यक्तिगत और एकांत अनुभवों को कहानी के चरित्रों और स्थितियों के बीच रख देना या अपने से अलग कहानी की दुनिया से अपना व्यक्तिगत निकाल लेना ही काला को एक साथर्कता देता है, सर्वजनीनता देता है । जिन रचनाओं में अपनी और दूसरों की बात इस तरह घुल मिल गयी है, वे इतनी अधिक संभावनाओं से भरी होती है कि प्रायः समय–समय पर उनकी नई व्याख्याएँ और नए पक्षों

का उदघाटन होता रहता है। व्यक्तिगत अनुभव निर्वैयक्तिक होकर ही सत्य का दर्जा पा सकता है। पारिवारिक प्रेम और दांपत्य जीवन की नई सच्चाई यों को मनु भंडारी ने बड़े साहस और निर्भीकता के साथ अपनी कहानियों में आँका है। ऐसा करते हुए उनके द्वारा निर्मित परिवेश यथार्थ जीवन को व्यक्त करने में सहायक सिद्ध होता हुआ दिखाई देता है। वर्तमान संदर्भों में अपने ही घर परिवार में नारी आउट साइडर या मिसफिट होने की पीड़ा झेलती है तो अपने विवेक के आधार पर चलने की सामर्थ्य भी रखती है और शरीर से दूसरी की होकर भी मन की ऊंचाई पर पति–पत्नी के संबंधों की पवित्रता बचाए रखती है। क्योंकि यदि संबंधों का आधार इतना छिछला है, इतना कमजोर है कि वह हर पुरुष के स्पर्श मात्र से खंडित हो जाता है तो सचमुच उसे टूट ही जाना चाहिए। इस संदर्भ में हम चाहें तो यही सच है कहानी को देख सकते हैं। यह आजकल के स्त्री पुरुषों के संबंधों में आई नई सच्चाई है जिसे मन्नू भंडारी की कहानियों में बड़ी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्ति दी गई है।

इसी प्रकार प्रेम के पुराने संदर्भ को भी आधुनिक जीवन बोध से जोड़कर मन्नू भंडारी ने उसे नई अर्थवत्ता प्रदान की है। यही सच है कहानी मे क्षण की अनुभूति को व्यापक धरातल पर चित्रित किया गया है। मन्नू भंडारी की कहानियों की आंतरिक संरचना यातना और करुणा से भरी हुई है। इनमें जीवन को देखने, उसे समझने और जीने की एक नई दृष्टि मिलती है। सुखद और उल्लासपूर्ण क्षणों में व्यक्ति अपने से बाहर और औरों के साथ होता है जबकि यातना के क्षण में वह अपने बेहद करीब होता चला जाता है। मन्नू भंडारी की कहानियाँ पर से स्व की यात्रा की कहानियाँ है।

कथ्य की दृष्टि से देखे तो मन्नू भंडारी की कहानियों में वैविध्य दिखाई देता है। यह वैविध्य उनके द्वारा चयनित परिवेशबोध की वजह से संभव हुआ है। मन्नू भंडारी ने व्यापक स्तर पर हिन्दी समाज के यथार्थ को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। उनकी कहानियों में जहां एक तरफ यही सच है जैसी प्रेम के त्रिकोण की कहानी है तो वहीं अभिनेता जैसी कहानी भी शामिल है। मन्नू भंडारी की कहानियाँ चाहे जिन विषयों से शुरू होती हो अंत में वे जहां जाकर समाप्त होती हैं वहां स्त्री जीवन की त्रासद सच्चाई ही दिखाई देती है। मन्नू भंडारी की प्रेम विषयक कहानियों में भी यातना ही मौजूद है। स्त्री के यातनापूर्ण जीवन को अभिव्यक्त करने का सबसे सशक्त माध्यम मनु भंडारी ने अपनी कहानियों को बनाया है। वातावरण और परिवेश निर्माण के लिए मन्नू भंडारी ने उपयुक्त और सशक्त भाषा का प्रयोग किया है, जिससे नारी ह्रदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावतन्तु भी झंकृत हो सके हैं। देश काल और परिस्थितियों के अनुसार मन्नू भंडारी की कहानियों का भाषिक अंदाज भी बदलता गया है। इससे जो सबसे बड़ा लाभ हुआ है वह यह है कि कहानी के कथ्य संप्रेक्षण में बहुत मदद मिली है।

मन्नू भंडारी की कहानियों में गत्यात्मक बिम्बों, प्रतीकोण तथा संकेतों की आयोजना हुई है। रूप विधान में सहज आत्मीयता एवं विश्वसनीयता की सृष्टि के लिए मन्नू भंडारी ने पत्र और डायरी आदि कथाशैलियों को अपनाया है। इसमें दुहरे कथानक तथा संश्लिष्ट शैली का भी प्रयोग दिखाई देता है। मन्नू भंडारी की कहानियां अपने कथ्य में जितनी स्पष्टता और बेबाकी का परिचय देती हैं अपने शिल्पगत प्रयोग में भी वे उतनी ही स्पष्ट हैं। मन्नू भंडारी की कहानियों का परिवेश आज़ाद भारत के उन वर्षों का परिवेश है जिसमें भारत के आधुनिक राष्ट्र– राज्य बनने की प्रक्रिया चल रही थी। कहानी स्वरूप और संवेदना नामक अपनी पुस्तक में राजेंद्र यादव ने लिखा है– 'इस पीढ़ी के लिए यह आसान नहीं है कि वह अपने साहित्य के प्रति ईमानदारी का सही–सही निर्वाह कर सकें। परिणामतः नई कहानी का विखराव, जटिलता, अस्पष्टता, आस्था हीनता आज के मानस की

ही तस्वीर सामने रखती है। हां, एक संतोष हमें जरूर होना चाहिए कि चाहे इन कहानियों का स्वर निर्माण और आशा का ना हो लेकिन अपनी विशदता और विविधता में देश और समाज के हर स्तर को आज की कहानी में पाने की कोशिश की है। वह कश्मीर की रंगीन घाटियों से लेकर अल्मोड़ा और नेपाल की तराइयों तक और बस्तर और नागपुर की आदिम जनजातियों से लेकर कलकत्ता और बंबई के अत्याधुनिक नाइट कैम्बरों तक अपनी बहन फैलाए हैं'।[1] राजेंद्र जी द्वारा कही गई बात उसी समय की कहानी के बारे में है जिस समय में मन्नू भंडारी का लेखन देखने को मिलता है। मन्नू जी ने अपनी कहानियों में भारतीय जनता के जीवन यथार्थ को तो दर्ज किया ही स्त्री जीवन के संत्रास को भी जगह दिया। उनकी कहानियों का परिवेश बोध आधुनिक मानवीय जीवन की संवेदना को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनकर हमारे सामने उपस्थित होता है।

शिवानी की कहानियों में परिवेशबोधरू हिन्दी कहानी के इतिहास में नई कहानी का अपना अलग महत्व है। नई कहानी आंदोलन के दौरान जिन कथाकारों ने अपने लेखन के माध्यम से अपनी अलग पहचान दर्ज कराई उनमें शिवानी का नाम बेहद महत्व के साथ लिया जाता है। शिवानी ने दर्जनों उपन्यास और दो सौ के आसपास कहानियों का लेखन किया है। उनकी कहानियां स्त्री जीवन के दुख दर्द को अभिव्यक्त करने का माध्यम बनकर हमारे सामने उपस्थित हुई हैं। शिवानी के लेखन की सबसे बड़ी विशिष्टता यह रही है कि उन्होंने व्यक्ति और समाज के बीच रूढ विभाजन को किसी भी तरह स्वीकार नहीं किया है। जहां वे सामाजिक जीवन संदर्भों में सामाजिक विसंगतियों और विडंबनाओ को दर्ज करती हैं वही व्यक्ति मन की कुंठाओ और विसंगतियों को भी स्थान देती हैं।

शिवानी के विस्तृत लेखन का क्षेत्र विविधताओं से भरा हुआ है। उनके लेखन में जहां एक तरफ सामाजिक ताने–बाने में बंधी हुई स्त्री जीवन की करुणा और पीड़ा व्यक्त हुई है वहीं दूसरी तरफ वे प्रेम और आह्लाद पर भी पर्याप्त लेखन करती हुई दिखाई देती हैं। उनके लेखन का क्षेत्र मन्नू भंडारी या दूसरी कथाकारों की तरह सीमित नहीं है। उन्होंने अपने लेखन को विस्तार दिया तो संवेदना के धरातल को भी वैविध्य प्रदान किया। लाल हवेली जैसी कहानी विभाजन और विस्थापन की त्रासद स्थिति में जीवन के यथार्थ को व्यक्त करती है। एक तरफ जहां लाल हवेली प्रेम की प्ररिक बनकर उपस्थित होती है वहीं दूसरी तरफ वह सांप्रदायिक विद्वेष और स्त्री पीड़ा का भी प्रतीक बनकर उपस्थित हुई है। इसी तरह दूसरी तमाम कहानियाँ जिनमें प्रेम और करुणा एक साथ उपस्थित हुए हैं वह भी शिवानी के विभाजित मन की शिनाख्त करती हैं। शिवानी का लेखन जितना विस्तृत है उनका परिवेश भी उतना ही विस्तार पाता गया है। यूं तो उनके लेखन में जो परिवेश चित्रित हुआ है वह पहाड़ी क्षेत्र का मध्यवर्गीय जीवन है लेकिन सिर्फ वही नहीं है। शिवानी का बहुत गहरा रिश्ता पहाड़ी जीवन से रहा है इसलिए उनके लेखन में बार–बार पहाड़ का स्मरण किसी पात्र की तरह होता है। शिवानी के लेखन में पहाड़ हमेशा मौजूद दिखाई देता है। पहाड़ के साथ ही मौजूद दिखाई देता है मध्यवर्गीय भारतीय आम जनमानस। इस मध्यवर्गीय मानस को शिवानी ने अपनी कहानियों का आधार तो बनाया लेकिन उनकी चिंता हमेशा इसे पार कर एक ऐसे लोग में विचरण करने की रही जहां अभावग्रस्त जीवन जीते हुए लोग दिखाई देते हैं।

शिवानी के लेखन में अभावग्रस्त जीवन के जीतने प्रामाणिक हितरा दर्ज हुए हैं उतने उनके समकालीन कथाकारों में किसी के यहाँ नहीं दर्ज हुए हैं। जिलाधीश, अपराजिता, उपहार, केया, लाल हवेली, गहरी नींद और निर्माण जैसी कहानियों में भले ही स्यतरी चरित्र आर्थिक रुप से सम्पन्न और सुखी से दिखने वाले हों पर उनके

मन की गाँठे जहां खोलकर शिवानी ने रखा है वहाँ पाठक देखता है कि स्त्री आर्थिक रूप से सबल हो जाने मात्र से जरूरी नहीं है कि सुखी हो ही जाए। सुखी जीवन जीने में और आर्थिक रूप से सबल होने में बहुत अंतर है। शिवानी की कहानियाँ इस अंतर को अलग–अलग परिवेश के माध्यम से व्यक्त करने में सफल सिद्ध हुई हैं।

शिवानी ने कुरमाञचल संस्कृति में व्याप्त तंत्र, मंत्र, टोने, टोटके एवं अंधविश्वास को एक सामाजिक समस्या के रूप में लेकर उसका निदान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इन घटनाओं का चित्रण बिना पहाड़ी परिवेश को व्यक्त किए कर पाना संभव ही नहीं था इसलिए इनमें भी पहाड़ी जीवन का परिवेश व्यक्त होता हुआ दिखाई देता है। ग्रामीण समाज के लोग किसी प्रकार की गंभीर व्याधि को भी ईश्वरोया प्रकोप या किसी के द्वारा किया गया टोना,टोटका ही मानते हैं और अस्पताल में इलाज करवाने से ज्यादा महत्व तंत्र मंत्र और जादू टोने को देते हैं। शिवानी की कई कहानियों में ऐसे परिओवेश का चित्रण हुआ है जिनमें किसी को कोई व्याधि है और वह इलाज कराने के बजाय जादू टोने में भरोसा करके ओझा, सोखा के पास जाती है। परिणाम होता है कि वह अपने जीवन से हाथ धो बैठता है। ऐसा करते हुए शिवानी जी ने दो काम किया है। एक तो सामाजिक कुरीति का चित्रण और दूसरा उस परिवेश का चित्रण जिसमें ऐसे लोग उपस्थित हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्नू भंडारी और शिवानी की कहानियों में परिवेशबोध नई कहानी आंदोलन से जुड़े उन कथानक रूढ़ियों को व्यक्त करता है जो नई कहानी की अपनी विशिष्ट विशिष्टता है। दोनों ही कथाकारों ने नई कहानी के मुहावरों का सफल प्रयोग करते हुए अपने लेखन के लिए परिवेश का निर्माण किया है। जहां मन्नू भंडारी की कहानियों में शहरी मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ व्यक्त हुआ है वही शिवानी के लेखन में पहाड़ का परिवेश मौजूद दिखता है। इन दोनों ही कथा कारों ने अपने परिवेश निर्माण के लिए यथार्थ जीवन का सहारा लिया है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. कहानी : स्वरूप और संवेदना, राजेंद्र यादव, राजकमल प्रकाशन समूह, नई दिल्ली।
2. कहानी नई कहानी, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन समूह, नई दिल्ली।
3. नई कहानी की भूमिका, कमलेश्वर, राजकमल प्रकाशन समूह, नई दिल्ली।
4. हिंदी कहानी, संवेदना और शिल्प, डॉ. शिवशंकर पाण्डेय, ज्ञान प्रकाशन कानपुर।
5. मन्नू भंडारी का कथा साहित्य, संवेदना और शिल्प, डॉ. भूमिका पटेल, चिंतन प्रकाशन, कानपुर।
6. उपन्यासकार शिवानी, संवेदना और शिल्प, नज़मा अंसारी, चिंतन प्रकाशन, कानपुर।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 444-447
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी कहानी और वृद्धजीवन की समस्याएं

–अंजना.एम

एम.फिल स्कॉलर, कारिअवट्टम कैंपस, केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम।

हिंदी कहानी की शुरुआत से ही वृद्धजनों और उनसे जुड़ी समस्याओं को दर्शाया आ रहा है। वर्तमान समय में वृद्धों की समस्याओं और जीवनयावन से जुड़े कई कहानियां प्रचलित हो रहे हैं। 'बुढ़ापा को बचपन का पुनरागमन कहता है'। उम्र के इस पड़ाव में आकर बूढ़े लोग बच्चे बन जाते हैं। बच्चों की तरफ नटखट, गुस्सीलापन और किसी चीज़ को लेकर उनकी चाहत इतनी बढ़ जाती है कि उसे पाने की ज़िद्द करते हैं। आज के बच्चों को उनके इस जिद्द को पूरा करने का समय नहीं है चाहे ज़िद्द मामूली भी क्यों ना हो। बच्चे कभी यह नहीं सोचते हैं कि एक समय ऐसा भी था कि उनके मां–बाप अपनी चाहतों को दबोच कर अपने बच्चों की ज़िद्द पूरा करते थे।

कहानी हिंदी साहित्य की सशक्त विधा है। आजकल वृद्धावस्था से संबंधित कई कहानियां लिखी जा रही है। वृद्धावस्था को एक नए सिरे से देखने की आवश्यकता है। डॉ. ऋषभ देव शर्मा ने लिखा है– "आज हमारी चिंता का विषय विशाल वृद्धजन समुदाय के जीवन को सुखमय बनाने से संबंधित है– चाहे वे पुरुष हो या स्त्री। यही कारण है कि वृद्धावस्था से जुड़े वृद्धाश्रम तक के अथवा देह से आयु तक के क्षीण होने के मुद्दे चिंतन और सृजन के विविध मंचों पर छाए हुए हैं यदि यह कहा जाए कि आज का मनुष्य बुढ़ापे और मौत से कुछ ज्यादा ही आतंकित है तो भी शायद गलत ना होगा।"[1]

प्रेमचंद की 'बूढी काकी', भीष्म साहनी की 'चीफ़ की दावत', मन्नू भंडारी की 'अकेली', चित्रा मुद्गल की 'गेंद', कृष्णा अग्निहोत्री की 'झुर्रियों की पीड़ा', 'तोर जवानी सलामत रहे', मृदुला गर्ग की 'बेंच पर बूढे', सूर्यबाला की 'बाऊजी और बंदर' आदि कहानियों में वृद्ध जीवन की समस्याओं का पर्दाफाश हुआ है।

प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' में अपने परिवार वालों से उपेक्षित एक वृद्ध महिला की दारुण कथा प्रस्तुत की गई है। बुद्धि राम मीठी–मीठी बातों में काकी को फुसलाकर उनसे सारी संपत्ति अपना नाम लिखवा लेते हैं। संपत्ति अपने नाम के होने के बाद पूर्णतः उसकी उपेक्षा करता है। उसे भरपेट भोजन तक नहीं देते थे। भूख के कारण वह रोती रहती थी। भला बुरा कह कर उसे अपमानित करती है। नई पीढ़ी की बच्चे वृद्धों की सोच एवं इच्छाओं का मज़ाक बनाता है। यह स्थिति केवल बूढी काकी की नहीं बल्कि समाज में ऐसे कई वृद्ध है जो इन्हीं समस्याओं से गुज़रते हैं। कहानी के अंत में बुद्धि राम की पत्नी द्वारा बूढी काकी को जूठन चाटते हुए देखने पर पछतावा होता है। वह कहती है– "काकी उठो, भोजन कर लो। मुझसे आज बड़ी भूल हुई, उसका

बुरा ना मानना। परमात्मा से प्रार्थना कर दो कि वह मेरा अपराध क्षमा कर दें।"[2] समूचे समाज में आज वृद्धों की यही दयनीय हालत है।

मन्नू भंडारी की कहानी 'अकेली' में सोम बुआ नामक बूढी औरत की कथा का बयान है। वह परित्यक्ता और अकेली है। अपने पुत्र के निधन के बाद पति उसे छोड़ कर चला जाता है। इस कहानी में एक अकेली बूढी औरत के मानसिक संसार को दिखलाया गया है। वह आस–पड़ोस की सभी कार्यक्रमों में जाकर जी तोड़ कर काम करती है। पड़ौसी राधा ही उसका एकमात्र सहारा है। पति साल में एक महीना घर आता है। उन्हीं दिनों बुआ को पड़ोस में जाना बंद हो जाता है। एक पल भी पति उससे ठीक से बात नहीं करती। बुआ आपने अकेलापन को भूलने के लिए ही बिन बुलाए आस–पड़ोस में जाती थी। बुढ़ापा मनुष्य जीवन का अंतिम अवस्था होती है। इस समय वृद्ध को सबसे ज़्यादा अपने परिवारवालों के साथ की जरूरत है। बुआ के दूर के किसी रिश्तेदार की शादी में जाने के लिए वह चांदी की सिंदूरदानी, लाल–हरी चूड़ियां, साड़ी, बेटे की एकमात्र निशानी सोने की अंगूठी का इंतजाम करती है। पति निर्देश देते हैं कि बिना बुलावे के बुआ वहां नहीं जाएगी। सात बजे तक बुआ निमंत्रण का इंतजार करती रही जब कि शादी पाँच बजे का था। उदासी मन से घर के छत पर खड़े होकर दूर देखने लगी। कहानी के पात्र सोम बुआ की तरफ समाज में कई वृद्ध ऐसे हैं जो बिना सहारे जी रहे हैं।

भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी में शामनाथ की मां को केंद्र बनाया है। शामनाथ शिक्षित युवा पीढ़ी के प्रतिनिधित्व करते हैं। कहानीकार ने अपने मां–बाप को समझ कर घर के कोने में डालने वाले आज के बच्चों पर करारा व्यंग्य किया है। अपनी पदोन्नति की लालच से चीफ़ को दावत पर बुलाती है। शामनाथ के घर में वृद्ध मां और पत्नी है। वह अपनी मां को बोझ समझता है। वह अपनी मां को चीफ़ के सामने लाने में शर्मिंदगी महसूस करता है। बच्चे बड़े होकर अपनी मां–बाप के व्यवहार से नफरत करती है। जिन मां–बाप ने अपनी पूरी ज़िंदगी बच्चों के लिए त्याग की उन्हीं की उपेक्षा हो रही है। एक समय ऐसा था जब बुजुर्गों को पूजते थे। आज वह केवल बोझ बन गए हैं। उसे पढ़ाने के लिए माँ ने जिन–जिन मुसीबत झेली थी वह सब मां की ज़िम्मेदारी मानता है । उस मां की देखभाल उसके लिए ज़िम्मेदारी नहीं। बेटे के व्यवहार से मां हमेशा डरती रहती है। निरक्षर मां को चीफ़ के सामने लाना उसे पसंद नहीं था। बेटे ने चीफ से बात करने के बारे में कहा तो मां कहता है–"मैं न पढ़ी न लिखी बेटा मैं क्या बात करूंगी। तुम कह देना मां अनपढ़ है वह जानती समझती नहीं। वह नहीं पूछेगा।"[3] श्यामनाथ अपनी मां को चीफ के सामने अंग्रेजी मां बनाने की कोशिश कर रहा था। बेटे की निर्देश से मां लोकगीत गाती है, फुलकारी देती है। माने हरिद्वार जाने की आशा प्रकट की तो उसे डाँटता है। भीष्म साहनी ने युवा पीढ़ी के बुजुर्गों के प्रति व्यवहार को अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

चित्रा मुद्गल की कहानी 'गेंद' में वृद्ध जीवन की पीड़ाओं एवं विपदाओं का चित्रण मिलता है। सचदेव नौकरी से रिटायर्ड एक वृद्ध पिता है जिनका पुत्र नौकरी के लिए इंग्लैंड चला गया और वहीं शादी करके बस गया। वह अपने पिता को वृद्ध आश्रम में रहने की व्यवस्था करता है। आज वृद्धाश्रम की संख्या भी बढ़ गई है। वृद्धाश्रम में मां–बाप को भेजकर बच्चे जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहते हैं। एक दिन बुढ़ापा उन्हें भी घेर लेगी ।

जैसी करनी वैसी भरनी। कहानी में छोटे बच्चों से बातें कर, गेंद खरीद कर देने का वायदा कर उस वृद्ध पिता अपनापन ढूंढता है। वह अपनी पेंशन से ज़रूरतों को पूरा करता है। हमारे देश में बुजुर्गों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। सचदेव की इलाज के लिए भी बेटा पैसा नहीं भेजते। बाह्याडम्बरों में व्यस्त बच्चे अपने मां–बाप का स्थान इंकार करता है। बच्चे उनसे छुटकारा पाना चाहते हैं।

कृष्णा अग्निहोत्री की 'झुर्रियों की पीड़ा' कहानी में बच्चे अपने बूढ़े माँ–बाप को आश्रमों में धकेलती है। खुद के बच्चे होने के बावजूद भी अनाथों की तरह जीना कितनी दर्द की बात है। आधुनिक भौतिक सुख–सुविधाओं की खोज में तेज़ी से भाग रहे बच्चे अपने माँ–बाप को उनके उन्नति के बाधक समझते हैं। वृद्धावस्था में शारीरिक व मानसिक रूप से कई दर्द झेलनी पड़ती है। वृद्ध होने पर शरीर में झुर्रियाँ आना स्वाभाविक है। इसी समय उन्हें अपने परिवार की सबसे ज़्यादा ज़रुरत होती है। इस कहानी में एक औरत कहती है कि– "एक दिन मैं बेहोश हो गयी तो मुझे अस्पताल दोनों बेटे ले गए वहीं से यहाँ पटक गए। मैंने घर में सब काम किये आचार बड़ी डाली; नाती पोतों को रात–रात जाग पाला पर पुरस्कार में ये आश्रम मिला।"[4] हमारे समाज में आज भी कई आश्रमों में ऐसे लोग रहते हैं जो अपने परिवार के रहते हुए भी अनाथों की तरह जीना पड़ रहा है। आधुनिक सामजिक, आर्थिक समस्या के कारण बुढ़ापा एक सामाजिक समस्या बन गया है।

अकेलापन के साथ जी रहे वृद्धों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। वृद्ध जन अपना सहारा खो बैठते हैं। बच्चे अपने माँ–बाप को अकेला छोड़कर विदेश चले जाते हैं। महीने में पैसा भेजती है, लेकिन उम्र के इस पड़ाव में उन्हें पैसे की नहीं बच्चों के प्यार व देखभाल की ज़रुरत है। कभी–कभार आकर उन्हें मिलकर जाते तो बच्चों को लगता है उनकी ज़िम्मेदारी खतम हो गयी। 'फिलहाल' कहानी में कृष्णा अग्निहोत्री ने इसी समस्या का चित्रण किया है। कहानी के पात्र सूरज जब मृणाल दादी से अकेली रहने की वजह पूछता है तो वह कहती है– "बच्चों का अपना करियर व लाइफ रहती है न। पर मैं अकेली कहा हूं। तुम दोनों तो हो न।"[5] वह अपनी अकेलापन की विडम्बना को अपने अंतर दबा लेती है।

आज वृद्ध जन नकारात्मक सामाजिक सोच की शिकार हैं। बच्चों के साथ घुलने मिलने को वे तड़पते रहते हैं। गरीबी के कारण मन पसंद खाना नहीं मिलती। 'तोर जवानी सलामत रहे' कहानी में कृष्णा अग्निहोत्री ने सावित्री नामक वृद्धा के माध्यम से बच्चों का उपेक्षा भाव को व्यक्त किया है। इस कहानी में उसकी पोता लल्लन हमेशा उसे परेशान करता है– 'तुम बूढ़ी हो, हमारे घर रहती हो, मुझ पर हुकूम मत चलाना।' सावित्री उस उम्र में भी घर का काम करती है ताकि उस घर में वह अपनी अहमियत बना सके।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि कहानीकारों ने अपनी कहानियों के ज़रिए वृद्ध जीवन की समस्याओं को नये ढंग से प्रस्तुत कर पाठकों सामाजिक स्थिति से अवगत कर रहे हैं। वृद्ध होना पाप नहीं। सभी को मनुष्य जीवन की इस प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। वृद्ध को आदर व सम्मान देना चाहिए। बुढ़ापे में उन्हें अकेले छोड़ने के बजाय उनके हाथ पकड़कर साथ चलना चाहिए। जैसे एक बच्चा पहले बड़ों की उंगली

पकड़कर चलना सीखता है उसी तरह बुढ़ापे में भी वह अपने बच्चों के हाथ पकड़कर गिरने से बचता है। उन्हें सहारे की हाथ न देने वालों के साथ भी वही घटना चक्र फिर से आएगी। मेरी राय में आज तक समाज में जो भी वृद्धाश्रम और अनाथाश्रम है उनको एक रखना चाहिए किसी को मां–बाप मिल जाएगी तो किसी को बच्चे। वृद्धों के प्रति जो नकारात्मक सोच है उसमें बदलाव लाना ज़रूरी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. वृद्धावस्था विमर्श – चंद्रमौलेश्वर प्रसाद : परिलेखन प्रकाशन, पृ. सं 11
2. कहानीकार प्रेमचंद : रचना दृष्टि और रचना शिल्प – शिवकुमार मिश्र – लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं 152
3. भीष्म साहनी की कहानियां – आधार प्रकाशन, पंचकूला संस्करण 2017, पृ. सं 35
4. एक पाती ऐसी भी – कृष्णा अग्निहोत्री – अमन प्रकाशन, कानपुर 2019, पृ. सं 38
5. एक पाती ऐसी भी – कृष्णा अग्निहोत्री – अमन प्रकाशन, कानपुर 2019, पृ. सं 70

anjanaakm12@gmail.com

9048668187, 9207357253

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 448-453
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विनोद कुमार शुक्ल की कविताओं में अभिव्यक्त किसान एवं आदिवासी जीवन

–अर्चना गायतोंडे

सहायक प्राध्यापक, गणपत पार्सेकर कॉलेज ऑफ एजूकेशन, हरमल, गोवा।

कविता में अभिव्यक्त अर्थ केवल शब्दों से प्राप्त नहीं होते, बल्कि कवि अपने दृष्टिकोण और संस्कार से अर्थ का निर्माण करता है। कवि अपने चारों ओर जीवित ठोस परिवेश से घिरा होता है, जिसे वह प्रत्यक्ष रूप से जानता और महसूस करता है। इस बाह्य ठोस संसार से परे कवि के अंतस में आंतरिक संसार भी स्पंदित होता है, जिसमें कवि की संवेदना, कल्पना, अनुभव और विवेक निहित होते हैं। इस आंतरिक और बाह्य संसार का साक्षात्कार ही रचना को जन्म देता है। अतः रचनाकार के बाह्य और आंतरिक परिवेश से उसकी रचना का घनिष्ठ संबंध होता है। इस संदर्भ में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कहना है– 'रचना में परिवेश का जो अनुभव आता है, रचनाकार से होकर आता है अतः रचना में रचनाकार के मनोजगत की बुनावट, उसके संस्कार, उसकी कल्पना शक्ति और उसकी दृष्टि का बहुत योग होता है।'[1] ऐसे रचनाकार अपनी कविताओं से जनता के बीच अपनी अलग पहचान बनाते हैं। यह पहचान उनके भाव, भाषा और शिल्प को लेकर नहीं बनती, बल्कि जनता के मन में उठने वाले प्रश्न और घटित घटनाओं के प्रति रचनाकार की जवाबदेही को लेकर बनती है। आज की कविता व्यक्ति को समष्टि से जोड़ने के कारण ही अपनी अलग पहचान बनाती है। कहीं वह अपने परिवेश से प्रभावित होती है, तो कहीं उसके विरुद्ध अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करती है। अतः वर्तमान कवि अपने समाज और समय की गहरी समझ से संपृक्त रहते हैं।

मुकुटधर पाण्डेय, मुक्तिबोध जैसे प्रतिभा संपन्न कवियों की कर्मभूमि छत्तीसगढ़ ने कई साहित्यकारों को पैदा किया है। उन्हीं में से एक कवि विनोद कुमार शुक्ल जिन्हें शुरुआत से ही मुक्तिबोध और हरिशंकर परसाई का सानिध्य मिला, जिससे उनके कवि कर्म को सही दिशा मिली। मुक्तिबोध जी की प्रेरणा से विनोद कुमार शुक्ल की आरंभिक कविताएँ 'कृति' पत्रिका में प्रकाशित हुई। विनोद कुमार शुक्ल का रचना संसार पाँच कविता–संग्रह – 'लगभग जयहिन्द' (1971), 'वह आदमी नया गरम कोट पहिन कर चला गया विचार की तरह' (1981), 'सब कुछ होना बचा रहेगा' (1992), 'अतिरिक्त नहीं' (2000), 'कविता से लंबी कविता' (2001) दो कहानी–संग्रह 'पेड़ पर कमरा' (1988) एवं 'महाविद्यालय' (1996) और तीन उपन्यास 'नौकर की कमीज' (1979), 'खिलेगा तो देखेंगे' (1996), 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' (1997) से सजा है। उन्होंने अपनी कविता में अर्थ के विशाल भंडार को कम–से–कम शब्दों में समेटा है। विनोद कुमार शुक्ल की कविताओं के संदर्भ में नरेश सक्सेना कहते हैं – 'शब्दों को ध्वजा की तरह फहराने वाली यह कविता नहीं है, अनुभव को अपने पास छोड़कर स्वयं अदृश्य हो

जाने वाली या अपने अद्‌भुत वाक्य–विन्यास की मौलिकता से स्वयं का दर्जा प्राप्त कर लेने वाली भाषा इन कविताओं की विशेषता है।'[2] इनकी कविताएँ जहाँ एक ओर छत्तीसगढ़ अंचल के भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण करती है, वहीं दूसरी ओर हाशिए पर पड़े निम्नवर्ग की त्रासद सच्चाइयों को मुखरित भी करती है –

'चारों तरफ प्रकृति और प्रकृति की दुनिया है
यदि मैंने कुछ कहा तो
अपनी भाषा में नहीं कहूँगा
मनुष्य ध्वनि में कहूँगा।'[3]

विनोद कुमार शुक्ल सभ्य कहे जाने वाले उच्चवर्गीय समाज से अलग–थलग पड़े निम्नवर्ग (कृषक, सर्वहारा और आदिवासी) की आवाज बनते हैं, जो हर मौसम की मार झेलता हुआ अभावग्रस्त जीवन जाने के लिए ही जन्मा है। अनवरत परिश्रम के पश्चात् दो जून की रोटी प्राप्त करने वाले इस वर्ग के जुझारूपन को विनोद कुमार शुक्ल अपनी कविता में अभिव्यक्त करते हैं। इस वर्ग के प्रति उनकी बेचौनी के विषय में अरविन्द त्रिपाठी का विचार हैं– 'विनोद की बेचैनी केवल घर की खोज नहीं, बल्कि वे छिपे हुए उन मनुष्यों की खोज करना चाहते हैं जो इस संसार में रोजी–रोटी के लिए कहीं पिस गए हैं।'[4] कवि किसान की हताशा को जानता है। वह उसे हाथ देकर हताशा से निकालने के लिए प्रयासरत है। रोज जीना, रोज मरना के अपने कटु सत्य से निम्न वर्ग परिचित हैं। उसका जीवन विकट परिस्थितियों से गुजरता है, फिर भी अपनी कुशलता की खबर वह इस तरह देता है –

'अभी अकाल के कारण छत्तीसगढ़ छोड़ कर जा रहे
किसी किसान से भी पुछूँगा –
'भाई बने। बने'
तो 'बने। बने' ही उसका जवाब होगा।'[5]

अपनी दुःख भरी कथा को कहने सुनने और समाप्त करने के लिए उसके पास यही तरीका है। संकट और घोर अभाव के बीच भी वह ऐसे पलों को तलाशता है, जिसके सहारे वह जी सके। जीने के लिए कोई आकर्षण न होते हुए भी अपनी अद्‌भुत जिजीविषा के कारण ही वह संघर्षरत है। वह कृषक जिसके पास खेत का अपना टुकड़ा भी शेष नहीं है, किन्तु अपने काम और खेत के प्रति मोह ही उसे पुनः कृषक बनने के लिए प्रेरित करता है। उदाहरणार्थ ये पक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

'जैसे अंतिम टुकड़ा खेत का नहीं बचा
फिर भी बचा रह गया मोह
अर्थ अंकुरित होने वाले
खेत के अंतिम टुकड़े का।'[6]

कृषक वर्ग की नींव पर ही पूँजीवादी व्यवस्था फल–फूल रही है, किन्तु वह स्वयं गरीब और शोषित है। कृषक की इसी व्यथा को शुक्ल जी ने वाणी दी है। किसान की किसानी पुश्तैनी काम है, उसकी कितनी ही पुश्तें खेती का काम करती आ रही हैं। मानसून पर निर्भर और सरकारी नीतियों में जकड़ी कृषि व्यवस्था के कारण

वह कर्ज में डूबा रहता है। उसका घर, खेत–खलिहान सभी कर्ज की भेंट चढ़ जाते हैं। यहाँ तक कि वह स्वयं भी अपनी जीवन लीला समाप्त कर देता है–

'बोने को चार बीज हैं धान के
जाते जाते झरकर बच गए देहरी में
जैसे स्वयं बचे ये बीज
सबकी नजर बचाकर
पर बचा नहीं अबकी बार
खेत का अंतिम टुकड़ा
किसान होना ही उसका नहीं बचा।'[7]

आज वैश्वीकरण के चलते बड़ी मात्रा में कटते जंगल और बढ़ते प्रदूषण के कारण बरसात पर निर्भर खेती की कमर टूट गई है। वक्त पर बरसात नहीं हुई तो किसानों को भूखो मरने की नौबत आ जाती है और फिर उनकी आत्महत्याओं का सिलसिला शुरू हो जाता है। हालत यह है कि रिश्तेदार भी किसान का हाल–चाल पूछने से पहले बारिश का हाल पूछता है। इसका प्रमाण यह पंक्तियाँ देती हैं –

'धान अंकुरित हुए और सूख गए
रास्ते में जो मिला
उधर बारिश के हाल पूछे
और चाचा के घर पहुँचते ही यही हुआ
छोटे मुन्नू तक ने पूछा वहाँ पानी गिरा?'[8]

ये पंक्तियाँ बताती हैं कि किसान का छोटा बच्चा भी खेती और बारिश के महत्व को समझता है। हालत इतने बिगड़े हुए हैं कि किसानों को खेती में लागत का न्यूनतम मूल्य भी नहीं मिल पाता है। ऐसे में घर का खर्च, शादी–ब्याह, पढ़ाई–लिखाई के बोझ से वह कर्ज में डूबता चला जाता है और एक दिन अपने ही खेत से बेदखल कर दिया जाता है। उसका खेत केवल नक्शा बन कर रह जाता है –

'एक गरीब खेतिहर के बेदखल होते ही
छूट कर रह गई जमीन
जमीन का नक्शा होकर
टंग गई जमीन दिवार पर।'[9]

कवि विनोद कुमार शुक्ल यह बताना चाहते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था उसे कमजोर से अधिक कमजोर बनाने में लगी है, किन्तु अब वह अपने अधिकार के लिए इस व्यवस्था के विरोध में खड़ा होने लगा है। इस विद्रोह का शंखनाद एकजुट होकर वह घर–घर तक पहुँचाना चाहता है। वह संघर्ष के बल पर बिगड़ी हुई व्यवस्था पर चढ़ाई करने की ताकत रखता है। कवि कहता है –

'आखिर लुढ़कने से अच्छा
चल पड़ूँगा स्वतः ही
वहीं, जहाँ से

फिर चढ़ाई शुरू होती है
पैरों के नीचे की जमीन शिखर।'[10]

समाज में उपेक्षितों की संवेदना को संप्रेषित कर विनोद कुमार शुक्ल आदमी की खोज करते हैं। छत्तीसगढ़ के बस्तर, दंतेवाड़ा जैसे दुर्गम स्थानों के आदिवासी विस्थापन के संकट से गुजर रहे हैं। इन आदिवासियों के कटु यथार्थ से साक्षात्कार कराते हुए शुक्ल जी उनके जीवन–संघर्ष को श्कोसाफल के तैयार होते हीश कविता में अभिव्यक्त करते हैं। कोसाफल उन आदिवासी समाज का प्रतीक है, जिनका शहरी सभ्यता से संपर्क होने लगा है और उस सभ्य समाज के सामने आदिवासी की लाचारी का कोई मोल नहीं है। आदिवासी अपनी मूलभूल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जंगल से मिलने वाले कोसाफल, महुवा आदि कीमती वनस्पतियों को इकट्ठा कर बाजार में बेचने जाते हैं। पूँजीवादी और सभ्य कहे जाने वाला समाज उन वस्तुओं का निम्नतम मूल्य देता है और अर्धनग्न आदिवासी उसके बदले नमक और थोड़े कपड़ों का इंतजाम करता है। इस संदर्भ में ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

'हमारी इस सभ्यता के बाजार से
कोसाफल के बदले नमक पा लेने
या आने वाली किसी सभ्यता के बाजार से
कोई वस्त्र कपड़ा।'[11]

शहरी सभ्यता द्वारा किए गए शोषण से आदिवासी घबराता है। जंगली और हिंसक पशुओं के बीच रहने वाला आदिवासी पशुओं से ज्यादा शहर की पूँजीवादी व्यवस्था से डरता है। इसलिए वे इकट्ठा होकर बाजार जाते हैं। आदिवासी स्त्रियों को सभ्य समाज के बाजार से सबसे अधिक डर लगता है। बाजारवाद के दौर में आदिवासी स्त्री की असुरक्षा को भांपते हुए शुक्ल जी कहते हैं –

'एक अकेली आदिवासी लड़की को
घने जंगल जाते हुए डर नहीं लगता
पर महुवा लेकर गीदम के बाजार जाने से
डर लगता है।'[12]

अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को भी जुटा न सकने वाले आदिवासियों का जीवन असुविधाओं से भरा है। जंगली फलों और मांस के भरोसे वह अपना जीवन बिताता है। अन्न के अभाव में उसके बच्चे कुपोषण का शिकार होते हैं। श्जंगल के उजाड़ मेंश कविता में भूखा आदिवासी कांदा खोदते–खोदते भूख से बेहोश हो जाता है। कहीं दूर पेड़ के नीचे या झोपड़ी में उसका परिवार उसके इंतजार में भूख से मारा जाता है –

'कि बहुत बरस से जंगल में
बहुत से आदिवासी भूख से मर जाते हैं।'[13]

यह आदिवासी जीवन की विडम्बना है, जो अभावों में जीने के लिए अभिशप्त हैं। अपने अस्तित्व और अस्मिता को बनाए रखने के लिए संघर्षरत हैं। राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अनेक समस्याओं से जूझते हुए आदिवासी समाज की भयावहता को शुक्ल जी ने बड़ी बेबाकी से अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है। विनोद कुमार शुक्ल की कविता में मानवीय संवेदना की आहट सुनाई देती है। इस बारे में

अरविंद त्रिपाठी का कथन विचारणीय है – 'विनोद प्रायः अपनी कविताओं में मानवीय संवेदना की उष्मा को भरने के लिए कहीं पर गझिन करुणा, कहीं पर दुख की करुण पुकार को मिलाकर एक ऐसा मनोलोक रचते हैं, जिससे कविता ज्यादा मार्मिक और जीवंत हो उठती है।'[14]

किसान, आदिवासी सभी अपने यथार्थ की पीड़ा से परिचित हैं। इसलिए भले ही वह एक दूसरे को न पहचाने, लेकिन एक दूसरे के दुख और समस्याओं को जरूर पहचानते हैं। यह वर्ग समूची व्यवस्था द्वारा शोषित होता है। अब वे एकजुटता की ताकत को समझते हुए पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था के विरोध में इकट्ठे खड़े हो गए हैं। उसने अपने बंधे हाथ खोल दिए हैं। उनका झुका सिर इज्ज़त के साथ उठने लगा है। मेहनत करने वालों की मेहनत रंग लाने लगी है। किसान एवं आदिवासी के जीवन में अब खुशहाली आने लगी है। विनोद कुमार शुक्ल कहते हैं–

'मेहनत करने वालों की
दुनिया के आकाश में
ऐसे में चमकीलें
चाँदनी खिली।'[15]

शुक्ल जी अपनी कविताओं में निम्नवर्ग की हर छोटी–छोटी सच्चाइयों को प्रतिबद्ध रूप से पाठक के सामने रखते हैं। भीड़ में खोए हुए आम आदमी और शोषितों का दुख उनकी कविता में सीधे उतर कर आता है, जो रचनाकार के समाज और समय की गहरी समझ के बिना संभव नहीं है। इनकी कविताओं को समझने के लिए गहरी संवेदना और आधुनिक भाव–बोध की आवश्यकता है। इन कविताओं के माध्यम से विनोद कुमार शुक्ल अपने युग की सच्ची तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। कविताओं में लोकजीवन में प्रचलित देशज शब्दों के प्रयोग से आम आदमी अपने क्रिया–कलापों के साथ बोलता हुआ प्रतीत होता है। अरविंद त्रिपाठी का यह वक्तव्य उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है – 'यह तथ्य दिलचस्प हो सकता है कि आज़ादी के बाद की कविता के इतिहास में रघुवीर सहाय वाक्यों, श्रीकांत वर्मा शब्दों और अब विनोद कुमार शुक्ल क्रियाओं के कवि लगते हैं। क्रिया शब्दों का ऐसा चातुर्य भरा प्रयोग अन्यत्र दुर्लभ है।'[16]

इनकी स्पष्ट प्रतीक योजना से पूँजीवादी व्यवस्था, श्रमिक, आदिवासी, स्त्री शोषण आदि विषयों की प्रस्तुति को आसानी से समझा जा सकता है। 'अंधेरा तो दिन रात का है', 'दीवार में एक खिड़की रहती थी', 'एक झुंड पक्षियों का पंख फड़फड़ाकर उड़ जाता है', इन पंक्तियों में 'अंधेरा' अभाव और विपन्नता का प्रतीक है। दीवार और खिड़की क्रमशः जीवन और मन का प्रतीक हैं। पक्षियों का झुंड एकजुटता के साथ पूरी शक्ति लगा कर सड़ी–गली व्यवस्था से मुक्त होने का प्रतीक है।

विनोद कुमार शुक्ल की कविताएँ प्रतीकों से भरी हैं। बिम्ब निर्माण में निम्नवर्गीय आम आदमी के इर्द–गिर्द रचे बसे उपादानों का सहारा लिया गया है। लोकजीवन के अनुभव से युक्त लोकोक्ति और मुहावरों का सहज प्रयोग इनकी कविताओं में मिलता है। इनके शिल्प विन्यास के बारे में अरविन्द त्रिपाठी कहते हैं – 'अपने अनोखे शिल्प–विन्यास के कारण उनकी कविता शब्दों का खेल खेलती है, पर देखा जाए तो यह खेल नहीं हुनर है।'[17] परंपरागत काव्य विषय से इतर शुक्ल जी की कविता हमेशा नई संभावनाओं की ओर इशारा करती है। निम्नवर्गीय आम आदमी की आर्थिक विपन्नता को अभिव्यक्त करते हुए, उनके हालात के जिम्मेदार शोषक वर्ग की पहचान

कराते हुए वे एकजुट होकर व्यवस्था के विरोध में खड़े होने का आह्वान करते हैं। विनोद कुमार शुक्ल के दृष्टिकोण के विषय में परमानन्द श्रीवास्तव का मत है – 'संघर्ष प्रधान जीवन से सहज लगाव, यथार्थ से सीधा साक्षात्, मानवीय शोषण के जटिल रूपों की पहचान और जीवन के प्रति आस्था प्रधान दृष्टिकोण।'[18] अतः विनोद कुमार शुक्ल की कविताएँ शोषित वर्ग के संघर्ष, बेचारगी और जिम्मेदारी की कथा कहने के साथ–साथ समाधान की तलाश भी करती है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. रचना के सरोकार, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, वाणी प्रकाशन, 1987 पृ. 52
2. आकाश धरती को खटखटाता है, (विनोद कुमार शुक्ल की चुनी हुई कविताएँ) चयन संपादन अरविन्द त्रिपाठी, आधार प्रकाशन, 2006, कवर पृष्ठ
3. आकाश धरती को खटखटाता है, (विनोद कुमार शुक्ल की चुनी हुई कविताएँ) चयन संपादन अरविन्द त्रिपाठी, आधार प्रकाशन, 2006 पृ.–89
4. वही, पृ.–19
5. वही, पृ.–206
6. वही, पृ.–164
7. वही, पृ.–164
8. वही, पृ.–191
9. वही, पृ.–83
10. विनोद कुमार शुक्ल, कविता से लंबी कविता, पृ.–75
11. आकाश धरती को खटखटाता है, (विनोद कुमार शुक्ल की चुनी हुई कविताएँ) चयन संपादन अरविन्द त्रिपाठी, आधार प्रकाशन, 2006 पृ.–94
12. वही, पृ.–96
13. वही, पृ.–195
14. वही, पृ.–21
15. विनोद कुमार शुक्ल, कविता से लंबी कविता, पृ.–89
16. आकाश धरती को खटखटाता है, (विनोद कुमार शुक्ल की चुनी हुई कविताएँ) चयन संपादन अरविन्द त्रिपाठी, आधार प्रकाशन, 2006 पृ.–28
17. वही, पृ.–28
18. समकालीन कविता का यथार्थ : परमानन्द श्रीवास्तव, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंड़ीगढ़, पृ.–149

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 454-458
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मार्कण्डेय के कथा साहित्य में हाशिए का समाज

–बुशरा खान

रिसर्च स्कॉलर, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय।

स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों में मार्कण्डेय का एक विशिष्ट स्थान है। मार्कण्डेय एक प्रगतिशील, जनपक्षधर और अपनी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध लेखक थे। मार्कण्डेय के कहानीकार बनने में उनके तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की बड़ी भूमिका रही। मार्कण्डेय ने अपने प्रारम्भिक जीवन में समाज के दो वर्गों के अंतर्विरोध को बहुत नज़दीक से देखा था। उन्होंने देखा था कि किस तरह से गरीब और मजलूम लोगों पर बेइंतहा अत्याचार होता है। हाशिए के समूहों पर होने वाले अत्याचार की लोमहर्षक घटनाओं ने उन्हें अंदर तक आंदोलित कर दिया था। मार्कण्डेय स्वयं स्वीकार करते हैं– "मात्र अनुभवों की अंधी गली में मेरा मन कहीं रमा नहीं और हर बार हर नए जीवनानुभवों के साथ एक नया प्रश्न उठने लगा। मान्यताओं और आडंबरों से ऊबकर यथास्थितियों के विरुद्ध कुछ कहने की अकुलाहट ही शायद मेरे लिखने का कारण बनी।" बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न मार्कण्डेय के प्रमुख कहानी संग्रह हैं– महुए का पेड़ (1955), हंसा जाई अकेला (1957), भूदान (1957), माही (1962), सहज और शुभ (1964), बीच के लोग (1955) और हलयोग (2012)।

सृजन के भीतर विविधता और विस्तार लाने के लिए हर लेखक और कवि को आवश्यक है कि वह जनसाधारण की समस्याओं के साथ गहराई से जुड़ें और उन्हीं को अपनी रचनाओं के जरिए आवाज प्रदान करे ताकि उनका सार्वजनिक समाधान ढूंढा जा सके, तभी वह रचनात्मक लेखन कहला सकता है। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो देश और दुनिया की समस्याओं से अछूता रहकर कोई भी सच्चा रचनाकार अपनी रचनाओं का निर्माण नहीं कर सकता। आलोच्य कथाकार मार्कण्डेय की भी रचना–प्रकिया के संबंध में यही धारणा है। उनके अनुसार– "वह रचना ही क्या, जो अपने समकालीन संदर्भों का अंकन न करे, उत्पीड़न,दुख और शोषण का विरोध न करे।" यूं तो मार्कण्डेय की कहानियों का केंद्रीय विषय ग्रामीण जीवन है, किन्तु मार्कण्डेय ने अपने कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभी तरह की समस्याओं को समग्रता के साथ प्रस्तुत किया है। आजादी के साठ वर्षों के बाद भी गांवों में रची बसी जाति–प्रथा या स्पृश्य–अस्पृश्य की समस्या भारत की गरिमा पर कलंक से कम नहीं है। अपने को श्रेष्ठ दिखाने और समझने की प्रवृत्ति से परिचालित हमारा समाज अनेक जतियों–उपजातियों में बंट कर रह गया है, जिसमें असमानता का बीज बोकर समाज को कई टुकड़ों में तब्दील कर दिया है।

मार्कण्डेय ने 'गुलरा के बाबा', 'नौ सौ रुपए और एक ऊंट दाना', 'हरामी के बच्चे', 'घुन', 'हंसा जाई

अकेला', 'एक काला दायरा', 'हलयोग' शीर्षक कहानियों में जातिभेद, छुआछूत और सांप्रदायिक विषमता की समस्याओं को उठाया है। 'हलयोग' कहानी का प्रमुख पात्र चौथीराम जाति से चमार है। इसलिए उसका पढ़–लिखकर अध्यापक बन जाना सवर्णों को सहन नहीं हो पाता है। इसलिए हलयोग विधि द्वारा उसका उपचार किया जाता है क्योंकि वह बाकी दलितों को भी पढ़ाने का प्रयास कर रहा था। हलयोग के विधान के नाम पर लकड़ी की बड़ी सिल्ली में बने छेद में चौथीराम के पैरों को कस दिया जाता है। जिससे चौथीराम चलने फिरने से भी मजबूर हो जाता है और अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है।

'गुलरा के बाबा' कहानी में प्रमुख पात्र गुलरा की रखवाली करने वाले बाबा और उनका भाई देवी सिंह है। गाँव का अछूत अहीर बाग से सरपत काटता है तो बाबा उसे दंडित नहीं करते बल्कि विपत्ति में उसकी सेवा भी करते हैं। लेकिन देवी सिंह चौतू अहीर को पसंद नहीं करता क्योंकि वह निम्न जाति का है और इसलिए देवी सिंह सरपत काटने के अपराध में चौतू की टांग तोड़ देता है। जाति के नाम पर सवर्णों द्वारा दलितों का शोषण आज भी किसी न किसी रूप में जारी है।

'नौ सौ रुपया एक ऊंट दाना' कहानी का मुख्य पात्र बुचऊ है। इस कहानी में मार्कण्डेय ने तत्कालीन ग्रामीण समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था तथा दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों को उजागर किया है। 'दुलरा आजी' इस कहानी की एक बुजुर्ग पात्र है जिसमें जाति की भावना कूट–कूट कर भरी है। 'हंसा जाई अकेला' कहानी का हंसा कांग्रेस पार्टी एवं गांधीजी का समर्थक है। गान्ही महात्मा, जवाहिरलाल और जनता की फउज हंसा के मन में रचे बसे शब्द हैं। 'हंसा जाई अकेला' कहानी में गाँव के बुजुर्ग हंसा का मज़ाक उड़ाने के बहाने गांधी पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हैं जिससे जातिगत भेदभाव ही उजागर होता है– "मिल गया ससुर को एक काम। गंही बाबा (गांधी) का पाचक काहे नहीं हो जाता। कोंनों कांगरेसी जात कुजात मेहरारू मिल जाती। गन्ही को कोई विचार थोड़े है, चमार सियार का छुआ–छिरिका तो खाते हैं।" यही विडम्बना है, गाँव के सवर्णों ने गांधी के सामाजिक विचारों और सामाजिक समानता की अवधारणा को एक सिरे से ही नकार दिया था। ग्रामीण जनता वर्ण–व्यवस्था को बनाए रखने के पक्ष में खड़ी हो गयी।

देश के राजनेताओं ने लोगों को जाति, धर्म और समुदाय के खानों में बाँट कर उन्हें वोट में तब्दील कर दिया। मार्कण्डेय ने अपनी इस कहानी में इन्हीं स्थितियों को बेबाकी से प्रस्तुत किया है। 'घुन' कहानी में मार्कण्डेय ने नाथू के माध्यम से गरीबी और शोषण का चित्रण किया है। जोखू शोषक समाज का प्रतीक है। जोखू के अनाज में घुन लग रहा है लेकिन फिर भी वह उस अनाज को बाहर नहीं निकालता। जोखू के यहाँ चाकरी करते नाथू की उम्र बीत जाती है। फिर भी जोखू नाथू के बेटे की जान बचाने के लिए दो रुपए की मदद नहीं करता है। इसी तरह 'बीच के लोग' का बुझावन, 'हरामी के बच्चे' का सूरज भी जातिगत भेदभाव से पीड़ित हैं। मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों के माध्यम से सामाजिक समता लाने का प्रयास किया है ताकि ग्रामीण लोगों के शोषण की समाप्ति का मार्ग अग्रसर हो।

भारतीय ग्रामीण समाज में नारी की जो स्थिति है, उसे मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर किया है। महिलाओं का कार्य घर का खाना बनाना, बच्चों का लालन पालन करना या इन जैसे ही अन्य कार्य

हैं। भारतीय समाज में स्त्री एक वस्तु है, जिसकी उड़ान घर की चौखट तक सीमित है। मार्कण्डेय की नजर में स्त्री–पुरुष समान हैं। वो लिखते हैं– "स्त्री पुरुष में यदि सांसारिक विचारों को छोड़ दिया जाये तो कुछ भी भेद नहीं है। ये सारे नियम, बंधन पुरुष के अपने गढ़े हुये हैं। साथ ही यदि स्त्री भी वास्तविक समानता का दावा करती है तो उसे मानसिक स्वतन्त्रता पहले अर्जित करनी होगी।" भारतीय समाज में स्त्री का शालीन, सुसंस्कारित तथा शिक्षित होने के बावजूद क्या स्थान है। यह 'वासवी की माँ' कहानी में नौकरानी सीता के इन वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है– "नहीं–नहीं, स्त्री इस नीचे बहते हुये गंदे नाले के पानी से ज़्यादा नहीं है। उसका मन, उसका शरीर गुलामी की सांसारिक जंजीर में कस कर फंस गए हैं और वह जी कर भी नहीं जीती। उसकी सेवा, शीलता सब झूठे दंभ हैं जिनकी छाया में घुलकर वह मर रही है और विवाह?" मार्कण्डेय की कहानियों में नारियां दोहरे शोषण की शिकार हैं। एक ओर वह जहां सामंती समाज से शोषित है वहीं दूसरी तरफ अपने ही घर में पति के अत्याचारों से भी प्रताड़ित है। इस तरह की कहानियों की परंपरा प्रेमचंद की बूढ़ी काकी से लेकर जैनेन्द्र से होते हुए मार्कण्डेय तक पहुँची है।

'सात बच्चों की माँ' कहानी में सोलह वर्षीय संतो के माध्यम से भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति को दर्शाया गया है। संतो वास्तव में एक निरपराध अबला है, लेकिन उसके पति सहित सारा गाँव कुलटा समझता है। डॉ बलभद्र सिंह के शब्दों में– "सात बच्चों की मां संतो को भी औरत होने की त्रासदी झेलनी पड़ती है। भिन्न परस्थितियों और संस्कारों वाली संतो गरीब की बेटी और अपने से तिगुनी उम्र के पचास वर्षीय अपाहिज पति की पत्नी, बिना पति के साथ सोये लगातार सात बच्चों की मां बन जाती है। ... गरीब होने के चलते उसका यौन शोषण होता है।... अंत में संतो को कुएं में कूदना पड़ता है। एक सूखे कुएं में भी उसे मरने की जगह नहीं।" 'घूरा' कहानी की घूरा अपने ही पुत्रों द्वारा उपेक्षित वृद्धा है। जो बेटा उसकी दुर्दशा के लिए जिम्मेदार है, उस बेटे की घूरा कष्ट सहकर भी पुलिस से रक्षा करती है। 'कल्यानमन' कहानी की भंगी इसी परंपरा की सक्षम कड़ी है। भंगी दोहरे शोषण का शिकार है। एक तरफ गाँव के ठाकुर द्वारा शोषित है तो दूसरी तरफ अपने पति से, जो अपने पुत्र और पत्नी की चिंता छोडकर दिन–रात शराब में धुत्त रहता है। लेकिन वह विपरीत परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होती और संघर्षशील चरित्र के रूप में उभरकर सामने आती है। 'सवरइया' कहानी में महाराजिन एक विधवा वृद्धा है जिसका अपने बैल सवरइया से आत्मीय लगाव है। लेकिन गाँव के पट्टीदारों से विवश होकर महाराजिन को सवरइया बेचना ही पड़ता है। इसी प्रकार महुए का पेड़ कहानी में दुखना एक वृद्धा है। उसके विधवा होते ही खेत ठाकुर ने हड़प लिया था। अब महुए का पेड़ ही उसकी संपत्ति है। दुखना की अनुपस्थिति में ठाकुर वह पेड़ भी कटवा देता है। मार्कण्डेय ने इस कहानी के माध्यम से ग्रामीण समाज में सामंती शोषण और उत्पीड़न की अभिव्यक्ति की है।

घूरा, भंगी और महाराजिन तीनों बुजुर्ग और विधवा औरतों के माध्यम से मार्कण्डेय ने विधवा समस्या को उठाया है। 'कहानी के लिए नारी पात्र चाहिए' में पाँच स्त्रियों का चरित्र–चित्रण है जो अपने साथ हो रहे अमानवीय अत्याचारों के खिलाफ आवाज बुलंद करती हैं, जो विद्रोही और क्रांतिकारी विचारों वाली हैं। इन सभी पात्रों के बारे में कहानीकार का मत है– "ये सारे के सारे और न जाने कितने नारी पात्र, पर एक भी मेरे बस

के नहीं हैं क्योंकि इनका अपना निजी अस्तित्व है। ये स्वतंत्र हैं, इन्हें मेरे दिमाग ने नहीं, बल्कि इन्होंने मेरे दिमाग को बनाया है। यह सब तो अपनी जगह पत्थर की तरह स्थिर हैं। कहते हैं, हम में ताकत है, हम में गति है, हम में साहस है। हम शोले की तरह समाज की संकीर्णताओं पर बरस कर उसको नष्ट–भ्रष्ट करना चाहते हैं।" 'रामलाल' कहानी में मुख्य पात्र रामलाल है। इस कहानी में रामलाल की पुत्रवधू का भाई–भाभी, घरवालों द्वारा शोषण दिखाया गया है। रामलाल की पुत्रवधु से देर रात तक काम कराया जाता है, हाथ–पैर दबवाए जाते हैं, गालियाँ दी जाती हैं। इस कहानी में मार्कण्डेय ने रामलाल की पुत्रवधू की दुर्दशा दिखाकर नारी जीवन की करुण कथा कही है। 'सात बच्चों की मां' की संतो हो या 'घूरा' की घूरा, 'सवरइया' की महाराजिन, 'महुए के पेड़' की दुखना, 'कल्यानमन' की भंगी, 'भूदान' की जसवंती, 'बिंदी' की बिंदी, 'बीच के लोग' की भगतिन, रामलाल की पुत्रवधू हो या 'बादलों का टुकड़ा' की जसमा आदि ऐसी नारियां हैं जो अपने अपने स्तर पर शोषित हैं, उपेक्षित हैं और जीवन की कठोर वास्तविकताओं को चुनौती के रूप में स्वीकार करती हैं।

मार्कण्डेय ने 'सेमल के फूल' और 'अग्निबीज' नामक दो उपन्यास लिखे हैं। मार्कण्डेय ने अग्निबीज उपन्यास में दिखाया है कि किस प्रकार आजादी के बाद भी सवर्णों के अत्याचारों से दलितों को मुक्त नहीं मिली है। अग्निबीज की बिंदा एक दलित है जो सवर्णों की वासना का शिकार होती है और जब वह गर्भवती हो जाती है तो बडकू उसे कुएं में धक्का देकर मार देता है। लेकिन बड़कू सामंत और राजनेता की मदद से फिर भी बच जाता है। उपन्यास के युवा पात्र सागर और मुराद भी दलित और मुसलमान होने के कारण सवर्णों के अत्याचार से पीड़ित रहते हैं। सागर की बहन छबिया भी दलित और शोषित युवती है। गाँव में दलित स्त्री की क्या दुर्दशा है, यह पारस (स्वर्ण) के इस कथन में दृष्ट्रव्य है–"खानपान का और का मतलब हुआ भाई। तुम्हें एक चमाइन दिला देंगे भाईजी, लेकिन हमारे गाँव में आधे बाभन बिन ब्याहे हैं। किसको–किसको चमाइन देंगे भाईजी?" चूंकि मार्कण्डेय समस्या का समाधान भी सुझाते हैं, इसलिए छबिया और स्वर्ण हुडदंगी का मिलन दिखाकर मार्कण्डेय ने जातिवाद के उन्मूलन का संकेत भी दिया है। कहानियों के तरह मार्कण्डेय के उपन्यासों के नारी पात्र भी शोषण से संत्रस्त हैं। श्यामा अग्निबीज उपन्यास में केन्द्रित भूमिका निभाती है। वह ग्रामीण समाज की शोषित नारियों के कल्याण के लिए संघर्ष करती है। हिरनी और छबिया को आधार बनाकर स्त्री–शोषण का विरोध करती है– "हम भागें नहीं, इस भयावहता को हिम्मत करके कम से कम देखें और समझें।" गाँव में न केवल निरक्षर बल्कि पढ़ी–लिखी, नौकरी करने वाली महिलाओं को भी समाज किस निगाह से देखता है, इसे गाँव के मुसलमान बाकर के इस कथन से समझा जा सकता है– "तुम्हार मतलब है कि लड़कियां चाकरी करती फिरे? बिना नौकरी की उनकी जिंदगी दूभर हो रही है। बड़े– बड़े की इज्जत धूल में मिली जा रही है। नौकरी करेंगी तो भला उनकी क्या इज्जत होगी। देखते नहीं ब्लॉक की दाई और नर्स को गाँव में लोग कैसी निगाह से देखते हैं।"

भारत के ग्रामीण परिवेश में व्याप्त सामाजिक, राजीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी समस्याओं को मार्कण्डेय ने अपने लेखन के माध्यम से उठाया है। मार्कण्डेय ने अपनी कहानी और उपन्यासों के माध्यम से दिखाया है कि भारतीय ग्रामीण समाज तथा वातावरण में दलित और स्त्रियों का शोषण आज भी निरंतर जारी है। मार्कण्डेय ने जातिवाद तथा वर्ग–विषमता को हमारे सामने रखा, साथ ही गांवों में नारी जीवन से संबन्धित

समस्याओं जैसे स्त्री–पुरुष संबंध, अनमेल ब्याह, प्रेम विवाह, विधवा विवाह, परंपरागत नैतिक मूल्य और नारी आदि का गंभीरता पूर्वक चित्रण कर दिखाया है कि समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टि से गाँव आज भी पिछड़े हुए हैं जहां पितृसत्तात्मक और सामंती मूल्यों की जड़ें गहरी हैं। इन समस्याओं के सार्थक समाधान की आवश्यकता है।

संदर्भ-सूची :-

1. अनुज. भारतीय साहित्य के निर्माताः मार्कण्डेय, दिल्ली : साहित्य अकादमी, 2015
2. मार्कण्डेय. सम्पूर्ण कहानियाँ, दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2018
3. गुप्त, शंभू. कहानी : समकालीन चुनौतियाँ, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2014
4. ठाकुर, खगेन्द्र. कहानी : परम्परा और प्रगति, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2005
5. सिंह, डॉ बलभद्र. मार्कण्डेय : कथाकार और समीक्षक, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009
6. मिश्र, रामदारश. हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2007
7. गुप्त, विशंभर दयाल. ग्रामीण समाजशास्त्र, हाथरस (उ.प्र.) : सीता प्रकाशन, 1991

ईमेल– bushrakhan436401@gmail.com, 07300968780

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 459-462

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी कहानियों में चित्रित नौकरीपेशा नारी की संवेदना

-डॉ. श्रीराम हनुमंत वैद्य

श्री शिवाजी महाविद्यालय बार्शी
ग्राम उपलाई (ठों), तहसील– बार्शी, जिला–सोलापुर– पिन 413 411

स्वातंत्र्योत्तर भारत में नारी शिक्षा की प्रगति ने अनेक कार्य क्षेत्रों में न केवल अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है बल्कि पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने की क्षमता और योग्यता को स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। वर्तमान युग में नारी आर्थिक आत्मनिर्भर बनाने में एक सीमा तक सक्षम हुई है। उन्होंने अपनी अस्मिता के प्रति सचेत होकर आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त तो कर ली है किंतु वहीं पुरानी रूढी–परंपरा पुरुषी मानसिकता एवं व्यवस्था को बदल नहीं सकी। नौकर पेशा नारी का नारीत्व एवं देह पुरुष अधिकारियों के लिए अनायास मिलने वाली वस्तु समझना ही आज की वास्तविकता है। कार्यालयीन अनेक नारियां पुरुष अहंकार और उपभोग के मानसिकता के शिकार हुई है। परिणामस्वरूप आज अनेक नारियां आत्महत्या कर रही है।

वर्तमान युग में नारी को दो वर्गों में विभाजित किया है। एक कामकाजी नारी और पारिवारिक नारी। कामकाजी नारी अपने कार्यक्षेत्र के अनुरूप अलग पहचान बना कर परिवार को आर्थिक निर्भर बनाती है। तो पारिवारिक नारी परिवार में आदर्श नारी के रूप में भूमिका निभाती है। उनकी यह दोहरी भूमिका निजी मानसिकता को दर्शाती हैं। वह परिवार और कार्यक्षेत्र की अपेक्षा पूर्ति के लिए दिन–रात मेहनत करती है। अपनी भूमिका को उचित न्याय देती है, फिर भी उनके जीवन में पीड़ा और निराशा ही है। इस दर्द को हिंदी साहित्य में पूरी गहराई के साथ शब्दबध्द किया है। तस्लीमा नसरीन कहते हैं कि "मैं व्यक्तिगत जीवन में भी एकाधिक लोगों द्वारा और असम्मानित हुई है। मेरे पिता कहां करते शिक्षित होने पर सारा दुख भूल जाएगा। मैंने शिक्षा पाई बड़ी हुई और साथ ही साथ मेरे ह्रदय में बढ़ता गया पर्वत समान दुख। यह पर्वत धो डालने का जल मेरे समुद्र में नहीं।"[9] नारी की शिक्षा से या अच्छी नौकरी से समस्याएं कम नहीं हो रहे हैं। आधुनिक नारी ने क्षमता अनुसार आर्थिक स्वावलंबन प्राप्त किया है किंतु भारतीय समाज की मानसिकता एवं प्राचीन संस्कारों में जकड़े हुए समाज को वह बदल नहीं सकी। आज भी एक वर्ग उन्हें आदर्श माता, उत्तम गृहिणी एवं आदर्श पत्नी के दायरे में देखता है।

विश्व की सभी भाषाओं में लेखक एवं लेखिका नोकर पेशा नारी की समस्याओं को अपनी लेखनी का विषय बना रहे हैं। हिंदी साहित्य में भी अनेक कहानीकारों ने इस विषय को संवेदना के साथ चित्रित किया है। अचला नागर की 'सिफारिश', कृष्णा अग्निहोत्री की 'सिसकते सपनों की शामश, चित्रा मुद्गल की 'दरमियान', पुष्पपाल सिंह की 'एक ट्रांसफर केस यह भी', ममता कालिया की 'जांच अभी जारी है' आदि कहानियां नौकर पेशा नारियों की विद्रूपतापूर्ण विषम परिस्थितियों को उजागर करती हैं।

अचला नागर लिखित 'सिफारिश' कहानी नौकरपेशा नारी की संवेदना और पुरुषी मानसिकता का चित्रण

करती है। कहानी की नायिका स्वाभिमानी है। जिसे बचपन में ही मां से चारित्र्य, नैतिकता और आचरण के संस्कार मिले हैं। उनका पालन करते हुए नायिका संघर्ष करती है। आधुनिक युग में स्त्री की आजादी अधिकार एवं सम्मानों पर अधिक चर्चाएं होती है, अन्याय अत्याचारों के खिलाफ कानून बनाए जाते हैं। विविध महिला आयोग एवं संगठनों की निर्मिती की जाती है किंतु समाज में आज भी नारी को शारीरिक भोग्य की वस्तु ही माना गया है। विभिन्न कार्यालयों में कार्यरत नौकर पेशा नारी की ओर देखने के दृष्टि में काफी बदलाव नहीं हुए हैं। अगर वह नारी अर्ध–सरकारी कार्यालय में नौकरी करती है, तो उनका बॉस अपनी सहयोगी नारी को पदोन्नति का लालच एवं महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां का प्रलोभन दिखाकर उनका शोषण करना चाहता है। उनके इस सहानुभूति के जाल में अनेक नारियां फस जाती हैं। सिफारिश कहानी की नायिका स्वाभिमानी है। वह अपना कार्य पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी से करती है। उन्होंने अपने वरिष्ठों की गलत हरकतों से परेशान होकर कुल 4 नौकरियों को ठोकर मार दी थी।

वह कहती है कि "अपॉइंटमेंट लेटर में सेवा की शर्तें जो भी लिखी हो लेकिन जिस तरह की सेवा मालिक लोग महिला कर्मचारियों से लेते रहते हैं या लेना चाहते हैं उसका उसमें कोई जिक्र नहीं रहता। जो सेवा करती है ओ मेवा पाती हैं और यदि नहीं..... तो छुट्टी।"[२] मां के मृत्यु पश्चात उनकी जगह पर नौकरी करते समय पिता समान मैनेजर सहानुभूति दिखाकर विनय भंग करता है। सभी कार्यालयों निम्न विकृतियों के लोग रहते हैं, अगर कोई अन्याय के खिलाफ विद्रोह करती है, तो उनके चरित्र पर संदेह व्यक्त किया जाता है। नायिका कहती है कि "कार्यालय में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो अपने आप को चारित्र्य संपन्न विवेकशील समझाते हैं। अनेक काल्पनिक कथाएं सुनवाकर सहानुभूति हासिल करते हैं। वह केवल अपनी वासनात्मक इच्छा की पूर्ति के लिए"।[३] कुछ लोगों को तो नारी के अकेलेपन का एहसास हो, तो उनके प्रति विशाल सहानुभूति दिखाकर उन्हें वश करना ही उनका अंतिम लक्ष्य होता है।

'जांच अभी जारी है' कहानी में ममता कालिया ने नारी उत्पीड़न की व्यथा को बहुत मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। अपर्णा मेहनती कुशाग्र और ईमानदार स्त्री हैं। संभवतः यही गुण उनका अवगुण बन जाता है। वह बैंक के अपने साथियों के साथ शामे नहीं गुजरती हैं। उनके मर्जी के अनुरूप व्यवहार नहीं करती हैं, केवल नैतिकता और सच्चाई का दामन पकड़ते हुए जिस रास्ते से चलना चाहती हैं, वही रास्ता उनके जीवन में व्यवधान बनकर आता है। उस पर झूठा मुकदमा चलता है। वह हर समय नेक और नियति की सफाई देती है किंतु सफलता नहीं मिलती। दुनिया की नजरों में गुनाहगार की हैसियत से जी लेना उनके लिए भयंकर अनुभव था।

'सिसकते सपनों की शाम' कहानी में घर–परिवार का दायित्व और नौकरी का निर्वाह करते समय नारी की वेदनाओं का सूक्ष्म अंकन किया है। नौकर पेशा नारी तनावपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही है। महानगरीय परिवेश में पति पत्नी नौकरी करते हैं। उनका एक मात्र हेतु परिवार को आर्थिक विवेचना से दूर करना है किंतु घर से बाहर अपनी पत्नी की योग्यता एवं प्रतिष्ठा को देखकर पति के अहं को ठेस पहुंचती है, तब पति की शक भरी मानसिकता का दर्द झेलना पड़ता है। घरेलू हिंसा एवं उत्पीड़न यह नारिया भोगने को अभिशप्त है। कहानी की नायिका मीरा डिग्री कॉलेज में अंग्रेजी की व्याख्याता है। वह नौकरी के साथ परिवार का दायित्व भी कुशलता से निभाती हैं। इस दोहरी भूमिका निभाते समय पति, सास, ससुर, देवर, बच्चों की अपेक्षाओं की पूर्ति करते हुए अपना व्यक्तिगत जीवन दांव पर पर लगाती है। पति संजय तो घर की, बाहर की सभी जिम्मेदारियां मीरा पर

छोड़ देता है। इन सभी परिस्थितियों से उबलकर एक दिन विद्रोह करके पूछती है कि "तो क्या तुम्हारी गुलाम हूं? तुम क्यों नहीं कुछ करते, तुम्हारे बच्चे नहीं है ये?"[४] इस कहानी की नायिका आर्थिक स्वावलंबन होकर भी पुरानी रूढ़ियों और व्यवस्था के बीच जकड़ी हुई है, जिसे परिवार में दोयम दर्जे का स्थान है।

चित्रा मुद्गल की 'दरमियान' कहानी में नौकरीपेशा स्त्री की छटपटाहट एवं और सामंजस्य स्त्रियों की वेदना को चित्रित करती हैं। इस कहानी में नलिनी के माध्यम से कार्यालयीन पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता एवं पीड़ित स्त्रियों की दशा को उजागर किया है। तो आकांक्षा के माध्यम से महानगरीय जन जीवन में नौकरी और परिवार की जिम्मेदारी संभालते समय हो रही संवेदनशील छटपटाहट को चित्रित किया है। आधुनिक नौकर पेशा नारी तनावपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए घर की और बाहर की जिम्मेदारियां ईमानदारी से निभाने का प्रयास करती रहती है किंतु पुरुष वर्ग असहयोग पूर्ण वर्तन करता है। उन्हें शिक्षित एवं नौकर पेशा नारी चाहिए, पर घर की व्यवस्था एवं बच्चों की देखभाल की बात आते है वे पति बन जाते हैं। यही जिम्मेदारियां संभालते हुए कार्यालय पहुंचने विलंब होता है, तो अधिकारी के ताने सुनने पड़ते हैं। कई बार प्रताड़ित एवं अपमानित होकर अपने कर्तव्य को निभाना पड़ता है। ऐसी जगहों पर कई नारियों को यौन उत्पीड़न की शिकार होना पड़ता है, तो कभी पति की शक भरी मानसिकता का दर्द झेलना पड़ता है। यही आज की वास्तविकता है। कहानी की आकांक्षा और उनका पति महानगर में नौकरी करते हैं। बच्चों की देखभाल करके शिशु विकास केंद्र में छोड़ने और लेने की जिम्मेदारी भी आकांक्षा पर है। इन जिम्मेदारियों से परेशान होकर एक दिन आकांक्षा कहती है– "छोड़ो भी यह नौकरी फौकरी का चक्कर, घर में बैठो.... जैसे भी चलेगा चलाएंगे सच! इस गुड़िया को यूं छोड़ कर जाना खलता....।"[५]

'एक ट्रांसफर केस यह भी' कहानी में पुष्प पाल सिंह ने ईनामदार एवं कर्तव्यनिष्ठ अध्यापिका का संघर्ष चित्रित किया है। नौकरी पेशा होने के कारण आज अधिकतर पति पत्नी एक दूसरे को पर्याप्त समय नहीं दे पाते। पर्याप्त विचार विनिमय के अभाव में अपने अनुभव से एक दूसरे के प्रति अपनी कटु राय बना लेते हैं जिसके कारण उनमें शंका–कुशंका की प्रवृत्ति जन्म लेती हैं। जो सुखी संसार को विभक्त करने के लिए पर्याप्त हैं। कहानी की नायिका और नायक अलग–अलग शहरों में नौकरी करते हैं, जो एक शहर में ट्रांसफर के लिए कोशिश कर रहे हैं। सरकार ने सरकारी सेवा में कार्यरत पति–पत्नी को एक शहर में नियुक्ति देने हेतु अनेक योजनाएं बनाई हैं किंतु उनका फायदा लेते समय प्रशासकीय अधिकारियों का कटु अनुभव आता है। हमारे भारतीय समाज व्यवस्था में रिश्वतखोरी ने अपनी जड़े इतनी मजबूत की है कि उसे कोई भी उखाड़ नहीं सकता है। कहानी की नायिका ट्रांसफर के लिए अनेक आवेदन देती है किंतु अधिकारियों को रिश्वत एवं कार्यालयीन चक्करों से परेशान होकर हार मान लेती है। तो दूसरी तरफ नौकर पेशा नारी को पाठशाला में नौकरी करते समय अनेक कटु अनुभूतियों से संघर्ष करना पड़ता है। हमारे भारतीय संस्कृति में गुरु को विशेष महत्व है। गुरु केवल शिक्षा का ज्ञान न देकर अपने शिष्यों के उज्जवल भविष्य के लिए सही रास्ता दिखाते हैं। अध्यापिका की यही प्रमाणिकता उनके चरित्र हनन और बदनामी का कारण बनती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि देश के स्वतंत्रता के बाद भी नारी को अपने अधिकार एवं स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना पड़ता है। प्राचीन काल से अब तक स्त्रियों की स्थिति में काफी बदलाव हुए हैं उनके अधिकारों में वृद्धि हुई है। एक तरफ हम स्त्रियों को शिक्षा देकर आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं, वहीं दूसरी तरफ

उसे पुरानी परंपराओं में लिपटा हुआ देखना चाहते हैं। ये दोनों परस्पर विरोधी स्थितियां एक साथ संभव नहीं है आज की स्त्री आत्मविश्वास, निडर, स्वावलंबी, समय के अनुसार परिवर्तनशील एवं स्वयं के प्रति जागरूक हो गई है। प्रत्येक कार्य में पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने की सामर्थ्य रखती हैं लेकिन यह सब होने पर भी पुरुष के बराबर ना तो उन्हें अधिकार मिले हैं और ना ही संतोषजनक सम्मान। आज की नारी अपना परंपरागत रूप त्याग कर अपनी क्षमता के अनुरूप कार्य करते हुए हर क्षेत्र में अपना आधिपत्य जमाने में सफल हो रही है। यही सफलता पुरुषों के अहं को ठेस पहुंचाती हैं। वह अपने अधिकारों को कायम रखते हुए नारी को पांव की जूती समझ कर सदैव अपमानित करते रहते हैं। परिणामस्वरूप उन्हें लैंगिक अत्याचार, सहकर्मियों से प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष मजाक उड़ाना, वरिष्ठ द्वारा अपमानित करना, झूठे मुकदमे में फसाना, समय की अनियमितता, अकेलापन, सेक्युलर हरासमेंट आदि अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अगर नारी को उनके अधिकार एवं न्याय दिलाना चाहते हैं, तो समाज की मानसिकता बदलना अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'समान बिंदु, समान कार्य, समान अधिकार' इस सूत्र को लागू करना होगा।

संदर्भ :-

1. नौकरीपेशा नारी कहानी के आईने में– संपा. पुष्पापाल सिंह आमुख से।
2. वही–पृ. 9
3. वही–पृ. 10
4. वही–पृ. 53
5. वही–पृ. 71

मो. 9657243507

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 463-466
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नरों की दर्दभरी जिंदगी : जिंदगी 50-50

-प्रा. अंजली सिद्राम जाधव,
मानदेश महाविद्यालय, जुनोनी, ता. सांगोला, जि. सोलापूर

प्रास्ताविक :-

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य में जीवन की तरह परिवर्तन होता रहता है। साहित्यकार अपनी कल्पना के आधार पर तो कभी जीवन में आए अनुभूति के आधार पर साहित्य का सृजन करता है। वर्तमान हिंदी साहित्य में विविध विमर्श को लेकर चर्चा होने लगी है। जैसे की आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, किसान विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल तथा किन्नर विमर्श।

इन विमर्श में 'किन्नर विमर्श' बहुचर्चित विमर्श है। क्योंकि हमारे समाज में स्त्री और पुरुष ये दो जातियाँ मानी जाती है। इनके अलावा एक और जाति है जिसे 'किन्नर' कहते है। पर हमारे समाज में इस किन्नर जाति के बारे में कभी सोचा नही तो यह किन्नर सदियों से समाज से कटे हुए हिस्से की तरह रहकर अपनी अलग ही दुनिया बनाकर जी रहे है।

महत्त्व :-

शुरु से साहित्य के माध्यम से समाज में सकारात्मक बदलाव लाने की कोशिश की है। किन्नर विमर्श पर साहित्य की निर्मिती होने से समाज के सामने उनकी पीड़ा, दर्दभरा जीवन आएगा। जिससे लोगों के मन में किन्नर व्यक्ति के प्रति जो घृणा की भावना है वह नष्ट हो जाएगी। साहित्य के माध्यम से किन्नर लोगों की व्यथा का एहसास समाज को हो जाएगा। समाज का हिस्सा होकर भी दुरूख, दर्द सहते हुए किन्नर की जो हालत है वह समाज के सामने आएगी। जिससे किन्नर को जिस तरह घृणा की भावना से देखा जाता है वह एक मदद की भावना में बदल जाएगी। किन्नर व्यक्ति को वो दर्द नहीं झेलना पड़ेगा जो वह न जाने कब से सहते आ रहे है।

उद्दिष्ट्य :-

इससे हमारे समाज में एकता तथा समानता आ जाएगी। किन्नर व्यक्ति को इन्सानीयत की दृष्टिकोण से देखा जाएगा। उन्हें जो पीड़ा सहनी पड़ती है वह नष्ट होकर, किन्नर सुखभरा जीवन जी पाएँगे। उनका गम खुशी में बदल जाएगा। किन्नर की शक्ति का अगर हमारे समाज के विकास में योगदान होता है, तो प्रगति की ओर बढ़ रहा हमारा देश निश्चित ही सफल साबित होगा।

किन्नर विमर्श :-

वर्तमान हिंदी साहित्य में विविध विमर्श पर चर्चा होने वाली है। जैसे की किसान विमर्श, बाल विमर्श, वृद्ध विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श तथा किन्नर विमर्श। किन्नर विमर्श पर वर्तमान समय में अनेक प्रकार की

साहित्यिक रचनाएँ लिखि जा रही है।

किन्नर यह शब्द हिंदी भाषा के 'कि' और 'नर से मिलाकर बना है। जिसका आशय हिमालय की किन्नर जाती से नहीं है। बल्कि उस जाति से है जो पूर्ण रूप से न स्त्री है और न पुरुष। वस्तुतः इन्हें समाज में 'हिजडा' कहा जाता है। किन्नर को हिजडा, नपुंसक, कलिव, थर्ड जेंडर या ट्रांस जेंडर, खुसरा, मौसी, तृतीयलिंगी आदि नामों से पहचाना जाता है।

किसी बात पर गहन विचार विनिमय करना मतलब 'विमर्श' है। विमर्श में सोच विचार, चिंतन, विनिमय होना अपेक्षित होता है। विमर्श किसी भी विषय को लेकर हो सकता है। व्यक्ति, वर्ग, समाज, जाति आदि विमर्श के विषय हो सकते हैं।

किन्नर विमर्श वर्तमान समय में चर्चा में चर्चा का विषय बन गया हैं। क्योंकि किन्नर इस विषय पर इससे पहले किसी प्रकार का साहित्य नहीं लिखा गया। किन्नर समाज का हिस्सा होकर भी अपनी अलग दुनिया में दर्दभरी जिंदगी जी रहे हैं। एक कटे हुए हिस्से की तरह अपना जीवनयापन करनेवाला यह समाज घृणा का पात्र है। किन्नर समाज की व्यथा वर्तमान समाज में साहित्य के माध्यम से समाज के सामने लाया जा रहा है।

किन्नरों के प्रकार :-

किन्नर यानि हिजड़ों के पाँच प्रकार है–

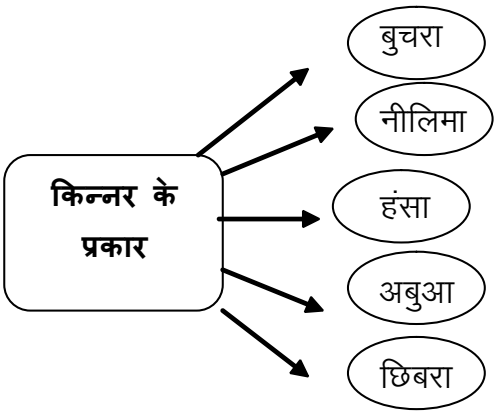

1) **बुचरा :-**

बुचरा जन्मजात होते है। जब शिशु पैदा होता है तो वह लैंगिक दृष्टि से विशेष होता है। अतः ऐसे जन्मजात हिजड़ों को बुचरा कहा जाता है।

2) **नीलिमा :-**

यह मानसिक तौर पर अपने आपको हिजड़ों के निकटवर्ती महसूस करते है। इनका समोपदेशन करने पर वास्तविक लिंग के समुदाय में ये जा सकते है।

3) **हंसा :-**

ये यौनता एवं सेक्स की दृष्टि से अपने आप को असक्षम महसूस करते है और हिजड़ों के साथ जुड़ जाते है। डॉक्टरी इलाज करने से वे सामान्य स्त्री या पुरुष के वर्ग में जा सकते है।

4) **अबुआ :-**

धन की लालसा के कारण के किन्नर बन जाते है। सामान्य रुप से पुरुष जाति के होते है। ये नकली

किन्नर होते है।

5) छिबरा :-

अन्य परिवार के छोटे बच्चें को उठा ले जाकर उनकी जबरदस्ती लिंग कटवाकर किन्नर बनाया जाता है। डॉक्टरी इलाज से इन्हें वापस अपने लिंग में लाया जा सकता है।

जिंदगी 50-50 में किन्नर व्यथा :-

जिंदगी 50–50 यह भगवंत अनमोल जी का बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में बार–बार फ्लैशबैक का प्रयोग हुआ है। फिर भी यह उपन्यास पाठक को भटकने नहीं देता। अनमोल की जादुई कलम पाठकों को आकर्षित करती है। हर मनुष्य में कुछ न कुछ कमियाँ होती है, इसे उपन्यासकार ने अपने पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। डॉ. एम. फिरोज खान के अनुसार, 'हम सबकी जिंदगी में कुछ न कुछ कमियाँ होती हैं, हम सबकी जिंदगी परफेक्ट नहीं होती, हम सभी की जिंदगी 50–50 होती है।'

किसी को हाथ नहीं होता, किसी को पैर नहीं होते, किसी को कान नहीं होता, ऐसे लोगों को समाज में रहने का हक है तो किन्नरों के साथ ऐसा बर्ताव क्यों किया जाता है, जिससे वह पीड़ादायक जिंदगी जीने के लिए मजबूर हो जाते है।

इस उपन्यास का ताना–बाना उन लोगों के कमी को उजागर करता है जिनकी जिंदगी में शारीरिक दोष या लैंगिक दोष है। ऐसे व्यक्ति का जीवन किस प्रकार का होता है उसका दर्शन है यह उपन्यास।

उपन्यास की शुरुआत अनमोल के बेटे के जन्म से होती है। जब अनमोल अपने बेटे को देखने के लिए नर्सिंग होम जाता है तो डॉक्टर कहता है, 'आपका बेटा कभी बाप नहीं बन पायेगा।' (भगवंत अनमोल, जिंदगी 50–50, पृ. क्र. 28) यह सुनते ही उसके पैरों तले की जमीन खिसक जाती है।

अनमोल एक पिता की भाँति अपने बेटे के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है, पर अपने बेटे के एक किन्नर के रूप में पाकर वह गहरी चिंता में डूब जाता है। क्योंकि उसने अपने भाई हर्षा को किन्नर होने के कारण बचपन से घुट–घुट कर जीते हुए देखा था। उसके भाई हर्षा को किन्नर होने के कारण बहुत दर्दनाक जिंदगी मिली थी। वह सोचता है, अपने बेटे को ऐसी जिंदगी से वह बचाएगा। उसे लगता है जो उसके भाई के साथ हुआ वह अपने बेटे सूर्या के साथ कदापि नहीं होगा। वह निश्चय करता है। अपने बेटे के साथ एक ढाल बनकर रहेगा, उच्च शिक्षित बनाएगा।

जब हर्षा को किन्नर होने के कारण उसके पिता जहर देकर मारने की कोशिश करते है तो हर्षा की माँ अपने पति से कहती है, 'इसने गुनाह नहीं किया है, हम दोनों ने गुनाह किया है, इसे पैदा करके। तुम्हारा खराब वीर्य का दोष है, इसका कोई दोष नहीं। मारना है तो खुद को मारो, देखें कितने बडे वीर हो।' (भगवंत अनमोल, जिंदगी 50–50, पृ. क्र. 42)

हर्षा का मजाक उड़ाया जाता है। उसे स्कूल में उसके सहपाठी अपने पास नहीं बैठने देते। इतना ही नही शिक्षकों द्वारा भी हर्षा को ताने दिए जाते है। स्कूल से लौटते वक्त एक व्यक्ति द्वारा हर्ष का शारीरिक शोषण हो जाता है। अपने ही पिता का बर्ताव उसे पूरी तरह तोड देता है। किन्नर होने के कारण उसे लड़की होने का तथा सजने सँवरने का शौक रहता है। इसी वजह से वह पिताजी से बार–बार पिटता रहता है।

एक दिन वह अपने पिता तथा समाज से तंग आकर किन्नरों की दुनिया में चला जाता है। हर्षा से हर्षिता

बन जाता है। एक दिन जब भीख माँगते हुए उसका सामना अपने पिताजी से होता है, पिताजी को यह अच्छा नहीं लगता, उनके आँखों में आँसू आ जाते हैं, यह देखकर हर्षिता मुंबई चली जाती है। मुंबई में राधिका नाम के किन्नर समुदाय में शामिल हो जाती है।

बहुत ही दर्दनाक जिंदगी जीने वाली हर्षिता मुंबई में अपने भाई से मिलती है। अपने परिवार की पूछताछ करती रहती है। जब हर्षिता को अपने भाई से पता चलता है कि उनके पुरखों की जमीन कोर्ट के किसी गड़ेरिया को देने वाले है और इसी वजह से पिताजी परेशान है, तो वह रात–दिन भीख माँगकर पैसे इकट्ठा करती है, जब पूरे पैसे नहीं ज़ोड पाती तो अपना शरीर बेचकर पैसा इकट्ठा कर अपनी पुरखों की जमीन छुड़वा लेती है। इसी वजह उसे एड्स हो जाता है और वह आत्महत्या करके जान देती है।

पर अनमोल अपने बेटे के साथ हमेशा खड़े रहते है। अपने बेटे सूर्या के हर भावना को समझते है। जब सूर्या लड़की बनकर शीशे में देख रहा होता है तो आशिका उसे मारने जाती है पर अनमोल उसे इशारा करके मना करते है और कहते है, 'आखिर हम उसे नहीं समझेंगे, तो वह किसके सहारे इस दुनिया का सामना करेगा!' (भगवंत अनमोल, जिंदगी 50–50, पृ. क्र. 81) अनमोल अपने बेटे को एक शिक्षा देते है। आखिर में सूर्या को 'प्राईवेट डिटेक्टिव एजेंसी' से लाइसेंस भी मिल जाता है।

हर शख्स की जिंदगी परिपूर्ण नहीं होती। कभी खुशी तो कभी गम, हर किसी की जिंदगी 50–50।

निष्कर्ष :–

अंततः यह उपन्यास दो किन्नरों की अलग–अलग कहानी बयान करता है। एक किन्नर परिवार में होने वाले जुल्म से पीड़ादायक जीवनयापन करके अंत में मर जाता है। तो एक किन्नर को अपने ही परिवार से इतना सहयोग मिलता है जिससे वह अपनी कमी के बावजूद एक उच्च स्थान प्राप्त करता है। यह उपन्यास यह मौलिक संदेश देता है कि किन्नर को अगर परिवार से बेदखल किया जाए तो वह घुट–घुट के मरता है पर परिवार उसे अच्छा परवरिश मिले तो वह अपनी हक की जिंदगी खुशी से जी सकता है।

संदर्भ :–

1. जिंदगी 50–50, भगवंत अनमोल, पृ. क्र. 42
2. जिंदगी 50–50, भगवंत अनमोल, पृ. क्र. 81
3. इंटरनेट वेबसाईट।

9561180619

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 467-469
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'पाँव तले की दूब' उपन्यास में आदिवासी विमर्श

–डॉ. नवनाथ गाड़ेकर

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)
तहसील–करमाळा, जिला–सोलापुर (महाराष्ट्र) 413202

'पाँव तले की दूब' यह संजीव का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। कुल मिलाकर उपन्यास 132 पृष्ठों का हैं। इस उपन्यास का प्रथम संस्करण पॉकेट बुक के रुप में 2005 में वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर से प्रकाशित हुआ है। संजीव का यह लघु उपन्यास है। वे एक आधुनिक काल के सशक्त उपन्यासकार है। प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासी और झारखंड के आंदोलन की पृष्ठभूमि का चित्रण है। आदिवासी लोगों की अंधश्रद्धाएँ, धार्मिक और राजनीतिक नेताओं का स्वार्थ आदि सभी बातों का यथार्थ वर्णन लेखक ने इस उपन्यास में विस्तार से किया है।

देश की सबसे प्राचीन प्रजाति आदिवासी है। प्रायः इन्हें आदिवासी के अलावा वनवासी, गिरिजन आदि नामों से जाना जाता है। आरंभिक काल से ही आदिवासी समुदाय नैसर्गिक वातावरण का प्रेमी रहा है। वृक्षों के प्रति उनमे जो सम्मान की भावना मिलती है, इसीकारण ही वृक्ष कटने से बच गए हैं। कठिन दिनों में वे वृक्षों को गिरवी रखकर अपना काम चलाते हैं। इनके पास जड़ी–बूटियों के उपयोग तथा विभिन्न प्रकार की व्याधियों के उपचार की गहरी जानकरी होती है। उनके गाँवों की बसावट की संरचना पर्वतीय जगहों में विस्तृत दिखाई देती है। 'पाँव तले की दूब' इस उपन्यास में झारखंड़ की भूमि और वहाँ के आंदोलन का चित्रण है। आदिवासियों के रीति–रिवाज, अंधविश्वास, उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति का विस्तार से चित्रण लेखक ने किया है। पहाड़ो और जंगलों से घिरा हुआ यह झारखंड़ प्राकृतिक सौंदर्य से भरा हुआ है। उपन्यास के कथानक की शुरुआत पंच पहाड़ी के प्राकृतिक सौंदर्य से ही होती है।

प्रस्तुत उपन्यास का नायक सुदिप्त या सुदामा प्रसाद ऐसा व्यक्ति है जो अपनी आदर्शवादिता का और दुविधा का शिकार हुआ है। सुदामा प्रसाद झारखंड़ में डोकरी स्थित ताप विद्युत संस्थान में अधिकारी है। स्थानीय लोग उसे बिजली साहब के नाम से जानते हैं। उसके मन में बचपन से ही आदर्शवादिता का कीड़ा घुसा हुआ है। उसका जन्म एक संपन्न परिवार में हुआ है। माँ की मृत्यु बचपन में हुई थी। उसे दूसरा कोई भाई–बहन नहीं है। वहाँ के हलवाहों और मजदूरों पर उसके पिता अन्याय–अत्याचार करते थे। अपने पिता द्वारा इस प्रकार के अत्याचार एवं अन्याय का वह खुलकर विरोध करता है। इसी कारण एक दिन पिता ने उस पर हाथ उठाया। पिता के कार्य और स्वभाव से वह परेशान रहा, इसी करण एक दिन उसने अपना घर छोड़ दिया। बाल विवाहिता पत्नी को मुक्त करके वह चला गया। मामी के पैसों से उसने खड़गपुर से बी.ई. की डिग्री हासिल की और अफसर बन गया।

झारखंड के आदिवासी लोगों की दो कमजोर नसें हैं, एक अरण्यमुखी संस्कृति, और दूसरी उत्सवधर्मिता

इसके कारण वे हमेशा कंगाल या लूटते हुए दिखाई देते हैं, इस संदर्भ में लेखक कहते हैं, ''अरण्यमुखी संस्कृति उन्हें सभ्यता के विकास से जुड़ने नहीं देती और उत्सवधर्मिता इन्हें कंगाल बनाती रहती है। झण्डिया या दारु ये पिएँगे ही और हर उत्सव को मस्त होकर मनाएँगे। पढ़ाई–लिखाई से दूर रहेंगे। दारु की लत और जरुरत मंदो को सूद पर पैसे और अनाज देकर इन आदिवासियों की जमीन कुछ चालाक लोगों ने हाथिया ली।''[1] अधिकतर आदिवासी जमातों का निवास जंगल एवं पहाड़ो में होता है। जंगल एवं पहाड़ी खेती ही उनका उपजीविका का साधन है। आदिवासी लोग खेती से बहुत प्यार करते हैं। अपनी खेती में अच्छी फसल का निर्माण हो इसलिए वे बहुत मेहनत करते हैं। जिनके पास खेती नहीं होती वे दूसरों के यहाँ मजदूरी करते हैं। साहुकारों से पैसे लेने के कारण उनमें गरीबी या दरिद्रता दिखाई देती है। इस संदर्भ में डॉ. गौतम कुँवर कहते है, ''आदिवासी समाज में गरीबी तथा बहुत दरिद्रता होती है। साहुकारों से लिए कर्ज में आंकठ डूबे हुए भी होते हैं।''[2]

झारखंड आंदोलन के सशक्त नेता हसंदा थे। वे आदिवासी क्षेत्र के विकास के लिए अलग–अलग प्रकार के प्रयोग करके अपने क्षेत्र का विकास करना चाहते हैं। वे आदिवासियों का आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक सभी स्तरों पर विकास करना चाहते थे। उनके काम और मेहनत के कारण उन्हें कुछ हद तक सफलता भी मिल रही थी। धीरे–धीरे लोगों में उनका नाम हो रहा था। आदिवासी समुदाय में उनके प्रभाव को देखते हुए सरकार के मन में यह डर पैदा हो गया कि कहीं हसंदा शक्तिशाली नेता न बन जाए। इसीलिए प्रधानमंत्री ने हंसदा को बुलाकर कहते हैं, ''प्रधानमंत्री ने हंसदा को स्वंय बुलवाया और उनके कार्यों की सराहना की। फिर कहा अपने मार्ग दिखाया है, गुरुजी अब आप सरकार पर छोड़िए हम स्वंय ऐसे स्टेप्स उठाने जा रहे हैं कि आपकी कोई शिकायत नहीं रह जाएगी। दिखाने के लिए स्टेप्स उठाए भी गए, फिर धीरे–धीरे सब ठप्प ! कहाँ का आश्रम और कहाँ के प्रयोग? उन्होंने जिस जिसकी पीठ पर हाथ रखा, उसके रीढ़ की हड्डी गायब हो गई।''[3] सरकार के आश्वासन के कारण हसंदा का आंदोलन रुक गया। लेकिन सरकारी लाल फिताशाही और भ्रष्टाचार के कारण सरकारी योजनाओं का फायदा लोगों तक पहुँच नहीं पाया। अगर कोई व्यक्ति अपने कार्य से आगे बढ़ता है और लोग उसे अपना नेता मानने लगते हैं तो सरकार को हमेशा डर रहता है। इसीलिए सरकार जान–बुझकर इन लोगों को अपने पास बुलाती है, उनके कार्यों की सराहना की जाती है। किसी सरकारी समिति पर नियुक्ति करते हैं, और उन्हें आश्वासन देती है कि अपने मार्ग दिखाया है। अब आगे की जिम्मेदारी सरकार की है। दिखाने के लिए कुछ काम भी किए जाते हैं, लेकिन धीरे–धीरे सब काम ठप्प हो जाता है।

साहब लोग केवल आदिवासियों पर चर्चा करते हैं परंतु उनका पक्ष लेता हुआ कोई दिखाई नहीं देता। तभी आदिवासियों की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए सुदीप्त बाबू कहते हैं, ''ये सदियों से उपेक्षित आदिवासी है और कितने नॉन आदिवासीज है? जो आदिवासी है, क्या करते हैं, कैसे रहते हैं, क्या खाते हैं? आप अफ्रीका, लैटिन अमेरिका, कम्पूचिया, वियतनाम, अफगानिस्तान की दबी राष्ट्रीयताओं पर तो आठ–आठ आँसू रो सकते हैं, मगर इस देश के शोषित तबकों के दमन उत्पीड़न पर नहीं। झारखंड़ आंदोलन की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए सुदिप्त कहता है, ''दरअसल पृथक झारखंड राज्य की माँग आज की नहीं, जयपालसिंह के नेतृत्व से भी पहले इसकी जड़े इस क्षेत्र के जुझारु काले, मुंडा, संथाल, ओराँव, बाउरी, भुइयाँ आदि आदिवासी जातियों की सदियों पुरानी संघर्ष परंपरा में है। अपने देश के किसी भी राष्ट्रीयता के आंदोलन से ज्यादा राष्ट्रीय है यह।

यहाँ मुगलों को भी मुँह की खानी पड़ी थी। अंग्रेजों के भी दाँत खट्टे हो गए थे।''[4] इस तरह झारखंड़ के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास है।

सुदामा प्रसाद जो इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है। नेशनल थर्मल पॉवर कार्पोरेशन में इंजीनियर के पद पर काम करता है। कंपनी में काम करने वाले नौकर होने के कारण उसे कंपनी के नियमों के अनुसार ही काम करना पड़ता है। कंपनी अपना हित देखती है वह मजदूरों का हित नहीं देखती। यहाँ नौकरी करने के पहले सुदामा प्रसाद आंदोलनकारी नेता थे। आदिवासी झारखंड के लोगों को न्याय मिले इसीलिए वे हमेशा प्रयत्नशील रहते थे। जब किसी स्त्री को डायन कहकर गाँववालों ने बेरहमी से मार डाला था तब उसकी पूछताछ करने के लिए सुदामा प्रसाद वहाँ गए थे। उस समय जो भागदौड़ हुई थी, तब किसी युवक ने उन्हें पत्थर फेंककर मारा था। जो उनकी कनपटी पर लगा था। लेकिन फिर भी वे विचलित नहीं हुए थे। आज जनता मजदूर दल के तिवारी जी, लाल झंडा के सेन जी और झारखंड युनियन के डेनियल कुजुर कुछ लोगों के साथ सुदामा प्रसाद के चेंबर में अपनी माँग को लेकर आए। इन लोगों में और मॅनेजमेंट में बहुत सी चर्चा हुई। लेकिन नतिजा कुछ नहीं निकला। तभी लाल झंड़ा और झारखंड़ युनियन की ओर से आए सुखमय बाबू कहते है कि, ''प्रसाद, मुझे देखना है कि कनपटी पर चोट खाकर भी न विचलित होने वाले लेखक और इस कुर्सी पर बैठने वाले अफसर की लड़ाई में अखिर तक कौन जीतता है।''[5]

कोयला अंचल और जनजातीय जीवन पर लिखे उपन्यास में भाषा का नया रुप सामने आता है। भाषा में व्यंग्य, व्यथा, आक्रोश और संघर्ष का मिलाजुला रुप मिलता है। उपन्यास में प्लैशबैक वर्णनात्मक, नाटकीय और डायरी शैली के माध्यम से विकसित होता है। भाषा शैली की दृष्टि से संजीव अब तक के उपन्यासों में सर्वोपर है। भाषा में कई विशेषताएँ मिलती है। भाषा एक तरह से संजीव की सामर्थ्य भी है। और सिमा भी उन्होंने आँचलिक भाषा का सृजनात्मक रुप देने की जो पहल की है वह उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष के रुप में 'पाँव तले की दूब' इस उपन्यास के संदर्भ में कहा जा सकता है कि संजीव ने झारखंड़ राज्य के आदिवासी समाज के आंदोलन का प्रमुख रुप से चित्रण किया है। सदियों से आदिवासियों पर नेताओं के द्वारा किस प्रकार अन्याय अत्याचार हुआ है इसका विस्तार से चित्रण किया है। आदिवासी समुदाय अरण्यमुखी और उत्सवधर्मी होने के कारण हमेशा कंगाल दिखाई देता है। उपन्यास का नायक सुदामा प्रसाद है। वह आदिवासी समाज की उन्नति के लिए निरंतर प्रयास करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. संजीव, पाँव तले की दूब, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पॉकेटबुक, पुनर्मुद्रण संस्करण, 2009, पृ. 14
2. डॉ. गौतम कुँवर, आदिवासी लोक साहित्य, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2012,पृ. 14
3. संजीव, पाँव तले की दूब, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पॉकेटबुक, पुनर्मुद्रण संस्करण, 2009, पृ. 74
4. संजीव, पाँव तले की दूब, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पॉकेटबुक, पुनर्मुद्रण संस्करण, 2009, पृ. 46
5. संजीव, पाँव तले की दूब, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पॉकेटबुक, पुनर्मुद्रण संस्करण, 2009, पृ. 83

मो. नं. 9960949298, ई मेल – nawnathgadekar@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 470-473
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मराठी संत कवयित्रियों में नारी वेदना

-डॉ. वैशाली सुनील शिंदे
श्री संत गाडगेबाबा महाविद्यालय, कापशी।

साहित्य में संत साहित्य का महत्व चमके हुए तारे के समान है। महाराष्ट्र संत–महंतों की पावन भूमि है। इस धरती के संत–सपुतों ने अपना समस्त जीवन भारतीय संस्कृति और मानव धर्म के कल्याण एवं रक्षा के लिए समर्पित किया। महाराष्ट्र एक महान राष्ट्र, शिवभूमि, वंदनीय, अति पावन मायभूमि पर संत नामदेव, संत ज्ञानेश्वर, संत एकनाथ, संत तुकाराम, संत जनाबाई, संत कान्होपात्रा, संत बहिणाबाई, संत मुक्ताबाई, संत तुकडोजी महाराज, संत गुलाबराव महाराज, संत चोखामेळा जैसे संत विभूतियों ने अपनी भक्ति–विचार–धर्म–कर्म–मानवता–संस्कृति की पताका सिर्फ महाराष्ट्र में ही नहीं देश–विदेशों में लहराने का महनीय कार्य किया।

महाराष्ट्र की संत परंपरा में वारकरी संप्रदाय काफी लोकप्रिय रहा है। वारकरी संप्रदाय के संत पंढरपुर के विठ्ठल के अनन्य भक्त थे।

डॉ. भरत सगरे जी कहते हैं, ''हृदय को जोड़ने वाला, बिगड़ते–बिखरते संबंधो को बनाने वाला, जीवन से भागने का नहीं बल्कि जीवन जीने का संदेश देनेवाला, जनकल्याण चाहने वाला आम आदमी का साहित्य संत साहित्य है, जो हर समय, हर युग में, हर जीव को सत् चरित्र का संदेश देता है, यही उसकी महानता है, उपलब्धि है।''[1] संत साहित्य मानव जीवन का दर्पण है। संत कवयित्रियों ने सामाजिक कुरीतियों पर कड़ा प्रहार करते हैं। उनकी वाणी में लोक कल्याण की भावना मुखरित है। समाज का अहम अंग नारी की दुर्दशा के प्रति वे सजग एवं सतर्क है।

महाराष्ट्र में 1200 से 1700 इ.स.वी. इन पाच सौं वर्षों के कालखंड में समाज में भिन्न–भिन्न स्तरों पर जीवनयापन करने वाली संत कवयित्रियाँ थी। इस कालखंड में रूढिवादी श्रृखंला से मुक्ति पाने हेतु विद्रोही भावनाओं का आत्मकथन संत कवयित्रियों की साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। जीवनयापन करते हुए रोजमर्रा की जिंदगी में अनुभूत अनुभव 'अभंगो' में पिरोया है। समाज में स्त्रियों को धार्मिक और सामाजिक बंधनों में जकड़कर उन पर परंपरा, रस्म, व्रत वैकल्य आदि बेहुदे बंधन लादकर उनके अस्तित्व को मिटाने का षडयंत्र रचा गया। भक्ति संप्रदाय या वारकरी संप्रदाय उनके लिए एक आशा की किरण थी। इन महिलाओं ने अभंग के जरिए मुक्ति की मिसाल कायम की, आदर्श स्थापित किया।

परिस्थितियाँ मानवता के अनुकूल नहीं है। साहित्य अक्सर मानव जीवन समाज का आइना है। काव्य कम समय में व्यापक विचारों का वहन करने वाला साधन है। भावनाओं की श्रृखंला को अभिव्यक्त करने का बेहतरीन साहित्य विधा है काव्य। अतः काव्य काफी लोकप्रिय एवं पसंदीदा है।

मुझे लगता है, वर्तमान में मानव को उचित रास्ता दिखाने में संत साहित्य काफी अहम भूमिका निभायेगा।

वैश्वीकरण के दौर में मानव मानव से भावनिक धरातल से कटता जा रहा है। भले ही पूरी दुनिया एक गाँव में तब्दील हो गई हो। वैज्ञानिकता ने भौतिक सुविधाएँ प्रदान की, लेकिन मानव अकेला पड़ता गया। हर कोई प्रसिद्धि के पीछे दौड़ लगा रहा है। शैक्षिक विकास के बावजूद नारी से जुड़ी समस्याएँ आज भी अपनी जड़ों को मजबूती सें फैला रही है। नारी की ओर देखने की कलुषित नजर बदली नहीं। नारी त्रासदी की यथार्थपरक प्रस्तुति संत साहित्य में देखने को मिलती है। संत पदों में नारी सच्चाई की कई परतों को उधेड़ा है। वह इस प्रकार है।

1) भक्ति में परमानंद :-

संत काव्य का प्रधान बिंदू 'भगवत् भक्ति' है। भक्ति की पराकाष्टा उनके अभंगो में ओतप्रोत है। अपनी वेदना, तन्मयता, अतुरता सभी भाव अपने आराध्य से कहती है। वारकरी संप्रदाय के आराध्य देव विठ्ठल या विठोबा ओर रूक्मिणी या रखुबाई की आराधना महाराष्ट्र में अत्यंत प्राचीन है। भक्ति से उपजा हुआ प्रेम अपरा भाव नष्ट करता है। संत जनाबाई, संत कान्होपात्रा, संत सोयराबाई अपने गृहस्थी के नित्य कर्म करते हुए ईश्वर के गुन गाती है। इनमें 'भक्तिप्रेम' का वर्णन प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है।

संत बहिणाबाई – ''तुझ्या पायाची चाहूल। लागे पानापानामधीं।
देवा तुझं येनं जानं। वारा सांगे कानामधीं।।''[2]

संत जनाबाई – ''नामयाचे जनी आनंद पै झाला।
भेटावया आला पांडुरंग।।''[3]

2) नारी की सुरक्षा :-

बिदर के बादशाह ने कान्होपात्रा के सुस्वर गायन और रूप का बखान सुना। बादशाह के मन में उसे पाने की ललक जगी। उसने अपने सैनिकों को भेजा। यह सुनकर कान्होपात्रा कहती है –''पुरविली पाठ न सोडी खळ। अधम चांडाळ पामराशी।''[4]

नारी सुरक्षा प्रश्न पर आज भी जूझ रही है।

सैनिकों ने मंदिर को चारों ओर से घेर लिया तब अपनी आर्त पुकार द्वारा विठ्ठल से कहती है कान्होपात्रा के शब्दो में –

''नको देवराया अंत आता पाहू प्राण हे सर्वचा जाऊ पाहे।
हरिणीचे पाडस व्याघ्रे धरियेले। मजलागी जाहले तैसे देवा।।
तुजवीण ठाव न दिसे त्रिभुवनी। धावे हो जननी विठाबाई।
मोकलोनी आस जाहले उदास। घेई कान्होपात्रा हृदयात।।[5]

उनकी पुकार ईश्वर ने सुन ली। श्री चरणों में अपने प्राण त्याग दिए। यह हत्या नहीं तो और क्या है? अपने शील की रक्षा के लिए प्राण त्यागना, कौन जिम्मेदार है इसके लिए? आज कान्होपात्रा जैसी कितनी नारीयाँ समाज में मौजुद है। क्या मौत को गले लगाना, ही उनका न्याय है?

3) अस्पृश्यता के खिलाफ नारी चेतना :-

पिछड़ी जाती और उसमें भी स्त्री होना कितना भयंकर था। समाज अस्पृश्यता के घिनौनी सोच को पाल

रहा था। पिछडी जाति के संतों ने इसके दुष्परिणाम अनुभूत ही नहीं किए, भोगने, सहने पडे। संत भक्ति में लीन थे। वे जातिभेद, अस्पृश्यता के खिलाफ थे। संत सोयराबाई के शब्दों में –

''देहासी विटाळ म्हणती सकळ।
आत्मा तो निर्मळ शुद्ध बुद्ध।।
देहीची विटाळ देहीच जन्मला।
सोवळा तो झाला कवण धर्म।।[6]

अस्पृश्यता के कारण उनका मन विद्रोह कर उठता है। वह ईश्वर से कहती है कि अगर हमारे देह से समाज अशुद्ध होता है, तो देह किसने निर्माण किया? आत्मा तो शुद्ध और पवित्र होती है, तो ऐसा भेदभाव क्यों? संत कान्होपात्रा –

दीन पतित अन्यायी। शरण आले विठाबाई।
मी तो आहे यतिहीन। न कळे काही आचरना।।
मज अधिकार नाही। शरण आले विठाबाई।
ठाव देई चरणापाशी। तुझी कान्होपात्रा दासी।।[7]

उसका दर्द पंक्तियों में समा गया, लेकिन बेसुध समाज उसे समझने में अनभिज्ञ रहा।

4) नारी विद्रोह :-

नारी विद्रोह वर्तमान की उपज नहीं, यह बहुत पहले संत काव्य में उपजा था। वर्चस्ववादी समाज नारी पर सदियों से जुल्म की नंगी तलवार पर नचाता आ रहा है। संत कवयित्रि इससे अछुती नहीं है। वह वर्तमान पीडीत, दमित, दलित, नारी का प्रतिनिधित्व करती है, साथ ही उनके काव्य में विद्रोह का स्वर मुखरीत हुआ है। संत जनाबाई कहती है,

''डोईचा पदर आला खांद्यावर, भरल्या बाजारी जाईन मी।''[8]

यह विद्रोह सामाजिक व्यवस्था के अन्याय से मुक्ति की अभिलाषा है।

5) नारी सुलभ भावना :-

हर नारी मातृत्व में धन्यता मानती है। मातृत्व के बिना उसे अपना जीवन निरर्थक लगता है। संत सोयराबाई के शब्दों में –

''पोटी संतान न देखेंचि काही।
वाया जन्म पाही झाला माझा।।''

6) मानवता :-

नारी का मन संवेदनशील होता है। मानव के प्रति उनके दिल में असीम प्रेम है। जिसके दिल में दूसरों के प्रति दया, ममता, करूणा, प्रेम, अपनापन होता है, परायों का दुख देखकर जिनका दिल पसीजता है, वही सच्चा मानव है, उसमें मानवता वास करती है। संत बहिणाबाई मानवता की प्रतिमूर्ति है। –

''निजवते भुक्या पोटी। तिले रात म्हणू नही।
आखडला दानासाठी। त्याले हात म्हणू नही।।''[9]

निष्कर्ष :-

संत साहित्य भारतीय साहित्य की महान उपलब्धि है। संतों ने मानव जाती पर बहुत बड़े उपकार किए हैं। मानव को मानव से मानव की तरह व्यवहार करने की सीधी–साधी सीख दी। नारी मानव का अभिन्न अंग है। संत कवयित्रियों की भाषा सहज और सरल है। सामाजिक कुरीतियों पर कड़ा प्रहार करती है। सामाजिक प्रबोधन उनकी वाणी की ध्वनी है। नारी मुक्ति की कामना है।

संत साहित्य सिर्फ मोक्ष की कामना नहीं करता, वह समस्त मानव जीवन के कल्याण की कामना करता है। भक्ति साधना, सेवा, त्याग, समर्पण, मुक्ति प्रेम का संदेश संत कवयित्रियों ने दिया है। संत साहित्य नारी वेदना का जनसाहित्य है।

संदर्भ सूची :-

1. संपा. डॉ. भरत सगरे – हिंदी और मराठी संत साहित्य की समाज प्रबोधन में भूमिका, तन्वी प्रकाशन, सातारा, पृ. 13, 14
2. बहिणाबाई चौधरी – बहिणाबाईची गाणी, सुचित्रा प्रकाशन, मुंबई, सोलहवा सं. 2012, पृ. 77
3. संत जनाबाई अभंग संग्रह – 5 – अभंग 8
4. संत कान्होपात्रा अभंग रचना (3), सप्तर्षि प्रकाशन, मंगळवेढा, अभंग–5
5. वहीं, अभंग–5, पृ. 8
6. संत सोयराबाई – विटाळाचे अभंग
7. संत कान्होपात्रा, अभंग रचना – 4
8. संत जनाबाई अभंग संग्रह – 4
9. बहिणाबाई चौधरी – बहिणाबाईंची गाणी, पृ. 24

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 474-480
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जनजातीय महिला विकास की रणनीतियाँ

–डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप

सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र), शासकीय ठाकुर छेदीलाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय जांजगीर, जिला – जांजगीर चाम्पा (छ.ग.)

–रामसेवक राम भगत

सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शासकीय श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय सीतापुर (छ.ग.)

सारांश :-

जनजातीय महिला विकास के लिए तीन प्रमुख आधार है –प्रथम : आर्थिक आत्म निर्भरता, द्वितीय : घरेलू जीवन में महिलाओ को आदर और तृतीय : पुरूषों के दृष्टिकोण में सुधार। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर व्यक्ति शेष सभी अधिकार प्राप्त करने में सक्षम होता है, यदि जनजातीय महिला आर्थिक दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर है तो वह राजनीतिक पारिवारिक सामाजिक, स्वतंत्रता एवं अधिकार प्राप्त कर सकती है। सामाजिक–पारिवारिक सम्मान एवं मान्यता तथा पुरूष वर्ग के सकारात्मक दृष्टिकोण के अभाव में आर्थिक आत्मनिर्भरता भी पूर्ण नहीं हो सकती।

जनजातीय महिलाओं की स्थिति को सामान्य करने हेतु योग्यता, साहस एवं प्रतियोगिता के साथ उन्हे विशेष संरक्षण की आवश्यकता है। जनजातीय क्षेत्रों एवं जनजातियों का चहुमुंखी विकास तभी होगा जब स्थानीय परम्परा, हस्तशिल्प क्षेत्रीय संसाधनों को सुरक्षित रखते हुए आधुनिक विकास के पथ पर चला जाए। जनजातीय जनसंख्या के विकास प्रक्रिया को इस प्रकार निर्धारित करना चाहिए ताकि वे अपनी सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विरासत अक्षुण्ण बनाए रखते हुए राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा में अपना सम्यक स्थान बना सके।

मुख्य शब्द – जनजातीय समुदायों पर राष्ट्रीय नीति 2006, जनजातीय महिलाओं के लिए शैक्षणिक योजनाएँ, पिछड़ेपन के कारण, भावी रणनीति।

अध्ययन का उद्देश्य –
1. जनजातीय महिला की वर्तमान स्थिति का अध्ययन।
2. पिछड़ेपन के कारणों को जानना।
3. विकास के लिए भावी रणनीति।

अध्ययन विधि – द्वितीयक समंको पर आधारित।

प्रस्तावना :-

भारत में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में जनजातियों के संदर्भ में विकास और प्रयास तो दूर उनके विषय

मे स्पष्ट और सुलझे विचारों का भी अभाव रहा है। यही कारण है कि औपनिवेशिक काल से लेकर अब तक कई बार उन्हे भिन्न–भिन्न नामों से चिन्हित या इंगित किया गया। कभी उन्हें क्षेत्रीयता के आधार पर जानने की कोशिश की जाती है तो कभी जातीयता या नस्ल के आधार पर। कभी इन्हें आर्थिक समस्याओं के आधार पर एकत्रित किया जाता है तो कभी संस्कृति के आधार पर। इन जनजातियों की सही गणना भी नहीं हो पाती। इसलिए वास्तविकता तो यह है कि इनकी सही स्थिति का अनुमान लगाना कठिन कार्य होता है। भारत में अधिकांश जनजातियॉ आज भी वनो में निवास करती है और वे वन्य, प्राकृतिक, साधनों पर ही निर्भर करती है। कुछ कबीलों की अर्थव्यवस्था, खाद्य पदार्थों की संग्रह और पिछड़ी कृषि के बीच की है। तीसरी आर्थिक श्रेणी में देश की अधिकांश जनजातीय जनसंख्या को रखा जा सकता है, यह श्रेणी उन जनजातियों की है जिनके जीविकोपार्जन का मुख्य साधन कृषि है लेकिन जिन्होने वनों की निकटता के कारण संग्रह को दूसरे मुख्य व्यवसायों के रूप में अपना लिया है।

वर्तमान में भारत में जनजातियों की संख्या देश की कुल जनसंख्या के 8 प्रतिशत के आसपास हैं। उल्लेखनीय है कि इस जनजातीय जनसंख्या का 90 प्रतिशत से भी ज्यादा ग्रामीण है। 8 प्रतिशत शहरी क्षेत्र में निवास करता है। भारत की जनजातियों का सर्वाधिक संकेन्द्रण मध्यप्रदेश (1.22 करोड़) में है पश्चात् महाराष्ट्र (85.77 लाख), उड़ीसा (81,45), गुजरात (74.81 लाख) तथ राजस्थान (70.77 लाख) का स्थान आता है। लेकिन यदि जनसंख्या में कुल जनजातीय प्रतिशतता को देखे तो वह मिजोरम (94.5 प्रतिशत) और लक्षद्वीप (94.51 प्रतिशत) में सर्वाधिक है। इसके पश्चात् नागालैण्ड (89.1 प्रतिशत) और मेघालय (85.9 प्रतिशत) आते है। देश की 68 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या केवल 7 राज्यों में निवास करती है।

(स्त्रोत – योजना जनवरी 2016, पृ. क्र. 43)

जनजातीय समुदायों पर राष्ट्रीय नीति 2006 :–

इस नीति का प्रारूप 21 जुलाई 2006 को जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी किया गया।

1. इन क्षेत्रों एवं समुदायों का समग्र विकास किया जाए जिससे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक एवं प्रशासनिक प्रयास सम्मिलित हो।
2. शिक्षा को प्राथमिकता देते हुए पोषण, रोजगार छात्रावास, कौशल स्वरोजगार तथा सहजता को ध्यान में रखा जाए।
3. परम्परागत उपचार पद्धतियों का मानकीकरण कर उसे व्यवस्थित रूप दिया जाए।
4. विस्थापन की समस्या का समाधान एकीकृत रूप से किया जाए। विस्थापन की स्थिति में इन्हे पर्याप्त भूमि, संसाधन वित्तीय सहायता, मुआवजा तथा पुनर्वास, सुविधाएं मिले।
5. वनो के साथ इनके सहजीवी संबंधो को देखते हुए इन क्षेत्रो में बैंक, स्कूल, अस्पताल तथा अन्य संस्थागत लाभ आदि उपलब्ध हो।
6. भूमि पर इनके मालिकाना हक को सुनिश्चित करते हुए बॅटाई खेती के क्षेत्र में पर्याप्त सुधार किया जाए।

7. भूमि संबंधी रिकार्ड बनाकर, पंचायत में उनका प्रस्तुतीकरण करके, रिकार्ड के अभाव में मौखिक गवाही को मानकर ऐसी व्यवस्था की जाए, कि जनजातीय लोगों की भूमि का गैर जनजातीय व्यक्तियों तक स्थानांतरण न हो।
8. जनजातीय लोगों की बौद्धिक संपदा का वैधानिक एवं संस्थागत प्रयासों से संरक्षण किया जाए।
9. जनजातीय भाषाओं (बोलियों) का संरक्षण एवं प्रलेखीकरण किया जाए।
10. आदिम जनजातीय समूहों का विकास एवं कल्याण सुनिश्चित किया जाए।
11. अनुसूचित क्षेत्रो में प्रशासन को सुशासन, शांति भाईचारा, विकास तथा कौशल निर्माण में सुदृढ़ किया जाए।
12. आदिवासी परिवेश, इनकी समस्याओं एवं विकास के संदर्भ में शोध कार्यो को प्रोत्साहन दिया जाए।
13. इन क्षेत्रो के विकास एवं कल्याण में स्वयं सेवी संस्थाओं से सहयोग लिया जाए।

(i) राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम द्वारा संचालित योजनाएँ –

कृषि क्षेत्र से संबंधित योजनाएँ :– ट्रेक्टर–ट्राली योजना, बकरी पालन योजना, मुर्गी पालन योजना, सुअर पालन योजना, डेयरी फार्मिंग योजना, कृषि उत्पादकता बढ़ाओ योजना, लघु वनोंपज क्रय–विक्रय योजना।

यातायात क्षेत्र से संबंधित योजनाएं :– मिनी ट्रक योजना, जीप टैक्सी योजना, डम्पर योजना, मिनी बस योजना, ऑटो–रिक्शा योजना, ट्रक योजना, बस योजना, साइकल रिक्शा योजना, ट्रेवल एजेन्सी।

सेवा क्षेत्र से संबंधित योजनाएँ :– फोटो कापीयर योजना, जनरल स्टोर योजना, मिनी राईस मिल योजना, आटा चक्की योजना, एस.टी.डी./पी.सी.ओ. योजना, टेंट हाउस योजना, मेडिकल स्टोर योजना, पान दुकान योजना।

उद्योग क्षेत्र से संबंधित योजनाएं :– ईट निर्माण योजना, झाडू निर्माण योजना, प्रिंटिग प्रेस योजना, ढाबा योजना, कालीन बुनाई योजना, बॉस टोकरी योजना।

(ii) नाबार्ड योजना :–

नाबार्ड योजना के अंतर्गत बैंको के माध्यम से ऋण स्वीकृत कराकर निगम द्वारा अनुदान दिया जाता है। सिंचाई योजना को छोड़कर इस योजना में अनुदान राशि योजना लागत का 50 प्रतिशत या अधिकतम 10000 रू. है। सिंचाई योजनाओं में योजना लागत का 50 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है। इसमें कोई वित्तीय सीमा नहीं है।

(iii) विशेष पिछड़ी जनजाति हेतु छात्रवृत्ति :–

बैगा, सहरिया, भारिया में शिक्षा के स्तर को देखते हुए कक्षा पहली से 5वीं तक के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति योजना वर्ष 2005–06 से प्रारंभ की गई है।

(iv) शिक्षा के क्षेत्र से संबंधित योजनाएँ –

– विद्यालयों में सुसज्जित प्रयोगशालाएँ, समृद्ध पुस्तकालय, आवश्यक खेल सामग्री सहित अनुभवी एवं

सुयोग्य प्राचार्य का मार्गदर्शन तथा विद्वान शिक्षकों द्वारा अध्यापन की व्यवस्था की गई है।

– सर्वश्रेष्ठ विद्यालय छात्रावास एवं आश्रमों का चयन कर उन्हे पुरस्कृत करने की योजना वर्ष 2005–06 से प्रारंभ की गई है। विशेष पिछड़ी जनजाति के बालकों को निःशुल्क गणवेश प्रदान किए जाते है।

– विकास खण्ड मुख्यालयों पर भी उत्कृष्टता शिक्षा केन्द्र प्रारंभ किए गए है। जिनमें निवास करने वाले विद्यार्थियों को समस्त आवश्यक सुविधाएं तथा विशेष प्रशिक्षण का प्रावधान रखा गया है।

– विदेश अध्ययन छात्रवृत्ति योजना में यदि कोई आदिवासी विद्यार्थी विदेश में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहता है, तो उस पर आने वाले संपूर्ण व्यय का भार विभाग वहन करता है।

– छात्रावासों एवं आश्रमों में समस्त सुविधाओं की उपलब्धि सुनिश्चित करने के लिए इनका सुदृढ़ीकरण किया गया है।

जनजातीय महिलाओं के लिए शैक्षणिक योजनाएं :–

1. शालाएं, छात्रावास/आश्रम, उत्कृष्ट शिक्षा कन्द्र का संचालन।
2. छात्रवृत्ति, छात्रावासों में अतिरिक्त छात्रवृत्ति पोस्ट मेट्रिक छात्रवृत्ति केन्द्र।
3. निःशुल्क गणवेश, साइकिल प्रदाय योजना।
4. **कन्या साक्षरता प्रोत्साहन :–** जनजातीय बालिकाओं को शिक्षा हेतु प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से कक्षा 5वीं, 8वीं एवं 10वीं परीक्षा पास कर अगली कक्षा में नियमित रूप से प्रवेश लेने वाली छात्रा को क्रमशः 500, 1000 एवं 2000 रू. की प्रोत्साहन राशि दी जाती है।
5. **सिविल सेवा प्रोत्साहन योजना :–** संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित की जाने वाली सिविल सेवा परीक्षाओं में विभिन्न स्तरों पर सफल होने वाली प्रतियोगियों के लिए प्रोत्साहन राशि का प्रावधान है। ऐसे प्रतियोगी जिनके माता/पिता/अभिभावकों की वार्षिक आय 1.20 लाख से अधिक न हो उनको प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण करने पर 20000 रू. मुख्य परीक्षा उत्तीर्ण करने पर 30000 रू. तथा चयन होने पर 25000 रू. की प्रोत्साहन राशि प्राप्त करने की पात्रता होगी।

वर्तमान स्थिति :–

अनुसूचित जनजातियों के लिए सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयासों के बावजूद आज भी जनजातियों का मानव विकास सूचकांक शेष जनसंख्या की तुलना में बहुत ही निम्न है। अपने अधिकारों की जानकारी नहीं होने के कारण उन तक इनका लाभ नहीं पहुंच पा रहा है। परिणामस्वरूप आज भी वे अपने प्राकृतिक आवास एवं भूमि से बेदखली के भय और काश्तकारी असुरक्षा के माहौल में जी रहे है। स्वास्थ्य सुविधाओं के लाभ भी उन तक नहीं पहुंच पा रहे है, जिससे शिशु मृत्यु दर काफी अधिक है।

जनजातीय विकास का उक्त दृष्टिकोण बेरियर ऐल्विन की इस मान्यता की पुष्टि करता है कि जनजातियों का विकास उनकी अपनी प्रतिभा की सीमाओं में ही संभव है। इससे पृथक अब यही स्वीकृत किया जाने लगा है कि जनजातियों की विशिष्टताओं को बचाए रखते हुए उन्हे राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा से जोड़ा

जाना चाहिए।

जनजातियों के पिछडेपन के कारण :-

जनजातियों का एक बड़ा हिस्सा भूमिहीन है। ये प्राचीन पद्धति से कृषि कार्य करते है एवं साधनों का आभाव है। सिंचाई सुविधा एवं पेयजल का संकट है। आज भी रूढ़िवादी अंधविश्वास से घिरे हुए है। ऋण के बोझ से दबे है एवं साहूकारों के शोषण का शिकार है। इनके गॉवों तक जाने के लिए अधिकांश जगह आज तक सड़के नहीं बनी है। अधिकांश जनजातीय गॉव उग्रवाद से प्रभावित है जो विकास न होने का एक प्रमुख कारण है। वनों की निरन्तर अवैध कटाई एवं जंगली जानवरों का अवैध शिकार जारी है। ये लोग समाज के अन्य वर्गों से अलग थलग है। सरकारी विकास कार्यक्रम से अधिकांश लोग अनभिज्ञ है।

जनजातीय महिला विकास :-

जनजातीय महिला विकास के दृष्टिकोण से सामाजिक परिवर्तन में हमे अपने आदर्शो एवं मूल्यों का निर्धारण करना पड़ेगा और नवीन मूल्यों के निर्माण के साथ ही रूढ़िवादी परम्परागत मूल्यों का स्पष्ट सशक्त विरोध अति आवश्यक है। वैश्वीकरण एवं नवीन सामाजिक परिस्थितियों में समाज सुधार आंदोलन ने कानूनी एवं सामाजिक असमानता तथा अन्याय के विविध प्रकारों को समाप्त करने का प्रयास किया। ब्रिटिश आगमन से पूर्व सामंती काल की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना में जनजातीय महिला की स्थिति निम्न थी। भूमंडलीकरण का स्वरूप एवं संरचना निश्चित रूप से जनजातीय महिला सदस्यों की स्थिति को प्रभावित करती है। वैदिक समाज में महिलाओं को पर्याप्त स्वतंत्रता थी। भूमंडलीकरण के साथ ही महिला पुरूष समानता को कानूनी आधार प्रदान किया गया। ''अनिवार्य शिक्षा'', हिन्दू विवाह अधिनियम, दहेज प्रतिषेध कानून, सती निषेध, समान कार्य समान वेतन आदि कानूनों द्वारा महिला विकास हेतु सकारात्मक कदम उठाये गए। किन्तु केवल कानून द्वारा सामाजिक सुधार संभव नहीं है सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है जनमानस में परिवर्तन।

भूमंडलीकरण के परिणाम स्वरूप सामाजिक एवं आर्थिक विचारकों का मत है कि विकासशील राष्ट्र के विकास को गति देने के लिए महिलाओं की भागीदारी आवश्यक है। आर्थिक दबावों के परिणामस्वरूप जनजातीय महिला वर्ग का दृष्टिकोण रोजगारोन्मुख हो गया है। भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप श्रम बाजार में महिला के प्रवेश से विशेष स्थिति उत्पन्न हुई है। नीरा देसाई के अनुसार जाति, धर्म, वर्ग एवं भाषा के आधार पर कार्यशील महिलाओं का विभाजन इस प्रकार किया गया– मजदूरी एवं बेगारी के लिए आदिवासी महिलाओं का व्यापक उपयोग। महिलाओं के कार्यक्षेत्र में एक अन्य तत्व कष्टदायक है – वेतन स्तर मे असमानता।

भावी रणनीति :-

इनके सामाजिक आर्थिक विकास में निम्नलिखित सुझाव सहायक सिद्ध हो सकते है –

जनजातियों के गॉवो तक पहुंचने के लिए संपर्क मार्ग का निर्माण करना चाहिए। सभी विकास कार्यक्रमों का क्रियान्वयन नियोजित तरीके से किया जाना चाहिए एवं नियोजन में महिलाओं को पूर्ण भागीदार बनाना चाहिए। जिससे ये विकास कार्यक्रमों से लाभान्वित हो सके। कार्यक्रम के क्रियान्वयन में सम्मिलित व्यक्तियों एवं

संस्थाओ की जिम्मेदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। कार्यक्रम में सम्मिलित व्यक्ति एवं संस्था को जनजातीय भाषा की जानकारी होनी चाहिए जिससे इनसे संवाद स्थापित किया जा सके। सरकार को सिंचाई सुविधा के साथ–साथ सभी कृषि सुविधाएं उपलब्ध करानी चाहिए। कृषि के आधुनिक तरीके अपनाने हेतु प्रेरित करना चाहिए। जनजातियों को उनके स्वभाव के अनुसार उनकी आर्थिक स्थिति ठीक करने हेतु छोटे–छोटे व्यवसायों से जुड़ने के लिए सकारात्मक पहल करनी चाहिए। जैसे– जंगली जड़ी बूटी, पत्तल, मधुमक्खी पालन, बॉस से निर्मित वस्तुएं आदि। उन्हे छोटे–छोटे ऋण की सुविधा प्रदान की जाए, सरकारी एजेन्सियों से ऋण लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए। भूमिहीन जनजातीय परिवारो को उनके गॉवो के समीप भूमि आबंटन करना चाहिए जिससे वे समाज की मुख्यधारा में सम्मिलित हो सके। बंजर भूमि पर वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करना चाहिए। बच्चों को स्कूल भेजने के लिए धीरे–धीरे प्रोत्साहित करना चाहिए। सरकार को वनो की अवैध कटाई एवं जानवरों के अवैध शिकार को रोकने के लिए कड़े कदम उठाना चाहिए। गैर–सरकारी संस्थाओं को इनके विकास में योगदान देने के लिए सहायता प्रदान करनी चाहिए एवं प्रोत्साहित करना चाहिए। वन विभाग के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को उनके साथ अपने संबंधो को और सुधारने के लिए प्रयास करने चाहिए जिससे वे लोग अपनापन महसूस कर सकें। सरकार को इनके गॉवों को उग्रवाद मुक्त करने के लिए प्रयास करने चाहिए। इनके लिए चलाये जा रहे कार्यक्रमों एवं नीतियों की उपयोगिता का मूल्यांकन किया जाना चाहिए एवं आवश्यकतानुसार समय–समय पर नीतियों में संशोधन करना चाहिए।

इनके लिए चलाए जा रहे कार्यक्रमों एवं नीतियों की उपयोगिता का मूल्यांकन किया जाना चाहिए एवं आवश्यकतानुसार समय–समय पर नीतियों में संशोधन करना चाहिए। गैर सरकारी संस्थाओं को इनके विकास में योगदान देने के लिए सहायता एवं प्रोत्साहन देना चाहिए। लड़कियों के लिए बालिका विद्यालय खोले जाए। प्रांरभिक शिक्षा के बाद उनकों व्यवसायिक प्रशिक्षण मिले जिससे वे सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओ में काम कर सके। कृषि कार्य में लगे जनजातियों को उन्नत बीज, उपयुक्त खाद तथा आधुनिकतम उपकरण उपलब्ध कराएं तथा ऋण देने की व्यवस्था करें। जनजातियों के परम्परागत ज्ञान की रक्षा की जाए और उसका उन पर वैधानिक अधिकार प्रदान किया जाए।

वैश्वीकरण से औद्योगीकरण, शहरीकरण एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने जनजातीय महिला के परम्परागत मूल्यों एवं संस्कारों के समक्ष चुनौती प्रस्तुत की है। इस नवीन प्रक्रिया ने जाति, धर्म, भाषा एवं क्षेत्र के बंधनो को तोड़कर अन्तर व्यक्ति संबंधो को वैचाारिक आधार प्रदान किया। शिक्षित युवा परिवार एवं समाज की कुप्रथाओं का सशक्त विरोध करने में सक्षम है। नई पीढ़ी के आधुनिक एवं प्रगतिशील विचारों ने पुरानी जनजातीय पीढ़ी को विवश कर दिया है कि वे स्थापित सामाजिक मूल्यों परम्पराओं एवं मान्यताओं का पुनः परीक्षण करें।

जनजातियों के प्रत्येक परिवार को कृषि के लिए इतनी भूमि दी जानी चाहिए जो खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बना दे। कृषि के आधुनिक उन्नत तरीको की जानकारी एवं प्रशिक्षण दिया जाए। झूम या स्थानांतरित कृषि पद्धति

पर पूर्ण रोक लगा दी जाए। वन संपत्ति के दोहन के लिए आदिवासी सहकारी समितियों की स्थापना की जाए। जनजातियों को उनके पुश्तैनी उद्योग धंधों को बढ़ाने में मदद की जाए। नए उद्योगों का उचित प्रशिक्षण दिया जाए। घरेलू उद्योगों की स्थापना के लिए आर्थिक सहायता दी जाए। सहकारी संस्थाएं अधिकाधिक संख्या में खोली जाए। जिससे वैयक्तिक ऋणदायी संस्थाएं उनका शोषण न कर सके।

संदर्भ :-

(i) योजना –

1. मार्च 2001 – भारत में जनजातीय विकास के पांच दशक – सुरेन्द्र परिहार, अशोक प्रधान, पृ.क्र. 3
2. मार्च 2002 – आदिवासी विकास के प्रयास – जुएल ओराम, पृ.क्र. 5
3. दिसम्बर 2008 – जनजातियों के मानवाधिकार – कन्हैया त्रिपाठी, पृ.क्र. 54
4. अप्रैल 2011 – आदिवासियों की उपेक्षा और अधिकार – एन.सी. सक्सेना, पृ.क्र. 9
5. जनवरी 2014 –

(ii) संवैधानिक प्रावधान कानून और जनजातियॉ – वर्जीनियस खाखा, पृ.क्र. 7

(iii) नवउदारवाद के दौर में जनजातियॉ – रहीस सिंह, पृ.क्र. 42

(iv) कुरूक्षेत्र –

1. अक्टूबर 2001 – आदिवासी संस्कृति और आधुनिक प्रौद्योगिकी – इरा झा, पृ.क्र. 44
2. सितम्बर 2008 – आदिवासी समाज – शिक्षा से वंचित है जो – कन्हैया त्रिपाठी, पृ.क्र. 15
3. दिसम्बर 2008 –

(v) जनजातियों का बहुआयामी स्वरूप – डॉ. जगबीर कौशिक, पृ.क्र. 16

(vi) विकास की राह पर जनजातीय समाज – भरत कुमार दुबे, पृ.क्र. 20

(vii) जनजातियों का विकास और सरकारी प्रयास – डॉ. नीरज कुमार गौतम, पृ. क्र. 34

4. नवम्बर 2010 –

(i) जनजातीय विकास की चुनौतियॉ – डॉ. सुखपाल श्रीवास्तव, पृ.क्र. 4

(ii) भारत में जनजातीय विकास का स्वरूप – डॉ. गजेन्द्र कुमार रावत, पृ.क्र. 8

मो. नं. 9584895167, Email : - kashyapmanju6@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 481-484
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बिनु पानी सब सून.....

-सौम्या. पी

शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, सरकारी महिला महाविद्यालय तिरुवनंतपुरम, केरल।

हमारे चारों ओर जो भौतिक जगत दिखाई देता है उसे हम पर्यावरण कहते हैं। पानी, धरती, हवा, वन, जीव–जंतु, पक्षी आदि प्रकृति से या पर्यावरण से जुड़ी हुई है। आज स्वार्थी मानव अपनी सुख सुविधा के लिए प्रकृति का शोषण करते रहते हैं। इसके कारण पर्यावरण दिन–प्रतिदिन दूषित हो जाते हैं। प्रदूषण का अर्थ है वातावरण या वायुमंडल का दूषित होना। यह समस्या आज सारे लोगों के सामने विषैला रूप धारण करती जा रही है। इस प्रकार प्रकृति का वरदान किये हुए शुद्ध जल, शुद्ध वायु, हरी भरी धरती, शुद्ध पर्यावरण आदि को हम ने नष्ट कर दिया है। प्रदूषण मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं– वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण और भूमि प्रदूषण।

जल प्रदूषण आज की सबसे बड़ी समस्या बन गयी है। कारखानों से फेंके जाने वाले कूड़ा–कचरा और विषैला जल पानी को बरबाद करता है। जलाशयों में कपड़े धोने, मल–मूत्र त्यागने, जानवरों को नहलाने, राख बहाने आदि से जल दूषित हो जाता है जिससे हैजा, पेचिश एवं पेट की बीमारियाँ फैलती हैं। पृथ्वी के दो–तिहाई भाग में जल है लेकिन केवल एक प्रतिशत जल का प्रयोग हम पीने के पानी, सिंचाई, औद्योगिक ज़रूरतों और रोज़मर्या की आवश्यकताओं के लिए करते हैं। पहले छोटे–बड़े जलाशयों, पोखरों, तालाबों, झील, कुएँ आदि में वर्षा का जल गिरता है तो धीरे–धीरे भू–जल का स्तर भी ऊपर आता है। लेकिन समय के साथ हमने इन प्राकृतिक स्रोतों को नकार दिया कई तालाब, पोखर और झीलें सूख गई और जल की आवश्यकताओं के लिए हमने हैंडपंप, ट्यूबवेल, नलकूप जैसे कृत्रिम तरीकों को स्वीकार किया। एक तरफ हम जल संरक्षण के बारे में कहते हैं और दूसरी तरफ तालाब और झीलों के संरक्षण के बजाय उन पर कांक्रीट के सौध बनाते जा रहे हैं।

पहले पहल प्रकृति सौन्दर्य का यथार्थ चित्रण 'मैथिलीशरण गुप्त' जी ने'पंचवटी' नामक कविता द्वारा स्पष्ट किया है। प्रकृति या पर्यावरण क्या होना चाहिए? कैसे होने चाहिए? इसका जवाब उनकी कविता कि इन पंक्तियों में व्यक्त है –

"चारु चंद्र की चंचल किरणें
खेल रही है जल–थल में
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है,
अवनि और अंबर तल में
पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों कि नोकों से,

माने झूम रहे हैं तरु भी
मंद पवन के झोकों से"।[1]

कवि मैथिलीशरण गुप्त जी इन पंक्तियों में प्रकृति सौन्दर्य की सच्चाई पाठकों के सामने लाते है। रात की मनोहारिता, चांदनी रात की रोशनी, स्वच्छ पानी और जल संपत्ति, धरती की संतुलन अवस्था, हरियाली का वर्णन, हवा की ऊष्मलता आदि उचित शब्द–चित्रों द्वारा कवि ने पाठकों को प्रकृति या पर्यावरण की ओर आकर्षित किया है।

लेकिन आज पर्यावरण की स्थिति ऐसी नहीं है। इस पारिस्थितिक अवबोध के कारण आज के कवि बहुत चिंतित है। आज पर्यावरण के विभिन्न अंगों को केंद्र में रखकर साहित्यकार अपने मन के विचार प्रस्तुत करते हैं। मनुष्य अपनी सुख सुविधा केलिए पर्यावरण का शोषण कर रहा है उसमें प्रमुख अंग है जल। जल ही जीवन है। पानी के बिना हम जी नहीं सकते। जलाशय और जलसंपत्ति के प्रति वर्तमान कवि अपनी आकुलता और आशंका प्रकट करते हैं। समकालीन हिन्दी कवि 'ज्ञानेन्द्रपति' के काव्यसंग्रह 'गंगातट' की एक चर्चित कविता है 'नदी और साबुन'। कवि नदी से पूछता है :–

"नदी! तू इतनी दुबली क्यों है
और मैली–कुचौली मरी हुई इच्छाओं की तरह
मछलियाँ क्यों उतराई है तुम्हारे दुर्दिन के
दुर्जल में ....."।[2]

मानव के अनियंत्रित हस्ताक्षेप के कारण नदी शोषित या नदियों में जल कम हो गया। कारखानों से निकलते विषैले रासायनिक पदार्थ, कूड़ा–कचरा और महानगरों का समस्त दूषित चीज़ें नदियों में छोड़ा जाता है, इसके कारण पानी की निर्मलता नष्ट हो गयी है। औद्योगीकरण, शहरीकरण, बाज़ारीकरण के फलस्वरूप जल का शोषण हो रहा है। मानवीय हस्ताक्षेप के बारे में कवी यह कहना चाहता है–

"आह! लेकिन स्वार्थी कारखानों का तेजाबी
पेशाब झेलते
बैंगनी हो गई तुम्हारी शुभ्र त्वचा
हिमालय के होते भी तुम्हारे सिरहाने
हथेली भर की एक साबुन की टिकिया से
हार गई तुम युद्ध"।[3]

कवि की राय में मानव की स्वार्थता ने हमारी नदियों की पवित्रता नष्ट कर दी। कारखानों के विषैले रासायनिक पदार्थों के कारण नदी की शुभ्र त्वचा बैंगनी रंग का हो गया है। पशु–पक्षियों की प्राकृतिक क्रिया कलापों या जल क्रीड़ाओं से जल दूषित नहीं होता लेकिन औद्योगिक पूँजीवाद की बिटिया साबुन की टिकिया के सामने हिमालय पुत्री नदी अपनी हार मानती है।

वर्त्तमान समाज के मानव जलस्त्रोतों को संरक्षित करने के बिना उन्हें शोषण करके मृतःप्राय बनाते हैं। सभी लोग गंदगी फेंकने का माध्यम के रूप में जलाशयों को बनाए रखते हैं। आज हम अपनी जलसंपत्ति को दिन–प्रतिदिन प्रदूषित करते जा रहे हैं। बढ़ती जनसंख्या के साथ–साथ दैनिक आवश्यकतायें दिनों–दिन बढने

के कारण आनेवाली पीढी की सबसे बडी चुनौती जल दुर्लभता है। समकालीन हिन्दी कवि एकांत श्रीवास्तव के काव्यसंग्रह 'बीज से फूल तक' की एक प्रसिद्ध कविता है 'ठंडे पानी की मशीन'। इस कविता में पीने के पानी की समस्या के बारे में कवी चिंतित है। दिल्ली के एक चौराहे पर ठंडा पानी बेचने वाले आदमी को देखकर कवि बेचौन हो गये। कवि की यह बेचैनी हमारे भविष्य की ओर संकेत करते हैं। भविष्य में पानी के लिए बहुत कीमत देना पड़ेगा। यह कविता तत्कालीन और भविष्य की ज्वलंत समस्या पर संकेत करती है। कवि कहते हैं –

"जो आकाश से बरसता है बेमोल
जो नदियों में बहता है खुले आम
तो अब यह पानी भी बिकाऊ हो गया
बाजार में ....." ।[4]

आकाश से बेमोल बरसने वाला पानी, नदियों में बहने वाला पानी अब बाज़ार में बेचने की चीज़ बन गयी है। शुद्ध जल की दुर्लभता की ओर संकेत करके कवि आगे कहते हैं –

"कितने जन ठिठकते हैं इसके सामने
जेबें टटोलते हैं और आगे बढ जाते हैं
माँ–बाप अपने बच्चों को घसीटते ले जाते हैं
कि चलो, घर चलकर पीना
खुद अपने सूखे पपड़ाए होठों पर
जीफ फेरते हुए।"[5]

स्वच्छ पानी की दुर्लभता के कारण ठंडा पानी बेचने वालों के पास लोग रुक जाते हैं। एक गिलास ठंडे पानी की कीमत पचास पैसे हैं। पैसे की कमी या अभाव के कारण लोग जेब टटोलने के बाद आगे बढ़ जाते हैं। पानी के लिए ज़िद करते बच्चों से माँ–बाप 'चलो घर चलकर पियें' कह कर अपने सूखे पपड़ाए होठों पर जीभ फेरते हुए घसीटकर ले जाते हैं। शायद कल की सबसे बड़ी चुनौती जल संकट है। इसकी ओर इशारे करके कवि कहते हैं :–

"अब तक हम अपनी भूख से लड़ते थे
अब हमें अपनी प्यास से भी लड़ना होगा" ।[6]

अगर जल नहीं रहेगा तो हमारा अस्तित्व ही न रहेगा। यह सच्चाई न समझकर हम हमेशा पानी का दुरुपयोग करते हैं। नदी के प्राण नष्ट होने का वजह यह है– सूखे। नदियों में मिट्टी भर जाने से, पानी को छीन लेने से, जल को गंदा करने से, रेत चुराने से पानी कम होता ही रहेगा।

आज बड़े–बड़े महानगरों की सबसे भीषण समस्या है 'पेयजल की समस्या'। महाराष्ट्रा के गाँव में पीने का पानी रेलगाड़ी से पहूँचाते हैं। पानी की कमी के कारण यहाँ के लोग पानी चुराते हैं। यह इनका प्रमाण है की, जल के लिए विश्वयुद्ध सुदूर नहीं है।

केरल की बात तो लीजिए। यहाँ ४४ नदियाँ है लेकिन वर्षकाल समाप्त होने के बाद लोग पानी के लिए दौड़ा–दौड़ी आरंभ करते हैं। सन २०१६ अप्रैल २७ दैनिकी में एक खबर छपा था, "वयनाडू जिले के बाणा सुरसागर बाँध के सूखे तल पर मेंढक सूखेपन के कारण गले फाड़कर तड़पकर मर रहे हैं। यह खबर हमें सोचने

के लिए विवश करते हैं और पूरे मानव समाज के लिए एक चेतावनी है। एक तरफ से हम सब मानव 'Boiling Frog' है। जब जीवित मेढकों को गरम पानी में पकाने के लिए डालते है, तब पहले उन्हें गरम पानी का सुकून अनुभव होता है। लेकिन कुछ समय बाद उसी गरम पानी में तड़पकर वे मर जाते हैं। हमारा हाल भी इससे भिन्न नहीं हैं"।[7] मानव भूमंडलीकृत सभ्यता के पीछे भागकर इन मेंढ़कों की तरह क्षणिक खुशियों से अपने आपको भूल जाते हैं। उन्हें भी यह पारिस्थितिक शोषण, उपभोक्तावादी सभ्यता, प्रदूषण और बदलती जीवन शैली मानव को सुख का एहसास दिला रहा है। मगर इस नई सभ्यता का फल ज़रूर ही सर्वनाश होगा।

'ग्लोबल वामिंग' की विपत्ति हम सब बाँटकर लेना होगा। इन सबसे बचने के लिए वृक्षों या जंगलों का पालन पोषण करना ज़रूरी है। आज केवल छः महीने के अंतर महल जैसे मकान बनाते हैं लेकिन आक्सीजन देने वाले पेड़ पैदा करना नहीं चाहते है। इसलिए धरती की रक्षा करने के लिए शहरवाले को 'Green Belt' का आह्वान करना चाहिए। Cancer Super speciality अस्पताल नहीं Green belt प्रदेश ही यथार्थ प्रगति की सूचना देती है।

प्राचीनकाल के प्रसिद्ध कवि रहीम का दोहा इस प्रकार है।

"रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून।"[8]

रहीम कहते हैं : पानी के बिना सब शून्य है और पानी सबसे अमूल्य निधि है। पानी समाप्त हो गया तो मोती, और मनुष्य को कोई महत्व नहीं है। इसकी प्रासंगिकता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

आजकल की जल–दुर्लभता की ओर संकेत करते प्रश्नाधिष्ठित पोस्टर भी आने वाले कल की ओर चिंतित है।

दादा ने नदी में देखा
पिता ने कुए में
बेटा ने नल में
पता नहीं ..... पोता
देखेगा इसे कहाँ?

सन्दर्भ :-

1. पंचवटी– मैथिली शरण गुप्त।
2. गंगातट– ज्ञानेंद्रपति।
3. वही।
4. बीज से फूल तक – एकांत श्रीवास्तव।
5. वही।
6. वही।
7. मातृभूमि दैनिकी।
8. दोहा – रहीम।

MOB: 8281019674, soumyaaramthanam@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 485-488

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विवेकी राय के निबंधों में शिक्षा का बदलता स्वरूप

-डॉ. दिव्या वी.एल.

अतिथि प्राध्यापिका, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय।

विवेकी राय हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध और प्रतिष्ठित कलाकार हैं। उनका साहित्यिक जगत में प्रवेश होते ही समीक्षकों की भीड़ उमड़ पड़ी। किसी ने उछाला, किसी ने दबाया। साहित्यिक गंदगी एवं गुटबंदी को देखते हुए वे गाँव की ओर दौड पडे और मौन तपस्या करने लगे। वे गाज़ीपुर और बलिया के अंचलों की मिट्टी तथा धूप का फाँकते हूए किताबों की लड़ी लगाते रहे। विवेकी राय की पहली प्रकाशित पुस्तक 'अर्गला' (1951) एक कविता–संग्रह है। परिस्थितिवश कविता के बीच से उपजता हुआ गद्य लेखक आगे बढते हुए हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा करता रहा है। साहित्यिक तपस्या की अर्धशती को पार करने वाले विवेकी जी ने विविध विधाओं में कलम चलाई है। कविता, उपन्यास, कहानी, निबंध, ललित–निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, समीक्षा आदि विधाओं में अथक कलम चलने के साथ पत्रकार और अध्यापक रहे विवेकी जी का अनुभव–जगत अभिव्यक्ति पाकर हिन्दी साहित्य में साकार हो उठा है। भोजपुरी के प्रति विपोष प्रेम होने के कारण उस भाषा में भी उन्होंने कई किताबों का सृजन किया है। गाँव उनका आत्मीय रहा है। अतः उन्होंने गाँव की गलियों में घूमते हुए विषयों को उठाकर एक से बढकर एक साहित्यिक कृतियों की निर्मिति की है।

विवेकी राय के जीवन–परिचय, शिक्षा, नौकरी, सेवा–कार्य, पुरस्कार, सम्मान एवं व्यक्तित्व के अन्तर्बाह्य पक्ष के साथ अनुभव जगत् को देखते हुए लगता हैं कि उन्होंने जो देखा और भोगा, उसी को साहित्य में रेखांकित किया है। वे सच्चे अर्थों में द्रष्टा, साक्षी, भोक्ता और रुष्टा हैं। बहुमुखी प्रतिभा संपन्न विवेकी राय का अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व एक ही पटरी पर यात्रा करता है।

विवेकी राय के निबंधों का मुख्य विषय गाँवों की समस्याओं को लेकर उठा है और वह राष्ट्रीय समस्या को उजागर करता है। गाँव के कुशल चित्रण करने वाले विवेकी जी ने विविध विषयों पर गहरे चिंतन के साथ विचार प्रकट किए हैं। यह प्रकटीकरण सहज, सुलभ और स्वाभाविक है। लोक–संस्कृति, परिवेश–बोध, आधुनिकता –बोध, विचार–प्रधानता, ग्रामांचलिक भाषा, संप्रेषण–कौशल्य और शिल्प की कुशल कड़ियों से निबंधों की लड़ियों तेजोमय हो गई हैं। हिन्दी साहित्य में विधा और शिल्प के परे जाकर लिखने वाले लेखक का नाम 'विवेकी' है। भाव, भाषा, शैली, विचार, चिन्तन और शिल्प की दृष्टि से विवेकी राय का पूरा सृजनकार्य हिन्दी साहित्य के लिए उपलब्धि बन चुका है।

विवेकी जी का संपूर्ण जीवन शैक्षणिक क्षेत्र से जुड़ा रहा है। आजकल शौक्षणिक संस्थाएँ व्यावसायिक केंद्र हो गयी हैं। इतना ही नहीं, ये संस्थाएं शोषण केन्द्र, जातीय वादी और राजनैतिक दलों का केन्द्र हो गयी हैं। जब विवेकी जी ने विमल बाबू के 'शिक्षा सुधार सभा' के अधिवेशन में आवेशपूर्ण भाषा सुना कि 'इन शिक्षा की

दूकानों में आग लगा दो', तब क्षोताओं के साथ निबंधकार भी प्रभावित हुए हैं। उन्होंने लिखा है, ''मुझे उन लोगों पर बडी श्रद्धा होती है, जो शिक्षा–सुधार में दिलचस्पी प्रकट करते हैं, क्योंकि अपनी दृष्टि में देश की प्रमुख समस्या अगर कोई है, तो यही है। यही कारण था कि विमल बाबू से मिलने की आतुरता प्रबल होती गयी।''[1]

गाँव को अपने दिलो–दिमाग में बसाने वाले विवेकी जी वहाँ की अव्यवस्था से उद्वेलित होकर मौन आक्रोश प्रकट करते हैं। यह आक्रोश प्रकट करने का उनका एकमात्र साधन साहित्य रहा है। उनके साहित्य के प्रमुख तीन आयाम रहे हैं – ग्रामजीवन, संस्कृति और शिक्षा। ग्रामीण जीवन अभावों से ग्रस्त और आर्थिक विपन्नता के बीच में फँसा है। दूसरी बात हमारी परंपराएँ, संस्कृति, आदर्श, रीति–रिवाज़ आदि में भारत और भारत का पूरा इतिहास मौजूद है। अब यह इतिहास और संस्कृति पतनोन्मुख हो गई है। तीसरी बात देश के संपूर्ण विकास का प्रमुख राजमार्ग शिक्षा को माना जा सकता है। लेकिन अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली पर आधारित हमारी शिक्षा देश को अंधकार की ओर बढाने लगी है। विवेकी राय जैसी दूर दृष्टि रखनेवाला लेखक और प्राथमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक यात्रा करने वाला अध्यापक कैसे चुप बैठ सकता है। पतन की ओर उन्मुख शिक्षा को देखकर उनके मन–मस्तिष्क में विचारों का बवंडर उठता है और साहित्य के माध्यम से प्रकट होता है। शिक्षा–व्यवस्था की बार–बार आलोचना करती विवेकी जी की कलम सृजन–यज्ञ में निरंतर योगदान दे रही है। उनकी सृजन–यात्रा की अर्धशती पूरी हो चुकी है। प्रारंभिक लेखन में उनका स्वर शिक्षा में 'आमूल' परिवर्तन का रहा है। अपनी आधी यात्रा तक 'आमूल' परिवर्तन का राग अलापने वाले विवेकी जी अब समझ चुके हैं कि राष्ट्र निर्माण के लिए शिक्षा में अब 'आमूल' नहीं तो 'समूल' परिवर्तन की आवश्यकता है।

वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था की दुर्गति देखकर विवेकी जी का दुःखी होना स्वाभाविक है। उन्हें इस बार पर बडा दुख है कि आज मनुष्य इतने विरोधाभासों, विसंगतियों, विडंबनाओं, विद्रूपताओं के बीच जीने के लिए विवश हैं। आजकल की शिक्षा–व्यवस्था की दयनीयता पर प्रकाफा डालते हुए विवेकी जी ने अपने निबंध में लिखा है –''संसार के सबसे बड़े लोकतंत्री मुल्क में शिक्षा–व्यवस्था पर आठ–आठ आँसू बहाने वाले और उसके लिए ऊँची–ऊँची इन्द्रधनुषी योजनाओं को कल्पने वाले बड़े–बड़े अधिकारी, मंत्री और प्रधानमन्त्री के उत्तर प्रदेश में साढे बारह हज़ार प्राईमरी स्कूल ऐसे हैं, जहाँ के छात्र पेड तले या मैदानों में पढते हैं, ऐसे समाचारों पर भी अब कहाँ आश्चर्य होता है।''[2]

देश के महान शिक्षा शास्त्री, समाज शास्त्री, साहित्यिक एवं विभिन्न विद्वान–आलोचक समय–समय पर सरकारी नीतियों की आलोचना करते रहे हैं। लेकिन विडंबना यह है कि सरकारी नीतियों को कार्यान्वित करने वाले नेता लोग अशिक्षित, अनपढ और गंवार हैं। वे अच्छा–बुरा समझ पाने में असमर्थ हैं। असल में दोष उनका नहीं हमारा ही है। विवेकी जी के निबंधों में वर्णित फिक्षा–व्यवस्था की आलोचना का मुख्य आधार यही राजनैतिक व्यवस्था और सरकारी नीतियाँ रही हैं।

बीच–बीच में उच्च शिक्षा खासतौर पर विश्वविद्यालयी शिक्षा का विचार और चिंतन के साथ प्रकटीकरण भी हुआ है। विवेकी जी गाँधीवादी रहै हैं। उनका यह गाँधीवाद मात्र अंधानुकरण नहीं है। सोच–विचार के पश्चात् इस मार्ग का अनुसरण किया गया है। गाँधी जी ने बेसिक फिक्षा की हिमायत की है। विवेकी जी भी इस प्रकार की शिक्षा–व्यवस्था चाहते हैं।

दूसरी बात है बेसिक शिक्षा, जिसकी गाँधी जी ने कल्पना की थी। बुनियादी या बेसिक शिक्षा वह है, जो

सामान्य से सामान्य आदमी को रोज़गार उपलब्ध करा देती है। आज देश के सामने दो बड़ी समस्याएँ बेकारी और नगरोन्मुखता का निराकरण यही बुनियादी शिक्षा है। गाँव और शहर का परिवेश भिन्न होता है। अतः उन दोनों के लिए अलग–अलग शिक्षा–पद्धति चाहिए ताकि गाँव के लोग गाँव में रहें और शहर के लोग शहर में। स्त्रियों के लिए भी अलग शिक्षा का निर्माण होना चाहिए, जिसमें उन्हें जीवन, लघु उद्योग और विभिन्न कलाओं की शिक्षा दी जा सके। मतलब गाँव–शहर, स्त्री–पुरुष आदि के अनुरूप विभिन्न केन्द्र स्थलों पर आधारित शिक्षा राष्ट्रीय स्तर से वितरित होने की ज़रूरत है। शहर और ग्राम के लिए एक ही शिक्षा पद्धति, विवेकी जी के आलोचना का विषय बनी है।

वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था के गिरते स्तर को देखकर विवेकी जी अपनी चिंता प्रकट करते हैं। क्योंकि माध्यमिक विद्यालय में आने वाले छात्रों को भी वर्णमाला, मात्र, गिनती आदि की शिक्षा देनी पड़ती है। शिक्षा का यह गिरता स्तर स्नातक और स्नातकोत्तर छात्रों में भी परिलक्षित होता। इंटर्व्यू के मौकों पर जिम्मेदार पदों के प्रत्याशी और मोटी–मोटी डिग्रियों के धारक जैसा उत्तर देते हैं, उससे तो शर्म भी शर्मिंदा हो जाती है। इस तरह की गंभीर स्थित से निड्डफ्चत हमारे नियामक बस दो और तीन की पहेलियों में उलझे हैं। 'यहां जो पूरा ढाँचा सडकर पूर्णतः नष्ट हो गया है और उत्तरोत्तर विषाक्त हो रहा है, आखिर इसकी दवा क्या है।[3]

विवेकी जी के मतानुसार वर्तमान शिक्षा शारीरिक और मानसिक विकास की शिक्षा देने के लिए असमर्थ है। बच्चे सिर्फ परीक्षा को लक्ष्य बनाकर पढ़ाई करते हैं। इस पढ़ाई में उनके मन और बुद्धि भी कुंठित बन चुकी है। परीक्षा–पद्धति का पतन, नकलबाजी, पर्चे जाँचना और परीक्षा का धंधा बन जाना इसकी असफलता को दिखाता है। विवेकी जी की दृष्टि में इस चहूँमुखी धांधली से हमें उबारने का अकेला मार्ग शिक्षा में समूल परिवर्तन है।

कुल मिलाकर, विवेकी जी के निबंधों में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के सभी आयामों का विस्तृत वर्णन आया है, लेकिन उच्च शिक्षा का नहीं। शिक्षा–स्तर, प्रशासन, व्यवस्थापन, शिक्षा–साधन, परीक्षा–पद्धति, नारी–शिक्षा और वर्तमान शिक्षा में गाँवों का स्थान आदि का विस्तृत विवेचन विवेकीजी के निबंधों में हुआ है।

विवेकी जी एक सफल छात्र प्रिय अध्यापक रहे हैं। अतः उन्होंने शिक्षा–व्यवस्था की विसंगतियों एवं अध्यापकों की दशा को नज़दीक से देखा, परखा और अनुभव किया है। उनके निबंधों के मनबोध शिक्षा व्यवस्था की धांधली को दिखाने में सक्षम रहे हैं, साथ ही, वे संपूर्ण अध्यापक वर्ग का प्रतिनिधि पात्र भी बन गए हैं। उनके निबंधों में वर्णित बहुत सारे अध्यापक पात्र खूद विवेकी जी रहे हैं। नाम बदलकर नई पृष्ठभूमि और नई समस्याओं को उजागर करने की ताकत विवेकी जी के अध्यापकीय और लेखकीय व्यक्तित्व की विशेषता है।

मनुष्य दो प्रकार की शिक्षा लेता है – एक औपचारिक जो उसे शिक्षालयों में दी जाती है और दूसरी अनौपचारिक जो बचपन से अंत तक लेता है। एक सीमित और दूसरी व्यापक है परन्तु दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, विवेकीजी इसी उद्देश्य को लक्ष्य मानकर संपूर्ण भारतीय शिक्षा–व्यवस्था की तटस्थ समीक्षा करते हैं। प्रथमतः इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि विवेकी जी किसान, अध्यापक और लेखक रहे हैं, कोई महान् शिक्षा शास्त्री नहीं कि जो कमियों और खूबियों का शास्त्रीय विवेचन करें।

विवेकी जी टूटते–बिखरते गाँव और गाँवों में बसे भारत को देखकर तिलमिला उठते हैं। भारतीय शिक्षा की तमाम विसंगतियाँ, सरकारी नीतियों का खोखलापन, शोषण, अन्याय, आत्याचार, गरीबी, बेकारी, नगरोन्मुखता,

भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता एवं भाषा–समस्या आदि विवेकी जी के निबंधों में शिक्षा संबंधी समस्यायें बन कर आयी हैं। विज्ञान के अति आकर्षण से वर्तमान शिक्षा कृषि से विमुख हो रही है। अतः एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है, जिसमें कृषि भी हो, विज्ञान भी हो और अपनी संस्कृति भी वास करती हो। निष्पक्ष भाव तथा गंभीरता से प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक का चिंतन करें, तो पाश्चात्य विज्ञान युग से होड़ करती हमारी शिक्षा अपनी संस्कृति, भाषा और कृषि को खो रही है।

विवेकी जी ग्रामीण शिक्षा और गाँव की टूटती–बिखरती व्यवस्था पर कलम घिसते रहे हैं। भारतीय गाँव – गाँव में बसा भारत या गाँवों का भारत विवेकी जी के निबंधों में वर्णित 'गाँव' का प्रतीक बन अपनी वेदना प्रकट करता है। अर्थात् विवेकी जी के निबंधों में आदि से अंत तक गाँव, संस्कृति और शिक्षा की समस्याएँ तथा उसके हालात संपूर्ण भारत का प्रतिनिधि बनकर पूरे आक्रोश के साथ प्रकट हुए हैं।

संदर्भ :-

1. मनबोध मास्टर की डायरी, विवेकी राय, पृ0 3
2. जगत तपोवन सो कियो, विवेकी राय. पृ0 11
3. आस्था और चिंतन, विवेकी राय, पृ0 162

क्षेत्रीय कैंपस – पन्मना, कोल्लम, केरल

मोब.न. 9447661651

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 489-493
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'अन्या से अनन्या' में चित्रित स्त्री जीवन का यथार्थ

-डॉ. निशा मुरलीधरन
असिस्टेंट प्रोफेसर, एस. आर. एम्. वडपलणी, चेन्नई।

"मैं क्या लगती थी डॉ. साहेब की? मैं क्यों ऐसे उनके साथ चली आई? प्रियतमा, मिस्ट्रेस, शायद आधी पत्नी, पूरी पत्नी तो मैं कभी नहीं बन सकती....।"[1]

डॉ. प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में कई जगह इस सोच का उल्लेख किया है। प्रसिद्ध लेखिका और एक सफल उद्योगपति डॉ. प्रभा खेतान की ज़िंदगी इस सवाल का उत्तर ढूँढते–ढूँढते ही अस्त हो गई। वह डॉ. सर्राफ़ की कौन थी? इस प्रश्न का उत्तर उन्हें कभी नहीं मिला।

डॉ. प्रभा खेतान एक मारवाड़ी परिवार में जन्म लेकर मर्द प्रधान समाज में अपनी प्रशस्ती और नाम को स्थापित कर देती है। उद्योग के क्षेत्र में अत्यंत सफल और लेखन के क्षेत्र में अत्यधिक प्रसिद्ध होने पर भी उनका पारिवारिक जीवन असफल ही ठहरा। इसकी पूरी ज़िम्मेदारी लेखिका अपने आप पर भी डालती है। यह रिश्ता उनकी ज़िंदगी की सबसे बड़ी भूल थी जिसे वह जीवन भर अपने कन्धों पर उठाकर चलती रही। इस बोझ को वह चाहकर भी नीचे उतार नहीं पा रही थी।

अपनी आत्मकथा "अन्या से अनन्या" को रोचक बनाने के लिए लेखिका ने उसे औपन्यासिक शैली में लिखा है। आत्मकथा की शुरुआत लेखिका का जन्म या बचपन से नहीं बल्कि अमेरिका के जैक्सन लाइट से प्रारम्भ करती है जहाँ वह डॉ. सराफ के तीव्र क्रोध का शिकार बनकर मुसीबत में फँस जाती है। आत्मकथा के बीच–बीच में वह अपने अकेलेपन में बिताई गई बचपन के बारे में बताती है।

समाज में :–

"नारी की पहचान, न होती है उसके जन्म से।
या न होती है उसे जन्म देनेवाली माँ से।।
उसकी पहचान होती है, उसके पिता, पति और बेटे के नामों से।
ज़िंदगी भर अपनी पहचान किसी न किसी मर्द से जोड़ती रहती वह
और अंत में अपने शरीर के संग अपनी पहचान को भी खो देती है आग मे।।"

इस आत्मकथा की नारी के साथ भी कुछ ऐसे ही हुआ था। उन्होंने इस समाज में अपने–आप के लिए एक पहचान बनाने के लिए अत्यंत प्रयास किया और करके भी दिखाया। फिर भी उनको अपनी ज़िंदगी में कई जगह एक सूनापन और तिरस्कार का एहसास हुआ था क्योंकि उनके नाम के पीछे किसी मर्द का नाम जुदा हुआ नहीं था। वह ना किसी की पत्नी थी, या ना किसी की विधवा, या ना एक कुवाँरी।

एक अत्यधिक सफल महिला उद्योगपति, एक पढी–लिखी, खुद कमाने वाली, स्वावलंबी, आत्मनिर्भर,

संघर्षशील महिला होने पर भी समाज में और परिवार में लेखिका का स्थान क्या था? ज़िंदगी भर उस प्रश्न का उत्तर रोशनी का मुखौटा पहनी हुई सीधी नारी ढूँढ न पाई।

समाज में पहचान :-

प्रभा जी के मन में बार-बार यह प्रश्न उठता था कि समाज के सामने डॉ. सर्राफ की वह कौन है। समाज उसे डॉक्टर साहेब की 'क्या' मानता है।

आत्मकथा में कई जगह लेखिका ने इस सोच का उल्लेख किया है-" मैं क्या लगती थी डॉ. साहेब की? मैं क्यों ऐसे उनके साथ चली आई? प्रियतमा, मिस्ट्रेस, शायद आधी पत्नी, पूरी पत्नी तो मैं कभी नहीं बन सकती .....।" (पृ. सं ११) समाज में लेखिका और डॉक्टर साहेब के रिश्ते को क्या नाम दिया गया था। इस बात को लेकर लेखिका बहुत परेशान थी। वह अपने आप को डॉक्टर साहेब की रखैल भी नहीं कह पा रही थी क्योंकि रखैल वहीं है जिसे रखा जाता है, जिसका भरण-पोषण पुरुष करता है। लेकिन यहाँ तो बात अलग थी। डॉक्टर साहेब लेखिका का भरण पोषण नहीं करते थे, उनसे प्रभा जी ने कभी कोई आर्थिक सहायता नहीं ली थीं।

नारी का मान-अपमान :-

प्रतिष्ठित खेतान परिवार में जन्मी प्रभा खेतान एक पढ़ी-लिखी, खुद कमाने वाली, स्वावलंबी महिला थी। उनके सामने तो समाज के लोग उन्हें आदर करते थे। लेकिन पीछे-पीछे उनकी निजी ज़िंदगी का मज़ाक उड़ाते थे।

लेखिका का कहना है कि हमारे भारतीय समाज में लोग नारी का आदर तभी करते हैं जब उनके पीछे एक पति का नाम जुड़ा हुआ होता है। चाहे नारी सधवा हो या विधवा समाज में उसकी पहचान उसके पति के नाम से ही होती है।

भारत वासी जहाँ भी रहता है, नारी के प्रति उसका दृष्टिकोण कभी नहीं बदलता। जब प्रभा जी डॉक्टर साहेब के साथ उनका इलाज करवाने के लिए अमेरिका गई थी तब लोगों के मन में डॉक्टर साहेब के प्रति सहानुभूति से ज्यादा इस विषय की चिंता थी कि यंके साथ आई हुई महिला (प्रभा खेतान) कौन थी और डॉक्टर साहेब और उनके बीच में क्या रिश्ता था? इसका एक उदाहरण लेखिका मिसेज़ केडिया के रूप में दिखलाती है। मिसेज़ केडिया ने मज़ाक उड़ाते हुए कुछ इस प्रकार कहा :-

"आप डॉ. सर्राफ़ की नर्स है?"

"आपकी शादी किससे हुई है?"

"हमने तो यहीं सुना था कि डॉक्टर सराफ बीमार है...उनकी देखभाल करने, आखिर दिल के मरीज़ है ना, पूरी देखरेख की ज़रुरत होगी।"

ऐसे दो अर्थवाले शब्दों को बोलना और फिर छिपकर हँसना ये सब प्रभा खेतान के लिए नया अनुभव नहीं था। ऐसे समय में वह कभी-कभी अपराध बोध से पिघल जाती थी और समाज के सामने अपने आप को एक पवित्र नारी स्थापित करने में वह हार जाती है। लोगों की क्रोध से भरी निगाहों और निन्दापूर्ण शब्दों से भरे होंठों के सामने वह सर नहीं उठा पा रही थी।

मारवाड़ी समाज और स्त्री :-

प्रभा जी मारवाड़ी समाज की थी। उन्होंने कई जगह अपने समाज के आदर्शों के खिलाफ आवाज़ उठाई

हैं। वे अपने मारवाड़ी समाज के नियमों से भी बहुत घृणा करती थी। उनके अनुसार उनके समाज की औरतें को न पढ़ाई, न नौकरी और न शादी की मामलों में फैसला लेने का अधिकार था। अपनी आत्मकथा में उन्होंने यह बताया है कि मारवाड़ी समाज के नज़रों में स्त्री एक आदर्श छवि है। उनके अनुसार कस्तूरबा, भगिनी निवेदिता जैसे सफ़ेद लिबास में स्त्री पवित्र होती है। प्रभा जी कहती है कि अविवाहिता नारियों को सामाजिक कार्यों में जुटी रहने से आदरणीय और पवित्र माना जाता है। यदि उक्त स्त्री के जीवन में कुछ गलत हो तो भी धर्म या समूह के लोग उस कलंक को दबा देते हैं। लेकिन लकीर से हटकर चलने वालों के प्रति ये लोग अत्यंत कठोर होते हैं। जैसे अगर अंतरजातीय विवाह होने से उनकी निंदा–चर्चा होती ही रहती है।

आँसू की मूर्ति नहीं हैं नारी :-

लेखिका अन्य औरतों की भाँति अपनी ज़िंदगी को रो–रोकर बिताना नहीं चाहती थी। समाज की आँखों में तो नारी सिर्फ रोने के लिए और जिम्मेदारियों को झेलने के लिए पैदा हुई एक वस्तु मात्र है। लेखिका अपनी अम्मा, भाभी, ताई, चाचियाँ आदि की तरह बनना नहीं चाहती जो सिर्फ अपनी अवस्था को रो–रोकर सहने के लिए पैदा हुई थीं। लेखिका आत्मकथा के माध्यम से अपने आक्रोश को इस प्रकार व्यक्त करती हैं – "क्या एक बूँद आँसू में स्त्री का सारा ब्रह्माण्ड समा जाए? क्यों? किसलिए? रोना और केवल रोना, आँसुओं का समंदर, आँसुओं का दरिया और तैरते रहे तुम।" (पृ. सं 45) औरत की नीयति को अगर बदलना है तो स्वयं औरत को ही उसके लिए प्रयत्न करना है। सिर्फ अशिक्षित या घरेलू औरतों की स्थिति ही नहीं बल्कि शिक्षित और काम–काजी औरतों की स्थिति भी ऐसी ही है। इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है –"यहाँ तक कि स्कूल की मेरी शिक्षिकाएँ, जिनकी ओर कभी मैंने बड़ी ललक से देखा था, जो मेरे जीवन में प्रेरणा श्रोत रही थी, वे भी तो आँसुओं से इसी समंदर को भरे चले जा रही थीं। मन्नू भंडारी जिन्होंने मुझे चौथी से ग्यारहवीं तक पढ़ाया साहित्य की दुनिया में जिनके क़दमों की छाप पर मैंने चलना चाहा वे भी कहाँ इन आँसुओं की नीयति से मुक्त हो पा रही थी?" (पृ.सं. ४५)

शिक्षित नारी की अवस्था भी अनपढ़ नारियों से बदत्तर है। कामकाजी औरत को दोनों जगह घर और बाहर से यात्नाएँ सहनी पड़ती है। लेखिका अपनी आत्मकथा में पाश्चात्य देशों में नारी की स्थिति के बारे में भी अपनी आत्मकथा में दर्शाई है।

पाश्चात्य देशों में नारी की स्थिति :-

अमेरिका की औरतों का रहन–सहन, पारिवारिक परिस्थितियों को देखकर प्रभा जी इस निष्कर्ष में आ पहुँची कि अमेरिका की औरतों की स्थिति भी हमारे देश की स्त्रियों की तरह ही थी। पैंट पहुँचकर मैकअप करने से औरत सबल नहीं हो जाती है। उन्हें भी समाज में अपने हक़ के लिए लड़ना पड़ता है। दुनिया के जिस कोने में भी हो, नारी की स्थिति ऐसी ही है। हर समाज में पुरुष का जो स्थान है, सम्मान है, वह नारी को नहीं मिलता। इस विषय पर चर्चा करते समय एक बार आइलिन (अमेरिका की एक सहेली) कहती है– "देखो लड़की, तुम अभी नादाँ हो। बस इतना समझ लो कि पुरुष ने अपने स्वार्थ में धर्म, समाज और क़ानून को बनाया है। औरत ने तो बस अभी–अभी अपने अधिकारों के बारे में बोलना शुरू किया है।" (पृ. सं. १४१)

आइलिन के विचार से यह स्पष्ट होता है कि नारी चाहे पाश्चात्य देश की हो या पश्चिमी देश की हो, वह तो हमेशा मर्द के पीछे ही है। मर्द ने अपनी सुविधा के अनुसार ही धर्म, कानून, नियम आदि को बनाया है

और नारी तो अभी–अभी ही अपने विचारों को प्रकट करना शुरू किया है, जो कई स्थानों में स्वीकार्य भी नहीं है।

नारी की स्थिति सब जगह समान है। चाहे वह न्यूयॉर्क हो या कोलकत्ता। इसका और एक उदाहरण कैथी है। उनके शब्दों में– "प्रभा, औरत को अभी मनुष्य श्रेणी में नहीं गिनी जाती और तुम अमीर–गरीब का सवाल उठा रही हो? तुम मुझे राष्ट्र का भेद समझा रही हो, माई स्वीट हार्ट! हम सब औरतें, अर्धमानव है।" (पृ.सं. १५७)

नर–नारी एक समान जैसी बातें तो सिर्फ नारा बनाने के लिए और सुनने के लिए बनाए गए शब्द हैं। नारी को मनुष्य जाति में ही नहीं गिनी जाती तो फिर समानता की बात कहाँ से आ सकती है?

पुरूष प्रधान समाज में तड़पती नारी :-

निर्यात व्यापार में एक नारी होकर सफल बनना कोई साधारण–सी बात नहीं है। प्रभा खेतान को व्यापार के क्षेत्र में अपना नाम स्थापित करने के लिए अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ा। इतनी सफलता प्राप्त करने पर भी वह इस पुरुष प्रधान समाज में "केवल एक औरत" की उपाधि से उसे अनेक बार अपमानित किया गया। औरतेपन का हानिभाव, पुरुष की दुनिया में बार–बार अपना औचित्य स्थापित करना चाहता रहा है। "क्या मैं औरत हूँ, इसलिए यह काम नहीं करूँगी? करके दिखा दूँगी।" (पृ.सं. २२६) इस प्रकार का विचार प्रभा जी के मन में हमेशा आता रहा जिससे उनके अन्दर की भावों, मर्द वर्ग के प्रति उनकी घृणा, कुछ करके दिखाने की उनकी अभिलाषा आदि ने उन्हें सफलता के शिखर पर ले गई।

नारी की कमाई पर मर्द का अधिकार :-

नारी सारी मुसीबतों को पारकर अपने परिश्रम से जब पढ़–लिखकर कमाने लग जाती है तो उसकी कमाई पर अधिकार जमाने के लिए मर्द प्रत्यक्ष हो जाता है। शादी के बाद तो उसकी कमाई का पूरा अधिकार उसके पति का होता है। उसने न तो अपनी पत्नी को पढ़ाया होगा या ना तो उसकी पढाई का खर्च उठाया होगा। लेकिन जब खर्च करने की बात आती है तो उसका पूरा अधिकार मानो उसी के हाथों में सौंपा गया है। डॉ. सरार्फ न लेखिका के पति थे यी भाई या पिता, फिर भी लेखिका के हर एक रूपये की कमाई पर डॉक्टर अपना अधिकार जमाना चाहते थे। लेखिका की अवस्था ऐसी थी कि वह अपने–आप के लिए बहुत कम करती थी। अपनी कमाई को वह डॉक्टर साहेब और उनके परिवारवालों के लिए इकट्ठा करती थी। वह उसे डॉक्टर साहेब की पत्नी से की हुई अपराध का प्रायश्चित मानकर चुप रहती थी।

यहीं नहीं अपनी कमाई का खर्च करने का अधिकार भी प्रभा जी को नहीं दिया गया था। आत्मकथा की शुरुआत में न्यूयॉर्क शहर में उनके और डॉक्टर साहेब के बीच की लड़ाई का कारण भी यहीं था। प्रभा जी को अपने बिज़नस के लिए एक महंगी हैंडबैग खरीदने की ज़रूरत पडी और डॉक्टर साहेब उसका मूल्य देखकर उसे खरीदने नहीं दिया। इस विषय को लेकर दोनों के बीच में लड़ाई हुई। डॉक्टर साहेब प्रभा जी को सड़क के बीच में छोड़कर चले गए।

वह 'रखैल' का साँचा तोड़ती है क्योंकि वह डॉ. सरार्फ पर आर्थिक रूप से आश्रित नहीं थी। वह ज़िंदगी भर एक ऐसी नारी का रूप धारण करती है जिसे कोई अपने परिवार का अंग नहीं बनाना चाहते, पर आर्थिक और शारीरिक रूप से उसका फायदा उठाते थे जिसमें डॉक्टर साहेब, उनकी पत्नी और उनके बच्चे कोई भी एक दूसरे से कम नहीं थे।

इस आत्मकथा में प्रभा जी अपने आप को जाल में फँसे हुए पक्षी के रूप में दर्शाती है जो डॉक्टर सराफ की आँखों का प्यार और शब्दों की मधुरता का एहसास करते–करते पिंघल जाती है। लेखिका अपने–आप को डॉक्टर साहेब और उनके परिवारवालों को पूर्ण रूप से समर्पित करती है।

लेखिका समाज की भलाई और राष्ट्र की उन्नति के लिए भी हाथ बँटाती है और भारत–चीन युद्ध के समय अपने गहनों को भी देश को दे देती है। महात्मा गांधी जिस आज़ादी को अहिंसा द्वारा प्राप्त किये थे, उसी आज़ादी की सुरक्षा हिंसा द्वारा होते देखकर लेखिका मन ही मन दुःखी हो जाती थी। जवानों के मन में बदलाव लाने के लिए और देश–प्रेम की भावना को जागृत करने के लिए क्रान्ति तो गर्व की बात है। लेकिन लेखिका समझती थी कि ऐसी असहिष्णुता और वैर–विरोध की भावना से बदलाव लाना हर एक नागरिक का कर्तव्य है।

अपनी आत्मकथा में लेखिका ने अपने कवि रूप का उल्लेख किया है किन्तु उपन्यास लेखिका के रूप में अपनी रचनात्मक गतिविधियों का कहीं जिक्र नहीं है। आत्मकथा के अंत को उन्होंने एक ट्रेजेडी के रूप में दर्शाया है। डॉ. साहेब की मृत्यु के बाद उनके सारे परिवार वाले और आए हुए सभी लोग डॉक्टर साहेब की पत्नी को सांत्वना देते रहे। प्रभा जी की तरफ किसी ने देखा तक नही। डॉक्टर साहेब उनके लिए सब कुछ होने पर भी वह समाज के सामने डॉक्टर साहब का कुछ भी नहीं था। डॉ. साहेब की मृत्यु की शोक सभा में भी उनकी पत्नी और बच्चों का नाम ही लिया गया था, प्रभा खेतान का नाम भी कहीं नहीं लिया गया। प्रभा जी हमेशा के लिए पराई ही थी। स्त्री को लेकर समाज की निष्ठुरता और क्रूरता का निर्दर्शन इससे अच्छे रूप में और कहीं नहीं मिलेगा। 'अन्या से अनन्या' प्रभा खेतान नामक लेखिका की नियति का इतिवृत्त भले ही हो, भारतीय नारी की दशा–दिशा का दर्पण तो यह निश्चित ही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

१) 'अन्या से अनन्या' – डॉ. प्रभा खेतान (आत्मकथा)

E-mail : nishamup@srmist.edu.in
Mob. 9840274820

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 494-496
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय लोक जीवन में स्त्री विमर्श

डॉ. जयश्री किनारीवाल-कुमावत
औरंगाबाद, महाराष्ट्र।

भारतीय जीवन में शुरू से अब तक नारी के प्रति दृष्टि का सच्चा लेखा–जोखा उपन्यास, कहानी या कविता में मिलता है। इसकी लंबी परंपरा है। हजारों साल पहले जब हमने लिपि का आविष्कार भी नहीं दिया था तब जो रचा जाता वह मौखिक होता था। हम उसे मौखिक ही दूसरों तक पहुँचा देते। फिर दूसरी पीढ़ी को। ऐसी ही पीढ़ी दर पीढ़ी परंपरा चलती गई। उन दिनों नारी–पुरुष का शारीरिक भेद तो मानते थे, परंतु किसी प्रकार अंतर नहीं था। समाज में नारी–पुरुष का समान भाव ही सदियों तक स्वस्थ समाज बने रहने में सहायक रहा, परंतु बाद में माइग्रेसन का प्रभाव बहुत गहरा हुआ। समाज में दूर–दूर जा बसने के बाद ऐक्य तो सपना बन गया। परंपरा में जो मूल्य हमने स्वयं बनाये वे क्रमशः बिखरते गए। वह विघटन हमारे समाज को दुर्बल करता गया। इस प्रकार इतिहास के थपेड़ों से उतार–चढ़ाव आता गया। हमारी पारंपरिक समाज व्यवस्था में भी क्रमशः परिवर्तन आता गया। कुछ मूल्य टूटे, कुछ सुधरे और कुछ स्थायी बनकर आज भी चमक रहे है। नारी के प्रति दृष्टि में यही उतार–चढ़ाव हमेशा लगा रहा। इसमें ज्यादा प्रभावी विदेशी आक्रमणों और पर्यटकों का रहा। शासन ने जोर जबरन परिवर्तन कराया। उसी तरह समझ–बूझकर शांति से नये मूल्यों का रूप प्रस्तुत कर परिवर्तन की धारा स्पष्ट की है। स्वदेशी–परदेशी परतंत्र में सबसे ज्यादा तनाव नारी ने भोगा है।

स्त्री विमर्श की परिभाषा :

स्त्री विमर्श को पश्चिम और पूरब में भिन्न–भिन्न रूपों से परिभाषित किया है। पश्चिम की विद्वान इस्टेल फ्रडमेन ने निम्न शब्दों में परिभाषित किया है –

"Feminism is a belief that although women and men are Inherently of equal worth, most ties privilege men as a group. As a Result, social movements are necessery to achive political equality between women and men, with the understading that gender always intersects with other social heirarchies."

अर्थात् पुरुष एवं स्त्री सम महत्व रखते है। अधिकांश समाजों में पुरूष को वरीयता देते हैं। अतः स्त्री–पुरुष समानता के लिए सामाजिक आंदोलन जरूरी है। क्योंकि लिंगाधारित अंतर अन्य सामाजिक परंपराओं में प्रवेश करता है।

स्त्री विमर्श को कुछ लोग पश्चिमी आविष्कार भी मानते हैं। मगर यह सही नहीं है। यह अत्यंत नाजुक और गंभीर विषय है। इसे लेकर हमारे यहाँ पिछली आधी सदी से अलग वैचारिकता बनी है। कई बातें एक साथ आ जाती हैं। एक तरफ चिंतन है जिसे वैचारिक दर्शन या सैद्धांतिक लेखन कहते है। दूसरी तरफ नारी चेतना

का सारा प्रसंग है। नारी संगठन या नारीवादी आंदोलन है। तीसरे स्तर पर वह लेखन है जहाँ रचनाकार क्या सोचता है, क्या करता है, किस तरह की भाषा से अपनी बात कह लेता है। रचनाकार अपनी तरह से सोचता है और कहता है। ये धरातल स्त्री को अलग–अलग तरह से केंद्रीत करते हैं। उनके अपने अनुभव भी भिन्न होते हैं।

पुरुष समाज में पुरुष के बनाये नियमों के, उसके वर्चस्व के, स्त्री की अपनी निरीहता के, विवशता के, कि वह अपने को उस जकड़न से, उन रूढ़ियों से, विपरीतताओं से निकलने की कोशिश नहीं करती। अर्थात् स्त्री स्वभाव को समझना स्त्री विमर्श का महत्वपूर्ण लक्ष्य है। यह न कोई विचारधारा है, न पश्चिम का संस्कार। आज के बदलते समय में बदलती दृष्टि से हमें सोचने की जरूरत है। यह समय कुछ परंपराओं से मुक्त होने का है। मुक्त होने का अर्थ अपनी संस्कृति भूलना नहीं। एक संतुलनात्मक लचीलापन आधुनिक सोच ही मुक्त होना है, जो स्त्री विमर्श में मिलता है।

प्राचीन भारत :

''यत्र नार्यस्तु पुज्यंते रमन्ते तत्र देवताः।''

यह हमारे प्राचीन भारत की परंपरा है। यहाँ कहा जाता है कि जहाँ स्त्री का आदर होता है, सम्मान होता है वहाँ देवता भी वास करते हैं, रमते हैं। प्राचीन भारत में स्त्री को लगभग समान स्थान दिया गया है। क्योंकि उसके बिना कोई राज कार्य, धर्म कार्य, दान–दक्षिणादि संभव नहीं होता था। उसी प्रकार नारी को समाज में हर क्षेत्र में पूरा अधिकार एवं दायित्व था। वह वेदाध्ययन ही नहीं, वेदों की ऋचाओं की स्रष्टा रही है। यज्ञादि स्त्री के बिना संपन्न नहीं हो सकते थे। उसी प्रकार जो भी पुरुष संकल्प करता नारी बिना संभव न था। पुरुष संन्यास या अन्य आश्रम में जाता तो स्त्री से अनुमती लेना उसे जरूरी होता था। शुरू में उसमें लिंगाधारित कोई समस्या ही न थी। कोई शोषण न था। धीरे–धीरे बाह्य संस्पर्श में मनुष्य आता गया। मनुष्य का भिन्न संस्कृति से संबंध होना और फैलाव के कारण विभिन्न समस्याएँ निर्माण हुई। आर्ष ग्रंथों में कहा है –

''युवां ह घोषा पर्यश्विना यतो राज ऊँचे दुहिता पुच्छे वा नरा।
भूतं में अहम् उत भूतमक्तवे श्वायते रथिनं शक्तकर्यते।।''

अर्थात् ''मैं राजकन्या घोषा, सर्वत्र वेद की घोषणा करने वाली, वेद का संदेश सर्वत्र पहुँचानेवाली, स्तुति–पाठिका हूँ। हे देव, मैं सर्वत्र आपका ही यशोगान करती हूँ और विद्वानों से आपकी चर्चा करती हूँ। आप सदा मेरे पास रह कर मेरे इन इन्द्रियरूपी अश्वों से युक्त शरीर–रूपी रथ के साथ मेरे मन रूपी अश्व का दमन करें।'' यहाँ आत्मानुशासन की अपेक्षा स्त्रियाँ स्वयं से करती है। वह परिष्कृत मनीषावाली समधीत स्त्री ब्रह्मवादिनी है। निश्चिंत होकर वह शास्त्रार्थ कर सकती है। यह ब्रह्मचारिणी भौतिक सुखों से विरत नहीं है।

आदर्श पत्नी के कर्तव्य :–

''समख्यों देव्या धिया सं, दक्षिशपोरुचक्षसा।
मा म आयु प्रमोणीर्भोऽहं तव वींी विदेय देवि संहशि।।''

धारण–पोषण में समर्थ कार्यकुशल, दूरदर्शिनी पत्नी के माध्यम से मैं संपूर्ण कार्यों का संपादन करूँ। मैं उसके तथा वह मेरे जीवन को कभी हानि न पहुँचाये ओर मैं उसके सम्यक दर्शन से वीर पुत्र को प्राप्त करूँ। 'धारण करना' और 'घर चलाना' स्त्री के मुख्य कर्तव्य हैं। पुरुष के कर्तव्य है– बाहरी आक्रमणों से बचाना, आक्रमण हेतु सदा प्रस्तुत रहना। इसी के प्रतीक रूप शिव अर्धनारीश्वर रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

भारतीय लोक जीवन में नारी :-

भारत में युगों से स्त्री संबंधी विमर्श शास्त्रीय आधार की तरह लोकतात्विक आधार पर भी स्पष्ट है। लोक मानस में दो तरह की स्त्री दृष्टिगोचर होती है –

1) सुखिया 2) दुखिया

दो बहन, दो सहेली, ननद–भाभी, सास–बहू, दो पत्नी बनकर स्त्री अक्सर व्यक्त होती है। यहाँ माँ–बेटी का रिश्ता ऐसा है जहाँ विलोम नहीं होता। एक सुखी–दूसरी दुःखी ऐसा नहीं संभव होता। एक के सुख में दूसरी का सुख है तो एक दुःखी तो दूसरी दुःखी होती है।

भारत की ग्राम वधुओं ने लोकगीतों, लोक कथाओं के माध्यम से लगातार स्वयं को व्यक्त किया है। इसमें कोमल हास परिहास भी है। विद्याबुद्धि से पुरुष को पराजित करना भी व्यंजित है। स्त्रियों के गीतों में पुरुषों का मिलाया एक शब्द भी नहीं होता। घर में कामधंधे को लेकर (चक्की पीसना आदि) से बढ़कर परदेस में काम करते पति को पत्नी के प्रसंग बहुत से है। कहीं विरह का रोना है, कहीं सत् परीक्षा है, कहीं शपथ लेना है, इसी में उसका तेज प्रकट होकर उभरता है। यह परंपरा नारी की स्थिति, नारी की संभावना और नारी के भविष्य आदि को व्यक्त करने आज भी जीवित है।

आज स्त्री विमर्श एक देश, जाति या धर्म का आंदोलन नहीं है। बीसवीं सदी में इसने अनेक रूप लिए और अनेक ढंग से चर्चा हुई। जैसे – लिबरल फेमिनिज्म, रेडिकल फेमिनिज्म, मनोविश्लेषणात्मक स्त्रीवाद, मार्क्सवादी/समाजवादी स्त्रीवाद, पोस्टमॉडर्न फेमिनिज्म आदि है। कुछ लोगों का मानना है कि स्त्री–विमर्श यह पाश्चात्यों की देन है, परंतु मैं तो यह कहूँगी की स्त्री विमर्श भारतियों की ही देन है। तेरहवी शताब्दी में महाराष्ट्र की संत जनाबाई कहती हैं – ''डोईचा पदर आला खांद्यावरी, भरल्या बाजारी जाईन मी.'' इसका अर्थ है कि सर से पल्लू कंधे पे आ गया है और मैं भरे हुए बाजार में जाऊँगी ऐसा जनाबाई का कहना विद्रोही नहीं तो और क्या है? यह स्त्री विमर्श ही तो है। इसके बाद हमारी राजस्थान की मीराबाई भी कहती है – ''पग घुँगरू बाँध मीरा नाची'' या फिर ''ऐसी लागी लगन, मीरा हो गई मगन, वो तो गली–गली हरी गुण गाने लगी'' यह स्त्री विमर्श ही तो है।

निष्कर्षतः अबला दुर्बला कही जानेवाली भारतीय स्त्री ने सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से उपेक्षित होकर भी हार नहीं मानी। प्राचीन भारत से लेकर आधुनिक भारत तक या स्वतंत्रता से पहले या स्वतंत्रता के बाद हो कभी भी पुरूषों के पीछे नहीं रही। कदम से कदम मिलाकर, कंधे से कंधा मिलाकर चलती रही है।

संदर्भ :-

1. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र
2. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. समकालीन भारतीय साहित्य (मई–जून, 2012 साहित्य अकादमी)
4. संत नामदेवांची अभंगगाथा – गीताप्रेस गोरखपुर।

मो –7796571736, 9767325868

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 497-500
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी कविताओं में पर्यावरण विमर्श

-डॉ. सलीम बाणदार

नेहरु कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, घण्टीकेरी हुब्बल्ली।

मानव जीवन एवं पर्यावरण एक दूसरे के पर्याय हैं। जहां मानव वहां प्रकृति है। हमारे प्राचीन वेदों में पर्यावरण के महत्व को दर्शाया गया है। हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रकृति को हमेशा विशिष्ट स्थान दिया गया है। हिन्दी साहित्य में पर्यावरण पर आधारित बहुत से रचनाएँ है। मानव और समाज का प्राथमिक कर्तव्य है प्रकृति की रक्षा करना। हिन्दी के साहित्यकारों ने अपने साहित्य में प्रकृति का वर्णन किया है। महाकवि तुलसीदास जी के रामचरितमानस में प्रकृति और पर्यावरण का चित्रण मिलता है। रहीम ने भी पानी के उदाहण से जीवन के तत्व का और पर्यावरण का ज्ञान कराया है :–

"रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सुन!
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुस चुन!!"[1]

मनुष्य अपने स्वार्थ में लिप्त होकर प्राकृतिक के संसाधनों का बहुत नुक्सान किया है। जंगलों के नाश होने के कारण जल और वायु पर प्रभाव पड़ा है। जिससे लोगों को शुद्ध हवा और पानी नहीं मिल रही। जंगल की कटाई से बारिश कम हो गई है जिससे नदियाँ सूखने लगे झरने मिचन लगे हैं।

हिन्दी साहित्य में प्रकृति के विनाश का शुरु से ही विरोध देखने मिलता है। भक्तिकाल के कवि– कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, म.मो.जायसी, रहीम, मीराबाई आदि ने अपने रचनाओं में प्रकृति का कई स्थानों पर रहस्मय वर्णन किया है। जब श्रीराम वनवास गये तो उन्हें अधिक खुशी इसी बात की हुई थी कि उन्हें वन–क्षेत्र में प्रकृती और ऋषि–मुनियों के सत्संग का लाभ प्राप्त होगा इसलिए श्रीराम कहते हैं :–

"मुनिगन मिलन विशेष वन, सबहिं भांति हित मोर"।

प्रकृति का आवश्यकतानुसार उपभोग करने पाठ संस्कृति के उपदेशों में की गयी है जैसे कि वृक्ष से फल तोड़कर खाना तो उचित है लेकिन वृक्ष को काटना अपराध है :–

'रीझि–खीझी गुरूदेव सिष सखा सुसाहित साधु।
तोरि खाहु फल होई भलु तरु काटे अपराधू'।

वृक्षारोपण से प्रकृति को विकसित करने के लिए राम ने अपने वनवास के दिनों में सीता और लक्ष्मण के साथ वृक्षारोपण की ओर सकेंत करते हुए कहा है :–

"तुलसी तरुवर विविध सुहाए। कहुं–कहुं सिय, कहुं लखन लगाए"।

प्रकृति के पाँच तत्व :– वायु, जल, अग्नी, पृथ्वी तथा आकाश से ही मानव शरीर की रचना हुई है। इसी के उदाहरण के रुप में तुलसीदास ने रामचरितमानस के किष्किन्धाकांड में लिखते हैं :–

"छिति जल पावक गगन समीर
पंच रचित अति अधम सरीरा"।

रीतिकाल के कवियों ने भी प्रकृति की सुन्दरता का अलंकारिक वर्णन करके अपनी रचनाओं में चार चाँद लगा दिया है। बिहारी, भूषण, देव, मतिराम पद्माकर, सेनापति आदि कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य को अपनत्व दिया है।

आधुनिक काल के साहित्यकारों में जैसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद दिवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक आदि कवियों ने भी प्रकृति के अनावश्यक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर मनुष्य को प्रेरित किया है। छायावाद के प्रमुख कवि और कवयत्री महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी अपनी कविताओं में प्रकृति के रूपों का अनोखा वर्णन किया है।

प्रकृति के सुन्दर रूप का वर्णन मैथिलीशरण गुप्त जी ने साकेत, पंचवटी, सिद्धराज, यशोधरा, किसान, झंकार आदि ग्रंथों में किया है। गुप्त जी रात्रि की वेला का मनोहारी वर्णन पंचवटी रचना के इन पंक्तियों में इस प्रकार करते हैं–

"चारू चंद्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है अवनी और अम्बरतल में"।

सुमित्रानन्दन पंत जी प्रकृति की सुदरता में इतने लीन हो जाते हैं कि उन्हें अपने आस पास का कुछ भी खबर नहीं रहता यहां तक की अपनी प्रेमिका को भी भूल जाते हैं अपनी एक वे कहते हैं :–

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल–जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन"।

कवि जयशंकर प्रसाद ने अपनी रचना 'कामायनी' में आरम्भ से ही प्रकृति के भयानक रूप का वर्णन किया है। इस काव्य में जल प्रलय के बाद सबकुछ नष्ट हो जाता है। कवि ने इस कविता के माध्यम से पाठकों को यह संकेत दिया है कि प्रकृति से कभी भी खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। कवि कहते हैं :–

"हिमगिरि के उतुंग शिखर पर, बैठ शीला की ऊपर छाँह।
एक पुरुष, भीगे नयनों से, देख रहा है प्रलय–प्रवाह"।

अज्ञेय के काव्य में मानव और पर्यावरण के बीच अंतः संबंधों दिखाई देती है। उन्होंने अपनी कविता 'असाध्य वीणा' में मनुष्य को आत्मानुभूति प्राप्त करने की प्रेरणा दी है। मनुष्य के भोगवादी प्रवृति के कारण आज प्रकृति खतरे में है। इसलिए हमें प्राकृतिक आपधाओं का निरन्तर सामना करना पड़ रहा है। प्रतिवर्ष कहीं न कहीं प्राकृतिक विनाश की घटनायें देखने मिलती रहती है। आज्ञेय अपनी रचना में मानव को सचेत करते हुए लिखते हैं –

"सिर पर सम्मुख जलता सूरज भभक रहा है
लपटों में घिर देह बचाती पृथ्वी का हरियाला आंचल झुलस गया है
न जाने क्यों नाराज हुए इन्द्रदेव।"

प्रकृति के समस्त जीव जन्तुओं के आवास को नष्ट होने की समस्या को कवि दीपक कुमार अपनी कविता क माध्यम से बताने का प्रयास किया है। अपनी रचना में कहते हैं :–

''कहाँ बची है छांव जो इत्मिनान से तू ले सके आलाप
कोई तो अमराई बची होगी कहीं पर शहर के बनने की यह रफ्तार है री
जिस तेजी से कटते हैं दरख्त अससे तेज बनते हैं मकान,
कम्बख्त इनकी नींव में दफन हैं मीलें हरी घास के मैदान।''

आधुनिक युग के प्रसिद्ध कवि कुँवर नायण अपनी कविता एक वृक्ष की हत्या में पेड से उनकी दोस्ती, अपनत्व और लगाव को स्पष्ट करते हैं। इस कविता के माध्यम से कवि पाठकों को यह बताने का प्रयास किया है कि पेड–पौधे हमारे अच्छे मित्र होते हैं, हमारे जीवन का प्रमुख अंग होते हैं और पेडों को काटने से उतना ही दु:ख होता है जितना अपनो से बिछुडने का। और जंगलों का महत्व, वनों की रक्षा, सुरक्षा और जंगलों क कटने से मानव जाती पर होने वाले प्रभाव को बहुत ही अच्छे से कुँवर नारायण इस कविता में कहते हैं :–

"अबकी घर लौटा तो देखा वह नहीं था–
वही बूढ़ा चौकीदार वृक्ष
जो हमेशा मिलता था घर के दरवाज़े पर तैनात।
पुराने चमड़े का बना उसका शरीर
वही सख्त जान
झुर्रियोंदार खुरदुरा तना मैला–कुचैला,
राइफ़िल–सी एक सूखी डाल,
एक पगड़ी फूल पत्तीदार,
पाँवों में फटा–पुराना जूता
चरमराता लेकिन अक्खड़ बल–बूता
धूप में बारिश में
गर्मी में सर्दी में
हमेशा चौकन्ना
अपनी ख़ाकी वर्दी में
दूर से ही ललकारता, "कौन?"
मैं जवाब देता, "दोस्त!"
और पल भर को बैठ जाता
उसकी ठंडी छाँव में
दरअसल, शुरू से ही था हमारे अंदेशों में
कहीं एक जानी दुश्मन
कि घर को बचाना है लुटेरों से
शहर को बचाना है नादिरों से
देश को बचाना है देश के दुश्मनों से

बचाना है–
नदियों को नाला हो जाने से
हवा को धुआँ हो जाने से
खाने को ज़हर हो जाने से :
बचाना है–जंगल को मरुस्थल हो जाने से,
बचाना है–मनुष्य को जंगल हो जाने से।"

आधार ग्रंथ सूची :-

1. रहीम के दोहे : रहीम दास : डायमंड बुक्स, नई दिल्ली – फरवरी 2020
2. आरोग्य अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2072
3. श्रीरामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर संवत 2072
4. रामचरितमानस– किष्किन्धाकाणड– तुलसीदास– गीता प्रेस– गोरखपुर ।
5. लोकवादी तुलसीदास– विश्वनाथ त्रिपाठी– राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली– 1974
6. पर्यावरण संरक्षण– अंजलि श्रीवास्तव– नमन प्रकाशन– नई दिल्ली, 2001
7. पंचवची– मैथिलीशरण गुप्त– साहित्य सरोवर, उत्तर प्रदेश – 2017
8. तारापथ– सुमित्रानंदन पंत– लोकभारती प्रकाशन, उत्तर प्रदेश– 2002
9. कामायनी– जयशंकर प्रसाद– राजपाल एणड सन्स, नई दिल्ली– 2014
10. कंक्रीट की अमरैया में कोयल की कूंक– दीपक कुमार पाचापोर– वागार्थ मोर्च– 2016
11. एक वृक्ष की हत्या : कुँवर नारायण– साहित्य गौरव– लावन्या मुदराना, बेंगलूर– 2019

saleembandar@gmail.com 9986327672

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 501-503
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन रचनाकार मोहनदास नैमिशराय की कहानियों में दलित विमर्श

-DARSANA S
Research Scholar, Department of Hindi, University Collage, Palayam, Thiruvananthapuram, Kerala

आज समकालीन संज्ञा साहित्य के विभिन्न विधाओं के साथ प्रयुक्त हो रहे हैं। जैसे समकालीन कविता, समकालीन उपन्यास, समकालीन कहानी आदि। समकालीन कहानी पर बात करते हुए मधुरेश लिखते हैं कि समकालीन होने का अर्थ सिर्फ समय के बीच होने से नहीं है। समकालीन होने का अर्थ है समय के वैचारिक और रचनात्मक दबावों को झेलते हुए उनसे उत्पन्न तनावों और टकराहटों के बीच अपनी सर्जनशीलता द्वारा अपने होने को प्रमाणित करना।

समकालीन कहानी की प्रवृत्तियों को हम विगत पाँच दशकों की कहांनियों के बदलते मिजाज के अनुसार देख सकते हैं। सन् साठ के बाद के कहानी आंदोलन की प्रवृतियां चाहे वह शिल्प के स्तर पर हो या भावबोध के स्तर पर मूलतः समकालीन कहानी की ही प्रवृतियां माननी चाहिए। समकालीन कहानी के वर्तमान दौर में जिन दो समांतर प्रवृतियों को रेखांकित किया जाना चाहिए वह है– स्त्री विमर्श और दलित विमर्श।

दलित शब्द की उत्पत्ति 'दलन' शब्द से हुई है। दलन का सामान्य अर्थ है किसी वस्तु को जबरदस्ती दलना, कूटना, पीसना। दलित का अभिप्राय उस व्यक्ति समूह से है जिसे समाज के धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक ढांचे में, शोषक सत्ताधारियों द्वारा शोषण एवं उत्पीड़न का शिकार बनाया जाता है। डॉ कुसुमलता मेघवाल ने 'दलित' की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "दलित वर्ग का सामाजिक संदर्भों में अर्थ होगा, वह जाति समुदाय, जो अन्यायपूर्वक सवर्णों या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया हो, रौंदा गया हो। दलित शब्द व्यापक रूप में पीड़ित के अर्थ में आता है।"[1] दलित साहित्य का तात्पर्य, वह साहित्य जो दलितों के द्वारा तथा दलितों के जागरण केलिए लिखा गया हो। दलित साहित्य के संबंध में मोहनदास नैमिशराय का कथन है कि "दलित साहित्य बहुजन समाज के सभी मानवीय अधिकारों और मूल्यों की प्राप्ति के उद्देश्यों से लिखा गया साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है, जिसमें समता और बंधुता का भाव है और वर्ण–व्यवस्था से उपजे जाति भेद का विरोध है।"[2]

समकालीन हिंदी साहित्य में दलित साहित्य की दृष्टि से मोहनदास नैमिशराय का नाम उल्लेखनीय है। आपके 'आवाजें' और 'हमारा जवाब' नामक कहानी संग्रहों की कहानियां दलित जीवन से संबंधित है। 'आवाजें' कहानी संग्रह में दलित जीवन की यथार्थता, दलितों के दुख–दर्द और शोषण को उजागर किया है। मोहनदास नैमिशराय की कहानियों में अम्बेडकर दर्शन स्पष्ट झलकता है। आपके 'हम जवाब' कहानी संग्रह में भी दलित

जीवन की त्रासदी का चित्रण है। मोहनदास नैमिशराय जी ने अपने कहानियों के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विषमताओं से भरे दलितों के जीवन को रेखांकित किया है। भारतीय समाज में अनंत काल से वर्ण व्यवस्था के अधीन समाज रहा है। युग बदलने के साथ–साथ संघर्ष के स्वर भी मुखर होते रहे हैं। हमारा जवाब कहानी संग्रह कहानी के क्षेत्र में अपना मार्ग प्रशस्त करता है।

मोहनदास नैमिशराय के 'आवाजे' कहानी संग्रह में 13 कहानियां संगृहीत है। ये कहानियां– आवाजे, घायल शहर की एक बस्ती, अपना गांव, हारे हुए लोग, नया पड़ोसी, अधिकार चेतना, गंजा पेड़, बरसात, रीत, उसके जख्म, मैं शहर और वे, भीड़ में वह, महाशूद्र। दूसरा कहानी संग्रह 'हम जवाब' में 19 कहानियाँ संग्रहित है। ये कहानियाँ– कर्ज, जगीरा, गाँव, हमारा जवाब, परंपरा, तुलसा, आधा सेर घी, सुनो बरखुरदार, सपने, सिकंदर, सफर, खबर, सिमटा हुआ आदमी, मजूरी, मुक्ति का संघर्ष, दर्द, एक गुमनाम मौत, गवर्नर के कोट का बटन, एक अखबार की मौत। तीसरी कहानी संग्रह में 16 कहानियाँ संग्रहित है। ये कहानियाँ हैं– सिलसिला, आदमी का तलाश, इज्जत, चमत्कार, प्यास, पूरा आदमी, एक भला मानस, यात्रा, टोकरी की नौकरी, खरपतवार, धर्म परिवर्तन, आप यहाँ क्यों आते हैं, फेस बुकिया सुबनबा, बात सिर्फ इतनी सी, माँ, गुड़ और साहूकार। मोहनदास नैमिशराय जी की कहानियाँ पहले पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थी बाद में उसको पुस्तकाकार प्राप्त हुए।

कर्ज मोहनदास नैमिशराय के पहली कहानी है। कहानी का केंद्रीय कथ्य दलित जीवन के सामाजिक अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान के इर्द–गिर्द घूमता है। किस प्रकार एक दलित परिवार अंधविश्वासपूर्ण सामाजिक मर्यादाओं को ढोता हुआ कंगाल और बर्बाद हो जाता है। महाजनों के कर्ज में ही उसका जन्म होता है और दंड–जुर्माना भरते हुए वह किस प्रकार मर जाता है। इन सभी बातों का चित्रण इस कहानी में हैं। 'कर्ज' कहानी में स्त्री पर होनेवाले यौन शोषण का चित्रण है। अशोक द्वारा कर्ज अदा न करने पर जमींदार उसकी माँ और बहन से बलात्कार करता है– "रात की कालिमा में माँ बेटी के जिस्म के साथ उनकी अस्मिता भी रौंद दी गयी। इस काली रात ने कितनों को सफेद से स्याह बनाया होगा। दो छायाओं ने उन माँ बेटी के साथ अजीब तरह का छल किया था। वे टूटकर बिखर गयी थी।"[3] अशोक जमींदार को मारकर इसका बदला लेता है।

मोहनदास नैमिशराय जी के 'अपना गाँव' कहानी में दलितों पर समाज और नीति न्याय व्यवस्था द्वारा किये जाने वाले मुजीबतों का तीखा चित्रण हुआ है। दलित महिला कबूतरी के पति संपत ठाकुर से पाँच सौ रुपये कर्ज ले लिए। कर्ज न चुकाने की वजह से ठाकुर के मंझले बेटे ने संपत की पत्नी कबूतरी को लोगों के सामने नंगा करके घुमाया। इस अन्याय के विरुद्ध संपत और अन्य दलित लोग पुलिस थाने पर गए लेकिन उन्हें न्याय नहीं प्राप्त होता है। बल्कि उन्हें भी डंडे से मार–पीट खाना पड़ता है। इस प्रकार सवर्ण समाज के अन्यायों पर आवाज उठाने का हक भी दलितों को प्राप्त नहीं थे। दलितों को डंडे से मारने के बाद पुलिस इंस्पेक्टर का कथन यह है कि "साला चमारों, अब तुम्हें जबान लड़ाना भी आ गया। एक–एक की गांड में मैंने डंडा न चढाया हो तो मेरा नाम एस पी त्यागी नहीं।"[4]

"रीत" कहानी में एक ऐसे समाज का चित्रण किया है वहाँ किसी की शादी होती है तो सुहागरात उस लड़की की पति नहीं बल्कि जमींदार मनाते थे। इसे रीत मानकर सब लोग स्वीकार करते थे। बुलाकी की नव वधु के साथ भी यही हुआ। वह इसका विरोध करते हैं और उस गाँव से जाते हैं। कई वर्षों के बाद वह एक

रात में वापस आते हैं और जमींदार की हवेली पर आग लगाते हैं। इसमें जमींदार सहित उसके सारा परिवार खत्म हो जाते हैं। वह स्वयं कहता है– "अब कोई जमींदार गाँव की किसी औरत की इज्जत खराब नहीं करेगा। मैंने उनका वंश सदा–सदा केलिए खत्म कर दिया है।"[5] वह अपनी पत्नी को लेकर रात में ही गाँव से चला जाता है। इस कहानी दलितों के प्रतिशोध और आक्रोश की है।

दलितों को समाज के शोषण का शिकार बनना पड़ता है। वे कई मुश्किलों के सामना करके अपनी पढ़ाई आगे बढ़ाते हैं और नौकरी हाजिल करता है। नौकरी मिलने पर भी दलित होने की वजह से उन्हें किराये पर मकान मिलने केलिए कई मुश्किलें झेलने पड़ते हैं। मोहनदास नैमिशराय की "हारे हुए लोग" कहानी में यही समस्या का चित्रण है।

"अधिकार चेतना" नामक कहानी में पुलिसवालों की बुरी हरकत का चित्रण हुआ है। डॉ. अम्बेडकर के प्रतिमा की स्थापना करते वक्त दलित और सवर्ण के बीच में संघर्ष होता है। पुलिस गोली चलाने पर दो दलितों की मृत्यु होती है। "मंजूरी" नामक कहानी में दलित नारी की दुर्दशा का चित्रण हुआ है। दलित नारी सुमति अपने मालिक के घर में अपनी मंजूरी मांगने के लिए जाती है लेकिन मालिक उसे मंजूरी देने को तैयार नहीं होता। मालिक उससे अगले दिन आने को कहता है। इस प्रकार कई दिन बीत गए तो लड़की ने मालिक से अपनी मंसूरी के लिए जिद किया। मालिक अपने घर के कुत्ते से उसे बुरी तरह कटवाया जाता है।

मोहनदास नैमिशराय जी के कहानियों में दलितों की दयनीय दशा का सच्चा चित्रण हुआ है। दलितों को अपनी जिंदगी में कई संघर्षों के सामना करना पड़ता है। दलित लोग उच्च वर्ग के शोषण का शिकार बन जाता है। उन्हें अपनी मंजूरी भी ठीक तरह प्राप्त नहीं होता है। भोजन और कपड़े की कमी उन्हें सताते हैं। वे जिंदगी भर शोषण और कर्ज का शिकार बन जाता है। दलित नारियों की स्थिति भी अत्यंत शोचनीय है। वे जमींदारों के शोषण का शिकार बन जाता है। घर में भी वे सुरक्षित नहीं है। पति के मारपीट खाना पड़ता है और कई बच्चों को पाल पोसना पड़ता है। उनकी आर्थिक स्थिति भी सुरक्षित नहीं होता है। राजनीतिक और सामाजिक रूप से दलितों को सहायता नहीं प्राप्त होते थे। पुलिस से और प्रशासनिक व्यवस्था से उन्हें कोई नीति प्राप्त नहीं थे। पुलिस से उन्हें मारपीट खाना पड़ते थे। दलित लोगों को सवर्ण गांव के किसी कोने में रहने का स्थान देते थे। दलित और सवर्णों में कई अंधविश्वास जड़े जमाते थे। सवर्णों के विचार थे कि अगर कोई बीमारी आएँगे तो वह पहले दलितों की बस्ती में ही आएँगे। दलित लोगों को मंदिरों में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थे। अपने जीवन की संघर्षों से जूझते हुए दलित लोग समाज में अपने अधिकार के लिए लड़ने लगे। वे अपनी जिंदगी कठिनाईओं को झेलकर भी आगे पढ़ने लगे और नौकरी हाजिल करने लगे। मोहनदास नैमिशराय जी के कहानियों में दलितों के संघर्ष पूर्ण जीवन है। इसके साथ ही अपने हाशिये कृत जिन्दगी से आगे बढ़नेवाले दलितों का चित्रण भी हुआ है।

संदर्भ सूची :–

1. हिंदी उपन्यासों में दलित वर्ग, डॉ कुसुमलता मेघवाल – पृ. सं–1
2. हिंदी दलित कविता–नये संदर्भ, टी पी राही – पृ. सं–14
3. हमारा जवाब, मोहनदास नैमिशराय– पृ. सं–23
4. आवाजें, मोहनदास नैमिशराय – पृ. सं –68
5. आवाजें, मोहनदास नैमिशराय – पृ. सं– 123

MOB: 8921388048, 7034848287, Darsanasree003@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 504-507
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन साहित्य मोरी की ईट में दलित विमर्श की संघर्ष गाथा

–डॉ. अल्पेशभाई एच. गामीत
हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटण (उ.गु.)

वर्तमान समय में हिन्दी का दलित साहित्य हिन्दी साहित्य से अलग अपनी स्वतंत्र पहचान बना चुका है, इतना ही नहीं उसने हिन्दी के परम्परागत सौन्दर्यशास्त्र को नकारते हुए अपना पृथक् सौन्दर्यशास्त्र भी निर्मित किया है दलित साहित्य का अपना चिन्तन–दर्शन एवम् विचारधारा है, उनकी अपनी प्रतिबद्धता है जो निश्चित ही कई अर्थो में हिन्दी साहित्य से भिन्न है। दलित साहित्य को दो–ढाई दशकों में मिली लोकप्रियता एवम् काफी जद्दोजहद के बाद मिली सामाजिक मान्यता का ही यह प्रभाव है कि साहित्य और सामाजिक ज्ञान के क्षेत्र में दलित विमर्श लगभग अनिवार्य–सा हो गया है।

साहित्य के क्षेत्र के अर्न्तगत एक और साहित्य अपनी अस्मिता के लिये संघर्ष कर रहा है। यह साहित्य समाज के ऐसे वर्ग का साहित्य है जिसमें उसके जीवन की पूर्ण वास्तविकता चित्रण हुआ है। यह साहित्य दलित साहित्य के नाम से साहित्य में अपनी पहचान रखता है। दलितों ने अपने साहित्य के माध्यम से अपने जीवन के यथार्थ को पहल पर रखा है। समाज द्वारा दी गई वेदना, पीड़ा, उपेक्षा इत्यादि कई तरह की समस्याओं को इस वर्ग ने अपने साहित्य में अभिव्यक्ति ही है। यह साहित्य उस वर्ग का साहित्य है जो आज के आधुनिक समय में परम्परा एवम् धर्म के आधार पर बनायी गई वर्ग भेद की दीवार को ढ़ाहने में पूवाँ सक्षम है। इनके साहित्य के अन्तर्गत जातिभेद, वर्गभेद, छुआछुत, उपेक्षा की भावना का पूर्ण प्रतिकार किया गया है।

समाज के सबसे शोषित–पीड़ित वर्ग की गाथा तीन उपन्यासों में इस बीच अलग–अलग बिंदुओं से पढ़ने को मिली। दलित समाज पर पहला उपनयास जगदीश चंद्र का 'नरक कुंड में बास' (१९९४) है इसमें चमड़ा उद्योग में काम करने वाले दलितों की भयावह स्थिति, नारकीय जीवन, उससे छुटकारा पाने की अदम्य इच्छा और संघर्ष रेखांकित करने योग्य है। दुसरा उपन्यास नमिता सिंह का 'अपनी सलीबें' है जिसमें विचार एवम् व्यवहार के बीच खाई को पाटने की द्वंद्वात्मक कथा है। कैसे अब तक दलितों और अवर्णो के बीच भावनात्मक स्तर पर रिश्ते नहीं बन पा रहे हैं। तीसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास है 'मोरी की ईंट' जिसके लेखक हैं श्री मदन दीक्षित। ये लंबे समय तक यशपाल एवम् शिव वर्मा से जुड़े रहे। 'नया पथ' के संपादन में मदद करते रहे।

वामपंथी ट्रेड यूनियन में दीक्षितजी विद्यार्थी काल से ही सक्रिय रहे एवम् जीवन के एक लंबे समय तक मेहतर समाज के बीच रहकर उनके सुख–दुःख, जय–पराजय और संघर्ष गाथा के साथी एवम् सहयोगी रहे। उन्हीं जीवनानुभवों की कलात्मक अभिव्यक्ति है – 'मोरी की ईंट'। यह सुखद आश्चर्य है कि उन्होंने अपना पहला

उपन्यास ७० साल की उम्र में लिखा है एवम् दलितों के इतिहास, उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति, उसमें परिवर्तन के प्रयास, उनकी मानसिकता, उनके रीति–रिवाज, उनके संघर्षो पर एक बृहत् उपन्यास, 'बाहरी दरवाजा' लिखने में व्यस्त हैं। आज सबसे प्रामाणिक दलित साहित्य मदन दीक्षित लिख रहे हैं, पूरी मानवीय संवेदना के साथ। वह दलित राजनीति नहीं कर रहे, दलित लेखन कर रहे हैं।

उपन्यास बीसवीं शताब्दी के आरंभ की सामाजिक–राजनीतिक स्थिति का परिचय देते हुए मेहतर समाज से हमारा अंतरंग परिचय कराता है। स्वतंत्रता से पूर्व नगर पालिकाओं का क्या स्वरूप था ? सफाई कर्मियों की पशुओं से भी बुरी स्थिति, कुलीनों एवम् उच्च कुलों के लोगों का अंग्रेजी शासन के लोगों से रिश्ता, उनके व्यापारिक और आर्थिक रित, धर्म परिवर्तन, जाति व्यवस्था, स्वतंत्रता एवम् देश विभाजन–सारा अर्द्धशती का सामाजिक और राजनीतिक इतिहास कलात्मक स्तर पर 'मोरी की ईंट' में चित्रित है। मदन दीक्षित व्यंग्यात्मक स्वर में शासक वर्गो की स्वार्थपरकता उजागर करते हुए उनके शब्दों में –

''चुंगी की ओर से प्रचार किया गया कि मेहतरों की माँगें मानने के लिए या तो रोशनी, सड़कों खरंजों के खर्चो में कटौती करनी होगी या शहर में आने वाले सामान पर चुंगी की दरें बढ़ानी होंगी। दोनों ही परिस्थितियाँ शहर की खुशहाली के लिए धातक हैं इसलिए मेहतरों की माँगे नहीं मानी जा सकती।''[१]

यह तर्क स्वतंत्रता से पूर्व ही नहीं, आज भी श्रमिक एवम् कमजोर वर्ग के लोग जब अपने जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास करते हैं तो दुहाराया जाता है। सफाई कमी समानता की बात करते हैं तो मोरी की ईंट कहकर अपमानित किया जाता है। हिंदू समाज ने इस श्रमिक और दलित वर्ग के साथ जो भारतीय समाज की रीढ़ रहा है, सदैव अमानवी व्यवहार किया है। उन्हें साधारण मनुष्य की श्रेणी में भी नहीं रखा। मेहतर तो दलितों में भी दलित हैं, अछूतों में भी अछूत हैं। धर्म परिवर्तन कर लेने पर भी भारतीय समाज में मेहतरों की स्थिति में कोई अंतर नहीं आया –

''मुसलमान बना लिया तो लाल बेगी कहने लगे, हलालखोर कहने लगें, अल्लन, बिल्लन, अहमदा, मोहमदा नाम रख दिए। सिख बना लिया तो मजहबी कहने लगें, झंडा सिंह, गंडासिंह, संतासिंह, बसंता सिंह नाम रख दिए। ईसाई बना लिया तो जानसन, थाम्पसन, ऐडविन, ग्लैडविन नाम रख दिए। रहे मेहतर के मेहतर और नरक बटोरने का पट्टा उनके नाम बदस्तूर कायम रहा।''[२]

लेखक का यह मत सही है कि देश के हजारों वर्ष के इतिहास में सबसे पहले ईसाई मिशनरियों ने ही मेहतरों को इंसान समझकर उन्हें सफाई के अतिरिक्त दूसरे व्यवसायों में भी भाग लेने का अवसर दिया। इस अवसर की हिंदू धर्म से तो आशा ही नहीं की जा सकती, जाति और वर्ण विरोधी इस्लाम ने भी वही व्यवहार किया जो सवर्ण हिंदू करते रहे। हमारी सामाजिक व्यवस्था ने किसी मेहतर को व्यवसाय नहीं बदलने दिया।

भारतीय जाति व्यवस्था लोहे के फ्रेम की तरह है। धर्म बदलने पर श्री जाति से छुटकारा नहीं मिलता। तस्वीरें बदलती रहीं लेकिन जाति व्यवस्था का यह फेम अपनी जगह विद्यमान रहा। सेमुअल का बेटा जैकब हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास होता है लेकिन भूगोल के अध्यापक विन्सटन दिलीप सिंह का बेटा तृतीय

श्रेणी में पास होता है। दोनों अध्यापक हैं और दोनों ही ईसाई हैं लेकिन जाति भेद की खाई काफी गहरी है। दिलीप सिंह के मत्तानुसार– ''वह भंगी का बेटा फर्स्ट डिवीजन में पास हुआ। तुम ससुर निकम्मे जमाने–भर के, राजपूतों के बेटे होकर भी थर्ड डिवीजन में पास हुए हो।''[३]

यह बात सुनकर अपमानित सेमुअल और उनके पुत्र जैकब की साही खुशियाँ और उत्साह ठंडा पड़ गया। यही बात सेमुअल अपनी पत्नी आर्था से कहता हैं – ''आज की दुनिया में जैकब की योग्यता के मुकाबले उसका घसीटे का पोता होना अधिक महत्त्व रखता है।''[४]

ईसाई धर्म में दीक्षित होने के दो कारण रहे हैं सबसे ज्यादा दलित एवम् पीड़ित लोग मनुष्य बनने के लिए ईसाई धर्म में दीक्षित हुए जिनमें सबसे बड़ी संख्या आदिवासी और मेहतरों की है जिन्हें भारतीय समाज ने कभी इन्सान नहीं समझा। ईसाई असमानता की खाई तो नहीं पाट सके लेकिन कम करने का प्रयास अवश्य किया। उच्च वर्ग के लोग आर्थिक एवम् राजनीतिक लाभ उठाने के लिए ईसाई धर्म में दीक्षित हुई।

अल्मोड़ा के जोशी एवम् पंत परिवार दूसरी श्रेणी में आते हैं। वे अपने आर्थिक लाभ के लिए ईसाई धर्म में दीक्षित हुए।

''लोग कहते हैं कि सांसारिक सुख–सुविधाओं के लिए उगते हुए सूरज को सिर नवाने की जगत् की रीति का निर्वाह–करते हुए उन्होंने पुरखों के धर्म को तिलांजलि दी थी। ईसाई उच्चधिकारियों से धनिष्ठ संबंध बना लिए और उसी आधार पर उन्होंने अपनी फर्म 'जोशी एवं पंत कन्ट्रक्टर्स' के लिए जंगलात के भारी मुनाफे के ठेके हासिल करके अपने लिए आर्थिक संपन्नता के रास्ते खोल लिए थे।''[५]

किन्तु दिलचस्प बात यह है कि उन्होंने अपने जाति सूचक नाम नहीं बदले। पंत, जोशी, ठाकुर, चटर्जी, बनर्जी आदि नाम अपनी जातिगत श्रेष्ठता के लिए सुरक्षित रखे। वहीं छोटी जातियों एवम् आदिवासियों से ईसाई बने लोगों ने अपने अतीत को पूरी तरह मसीह समाज में विलीन कर लिया।

इस उपन्यास में ईसाइयों का पूरे अंतविरोधों के साथ यथार्थ चित्रण किया गया है। ईसाई मिशनरियों की एक सार्थक भूमिका भी है उन्होंने मनुष्यता से च्युत लाखों लोगों को शिक्षित करके सभ्यता की रोशनी से परिचय कराया। गरीबों के बीच अस्पताल एवम् स्कूल खोले। मेहतर और आदिवासी समाज को उँची जाति के अमानवीय व्यवहार से काफी हद तक मुक्ति दिलाई। उच्च वर्ग के कुलीन लोगों को ईसाइयों का व्यवहार कभी अच्छा नहीं लगा लेकिन भारतीय समाज में मिशनरियों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। उपन्यास में ईसाई मिशनरियों के श्वेत एवम् श्याम दोनों पक्षों पर चर्चा है। 'मोरी की ईंट' में ईसाई मिशनरी न नायक है न खलनायक। यही सही है कि चाहते हुए भी वे भारतीय समाज का अंग नहीं बन सके, इसलिए वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में स्वतंत्रता आंदोलन का विरोध करते रहे। उन्हें भय था कि स्वतंत्र भारत में काम करने की छूट नहीं होगी।

मंदिर की राजनीति स्वतंत्रता से पूर्व भी निहित स्वार्थी वर्ग करता है। इस उपन्यास का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है–साहू कन्हैयालाल। सूदखोरी, मिलावट और दलाली के कार्य में सिद्धहस्त। मेहतर बिरादरी साहू कन्हैयालाल के कर्ज से सबसे अधिक पीडित है। साहू ने अफवाह फैला दी कि उन्होंने हरिजनों के लिए जो

रामजी का मंदिर बनवाना शुरु किया था, क्रिस्तानों ने उनकी नींव उखड़वा के फिंकवा दी। शहर में चारो ओर यहीं चर्चा चलने लगी। लोग स्वयं जाकर वास्तविकता को जानने का प्रयास नहीं करते किन्तु बिना वास्तविकता को जाने इन अफवाहों पर विश्वास कर लेते हैं। हिरिया चाची को यह बात मालूम होती है तो प्रतिकार करते हुए उनके शब्दों में – ''बहूजी रामजी की कृपा होगी तो हमीं लोग बना लेंगे उनका मंदिर अपनी बस्ती में। रामजी की पूँछ पकड़कर उस कन्हैयालाल रावण को हम अपनी बस्ती में नित नए सीता हरवा नहीं करने देंगे।''[६]

मोरी की ईंट के ई महत्त्वपूर्ण दलित पात्र हैं जो परिस्थितियों से समझौता नहीं करते और अपने समाज की दृर्दशा बदलने के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं। इस उपन्यास की प्रमुख पास मंगिया (मंगो) एक साधारण सफाई कर्मचारी है किन्तु बहुत ही जीवट एवम् आत्मविश्वास से पूर्ण महिला है। वह अपमान, लांछन सब कुछ सहती हे किन्तु अपने मार्ग पर दृढ़ता से चलती रहीत है। जब जमादार हीरालाल उसे साहू कन्हैयालाल के चंगुल में फँसाने का प्रयास करता है तो वह चुनौती देते हुए कहती है – ''मंगिया के बही–खाते में सब कुछ लिखा है, मुझसे अटकेंगे तो चौराहे पर ऐसा घड़ा फोडूँगी कि साहूजी की सात पुश्तें पानी माँग जायेंगी।''[७]

वह अपने साथ काम करनेवाली मेहतरानियों के लिए आदर्श है, उनके काम भी आती है। मंगिया के चंडी रूप की चर्चा मेहतर बस्ती में भी पहुँची। औरतों के मन बल्लियों उछलने लगे। लोगों को लगने लगा कि अब मिला है साहू साहब को सेर का सवा सेर। वह स्वयं भी संघर्ष करती है एवम् मेहतर समाज की कुरीतियों और अंधविश्वासों से भी। एक तरह से यह उपन्यास मंगिया की संघर्ष गाथा है, एक स्वावलंबी नारी बनने की प्रक्रिया एवम् एक साधारण स्त्री से स्वाभिमानी स्त्री बनने की विकास यात्रा। उसका साथ देती है हरिया चाची, किशनलाल और हरीलाल। दलितों का उत्थान उनके ही बीच से निकलकर आने वाले नौजवान स्त्री–पुरुषों से ही संभव होगा। दलितों में हीरालाल जैसे स्वार्थी एवम् दलाल किस्म के लोग भी है जो अपनी संपन्नता में वृद्धि करने के लिए अपने ही लोगों के साथ विश्वासघात करते हैं।

संदर्भ :–

१. मोरी की ईंट, मदन दीक्षित, पृ. ६
२. मोरी की ईंट, मदन दीक्षित, पृ. ६
३. मोरी की ईंट, मदन दीक्षित, पृ. ४८
४. वही, पृ. ४८
५. मोरी की ईंट, मदन दीक्षित, पृ. ५६
६. मोरी की ईंट, मदन दीक्षित, पृ. १६७
७. मोरी की ईंट, मदन दीक्षित, पृ. १२२

Dr. Alpeshbhai H. Gamit
Sai Aashirvad Complex, Buhari
Digital Electric and Electronic, Ta. : Valod] Dist. – Tapi-394630 (Gujarat)
Mo- 98254 71675, E-mail : gamitalpesh594@gmail-com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 508-511
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय समाज में अनुसूचित जाति की महिला उत्पीड़न का प्रभाव

-गामीत विपुलकुमार सीमाभाई

पीएच.डी. (शोध छात्र), हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय, पाटन-३८४२६५ गुजरात

भारत में नारी की स्थिति विरोधाभास पूर्ण रही है। परम्परा से नारी को शक्ति का रुप माना गया है। किन्तु आम बोलचाल में उसे 'अबला' कहाँ जाता है। महाकाव्यों में और प्राचीन इतिहास की पुस्तकों में हमें नारी की शक्ति और महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों के बारे में पढ़ने को मिलता है। स्पष्टतः ये कुछ अपवाद है। लम्बे मध्यकालीन युग में नारी का दर्जा कम होता गया और उसे अधिकाधिक कठिनाईयों तथा बर्बर रीति-रिवाजों का शिकार होना पड़ा। अनन्तकाल से नारी की केवल शोभा और प्रदर्शन के रुप में चर्चा होती रहीं है। जब भी उसने इस घेरे से बाहर आने की कोशिश की, उसे उपहास और व्यंग का पात्र बनना पड़ा।

महिला उत्पीड़न कहीं ना कहीं इन सभी सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक, शारीरिक आदि रुपों में प्रभावित करता हैं। महिला उत्पीड़न की घटनाएँ एक ओर तो महिलाओं की स्थिति को समाज में निम्न और दयनिय बनाती हैं। भारतीय नारियों की दुदर्शा और हीन अवस्था के जाने अनजाने से ऐसे महत्त्व हैं जिन्हें देखकर विष के घूंट पीकर रहे जाना पड़ता है। वह यातना के बीचोबीच खड़े मानव की पहली कतार में है और इन्सान पर हुए हमलों को सबसे पहले अपनी छाती पर झेलती हैं और यह सहना झेलना उसके मृत्युपर्यन्त चलता है।

अनुसूचित जाति की महिला उत्पीड़न का मानसिक प्रभाव :-

महिला उत्पीड़न का महिलाओं पर मानसिक प्रभाव सबसे अत्यधिक पड़ता है। समाचार पत्रों पत्रिकाओं में आये दिन प्रकाशित होने वाली महिलाओं द्वारा आत्महत्या की घटनाएँ भी उत्पीड़न को मानसिक प्रभाव को ही स्पष्ट करती है। जैसा कि होता आता है कि गृहकलेश या प्रताड़ना से तंग आकर महिला ने आत्महत्या की या जहर खाया आदि। इस तरह की घटनाएँ महिला उत्पीड़न के मानसिक प्रभावों को ही स्पष्ट करती हैं।

अनुसूचित जाति की महिलाओं पर पड़ने वाला अन्य मानसिक तनाव, निराशा, अवसाद, पागलपन, गंभीर बीमारी आदि। इससे स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं पर उत्पीड़न का मानसिक प्रभाव मुख्यतः बुरा होता है।

अनुसूचित जाति की महिला उत्पीड़न का शारीरिक प्रभाव :-

अनुसूचित जाति अर्थात् निम्न। दलित जाति की महिलाओं पर जो शोषण होता है, उसका प्रभाव न केवल मानसिक रुप से पड़ता है बल्कि इसके साथ-साथ उन पर किये जाने वाले उत्पीड़न का शारीरिक प्रभाव भी

पड़ता है। शारीरिक प्रभावों में हमे देख सकते है कि विकलांगता बीमारियाँ मृत्यु आदि महिलाओं के ऊपर निरंतर होनेवाले अत्याचार ओर उत्पीड़न का प्रभाव हो सकता है। उत्पीड़न का शारीरिक प्रभाव उत्पीड़ित महिला के अन्य सभी क्षेत्रों पर भी पड़ता है। शारीरिक प्रभाव, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक सभी रुपो को प्रभावित करता है। तथ्यों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि उत्पीड़न का शारीरिक प्रभाव अधिकांश महिलाओं पर बुरा होता है।

अनुसूचित जाति की महिला उत्पीड़न का आर्थिक प्रभाव :-

निम्न जाति की महिलाओं पर जो आए दिन अत्याचार या उत्पीड़न होता है उनका आर्थिक प्रभाव भी उन पर पड़ता है, जैसे भुखमरी, भिक्षावृत्ति, आपराधिक कार्यो में संलग्न हो जाना, सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा, आर्थिक अभाव, उपभोग की वस्तुओं का अभाव आदि। निम्न जाति की महिलाओं की आर्थिक परिस्थित निम्न होने के कारण ये आर्थिक रुप से भी काफी प्रभावित होती है।

उत्पीड़न के प्रभावो से समाज में विभिन्न सामाजिक विघटन की स्थितियों उत्पन्न हो जाती है। भिक्षा वृत्ति, भुखमरी, आपराधिक कार्यो में वृत्ति आदि समस्याओं का उद्‌भव उत्पीड़न के आर्थिक प्रभावों से ही होता है। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि उत्पीड़न का आर्थिक प्रभाव भी अनुसूचित जाति की अधिकांश महिलाओं पर बूरा ही पड़ता है।

अनुसूचित जाति की महिला उत्पीड़न का पारिवारिक जीवन तथा महिलाओं की भूमिका पर प्रभाव :-

महिलाओं पर होनेवाले अत्याचारों एवं उत्पीड़न की घटनाओं से पारिवारिक जीवन एवं उनकी दैनिक भूमिकाओं पर भी प्रभाव पड़ता है। तथा वे अपने पारिवारिक जीवन में सुचारु रुप से चला नहीं पाती है। परिवार तथा बाहरी क्षेत्र में की जानेवाली भूमिकाएँ उनके उत्पीड़न से प्रभावित होती है। दैनिक भूमिकाओं का निर्वाह वे अपनी मर्जी से ना करके दूसरों के दबाव में मजबूरी या भय के कारण बनती हैं। इसके साथ–साथ निरंतर पताड़ना से तंग होने के कारण वे शारीरिक और मानसिक कष्ट के कारण अपनी सामान्य भूमिकाओं का निर्वाह कुशलतापूर्वक नहीं कर पाती हैं। जिसके परिणाम स्वरुप उनका उत्पीड़न अनपरत चलता ही रहता है। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाओं के पारिवारिक जीवन पर उत्पीड़न का प्रभाव प्रमुखतः बुरा पड़ता है।

महिला उत्पीड़न के प्रभावों के संदर्भ में निष्कर्षतः यह भी कहा जा सकता है कि मानसिक रुप से प्रभावित होनेवाली उत्तरदात्रियों का प्रतिशत सर्वाधिक है जो ३२ प्रतिशत है। उत्पीड़न का प्रभाव ८० प्रतिशत उत्तरदात्रियों पर बूरा पड़ा है। जबकि उत्पीड़न का पारिवारिक जीवन पर प्रभाव सर्वाधिक उत्पीड़न का पारिवारिक जीवन पर प्रभाव सर्वाधिक ७५ प्रतिशत उत्तरदात्रियों पर बूरा पड़ा है।

अतः कहा जा सकता है कि उत्पीड़न का प्रभाव महिलाओं पर सभी रुपों में पड़ता है। जिससे उनकी दैनिक भूमिकाएँ भी प्रभावित होती हैं एवं समाज में वे अपने आपको दूसरे दर्जे का मानने लगती है।

अनुसूचित जाति की महिला उत्पीड़न और अभिजात्य वर्ग की भूमिका का प्रभाव :-

अनुसूचित जाति की महिलाओं के उत्पीड़न में इसी जाति की अभिजन महिलाएँ उत्पीड़न महिलाओं के प्रति किस प्रकार की भूमिका निभाती है। इसके अध्ययन हेतु चुनी गई ईकाईयों का कहना है कि अभिजन

महिलाओं का उनके प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं है उसका मानना है कि महिला अभिजन अभी भी उनके उत्पीड़न के समीप उदासीन रहती है एवं उत्पीड़ित महिलाओं के लिए कोई प्रयास नहीं करती है, उनकी मदद नहीं करती है, महिला अभिजन का महिला उत्पीड़न में कम महत्त्वपूर्ण योगदान होने का कारण यह है कि जब ये उच्च पदों एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेती है एवं उनके प्रति अपना दायित्व भूल जाती है। अनुसूचित जाति की महिलाओं में अभिजात्य वर्ग की महिला बहुत कम संरक्षत में पाई जाती है अभिजात्य वर्ग में आने वाली–महिलाएँ अपने विचारों द्वारा समाज में एक भिन्न स्थान रखती हैं उनके दृष्टिकोण से अनुसूचित जाति की महिलाओं पर होने वाली उत्पीड़न अनुसूचित एवं हृष्टप्रद है। क्योंकि वे स्वयं भी कठिन परिश्रम द्वारा निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी को प्राप्त हुई है। इस कारण वह निम्न श्रेणी की अनुसूचित जाति की महिलाओं के प्रति होनेवाले उत्पीड़न व प्रताड़ना करने में अभिरुचि नहीं दर्शाती हैं। परंतु यह भी पूर्णतः सत्य नहीं है कि सभी अनुसूचित जाति की अभिजात्य महिलाएँ निम्न अनुसूचित जाति की महिलाओं के शोषण के प्रति निष्क्रिय हो। बहुत से अपवाद ऐसे भी मिले हैं जिनमें अभिजात्य वर्ग की महिलाओं ने अपनी सराहनीय भूमिका अदा की है।

अनुसूचित जाति में महिला जागरूकता :–

ऐतिहासिक क्रम में अनेकानेक सामाजिक और धार्मिक निषेधों तथा आर्थिक विवशताओं के चलते महिलाएँ घर की चारदीवारी में ही कैद रही है। जिसके परिणामस्वरुप अपने उपर होने वाले अत्याचारों और उत्पीड़न को बर्दाश्त करना उनकी नियति बनी हुई थी। निम्न जाति की महिलाओं के संदर्भ में तो ये विवशताएँ और योग्यताएँ दोहरी थी – एक महिला होने की और दूसरी निम्न जाति से सम्बन्धित होने की। सामाजिक परिवर्तनों और आंदोलनों के क्रम में भी हम देखते है कि जहाँ महिला जागरुकता धीरे–धीरे दिखाई पड़ने लागी थी, वही अनुसूचित जाति की महिला होने के कारण इसे वर्ग की महिलाओं में यह जागरुकता सामान्य तौर पर स्वतंत्रता के पश्चात् भी बहुत कम दिखाई देती रही है। हालाँकि घटनाओं और आरक्षणों के प्रावधानों से तथा महिलाओं के अधिकारो और कल्याण सम्बन्धी विभिन्न योजनाओं तथा अनुसूचित जाति सम्बन्धि कल्याणकारी योजनाओं के परिणाम स्वरुप हमें इस वर्ग की महिलाओं में कुछ जागरुकता देखने को मिला है।

महिलाओं में सामाजिक जागरुकतालाने में कई समस्याएँ सामने आती है जिनका समाधान करने से महिलाओं में जागरुकता लाई जा सकती है। जैसे–निरक्षरता, सामाजिक जागरुकता को बाधित करने वाला प्रमुख तत्व है। अभिजन महिलाओं के प्रति उदासीनता या निष्क्रियता उन्हें निराश करती है फिर भी कही ना कही वे स्थिति परिवर्तन की सम्भावनाओं को महसूस करती है और उनसे प्रभावित भी होती हैं। भारतीय संविधान में पुरुषों और स्त्रियों के लिए समान अधिकारों की व्यवस्था हैं, लेकिन कारखानों, मृत व्यक्ति की अत्येष्टि तथा अन्य मोको पर सामाजिक पद्धति उन्हें समानता का हक नहीं देती। इसी तरह शिक्षा स्वास्थ्य, भोजन और पोषाहार विवाद पद्धति तथा जीवन के अन्य पक्षों में यहाँ तक कि अपना दूध पिलाने में भी लैंगिक पूर्वाग्रह देखने में आता है।

पैतृक सम्पत्ति का अधिकार अनेकों कारण हैं जो महिला जागरुकता में आज भी बाधक बने खडे है जिनका समाधान आवश्यक है तभी महिलाओं में जागरुकता आएगी। यद्यपि महिलाओं को संविधान में अधिकार

दिएगए है और उनके कार्यान्वयन के लिए कानून बनाए गए है महिलाएँ अपने अधिकारों को मांगने के लिए आगे नहीं बढ़ती है, इसलिए दूरी बनी रहती हैं। आज विभिन्न स्तरों पर महिलाओं के भविष्य को सुधारने हेतु किए गए प्रयासों के बाद भी महिलाओं की अस्मिता को ठेस पहुँच ही जाती है तथा उनका समाज के हर स्तर पर कही ना कही किसी ना किसी रुप में उत्पीड़न का धुँआ दिख ही जाता है। और अनुसूचित जाति की महिलाओं में इस उत्पीड़न का रुप और भी विकराल रुप से व्याप्त है जो आज कम होने के बजाय आज की भाँति इनके पूरे समाज को अपने चपेट में लिये जा रहा है। इस स्थिति पर नियंत्रण कैसे स्थापित किया जाए इसके लिए सम्पूर्ण समाज को एकजूट होकर विचार करना होगा।

इस प्रकार अनुसूचित जाति की महिलाओं का भविष्य संतोषजनक नहीं है। क्योंकि इनकी आज की स्थिति बहुत चिन्ताजनक एवं अनिश्चित हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

१. 'द सरकयूलेशन ऑफ इलिट इन थ्योरीज ऑफ सोसायटी' – पारसन्स, टालकट (१९६२)

२. 'भारतीय समाज में महिला उत्पीड़न' – डॉ. मंजुलता छिल्लर (२०१०)

३. 'भारतीय समाज और संस्कृति' – मुखर्जी रविन्द्रनाथ (२००१)

४. भारतीय नारी दशा और दिशाएँ – व्होरा आशारानी (१९८३)

५. राष्ट्रीय महिला आयोग – वार्षिक रिपोर्ट, (१९९७–९८)

६. राष्ट्रीय महिला आयोग – वार्षिक रिपोर्ट, (२०००–२००१)

Gamit Vipulkumar Simabhai

Sai Aashirvad Complex, Buhari

Digital Electric and Electronic

Ta- : Valod, Dist. – Tapi-394630 (Gujarat)

Mo- 87584 89199

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 512-516
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मनोरंजन के क्षेत्र में हिंदी भाषा के माध्यम से रोजगार के अवसर

–संयोगिता मौर्या

सहायक अध्यापक, गार्डन सिटी विश्वविद्यालय, बैंगलोर–49

उपयोगिता के बारे में दार्शनिक विचारक प्लेटो का कहना है कि– "एक गोबर से भारी हुई टोकरी भी सुन्दर कही जा सकती है यदि वह अपना कोई उपयोग रखती हो, अन्यथा एक स्वर्णजित चमचमाती हुई ढाल भी असुंदर है यदि वह उपयोग की दृष्टि से महत्वहीन हो।"[1] मनुष्य कर्मशील प्राणी हैं। वह पुरे दिन काम में लगा रहता है और जब वह थका हारा शाम को घर आता है, तो वह बहुत थका महसूस करता है। अपने शारीरिक थकान के साथ वह मानसिक थकान को दूर करने के लिए उसे विश्राम की आवश्यकता होती है। शारीरिक थकान तो आराम करने से दूर हो जाती है, लेकिन मानसिक थकान को दूर करने के लिए मनोरंजन की अवश्यकता होती है।

इसीलिए मानव जीवन में मनोरंजन का महत्वपूर्ण स्थान है। आचार और चटनी जिस प्रकार हमारे भोजन को स्वादिष्ट बनाते है, मनोरंजन का भी वही स्थान मानव जीवन में है, अचार और चटनी से जिस प्रकार भूख शांत हो जाती है उसी प्रकार मनोरंजन से भी जीवन में नैतिक शक्ति, स्फूर्तिदायक और नई उमंगें मिलने लगती है।[2] समय के अनुसार बदलाव आते गया और मनोरंजन के नए–नए साधन होने लगे, लेकिन हमारे ऋषियों ने जीवन को उदासी, शिथिलता और थकान को दूर करने के लिए ही पंचांग की रचना किये और तरह–तरह के उत्सवों एवं पर्व का निर्माण किया जैसे– होली दीपावली, दशहरा आदि अनेकों प्रकार के विधानों का निर्माण किया। हिंदी भाषा भारत के अतिरिक्त जहाँ प्रवासी भारतीय रहते हैं उनमे ही अधिक संख्या में हिंदी बोली जाती है। जैसे अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, यमन, कनाडा, युगाडा, सिंगापूर, न्यूजीलैंड, जर्मनी, ब्रिटेन के अतिरिक्त बहुत से देशो में भी बोली जाती है।[3]

बीते 26 जून, 2018 को देश के महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त द्वारा जारी किए गए आंकड़ों के अनुसार देश की कुल जनसंख्या में 43.63 प्रतिशत जनसंख्या की मातृभाषा हिंदी है। एथ्नोलॉग की रिपोर्ट के अनुसार हिंदी भाषा दुनिया में चीनी भाषा के बाद सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। हिंदी भाषा के महत्व को इसी बात से समझा जा सकता है कि भारत के संविधान के अनुछेद 343(1) में देवनागरी लिपि में हिंदी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया है। यकीनन वैश्वीकरण और निजीकरण के वर्तमान परिदृश्य में अन्य देशों के साथ भारत के बढ़ते आर्थिक संबंधों को देखते हुए संबंधित आर्थिक साझेदार देशों की भाषाओं की अंतर शिक्षा

की जरूरत महसूस की जाने लगी है।[4] इसके साथ ही विदेशियों में भी हिंदी भाषा के प्रति रुचि दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यही कारण है कि कई देशों ने अपने यहां हिंदी भाषा को प्रोत्साहन देने के लिए शिक्षण केंद्रों की स्थापना की है। विदेशी छात्र भी हिंदी को लोकप्रिय और सरलता से सीखने योग्य भारतीय भाषा मानते हैं। अब हम विचार करते है कि मनोरंजन के क्षेत्र में हिंदी भाषा में रोजगार के वे कौन से साधन है, जिसके द्वारा हम अपने जीवन को महत्वपूर्ण दिशा दे सकते है, और जीवन में अनेक लाभदायक कार्य कर सकते है इसे हम निम्न प्रकार से समझ सकते है –

हास्य व्यंगात्मक लेखन :–

मनोरंजन ऐसा साधन है जिसने जीवन को रसों से भर देता है। हमारे जीवन को उत्साहवर्धक और ज्ञानवर्धक बनाता है। इसमें अनेक प्रकार के रोजगार है जो हम सब अपने भविष्य को बना सकते है जैसे–व्यंग कहानी लिखना, हास्य व्यंग छुटकुल्ले बच्चो के लिए लिखना और सुनना आदि।

कार्टूनिस्ट :–

लिखना जीवन का सबसे अच्छा हथियार माना गया है यदि आप अपनी लेखनी को रोजगार की नजर से देखते है और उसमें अपने जीवन का भविष्य देख रहे है, तो वह बहुत ही अच्छी खासी कमाई का जरिया हो सकता है। अपने लेखन को व्यंगात्मक रूप देते हुए कार्टून चित्र के साथ लिखना शुरू कर दीजिये इसमे आप समाचार पत्रों में अपना कार्टून छपा सकते है किताब बच्चो के लिए लिख सकते है कार्टून चैनलों के लिए पटकथा लिख सकते है। एक कार्टूनिस्ट का कैरियर कला के कई क्षेत्रों जैसे– कागज या डिजिटल ड्राइंग, कहानी सुनाना, लेखन और व्यंग्य की कला है। कार्टूनिस्ट स्थितिजन्य या प्रासंगिक हास्य को चित्रित करने वाले कार्टूनों के लिए अवधारणा बनाने, चित्रित करने और बनाने में गहराई से शामिल हैं। एक कार्टूनिस्ट ध्वनि कल्पना, चालाक कला कौशल और सम्मोहक उपन्यास प्रदर्शित करता है। तकनीक के आधार पर, एक कार्टूनिस्ट स्टिल कार्टून निर्माण या एनिमेटेड कार्टून में महारत हासिल करना अपना भविष्य चुन सकता है। वर्षों से, मुद्रित कार्टूनों ने चित्रण के डिजिटल तरीकों को रास्ता दिया है, यही वजह है कि प्रिंट मीडिया के लिए कार्टून ड्राइंग कार्य का एक धीमी गति से बढ़ने वाला क्षेत्र है। दूसरी ओर, डिजिटल कार्टूनिस्ट और एनिमेटरों के पास स्वतंत्र कलाकारों और कला फर्मों में भर्ती होने वालों के रूप में उज्ज्वल कैरियर की संभावनाएं हैं। डिजिटल मीडिया के लोकतंत्रीकरण के साथ, इंटरनेट कार्टूनिस्टों को सशुल्क अवसरों का पता लगाने के लिए एक मजबूत मंच प्रदान करता है।

स्टैंड कॉमडी :–

स्टैंड–अप कॉमेडी एक हास्य शैली है जिसमें एक कॉमेडियन लाइव दर्शकों के सामने प्रदर्शन करता है, आमतौर पर उनसे सीधे बात करता है। कलाकार को आमतौर पर कॉमिक, स्टैंड–अप कॉमिक, स्टैंड–अप कॉमेडियन या बस स्टैंड–अप के रूप में जाना जाता है। स्टैंड–अप कॉमेडी में कॉमेडियन आमतौर पर हास्य कहानियों का एक तेज–तर्रार उत्तराधिकार, 'बिट्स' नामक छोटे चुटकुले और एक–लाइनर्स का पाठ करता है,

जो कि आम तौर पर एक मोनोलॉग, रूटीन या एक्ट कहलाता है। कुछ स्टैंड–अप कॉमेडियन अपने अभिनय को बढ़ाने के लिए प्रॉप्स, म्यूजिक या मैजिक ट्रिक्स का इस्तेमाल करते हैं। स्टैंड–अप कॉमेडी अक्सर कॉमेडी क्लब, बार, नियो–बर्लेस्क, कॉलेजों और थिएटरों में की जाती है। लाइव प्रदर्शन के अलावा, स्टैंड–अप को अक्सर टेलीविजन, डीवीडी और इंटरनेट के माध्यम से व्यावसायिक रूप से वितरित किया जाता है। हसंने–हँसाने की एक कला होती है सभी को यह कला नहीं आती, अगर आप में यह खूबी है तो आप अपने रोजगार में इसे भी शामिल कर सकते है।

आज बहुत से ऐसे लोग है, जो अपना रोजगार इसी को मानते हुए इसी में अपना भविष्य बना रहे है, जैसे – जाकिर खान– 'द सख्त लौंडा', अभिषेक उपमन्यु, बिस्वा कल्याण राठी, कानन गिलो, केनी सेबस्टियन, अबीश मैथ्यू, अदिति मित्तल, नीति पलटा, अनुभव सिंह बस्सी, वीर दास, विजय यादव, अभिजीत गांगुली, संदीप शर्मा, गौरव गुप्ता, अपूर्व गुप्ता आदि।

रेडियों प्रोग्राम :–

अगर आप लोगों से बाते करना और उनकी दिलचस्प बाते सुनना पसंद करते है, तो रेडियो जॉकी बनाकर अच्छी कमाई कर सकते है। आज रेडियो जॉकी का कार्य क्षेत्र काफी फैला हुआ है। रेडियो प्रोग्राम में वैसे तो स्नातक की डिग्री होनी चाहिए। यहाँ पर काम करने के लिए आप की आवाज की गुणवत्ता बहुत मायने रखती है। आपकी आवाज सुनने वालो को मीठी लगनी चाहिए, हँसमुख स्वभाव होना जरुरी है। रोजगार की सम्भावनाये आज ज्यादा बढ़ गयी है। आने वाले कुछ सालो में 799 एफ एम चौनल खुलने की संभावना है। जाहिर सी बात है कि रोजगार के अवसर भी बढ़ जायेगे।

अभिनय कला नौटंकी :–

अभिनय कला आज के समय में अच्छा माना जाने लगा हैं। युवा पीढ़ी का रुझान ज्यादा देखने को मिलता है। इसके लिए अनेक नाट्य अकादमी है जहाँ लोग जाकर प्रशिक्षण लेते है। और अपने योग्यता के बल पर अनेक सुनहरे अवसर प्राप्त करते है। जैसे –फिल्मों में, थियेटर में, नुक्कड़ नाटको में, टी.वी. के प्रोग्राम में, अनेक तरह के समारोहों में, आदि।

फिल्म अनुवादक :–

अनुवादक का क्षेत्र अब काफी बढ़ गया है। इसके लिए दो भाषाओ में पारंगत होना जरुरी होता है। कोई व्यक्ति एक स्वतन्त्र अनुवादक के तौर पर अपनी आजीविका संचालित कर सकता है और अपना अनुवाद कंपनी भी खोल सकता है ईएसआई कंपनिया समझौते के तौर पर कार्य को प्राप्त कर सकती है। और पेशेवर अनुवादको को रोजगार उपलब्ध कराती है। बहुत सी ईएसआई विदेशी कंपनिया भी है जो इस प्रकार की परियोजना के अवसर प्रदान कराती है। यह कार्य आसानी से इन्टरनेट के जरिये किया जा सकता है। विश्वभर में सिस्त्रण, एसडीएल इंटरनेशनल, डेट्रॉयर ट्रासलेशन ब्यूरो, प्रोज आदि असीमित संख्या में भाषा कंपनिया है।[6] जिनमें से ज्यादातर भाषाई–उन्मुख कंपनिया है जो कि बहुभाषाई सेवाएँ उपलब्ध कराती है और इसमे से एक भाषा हिंदी

भी है। सामान्यतः इन कंपनियों में रोजगार के अवसर स्थाई या स्वतन्त्र अनुवादको तथा भाषान्तरकारों के रूप में उपलब्ध होते है। जैसे एक भाषा को दूसरे भाषा में बदलना, दूसरी भाषा की फिल्म को हिंदी भाषा में बदलना, किसी भाषा की कहानी बहुत अच्छी है तो उसे हिंदी में लिखने के लिए काम आता है। दूसरी भाषा की फिल्म को हिंदी भाषा में आवाज डब किया जाता है।

पटकथा लेखक :–

एक स्क्रिप्ट राइटर के लिए काम की कोई कमी नहीं है। अगर आपमें कौशल है तो कोर्स के पश्चात आप विभिन्न एड कंपनियों, टीवी चैनल, फिल्म जगत आदि में काम की तलाश कर सकते हैं। चूंकि इन दिनों इंटरनेट का युग हैं तो आप कई तरह के मीडिया हाउस के साथ जुड़कर शॉर्ट फिल्म आदि के लिए भी स्क्रिप्ट राइटिंग कर सकते हैं या फिर इंटरनेट के माध्यम से भी लोगों को अपनी सेवाएं दे सकते हैं।[7] एक बेहतरीन स्क्रिप्ट राइटर बनने के लिए सबसे पहले आपका रचनात्मक होना आवश्यक है। वह कल्पनाओं को भी कागज के पन्नों पर कुछ इस कदर उतारते हैं कि देखने वाला उस पर बेहद आसानी से यकीन कर ले। स्क्रिप्ट राइटिंग का लेखन थोड़ा अलग होता है, इसलिए एक लेखक को कैरेक्टराइजेशन, सीन लिखने व स्क्रिप्ट प्ले लिखने के तरीके के बारे में भी जानकारी होनी चाहिए। साथ ही लीक से हटकर सोचने की दक्षता व अपनी राइटिंग में सोशल मैसेज का किसी न किसी रूप में समावेश उसके लेखन को और भी अधिक प्रभावी बनाता है। याद रखें कि इस क्षेत्र में केवल वही व्यक्ति सफल हो सकता है, जो अपनी कलम के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को बखूबी व्यक्त करना जानता हो। आज के कॉम्पिटीशन के युग को देखते हुए एक स्क्रिप्ट राइटर को डेडलाइन पर काम करना व कंप्यूटर व इंटरनेट की जानकारी होना भी आवश्यक है।

यू टूब चैनल :–

तकनीक के जमाने में जहां मशीनों ने बेरोजगारी को बढ़ाया है वहीं इंटरनेट के इस युग में रोजगार के विकल्प भी खोले हैं। आपने भी देखा होगा इंटरनेट पर 'आजकल हर कोई रातों रात स्टार बन जाता है। किसी भी व्यक्ति को अब अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए बेहतरीन मंच की जरुरत नहीं है। जहां पहले व्यक्ति को अपनी कला और रचनात्मक के लिए एक अच्छे मंच का इन्तजार होता था और उसके लिए बहुत चक्कर लगाने पड़ते थे, वहीं आज सोशल मीडिया और गूगल ने इसकी राह आसान कर दी है। अब आपके पास अपने वीडियो के जरिए प्रसिद्धि पाने के लिए YouTube और सोशल मीडिया बेहतरीन विकल्प है। कमाई की बात करे तो यूट्यूब से लोग करोड़ों रुपए महीने के कमा रहे हैं।

निष्कर्ष :–

हिंदी भाषा हमारी पहचान है इसे और भी प्रभावशाली और उपयोगितावादी बनाने की जरुरत है। आज भाषा का जो परिवर्तित रूप हमारे सामने है, उसका एक सरल रूप पाठ्यक्रम में भी शामिल करने की जरुरत है। शिक्षा संस्थानों में हिंदी से जुड़ी सभी जानकारी इस आधुनिक दौर में विद्यार्थियों को जरुर जानना चाहिए। उन्हें सही रूप में शामिल करना होगा और इस बात को ध्यान में रखना होगा कि शिक्षा संस्थानों के लिए भाषा

के जो पाठ्यक्रम निश्चित किए जा रहे हैं या पढ़ाए जा रहे हैं उनकी उपयोगिता अवश्य छात्रों को स्पष्ट करवाई जाए। डिजिटल संसार में हिन्दी भाषा के कैसे पाठ्यक्रम को बनाया जाए या कैसे छांटा जाए और आधुनिक बनाया जाए, इस पर जोर देने की आवश्यकता है। जब तक भाषा को रोजगार या उपयोगिता के अनुसार नहीं बदला जाएगा, वो एक अतिरिक्त विषय की तरह धीरे–धीरे अपनी गुणवत्ता खो देगी। आज हिन्दी भाषा के प्रयोग को लेकर उसका जो बाजार की दृष्टि से परिवर्तन हुआ है, उसे आप नकार नहीं सकते। लोकप्रियता संचार का सबसे बड़ा उद्देश्य है। हमारी राष्ट्रभाषा ने इस परिवर्तन को हर युग में अपनाया है। संस्कृत से लेकर पाली, पाली से लेकर प्राकृत, प्राकृत से लेकर अपभ्रंश, अपभ्रंश से लेकर खड़ी बोली और खड़ी बोली से लेकर आज की आधुनिक हिन्दी लगातार परिवर्तन को अपनाते हुए अपनी साख को लगातार बढ़ा रही है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आज हिन्दी का एक बड़ा फलक फैला है।

संदर्भ :–

1. डॉ. अशोक तिवारी – प्रतियोगिता साहित्य सीरिज पृष्ट सं. – 281
2. मनोरंजन–के–साधन–पर–निबंध–मेंल.on.
3. https://hindijan.com/2018/04/career.in.hindi/
4. https://brainly.in/question/12107779
5. https://hindi.webdunia.com/hindi.diwas.special.hindi.day.2016.
6. https://www/hindikunj.com/2019/09/hindi.bhasha.me.rojgar.html
7. https://www.prabhasakshi.com/career/tips.for.script.writing

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 517-520
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

किन्नर विमर्श : एक परिचय

–डॉ. संजय मुजमुले

हिंदी विभाग, यशवंतभाउ पाटील महाविद्यालय भोसे (क) तह. पंढरपूर

प्रस्तावना :–

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य का मानव जीवन मे एक अहंम महत्व है। साहित्य हमारे अव्यक्त भावो को व्यक्त करता है। साहित्य से ज्ञान की चेतना का बोध होता है। साहित्य एक गुरू की भाँति मार्गदर्शन करता है, मनोरंजन करता है, ज्ञान की कक्षा बढता है, तो कभी किसे के दर्द की अभिव्यक्ति के लिए एक व्यासपीठ का कार्य करता है।

साहित्य का वर्गीकरण अनेक प्रकारों से किया जाता है। जिसमें किन्नर विमर्श एक महत्वपूर्ण प्रकार है। हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श की शुरूआत प्रसिद्ध लेखक नीरजा माधव जी का 'यमदीप' सन 2002 में प्रकाशित उपन्यास से हुई है। इसके उपरांत कथाकार महेंद्र भीष्म जी का 'किन्नर कथा' सन 2010 में प्रकाशित उपन्यास तथा हिंदी के प्रमुख किन्नर पर आधारित उपन्यास 'मैं पायल, गुलामगंडी, जिंदगी 50–50, तीसरी ताली, चित्रा मुद्गल का सन 2017 साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कार प्राप्त उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं 203 नाला सोपारा' आदि उपन्यासों में किन्नरों के जीवन पर विशेष रूप से लेखन लिख गया है।

भारतीय समाज में जब लिंग की चर्चा की जाती है तो स्पष्ट है स्त्रीलिंग और पुल्लिंग की बात की जाती है। तृतीय लिंग के विषय में कोई बात नही करता। अगर कही पर इस बारे में चर्चा होती है तो इस समाज की और हीन नजरों से देखते है। किन्नरों की शिक्षा की ओर किसी का ध्यान नहीं था। किन्नर समाज के लोग जब शिक्षा की ओर बढ़ने लगे तब हमारे समाज ने उनका इतना मजाक उड़ाया कि उन्हें अपनी शिक्षा बीच में छोड़नी पड़ी। अपने उदर निर्वाह के लिए नाच गाना, शादी–ब्याह में बधाई माँगना, छोटे माटे रस्मों में गाना गाकर अपनी दिनचर्या संभालने लगे। सरकार ने जब से सन 2014 में नालसा जजमेंट पास किया तब से किन्नर समाज फिर से उभरकर सामने आने लगा।

समाज आज तक यह नहीं जानता कि ट्रांसजेंडर क्या होता है और हिजड़ा क्या होता है? ट्रांसजेंडर एक कठिन शब्द है जिसे समझना थोड़ा कठिन है। एक व्यक्ति जिस लिंग में जन्म लेता है। उस से विपरित जब वह अपना आचरण करता है तब उसे ट्रांसजेंडर कहा जाता है। एक ट्रांस स्त्री वह होती है जो पुरुष रूप में पैदा होती है परंतु उसका मस्तिष्क स्त्री का होता है। वह अपनी पहचान स्त्री के रूप में बनाना चाहती है ऐसे

व्यक्तित्व वाली महिला को ट्रांसजेंडर कहा जाता है। ठीक इसी तरह ट्रांस पुरूष वह होता है जो स्त्री के रूप में जन्म लेता है लेकिन पुरूष के रूप में उसे पहचाना जाता है। किन्नर और ट्रांसजेंडर में अंतर है।

किन्नर किसे कहते है :–

वर्तमान समाज मे उपेक्षित वर्गों पर चिंतन है। हमारे समाज में स्त्री और पुरूष ये दो जातियाँ मानी जाती है। लेकिन एक ऐसी जाति है जिसे 'किन्नर' कहते है। किन्नर याने 'हिजडा'। ये न तो पुरूष होते है ना ही स्त्री। ये नपुसकलिंगी होते है जिन्हें समाज 'किन्नर' कहता है। किन्नर को हिजड़ा, उभयलिंगी, तृतीयलिंगी, खुसरा, मौसी आदि नामो से पहचाना जाता है। 'किन्नर' शब्द 'कि' और 'नर' से मिलकर बना है। अधित्तर सामान्य की भाषा मे किन्नर को 'हिजडा' कहा जाता है। हिजडों को परिमार्जित भाषा मे 'किन्नर' कहा जाता है।

विमर्श से तात्पर्य :–

किसी बात पर गहन विचार विनिमय करना ही विमर्श है। विमर्श मे सोच, विचार, चिंतन, परामर्श, विनिमय आदि का होना अपेक्षित है। विमर्श किसी भी विषय को लेकर हो सकता है। व्यक्ति, समाज, वर्ग, जाति, विचार तथा विशिष्ट स्थिति आदि सब विमर्श के विषय हो सकते है। जीवन से संबंधित किसी भी पक्ष या विषय पर गहन–गंभीर विमर्श हो सकता है।

आधुनिक काल में विमर्शवादी अवधारणा के अंतर्गत दलित–विमर्श, स्त्री–विमर्श, शिक्षा–विमर्श, किन्नर–विमर्श, वृध्द–विमर्श यह काफी रूढ हुई दिखाई देता है।

किन्नर विमर्श :–

आधुनिक काल में स्त्री विमर्श के साथ–साथ 'किन्नर विमर्श' की बड़ी चर्चा हो रही है। वर्तमान समय में किन्नर जीवन को लेकर अनेक प्रकार के साहित्य की निर्मिती हो रही है। किन्नर हमारे ही समाज का एक हिस्सा है। हमारे भारतीय समाज में यह लैगिक वर्ग उपेक्षित व हास्य का पात्र रहा है। इनका जीवन कठिनाईयों से भरा पड़ा है। लिंगोंपासक समाज ने किन्नरों को घोर अभिशप्त माना है 'किन्नर' समुदाय के अंतरंग जीवन की मार्मिक्ता को महेंद्र भीष्म के 'किन्नर कथा' उपन्यास में यथार्थ जीवन दिखाई देता है। इस उपन्यास की पायल को जब पता चलता है कि ये पूर्ण रूप से न लड़की है ना हि लड़का तबसे उसके पिता जुगनु का मुंह तक देखना पसंद नही करते थे तब पायल बहुत छोटी थी उन्हें हिजड़ा क्या होता है इस बात का पता नहीं था। जब वह धीरे–धीरे बड़ी होती गई तब वह स्वयं के घर अपने ही पिता द्वारा कहे जाने वाले शब्द–"जब कभी पिताजी दारू के नशे में कोंसतें, गाली देते, 'ये जुगनी! हम क्षत्रिय वंश में कलंक पैदा हुई है, साली हिजड़ा है..... आदि जाने क्या–क्या वे बकते रहते थे। 'हिजड़ा' यह शब्द सबसे पहले मैंने उन्हीं के मुख से सुना था, पर तब मायने से बिल्कुल अनभिज्ञ थी"।[2] प्रस्तुत वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि पितृसतात्मक समाज में लिंग दोष वाले बालक को अपने ही पिता किस दृष्टि से देखते है।

चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित– "पोस्ट बॉक्स नं–203 नाला सोपारा" इस उपन्यास का मुख्य पात्र विनोद उर्फ विमली उर्फ बिन्नी का संवाद अपनी माँ के साथ पत्र के माध्यम सें अपनी विसंगतियों को स्पष्ट करता है।

बिन्नी समाज सें प्रश्न पूछना चाहता है कि क्या समाज हिजड़ों को स्वीकार करने से डरता है। बिन्नी वह बात कहना चाहता है कि अगर विरोध करने से भले परिणाम प्रथम रूप में अच्छे नहीं आएंगे परंतु बदलाव जरूर आएगा–"तु जानना चाहता है न दीकरा, तेरे पप्पा ने तेरी मौत को लेकर भानु मामा से कौन–सा बहाना गढा? जटिल प्रश्न है। अपने चरित्र में भी जटिल प्रश्न तुझे कभी नहीं लगे"।[3]

ऐसे बिन्नी के सवाल से भले ही अनुत्तरित हो लेकिन हमारे समाज इसका जवाब देना होगा। आधुनिक काल में किन्नर विमर्श के माध्यम से किन्नर समाज पर प्रकाश डाला जा रहा है। इन पर जो अन्याय होता आया है, उसको न्याय देने के लिए किन्नर समाज पर लिखे साहित्य के माध्यम से सामने आ रहा है।

किन्नर का अर्थ :–

डॉ. विनय कुमार पाठक जी ने कहा है की "किन्नर शब्द का अर्थ 'जोक' प्रचलित रूप से 'हिजड़ा' बताया गया है। अरबी भाषा के 'हिजर' शब्द से, उर्दु में 'हिजड़ा' यह शब्द बन गया। जो एक ओर अपशब्द के रूप में 'नपुसकता' निर्दिष्ट करता है। वहीं दूसरी और मुल अर्थ में स्त्री पुरूष से पृथक होकर स्वतंत्र रूप से पहचान स्थापित करने वाले वर्ग–विशेष के लिए अभिहित होता है"।[1]

किन्नर को अलग–अलग भाषाओं में विभिन्न नाम से जाता है। मराठी में 'हिजडा', बंगाली में 'हिजरा' हिजरी', तेलगु में 'नपुसक' 'मादा' 'खोजा', पंजाबी में 'खुसरा जंधा'; कन्नड़ में 'जोगप्पा; गुजराती में 'पवैया; सिंधी में 'खदश; छत्तीसगढी में 'हलबा' आदि प्रांतो की भाषा में किन्नर को विभिन्न नामों जाना जाता है।

किन्नर विमर्श का महत्व :–

हमारा समाज दो लिंगो में बँटा हुआ है, एक नर, दूसरा नारी। पर तीसरा भी एक वर्ग है जो आज भी उपेक्षित है। जिसे हम किन्नर या हिजड़ा नाम से जानते है। इस वर्ग की अपनी व्यथा है। ये वर्ग दुःख सह रहा है तथा दर्द में जी रहा है। इनका जीवन हमेशा संघर्षमय रहा है।

इस समाज के किन्नर व्यक्तियों को अनेक समस्याएँ झेलनी पड़ रही है। पर सब से बड़ी समस्या यह है कि, जिन्होंने इन्हें जन्म दिया, पाला–पोसा है इनसे भी इन्हें उपेक्षित रखा जा रहा है। प्रतिष्टा की वजह से अपने ही परिवार से दूर रहकर दुःख दर्द सहन करना पड़ रहा है। इन लोगों को हिजड़ा नपुसक– तृतीय पेशी, खोज, थर्डजेंडर आदि नाम मिले है। परिवार तथा समाज से कटे हुए हिस्से की तरह इन्हे जीना पड़ रहा है। इसलिए वर्तमान समाज में किन्नर विमर्श का महत्त्व है।

किन्नरों के प्रकार :–

किन्नर के कुल पाँच प्रकार दिखाई देते है–1. बुचरा 2. नीलिमा 3. अबुआ 4. हंसा 5. छिबरा आदि।

1. बुचरा :–

यह किन्नर जन्मजात होते है। ये जब पैदा होते है तब लैंगिक दृष्टि से न नर होते है न नारी। अतः जन्मजात हिंजड़ों को 'बुचरा' कहते है।

2. नीलिमा :–

यह स्वंय हिजड़े बनते है। मानसिक तौर पर यह अपने आपको हिजड़ो के निकटवर्ती महसूस करते है। इनका समुपदेशन करने पर वास्तविक लिंग के समुदाय में भेजा जा सकता है।

3. हंसा :–

इन हिजड़ों के प्रकारों में वे यौनता एंव सेक्स की दृष्टि से अपने आप को असक्षम या अकार्यक्षम महसूस करते है और वे हिजड़ों के साथ जुड़ जाते है। इन पर डॉक्टरी इलाज करने पर वे सामान्य स्त्री या पुरूष के वर्ग में जा सकते है।

4. अबुआ :–

यह धन की लालसा में हिजड़ा बन जाता है। यह सामान्य रूप से पुरूष जाति के ही होते है। पर किन्नर जैसा पहनावा करके लोंगो से पैसे लुटते है। सिर्फ धन कमाने के लिए ये नकली किन्नर बनते है।

5. छिबरा :–

यह हिजड़ों का कृत्रिम या बनाया गया रूप होता है। इसमें सामान्य परिवार के छोटे बच्चों को उठाकर ले जाते है और उनका जबरदस्ती से लिंग कटवाकर उन्हें किन्नर बनाया जाता है। ऐसे बनाये गए हिजड़े पुनः डॉक्टरी इलाज से वापस अपने लिंग में लाया जा सकते है।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षता यह कहा जा सकता है। किन्नर समाज के सामने अनेक समस्याएँ है। यह समाज अपनी अलग दुनिया में जी रहा है। बहुत ही कठिनाईयों का उन्हें सामना करना पड़ता है। समाज से इन्हें यातना मिलती रहती है। परिवार में इन्हें रखा नहीं जाता। समाज से घृणा मिलती है तथा किन्नर समाज के प्रति समाज के लोगो का दृष्टिकोण बदलना होगा।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ. विनय कुमार पाठक : किन्नर विमर्श : दशा व दिशा, पृ. क्र 22–23
2. महेंद्र भीष्म : मै पायल, पृ.क्र 24 अमन प्रकाशन 2016
3. चित्रा मुद्गल : पोस्ट बॉक्स नं. 203 : नाला सोपारा, पृ. क्र. 71 सामयिक प्रकाशन 2017
4. साहित्य समाज और किन्नर विशेषांक, बोहल शोध मंजूषा, सं. डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट, 2019
5. किन्नर महाविशेषांक, बोहल शोध मंजूषा, सं. डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट, 2021

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 521-525
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी उपन्यास साहित्य में नारी विषमता का चित्रण

–प्रा. डॉ. शिवाजी उत्तम चवरे, डी. लिट्
अध्यक्ष, हिंदी विभाग, प्रा. संभाजीराव कदम महाविदयालय, देऊर, सातारा–महाराष्ट्र।

आज के दौर में स्त्रियों के साथ कौन से अन्याय नहीं हो रहे है? आए दिन होने वाले बलात्कार, छेड़छाड़, दहेज से जुडे उत्पीड़न, भ्रूण हत्या, सास का दबाव, पति की मार आदि। यह सभी एक खुदगर्ज, लालची, आपराधिक समाज का प्रतिबिम्ब छोड़ते है। छोटी बच्चियों के साथ बलात्कार, उनकी हत्याएँ दिल दहेला देनी वाली घटनाएँ है। बडे शहरों में हम अपनी बच्चियों और परिवार की युवा लड़कियों को लेकर असुरक्षा के बोझ से ग्रस्त रहते है। मनुष्य की पाशविक वृत्ति को नियंत्रित करने में समाज और व्यवस्था पूरी तरह से असफल रही है। लोगों को लगता है कुछ भी लेकर लेने पर बच सकते है। मौका मिलते ही मनमानी करने लगता है। आत्मानुशासन और आत्मसंयम किसी की प्राथमिकता नही रह गई है। स्वतंत्रता पूर्व महानगरीय स्त्रियों का जीवन और 21वीं शताब्दी के स्त्रियों का महानगरीय जीवन इसमें जमीन–असमान का अंतर है। क्योंकि स्वतंत्रता पूर्व स्त्रियॉ घर से बाहर नहीं निकलती थी। वह चूल्हा, चौका और बच्चों को संभालना इतना ही कर सकती थी। लेकिन जैसे–जैसे आधुनिक युग आता गया वैसे–वैसे स्त्रियॉ उच्च शिक्षा लेने लगी और अपने पैरों पर खड़े होने लगी है। पुरूषों के साथ नौकरी करने हेतु घर से बाहर निकल पड़ी है। लेकिन उन्हें पुरूष प्रधान संस्कृति में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

Keywords : उत्पीड़न, भोगी, वेदना, गुहार, पीडा, भूमंडलीकरण, बाजारीकरण, कौंध, दोगलापन विद्रोहिणी, प्रगतिशील, आदमीयता, पिछड़ापन।

भारतीय इतिहास में महिला साहित्य की एक अनुपम उपलब्धि है। देश विदेश में चल रहे नारी शोषण को ध्यान में रखते हुए लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में नारी चिंतन के विभिन्न स्तरों का सजीव चित्रण किया है। लेखिकाओं ने नारी, पुरूष संबंधो के नए मूल्यांकन, सामाजिक जीवन में नारी महत्व, अधिकार एवं परिवार, विवाह, दाम्पत्य जीवन और उनसे जुडी समस्याओं का अपने दृष्टिकोण में प्रस्तुत किया है।

1990 के बाद लेखिकाओं ने नारी समस्या को ध्यान में रखकर समाज को ही कठघरे में लाकर खड़ा कर दिया है। उसमें ममत कालिया, मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, सूर्यबाला, राजी सेठ, कृष्णा सोबती, उषा प्रियवंदा, मैत्रेयी पुष्पा, शशिप्रभा शास्त्री, मालती जोशी, नासिरा शर्मा, दीप्ति खंडेलवाल आदि लेखिकाओं का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने अपने साहित्य में महानगरीय प्रणाली में चल रहे पारिवारिक जनजीवन, नारी शिक्षा और उदासीनता, शिक्षित नारी के सामने आनेवाली समस्या, संस्कृति का विनाश, परम्परा और आधुनिकता के बीच फंसी नारी आदि स्थितियों पर दृष्टिक्षेप डाला है।

पारिवारिक जीवन :-

भारतीय इतिहास में महिला लेखन साहित्य की एक अनुपम उपलब्धि है। उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी चिंतन के विभिन्न स्तरों का संजीवन चित्रण किया है। उसी में पारिवारिक जीवन को भी लिहा है। जैसे– ममता कालिया जैसी महान लेखिकाने अपने 'दौड़' उपन्यास में महानगरीय जीवन प्रणाली में पारिवारिक बिगड़ाव का प्रकटीकरण किया है। वे कहती है, बच्चे अपने पढाई के लिए माता–पिता का सहारा लेते है। लेकिन जब पढाई खत्म हो जाती है और पैरों पर खड़े रहते है, तो माता–पिता को भूलने लगते है। जैसे कि उपन्यास का पात्र पवन एम.बी.ए. की पढाई पूरी कर नौकरी हेतु माता–पिता से 1800 कि.मी. की दूरी पर रहता है। उसी तरह सघन मी दिल्ली में सॉफ्टवेअर का कोर्स पूरा कर विदेश चला जाता है। माता–पिता बूढापे का सहारा समझकर किसी एक को पास रहने को कहते है। लेकिन पैसें के पीछे भागने वाली पीढी पीछे मुड़कर देखती नहीं है।

चित्रा मुदगल ने अपने 'गिलिगडु–उपन्यास में महानगरीय पारिवारिक जीवन का चित्रण किया है। जैसे – जसवंत सिंह का बेटा नरेंद्र और बेटी शालिनी संपत्ति हड़प करके उन्हें वृद्धाश्रम में डालने का षडयंत्र रचते है। बेटा नरेंद्र अधिक धन कमाने हेतु विदेश जाना चाहता है। किंतु पिताजी को अपने साथ ले जाने को तैयार नही है। बेटी शालिनी भी पिता को साथ रखना पसंद नही करती है। किंतु पिता की उपेक्षा कर धन हड़पना चाहते है। उसी तरह कर्नल के बेटे भी फ्लैट बेचकर रूपये चाहते है। बेटा श्रीनारायण पैसों के लिए पीटता है और उसी में उनकी मृत्यु हो जाती है। लेखिका कहना चाहती है कि, बच्चों के लिए आज रूपये प्यारे है। परिवार, घर या माता–पिता नहीं। इस संबंध में रजनी गुप्ता ने लिखा है, ''संस्कृति और बाजारवाद से उपजी सामाजिक विसंगतियों और विडम्बनाओं के बीच सास लेती नई पुरानी पीढ़ी के अन्तर्संबंधो और अन्तःसंघर्षो के विस्तृत यथार्थ को पूरी अर्थवत्ता और अहरे सन्दर्भो तक सार्थ अभिव्यक्ति हो गयी है।''

नारी शिक्षा :-

शिक्षा ज्ञान की गंगोत्री है। इस शिक्षा रूपी गंगोत्री ने नारी की उन्नति में सहायता की है। जीवन में सुधार लाने में सफल हुई है। शिक्षा ने नारी को समस्त अंधविश्वासों से मुक्त कर तार्किक दृष्टिकोण प्रदान किया है। लेकिन शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। नासिरा शर्मा ने 'दहलीज' कहानी में बेटी से ज्यादा बेटे को महत्व देने की मानसिकता और उससे होने वाले परिणाम को उजागर किया है। कहानी सकीना, हुमैरा और शाहीन तीन बहनें है। जावेद उनका भाई है। तीनों बहने शिक्षा समाप्त कर आगे पढना चाहती है। लेकिन अर्थ तथा दादी के कारण वे आगे पढ नहीं सकती है। दादी कहती है कि, ''और बन्नों बंद मुट्ठी लाख की, खुली तो राख की। चुपचाप घर में बैठकर मॉ का सिलाई में हाथ बटाओं। वरना आरिफ मियॉ की इज्जत पर राह चलते ढेले फेकेंगे।'' सकीना के ससुरवाले उसकी पढाई पर नाराज होते है तब वह घुटन से मर जाती है। शाहीन भी शादी की रात आत्महत्या कर लेती है।

नारी शिक्षा के बारे में स्वामी विवेकानंद ने कहा था– ''शिक्षित और सुसंस्कृत स्त्री शक्ति से देश का भाग्य बदला जा सकता है। देश के विकास और प्रगति का मानंदड उस देश की शिक्षित स्त्रियॉ ही होती है। शिक्षित स्त्री और सामाजिक विकास को पर्याय माना गया है। कहा जाता कि, पुरूष को शिक्षित मात्र व्यक्ति को शिक्षित करना है और स्त्री को शिक्षित करना याने पूरे परिवार और समाज को शिक्षित करना है। संविधान में स्त्री पुरूष दोनों के लिए समान शिक्षा के अधिकार प्रावधान है। किंतु देश में पुरूष प्रधान संस्कृति इस बात को मानती नही

है और नारियों को शिक्षा से दूर रखते है।''

शिक्षित नारी की समस्या :-

21वी सदी की सबसे बड़ी समस्या है, व्यवसायलक्षी महिला के साथ यौनिक छेडछाड। जैसे– नौकरी दिलवाने हेतु गंदे एस.एम.एस. भेजकर, कम्प्युटर पर गंदी तस्वीरे दिखाकर आदि। इसके बावजूद भी श्रमजीवी, बुद्धिजीवी जो असंगठित क्षेत्र में काम करती है उन्हें आज भी असुरक्षित रहकर आसपास के पुरूषों की ज्यादतियॉ सहनी पड़ती है।

स्वतंत्रता के पूर्व भारत में नारी चूल्हा, चौका और बच्चों को संभालना इतना ही कर सकती थी। लेकिन स्वतंत्रता के बाद तथा 20वी शताब्दी में नारियों ने उच्च शिक्षा लेना सिखा और आगे बढना चाहा है। किंतु पुरूष प्रधान संस्कृति आज भी शिक्षित नारियों पर अधिकार जमाते है। नारियॉ आर्थिक स्थिती मे सुधार लाने के लिए नौकरी करती है। पर दफ्तर तथा परिवार में उसकी उपेक्षा होती है। जैसे दीप्ति खंडेलवाल के 'नारी तुम' कहानी संग्रह के 'तपिश के बाद– कहानी में पत्नी सुमी पढी लिखी है, बैंक में काम करती है। फिर भी पति आनंद उसकी मद्द नही करते है। उलटे डॉटते है, ''क्या समझने लगी है अपने आप को? बहुत अभिमान हो गया है। यह मत भूलो कि, मै पल भर में तुम्ह ठुकरा सकता हूँ।''

औरतों को बार–बार पति परमेश्वर का शिकार होना पडता है। जैसे–दीप्ति खंडेलवाल के 'कडवे सच– कहानी संग्रह के –एक पारो पुरवैया' में सुधा ने एम.ए. किया है और वह प्राध्यापिका बनी थी। पर पति के तबादले के कारण उसे नौकरी छोड़नी पड़ी। मानसिक अशान्ति के कारण सुधा कहती है कि, ''पुरवैया नहीं पारो दीदी मेरा कोई देवदास नहीं बन पाया। लेकिन मैं पारो बन के रह गई हूँ।'' ममता कालिया के 'दौ़ड' उपन्यास की नारी पात्र स्टैला भी उच्च शिक्षा लेकर नौकरी में आगे बढना चाहती है। इसीलिए उसे अपने पति से दूर रहना पडता है। सास की दृष्टि से वह बहु बनने के लायक नहीं थी। क्योंकि आधुनिक वस्त्रों को अपनाती थी। इसीलिए पवन और स्टैला को मॉ द्वारा शादी की अनुमती नहीं मिलती है।

संस्कृति का विनाश :-

चित्रा मुद्गल जीने अपने ' एक जमीन अपनी' उपन्यास में संस्कृति का विनाश आज के विज्ञापन शो में टू पीस बिकनी में ज्वलित सौंदर्य का प्रदर्शन कर उपभोग की चीज बनी है। इसी पर लेखिका कहती है, ''उन्होंने एक अपेक्षाकृत नए क्षेत्र विज्ञापन की दुनिया का मारक झूठ और सच, दुर्वह, आकर्षण और जगमगाती सफेदी के भीतर छिपे ईर्ष्या, मद–मत्सर की चिडचिडाहट से हमें परिचित कराया है और बोल्डनेस के साथ अपनी इच्छा के विरूद्ध पुरूषों की दुनिया में एक बिकाऊ चीज बनती स्त्री की नियति पर उंगली रखी है।'' वास्तविकता यह है की आज के विज्ञापनों में स्त्री दह का नग्न चित्रण अधिक होता है और उत्पादों की विशेषताओं की चर्चा कम। जैसे नीता के लिए अर्थ तथा प्रतिष्ठा ही सब कुछ है, तो अंकिता के लिए संस्कार तथा मूल्य। क्योंकि वह संस्कृति का ख्याल करती है, पर नीता संस्कृति को बिगाड रही है। नीता अंकिता को समझाते हुए कहती है, 'यह ग्लैमर की दुनिया है अंकू! यहॉ जीने की जी पाने की पहली शर्त है– विशिष्ट दिखना, विशिष्ट करना, विशिष्ट होना, विशिष्ट बनना जो वास्तविक नहीं है।' नीता पैसों के लिए संस्कृति भूल रही है और वह विज्ञापनों में कम कपडों में अंग प्रदर्शन करती है और कईयो के साथ दैहिक संबंध रखती है। वह यह भी कहती है ''स्त्री को स्त्रीत्व से मुक्ति नहीं चाहिए उन रूंढियों से मुक्ति चाहिए जिन्होंने उसे वस्तु बना रखा है।''

'दौड़' उपन्यास में ममता कालिया ने बताया है कि, महानगरीय प्रणाली में रहकर बच्चे संस्कृति को किस तरह से भूला रहे है। पवन माता पिता का आदर करना भूल जाता है। अपनी मनपसंद लडकी स्टैला के साथ शादी कर लेता है। इसमें वह माता पिता की राय नहीं लेता है। सघन भी देश में पढाई करके विदेश चला जाता है। वहॉ की संस्कृति को अपना लेता है। स्टैला भी आधुनिक प्रणाली को अपनाती है। वह अपने सास–ससूर के सामने खुलेआम घुमती है। आधुनिक प्रणाली के वस्त्रों को अपनाती है। आदर प्रणाली को भूल जाती है। इसमे पता चलता है कि, माता–पिता भी विवाह में संस्कृति का जतन क्यों करना चाहते है, पर ऐसा होता नही है।

परंपरा और आधुनिकता :-

शताब्दियों का इतिहास गवाह है कि, पुरूष सत्ताक समाज तथा सामंतवादी लोगों ने नारी को परंपरा के कैद खाने में जखड़ दिया। वह आधुनिकता के दौर में घूमना चाहती है, किंतु उस पर पाबंदियों लगाई गई है। ऑखो पर परंपरा की पट्टिया बॉध दी है। पॉवों में रीति–रिवाज के घुंघरू पहना दिए है। नाक में धर्म की नकेल डाल दी है और सदियों से कोलू के बैल की तरह इशारों पर नाचती है। केवल भारत में यह नही है बल्कि दुनिया भर में नारी शोषण है। 'सीमान्तनी उपदेश– यह पंजाबी महिला द्वारा लिखी किताब है। उसमें बाप तीन शादियॉ करता है और अपनी सात साल की लडकी का विवाह अमीर लड़के से करता है। दो महिने में लड़का मर जाता है। बाप को पता चलने पर वह उसे जहर पीने को कहता है, तब वह कहती है कल पीऊंगी। सुबह हर सहेली से रोते हुए कहती है –

''हो चुका आज जो कि था होना
कल बसावेंगे कब्र का कोना
देख लो आज हम को जी भर के
कोई आता नही फिर मरके।''

इस तरह से हम देखते है कि, औद्योगिकीकरण, नागरीकरण और अर्थोपार्जन की विसंगतियों के कारण पारंपारिक संयुक्त परिवार टूटते है। आज ग्रामीण, नगरीय एंव महानगरीय व्यक्ति आत्मिक स्तर कुंठाग्रस्त अगलाव की भावना से त्रस्त है। व्यक्ति उन्नति करना चाहता है पर उसे विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में नारी भी अपने आप को साबित करने में असमर्थता पा रही है। क्योंकि वह आज भी पुरूषों की तरह विभिन्न समस्याओं का सामना कर रही है।

निष्कर्ष :-

आज के दौर में स्त्रियों के साथ कौनसे अन्याय नहीं हो रहे है? आए दिन होने वाले बलात्कार, छेडछाड, दहेज से जुड़े उत्पीड़न, भृणहत्या, सास का दबाव, पति की मार आदि। यह सभी एक खुदगर्ज, लालची, आपराधिक समाज का प्रतिबिम्ब छोड़ते है। छोटी बच्चियों के साथ बलात्कार, उनकी हत्याऍ दिल दहेला देनी वाली घटनाऍ है। बड़े शहरों में हम अपनी बच्चियों और परिवार की युवा लड़कियों को लेकर असुरक्षा के बोझ से ग्रस्त रहते है। मनुष्य की पाशविक वृत्ति को नियंत्रित करने में समाज और व्यवस्था पूरी तरह से असफल रही है। लोगों को लगता है कुछ भी लेकर लेने पर बच सकते है। मौका मिलते ही मनमानी करने लगता है। आत्मानुशासन और आत्मसंयम किसी की प्राथमिकता नही रह गई है। स्वतंत्रता पूर्व महानगरीय स्त्रियों का जीवन और 21वीं शताब्दी के स्त्रियों का महानगरीय जीवन इसमें जमीन–असमान का अंतर है। क्योंकि स्वतंत्रता पूर्व

स्त्रियॉ घर से बाहर नहीं निकलती थी। वह चूल्हा, चौका और बच्चों को संभालना इतना ही कर सकती थी। लेकिन जैसे–जैसे आधुनिक युग आता गया वैसे–वैसे स्त्रियॉ उच्च शिक्षा लेने लगी और अपने पैरों पर खडे होने लगी है। पुरूषों के साथ नौकरी करने हेतु घर से बाहर निकल पड़ी है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. चित्रा मृद्गल – एक जमीन अपनी – पृ. सं.– 241
2. अंतरंग संगिनी – जुलाई – सितम्बर 2011 – पृ. सं.– 24 एवं 25
3. ममता कालिया – दौड़ (उपन्यास)
4. चित्रा मुद्गल – गिलिगण्डु (उपन्यास)
5. रजनी गुप्ता – कथाक्रम – अप्रैल – जून, 2007 पृ. सं.–118
6. नासिरा शर्मा – खुदा वापसी – पृ. सं.– 64
7. दीप्ति खंडेलवाल – नारी तुम – पृ. सं.– 166
8. दीप्ति खंडेलवाल – कड़वे सच – पृ. सं.– 51

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 526-528
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय समाज में नारी का स्थान : एक परिशीलन

-डॉ. श्रीमती धनेश्वरी दुबे
विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, शा.इ.वि.स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोरबा, छ.ग.।

नारी को अबला समझ, मतकर भारी भूल।
नारी की इस संसार में, जीवन का है मूल।।

प्राचीन भारत में नारी का स्थान बहुत ऊंचा था। वह पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में पुरूष की सहभागिनी होती थी। वेदों में नारी को शक्ति का स्त्रोत माना गया। नारी साहित्य में प्रेरणा, पूजा और प्रेम की स्त्रोत थी। मां, प्रेयसि और गृहणी के रूप में वह सामाजिक जीवन की केन्द्र बिन्दु थी। प्राचीन भारतीय नारी पूर्ण स्वतंत्र थी। उसे स्वयंवर अर्थात् स्वयं का पति चुनने का पूर्ण अधिकार था। शिक्षा के क्षेत्र में वह पुरूषों से किसी भी मायने में कम न थी। सूर्या, गार्गी अपाला, इन्द्राणी, विश्पला, लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिकता, सर्पराज्ञी, ममता, यमी, रोमाशा, जुहू, निवावारी, उर्वशी, श्रद्धा इत्यादि नारियों ने ज्ञान साधना के क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त किए।

स्त्री–पुरूष का मूलाधार एक ही है। उनके जीवन का आदर्श रथ के दो पहियों के समान परस्पर सहयोग की भावना से अनुप्रमाणित है। नारी पुरूष की अर्धांगिनी अर्थात् आधा अंग मानी जाती है। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि 'हम दोनों स्त्री–पुरूष आधी वृगल अर्थात् दाल के समान हैं। इसीलिए यह आकाश (अवकाश स्थान) स्त्री के द्वारा ही पूर्ण होता है।"[1] सृष्टि संबंधी चर्चा करते हुए मनु ने कहा है कि ब्रह्मा ने अपने आधे देह को दो भागों में विभक्त किया, आधे भाग से पुरूष बना व आधे भाग से स्त्री।"[2] लौकिक जीवन में आज भी यज्ञानुष्ठानों तथा अन्य धार्मिक कृत्यों के अवसर पर पत्नी को पति के बायीं ओर इसलिए बैठाते हैं क्योंकि स्त्री का निर्माण आत्म तत्व के वाम अंश से हुआ है।

सम्पूर्ण हिन्दू साहित्य में नारी की माता के रूप में विभिन्न प्रकारों से स्थान–स्थान पर प्रशंसा हुई है। महाभारत में तो स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि माता के समान कोई गुरू (पथ प्रदर्शक) नहीं होता। अतएव माता के रूप में स्त्री ही पुरूष की सर्वप्रथम गुरू होती है। माता जैसे चाहे वैसे संस्कार संतान में डाल सकती है। इसका ज्वलंत उदाहरण अभिमन्यु है जिसने अपनी माता सुभद्रा के गर्भ में ही अर्जुन से चक्रव्यूह के भेदन का रहस्य प्राप्त कर लिया। बालक ध्रुव को ईश्वर भक्ति का पाठ पढ़ाने वाली उनकी जननी सुनीति ही थी छान्दोग्योपनिषद में वर्णित सत्यकेतु जाबाल की कथा इस बात का परिचय देती है कि किस प्रकार माता अपनी संतान को सत्यवादिता सिखाती है। उसने अपने जीवन का सत्य बताते हुए कहा "मैं नहीं जानती कि तेरा गोत्र क्या है, जाबाल मेरा नाम है और तेरा नाम सत्यकाम है, तू अपना नाम "सत्यकाम जाबाल समझ"[3] महाभारत की

नारी पात्रायें विदुला एवं कुन्ती माता के रूप में एवं द्रौपदी पत्नी अथवा सहचरी के रूप में पुरूष की पथ प्रदर्शिका वर्णित हुई है।

धर्म, स्वतंत्रता और स्त्री अस्मिता पर विधर्मी, विदेशी आक्रमणों के विपरित माहौल में भी विधायक मनु ने जहां स्त्री को बचपन से मृत्युपर्यन्त पिता, पति, पुत्र की संरक्षकता में सौंप उसे गुलामी की जंजीरों में जकड़ दिया वहीं दूसरी ओर मनु स्मृति में लिखा है–

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।"

अर्थात् नारियों की पूजा होती है वही देवता निवास करते हैं।

समय परिवर्तनशील है, वह प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है। भारत पर मुसलमानों के आक्रमण होने लगे। पृथ्वीराज चौहान की पराजय के उपरान्त मुसलमानों का भारत पर आधिपत्य हुआ। देश की स्वतंत्रता के साथ ही स्त्रियों की स्वतंत्रता का भी अपहरण हुआ। 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली उक्ति चरितार्थ हुई। सामाज की घृणित विचारधारा ने स्त्रियों को पुरूषों की बराबरी के पद से हटा दिया और उनका स्थान गौण हो गया। इस पर्दा प्रथा ने उनका शिक्षा का अधिकार छीन लिया। स्त्रियों का स्वतंत्रता से वंचित किया गया और कहा गया कि स्त्री बचपन में पिता के अधीन रहे, यौवन में पति के अधीन रहे और बुढ़ापे में पुत्र के अधीन रहे। इतना ही नहीं लड़कियों को जलाया गया, उसे आत्महत्या के लिए मजबूर किया गया, जहाँ निःसंतान पुरूष स्वयं नपुंसक होने पर भी अपनी कमजोरी छिपाने के लिए पत्नी को दोषी ठहराया। जहाँ लड़के के जन्म को मनचाही संतान मानकर बधावे बजाने लगे और लड़की के जन्म को अवांछित या गले पड़ा ढोल मानकर उस पर मातम मनाया जाने लगा। साथ ही विवाह के पश्चात् उसके सुख–दुख तथा दहेज संबंधी चिंताओं के कारण भी माता–पिता लड़की की उत्पत्ति से बचने का प्रयत्न करते थे। ऐतरेय ब्राहम्ण में 'कन्या को दुखों का खान कहा गया है।'[4] इस प्रकार वैदिक युग में रानी के पद पर प्रतिष्ठित नारी जहां निरन्तर अपने सामाजिक स्तर से पतित होते हुए दासी के श्रेणी तक पहुंचा दी गई । युधिष्ठिर का द्रौपदी को दांव पर लगाना, हरिशचन्द्र का पत्नी विक्रय कराना, धृतराष्ट्र द्वारा सौ दासियों का दान करना आदि इसका साक्षात प्रमाण है।

नारियों को पुरूषों के समान अधिकार दिए गए हैं। यदि पति सम्पत्ति का, स्त्री का स्वामी है तो, पत्नी भी पति के सर्वस्व की तथा उसके हदय की भी स्वामिनी है। पुरूष गृह स्वामी होने के साथ–साथ बाहर काम करने वाला श्रमिक भी है किन्तु स्त्री पुरूष की समस्त सम्पदा पर एक मात्र अधिकार रखने वाली घर की रानी है। पति के धन पर तो वह अधिकार रखती ही है 'दंम्पति' शब्द का प्रयोग पारिवारिक सम्पत्ति पर पति–पत्नी के समान अधिकार का स्पष्ट द्योतक है। देश में स्त्रियों की स्थिति में सुधार का प्रयास बराबर बढ़ता ही जा रहा है। सम्तत्ति के उत्तराधिकार के लिए अनेक नये–नये कानून बनाये जा रहे है। आज की नारी शिक्षा के सर्वोच्च क्षेत्र में अध्ययन कर रही है, वह विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य कर रही है, सैन्य शिक्षा भी वह प्राप्त कर रही है। अध्यापिका, राजकीय कर्मचारी, व्यापार से लेकर संसदीय क्षेत्र तक में नारी ने स्थान प्राप्त कर लिया है। साथ ही नारी के इस अभ्युत्थान का श्रेय पूर्ण रूप से पुरूष को ही है क्योंकि उसी के सतत् प्रयत्नों से आज की नारी स्वच्छंद वातावारण में जा रही है।

नारी हमारे जीवन में माता. गृहणी और सहचरी के रूप में आदिकाल से सेवा करती चली आ रही है और भविष्य में भी करती रहेगी। नारी घर की लक्ष्मी होती है अर्थात् घर का सौंदर्य व सौभाग्य वे ही है। महाभारत

में लिखा है– "न गृहमित्याहुः गृहणी गृहमुच्यते।"[5] अर्थात् घर को घर नहीं कहते पत्नी को ही गृह कहते हैं– कह कर महाभारत कार ने पत्नी को अप्रतिम प्रतिष्ठा प्रदान की है। हमारे संविधान में स्त्रियों को पुरूषों के समान ही अधिकार दिए गए हैं। उनकी समस्याओं को सुलझाने के लिए अनेक नियम बनाये गए हैं। ये नियम तभी सफल हो सकते हैं जब स्त्री और पुरूष इस महत्व को समझे और सहयोग दे। यद्यपि स्वतंत्रता के बाद नारियों की स्थिति में बड़ा सुधार हुआ है, फिर भी हमारी प्राचीन मान्यताये रूढ़ियां आज भी बाधक बनी हुई है। दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, अनमेल विवाह, बहु विवाह, अशिक्षा आदि प्रगति के मार्ग में बाधक है। इनका उन्मूलन अनिवार्य है। महिला उत्थान समाज के अविछिन्न आवश्यकता है।

निष्कर्ष :-

भारतीय नारियों का आदर्श सदैव दिव्य रहा है और रहेगा। उनके मर्यादाशील, कर्तव्यनिष्ठ, न्यायप्रिय, ओजस्वी–तेजस्वी एवं शौर्यपूर्ण जीवन चरित्रों पर भारतीय संस्कृति को सदा गर्व रहेगा। नारियों ने कभी माता के रूप में, कभी बहन के रूप में तथा कभी पत्नी के रूप में, पुरूषों के ओजोहीन हदयों को शौर्य से भर दिया है और उनमें कार्य शक्ति का संचार कर उन्हें कार्य क्षेत्र में अग्रसर होने योग्य बनाया है। संक्षेप में हम कह सकते है कि–

नारी नारी कहत हैं,
नारी नर की खान।
नारी से ही नर भए,
ध्रुव, प्रह्लाद समान।।

संदर्भ–ग्रंथ सूची :-

1. बृहदा. उप.– 1, 4, 3
2. मनु– 1, 3, 2
3. छान्दो. उप. 6, 4, 2
4. ऐ.ब्रा. 3, 3, 1
5. म.भा.– 12, 145, 6

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 529-534
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कागज की नाव में संत्रास की भावना–नासिरा शर्मा

–डॉ. भवानी दास

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग), मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

आधुनिक युग की महिला कथाकारों ने नासिरा अपनी अनूठी रचनाओं के कारण अलग पहचान बनाई हुई है। उनकी कथा रचनाएं समय और समाज की भीतरी तह में छिपी सच्चाइयॉ प्रकट करने के लिए पढ़ी और सराही जाती हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में परंपरागत–मूल्यों, रूढियों और उससे उत्पन्न विषमताओं पर खुलकर प्रहार किया है। उनके उपन्यासों में नारी एवं पुरुष पात्र सामाजिक रीतियों, मान्यताएं और अंधविश्वास में सदैव छटपटाते रहते हैं। 'कागज की नाव' नासिरा शर्मा का एक ऐसा ही नया और महत्वपूर्ण उपन्यास है। जिसमें पात्रों के माध्यम से संत्रास की भावना को विविध रूपों में रेखांकित किया गया है। संत्रास की भावना पर विवेचन–विश्लेषण करने से पहले यहॉ संत्रास को समझना आवश्यक–सा प्रतीत होता है।

संत्रास आधुनिक अस्तित्ववादी चिंतन धारा का एक महत्वपूर्ण पहलू है और उसका प्रभाव हिंदी उपन्यासों के आंदोलन से जुड़ा हुआ माना जाता है। संत्रास की भावना व्यक्ति के मन में उस समय जन्म लेती है जब उसमें भय और त्रास की अनुभूति एक साथ उद्‌भुत होती है। जब व्यक्ति असुरक्षा की भावना से पीड़ित होकर कहीं भी अपने आप को सुरक्षित और एडजस्ट नहीं कर पाता, तो उसमें संत्रास की भावना उत्पन्न होती है। डॉ. शशिभूषण पांडेय संत्रास को इस प्रकार माना है कि 'संत्रास भाव–जगत से विचार–जगत की यात्रा तय करता है। यह विशेष मनोदशा की विशेष चिंतनात्मकता है। भय और त्रास से हमें बोध होता है कि हमारा अस्तित्त्व क्या है।'[1] वैसे अगर देखा जाए तो सामाजिक व आर्थिक रूप से आंतरिक वातावरण में जीने के लिए मजबूर करने की भावना संत्रास को जन्म देती है। डॉ. रमेश कुंतल ने कहा है कि जैसा 'सामाजिक संगठन की जटिलता और मनुष्य स्वभाव की विवेकशीलता इन दोनों ने मनुष्य को अत्यधिक अंतर्मुखी बनाया है। अंतर्मुखी मनुष्य इनके संत्रास को खेलता है।'[2] संत्रास आजादी की संभावना भी है कीर्के गार्द का कथन है कि 'जब कोई व्यक्ति किसी बाहरी शक्ति से इतना भयभीत हो जाता है कि उसे अपने नाश की संभावना महसूस हो, यह स्थिति दुशिच्नता है।'[3]

जीवन के आधुनिक वातावरण में उत्पन्न विसंगतियों को लेकर नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास के माध्यम से व्यक्ति के मन में उत्पन्न संत्रास को विविध रूप में दिखाया है। लेखिका ने स्त्री–पुरुष के वैवाहिक जीवन में उत्पन्न सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उपन्यास 'कागज की नाव' में संबंधों में संत्रास, शोषण और तंत्र–मंत्र में उलझी जिंदगी की विषमताओं को उकेरा है जिससे व्यक्ति एक अलग सोच, एक अलग दुनिया और एक अलग वातावरण की सृष्टि कर लेता है। व्यक्ति के जीवन को जटिल से जटिल

और बद से बदतर बनाता चला जाता है।

'कागज की नाव' उपन्यास मूल रूप से मध्यमवर्गीय परिवार की उत्सभूमि पर आधारित है। लेखिका ने उपन्यास में बिहार में रहने वाले एक मुसलमान परिवार की समस्या को दर्शाया है। बिहार में रहने वाले मुसलमान परिवार में बढ़ती बेरोजगारी और उससे उत्पन्न संबंधों में तनाव की स्थिति को दिखाया गया है। नायिका महजबी अपने परिवार और बच्चों के साथ बिहार की सरजमीन पर अपना जीवन यापन कर रही है। वह अपने परिवार के सुख के लिए कुछ भी करने को आमादा हो जाती है। चाहे उससे किसी का अहित ही क्यों न हो रहा हो। जैसे–जैसे समय बीता जाता है उसकी आकांक्षा बढ़ती जाती है। महजबी की दो बेटियां हैं। वह अपनी दोनों बेटियों से बहुत प्यार करती है और उनके भविष्य के लिए भी चिंतित रहती हैं। उसकी बड़ी लड़की महलका की शादी तय हो गई है। वह अपनी लड़की की शादी के लिए दिन–रात ये सोचकर परेशान रहती थी। शादी के बाद सास–ससुर एवं पति को कैसे काबू किया जा सकता है। उसके लिए वह अलग–अलग लोगों से मिलती है। उनके विचारों से रूबरू होती है। महजबी चाहती थी कि शादी के बाद उसकी बेटी राज करें। महलका की शादी जाकिर के साथ हो जाती है। महलका भी अपनी मां के नक्शे कदम पर चलने के लिए बाध्य रहती है। माँ जैसे–जैसे कहती है महलका वैसे–वैसे करती रहती है। क्योंकि उसे भी डर था कि कहीं उसे दुःख भरी जिंदगी न मिले।

लेखिका ने पात्र के मन में उठ रही संत्रास की भावना को दिखाया है। महजबी किसी तांत्रिक के पास जाती है। उस तांत्रिक से अपनी बेटी के लिए शाही जिंदगी दिलाने की ख्वाहिश रखती है। तांत्रिक आमिल महजबी की बात सुनकर खुश और काम के बदले जो उसने दाम मांगा उसमें एक मोटी रकम शामिल होती है। महजबी इतनी मोटी रकम देने के लिए भी तैयार हो गई साथ ही यह हिदायत भी दे डाली अगर काम पूरा नहीं हुआ तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। आमिल मजहबी की पूरी दास्तां को सुनता है। मसला घर में रहने वाले बाप–बेटे में तकरार लाना था। महजबी चाहती थी कि केवल महलका का ही हुकुम घर पर चले और किसी का नहीं फिर कुछ समय के बाद जब संबंधों में कोई दूरतत्व नहीं दिखाई देता तो महजबी तांत्रिक अमिल को कहती है –'कहो जनाब, वह बूढ़ा मरने का नाम नहीं ले रहा है, ऊपर से बाप–बेटे के ताल्लुकात फिर खुशगवारी की तरफ बढ़ रहे हैं।'[4] महजबी अपनी बेटी के ससुर और बेटे के संबंधों में खटास लाने के लिए टोने–टोटके कर उनके बीच दूरी रखना चाहती है। बाप–बेटे के बीच संबंध घनिष्ठ नहीं होंगे तो बेटे का झुकाव अपने आप महलका पर होगा।

महजबी आमिल से एक इल्तजा करते हुए कहती है कि 'ऊपरवाला वसीला भी तो लगाता है आप मेरी ख्वाहिश अपनी दुआ और इबादत के साथ खुदा के बारगाह में रखेंगे तो मुराद पूरी होने में कोई कोर–कसर बाकी नहीं रहेगी मैं चाहती हूँ। दामाद मियां मेरी बेटी के दीवाने बने रहें। किसी की बात पर कान न धरें।'[5] महजबी पूरी शिद्दत से अपनी बेटी के लिए आमिल पर जोर देती हुई नजर आती है। आमिल महजबी की बात को पूरा करने के लिए अपनी कोशिशों को गिनवाता नजर आता है और कहता है कि– 'देखिए, मेरी कोशिशों से ही इतने दिन सन्नाटा रहा। बेटा पलटकर बाप का नाम नहीं लेता था। वह पूरी तरह आपकी बेटी का गिरविदा, कहिए जोरू का गुलाम बन कर रह गया था। मानेगी यह बात आप या नहीं।'[6] महजबी आमिल की बात से सहमत होती है साथ ही अपनी भी तकलीफ को बयां करती है 'मानती हूँ इसलिए मुंह मांगी रकम भी आपको दी थी।'[7]

वह केवल अपनी बेटी का सुख चाहती है। वह चाहती है कि उसका पति एवं बेटियां सुखी रहे। किसी और से उसका कुछ भी लेना देना नहीं है। आमिल महजबी की बात से इतफाक रखते हुए कहता है कि–' मेहनताना तो देना ही पड़ता है। आप जानती हैं कि हम खैरात लेने के कायल नहीं है और न मुफ्त में तोहफे–तहायफ। आपकी परेशानी क्या है?'[8] महजबी आमिल की उल–जुलल की बातों में न पढ़कर अपनी समस्या को रखते हुए कहती है– 'आपकी दुआओं से बेटी की नंद का ऐसा घर बर्बाद हुआ कि उसने तो गर्दन में फांसी लगा ली, मियां उसका मर–खप गया मगर ससुर जेल में झूठे मुकदमे में जरूर फंसा है। मेरी बेटी का एक शाने का बोझ तो हल्का हुआ अब उस गिध बूढ़े का भी कुछ हला–भला कर दो।'[9] महजबी अपने स्वार्थ के आगे न जाने कितने मासूम जिंदगी के साथ खेलती जा रही है। बेटी को राजकुमारी जैसा सुख देने के लिए कितनी राजकुमारियों का जीवन बर्बाद करने में लगी हुई है। बड़ा दुर्भाग्य है कि आहुनिक युग में भी नारी इन शानों की गिरफ्त में अपना सुख खोजती नजर आ रही है।

महजबी आमिल पर लगातार दबाव बनाते हुए अपनी बात को बार–बार पूरा करने के लिए जोर–जबरदस्ती करती है। आमिल महजबी से कहता है–"अल्लाह की मर्जी के बिना तो पता भी नहीं हिलता। मगर हम उन्हें मौत और जिंदगी के बीच झुला देंगे।"[10] वह महजबी को समझाते हुए कहता है कि मौत तो उपरवाले के हाथ में है। आप अगर कहें तो हम बूढ़े को बिस्तर पर ही लिटा देंगे। महजबी आमिल की बात से खुश नहीं थीं पर वह इस बात पर के लिए भी समझौता करने को तैयार हो जाती है। महजबी की नामुराद सोच ने उसे ही नहीं बल्कि पूरे परिवार को एक कटघरे में लाकर खड़ा कर दिया है। उसके साथ–साथ उसकी बड़ी बेटी भी इन तांत्रिकों के बीच फंस कर रह गई है। न तो वह माँ का विरोध करती है और न ही अपनी सोच के कारण कोई निर्णय ले पाती है। पूर्ण रूप से माँ की सोच पर निर्भर रहने वाली वह अपने जीवन को यूं ही बिताती चलती है।

महजबी अपनी बेटी महलका के सुख के लिए नित नए–नए विचार में उलझी रहती है। बड़ी बेटी महलका का तो घर बस गया अब वह अपनी छोटी बेटी माजदा के लिए चिंतित रहती है। माजदा को लड़के वाले देखने आते है और पसंद भी कर लेते हैं। माजदा जिस घर में जाने वाली है। वह बहुत अमीर परिवार है। महजबी को बेटी के जाने या रहने की चिंता नहीं बल्कि उसके हिस्से में कितनी संपत्ति आएगी उसकी फिक्र है। उसके लिए वह आमिल से मिलती और कहती है–'जी मंगनी हो गई है। शादी की तारीख भी तय है। घर में जायदाद काफी है। सब नौकरी–पेशा लोग हैं। चार भाई हैं। पांचों में बला की मुहब्बत है। मैं चाहती हूँ कि आप ऐसी ताबीज दें कि बेटी अपने हिस्से की जायदाद लेकर अलग हो जाए। सास–ससुर जिंदा हैं। दो कुँवारी ननदें अभी सीने पर कुंवारी बैठी है।'[11] महजबी इन टोने–टोटके में इतनी अटक कर रह गयी है कि इसके अलावा कुछ दिखाई सुनाई नहीं देता केवल अपना हित ही सर्वोपरि लगता है।

माजदा के लिए वह कुछ ऐसा ही करने का प्रयास करती है जिसे सुनकर उसकी अपनी कह उठती है कि –'मम्मी मुझे यह सब पसंद नहीं है यह गैर मजहबी और गैरइंसानी हरकत है।'[12] माजदा को जब इन बातों का पता चलता है तो वह आग बबूला हो जाती है। अम्मी के इरादे उसे अपनी आने वाली जिंदगी के लिए सही नहीं रहे थे। अम्मी माजदा एक प्रश्न का उत्तर देते हुए अपनी सोच को रखती है कि 'वह तो मैं भी जानती हूँ। मगर जीते जी जह्न्म भोगने से कहीं अच्छा है अपने लिए जन्नत तलाश कर रहे।'[13] महजबी अपनी बेटी को अपने अनुसार जिंदगी जीने की सच्चाई से रूबरू कराती है। शादी के बाद जीवन जीना आसान नहीं होता है।

परिवार वाले गिद्ध की तरह नोंच–नोंच कर खा जाते हैं। शादी और जिंदगी दोनों ही न लगने लगती है। अभी माजदा तुमने दुनिया देखी ही नहीं है।

माजदा अम्मी को समझाते हुए कहती है– 'उसके लिए दूसरी तस्वीरें और तरीके हैं मम्मी।'[14] सारी तरीके और तकदीर धरी की धरी रह जाती हैं। सास–ससुर, देवर–नंदें अपनी अपनी सोच इस तरह बेहाल करेंगे। पति महाशय भी अपनी माँ के गिरफ्त में वह तुम्हें नजरअंदाज करेगा तो क्या करोगी। महजबी क्रोध में माजदा से कहती है कि 'जानती हूँ, जो औरतें ऐसा सोचती थी, वह गुजरे कल की औरतें थी जो गम और जुल्म के पाटों में पिसकर भी नहीं करती थीं। अब जमाना बदल चुका है। कंप्यूटर और मोबाइल का जमाना है। सारी दुनिया पल भर में अपनी मुट्ठी में करने का दौर है इसलिए मुझे रोको, टोको नहीं। जो कर रही हूँ मैं, तुम्हारे भले के लिए ही कर रही हूँ।'[15] महजबी माजदा को आधुनिक युग में भी इन तरीकों को कहने और करने के लिए कह रही है। इन्हीं से सुख प्राप्त किया जा सकता है। माजदा जिंदगी में इतनी उन्हें आती हैं। उन्हीं में उलझ कर रह जाओगी तो जिओ की कब। यहाँ पर कितना भय और घबराहट है कि जीवन जीने से पहले ही जीवन के प्रति कितनी कठिनाईयाँ और स्थिति प्रस्तुति समस्याओं के रूप में उभर कर आती हुई प्रतीत होती हैं।

समय बहुत तेजी से बदल रहा है। उसमें अपना हित–अहित नहीं सोच पाओगी जो भी मैं तुम्हारे लिए कर रही हूँ। वह सब ठीक है। माजदा अभी भी मम्मी की बात से सहमत नहीं होती और मन में उठ रहे सवालों के प्रति उसका विरोध आक्रोश दिखाई देता है–'मम्मी तुम दूसरों का बुरा कह कर अपना भला कैसे होगा इसमें मुझे शक है।'[16] माजदा अपनी बात पर कायम होते हुए मम्मी के प्रति अपनी असहमति दिखाती है। आप ऐसा कुछ मत करिए जिससे मेरा मन हो जाए और मन में संबंधों के प्रति अनचाहा खटास उत्पन्न हो जाए। माजदा की बात सुनकर मम्मी अपनी सोच को एक तरफा रखते हुए आने वाली जिंदगी के प्रति अपनी उपलब्धियां बताती और कहती है। जिस तरह महलका का घर और परिवार उसके हाथ में है उसी तरह तुम्हारे परिवार वाले भी तुम्हारे अनुसार अपना जीवन यापन करेंगे। एक बार मेरी बात मान लो। माजदा अम्मी को हिदायत देते हुए अपनी बात बलपूर्वक कहती है कि 'मैं निकाह के वक्त इंकार कर दूँगी।'[17] माजदा का रूप देखकर महजबी सकते में आ जाती है। माजदा अपनी मम्मी के विरोध में खड़ी थी। माजदा को अपनी अम्मी से शिकायत एवं आक्रोश दोनों था। माँ होकर वह किसी और का घर कैसे निसते–नाबूत कर सकती है।

पहले बड़ी बहन के सुख के चलते औरों को दुख दिया और हम सब के माथे पर मढ दिया और अब मेरे सुख के लिए दूसरे के घर में लड़ाई–झगड़े आदि। अम्मी की मनमानी मेरी जिंदगी में नहीं चलेगी, ऐसी जिंदगी के पक्ष में मैं बिल्कुल नहीं जो औरों की जिंदगी को खराब करें। ऐसा घरौंदा नहीं चाहिए जिसकी नींव किसी के खून में रंगी हो। पिता भी माजदा भविष्य में घटने वाली इन दर भरी बातों से सहमत है लेकिन अभी तक वह महजबी के किसी भी कार्य में रोक–टोक नहीं कर पाए थे। माजदा की हिम्मत के साथ–साथ अमजद में भी हिम्मत आ गई। अमजद महजबी से अपने मन में उठ रही उथल–पुथल की सच्चाई के साथ बयां करते हुए कहते हैं कि– 'आप मेरा इशारा बखूबी समझ रहे हैं अगर और खुलकर समझाना चाहती है तो सुनिए माजदा एक खयालात मुझसे अलग नहीं हैं। मुझे हमेशा से उस पर नाज था। आज उसकी बातों ने एक खुशनसीब बाप का चेहरा मेरे सिर पर बांध दिया है। मैं सचमुच आज बेटे के न होने की कमी को भूल गया, पूरी तरह भूल गया।'[18]

अमजद अपनी बेटी के प्रति कृतज्ञ होते हुए अपनी वेदना को व्यक्त कर रहा है और कहता है कि वह इतने वर्षों शांत रहा। अमजद को पता था कि महजबी शानों के चक्कर में लगी हुई है लेकिन आज तक उसका विरोध नहीं कर पाया था। महजबी उसके प्रतिउत्तर में ऐसा हाव–भाव दिखाती है कि जैसे उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा है। वह अपनी बात पर जोर देते हुए कहती है कि–'पढ़े लिखो की बातें अमजद साहब मेरे समझ से परे हैं। मैं तो आम इंसान के दुःख–सुख ही जानती हूँ। इसलिए जो कहना है साफ–साफ कह डालो।'[19] महजबी झूठ का आवरण ओढ़े अपनी सच्चाई को सही मानते हुए दूसरों की बातें न करती हुई नजर आती है। यहाँ लेखिका ने नायिका के मन में उठ रहे अनचाहे सवालों को व्यक्त करते हुए कहती है कि वह ये सब मान लेती है उसको सबने छला है। वक्त पर उसका साथ परिवार ने या पति ने किसी ने भी नहीं दिया है।

नायिका व्यंग्य कसते हुए कहती है कि 'यह आप कह रहे हैं जिसने झूठों कभी अपनी बीवी का साथ नहीं दिया। क्या वह सारी बातें भूल गए जब मैं रात रात भर आपके पहलू में पड़ी तो सिसकती थी।'[20] महजबी अपने बीती जिंदगी व उसमें उठती तकलीफों को व्यक्त कर रही है। उन बेबसी के पलों में अमजद ने उसका साथ छोड़ दिया। रात–दिन केवल उस पीड़ा और झल्लाहट को अकेले ही उसने झेला है। उस समय अमजद तुम्हारी सोच कहा घास चरने गई थी। मेरी तकलीफें तुम्हें नजर नहीं आयी। परिवार ने मुझ पर सितम पर सितम ढाए पर तुमने एक बार भी आकर मेरा साथ नहीं दिया। अमजद महजबी की बातें सुनकर अचंभित नहीं हुआ पर उसमें उसके दोष भी गिरवानी मैं पीछे नहीं रहा और बोला, 'ताली कभी एक हाथ से नहीं बजती आपने कभी अपने को सुधारने और मेरे घर वालों को समझने की कोशिश नहीं की और आज उसका नतीजा सामने है कि आप गलत राह पर चल पड़ी हैं और मैं गुनाहों की सजा भुगत रहा हूँ जिन्हें आंखों से देख कर भी आप पर कभी सख्ती नहीं कि हमेशा लहू के घूंट पीकर खामोश रहा। आज उस बुजदिली का नतीजा भुगत रहा हूँ कि पिछले पाँच साल से मैं मां बाप की शिफकत और मुहब्बत से दूर एक कैदी की जिंदगी जी रहा हूँ।'[21] यहाँ लेखिका ने पुरुष के मन में अथाह पीड़ा और संत्रास को व्यक्त किया है। सबको जानते हुए भी पत्नी के साथ रह अपना जीवन जी रहा है।

अतः कहा जा सकता है कि लेखिका नासिरा शर्मा ने उपन्यास 'कागज की नाव' में 'संत्रास के विविध पक्षों को विविध पात्रों के माध्यम से दिखाने का एक अद्‌भत प्रयास किया है। जैसा कि हम जानते हैं कि वर्तमान समय से ही नहीं अपितु अनादिकाल से ही तंत्र–मंत्र का प्रयोग चला आ रहा है। आधुनिक समय में भी लोग इससे अपने आपको मुक्त नहीं कर पाये बल्कि खुले रूप से इन विसंगतियों का प्रयोग और प्रचार–प्रसार आज के समाज में देखने को मिल रहा है। ये विसंगतियाँ समयानुसार बढ़ती और विकराल रूप लेती चली जा रही हैं। उपन्यास में पात्र इन विषमताओं के कारण अनेक अलगाव में उलझते नजर आ आते हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. डॉ. पांडेय शशिभूषण : नयी कहानी के विविध प्रयोग, पृ. 86
2. डॉ. रमेश कुंतल : आधुनिकता और आधुनिकीकरण, पृ. 386
3. अस्तित्ववाद–कीर्केगार्द से कामूतक', पृ. 44
4. कागज की नाव–नासिरा शर्मा, पृ. 18

5. वही, पृ. 18
6. वही, पृ. 18
7. वही, पृ. 18
8. वही, पृ. 18
9. वही, पृ. 18
10. वही, पृ. 18
11. वही, पृ. 19
12. वही, पृ. 20
13. वही, पृ. 21
14. वही, पृ. 21
15. वही, पृ. 21
16. वही, पृ. 21
17. वही, पृ. 21
18. वही, पृ. 22
19. वही, पृ. 22
20. वही, पृ. 23
21. वही, पृ. 23

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 535-537
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वृद्ध विमर्श के परिप्रेक्ष्य में 21वीं सदी के हिंदी कहानी

–डॉ. अशोक मरळे

सहायक प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक,
स्नातक व स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, मालती वसंतदादा पाटील कन्या महाविद्यालय, इस्लामपुर

21वीं सदी की अपनी कुछ चुनौतियाँ और समस्याएँ हैं जिनमें वृद्धों की बदलती और दयनीय होती परिस्थितियाँ विकराल रूप धारण करती नजर आ रही है। पुराने काल में वृद्धों की स्थिति सम्माननीय रही है। परिवार में उनकी सत्ता हुआ करती थी। उनकी सलाह से हर फैसला हुआ करता था। वृद्ध संस्कारों की विरासत और नैतिकता की पहचान थी। उनकी भूमिका हमेशा परिवार, समाज और राष्ट्र के हितों में रही हैं। वे हमारे मार्गदर्शक और प्रेरणास्रोत रहे हैं। उनके पास अनुभवों का खजाना होता है जिसका लाभ लेकर हम जीवन में सही मार्ग पर चलकर सफल बना सकते हैं।

परिवार के सदस्यों को एक धागों में बाँधने की क्षमता वृद्धों में थी जिस कारण वह जमाना संयुक्त परिवार का था। लेकिन धीरे–धीरे संयुक्त परिवार प्रथा समाप्ति की ओर बढ रही है। एकल परिवार एवं छोटे परिवार की अवधारणा एवं जीवन की समस्याओं और व्यस्तताओं की बीच रोजगार की तलाश में युवाओं के घर से दूर चले जाने के कारण वृद्ध अपने आप को अकेला, असहाय और असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। वृद्धावस्था में भौतिक सुख–सुविधाओं की जगह भावनात्मक संबल की आवश्यकता अधिक होती है। बिखरते संयुक्त परिवारों, शहरीकरण और परिवारों पर पडते पश्चिमी मूल्यों के प्रभाव के कारण हमारे बुजुर्ग अलग–थलग पड रहे हैं।

वृद्धों की समस्या के पारिवारिक, मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और मूल्याधारित अनेक आयाम हैं। दैहिक शक्ति के क्षीण होने के कारणमात्र से उनकी पारिवारिक और सामाजिक हैसियत का कम हो जाना 21वीं सदी के सांस्कृतिक मूल्य-ह्रासता का द्योतक माना जा सकता है। वृद्धों की ओर देखने की समाज की दृष्टि जिस तरह क्षीण होती जा रही है, यह मुद्दा अब विलक्षण चिंता का बनता जा रहा है। समीक्षक चंद्रमौलेश्वर प्रसाद ठिक कहते हैं कि ''बुढापे को एक नई दृष्टि से देखने की आवश्यकता है–एक ऐसी दृष्टि से जिसमें संवेदना हो और बूढों के लिए आदर व सम्मान प्राप्त हो।''[1]

मनुष्य जीवन के जिंदगी का अंतिम पड़ाव जितना दयनीय होता है, उतना ही सोचनीय और चिंतनीय भी होता है। जीवनभर मरते खपते रहो, जोड़–तोड़ करते रहो और जीवन के अंतीम दिनों में इंद्रिय निष्क्रीय हो जाने पर उपेक्षित और तिरस्कृत सा जीवन जीओ। यह एक तरह का अभिशाप मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है। 21वीं सदी के हिंदी कहानी साहित्य में वृद्धों की समस्याओं को अनेक परिप्रेक्ष्यों में बडी सशक्तता के साथ चित्रित किया है।

सुषमा बेदी की 'सड़क की लय' एक ऐसी कहानी है जिसमें पुरानी और नई पीढ़ी की विघटित मानसिकता चित्रित हुई है। पोते तो बूढों की ऑखों के तारे होते हैं किंतु पोतों की नजर में अब बूढों के प्रति कोई अस्मिता नहीं रही है। सात वर्षीय समीर को भारतीयता से अवगत कराने, अमेरिका में रहकर भी भारतीय जीवन से थोडा बहुत परिचित कराने के लिए उसकी मम्मी अन्विता समीर की नानी मालती सक्सेना को भारत से अमरिका बुलाती है। लेकिन इस बच्चे को नानी से कहीं अधिक कन्वीनिएंट बेबी सिटर लगती है। ''उसके पास दिल जमाने के लिए टी.वी. है, वी.डी.ओ. गेम्स हैं, बेसबॉल, फुटबॉल, बॉस्केटबॉल की गेम्स हैं, खाने के लिए फास्टफुड है, कंपनी के लिए बेबी सिटर है। उसके लिए नानी दूसरी दुनिया की चीज है। उसे न उसके बनाए खाने में रूचि है, न उसकी ड्रेस सेंस जँचती है, न रोक–टोक, न स्नेह के आवेग क्योंकि वह कहीं से भी नानी की तरह इमोशनल या कमजोर नहीं है। सात समुंदर पार से नानी का आना नानी को भावुक कर सकता है, किंतु समीर तो मात्र नानी को झेल रहा है।''[2]

जीवन सफर के अंतिम पड़ाव पर आकर भी वृद्धों को अनेक प्रकार की त्रासदियों का सामना करना पड़ता है जिसमें शासकीय यत्रंणा की कार्यप्रणाली भी सहभागी है। तरूण भटनागर की 'फोटो का सच' कहानी यही बात उजागर करती है। इकलौता बेटा सेकेंड लेफ्टिनेंट जीवेंद्र माथुर एक अम्बुश में मारा जाता है। सरकार से पैसे मिलने हैं, आदेश भी प्राप्त हो चुका है। सारे कागजात बेटे के पास ही थे। ''73 वर्षीय पिता सरकार दफ्तरों में चक्कर लगा रहे हैं। क्लर्कों की चापलुसी कर रहे हैं, लेकिन उनके पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं जो सिद्ध कर सके कि वही पिता है। इस भटकन के कारण भीगे कपड़ों की तरह, मृत शरीर की तरह मन भारी रहता है।''[3] वृद्धावस्था सुख और सकून से जी जानी है लेकिन जब संवेदना शून्य शासकिय यंत्रणा के चक्रव्युह में अगर कोई वृद्ध भूलकर भी फॅस जाता है तो उसकी बडी दुर्गति होती है।

नौकरी के लिए बेटे शहर में जाकर बसते हैं जिसके कारण बूढे लोग अकेले व बेसहारा हो जाते हैं। खासतौर पर मध्यम व उच्चवर्ग में यह संकट ज्यादा गंभीर है। बच्चे तो उच्च शिक्षा प्राप्त कर नौकरी के लिए महानगरों या विदेशों में चले जाते हैं। अपने बच्चों की सफलता के बातें बूढें लोग फक्र के साथ करते भी है लेकिन थोड़े ही दिनों में उन्हें इस बात का एहसास हो जाता है कि बच्चों की सफलता उनके बुढ़ापे की विफलता बनती जा रही है। चंद्रकिशोर जायसवाल की 'मानबोध बाबू' कहानी गाडी में मिले दो बुजुर्ग यात्रियों के माध्यम से वृद्धों की पारिवारिक और सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालती है। ''जायदाद वाले वृद्ध अगर गांव में रहे तो वहॉ जीवन की मूलभूत जरूरतें भी पूरी नहीं हो पाती। सब बेचकर बेटों के पास महानगरों में चले आए तो सारी राशि उनकी हथेली पर रखनी होगी। यदि ऐसा नहीं करते तो उन्हें घातीबाप, पापीबाप, कठबाप कहा जाएगा। बीच बाजार में अगर कोई गिरकर बेहोश हो जाए तो कोई अस्पताल पहुँचाने वाला तक नहीं मिलेगा।''[4]

पुराने और आधुनिक सांस्कृतिक मूल्य और विचारधारा में काफी परिवर्तन आया दृष्टिगोचर होता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'प्रेतकामना' कहानी वृद्धों के अकेलेपन की त्रासदी को आधुनिकताबोध के साथ चित्रित करनेवाली सशक्त कहानी है। रिटायर्ड प्रोफेसर डॉ. पंत बंबई के सी बीच पर बने तीन कमरों के बडे प्लैट में रहते हैं। ''रिटायर्ड विधुर पिता टूटी दीवार से झरते सीमेंट सा भुरभुरा जीवन व्यतीत कर रहे हैं और बेटा महिनों बाद कभी खबर लेने आ जाता है। कभी वे जे. एन. यू में एन्थ्रोपालोजी के विभागाध्यक्ष थे। विदेश के चक्कर लगते रहते थे और अणिमा जैसी रिसर्च स्कॉलर विद्वत्ता के कारण उन पर मरती थी। आज बेटा इसी शहर में अलग रहता

है। बेटी कलकत्ता में है। पत्नी की मृत्यु हो चुकी है। उनके इर्द–गिर्द न समाज है, न परिवार, न प्रतिष्ठा। ऐसे में अमेरिका से प्रवासी सप्ताह के लिए पुरानी छात्रा अणिमा लौटती है और डॉ. पंत के प्रेत जीवन में कामनाएँ ऐसी लहराती हैं कि दोनों में शारीरिक संबंध कायम हो जाता है। पापा के इस नई दुनिया को देख बेटे के पैर दस–दस मन के भारी हो जाते हैं।''[5] डॉ. पंत का व्यवहार परिवार और समाज के लिए एक सबक है। सहन करने की वृद्धों की क्षमता को आप उनकी मजबूरी मानने लगते हैं और उनके साथ मनचाहा व्यवहार करने लगते हैं तो निश्चित रूप में वृद्ध भी अपने लायक निर्णय ले सकते हैं, चाहे फिर परिवार और समाज की मानसिकता उसके लिए तैयार हो या ना हो।

वृद्ध आदमी को उसके मानवीय भावनाओं और सरोकारों से निष्कासित कर देना वृद्धों पर बहुत बड़ा अन्याय है। कृष्णा अग्निहोत्री की 'यह क्या जगह है दोस्तो' कहानी इसी बात को बयॉ करती है। ऋतु एक अच्छी संगीतकार है। ''ऋतु के पास न पति है, न प्रेमी, न बच्चे। यह औरत प्रेती की ऐय्याशियों को ढोती रही है। पति की मृत्यु के बाद बच्चे उसके मुवी या टी.वी. देखने, संगीत सुनने या रियाज करने, रेडियो प्रोग्राम देने या फोन करने, किसी शादी विवाह में जाने तक पाबंदी लगा देते हैं। यहॉ तक कि उसे साज बेच कम्प्यूटर खरीदने के लिए कहा जाता है।''[6]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 21वी सदीं के हिंदी कहानी साहित्य में वृद्धों का चित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ है। वृद्धों की अवमूल्यित स्थिति, कुंठित मानसिकता, अकेलेपन की त्रासदी, सम्मान विहिनता, व्याधि ग्रस्तता, परिवार और सामाजिक निष्काषण आदि सारी बाते वृद्ध विमर्श के केंद्र बिंदू हैं। बुजुर्ग पेड़ भले ही फल न दे, साया जरूर देते हैं इस तरह की मानसिकता बनने की जरूरत है। वृद्धों की उपेक्षा कर परिवार और समाज कभी भी सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता, इस बात को यह कहानियां अधोरेखित करती है। अपनी पूरी जिंदगी परिवार, समाज और देश को देने वाले बुजुर्गों के जीवन की संध्या को सुखी, सुरक्षित और सुकून भरा बनाने की जिम्मेदारी का एहसास अब सभी को हाने की जरूरत पर यह कहानियां बल देती हैं।

संदर्भ :–

1. चंद्रमौलेश्वर प्रसाद–वृद्धावस्था विमर्श, परिलेख प्रकाशन, संस्क. 2016, पृष्ठ 20
2. सुषमा बेदी – सड़क की लय, नेशनल प्रकाशन, दिल्ली, संस्क. 2007, पृष्ठ 9
3. तरूण भारत – फोटो का सच, 'हंस' मासिक पत्रिका, दिसंबर, 2006, पृष्ठ 18
4. चंद्रकिशोर जायसवाल–मानबोध बाबू, 'हंस' मासिक पत्रिका, दिसंबर, 2006
5. मनीषा कुलश्रेष्ठ – प्रेतकामना, 'हंस' मासिक पत्रिका, जनवरी, 2005, पृष्ठ 7
6. कृष्णा अग्निहोत्री–यह क्या जगह है दोस्तो, नेशनल प्रकाशन, संस्क. 2007, पृष्ठ 21

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 538-542
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री स्वावलंबन की तलाश

-सुरेखा टी वी

सहायक आचार्य, पय्यन्नूर कॉलेज, एडाट्ट पी ओ, पिन –670327, कण्णूर, केरला।

प्रभा खेतान स्वातंत्र्योत्तर महिला लेखन में एक अलग पहचान है। उन्होंने अपने निजी जीवन को आगे की पीढ़ियों के सामने एक नमूने के रूप में रखा है और अपना लेखन इसका प्रमाण है। उन्होंने सशक्तिकरण की सबसे बड़ी शर्त स्त्री के आर्थिक स्वावलंबन को माना। उनके आठ उपन्यासों में अधिकांश स्त्री जीवन से जुड़े रहे हैं।

स्वावलंबन और देश के विकास का सीधा संबन्ध है। स्वावलंबन, सशक्तिकरण, अस्मिता, चेतना आदि स्त्री विमर्शीय सिद्धान्त से उपजे सामाजिक शब्द हैं। ये सभी शब्द एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। स्त्री और पुरुष के शिक्षा, लिंगानुपात, सामाजिक सुरक्षा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, न्यूनतम स्वास्थ्य सेवाएँ, काम करने की आज़ादी आदि को संयुक्त राष्ट्र संघ विकास का पैमाना मानता है। मनुष्य जाति के अंतर्गत पुरुष की अधिक प्रधानता है। सभी का रूपायन पुरुषों की दृष्टि के आधार पर हुआ है। पुरुष सभी कार्यों में केवल अपने हित पर ध्यान देते थे। विज्ञान की प्रगति, एक हद तक स्त्रियों की समस्याओं से जुड़े नियम, आधुनिकता बोध आदि ने स्त्रियों को व्यक्ति के रूप में जीने की ज़मीन तैयार की है। अपने जीवन के निर्णय खुद लेने का मौका उन्हें मिला। शिक्षा के द्वारा आर्थिक स्वतंत्रता के दरवाज़े उसके सामने खुले गए। परंपरा से चलते रूढ़ी ग्रस्त संस्कारों का विरोध करती हुई स्वतंत्र चेतना रखने वाली स्त्री को ही स्वावलंबी तथा विद्रोही स्त्री मानी जाती हैं। आज स्त्री, संहिताओं को तोड़कर नई राहों पर चल पड़ी हैं। अपनी अनुभूति तथा आत्मनिर्भरता के लिए कोई भी कदम उठाने के लिए वे तैयार हैं। अपने विचारों को अपने जीवन पर हावी न कर वे विद्रोही बन जाती हैं और अपने फ़ैसलों को व्यवहार में लाने का प्रयास करती हैं। स्त्री जब तन–मन से, दूसरे व्यक्तियों से, समाज से, राजनीति से और आर्थिक रूप से स्वावलंब हो जाएगा तब पूर्ण रूप से देश का विकास संभव हो जाएगा।

स्वावलंबन का अर्थ है अपने आप पर निर्भर रहना, अथवा आत्मनिर्भर होना। इसका कोशगत अर्थ है "आत्मनिर्भर होने की अवस्था, अपने भरोसे रहने का भाव।"[१] इसका अंग्रेजी अर्थ है – 'Self reliance'[२] सामान्य रूप से स्वावलंबन के लिए self sufficiency and self reliance जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग होता है। वास्तव में दूसरों के भरोसे रहना या दूसरों पर अवलंबित रहना गुलाम होने के समान होता है। स्वावलंबन होने से इंसान के अंदर आत्मविश्वास पैदा होता है, जिससे दुनिया की किसी भी परेशानी का सामना करने के लिए इंसान खुद

अकेले खड़ा रह सकता है। स्वावलंबी व्यक्ति ही अपने जीवन में हर प्रकार की उन्नति पर पहुँचता है और सदा स्वाधीन रहते हुए सुखी जीवन जी सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्त्रियों ने अपने लिए नए परिवेश को गढ़ा और उनके लिए रोज़गार के नए अवसर उपलब्ध भी हुए। स्त्रियाँ स्वावलंबन की दिशा में अग्रसर हो चुकी थीं। वे आर्थिक रूप से मजबूत होने लगीं। स्त्रियों के लिए बाह्य जगत खुले दिए और इसीलिए उनके सोचने–समझने के ढंग में भी बदलाव आ गयीं। समाज में आए परिवर्तन का प्रभाव साहित्य में भी देखने लगा। हिन्दी कथा आन्दोलन ने अनेक लेखिकाओं को आत्माभिव्यक्ति के लिए प्रेरित किया और वे अपने परिवेश के प्रति एक अलग और स्वतंत्र दृष्टि से लिखने लगीं। उपन्यास के क्षेत्र में भी महिला लेखन अपनी पहचान बनायी थी। कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, प्रभा खेतान आदि ने स्त्री की अस्मिता के विरुद्ध आने वाली अनेक सवालों को अपने लेखन के माध्यम से उठाने का प्रयास कर रही हैं। महिला उपन्यास लेखन में प्रभा खेतान के उपन्यास इस दृष्टि से चर्चित हैं। उनके आठ उपन्यासों में अधिकांश उपन्यास आत्मकथात्मक है।

उनकी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' का कथांश है – 'आओ पेपे घर चलें,' 'छिन्नमस्ता' और 'अपने अपने चेहरे 'उपन्यास। 'आओ पेपे घर चलें' प्रभा खेतान का पहला उपन्यास है; जिसमें अमेरिकी स्त्रियों के यथार्थ जीवन का दृश्य हमारे सामने दिखाते हैं। बाईस वर्ष की उम्र में प्रभा स्टुडन्टस एक्सचेंच प्रोग्राम के दौरान ब्यूटी थेरापी का कोर्स करने अमेरिका गई थी। वहाँ से डॉ. मोमोसे का प्रश्न था कि इतनी छोटी उम्र में अकेले दुनिया देखने की इच्छा से आयी हो और क्या तुम विदेश में अकेली रह सकती हो? प्रभा का उत्तर शायद 'हाँ 'था। प्रभा मन से स्वतंत्र थी और इस 'हाँ' में पूरी अस्मिता का भाव नज़र आ जाती है। एक मारवाड़ी लड़की के लिए यह उतना साहस की बात नहीं कि वह देश विदेश में अकेले घूम ले। प्रभा चमड़े का निर्यात भी करती है और वे बहुत गतिशील महिला भी हैं। प्रभा खेतान ही 'आओ पेपे घर चलें' उपन्यास की प्रिया है।

अमेरिका में आइलिन, मिसेज ड़ी हेलगा, केथरीन, मरील आदि स्त्रियाँ अपने आप पर निर्भर है फिर भी एकाकी जीवन बिताती हैं। विदेश में रहकर प्रभा ने जाना कि आर्थिक स्वतंत्रता भारतीय स्त्री की ही नहीं विदेशी स्त्री की मूलभूत आवश्यकता भी है। आइलिन के लिए दो पति और पाँच प्रेमी थी। लेकिन वे अब कुत्तों के बीच उसे प्यार करती हुई रहती है। वे इन कुत्तों में आदमी को देखने का प्रयास कर रही हैं। वे उन्हें बच्चों के समान पालन करती है।

आइलिन कुत्तों से डरे प्रभा से कहती है– "यह आदमी में जानवर और जानवर में आदमी को देखना सीखें।"[३] मरील चालीस उम्र की परित्यक्ता है और दुःखी भी। वे मानती है कि दुनिया को झेलने के लिए लोह की कवच की ज़रूरत है। प्रभा के लिए कोई भी दर्द इतना बड़ा नहीं थी कि औरत आँसुओं को दबाए रखकर भविष्य में रोने के लिए रखना ही उचित है। स्त्रियाँ दूसरों के लिए जितने आँसु बहाती है उससे बहुत कम पसीना बहा सकी तो पूरी दुनिया जीत सकोगी। स्त्रियों को अपने आप पर भरोसा होना चाहिए। ईमानदारी से रुपए कमाना और आत्म निर्भर होना ज़िन्दगी का पहला पड़ाव है।

'छिन्नमस्ता' की प्रिया दसवाँ साल में भाई द्वारा बलात्कार का शिकार होती है। लेकिन दादी माँ सलाह देती है कि ये बात किसी से, जीवन में अपने पति परमेश्वर से भी मत कहना चाहिए और सब समय अपने साथ ही रख देना पड़ेगा। स्त्रियाँ आज भी खामोश है। उनके आँसुओं को, शिकायत को, पुरुष समाज अनदेखा कर जाता है। लेकिन प्रभा खेतान के जैसे और छिन्नमस्ता के प्रिया के जैसे शब्दों के द्वारा लेखनी के द्वारा हज़ारों लाखों स्त्रियों के साथ बात कर सकती है तो वे एक साथ जाग उठेंगे। अपने दर्द को शब्दों से जीवन दे पाएँगे और अपने साथ किए जाने वाले पुरुष की निष्ठुरता का पर्दाफ़ाश कर सकेंगे। जीवन में स्त्रियाँ बार–बार टूटी जाती हैं। लेकिन प्रभा का कहना है कि– "इस उम्र में भी एक पूरी की पूरी साबुत औरत हूँ, जो जिन्दगी को झेल नहीं रही बल्कि हँसते हुए जी रही है।"[४]

आत्मनिर्भर होने के लिए आरंभ किए व्यवसाय प्रिया के जीवन में उसकी आइडेंटिटी बन जाती है। काम शुरू करते वक्त पति नरेन्द्र समझाती है कि– "काम करो पर यह मत भूलो कि तुम विवाहिता हो, एक बच्चे की माँ हो, अग्रवाल हाउस की बहू हो।"[५] इतना बड़ा बोझ नरेन्द्र पहले ही प्रिया के सिर पर रख लेता है। लेकिन व्यवसाय शुरु होने के बाद अपने पैरों के नीचे प्रिया को न मिलने के कारण नरेन्द्र उस पर इल्ज़ाम लगाता है कि अकेले मौज करने के लिए प्रिया व्यवसाय कर रही है और विदेश में जाती है। नरेन्द्र उसके सामने रुपयों से भरी ब्रीफकेस उलटते हुए चीखता है– "तुम्हें रुपए चाहिए ना? कितने रुपए लाख, दस लाख, करोड़? रुपए. .. रुपए रात–दिन रुपए के पीछे भागती रहती हो"।[६] अपनी अस्मिता को तलाशकर बाहर निकलने वाली स्त्रियों से पुरुष का सवाल के रूप में इसे देखना पड़ेगा। वास्तव में स्त्रियाँ बाहर निकलते समय जीवन के कार्य जगत को समझ सकती है। प्रिया का कहना है कि – "यह मेरी जिन्दगी के कैनवास को बडा करती है।"[७] प्रभा खेतान जी कहना चाहती हैं कि औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स पर निहित है।

भारतीय स्त्रियों ने कभी भी अपने को प्यार नहीं किया होगा। वे बच्चे, पति और परिवार के लिए अपना जीवन व्यतीत करती हैं। कामकाजी और आमनिर्भर स्त्रियाँ कभी अपने सुख का अनुभव नहीं करती हैं। छिन्नमस्ता में प्रिया का दोस्त फिलिप का कहना है–"क्या सुख का इतना अधिकार तुम्हें नहीं, और खासकर उस वक्त, जब तुम बीमार हो?"[८] लेकिन 'पीली आँधी' की सोमा अपने लिए जीने की तैयारी में है। सोमा पढ़ी–लिखी तो है और परिस्थिति के अनुसार अपने आपको बदलने में भी सफल होती है। पति गौतम के साथ उसका जो जीवन था इसमें केवल गौतम की हरकतें थीं। वैवाहिक जीवन की कोमलता और जीवन का एहसास कभी नहीं मिले थे। सेक्स उनके लिए भूख मात्र थी। सोमा का कहना है – "गौतम प्रेमी नहीं मालिक था"[९] सोमा विवाह संस्था से प्यार को अधिक महत्व देती है। सोमा ने कभी भी गौतम से प्यार नहीं किया था।

सोमा कहती है– "नहीं, गौतम मैं तुम्हारी पत्नी ज़रूर थी, मेरा तुमसे संबंध जरूर था, लेकिन मैंने तुमसे कभी प्यार नहीं किया।"[१०] यह सत्य छिपाकर गौतम के साथ जीने के लिए वह तैयार नहीं होती और गौतम से तलाक चाहती है। अगर दो व्यक्ति एक साथ नहीं रह सकते यदि कहीं कोई गहरी कमी होगी तब इस बंधन में ही रहने की क्या ज़रूरत है? इसे तोड़ ही देना चाहिए। स्त्रियाँ अब अपना यौवन, यौवन की सपने और भविष्य

के बारे में सोचने लगीं हैं। विवाह के बाद इतने वर्ष होने के बाद भी पति का सुख , संतान की प्राप्ति अभी तक सोमा की गोद नहीं भरी थी। सोमा, सुजीत के बच्चे को अपने पेट में भर देती है और गौतम से बताती है कि जान बूझकर, सोच–समझकर ही किया है। सुजीत के साथ रहने के बाद कॉलज में पढ़ाना शुरू करती है और अपनी रोटी स्वयं कमाती है। स्वावलंबी स्त्रियों को स्वयं निर्णय लेने की शक्ति मिलती है।

'स्त्री पक्ष' उपन्यास की वृन्दा अपनी वैवाहिक जीवन में दरार पड़ने से बुटिक खोलकर अपना परिवार चला रही है। वृन्दा के पति के लिए एक अन्य स्त्री के साथ संबन्ध होता है। वृन्दा और सुमित के बीच तलाक के रूप में गृहस्थी का अलगाव होता है। अकेले ही वृन्दा रात दिन मेहनत करके अपना घर बनाती है और स्वाभिमान से जीना सीख जाती है। वृन्दा का कहना है–" मर्द के कारण औरत को हज़ार दुख झेलने पड़ते है ... यह पुरुष संरचना ही ऐसी है जिसमें पुरुष को सुख व औरत को दुख मिलेगा।"[99] वृन्दा अकेली ही बच्चों का पालन करती है, अपनी मेहनत से वह अपना घर बनाती है और स्वाभिमान से जीना सीख जाती है।

'अग्निसंभवा' चीन की महिला आइवी पर केन्द्रित उपन्यास है। वह साधारण किसान परिवार की महिला है। रात–दिन खेतों में काम करती है फिर भी पति द्वारा प्रताड़ित किया जाता है। आइवी की बेटी को पति के घर से जन्म से ही मार दिया गया। ऐसा एक परिवेश से संघर्ष करती हुई वह हांगकांग में ब्रांच मैनेजर पद तक पहुंचती है। पति के घर से भागकर आइवी फैक्ट्री में काम करती है और वहाँ से काम छोड़कर टैक्सी चलाती है। अपनी ईमानदारी और कर्मठता के बल पर वह ब्रेंच मानेजर तक होती है।

'अपने अपने चेहरे ' की रमा स्वतंत्र विचारों की पढ़ी–लिखी सुन्दर लड़की है। वह स्वावलंबन को स्त्री की अस्मिता के लिए ज़रूरी मानती है। इसके लिए सामाजिक बन्धनों को नकारती हुई अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए घर से बाहर कदम रखती है। सामाजिक उपेक्षा के बावजूद भी रमा विवाहित गोयनका के प्रेम के लिए सब कुछ त्यागने को तैयार है। बाद में वह पहचान सकता है कि प्रेमिका की भूमिका कुछ समय के लिए होती है। स्त्री के लिए अपना एक जीवन है, यह साबित करने का प्रयास रमा करती है। ट्यूशन से शुरू होकर अपने कैरियर को वह बढ़ाती है, मिस्टर गोयनका की बिजनेस पार्टनर तक बनती है। आत्म निर्भर और स्वाभिमानी स्त्री रमा को समाज स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते। रमा अपना अलग व्यक्तित्व से जीवन के पूर्ण सफलता प्राप्त करती है। वह अपने फ्लैट में रहती है और समाज द्वारा पीड़ित स्त्रियों की सहायता करती है। रमा का जीवन यह साबित करता है कि पुरुष के अलावा स्त्री भी समाज की पूर्ण इकाई है।

प्रभा खेतान का उपन्यास साहित्य, स्त्री पात्रों को एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान करता है। प्रभा के अनुसार न सिर्फ साहित्य में बल्कि सामाजिक राजनीतिक आर्थिक क्षेत्र में भी स्त्रियों को अपनी जगह खोजना पड़ेगा। अपने भोगे हुए यथार्थ का चित्रण और इससे मुक्त होने के लिए आत्मनिर्भर और स्वावलंबी होने के श्रम में वे लगी हुई हैं। इसके फलस्वरूप स्त्रियाँ निर्णयात्मक क्षमता का विकास करती हैं। आज तक स्त्रियों ने जितनी स्वतंत्रता हासिल की है, यह उसने संघर्ष करके ही अपना ली है। प्रभा खेतान के उपन्यासों के स्त्री पात्र सोमा, रमा और प्रिया तत्कालीन रूढ़ समाज से टकराकर अपनी अस्मिता को रूपायित करती हैं। प्रभा खेतान जी अपने उपन्यासों

की नायिकाओं को तमाम विसंगतियों से उन्हें आगे बढ़ाने की शक्ति प्रदान करती हैं। वे पुरुष के सामने समझौते के लिए अपेक्षा नहीं करती है बल्कि अपना रास्ता खुद तय करती है। प्रभा खेतान के स्त्री पात्र भोगे जीवन की निष्ठुरता से बचने के लिए आत्महत्या करने वाली नहीं, इससे ज्यादा कदम दर–कदम मज़बूती प्रदान की जानवेली सशक्त स्त्री हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

१. एन बी एस हिन्दी मलयालम शब्दकोश, पृष्ठ–१५७३

२. New webster's dictionary of the english grammar and language.

३. प्रभा खेतान, आओ पेपे घर चलें, पृष्ठ १६

४. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, पृष्ठ २६

५. प्रभा खेतान , छिन्नमस्ता, पृष्ठ १०

६. प्रभा खेतान , छिन्नमस्ता, पृष्ठ १०

७. प्रभा खेतान , छिनमस्ता, पृष्ठ १०

८. प्रभा खेतान , छिन्नमस्ता, पृष्ठ १४

९. प्रभा खेतान , पीली आँधी, पृष्ठ २४५

१०. प्रभा खेतान , पीली आँधी, पृष्ठ २४६

११. प्रभा खेतान, स्त्रीपक्ष, जनसत्ता सबरंग जुलाई 24,1999, पृष्ठ २०

Mail ID&surekhamaka@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 543-547
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्त्री अस्मिता के संदर्भ में 'महुआ चरित'

–डॉ0 प्रीति के

सहायक आचार्य एवं विभाग अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, पय्यन्नूर कॉलेज, एडाट्ट पी.ओ, पिन–670327, कण्णूर, केरला

काशीनाथ सिंह आधुनिकता के सार्थक तत्वों को स्वीकार करने वाला स्वतंत्रचेता कथाकार हैं। समकालीन यथार्थ की गहरी पकड़, एक प्रगतिशील मूल्य–दृष्टि, भाषा–शैली की सहजता आदि उनकी रचना की प्रमुख विशेषतायें हैं। आज की उलझी हुई स्थितियों घात–प्रतिघातों और उनसे उत्पन्न मानसिक उलझनों को पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करने वाला प्रतिभा संपन्न लेखक है काशीनाथ सिंह। उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार है – लोग बिस्तरों पर, सुबह का डर, आदमीनामा, नई तारीख, सदी का सबसे बड़ा आदमी, कल की फटेहाल कहानियाँ, प्रतिनिधि कहानियाँ, (कहानी–संग्रह); घोआस (नाटक); आलोचना भी रचना है (समीक्षा); अपना मोर्चा (1972), काशी का अस्सी (2002), रेहन पर रग्घू (2008), महुआचरित (2012), उपसंहार (2014) (उपन्यास); याद हो कि न याद हो, आछे दिन पाछे गए, घर का जोगी जोगड़ा (संस्मरण); गपोड़ी से गपशप (साक्षात्कार) आदि। कथा सम्मान, समुच्चय सम्मान, शरद जोशी सम्मान, साहित्य भूषण सम्मान और 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, रचना समग्र पुरस्कार आदि से आप सम्मानित हैं।

काशीनाथ सिंह ने 'महुआ चरित' में मध्यवर्गीय परिवार की महुआ के बढ़ते यौवन का चित्रण खुलकर अभिव्यक्त किया है। सन् 2012 में प्रकाशित यह उपन्यास आकार की दृष्टि से बहुत छोटी है, सिर्फ सौ पृष्ठों की है। पर इस छोटी–सी कथाभूमि में कथाकार ने विराट व्यंजना, विस्तृत अर्थफलक, बहुविध दृष्टि–विधान की प्रश्नाकुलता और जीवन–दर्शन के अथाह सागर में पाठकों को कई तरह से व्यस्त कर दिया है। 'महुआचरित' जीवन के अपार अरण्य में भटकती इच्छाओं का आख्यान है। इसमें एक युवती महुआ की कहानी है, जिसमें उसे अपने देह के प्रति आसक्ति उत्पन्न हुई है। महुआ की देहासक्ति से विवाह तक की यात्रा और फिर उसमें जगता अस्मिता बोध को सामाजिक संदर्भ में उपन्यास में व्यक्त किया गया है। इसमें स्वतंत्र सत्ता के साथ एक स्त्री अपनी अस्मिता को तलाशती हुई नये संस्कारों के नये अर्थ खोलती है।

यह एक सुसंस्कृत मध्यवर्गीय परिवार की पढ़ने वाली सुन्दर लड़की की कहानी है। उसने कैरियर बनाने की सोच रखी है और अपना शोध–प्रबन्ध जमा करने से पहले तक प्यार उसके लिए सिर्फ फुटनोट के समान रहा है, पर अब उसे बेचौनी हो रही है, उम्र बीत जाने की और अपने जीवन के अर्थहीन होने की। जब तक उसके पास पढ़ाई के रूप में काम था, तब तक तो उसको अपने शरीर पर कोई ध्यान नहीं था। किन्तु अब उसके मन में शारीरिक प्रेम को पाने की इच्छा है। महुआ अट्ठाइस, उन्तीस साल की युवती है और वह अपनी पढ़ाई के साथ कब यौवन अवस्था में पहुँच जाती है, उसे एहसास भी नहीं होता। महुआ कहती है –'मैंने देह की माँगें

बराबर अनसुनी की। उसकी जरूरत अनदेखी की। यह अजीब सी बात है कि जो मुझ पर आसक्त होते थे, मैं उन्हें बच्चा समझती थी और जिन पर मैं आसक्त होती थी वो मुझे बच्ची समझते थे।'[१]

महुआ का यौवन खुद उसके द्वारा बिगाड़ा गया यौवन है। उनकी ऊब एवं अकेलापन में साझीदार घर की छत ही उसका साथ देती है। वह उसमें घूमती–फिरती है, फुदकती–कूदती है, लेकिन उड़ नहीं सकती है। वह चाहकर भी, जानकर भी अपने कैरियर के कारण अपनी देहासक्ति और आंतरिक चेतना को जुटा नहीं पाती है। वह अपने स्वतंत्रता सेनानी, धर्म निरपेक्ष पिता के द्वारा उसकी तरफ कोई ध्यान न देने पर उससे कहती है कि "सारी ज़िंदगी तुम देश और दुनिया के बारे में ही सोचते रहे कभी अपनी बेटी के बारे में भी सोचा? तुम्हें तो यह तक पता नहीं तुम्हारी बेटी की उम्र क्या है? उन्तीस या तीस, तुम यह भी जानते हो न दहेज दे सकते हो, न मैं वैसी शादी कर सकती हूँ। फिर तुम खुलकर क्यूँ नहीं कहते कि बेटी, तुम्हें जो करना है करो। हम साथ हैं तुम्हारे''।[२] यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महुआ अपने प्रति,अपने भविष्य के प्रति चिंतित है, परेशान है। उसे जिस चीज़ की जरूरत है, वह उसे समय पर मिलनी चाहिए। महुआ अपने अस्तित्व और अस्मिता की तलाश में बेचैन है, वास्तव में उसे अपनी अलग पहचान की जरूरत है।

यहाँ काशीनाथ सिंह ने अपने पात्रों के माध्यम से हमारे समाज का नंगा यथार्थ व्यक्त किया है। उपन्यासकार ने समाजशास्त्रीय दृष्टि से अपने इस उपन्यास के पात्र गढ़े हैं। उनका कथा–साहित्य अपने समय के सच को रचना में बंद नहीं करता, वरन् वह उसे मुक्त कर देता है। ऐसे में उनका पाठक अपने समय पर सोचने–विचारने के लिए बाध्य होता है। यह उपन्यास जिस शिल्प में अभिव्यक्त हुआ है वह कथा में एक नया प्रस्थान निर्मित करता है। छोटे–बड़े किंचित् असमाप्त अपूर्ण वाक्य संकेतों की ओर उन्मुख विवरण और बहुअर्थी बिम्ब इस रचना को महत्त्वपूर्ण बनाते हैं।

इस उपन्यास में महुआ, साजिद और हर्षुल के बीच के प्रेम कहानी को बड़ी ही संजीदगी से पेश किया गया है। महुआ साजिद नाम के व्यक्ति से आकर्षित होती है। ऐसे में वह खुली छत को अपनी सहेली बनाती है और अपने शरीर की जिन नैसर्गिक इच्छाओं को वह कागज के तले दबाती आई है, उन्हें पूरा करने के लिए पड़ोसी साजिद का सहारा लेती है। साजिद पहले से शादीशुदा है, उसके दो बच्चे भी हैं। इसके बावजूद महुआ साजिद से प्रेम करती है। उसके समक्ष अपने देह का समर्पण करती है।

आजकल स्त्री पुरुष संबंधों में भी व्यापक परिवर्तन आया है। स्त्री और पुरुष दोनों ही संबंध बनाने व तोड़ने के लिए स्वतंत्र हैं चाहे वह विवाहपूर्व हो या विवाहोत्तर। उपन्यास में विवाहपूर्व संबंधों को रोमांच या थ्रिल का नाम दे दिया जाता है। यह नवीन दृष्टि सच्चाई का अंकन करती है। साजिद के साथ संबंध बनाने को महुआ 'रोमांच श का नाम देती है। उसके अन्दर डर, उत्तेजना, रोमांच, चिंता, जोखिम, विद्रोह जैसे सभी भाव एक साथ उठते हैं जिन्हें काशीनाथ सिंह ने इस प्रकार स्पष्ट किया है– "और यह साजिद मेरा पडोसी और दो बच्चों का बाप मेरा 'कोई' हुआ। और इसे मेरे मन ने स्वीकार किया तो इसलिए कि इसमें 'एडवेंचर' के साथ 'थ्रिल' भी शामिल था। और वह जीवन ही क्या जिसमें 'थ्रिल' न हो।[३]

विवाह पूर्व गर्भवती होना समाज के नज़र में ठीक नहीं है। परंपरागत रूढियों व मान्यताओं के अनुसार

यह तो गलत कार्य है। यहाँ महुआ के मन में परम्परागत रूढ़ियों व मान्यताओं का विरोध करने का विचार जन्म लेता है, परन्तु समाज के भय से वह बड़ा कदम नहीं उठा पाती है। इसी दमित भावना को काशीनाथ सिंह ने महुआ के भावों के माध्यम से वाणी दी है। विवाहपूर्व गर्भ ठहरने पर महुआ का मन उद्वेलित होकर कुछ क्षणों के लिए क्रांतिकारी विचारों से भर जाता है, वह जोश और उत्तेजना में काँपने लगती है– "इस समाज के सामने एक मिसाल पेश करूँ और एक नये कबीर को जन्म दूँ जिसका न कोई मज़हब हो, ना जात, जो सिर्फ और सिर्फ मनुष्य हो?''[४] पहली बार गर्भधारण पर गर्भपात नहीं कराना चाहिए । अन्यथा बाद में बच्चा ठहरने में परेशानी हो सकती है। परन्तु यथार्थ की भयानक तस्वीर उसका मनोबल गिरा देती है और वह निराश हो जाती है।

गर्भ को समाप्त करने के पश्चात् उनकी आत्मग्लानि, दुख व पीड़ा का अंकन इस प्रकार है– "मैं किसी तरह उससे ध्यान हटाती तो एक मन कहता– नाचो, गाओ, खुशियाँ मनाओ कि बचा लिया अपना जीवन! बच गया तुम्हारा भविष्य! लेकिन तुरंत ही दूसरा मन कहता डरपोक! कायर! ऑक् थुह![५]

स्त्रियों के वास्तविक अन्तर्मन को उद्घाटित करते हुए काशीनाथ सिंह ने महुआ के इर्ष्या भावों को भी बड़ी कुशलता से उपन्यास में अंकित किया है। समय पर विवाह न होने पर महुआ की कुंठित मनोदशा, अपनी विवाहित सखियों के प्रति ईर्ष्या भावना आदि का मर्मिक अभिव्यक्ति भी यहाँ द्रष्टव्य है– "मैं उन्हें सुनती रहती हूँ और हाँ हूँ करती रहती हूँ। मुझे उनसे जलन और ईर्ष्या होती, मन उदास और खिन्न हो उठता। बैचेनी बढ़ जाती।"[७] यहाँ उपन्यासकार बहुत बारीकी से महुआ के मनोदशाओं का चित्रण करते हैं।

बाद में महुआ कॉलेज के दिनों से आकृष्ट सहपाठी का रिश्ता आने पर उसे विवाह कर लेती है, महुआ की शादी हर्षल नामक युवक से होती है। लेकिन पूर्व शारीरिक संबंध का पता चलने पर पति उससे नाता तोड़ लेता है। जब हर्षल को पता चलता है कि महुआ के शारीरिक संबंध साजिद से रहे हैं तो हर्षल इस बात से नाराज होकर महुआ से अपना संबंध तोड़ देता है। हर्षल का छल महुआ के सुखी जीवन में अराजकता का अनुभव कराता है तथा उसके मन में हर्षल के प्रति मोहभंग का भाव उत्पन्न होते हैं जो कभी–कभी क्रोध व घृणा का रूप ले लेते हैं, इन पंक्तियों से इसी मनोदशा का बोध होता है– "मुझे लगा कि अपने घिनौने, डरावने और कालिख पुते चेहरे के साथ जिस औरत पर हर्षल नाम का आदमी झुक रहा है, वह और कोई नहीं, मैं हूँ।"[६]

महुआ में आत्मनिर्भरता और अस्मिता–बोध की भावना जागृत होती है। वह हर्षल से हमेशा के लिए रिश्ता तोड़ती है। अपने अस्मिता–बोध के सहारे अपने अस्तित्व की तलाश करती है। महुआ कहती है– "हर्षल, मै ने तुमसे कभी नहीं पूछा कि पिछले तीन साल से ही नहीं, आज भी तुम वर्तिका बनर्जी के साथ क्या कर रहे हो? क्या कर रहे हो जानती हूँ, लेकिन नही पूछूँगी। इतना याद रखना।"[८] उपन्यास में लेखक का उद्देश्य यह है कि ऐसा देह में क्या है, जिससे कि पार पाना हमें मुश्किल हो रहा है। देह के ऊपर उठकर हम सोच नहीं पा रहे। हमारी सारी सोच देह तक आ कर रुक जाती है। स्त्री–विमर्श की अनुगूँज के बावजूद यह प्रश्न आकार लेता है, 'ऐसा क्या है देह में कि उसका तो कुछ नहीं बिगड़ता। लेकिन मन का सारा रिश्ता–नाता तहस–नहस हो जाता है।

उपन्यास में महुआ की सहेली मुख्य भूमिका निभाती है वह है – उसके मन की छत, जहाँ वह खुलती,

खिलती और खेलती है। महुआ के मकान की निष्प्राण छत, जो महुआ की सहेली है, चुहलबाज, बातूनी और उचितवक्ता; जो महुआ को मनोनुकूल सलाह भी देती है; डाँटती–फटकारती भी है; कभी–कभी उसे धीरज भी बँधाती है; उसकी भाषा केवल महुआ ही समझती है। यह कल्पना ही अपने आपमें अनूठी और व्यंजक है।

इस उपन्यास में 'महुआ' के माध्यम से ये देखा जा सकता है कि आज के समाज में एक इंसान अपनी अस्मिता की खोज में किस तरह बेचैन है। अपनी कल्पना में उड़ान भरने के लिए किस तरह से तत्पर है और अपने अस्तित्व की खोज में किस तरह वह भटकता रहता है। वह उन्मुक्त और स्वतंत्र जीवन जीना चाहता है। उसे अपने जीवन में किसी की दखलअंदाजी पसंद नहीं। भौतिक सुख के साथ–साथ शारीरिक सुख भी जीवन का अनिवार्य तत्व है, ये महुआ के माध्यम से परखा जा सकता है। महुआ के शब्दों में "मैं जब भी बाथरूम में नहाने जाती, कपड़े अलग करती और अपने बदन को बड़े गौर से देखती। हो सकता है गलत हो यह लेकिन जाने क्यों मुझे लगता कि यह शरीर गमले में पड़े गुलाब के उस पौधे की तरह हो गया है जिसे अगर तुरन्त पानी न मिला तो सुखते देर न लगेगी! इसे पानी चाहिए, कोई पानी दो। लेकिन कौन देगा पानी?"[६]

यहाँ महुआ प्रतीक है उन सभी स्त्रियों की, जो कहीं न कहीं सामाजिक दोहरेपन से जुड़ती हैं और उठ खड़ी होती हैं। स्त्री मनोविज्ञान की गहरी समझ इस उपन्यास में दिखाई देती है। स्त्री विमर्श के प्रति कोई खुला आग्रह नहीं दिखायी देने के बावजूद स्त्री अस्मिता को यह स्थापित करती है। लेखक ने उपन्यास को देह के प्रश्नों से प्रारम्भ किया है और देह पर ही खत्म किया है। दैहिक सौन्दर्य को जाँचने का यही प्रतिमान उसे अपने पड़ोसी साजिद के साथ सम्भव बनाने के लिए प्रेरित करता है। उसके अनुसार– "कोई लड़की चाहे जितनी सुन्दर हो अपने सौन्दर्य को लेकर हमेशा सन्देह में रहती है। वह चाहती है कि कोई हो जो सिर्फ इतना भर कह दे कि नहीं तुम्हारी जैसी खूबसूरत लड़की मैंने नहीं देखी। मेरे लिए ये कोई साजिद था जिसने महुआ को उसकी औरत देह का एहसास कराया। महुआ को इस कोई की जरूरत किसी पुरुष की नहीं अपने लिए है।"[१०] यहाँ काशीनाथ सिंह ने इस प्रसंग द्वारा पुरुष वर्चस्व का नया प्रत्याख्यान गढ़ा है।

निष्कर्ष :–

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं 'महुआ चरित' स्त्री और उसकी देह के सन्दर्भ में युवा से प्रौढ़ होती आकांक्षाओं की कहानी है। मध्यवर्गीय समाज की सच्चाइयों को लेखक ने विशिष्ट कथा–रस के साथ प्रकट किया है। इसमें समकालीन समाज के परिवेश को खास करके अस्मिता–बोध को पूरी निष्ठा के साथ दर्शाया गया है। इस उपन्यास में स्त्री अस्मिता का संघर्ष, अदम्य जिजीविषा, स्त्री स्वातंत्र्य, देह और यौन उत्पीड़न के प्रति विद्रोह और स्वयं की पहचान के प्रति जागरूकता के साथ सामाजिक पहलुओं से जुड़े यथार्थ को भी मनोवैज्ञानिकता के साथ परखा है। यहाँ लेखक ने स्त्री पर नैतिकता, सहनशीलता और त्याग जैसे थोपे हुए मूल्यों को नकार दिया और उसकी स्वतंत्र अस्मिता को समाज की एक संपूर्ण ईकाई मानकर स्त्री मुक्ति को मुख्य मुद्दा के रूप में स्वीकार किया। मानवीय संवेदना की गहरी पड़ताल करते हुए सभी वर्ग, वर्ण और जाति की स्त्रियों की अंतरात्मा का अवलोकन करके यह उपन्यास पाठकों को स्तब्ध और उद्वेलित करने में सक्षम सिद्ध हुआ है। सघन संवेदना और सर्वथा नवीन संरचना से समृद्ध 'महुआचरित' उपन्यास निश्चित रूप से पाठकों की आत्मीयता अर्जित किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

१. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, पृ. १२
२. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, पृ. १४
३. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, पृ. ४२
४. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, पृ. ५१
५. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, पृ. ५५
६. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, पृ. ४६
७. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, पृ. ८४
८. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, पृ. १००
९. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, पृ. १२
१०. काशीनाथ सिंह, महुआचरित, पृ. २६

Dr PREETHI K,

ASSISTANT PROFESSOR - HoD,

DEPARTMENT OF HINDI,

PAYYANUR COLLEGE (Affiliated to Kannur University)

EDAT PO, PIN - 670327, Kannur, Kerala

Mob No. 8289918100

Email: preethamandeep@gmail.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 548-552
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'माई' : स्त्री को विशिष्ट नहीं, सामान्य रहने दो

–राजलक्ष्मी आर.
अतिथि अध्यापिका, मार इवानियोस कॉलेज, तिरुवनंतपुरम, केरला

नारी को पुरुष के अधीन रखने का सबसे बड़ा षडयन्त्र है उसे 'विशिष्ट बनाना'। विशिष्ट बनाना, मतलब पुरुष प्रधान समाज के अनुकूल स्त्री का गढ़न है। पुरातन काल से ही स्त्री को संस्कृति के ढाँचे में ढालकर एक विशिष्ट स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया है। गीतांजलि श्री का उपन्यास 'माई' के कई भागों में स्त्री को 'स्त्री बनाने' की कोशिश का विरोध किया गया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र माई नैतिकता और मान्यता रूपी ढाँचे के अन्दर फँसकर घुटनेवाली भारतीय नारी का प्रतिरूप है। 'माई' में तीन पीढ़ी की नारी जीवन को दर्शाया है। वह प्रियजनों के लिए निजी खुशियों तथा आकांक्षाओं को त्यागकर जीवन बिताती है। अपने अधिकारों से अधिक महत्व वह संस्कृति को देती है। समय के अनुसार बदलने का प्रयास वह नहीं करती। पितृसत्तात्मक समाज और परिवार नारी को यही सिखाते है कि पति चाहे पत्नी के साथ कोई भी अत्याचार क्यों न करें, उसे सहन करना और पति का सम्मान करना ही पत्नी का दायित्व है। वह निकलने को, बदलने को, तैयार ही नहीं होती। माई कैद भरे माहौल से बचने का प्रयास नहीं करती। वह परिवार के सिखाए आदर्शों का पालन करती है। उन आदर्शों का उल्लंघन करना वह पाप समझती है। पति के आदेशों का पालन करके जीवन बिताती है।

'माई' उपन्यास केवल शोषण सहने की या स्त्री को 'विशिष्ट बनाने' की मात्र कथा नहीं है, बल्कि विशिष्ट से सामान्य बनने की सफल कोशिश की भी कहानी है। उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र सुनैना, माई की बेटी है। वह माई की तरह विशिष्ठ नहीं, सामान्य बनने में विश्वास करती है। कहती है "मुझे माई नहीं बनना। जी–जान से लड़ूँगी कि माई नहीं बनूँ। जोर से झकझोरकर अपने अन्दर से माई को झटका देना चाहती हूँ। हर तरह के 'सहने' को निकाल फेंकना चाहती हूँ। वह गलत है, मुझे वह रोकना है।"[1] सुनैना का उछलना–कूदना दादी को पसन्द नहीं आती। वह सुनैना को 'स्त्री बनने' के तौर–तरीके सिखाने की कोशिश करती है। "ठीक से बइठ, का बहाया जइसन गोड़ खोलके बइठल बाड़े?"[2] उनके अनुसार लड़कियों का उछलना–कूदना बुरा होता है। जब सुनैना पर विभिन्न प्रकार की पाबंदियाँ लगाई जाती है, तो उसकी मानसिकता सिकुड़ने लगती है।

'माई' में पुरुष प्रधान समाज के प्रतीक के रूप में दादा और बाबू का चित्रण हुआ है। दादा को स्त्रियों का, घर के सामने की तरफ दिख जाना घलता था। सुनैना को मेहमानों के सामने जाने की इजाजत नहीं थी। फाटक खुलने की आवाज हुई, मेहमान का जायजा लेने से पहले ही दादा फौरन बोलते थे, "सुनैना अन्दर जाओ, कुछ चाय–नाश्ता भेजने को कहो।"[3] उनके अनुसार परिवार में स्त्री को इस प्रकार रहना चाहिए, जैसे वह घर में हो ही न। घर में लड़कियों को ऊँची आवाज में बोलने का अधिकार नहीं होता। चुप्पी साधनेवाली और

अजनबियों के सामने अदृश्य रहनेवाली लड़कियों को सुसंस्कृत माना जाता है। दादा संगीत के शौकीन थे, लेकिन घर में गाने की मनाही थी। पुरुष के अनुसार संगीत में रुचि रखनेवाली स्त्रियाँ संस्कृतिहीन मानी जाती है। यह परंपरागत मूल्यों के नाम पर स्त्री की सर्गात्मक क्षमताओं को कुचलने का प्रयास है।

स्त्री और परिवार के इज्जत को, हमेशा एक दूसरे के साथ जोड़कर देखा जाता है। इसलिए स्त्री में संस्कृति को भरना, परिवार का दायित्व बन जाता है। यदि स्त्री सुसंस्कृत है, तो समाज में परिवार का इज्जत बढ़ता है। ऐसी झूठी मान्यताओं को आज भी बढ़ावा दिया जाता है। परिवार में स्त्री का गढ़न परम्परागत सामाजिक आदर्शों और मूल्यों के अनुसार किया जाता है। इन मूल्यों में गढ़ी औरत को सुधारना आसान कार्य नहीं है। माई और सहनशीलता एक दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं। भारतीय संस्कृति में पर्दा करनेवाली स्त्रियों को सुसंस्कृत होती है, इसलिए माई भी हमेशा पर्दे में रहती है। माई के हर काम में गलती निकालनेवाली दादी को इस बात की खुशी है कि उनकी बहु पर्दा करती है। पूरा जीवन अपना पहचान पर्दे में छुपाकर रखनेवाली स्त्री आत्मनिर्भर कैसे हो सकती है? सोचनेवाली बात यह है कि हमेशा परंपरागत संस्कृति के अधिकांश नियमों का पालन स्त्री को ही क्यों करना पड़ता है? पुरुष को क्यों नहीं ? क्योंकि ये सारे नियम पितृसत्ता द्वारा बनाए गए हैं, और जब पुरुष नियम बनाएँगे तो अपने हित–अहित को ध्यान में रखते हुए ही बनाएँगे। यह सारे नियम मात्र स्त्री के लिए बाधक है। परंपरा और संस्कृति की आड़ में स्त्री को नियंत्रित करना पितृसत्ता की चाल है। पितृसत्ता के इस चाल को समझते हुए भी माई त्याग और बलिदान की मूरत बनकर जीती है। दादी एक स्त्री होते हुए भी माई पर अत्याचार करती है। वह पितृसत्ता की कटपुतली बन अपने ही वर्ग के साथ अन्याय करती है।

हर व्यक्ति का अस्तित्व उसके नाम से शुरू होता है। माई का नाम 'रज्जो' है लेकिन कोई भी उसे उसके नाम से नहीं पुकारता। माई ससुराल में पत्नी, बहु, माँ आदि अनेक दायित्वों को निभाती थी। ये दायित्व ही उसकी पहचान बन चुकी थी। उपन्यास में नाम से जुड़ी एक ओर महत्वपूर्ण बात पर लेखिका प्रकाश डालती है। बाबू बैंक में सुनैना के नाम का खाता खुलवाता है तो सुनैना अपना पूरा नाम 'सुनैना तिवारी' लिखवाना चाहती है, लेकिन बाबू नाम मात्र लिखने का आदेश देता है क्योंकि शादी के बाद उसके नाम के साथ पति का नाम जुड़ जाएगा। यहाँ नाम अधिकार का दूसरा रूप है। शादी से पहले तक स्त्री पिता के अधिकार की वस्तु होती है, इसलिए बेटी के नाम के साथ पिता का नाम जुड़ता है। शादी के बाद अधिकार बदल जाता है, और नाम भी स दोनों ही रूपों में स्त्री पर व उसके नाम पर पुरुष का ही अधिकार होता है। पितृसत्तात्मक समाज स्त्री–स्वतंत्रता को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होता, वह चाहे अस्तित्व की स्वतंत्रता हो या नाम की। उपन्यास के कई प्रसंगों में सुनैना के रूप में लेखिका अपने निजी जीवन की झलक दिखाती नजर आती है। गीतांजलि जी ने भी इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध करते हुए ही शायद अपने नाम से पिता के 'पाण्डेय' नाम को हटाकर माँ का नाम 'श्री' जोडा होगा। अपने नाम को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करके लेखिका पितृसत्तात्मक व्यवस्था का घोर विरोध करती है और समस्त नारी समूह को यह बताना चाहती है कि स्त्री के नाम पर और उसके जीवन पर केवल उसका अधिकार है।

'माई' में तीन पीढ़ी के नारी जीवन को रेखांकित किया है। विशिष्ठ से सामान्य की ओर बढती स्त्री–जीवन को तीन स्त्रियों के माध्यम से बखूबी चित्रित किया है। दादी, माई और सुनैना के विचारों में कई प्रकार के मतभेद

हैं। दादी और माई स्त्री के विशिष्ट रूप का परिचायक है तो सुनैना उस विशिष्ट ढाँचे को तोड़कर सामान्य बनने का परिश्रम करनेवाली साहसी नारी है। एक ओर दादी पूर्ण रूप से पुराने मूल्यों पर अटल रहती है तो दूसरी ओर सुनैना केवल नवीन मूल्यों पर निर्भर है। माई पुरानी व नई पीढ़ी के बीच की कड़ी बनकर सामने आती है। माई का जन्म और पालन–पोषण पुराने मूल्यों के आधार पर हुई थी, लेकिन वह अपनी बेटी के लिए नवीन मूल्य अपनाने के लिए तैयार होती है।

पुराने जमाने में विवाह, पति की सेवा, बच्चों को संहालना यही हर स्त्री की कहानी थी। आधुनिक युग में विवाह के प्रति स्त्रियों की सोच में परिवर्तन आने लगा है। नारी की स्वतंत्र–चेतना उसे विवाह संबन्धी विषयों में स्वतंत्र मत प्रकड़ करने में सहायक बनते है, साथ ही वैवाहिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने की क्षमता भी प्राप्त होती है। विवाह के अतिरिक्त स्त्री अपने जीवन में बहुत कुछ करना चाहती है। नवीन विचारधारा को लेकर आगे बढने वाली सुनैना शादी को जीवन का एकमात्र लक्ष्य नहीं समझती। उपन्यास में सुनैना की बुआ के मतानुसार ससुराल ही स्त्री का अपना घर होता है। जिस घर में स्त्री का जन्म व पालन पोषण होता है, उसे अपना कहने का अधिकार स्त्री को नहीं मिलती। जो परंपरागत मान्यताएँ सदियों से चली आ रही है, लोग उसे ही सत्य मानकर चलते हैं। समय के साथ बदलने का प्रयास नहीं करते। आज समय बदल रहा है और सुनैना जैसी आत्मनिर्भर स्त्री को यह बातें मूल्यहीन प्रतीत होती है। लेकिन दुःख की बात यह है कि आज भी इन परंपरागत मान्यताओं में विश्वास करनेवालों की संख्या अधिक है। आए दिन वैवाहिक उत्पीड़न के कारण स्त्रियाँ आत्महत्या कर रही है। वे खुद को अकेली, लाचार और बेसहारा पाकर मौत को गले लगाती है। हमारे समाज में शादी के बाद बेटी के प्रति परिवार के सभी दायित्व खत्म हो जाते हैं। दांपत्य जीवन की समस्याओं को उसकी नियति मानकर नजरअंदाज किया जाता है। लेकिन सच तो यह है कि बेटियों के प्रति माता–पिता का दायित्व कभी खत्म नहीं होता है। शादी के बाद अपने परिवार से स्त्री के रिश्ते–नाते टूट नहीं जाते है, केवल परिवेश बदलता है। बेटियों को शिक्षित व आत्मनिर्भर बनाना, यदि वैवाहिक जीवन में बेटी को कठिन समस्याओं का सामना करना पड़े, तो उन्हें सहारा देना और जीवन में आगे बढ़ने का आत्मविश्वास देना माता–पिता का दायित्व है। 'माई' में सुनैना के माध्यम से विवाह विषयक नारी के सोच में आए नवीन परिवर्तन प्रस्तुत करने के साथ–साथ परंपरागत विवाह पद्धति पर कड़ा विरोध भी व्यक्त किया है।

नारी देह और वस्त्र धारण संबंधी सामजिक एवं पारिवारिक दृष्टिकोण विशिष्ट से सामान्य की ओर बढ़ रहा है लेकिन मंजिल बहुत दूर है। स्त्री जीवन के विकास की सब से बड़ी समस्या शारीरिक व मानसिक पक्ष में आई असमानता है। स्त्रियों को हमेशा अपने शरीर की सुरक्षा के प्रति सचेत किया जाता है। स्त्री के लिए उसका शरीर निधि तुल्य होता है, जिसे बुरे नजरों से बचाकर सुरक्षित रखना उसका दायित्व होता है। इसलिए पूरे शरीर को कपड़े के अन्दर छुपाने की सीख स्त्री को बचपन से दी जाती है। समाज और परिवार हमेशा स्त्री की शारीरिक पवित्रता और रूप को अधिक महत्व देते हैं और उसकी मानसिक विकास को हमेशा नजरअंदाज किया जाता है। इस कारण स्त्री का शारीरिक पक्ष मानसिक पक्ष पर हावी होता है। स्त्री के व्यक्तित्व को कमजोर सिद्ध करने के लिए उसकी शारीरिक कोमलता को आधार बनाकर उसकी विशिष्ट गुणों को अनदेखा कर देते है। स्त्री की वेश–भूषा के प्रति समाज और परिवार जागरूक होते हैं। स्त्री क्या पहनती है, कैसे चलती है, उसका शरीर का कोई भाग कही दिखता है या नहीं। इस कारण स्त्रियाँ एक प्रकार की विवशता का अनुभव करती है।

स्त्री खुद के शरीर को जीवन के कई पड़ावों में एक बाधा के रूप में पाती है। 'माई' में सुनैना को कपड़ों से जुड़े रहने पर भी हमेशा एक नंगेपन का एहसास होता है। सुनैना का खुला गला, खुली बाहें और खुली टांगें उसकी बुआ को नापसंद थी। वह हमेशा सुनैना को पूरा शरीर ढककर रखने का हितायत देती थी। मंदिर जाते समय सुनैना के कपड़े के ऊपर बुआ शॉल ओढ़ा देती थी, कहीं बाहर जाते समय सुनैना के फ्राक के नीचे शलवार पहना देती थी, ताकि उसकी टाँगें न दिखें। "बुआ के साथ लगता कि मैं एक बदन हूँ। बुआ के साथ बचपन से जी होता कि बुरका पहनूँ।"[4]

स्त्री की शरीरिक विकास पर तो ध्यान दिया जाता है लेकिन उस शरीर के अन्दर की मन को कोई समझने का प्रयास कोई नहीं करता। शारीरिक विकास के आधार पर स्त्री को अलग–अलग रूपों में देखा जाता हैं। बचपन में कन्या, बड़ी होने के साथ युवती, स्त्री आदि उसके शारीरिक विकास के वर्गीकरण है। शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास नहीं हुआ, तो स्त्री असमंजस्य में पड़ जाती है। परिवार और समाज एक कन्या में भी नारी की छवि देखना चाहते हैं। सुनैना का भाई सुबोध जब भी विदेश से आता, उसके लिए तरह–तरह के पश्चिमी लिबास लाता, लेकिन उसके ऊपर दुपट्टा पहने बिना ड्योढ़ी से निकलने की अनुमति उसे नहीं मिलती। सुनैना का मन–मस्तिष्क शरीर के प्रति अधिक सजग रहती है। जब वह हस्तकला के क्लास में गुड़िया बनाना सीखती है, तो सिर को छोड़कर पूरा शरीर बनाती है। "हाथ बनाए, पैर बनाए, जिस्म बनाया, रुई भर–भर के उन्हें सिल डाला, पूरी काया तैयार कर दी, सुडौल और सुचारु स पर सिर जोड़ने की बारी आते–आते वह मेहनत व्यर्थ लगने लगी। धड़ अलग और सिर अलग, पता नहीं कहाँ फिंक गए।"[5] यहाँ सिर स्त्री की उन सारी सर्गात्मक क्षमताओं का प्रतिनिधित्व करती है, जिस पर शारीरिक सुरक्षा की बेचैनी हावी हो जाती है। सुनैना गुड़िया का पूरा शरीर तो बनाती है, लेकिन सिर नहीं। समाज और परिवार केवल स्त्री के शरीर को प्रधानता देते हैं और उनके सर्गात्मक क्षमताओं को नजरअंदाज कर देते हैं। इसका प्रभाव सुनैना पर पड़ती है, इसलिए गुड़िया का सिर बनाना उसे व्यर्थ प्रतीत होता है। माई की बात भी इससे अलग नहीं थी। वह हमेशा पर्दे में रहती और सिर से पाँव तक शरीर को बेआकार कपड़े से ढ़ककर रखती थी। कभी बच्चों के जिद्द करने पर उलटे पल्लू साड़ी पहन ली, तो बाबू के आँख दिखाने पर पल्ला सीधा कर लेती।

वर्तमान समय में भी स्त्री अपने शरीर के बारे में बात करने से शर्माती है। माहवारी के बारे में गाँव की स्त्रियाँ ही नहीं, बल्कि शहर की स्त्रियाँ भी खुलकर बात करने से कतराती है। माहवारी स्त्री–शरीर में होने वाली एक बदलाव है, जिसे अपवित्र माना जाता है। सच में यह भगवान् का वरदान है, जो केवल स्त्री को प्राप्त है। स्त्री–देह संबन्धी परंपरागत विचारधारा में सुधार होना अनिवार्य है। स्त्री का शरीर आफत की पुडिया नहीं, शक्ति का श्रोत है। केवल शारीरिक विकास से स्त्री का संपूर्ण विकास नहीं होता, मानसिक विकास भी अनिवार्य है। अपने अस्तित्व को पाकर स्वतंत्र जीवन बितानेवाली स्त्री को ही पूर्ण रूप से विकसित कह सकते है।

परिवार में पुरुष से अधिक धार्मिक–आचरण निभाने का दायित्व भी हमेशा नारी पर ही निर्भर होता है। स्त्री का त्याग करना, व्रत रखना आदि सदियों से चल रही प्रथा है। माई कष्ट सहकर व्रत रखती थी। व्रतों की लम्बी फेहरिस्त थी, जो सारे के सारे वह रखती थी। कोई पति की मंगल कामना के लिए, कोई पुत्र के लिए, संतानों के लिए होते हैं। लेकिन धार्मिक कार्यों में पुरुष को किसी प्रकार के आचरण निभाने की जरूरत नहीं होती। सुनैना कहती, "बाद में हमें समझ आया कि पत्नी की मंगलकामना के लिए कौन व्रत रखता है ? वैसे यह

समझ तो आज भी नहीं है।"[6]

हमारे देश में कुछ धार्मिक आचार ऐसे भी है, जहाँ स्त्री की पूजा की जाती है, इसका जिक्र उपन्यास में भी हुआ है। बचपन में सुनैना की कन्या पूजा होती है, तो उसे एक विशेष आदर और सम्मान का एहसास होता है। लेकिन बाद में वह समझ जाती है कि यह सम्मान उसे मात्र पूजा के अवसर पर ही प्राप्त होंगें। वास्तव में स्त्री को पूजनीय, विशिष्ट या देवी स्वरूप न होकर सामान्य जीवन व्यतीत करना चाहती है, जहाँ उसे आदर और सम्मान मिले, उसकी आकांक्षाओं को स्वीकृति मिले, परिवार और समाज का एक जुड़ प्रोत्साहन मिले। गीतांजलि श्री ने विभिन्न स्त्री पात्रों के माध्यम से 'माई' में स्त्री की विशिष्ट और सामान्य रूप की विवेचना करते हुए उसे विशिष्ट से सामान्य की ओर बढ़ने का प्रोत्साहन दिया है।

संदर्भ :-

1. माई, गीतांजलि श्री, पृ.सं. 64
2. वहीं, पृ.सं. 46
3. वहीं, पृ.सं. 35
4. वहीं, पृ.सं. 72
5. वहीं, पृ.सं. 98
6. वहीं, पृ.सं. 54

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 553-557
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विकास के आईने में आदिवासी

-डॉ. (श्रीमाती) राजु एस. बागलकोट
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कर्नाटक राज्य अक्कमहादेवी महिला विश्वविद्यालय, विजयपुर– 586108

स्वतन्त्रता के पश्चात विकास की अवधारणा पश्चिमी सिद्धांतों के आधार पर रही अर्थात संसाधनों पर अधिकार जमाना तथा उनका अत्यधिक दोहन कर राष्ट्र निर्माण करना किन्तु इस विकास में संसाधन युक्त क्षेत्रों में हजारों वर्षों से निर्वासित समुदायों के परम्परागत अधिकारों की उपेक्षा की गई। राष्ट्रीय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को कई हजारों एकड़ भूमि पर अधिकार दिया गया परिणाम यह हुआ कि पूंजीपति वर्ग संसाधनों का अनुचित दोहन एवं वहाँ निवासित आदिवासी समुदायों के अधिकारों का हनन करते रहे हैं। मध्य भारत का औद्योगिक प्रदेश राउरकेला, जगदीशपुर, दुमका क्षेत्र, तथा विभिन्न बांध परियोजनाएँ सभी आदिवासियों के अधिकारों की बलि देकर स्थापित किए गए हैं।

1980–90 के दशक के बाद विकास का नया सिद्धांत भारत में चलाया गया जिसमें बाजार की भूमिका स्वीकार की गयी। अतः न्यूनतम सरकार अधिकतम पूंजीपति का अघोषित सिद्धांत लागू किया गया। विकास के इस नये सिद्धांत के सन्दर्भ में हरिराम मीणा लिखते है कि– "यह नया सिद्धांत प्रचलित एवं लोकप्रिय है कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास के लिए निर्णायक भूमिका बाजार को सौंप देनी चाहिए, सरकार को नहीं। वैश्वीकरण ने आदिवासी जीवन और वनों को अपना शिकार बनाया, वनों में उपलब्ध पारम्परिक और प्राकृतिक संसाधनों में छुपी हुयी अकाल के अधिकाँश भावनाओं को ध्यान में रखकर।"[1] किन्तु इन पूंजीपति वर्ग द्वारा विकास का मुखौटा ओढ़ा गया फलतः उनकी वास्तविक मंशा साधारण जन की समझ से बाहर हो गयी। भारतीय बुद्धिजीवी, विचारक, चिंतक कहते रहे कि विकास हेतु संसाधन दोहन आवश्यक है किन्तु वह दोहन किसके द्वारा हो किस प्रक्रिया के माध्यम से हो तथा वहाँ निवासित जनसमुदाय का भी विकास हो इसे किसी ने ध्यान नहीं दिया।

वैश्वीकरण के इस विकासवादी मॉडल के सम्भावित नकारात्मक परिणामों पर प्रकाश डालते हुए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आदिवासियों के पक्षधर प्रख्यात विद्वान् लेवी डौंन्स ने अपने अंतिम दिनों में कहा कि – "भूमंडलीकरण और सांस्कृतिक एकरुपीकरण का अजगर जल्द ही जनजातियों को छोटे–छोटे समुदायों को निगल जाएगा।"[2] लेवी डौंन्स की भविष्यवाणी सच होने के कगार पर है। आदिवासी समुदाय आज अपना अस्तित्व खोता जा रहा है। उस पर अनेक प्रकार के हमले हो रहे है। सांस्कृतिक हमले, राजनैतिक हमले तथा विकास के आड़ में अनेक संसाधनों पर भी हमले हो रहे है। आदिवासी भूमि पर विभिन्न प्रकार की योजनाएँ लागू की जाती है जिनका लाभ आदिवासियों को नहीं बल्कि पूंजीपतियों को प्राप्त होता है। दूसरी ओर सरकारें भी विकास के नाम पर उपनिवेशकालीन भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 का अनुचित प्रयोग पर आदिवासी समुदायों

को बेदखल कर देती है।

राष्ट्र विकास के नाम पर उस समुदाय की प्रत्यक्ष उपेक्षा की जाती है जो विकास के रुकावट में भी जिम्मेदार है। वर्तमान समय आज तक के पिछले सभी दशकों से भयानक एवं निर्दयी है। तकनीकी, प्रौद्योगिकी विकास तथा राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ जैसे– विश्व बैंक समूह, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि द्वारा भी संसाधन दोहन सहयोग के फलस्वरूप संसाधन दोहन में तेजी तो अवश्य आ गयी है किन्तु उसी तेजी से आदिवासी समाज का विस्थापन भी हो रहा है। विस्थापन के पश्चात पुनर्वास की सारी नीतियों, नियमों का पालन केवल कागजों एवं फाइलों में ही पूर्ण हो जाती है। आजादी के बाद करीबन 1400 बड़ी सिंचाई परियोजनाओं तथा सैकड़ों उद्योगों की स्थापना में अधिकांश रूप से आदिवासी ही विस्थापित हुये हैं। विकास के इस मॉडल के फलस्वरूप आदिवासी विस्थापन पर हरिराम मीणा लिखते है कि– "केवल बांध परियोजना की वजह से भारत की करीब 50–60 लाख आदिवासियों की जनसंख्या का विस्थापन हुआ। इसके बाद खनन व अन्य औद्योगिक इकाइयों के कारण विस्थापन का संकट सामने आया। एक अनुमान के तहत प्रति दस में से एक आदिवासी विस्थापन की त्रासदी भोगने को विवश हुआ है।

भारतीय विकास के वर्तमान मॉडल से पता नहीं भारत का कितना विकास हुआ। हांलाकि GDP वृद्धि दर अवश्य दिखायी जाती है किन्तु सवाल यह है कि केवल GDP वृद्धि दर से राष्ट्र विकास हो सकता है? क्या GDP वृद्धि दर में पर्यावरण निम्नीकरण को शामिल किया जाना है? क्या उस GDP वृद्धि के लाभों का समान न्याय संगम विवरण हो रहा है? आदि अनेक सवाल है जिनमे इसे ढूँढना आज आवश्यक है।

किन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं है कि विकास के इस मॉडल के परिणामस्वरूप आदिवासी समाज के गरीबी, भूखमरी, बेकारी, लाचारी, विस्थापन, अशिक्षा, बेरोजगारी, ऋणग्रस्थता, खेतिहर, मजदूरी, कुपोषण, मृत्यु दर में वृधि और स्वास्थ्य समस्याओं का भयानक रूप आदि प्राप्त हुये है।

1990 के दशक में राव–मनमोहन पैक्ट के फलस्वरूप वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण की नीति को ऐसे लागू किया गया मानो यह नीति समस्त समाज को समानता के साथ विकास के मार्ग की ओर ले जाएगी किन्तु यह नीति उन कुछ पूंजीपति धनाढ्य लोगों के हितों को संरक्षण प्रदान करती रही है और दलित, दमित, आदिवासी एवं अन्य पिछड़े वर्ग इस नीति से लाभान्वित नहीं हो पाये हैं। वर्तमान समय की सरकार निजीकरण का परचम लहराने में पिछली सभी सरकारों को छोड़ दिया है। अब तो सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों एवं विभागों का निजीकरण किया जा रहा है। इस नीति के फलस्वरूप अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग संविधान द्वारा प्राप्त आरक्षण का लाभ भी नहीं उठा पाएंगे। यह आरक्षण व्यवस्था पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रहार है जिसका प्रभाव आने वाले समय में सामने आयेगा।

सवाल है कि विकास के नीतियों से क्या आदिवासी समाज लाभान्वित हो पाया है? उत्तर होगा आशानुरूप नहीं किन्तु इसके उलट आदिवासी समाज के जीवन निर्वाह की पद्धतियों को नष्ट किया जा रहा है। उनके जीवन जीने के संसाधनों पर अनुचित अधिकार जमाया जा रहा है। फलतः आदिवासी समाज में असंतोष है, क्रोध है तथा वे अपने अधिकारों हेतु संघर्ष कर रहे हैं सन् 2011 में चंद्रपुर, धनबाद, रायपुर जैसे मध्य भारतीय संपदा संपन्न क्षेत्रों में व्यापक विरोध दर्ज किये गये। इन विरोध के कारणों पर सी. एस. ई. (CSE) के उपमहानिर्देशक चंद्रभूषण ने सवाल उठाया कि– "जब पहले से मंजूर परियोजनाओं पर काम शुरू नहीं हुआ ऐसे में नयी

परियोजनाओं को मंजूरी देने में इतनी तेजी दिखाने के पीछे सरकार की क्या मंशा है? क्या यह जल, जमीन, जंगल पर निजी क्षेत्र पर कब्जा करने का नया घोटाला है? इनमें तमाम ऐसे मामले शामिल है जिनमें वन और पर्यावरण मंत्रालय की मंजूरी की आड़ में कम्पनियाँ, खानों, पानी व कोयले का लाइसेंस ले रही हैं। यह उन्हें राज्य स्तर पर ही मिल जाता है। केन्द्रीय नियन्त्रण बोर्ड ने जिन इलाकों को अत्यधिक बनाते हुये वहाँ नये संयंत्र न लगाने की शिफारिश की थी उन इलाकों में भी बड़े पैमाने पर नई परियोजनाओं को हरी झंडी दी गयी।"[4] चन्द्रभूषण के इस प्रतिक्रिया के आधार पर हम समझ सकते है कि वास्तव में विकास के नाम पर आदिवासी समाज के साथ क्या हो रहा है।

विकास के नाम पर आदिवासियों का विस्थापन तथा उनके वन, भूमि, जल पर अनैतिक अधिकार प्राप्त करने की पूंजीवादी नीति का विरोध वर्तमान आदिवासी समाज एवं साहित्य का प्रधान स्वर एवं मुख्य विशेषता है। वीरेंद्र जैन द्वारा रचित उपन्यास– "डूब' एवं 'पार' में बेतवा नदी पर बांध बनाने की योजना तथा आदिवासी समाज पर होने वाले सम्भावित दुष्परिणाम का यथार्थ चित्रण हुआ है। 'डूब' की पृष्ठभूमि बुन्देलखण्ड अंचल का ग्राम समाज है तो 'पार' की पृष्ठभूमि उसी अंचल का आदिवासी समाज है। ये दोनों समाज उजड़ रहें हैं और उन्हें उजाड़ रही है विकास के नाम पर शुरू की जाने वाली अधकचरी, दृष्टिहीन और बदनीयत से तैयार की गयी योजनाएँ।"[5] आदिवासी के प्रति यह बदनीयती आज से नहीं बल्कि प्राचीन काल से चली आ रही है। वास्तव में आदिवासी समाज को मुट्ठीभर पूंजीपति या सरकारे इंसान मानव ही नहीं समझते उन्हें जंगली गंवार न जाने क्या–क्या समझकर उनपर अन्याय अत्याचार करते हैं।

कुछ निजीकरण के तथा विकास के इस मॉडल के प्रगतिशील एवं डिज़ाइनर विचारक कह सकते हैं कि – आदिवासी विकास हेतु विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है, उनके लिए अनुसूची पाँच और छरू निर्धारित है। उन्हें आरक्षण प्राप्त होता है तथा PESA नामक कानून द्वारा भी आदिवासियों को विशेष अधिकार दिये गये है। यह सब दावे यही है किन्तु वास्तविक जमीनी सच्चाई कुछ और ही है। उपयुक्त सारी योजनाएँ, नियम, कानून केवल फाइलों में है किसी भी नियम अधिनियम का योग्य क्रियान्वयन नहीं हो पाता है। इन योजनाओं की वास्तविकता आदिवासियों के प्रति सरकारी मंशा पर महादेव टोप्पो अपनी कविता में व्यक्त करते है कि –

"हमारी भलाई में जुड़ी होने का करनी है दावा
पार्टियाँ हो दक्षिण, वाम या मध्यमार्गी
सहा करती है हमारे हिम की बान
हम जादू गोडा में गल रहे हों
नर्मदा में डूब रहे हों
उडीशा में चाहें भूखे मर रहे हों
या देश में कहीं गालियाँ या गोलियां खाकर मर रहे हों
या दामोदर का पी रहे हो गंदा पानी
बनाया जाना है
हमारे लिए कहीं न कहीं विकास का कार्य है प्रगति पर।"[6]

कविता की इन पंक्तियों को पढ़कर डिज़ाइन विचारक एवं बुद्धिजीवी अवश्य समझ पाएंगे विकास के नाम पर आदिवासियों के साथ क्या होता है।

निजीकरण एवं विकास के इस मॉडल के समर्थकों को यह समझना होगा कि भारत की नीतियों में आदिवासियों के विकास हेतु दर्जनों प्रावधान है जो अपने आप में प्रगतिशील भी है। जैसे भारत के वन नीति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वनों में स्थित आदिवासी गाँवो को वन्य ग्राम की संज्ञा दी गयी है उन ग्रामों में शिक्षा, चिकित्सा, विद्युत, संचार, सड़क, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, अनाज भंडारण, विकसित कृषि सुविधाएँ, पशु चिकित्सालय, बैंक सहकारी संस्थाए, वनोत्पादों का उपभोग, बिचौलियों के शोषण से मुक्ति आदि व्यवस्थाएँ की गयी है किन्तु वास्तविकता यह है कि –

"यहाँ से सबका रुख शहर की ओर कर दिया गया है
कल एक पहाड़ को ट्रक पर जाते हुए देखा
उससे पहले नदी गयी
अब खबर फैल रहीं है कि
मेरा गाँव भी यहाँ से जाने वाला है।"[7]

अब सवाल उठता है कि आदिवासीयों के विकास के सन्दर्भ में इनकी सारी योजनाएँ प्रगति पर है किन्तु यथार्थ कुछ और इस स्थिति पर आदिवासी अपनी अस्मिता और अधिकारों के लिए लड़े अथवा नहीं। अपनी आवाज वे संवैधानिक तरीके से उठाये हैं :–

"असंतुलित, विनाशकारी इस विकास
के विरोध में
निकाले जाते है जुलूस।"[8]

जब आदिवासी अपने अधिकारों के होते हनन पर अपनी आवाज संवैधानिक तरीके से उठाये हैं किन्तु सरकारे उनके साथ संवैधानिक तरीका नहीं अपनायी सरकारें सल्वा जुलूस के नाम पर गोलियाँ चलाती है। "बस्तर के आदिवासीयों की दशा बहुत खराब है 'सल्वा जुलूस' के नाम पर ये जो तथा कथित 'शांति खोज 'का सरकारी आपरेशन चलाया गया वह आदिवासियों पर अत्याचारों का नायाब उदाहरण है जो आश्चर्यजनक है। घ्यातव्य है कि सर्वोच्च न्यायालय ने जुलाई 2011 के निर्णय में सल्वा जुलूस के कदम को असंवैधानिक करार दिया।"[9] किन्तु एक विचारणीय तथ्य यह है कि आदिवासियों के साथ सरकार एक ओर जो विकास का राग अलापती है और दूसरी ओर उन्हें हर स्तर पर उपेक्षित रखती है। आवाज जब आदिवासियों के द्वारा उठायी जाती है तब सरकारी सेवा आदिवासियों के साथ किस रूप में पेश आती है देखिए :–

"ऑपरेशन के दौरान
बलात्कार की शिकार।
इस स्थिति पर एक ने कहा
अरे भाई
उन लडकियों को यहाँ लाकर
माओवादियों के कपड़े पहनाओं

और गोली मर दो।"

उपर्युक्त सारी चर्चा तथा विभिन्न पक्ष विपक्ष के पृष्टभूमि में यह अवश्य ज्ञात हो जाता है कि भारत की विकास यात्रा में आदिवासी समाज कहाँ खड़ा है किसी भी राष्ट्र या समाज का जो तबका सदियों से पृथक रहा है। अमूल्य प्राकृतिक संपदा का रक्षक रहा है। उसने जब–जब इस भारत भूमि पर बाहरी लोगों का आक्रमण हुआ है तब–तब आवाज उठाया और विरोध में खड़ा हुआ है। किन्तु आज वैश्वीकरण के महा भयानक अजगर के सामने वह आवाज तो उठा रहा है किन्तु सरकारें तथा बौधिक समाज अजगर की फुफकारी की ध्वनि में आदिवासियों की आवाज सुन नहीं पा रहा है। आज का समय बहुत ही भयानक है। ए. सी. कमरे में बैठकर विश्व के दूसरे कोने के लिए गए निर्णय का प्रभाव जंगल में निवासित आदिवासी तथा सामान्य नागरिकों के जेब पर पड़ता है।

जब सरकारें किसी विकसित एवं चालाक वर्गों के हितों को केंद्र में रखकर नीतियाँ एवं कानून बनाती है और दूसरी ओर आदिवासी, दलित, पिछड़े तबकों के विकास का ढोल बजाती है तब जागरूक बुद्धिजीवी का कर्तव्य है कि वे सामान्य जनता को इस दोमुही नीति से अवगत कराये तथा सामान्य जनता को जागरूक करें तथा संगठित होकर ऐसी नीति का विरोध होना चाहिए। आज आदिवासी, दलित, पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्याकों को एक साथ मंच पर संगठित होकर आवाज उठाने की आवश्यकता है अथवा पूंजीपतियों की संरक्षक सरकारें सामान्य नागरिकों के अधिकारों को कुचल देगें और हमें पता भी नहीं चलेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. हरिराम मणि – आदिवासी दुनिया – पृ. सं. 136
2. ईश्वर दोस जनसभा, 29 नवम्बर 2009 – आदिवासी दुनिया– पृ. सं. 137
3. हरिराम मणि – आदिवासी दुनिया – पृ. सं. 139
4. जनसत्ता दिनांक 24.09.2011, आदिवासी दुनिया पृ. सं. 140
5. सं. डा. रमेशचंद्र मीणा आदिवासी विमर्श – पृ. सं. 44
6. महादेव टोप्पो – जंगल पहाड के पाठ – पृ. सं. 24
7. सं. रमणिका गुप्ता कलम को नीर होने दो – पृ. सं. 77
8. महादेव टोप्पो – जंगल पहाड के पाठ – पृ. सं. 25
9. हरिराम मणि – आदिवासी दुनिया – पृ. सं. 145
10. आदित्य कुमार मांडी – पहाड पर हूल फूल – पृ. सं. 43

मो 9440932181

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 558-559
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य धारा में दलित चेतना

–दीपाली डी.मिरेकर

वेदकाल में समानता और मानवीय मूल्यों की प्रधानता थी। उत्तरवेदकालीन परिवर्तित समाज में जाति व्यवस्था का अंकुरित रूप गोचरित है। वर्ण व्यवस्था कालानुक्रमेण जाति व्यवस्था के जन्म की मूलाधार बनती है। शूद्र वर्ग शोषित दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। जाति पद्धति का जटिल स्वरूप भारतीय सुव्यवस्था और उन्नति को खोखला करता आया है।

दलित शब्द का सामान्य अर्थ–प्रत्येक क्षेत्र से शोषित, उत्पीडित और संघर्षित वर्ग। जिनकी अस्मिता को स्वार्थपरक उच्चवर्गीयों द्वारा दबोचा गया हो।

बाबू परमानन्द के अनुसार– दलित से अभिप्राय उन लोगों से है जो दबे हुए है, शोषित है, जिनकी समानता, सत्ता, सम्पत्ति, रोजगार व शिक्षा के अधिकारों का हवन हुआ है।

मनुस्मृति में दलित के प्रति निकृष्ट भाव प्रदर्शित है। भक्तिकालीन समाज नवजागरण से प्रवाहित युग था। भेदभाव, वर्णव्यवस्था, कर्मकाण्ड, अंधविश्वास आदि में उलझे पथभ्रष्ट समाज को नवज्योति प्रदान करने का कार्य संतो द्वारा हुआ।

"माथे तिलक हाथ जप माला।
जग ठगने कु स्वांग बनाया।।" –संत रविदास

19 शताब्दी में ज्योतिबा फूले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना करते हुए समाज सुधारकों का पथ प्रदर्शन किया। अंधश्रद्धा, नारी शोषण, जाति प्रथा, अज्ञानता, गरीबी, अनिष्ठ रूढ़ियों के प्रति विद्रोह और मानवीयता का ध्वज फैराना इनका उद्देश्य रहा। फूले जी कहते है–

"विद्या बिन मति गई, मति बिन नीति गई,
नीति बिन गति गई, गति बिन धन गया,
धन बिन शूड पतित हुए, इतना घोर अनर्थ
अविद्या से हुआ।"

शोषण के विरूद्ध ज्ञान को अस्त्र बनाकर दलित वर्ग को जागृत करने का सफल प्रयास फूले द्वारा हुआ। इनके उपरान्त दलित शोषण का विद्रोह और मुक्ति मार्ग के अनेक प्रयास हुए। डॉ. बाबा साहेब अंम्बेडकर फूले द्वारा दर्शित, विचारधाराओं के मार्ग पर अग्रसर हुए। डॉ. बाबा साहेब ने कहा–

"अविद्या ही अज्ञान की जननी है।
इस दिशा में इनका प्रमुख नारा–

एजुकेट, एजीटेड, ओरगेनारज रहा है।"

दलितों के प्रति अम्बेडकर का सशक्तिकरण मार्ग, अंधकारमय पथ पर जागृति की मशाल बनकर उभारी।

1936 के प्रगतिशील साहित्य में दलित चेतना के स्वर प्रस्फुटित है। प्रेमचंद के साहित्य में दलित चेतना के सशक्त बिम्ब मिलते है। ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था के प्रति इनका विद्रोह रहा है। ज्ञान और जागृति के धरातल पर दलित चेतना की साहित्यिक धारा, अन्याय के प्रति विद्रोही ज्वालामुखी बनकर उभरी है। स्वदेशी दीपक–कोर्ट मार्शल, रामेश्वरी प्रसाद राम–अछूतोद्धार 1932 नरेन्द् बीच 1931. शांति मेहरोत्रा ठहरा हुआ पानी, 1934, उदयशंकर भट्ट दृकमला 1939, हरिकृष्ण प्रेमी–बन्धन 1941, कृष्ण मुकुट–पश्चाताप 1956 शंकर शेष–एक और द्रोणाचार्य 1977 आदि नाटक दलित चेतनाओं से ओतप्रोत है। शोषित वर्ग को जागृत करने का कार्य साहित्य द्वारा हुआ।

भरतमुनि ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में लिखा है–

"न वेद व्यवहारोडयं संश्राव्यः शूद्रजतिषु।
तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्यमं सार्ववर्णिकम्।।"

अर्थात् शूद्र आदि जातियों के लिए वेदों का व्यवहार निषेध है। इसलिए इन जातियों के मनेरंजन और विद्यावर्धन के दृष्टि से पंचम वेद 'नाटक' की रचना की है।

तत्कालीन समाज की यह दोहरी नीति ज्ञान विहिन दलित वर्ग को अपने अधिकारों से वंचित रखते हुए, सामाजिक व्यवस्था में शोषण के शिखंजे में इनको दबोचती है। आधुनिक समाज में शिक्षा प्राप्त दलित वर्ग स्वाभिमान के प्रति जागृत है। इस दिशा में भारतीय संविधआन मानवाधिकार और सामाजिक सुव्यवस्था का रक्षा कवज बना है।

दलित शोषण के प्रति विद्रोह ने विभान्न समाज, सुधारक और आंदोलनों को जन्म दिया है। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। कथन के अंतर्गत सर्व क्षेत्र से प्रताड़ित दलित समाज में जागृति की लहर चली। शोषण के प्रति विद्रोहात्मक आग, मानवाधिकार और ज्ञानात्मक जागृति ने दलित समाज को अभिव्यक्ति के पथ पर अग्रसर किया। ज्ञान, जागृति, आलोचना, मानवाधिकार स्वाभिमान आदि तत्वों के पृष्ठभूमि पर दलित वर्ग विभिन्न चेतनाओं का सशक्त स्वरूप बना है।

साहित्यिक धारा दलित क्रांति का अभिन्न अंग है। दलित जागृति की लहर साहित्य के विभिन्न विधाओं में चौतन्यपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. 21वी शती का हिन्दी उपन्यास– पुष्पपाल सिंह।
2. दलित एवं दलित साहित्य– डॉ. सुदेश शर्मा।
3. भारत का दलित विमर्श– सूर्यकांत बाली।
4. दलित साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि– डॉ. जनार्दन वाघमारे।
5. इक्कीसवीं सदी, नव–विमर्श विशेषांक 2020, बोहल शोध मंजूषा, स. डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 3.811

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
22 जून 2021-वेबिनार विशेषांक Page No. : 560-564

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नागार्जुन की कविता में दाम्पत्य एवं वात्सल्य प्रेम

–डॉ. कमलेश सरीन

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

कवि नागार्जुन ने राजनीति, शोषण, कुरूप, उपेक्षित, निर्धनता आदि ही अपनी कविता के विषय बनाए हों ऐसा नहीं है। दाम्पत्य और वात्सल्य प्रेम की गहन मानवीय और जहज अनुभूतियाँ भी उनकी कविता में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। नागार्जुन छायावाद से आगे की प्रगतिवादी कविता के अमिट हस्ताक्षर हैं। उनकी कविता आजन्म प्रगतिशीलता, गतिशील, व्यापक एवं प्रगाढ़तर होती गई। उनका प्रगतिशील दृष्टिकोण उनकी दाम्पत्य और वात्सल्य प्रेम की कविताओं में भी स्पष्ट, शुद्ध, चमकता हुआ देखा जा सकता है। आलोच्य विषय की कविताओं की उनके यहाँ अधिक संख्या नहीं है। थोड़ी संख्या में ही अनुभूति की गहराई, जीवन्तता एवं सच्चाई इतनी विश्वसनीय, मर्मस्पर्शी और सघन है कि वे हिन्दी साहित्य की अमर और अविस्मरणीय निधि बन गई। कविता के विकास की दृष्टि से ये कवितायें निश्चित रूप से छायावादी प्रेम–सौन्दर्यपूर्ण दृष्टि से आगे की कड़ियाँ हैं। छायावादी प्रेमभाव व्यक्तिपरक था। प्रिया काल्पनिक अतीन्द्रिय रूप से सजी हुई वायवी ही थी। वह प्रेम–भाव प्रिया और प्रिय के बीच का नितान्त वैयक्तिक तो था ही साथ ही केवल युवा आयु का नितान्त भावुक एवं काल्पनिक था। एक प्रकार से जीवित व्यक्ति का सहज मानवीय प्रेम नहीं है किसी युवा का एकतरफा प्रेम समारोह ही था। परन्तु नागार्जुन की प्रेम भावना समान परिवार के साथ रहते हुए एक सहज जीवित मनुष्य की प्रेम–भावना है।

'सिन्दूर तिलकित काल' कविता कवि के स्वयं के विरहयुक्त जीवन की हृदय–विदारक तस्वीर प्रस्तुत करती है। कवि अपने परिवार, समाज और गाँव से दूर पड़ा हुआ है। ऐसी परिस्थिति में वह पूर्ण शून्यता, अकेलापन एवं असहनीय विरह का भाव अनुभूत करता है। एक समाज यहाँ पर भी है और सहायक भी है :–

''यहाँ भी तो हूँ न मैं असहाय
यहाँ भी हैं व्यक्ति और समुदाय।''

परन्तु वे 'स्वजन' नहीं हैं, 'जिनकी स्नेह से भींगी अमृतमय आँख' नहीं हैं। इसीलिए वह प्रवासी परिस्थिति को 'घोर निर्जन' मानता हुआ कहता है –

''घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल।''

वह कोई पाषाण हृदय नहीं है। हर किसी परिस्थिति में वह सामान्य जीवन नहीं जी सकता। वह सहज मानव है, जीवित शरीरी मानव है –

''यहाँ हर्ष–विषाद–चिन्ता–क्रोध
यहाँ है सुख–दुःख का अवबोध
यहाँ है प्रत्यक्ष और अनुमान
यहाँ स्मृति–विस्मृति सभी के स्थान
तभी तो तुम याद आती प्राण।''

कवि स्वयं यहाँ प्रेमी है और सहज मानवीय भावों या विकारों की यहाँ उद्‌घोषित स्वीकारोक्ति है। अपनी पत्नी के प्रति इतनी खुली एवं घोषित प्रेमाभिव्यक्ति पूरे छायावादी काव्य में कहीं नहीं मिलेगी। प्रतिदिन संध्या के समय कवि उर्फ प्रिय अपनी प्रिया पत्नी को स्मरण करता है।

''सान्ध्य नभ में पश्चिमांत समाज
लालिमा का जब करुण आख्यान
सुना करता हूँ, सुमुखि उस काल
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल।''

अपनी पत्नी से बिछुड़ने का यह मर्मान्तक विरहभाव नितान्त व्यक्तिपरक नहीं है। पत्नी के साथ अपना तरुनी ग्राम वहाँ के 'जन', 'समाज' और वहाँ की प्राकृतिक सम्पदायें भी वे पूरे मन से अपने मन में हर क्षण संजोये रहते हैं। वहाँ के लीचियां, वे आम, कमलकुमूदिनि, तालमखान, वेणुवन, अन्न पानी भांजी साग आदि सब के ऋण को उऋण वह हो नहीं सकता। इस प्रकार यह प्रेमाभाव पूर्णप्रेम से अभिहित किया जा सकता है। यह सहज सामाजिक मनुष्य का प्रेमाभाव है। सच्चा दाम्पत्य प्रेम यही कहा जा सकता है।

प्रगतिशील नागार्जुन की प्रेमनिष्ठा चातकी स्वभाव की है। चातकी स्वभाव की है। जिस प्रकार चातकी को स्वाती के जलज की दो बूंद ही चाहिए बाकि सब समुद्री, वर्षा या नदियों का जल उनके किसी काम का नहीं –

''सुहाई मुझकों न काली घन–घटा
सुहाई मुझको न पावस की घटा
जलधि ही सातो ही मुख खारे लगे
लगीं फीकी उमड़ती नदियाँ सभी
चित्त पर मेरे न चढ़ पाया कभी
वह सरोवर भी धवल कैलाश का।''

पर अपने प्रिय के दर्शन एवं मिलन के बाद सभी उपालभ भाव समाप्त हो गएः–

''किया दर्शन, नयन शीतल हो गए
उपालभक भाव थे, सब सो गए
आ गई जान में अब जान रे
कर लिया मैंने अमृत का पान रे।'' – 'चातकी'

एक सामान्य मनुष्य की तरह कवि के प्रिय भाव को प्रकृति उद्‌दीप्त करती है। झुके हुए कजरारे बादल, कूकते हुए मोर और ढर्राते हुए मेंढक कवि के मन की भाव–दशा की कुछ और ही कहानी कह रहे हैं –

''कूक उठे मोर
और मेरा रोआँ–रोआँ हो उठा कंवकित
टर्राए मेंढ़क
और मेरा दिल धड़कने लगा जोरों से
हो उठी तीव्र झींगुरों की रीं रीं रीं
और मैं लगा गया गोता गहराई के
झुक आए कजारे मेघ
और अधिक
और अधिक/और अधिक।'' – 'झुक आए कजरारे मेघ'

उपर्युक्त कविता में अभिव्यंजित संयोग, श्रृंगार के उद्दीप्त भाव कितने सांकेतिक और मर्यादित हैं। पर इस वर्णन में विमोहित करने की भरपूर मादकता है।

'तनगई रीढ़' कविता की मन को छू लेने वाली प्रेमाभिव्यक्ति कम ही कविताओं में मिलती है। किसी हथेली का स्पर्श, उष्ण निराकुल साँसें, कौंधती हुई चितवन का जादू, खिलखिलाहट की गूंज, अलकों के परिमल का झौंका और रग–रग में दौड़ती हुई बिजली किस प्रकार रीढ़ को तानती है।

छोटी सी कविता का मधुर भाव कितने हावों–अनुभावों को समेटे हुए है। संयोग–सुख का आन्तरिक राग सक्रिय, स्पन्दनमय अनुभूतियाँ, मधुर जीवन की सृष्टि करता है।

संयोग–सुख का प्राण–संचारी प्रेम आयु के बढ़ने के साथ–साथ और गहराता गया। दीर्घ साहचर्य प्रेम को प्रगाढ़ एवं परिपक्व करता है। संवेदनशील व्यक्ति अपने जीवन के विभिन्न पड़ाओं में प्राप्त प्रेम शक्ति का मूल्य पहचानता है। बुढ़ापे की अवस्था में –

''सिकुड़ गई रग–रग
झुलस गया अंग–अंग
बनाकर छोड़ गया पतआर
उलंग असगुन–सा खड़ा रहा.....।''

कवि के जीवन में प्रेरणास्वरूप प्राण–शक्ति बनकर आई पत्नी :–

''अचानक उमगी डालों की संधि में
छरहरी टहनी
पोर–पोर में गसे थे टूसे।''

जिस समय कवि प्रिय 'कगारे पर खड़ा कोठी, गूलर स्वरूप था' अर्थात् शरीर अस्वस्था एवं वृद्धावस्था में झुक गया था, उस एकाकी निराशाजनक शून्य में तिलैया जैसी शीतल सुख मिला पत्नी से –

''ऊपर उठ आई भादों की तलइया जुड़ा गया बौने की छाल का रेशा–रेशा यहाँ तुम थी।''

अर्थात् 'यह तुम थी' कविता में व्यंजित प्रेम सही अर्थों में गरिमापूर्ण, वास्तविक एवं सात्विक है। वृद्धावस्था में पत्नी का स्नेह भरा स्पर्श और मृद, प्रेम से भरी हुई बातें ठहरे हुए जीवन को संचरित कर देती हैं। प्रेम की वास्तविकता और जीवन की सच्चाई यही है।

इस प्रकार यह प्रेम–भावना छायावादी प्रेम दृष्टिकोण से भिन्न प्रगतिवादी प्रेम–दृष्टि से युक्त है। सार रूप में वास्तविक सामाजिक दाम्पत्य प्रेम ही महत्वपूर्ण है।

वात्सल्य प्रेम पर दाम्पत्य प्रेम से भी कम कवितायें लिखी गई है। दो–चार होते हुए भी महत्व की हैं। यह दंतुरित मुस्कान', 'जया', 'गुलाबी चूड़ियाँ' और 'अब', तब मैं तुम्हें भूल जाता हूँ।''

कविताओं में कवि की वात्सल्य भाव–व्यंजना की झलक मिलती है। कवि शिशुओं के बीच में आकर सब कुछ भूल जाता है। अपने सर्वाधिक प्रिय व्यक्ति का भी उन्हें ध्यान नहीं होता है –

''जब अबोध शिशुओं से घिरकर
मुदित चित्र बैठा होता हूँ
बिना हेतु ही वे हंस पड़ते हैं
मैं भी कुछ मुस्का देता हूँ
जब सहस्त्रदल कमलों का–सा
खिला हुआ उनका मुख मण्डल
तब मैं तुम्हें भूल जाता हूँ।''

अर्थात् कवि नागार्जुन को शिशुओं की रूप विभा बहुत अधिक प्रमाणित करती है। उनके भोलेपन की जलजात स्वरूप मुस्कान कवि के मन में उतर जाती है। उसको पूरी तरह पिघला कर दर्वित कर देती है और वे स्वयं को शेफालिका के फूलों की वर्षा में अनुभूत करते हैं। जैसे वे वात्सल्य–प्रेम–सरोवर में स्नान कर रहे हों –

''तुम्हारी यह दंतुरित मुसकान
मृतक में भी डाल देगी जान
धूलि–धूसर तुम्हारे ये गात
छोड़कर तालाब मेरी झोपड़ी में खिल रहे जलजात
परस पाकर तुम्हारा ही प्राण
पिघल कर जल बन गया हो कठिन पाषाण
छू गया तुमसे कि झरने लग पड़े शेफालिका के फूल।''

कवि को वात्सल्य प्रेम अन्य मनुष्यों में भी अनुभूत होता है। सात साल की बच्ची के इस ड्राइवर पिता द्वारा काँच की चार गुलाबी चूड़ियों को गियर के ऊपर लटकती हुई देखकर कवि को अपनी सन्तान का स्मरण हो आता है और कवि भावुक होकर स्निग्ध दूधिया वात्सल्य का आनन्द लेने लगता है :–

''और ड्राइवर ने एक नजर मुझे देखा
और मैंने एक नजर उसे देखा
छलक रहा था दूधिया वात्सल्य बड़ी–बड़ी आँखों में
तरलता हावी थी सीधे–सादे प्रश्न पर
और वे निगाहें फिर से हो गई सड़क की ओर
और मैंने झुककर कहा

हाँ भाई, मैं भी पिता हूँ।
वो तो बस यूँ ही पूछ लिया आपसे
वर्ना ये किसको नहीं भाएँगी?
नन्हीं कलाइयों की गुलाबी चूड़ियाँ।''

ये वत्सल–भाव भजन–कीर्तन के रूप में नहीं हैं। अपितु कवि की निश्छल–सहज अनुभूतियाँ हैं।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार दाम्पत्य एवं वात्सल्य भाव–व्यंजना के आधार पर यह कहने में कोई संकोच नहीं कि कवि नागार्जुन की प्रेम–कविता में उनके हृदय के सच्चे उद्‌गार व्यक्त हुए हैं। इन कविताओं से पाठक अभिभूत भी होता है और सात्विक प्रेम भावना की प्रेरणा भी पाता है। वह समझ सकता है कि प्रेम कोई वासना का सम्मोहन या भोग नहीं है, अपितु मानव–जीवन में मानवीयता के प्राण फूंकने की शक्ति है। इन कविताओं को पढ़कर पाठक का हृदय और अधिक संवेदनामय और उदार हो जाता है।

संदर्भ :-

1. सतरंगे पंखों वाली, नागार्जुन।
2. नागार्जुन और उनकी कविता, अजय तिवारी।
3. खिचड़ी विप्लव देखा हमने, नागार्जुन।
4. नागार्जुन ग्रंथावली।

भारत महाविद्यालय, जेऊर (म. रेल) तहसील करमाला, सोलापुर (महाराष्ट्र)

आईक्यूएसी, हिन्दी विभाग

इण्डो-यूरोपियन लिटरेरी डिस्कोर्स (यूक्रेन)

एवं

ISSN 2395:7115

बोहल शोध मंजूषा

भिवानी (हरियाणा)

के संयुक्त तत्त्वाधान में आयोजित

मुख्य विषय - समकालीन हिंदी साहित्य : विविध विमर्श

एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय वेबिनार, 22 जून 2021

अध्यक्षता : **मा. नारायण (आबा) पाटील,** पूर्व विधायक,
अध्यक्ष, भारत शि.प्र.मं., जेऊर

समय :
दोपहर 2.15 बजे से 4.15 बजे तक

स्वागत :
प्राचार्य डॉ. अनंत शिंगाडे
भारत महाविद्यालय, जेऊर

प्रस्तावना :
डॉ. पंडित बन्ने, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
भारत महाविद्यालय, जेऊर

उद्घाटक :
डॉ. श्रेश स्वामी, प्रथम कुलपति
पु.अ.हो. विश्वविद्यालय, सोलापुर (महाराष्ट्र)

बीजवक्ता :
प्रो. डॉ. अर्जुन चव्हाण, पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)

आभार :
डॉ. नवनाथ गाडेकर

प्रथम सत्र

विषय : आदिवासी, पर्यावरण, स्त्री विमर्श

सत्राध्यक्ष :
प्राचार्य डॉ. इस्पाक अली, लाल बहादुर
शास्त्री महाविद्यालय, बैंगलूर (कर्नाटक)

विशेषज्ञ :
डॉ. सुरैया शेख,
अध्यक्ष, हिन्दी अध्ययन मण्डल, पु.अ.हो.
विश्वविद्यालय, सोलापुर (महाराष्ट्र)
डॉ. शिवाजी चवरे,
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रा. संभाजीराव कदम
महाविद्यालय, देऊर

आभार :
डॉ. सतीश घोरपडे

द्वितीय सत्र

विषय : किन्नर, दलित, वृद्धावस्था विमर्श

सत्राध्यक्ष :
डॉ. मंजू लाल, लंदन

विशेषज्ञ :
डॉ. भाऊसाहेब नवले,
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, कला वाणिज्य एवं
विज्ञान महाविद्यालय, सात्रल (अ.नगर)
राकेश शंकर भारती
(यूक्रेन)
डॉ. विनोद तनेजा,
सम्पादक, कश्फ, अमृतसर (पंजाब)
डॉ. रोशन मोरवे, यूनाईटिड किंगडम
राजेश मलिक, उपन्यासकार

आभार :
डॉ. संघप्रकाश दुड्डे

समापन सत्र

प्रमुख अतिथि :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा,
परीक्षा नियंत्रक, टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

विशेष उपस्थिति :
माई मनीषा महंत,
अध्यक्ष, किन्नर अधिकार ट्रस्ट, चीका (हरियाणा)

धन्यवाद ज्ञापन :
डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट
सम्पादक, बोहल शोध मंजूषा, भिवानी (हरियाणा)

संयोजन समिति :

डॉ. दादासाहेब खांडेकर, डॉ. गंगाधर बिराजदार, डॉ. संजय नाईनवाड, डॉ. अनिल सालुंखे, डॉ. गोरखनाथ किर्दत, डॉ. संतोष कोलेकर,
डॉ. रेखा सोनी, ज्ञान प्रकाश जखमी, डॉ. नवनाथ शिंदे, डॉ. प्रशांत नलावडे, डॉ. राजेश शर्मा, डॉ. सुलक्षणा अहलावत,
डॉ. दीपक शर्मा, डॉ. रवि शुण्डयाल, डॉ. सुशीला आर्या, प्रो. शकुन्तला, प्रो. सुमन भाटी, ज्योति कुशवाहा
डॉ. भगवान आदटराव, प्रो. सिद्धाराम पाटील, प्रो. विठ्ठल वाघमारे, डॉ. राजेंद्र वडजे

तकनीकि सहयोगी:
प्रो. नरेन्द्र सोनी, विनोद शर्मा

प्राचार्य
डॉ. अनंत शिंगाडे
मो. 9604885353

संयोजक
डॉ. पंडित बन्ने
मो. 9834582128

राकेश शंकर भारती, अध्यक्ष
इण्डो-यूरोपियन लिटरेरी डिस्कोर्स (यूक्रेन)

सह-संयोजक
डॉ. नवनाथ गाडेकर
मो. 9960949298

आईक्यूएसी समन्वयक
प्रो. रमेश पाटील
मो.8855870901

सम्पादक : **डॉ. नरेश सिहाग** एडवोकेट
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान
मो. 8708822674